रामानन्द-सम्प्रदाय

तथा

हिन्दी-साहित्य पर उसका प्रभाव

(एक गवेषणात्मक अध्ययन)

आगरा विश्वविद्यालय की पीएच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत प्रबन्ध

डॉ० बदरीनारायण श्रीवास्तव

एम० ए०, पीएच० डी०, यू० पी० ई० एस०,

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग, काशी नरेश

गवर्नमेन्ट कॉलेज, ज्ञानपुर



हिन्दी परिषद्

प्रयाग विश्वविद्यालय

प्रकाशक—

हिन्दी परिषद्

विश्वविद्यालय

प्रयाग

प्रथम संस्करण, १९५७ ई०

मूल्य ८)

मुद्रक—

आज़ाद प्रेस,

प्रयाग

ऋषितुल्य स्वर्गीय पिताजी

श्रीमान् महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव

तथा

तपस्त्याग-प्रतिमा श्रद्धेया माताजी

श्रीमती रामदुलारी देवी

को

सादर समर्पित

परिचय

प्रस्तुत ग्रन्थ लेखक के डी० फिल० थीसिस का परिवर्द्धित और संशोधित रूप है। आगरा विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने इस कार्य का निरीक्षण मेरे सुपुर्द किया और मुझे भी अपने पुराने, प्रिय और होनहार विद्यार्थी को खोज के कार्य में दीक्षित करने में विशेष प्रसन्नता हुई। श्री श्रीवास्तव का ध्येय प्रारम्भ से ही केवल डिगरी प्राप्त करना नहीं था, बल्कि प्रस्तुत विषय का सर्वांगीण अध्ययन करना था। संयोग से अयोध्या आ जाने के कारण आपको अपने कार्य को अग्रसर करने में विशेष सहायता प्राप्त हुई।

रामानन्द सम्प्रदाय का यह एक प्रकार से प्रथम विस्तृत और वैज्ञानिक अध्ययन है जिसे हिन्दी, संस्कृत तथा भारतीय इतिहास के विद्यार्थी समान रूप से उपयोगी पावेंगे। रामानन्द स्वामी की जीवनी, रचनाओं, सम्प्रदाय के इतिहास तथा दर्शन, भक्ति और कर्मकांड के विवेचनों में डॉ० श्रीवास्तव ने प्रचुर मौलिक सामग्री दी है तथा अनेक संदिग्ध स्थलों पर नया प्रकाश डाला है। थीसिस के इस पूर्वार्द्ध भाग के अधिक विस्तृत हो जाने के कारण मैंने उत्तरार्द्ध भाग, अर्थात् हिन्दी साहित्य पर रामानन्द सम्प्रदाय के प्रभाव वाले अंश का संक्षिप्त विवेचन करने की श्री श्रीवास्तव को सलाह दी। तो भी थीसिस का आकार ५०० पृष्ठों से अधिक हो गया।

श्री बदरी नारायण श्रीवास्तव की इस महत्त्व पूर्ण कृति को हिन्दी के विद्यार्थियों और विद्वानों के समक्ष रखने में मुझे गर्व और संतोष अनुभव हो रहा है। डी० फिल० की डिगरी के बहाने डॉ० श्रीवास्तव हिन्दी की एक महत्त्वपूर्ण भक्ति धारा का उच्च स्तर का अध्ययन उपस्थित करने में समर्थ हुए हैं। मुझे भविष्य में डॉ० श्रीवास्तव से खोज के क्षेत्र में बहुत कुछ आशाएँ हैं।

हिन्दी विभाग }
विश्वविद्यालय, प्रयाग }

धीरेन्द्र वर्मा
कार्तिक, सं० २०१४

निवेदन

प्रस्तुत प्रबन्ध में रामानन्द-सम्प्रदाय तथा हिन्दी-साहित्य पर उसके प्रभाव का अध्ययन किया गया है। मध्ययुगीन हिन्दी राम-भक्ति-साहित्य के मूल प्रेरणा-स्रोत स्वामी रामानन्द जी ही थे, इसमें सन्देह नहीं। आचार्य प्रवर पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' नामक ग्रन्थ में 'कबीर' का परिचय देते हुए लिखा है, "इसमें कोई सन्देह नहीं कि कबीर को 'राम-नाम' रामानन्द जी से ही प्राप्त हुआ।" इसी प्रकार तुलसीदास का भी परिचय देते हुए आचार्य शुक्ल ने लिखा है, "यद्यपि स्वामी रामानन्द जी की शिष्य-परम्परा के द्वारा देश के बड़े भाग में राम-भक्ति की पुष्टि निरन्तर होती आ रही थी और भक्त लोग फुटकल पदों में राम की महिमा गाते आ रहे थे पर हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में इस भक्ति का परमोज्ज्वल प्रकाश विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में गोस्वामी तुलसीदास जी की वाणी द्वारा स्फुरित हुआ।... रामभक्ति का वह परम विशद साहित्यिक संदर्भ इन्हीं भक्तशिरोमणि द्वारा संगठित हुआ जिससे हिन्दी काव्य की प्रौढ़ता के युग का आरम्भ हुआ।" आचार्य शुक्ल के इन कथनों से स्पष्ट है कि हिन्दी-साहित्य के दो महान् कवियों—कबीर और तुलसीदास—का उचित मूल्यांकन करने के लिए स्वामी रामानन्द जी की विचारधारा से परिचित होना अत्यावश्यक है। खेद है, स्वामी जी की इस महत्ता से परिचित होते हुए भी उनके जीवन-वृत्त, उनकी रचनाओं तथा उनकी विचारधारा का कोई समुचित अध्ययन अब तक नहीं किया गया था। फलतः कबीर और तुलसीदास ने किस सीमा तक उनसे प्रभाव ग्रहण किए थे, इसकी वैज्ञानिक जांच नहीं हो पाई थी। एक ओर रामानुजाचार्य की शिष्य-परम्परा में मान कर उन्हें विशिष्टाद्वैत का पक्का अनुयायी कह दिया गया और दूसरी ओर उनके जीवनवृत्त तथा उनकी रचनाओं के सम्बन्ध में पर्याप्त खोज नहीं की गई, जिसके फलस्वरूप विद्वानों को 'कुछ आनुषंगिक बातों का सहारा' ही लेना पड़ा है। प्रस्तुत अध्ययन इन्हीं कमियों की पूर्ति का अपने ढङ्ग का एक प्रयासमात्र है।

प्रबन्ध को दस अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रारम्भ में रामानन्द सम्प्रदाय की धार्मिक पृष्ठभूमि को स्पष्ट करने के लिए एक भूमिका भी जोड़ दी गई है। रामानन्द की विचारधारा का उचित मूल्यांकन करने के लिए भूमिका में वैष्णव धर्म का विकास, दक्षिण के आलवार भक्तों एवं रामानुजाचार्य की विचारधारा, मध्ययुगीन धार्मिक वातावरण तथा प्रमुख भक्ति-सम्प्रदायों—निम्बार्क, मध्व तथा विष्णुस्वामी—के दार्शनिक सिद्धान्त एवं तत्कालीन राजनैतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का एक संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है। लेखक ने इस सम्बन्ध में विभिन्न विशेषज्ञों के मतों का अपने ढंग पर संकलन एवं संग्रह किया है। ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में रामानन्द स्वामी के जीवन, उनकी रचनाओं तथा रामानन्दी सम्प्रदाय के अध्ययन की आधारभूत सामग्री की पूरी खोज करके उसका उचित मूल्यांकन किया गया है। इस सम्बन्ध में रामानन्द-सम्प्रदाय के निकट सम्पर्क में आकर लगभग समस्त प्राचीन एवं अर्वाचीन ग्रन्थों की खोज तथा संकलन, उनसे प्राप्त सूचनाओं की प्रामाणिकता की जाँच एवं हिन्दी-साहित्य के प्रमुख विद्वानों के मतों की आलोचना आदि लेखक की अपनी देन है। द्वितीय अध्याय में रामानन्द स्वामी का जीवनवृत्त प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इस सम्बन्ध में प्रचलित मतमतान्तरों की पूरी आलोचना करके लेखक ने प्राचीन उपलब्ध सामग्री तथा सम्प्रदाय में प्रचलित मत के आधार पर स्वामी जी के जीवनवृत्त की एक रूपरेखा प्रस्तुत की है। इसके पूर्व इस तरह का कोई प्रयास नहीं किया गया था। इस दृष्टि से प्रस्तुत प्रयास अपनी विशिष्ट मौलिकता रखता है। तृतीय अध्याय में रामानन्द स्वामी के ग्रन्थ और उनकी प्रामाणिकता पर विचार किया गया है। लेखक ने स्वामी जी के नाम पर प्रचलित प्रायः सभी ग्रन्थों की बड़े परिश्रम से खोज की है। इसके लिए उसे रामानन्द-सम्प्रदाय के विद्वानों एवं उनकी कृतियों के निकटतम सम्पर्क में आना पड़ा है। अयोध्या के कितने ही व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक पुस्तकालयों की उसे पूरी छानबीन करनी पड़ी है। सम्प्रदाय के वृद्ध एवं मान्य भक्तों के भी मत का इस सम्बन्ध में संकलन किया गया है। रामानन्द के नाम पर प्रचलित विभिन्न हिन्दी पदों एवं संस्कृत स्तोत्रों का संकलन भी बहुत ही परिश्रम से किया गया है। इस प्रकार कुल मिला कर स्वामी जी के ग्रन्थों के सम्बन्ध में यह अध्ययन अपनी विशेष मौलिकता रखता है। स्वामी जी के ग्रन्थों की प्रामाणिकता की जांच के लिए लेखक ने प्रकाशित ग्रन्थों की एकाधिक प्रतियों की विस्तृत तुलना की है और साथ ही विभिन्न विरोधी मतों की इस सम्बन्ध में उसने विस्तृत आलोचना भी की है। अनेक पुष्ट प्रमाणों

के अभाव में उसने स्वामी जी के नाम पर प्रचलित कुछ ग्रन्थों को छोड़ कर शेष सभी को अप्रामाणिक ही माना है। प्रस्तुत प्रबन्ध की रचना के लगभग एक वर्ष बाद सभा ने 'रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ' नामक पुस्तक प्रकाशित की थी। उसमें आई अधिकांश रचनाओं के सम्बन्ध में मैंने जो विचार अपने ग्रन्थ में व्यक्त किए हैं, उनमें अब और दृढ़ता आ गई है। वस्तुतः ये सभी रचनाएँ नितान्त ही अप्रामाणिक हैं। संप्रदायों के साहित्य की छानबीन करने वाले विद्वान् इस बात से अपरिचित नहीं कि ज्यों-ज्यों साम्प्रदायिक धारणाओं में परिवर्तन होता जाता है, त्यों-त्यों अनेक नए ग्रन्थ परवर्ती विद्वानों द्वारा लिखे जाकर संप्रदाय के मूल प्रवर्त्तक के नाम पर प्रचलित कर दिए जाते हैं। 'रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ' संभवतः 'तपसी शाखा' तथा कबीरपंथी विद्वानों द्वारा लिखी गई हैं और रामानन्द को योगी सिद्ध करने के लिए उनके नाम पर प्रचलित की गई हैं।

चतुर्थ अध्याय में रामानन्द-सम्प्रदाय का इतिहास तथा उससे सम्बद्ध शाखाओं का विस्तृत अध्ययन किया गया है। यह अध्ययन लेखक की अपनी वस्तु है। स्वयं रामानन्द-सम्प्रदाय में भी इस प्रकार का कोई अध्ययन उपलब्ध नहीं है। विभिन्न प्रामाणिक सामग्री के आधार पर इस अध्याय में रामानन्द-सम्प्रदाय की उत्पत्ति, उसके विकास एवं अन्य सम्प्रदायों के उस पर पड़े प्रभाव का विस्तृत अध्ययन किया गया है। साथ ही कुछ प्रसिद्ध गादियों की गुरुपरम्परा तथा कुछ प्रसिद्ध भक्तों के जीवनचरित एवं उनकी रचनाओं पर भी प्रकाश डाला गया है। रामानन्दी-अखाड़ों का भी इस सम्बन्ध में विशेष अध्ययन किया गया है और उनके सम्बन्ध में जो कुछ भी सामग्री प्रकाशित अथवा मौखिक रूप से मिल सकी है, लेखक ने उन सभी का संकलन किया है। इस प्रकार यह अध्ययन धार्मिक दृष्टि से भी बहुत अधिक महत्व रखता है। पंचम अध्याय में रामानन्द-सम्प्रदाय की दार्शनिक विचारधारा का विवेचन किया गया है। इस सम्बन्ध में प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर स्वामी जी के मत का अध्ययन किया गया है, साथ ही 'आनन्दभाष्य' का मत भी दे दिया गया है। इस प्रकार का कोई अध्ययन रामानन्द-सम्प्रदाय में भी अब तक नहीं हुआ था। इस दृष्टि से यह अध्ययन लेखक की अपनी विशिष्ट मौलिकता है। संभव है, लेखक की अल्पविद्याबुद्धि के कारण इसमें कुछ त्रुटियाँ रह गई हों, फिर भी उसका यह प्रयास कम महत्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता। षष्ठ अध्याय में रामानन्द-सम्प्रदाय की भक्ति-पद्धति का विवेचन किया गया है। इस सम्बन्ध में भी लेखक ने सम्प्रदाय के मौलिक ग्रंथों के आधार पर स्वामी जी की विचारधारा तथा अन्य प्रमुख विद्वानों के मतों का विस्तृत अध्ययन किया है। साथ ही

'आनन्दभाष्य' का भी मत दे दिया गया है। यह अध्ययन भी लेखक मौलिक विशेषता है। सप्तम अध्याय में सम्प्रदाय के पूजा-सिद्धान्त तथा उ कर्मकाण्ड के महत्व और स्थान का संक्षेप में अध्ययन किया गया है। यह का पूरा अध्ययन लेखक की अ--ी मौलिकता है।

अष्टम अध्याय में हिन्दी कवियों पर रामानन्दी दार्शनिक सिद्धान्तों के प्र का बहुत ही पूर्ण एवं विस्तृत अध्ययन किया गया है। इस सम्बन्ध में तुल दास, कबीर और मैथिलीशरणगुप्त को ही विशेष रूप से चुना गया है। अ कवियों का अध्ययन विस्तार भय से छोड़ दिया गया। इस सम्बन्ध में ले की मौलिकता का निर्णय सुधीजन ही कर सकते हैं। इसी प्रकार नवम अध्य में हिन्दी कवियों पर रामानन्दी भक्ति-पद्धति के प्रभाव का विस्तृत अध्ययन कि गया है। यहाँ भी तुलसी, कबीर और मैथिलीशरण गुप्त को ही विशेष रूप इस प्रभाव का मूल्यांकन करने के लिए चुना गया है। इस प्रकार का अध्य हिन्दी में पहली बार ही हो रहा है। यह लेखक की अपनी मौलिकता है। द: अध्याय में रामानन्द स्वामी तथा उनके सम्प्रदाय का संक्षिप्त मूल्यांकन कि गया है। यह प्रस्तुत अध्ययन का निष्कर्ष है।

इस अध्ययन के सम्बन्ध में मैं सर्व प्रथम प्रो० ए० सी० बनर्जी का कृ हूँ, जिन्होंने मुझे प्रयाग विश्व विद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डॉ० धी वर्मा, एम० ए०, डी० लिट्० (पेरिस) की देखरेख में इस शोध कार्य सम्पादित करने की अनुमति कृपया प्रदान की थी। पूज्य डॉ० वर्मा जी तो मुख्य पथ-प्रदर्शक होने के साथ ही मेरे गुरु भी हैं। यह उनकी अस उदारता का ही परिणाम है कि मैं इस कार्य को इतने अल्पकाल में ही सम्पा कर सका हूँ। मैं पूज्य डाक्टर वर्मा जी के प्रति किन शब्दों में कृतज्ञता-प्रक करूँ, समझ में नहीं आता! मैं डॉ० हज़ारीप्रसाद द्विवेदी तथा डॉ० रामकु वर्मा का भी कृतज्ञ हूँ, जिनके बहुमूल्य सुझावों से मैंने पर्याप्त लाभ उठाया डॉ० मुंशी राम शर्मा तथा पं० अयोध्यानाथ शर्मा जी ने प्रस्तुत शोधकार्य में अत्यन्त सहायता की है, मैं उनका भी आभारी हूँ। श्री साकेत महाविद्यालय, फ़ैज़ा के आचार्य डॉ० हरिहर नाथ हुक्कू, एम० ए०, डी० लिट्० का मैं विशेष रूप आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे अपने अध्ययन को सुचारुरूप से सम्पादित करने लिए अनेक प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की थीं। वस्तुतः उनकी इस मह उदारता के बिना फ़ैज़ाबाद जैसे स्थान में रह कर यह कार्य हो ही नहीं सक था। प्रो० रघुवर मिट्ठू लाल शास्त्री जी ने 'अध्यात्मरामायण' पर अपना नि

देकर मुझे बहुत ही उपकृत किया है, मैं उनका विशेष रूप से आभारी हूँ। आचार्य क्षितिमोहन सेन तथा रेवरेंड फ़ादर डॉ० कामिल बुल्के, एस० जे०, ने भी मेरे पथ में सहायता की है, मैं उनका भी आभारी हूँ।

महात्मा अंजनीनन्दनशरण को मैं इस सम्बन्ध में कभी भूल नहीं सकता, जिन्होंने रामानन्द-सम्प्रदाय की प्राचीनतम एवं अप्राप्य पुस्तकों को मुझे प्रदान कर इस अध्ययन में मेरी अपूर्व सहायता की है। यदि उनकी कृपादृष्टि न होती तो मैं नहीं कह सकता कि यह अध्ययन पूरा होता भी। मैं उनका बहुत ही आभारी हूँ। पं० रामकुमारदास 'रामायणी' ने भी अनेक साम्प्रदायिक पुस्तकों को प्रदान करने की उदारता दिखलाई थी, मैं उनका भी कृतज्ञ हूँ। इनके अतिरिक्त जिन अन्य विद्वानों की कृतियों एवं परामर्शों से मैंने लाभ उठाया है, मैं उनका भी कृतज्ञ हूँ। संभव है, किन्हीं विद्वानों के मतों की आलोचना करने में मुझे कुछ अप्रिय सत्य भी कहना पड़ा हो, किन्तु यह उनके प्रति मेरी सम्मान-भावना को किसी प्रकार कम नहीं करता।

मैं अपने परीक्षकों का अत्यन्त आभारी हूँ, जिनके बहुमूल्य सुझावों को यथासंभव अपनाकर मैंने इस ग्रन्थ को अधिक उपयोगी बनाने की चेष्टा की है।

प्रस्तुत प्रबन्ध को टंकित करते समय मेरे प्रिय शिष्य पं० राधेश्याम त्रिपाठी 'श्याम' ने जिस अद्भुत कार्य-तत्परता का परिचय दिया, वह बहुत ही प्रशंसनीय है। मेरी समस्त शुभकामनाएँ उनके साथ हैं। ग्रन्थ के प्रकाशन की मेरी प्रार्थना स्वीकार करने में हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, ने जो उदारता दिखलाई है उसके लिए मैं उसका चिरऋणी हूँ। मुद्रण की सुन्दर व्यवस्था के लिए आज़ाद प्रेस, प्रयाग, के अधिकारीगण का भी मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ।

पुस्तक में जो भी त्रुटियाँ रह गई हों, लेखक उनके लिए क्षमाप्रार्थी है। रामभक्ति-साहित्य के अध्ययन में यदि इस प्रबन्ध से हिन्दी तथा अन्य भाषा-भाषी विद्यार्थियों का कुछ भी लाभ हो सका, तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

वाराणसी
श्री गांधी जयन्ती, सं० २०१४

बदरी नारायण श्रीवास्तव

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०	३	विनय नगर	विजय नगर
१७	३०	उपलब्धि	उपलब्धि
३८	१५	कर्तें	कर्तुं
४१	२६	छ्यानबे	छ्यानबे
४२	८	बन्दों	बन्दौं
६६	२२	काव्य	काव्य
७५	२५	जान्हवी	जाह्नवी
७५	२७	प्रवर्तके	प्रवर्त्तके
७७	४	वृद्धि	वृद्धि
८८	३०	तदर्द्धचं	तदर्द्धच
६०	२७	पर्यटन्नवनमिमाम्	पर्यटन्नवनीमिमाम्
६२	२६	श्रीवैष्णवमताब्ज भाष्कर	श्रीवैष्णवमताब्ज भास्कर
१०३	अंतिम	” ”	”
१०४	”	विश्वकोर	विश्वकोष
११४	२५	प्रमद	प्रमाद
११४	२७	करण	कारण
१२३	२	रमानन्द	रामानंद
१४१	१४	सर्वांगी	सरबंगी
१५४	१४	”	”
१७६	२८	भूपदीप	धूपदीप
२४०	१८	विश्वजात…यदवतमखिलं	विश्वंजातं…यदवितमखिलं
२४०	२०	वातोऽवनरपि	वातोऽवनिरपि
२४३	२३	द्विजातिरच्छन्छरणं	द्विजातिरिच्छन्छरणं
२५७	१८	स्वकर्मवज्ञान	स्वकर्मविज्ञान
२६६	२३	नाड़ाशुभद्वार	नाड़ीशुभद्वार
२७२	१२	अपहतपापत्वादि	अपहतपाप्मत्वादि
२६५	२४	संशयत्वमितार्यते	संशयत्वमितीर्यते
२६६	२८	चारस्त्यहिंसा	चास्त्यहिंसा
२६६	३०	अयन्तु-नयः	अयन्ति…नयः
२६६	३१	हरेश्चरस्थस्य	हरेश्चराचरस्थस्य
३०२	२०	प्रादुरभंच्छिव	प्रादुर्भूंच्छिव
४५६	१८	सबकं	सबकूं

विषय-सूची

संक्षेप और संकेत

आ० भा०—आनन्दभाष्य
उ० भा० सं० प०—उत्तरी भारत की संत परम्परा
क० ग्र०—कबीर ग्रन्थावली
ह० प्र० द्विवेदी—हज़ारीप्रसाद द्विवेदी
कवितावली, उ० का०—कवितावली, उत्तर काण्ड
जे० आर० ए० एस०—जर्नल अव् दि रायल एशियाटिक सोसायटी अव् बंगाल
ना० प्र० स० रिपोर्ट—नागरी प्रचरिणी सभा की खोज-रिपोर्ट
बीजक प्रे० च०—बीजक, सं० प्रेमचंद
भ० पु० तृ० प्र०—भविष्यपुराण तृतीय प्रतिसर्ग पर्व
मानस—श्रीरामचरितमानस
मानस, बा० का०—श्रीरामचरितमानस, बालकांड
मानस, अ० का०—श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकांड
मानस, अ० का०—श्रीरामचरितमानस, अरण्यकांड
मानस, कि० का०—श्रीरामचरितमानस, किष्किन्धाकांड
सु० का०—श्रीरामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड
लं० का०—श्रीरामचरितमानस, लंकाकाण्ड
उ० का०—श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड
श्री रा० प० पं० रा० ट० दास—'श्रीरामार्चनपद्धति', सं० पं० रामटहलदास
रा० ना० दास—रामनारायणदास
विनय—विनयपत्रिका
श्री वै० म० भा०—श्री वैष्णवमताब्जभास्कर
रा० ट० दास—रामटहलदास
सं० स० कबीर, वर्मा—संक्षिप्त संत कबीर, डॉ० रामकुमार वर्मा
हि० का० नि० सम्प्रदाय, बथ्वाल—हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, डॉ० पीतांबर दत्त बथ्वाल
हि० सा० आ० इ०, वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ० रामकुमार वर्मा
हि० सा० इ०, शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल

भूमिका

धार्मिक पृष्ठ-भूमि

रामानन्द स्वामी मध्य-युग के एक प्रसिद्ध वैष्णव सुधारक थे। अपने उदार दृष्टिकोण के कारण उन्होने भक्ति का द्वार ब्राह्मण-शूद्र, शक्त-अशक्त, कुलीन-अकुलीन, पुरुष-स्त्री सभी के लिए उन्मुक्त कर दिया था। उनके शिष्यों में कबीर जुलाहा, धना जाट, सेन नाई, पीपा क्षत्रिय, रैदास चमार तथा सुरसुरी और पद्मावती आदि स्त्रियाँ भी थीं। वैष्णव धर्म के इतिहास में यह एक घटना ही कही जायगी, क्योंकि रामानन्द के पूर्व के वैष्णव आचार्यों ने शुद्ध विचार की दृष्टि से तो भक्ति के क्षेत्र में किसी भी प्रकार के बन्धन को स्वीकार नहीं किया था (स्वयं आलवार संतों में अनेक शूद्र भी थे), किन्तु व्यवहार के क्षेत्र में उन्होंने खान-पान छुआ-छूत सम्बन्धी समस्त आचार-विचार को प्रधानता दी थी। रामानुज प्रपत्ति के क्षेत्र में जातिगत, कुलगत अथवा वर्णगत बन्धन को नहीं मानते थे, किन्तु उनके सम्प्रदाय में खान-पान सम्बन्धी अनेक बन्धन स्वीकार किए गए, जो इस बात के प्रमाण हैं कि स्वयं रामानुजाचार्य भी अपने उपदेशों के तर्क को पूर्णतया स्वीकार नहीं कर सके थे।[1] रामानन्द का महत्व इस दृष्टि से और भी अधिक बढ़ जाता है कि उनसे प्रेरणा पाकर उनके शिष्यों ने हिन्दी भाषा को ही अपने भाव-प्रकाशन का माध्यम बनाया, जिसके फलस्वरूप मध्य-युगीन उत्तर भारत में एक अद्भुत जनजागृति आ गई। रामानन्द के पश्चात् भी उनके सम्प्रदाय को जनता का इतना अधिक बल प्राप्त हुआ कि उत्तरभारत के लगभग समस्त वैष्णव-सम्प्रदायों में रामानन्द-सम्प्रदाय सबसे अधिक सुसंगठित एवं जनप्रिय हो गया। फिर भी रामानन्द स्वामी का उचित मूल्यांकन करने के लिए वैष्णव-धर्म के विकास की संक्षिप्त रूपरेखा सम्मुख होनी आवश्यक है।

१—इण्डियन फ़िलासफी-राधाकृष्णन्, पृ० ७०८-९।

वैष्णव धर्म का विकास

विद्वानों का मत है कि विष्णुभक्ति का मूल रूप वैदिक काल में ही मिल जाता है।[१] कुछ ऋचाओं में 'विष्णुलोक के प्रति कामना', 'विष्णु की कृपा के लिए प्रार्थना' जैसी भावनाएँ भी व्यक्त की गई हैं।[२] कुछ अन्य विद्वानों ने नवधा-भक्ति, ब्रह्म के नराकार रूप तथा अवतारवाद के कुछ संकेत भी वेदों में पाए हैं।[३] वहाँ विष्णु की शक्तियों का उल्लेख करते हुए उन्हें त्रिविक्रम कहा गया है। वामनावतार का मूल यही कल्पना है।[४] उन्हें सूर्यदेवता भी कहा गया है।[५] भग की कल्पना-शुभाशीर्वादों का प्रदाता-भी वेदों में मिलती है, जो आगे चल कर भगवान् या भगवत् को परमोपास्य मानने वाले भागवत धर्म का आधार बनी[६]। विष्णु वैदिक-युग के एक प्रधान देवता हैं।

उपनिषत्काल में ब्रह्म के निर्गुण-सगुण रूप की विवेचना अधिक हुई, किन्तु, निर्गुण की अपेक्षा सगुण का महत्व क्रमशः बढ़ता गया। विष्णु में मानवता के गुणों का आरोप हुआ और उन्हें चरम प्राप्य माना गया। उनकी प्राप्ति के लिए अहिंसात्मक यज्ञों का भी विधान हुआ।[७] **'बाल्मीकीय' रामायण** में अवतारवाद की पूरी प्रतिष्ठा हो गई, यद्यपि विद्वानों के मत से यह अंश उसमें बाद में जोड़ा गया। **'महाभारत'** के पांचरात्र मत में वैष्णव-धर्म की निश्चित् रूपरेखा बन जाती है।[८] सर आर० जी० भण्डारकर के मत से ईसा से ३००-४०० वर्ष पूर्व वासुदेव नामक देवता की उपासना का प्रचार था और इस धर्म के अनुयायी भागवत कहे जाते थे।[९] विदेशियों ने भी इस धर्म को अपनाया था। यूनानी राजा एन्टिअलकिडास के राजदूत हेलियोडोरस को 'परम भागवतो हेलियोडोरस' कह कर पुकारा जाता था।[१०]

१—वही, पृ० ६६७ तथा 'भागवत-संप्रदाय'-बलदेव उपाध्याय, पृ० ५१-८७

२—'वैष्णव धर्म का विकास और विस्तार', कृष्णदत्त भारद्वाज, एम०ए०, कल्याण, वर्ष १६ अंक ४, पं० नंददुलारे वाजपेयी द्वारा 'महाकवि सूरदास' ग्रंथ में पृ० २ पर उद्धृत।

३—वही, पृ० ३।

४—भारतीय संस्कृति-शिवदत्त ज्ञानी, पृ० २०७।

५—इण्डियन फ़िलासफ़ी-राधाकृष्णन्, पृ० ६६७।

६—वही, पृ० ६६७।

७—वैष्णव धर्म का विकास और विस्तार, कृ० द० भारद्वाज, कल्याण, वर्ष १६, अंक ४।

८—इंडियन फ़िलासफ़ी, पृ० ६६७।

९—वैष्णविज्म आदि-भण्डारकर, पृ० ६।

१०—भारतीय संस्कृति, शिवदत्त ज्ञानी, पृ० २३६—बेसनगर शिलालेख।

नारायणीय सम्प्रदाय

भण्डारकर ने 'महाभारत' के वैष्णव-सम्प्रदायों के सम्बन्ध में विस्तृत सूचनाएँ भी दी हैं।[१] 'शान्तिपर्व' के अन्तर्गत नारायणीय-अंश से पता चलता है कि मेरु पर्वत पर सर्वप्रथम इस धर्म का उद्घाटन हुआ, स्वायम्भुव से इस शास्त्र की उत्पत्ति हुई और भगवान् की उपस्थिति में इसका प्रख्यापन हुआ। भगवान् के अन्तर्धान हो जाने पर चित्र-शिखण्डियों ने इस धर्म का प्रचार किया। कालांतर में यह धर्म बृहस्पति को मिला और बृहस्पति से पुनः वसुउपरिचर को। इसी अंश में वासुदेव धर्म के मूल तत्वों का विवेचन भी किया गया है। वासुदेव को 'सभी आत्माओं का अन्तरात्मा और सबका स्रष्टा' कहा गया है। संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध को क्रमशः जीवों का प्रतिनिधि, मस्तिष्क और आत्मज्ञान का प्रतीक माना गया है और कहा गया है कि ये सब आदिशक्ति के ही रूप हैं। वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण आदि वासुदेव के ही अवतार कहे गए हैं।

भौतिक पापों के नष्ट हो जाने पर जीव अनिरुद्ध रूप में प्रवेश करता है और फिर मस्तिष्क बन कर प्रद्युम्न रूप में, उसके पश्चात् वह संकर्षण रूप में प्रवेश करता है और फिर त्रिगुणों से युक्त होकर परमात्मा वासुदेव में। कहा गया है कि यह वही धर्म है जिसका उपदेश वासुदेव से नारद को मिला, 'हरिगीता' में जिसका निर्देश किया गया है और कृष्ण ने जिसका उपदेश अर्जुन को किया था। इस धर्म का मूल है 'अहिंसा'। वसुउपरिचर के यज्ञ में आरण्यक-प्रणाली का अनुसरण करते हुए पशुबलि भी नहीं दी गई थी।[२] अतः स्पष्ट है कि यह धर्म बौद्ध और जैन धर्मों की ही भाँति एक सुधार-आन्दोलन था, यद्यपि इसकी पूरी आस्था आरण्यकों एवं परमात्मा में थी। आगे चलकर सात्वतों ने इस धर्म को अपना लिया।

नारायणीय-अंश से यह भी स्पष्ट है कि पहले वासुदेव और उनके चतुर्व्यूहों की उपासना अज्ञात थी। परमात्मा को 'हरि' कहा गया और यज्ञों से पूजापद्धति एकदम मुक्त नहीं रही। कालान्तर में वासुदेव ने भगवद्गीता में वैष्णव-धर्म को एक निश्चित् रूप दिया। उन्होंने एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय ही चला दिया। उनके भाई, पुत्र-पौत्रादि ने भी इसमें सहयोग दिया और वे परमात्मा के रूप तथा विभिन्न मनोवैज्ञानिक स्तरों के प्रतीक कहे गए। सात्वत जाति ने आगे चलकर इस धर्म को पूर्णतया अपना लिया।

१—वैष्णविज्म आदि, भंडारकर, पृ० ६-११।

२—संभूताः सवसंभारास्तस्मिन् राजन् महाक्रतौ।
न तत्र पशुघातोऽभूत् स राजैवं स्थितोऽभवत्॥ (शांतिपर्व ३३६। १०)

सात्वत-धर्म

महाभारत, विष्णुपुराण, भागवत तथा पातंजल 'महाभाष्य' के अनेक प्रमाणों द्वारा भण्डारकर ने सिद्ध किया है कि 'वृष्णि जाति' का ही दूसरा नाम सात्वत था; वासुदेव, संकर्षण, अनिरुद्ध और प्रद्युम्न आदि इस जाति के सदस्य थे। वासुदेव इनके प्रधान देवता थे। भण्डारकर के अनुसार इस वासुदेव धर्म के प्रवर्त्तक कदाचित् वासुदेव नाम के कोई आचार्य रहे होंगे। 'पातंजल महाभाष्य' और 'काशिका' में वासुदेव को वृष्णि-कुल का एक सदस्य कहा गया है। वेदों में भी कृष्ण ऋषि का नाम आया है जो कृष्णायन गोत्र के प्रवर्त्तक थे। संभवतः आगे चल कर वासुदेव से उनका तादात्म्य हो गया और इसी आधार पर उनका संबंध वृष्णि जाति से भी मान लिया गया। क्रमशः कृष्ण की सारी गरिमा वासुदेव में जोड़ दी गई। अन्य देवों से भी वासुदेव की अभिन्नता धीरे-धीरे स्थापित की गई और गोकुल-कृष्ण से भी उनका सम्बन्ध जोड़ा गया। सम्भवतः चतुर्व्यूहों की कल्पना बाद में की गई। भगवद्गीता में मस्तिष्क, बुद्धि, ज्ञान, अहंकार, जीव आदि वासुदेव की प्रकृतियों की व्याख्या की गई है। बाद में विद्वानों ने परमात्मा की इन प्रकृतियों को अनिरुद्धादि में साकार कर दिया। गीता में विराट्स्वरूप का वर्णन करते समय वासुदेव को विष्णु कहा गया है।

वासुदेव और नारायण में अभिन्नता

अनेक प्रमाणों से भण्डारकर ने यह सिद्ध किया है कि नारायण वासुदेव के पूर्ववर्ती थे। महाभारत काल में जब वासुदेव की पूजा का प्रचार हुआ, दोनों में अभिन्नता स्थापित की गई। 'महाभारत' के बन पर्व में अर्जुन और वासुदेव कृष्ण की समता नर-नारायण से की गई है।

वासुदेव और विष्णु

महाभारत-काल तक आते-आते विष्णु परमात्मपद तक पहुँच गए थे और इसी काल में, भण्डारकर के मत से, वासुदेव की उनसे अभिन्नता स्थापित की गई। 'भीष्मपर्व' में परमात्मा को नारायण और विष्णु के नाम से पुकारा गया है और उनकी अभिन्नता वासुदेव से की गई है। 'शान्तिपर्व' में भी युधिष्ठिर ने कृष्ण को विष्णु कह कर पुकारा है।

स्पष्ट है, वासुदेव को प्रधान देवता मानने वाला वासुदेव धर्म सात्वतों द्वारा स्वीकृत धर्म था, महाभारत काल में यह भारत की विभिन्न जातियों एवं प्रान्तों में प्रसरित था; पौराणिक युग में यह सैनिक धर्म न रहा और इसमें वैदिक देवता

विष्णु से बहने वाली धारा; नारायण—व्यापक तथा दार्शनिक ईश्वर—की धारा और वासुदेव—ऐतिहासिक देवता—की धारा आदि मिल गईं। इन तीनों ने मिल कर उत्तर वैष्णव-धर्म का निर्माण किया।

वासुदेव कृष्ण और गोपाल कृष्ण।

भण्डारकर के मत से इन धाराओं में एक और धारा आकर मिल गई, जिसने आधुनिक वैष्णव-धर्म को बहुत अधिक प्रभावित किया। वासुदेव कृष्ण और गोपाल कृष्ण में अभिन्नता भी कालान्तर में स्थापित हो गई। भण्डारकर के मत से आभीर जाति में बाल-ईश्वर की उपासना प्रचलित थी, कदाचित् 'क्राइस्ट' नाम का भी प्रयोग होता था। ईसा से लगभग २००-३०० वर्ष बाद उन्होंने उत्तर भारत में अपने राज्य स्थापित कर लिये थे। सम्भवतः 'क्राइस्ट' नाम के कारण वासुदेव कृष्ण का तादात्म्य बाल ईश्वर से हो गया। गोपियों की कथा बाद में आई होगी। सम्भवतः उनकी सुन्दर स्त्रियों को आर्यों ने पसन्द किया और गोपी-कृष्ण की लीलाएँ गढ़ दी गईं। किन्तु, भण्डारकर के इस मत से अनेक विद्वान् सहमत नहीं हैं। वे वैष्णव धर्म पर ईसाई प्रभाव सिद्ध करने की चेष्टा को अप्रामाणिक एवं असंगत समझते हैं। इनके तर्कों में पर्याप्त सार भी है।

भागवत-प्रणाली और उत्तरकालीन वैष्णव धर्म

ईसवी पूर्व प्रथम शताब्दी से लेकर चौथी शताब्दी ईसवी तक इस धर्म का कोई पता नहीं चलता। इसके पश्चात् ही गुप्त वंशी राजाओं को 'परम-भागवत' कहे जाने का उल्लेख मिलता है। उदयगिरि पर चतुर्भुज भगवान् की एक मूर्ति भी है जो कदाचित् विष्णु की ही है। इसका समय ४०० ई० है। गाज़ीपूर में भितरी नामक ग्राम में पाए गए एक स्तम्भ पर शार्ङ्गिन् की एक मूर्ति है, जिसका समय स्कन्द का शासनकाल है। शार्ङ्गिन् विष्णु ही थे। पर्णदत्त के पुत्र चक्रपालित ने ४५६ ई० में एक विष्णु-मन्दिर की स्थापना की थी, जिसके एक शिलालेख में वामन की प्रार्थना की गई है।

दक्षिण में वासुदेव-धर्म या वैष्णव-धर्म

आलवार भक्त—भागवत पुराण के अनुसार कलियुग में भक्ति द्रविड देश में ही पाई गई। भागवत की रचना अधिक से अधिक आनन्दतीर्थ से २०० वर्ष पूर्व हुई होगी। अतः द्राविड संत भी ११वीं शताब्दी के पूर्व हो चुके होंगे। कृष्णस्वामी आयंगर ने इन द्राविड भक्तों के नाम समय की दृष्टि से इस

प्रकार दिए हैं :—पोयगै आलवार, भूतत्तार, पेय आलवार, नम्मालवार (परांकुश मुनि) ,परि-आलवार, आण्डाल्, (रंगनायकी), तोण्डरडिप्पोलि (विप्रनारायण), तिरुप्पन आलवार, तिरुमड़िसै आलवार। संस्कृत में इन्हें सरोयोगिन्, भूतयोगिन्, महद्योगिन्, शठकोप, विष्णुचित्त, गोदा, भक्तांघ्रिरेणु, योगवाहन और परकालालवार (भक्तिसार) आदि नामों से पुकारा गया है। इनके अतिरिक्त मधुर-कवि और कुलशेखर दो अन्य प्रसिद्ध आलवार भी हो गए हैं। परम्परा से प्रथम आलवार का समय ४२०३ ई० पू०—२७०६ ई० पू० माना गया है, पर यह नितान्त काल्पनिक है। भण्डारकर के मत से प्रथम आलवार का समय ईसा की ५ वीं या ६ वीं शताब्दी था।

आलवारों की विचारधारा

आलवारों के गीत 'प्रबन्धम्' में संग्रहीत किए गए हैं। शठकोप के गीतों का संग्रह 'सहस्र गीति' नाम से किया गया है। इन आलवारों ने विष्णु या नारायण को ही अपना आराध्य माना था। डॉ० राधाकृष्णन् के मत से इन आलवारों ने ईश्वर को प्रेमी मान कर उपासना की है। नम्मालवार ने लिखा है—'ओ स्वर्ग के महत्वपूर्ण प्रकाश, तुम मेरे हृदय में हो और मेरे आत्मा का भोग कर रहे हो। मैं तुमसे कब एक हो जाऊँगा ?'[१] डॉ० दीनदयालु गुप्त के मत से "आलवार भक्त सांसारिक विषयों को अनित्य कहते थे। उनका विचार था कि भक्ति के साधन और प्रपत्ति-पूर्ण आत्मसमर्पण-द्वारा संसार के आवागमन से मुक्ति तथा विष्णु भगवान् का सम्मिलन मिलता है। वे केवल विष्णु के ही उपासक ऐकांतिक धर्म को माननेवाले थे। वे विष्णु को वासुदेव, नारायण, भगवद्, पुरुष आदि नामों से भी पुकारते थे। उनके मतानुसार भगवान् विष्णु नित्य, अनन्त और अखण्ड हैं, वे सत्-चित् और आनन्दस्वरूप हैं, और जीवों पर कृपा कर, अवतार भी लेते हैं। परन्तु अवतार लेने पर भी उनकी अनन्त, अनादि और सतत सत्ता ज्यों की त्यों रहती है। वे मूर्ति रूप में भी अवतार लेते हैं। राम और कृष्ण उन्हीं के रूप हैं। कृष्ण की आनन्द क्रीड़ाओं के रूप में वह विष्णु जीवों को आनन्द दान देता है। गोपियों के साथ की लीलाओं द्वारा वह पूर्णानन्द की अनुभूति कराता है। आलवार भक्त विष्णु तथा उसके अवतार कृष्ण और राम की भक्ति वात्सल्य, दास्य तथा कांता-भाव से करते थे, जिन भावों पर उन्होंने अनेक गीत लिखे हैं। उनके विचारानुसार भगवद्भक्तों की सेवा भी भगवान् की सेवा का एक अंग है। भक्ति के अन्तर्गत प्रपत्ति को उन्होंने

१—राधाकृष्णन्—इण्डियन फ़िलासफ़ी, पृ० ७०८

बड़ा स्थान दिया था। उनका विश्वास था कि विष्णु भगवान् की कृपा, उनके प्रति प्रेम और आत्मसमर्पण से मिलती है। सबसे बड़ी बात इस धर्म की यह थी कि आलवारों का यह धर्म सभी जाति और सभी श्रेणी के मनुष्यों के लिये खुला हुआ था।"[1] भागवत-सम्प्रदाय का मूलाधार 'पाँचरात्र संहिताएँ' हैं। शंकराचार्य ने इनकी उपासना पद्धति के पाँच भेद बतलाए हैं—१—अभिगमन–मनसा, वाचा, कर्मणा आराध्य में केन्द्रित होकर उसके मंदिर में जाना। २—उपादान—पूजा के लिए सामग्री एकत्रित करना। ३—इज्या—पूजा। ४—स्वाध्याय–मंत्रोच्चार ५—योग—साधना, ध्यान आदि। 'ज्ञानामृतसार' में स्मरण, नामोच्चार, नमस्कार, पादसेवन, भक्ति से पूजा और आत्मसमर्पण 'हरिपूजा' के ६ प्रकार कहे गए हैं। 'भागवत पुराण' में श्रवण, सेवा और सख्य तीन और जोड़े गए।

दक्षिण के आचार्य

आलवारों के उपरान्त दक्षिण भारत में कुछ आचार्य हुए, जिन्होंने आलवारों के 'प्रबन्धम्' में व्यक्त विचारों का प्रतिपादन वेद, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, गीता आदि के प्रमाणों से किया। ऐसे आचार्यों में नाथमुनि प्रथम (८२४ई०-९२४ई०) थे। उनके पश्चात् इस धर्म में पुण्डरीकाक्ष, राममिश्र तथा यामुनाचार्य तीन प्रसिद्ध प्रचारक हुए। यामुन के आदेश से ही रामानुजाचार्य ने महर्षि वादरायण के 'ब्रह्मसूत्र' पर अपनी टीका लिखी थी। यादवप्रकाश ने इस दिशा में उनका मार्ग प्रशस्त कर दिया था। रामानन्द-सम्प्रदाय की दार्शनिक चिन्ताधारा को रामानुज के विशिष्टाद्वैत दर्शन ने पूर्णतया प्रभावित किया है, अतः उसका विशद विवेचन यहाँ आवश्यक सा प्रतीत होता है।

रामानुजाचार्य के दार्शनिक सिद्धान्त[2]

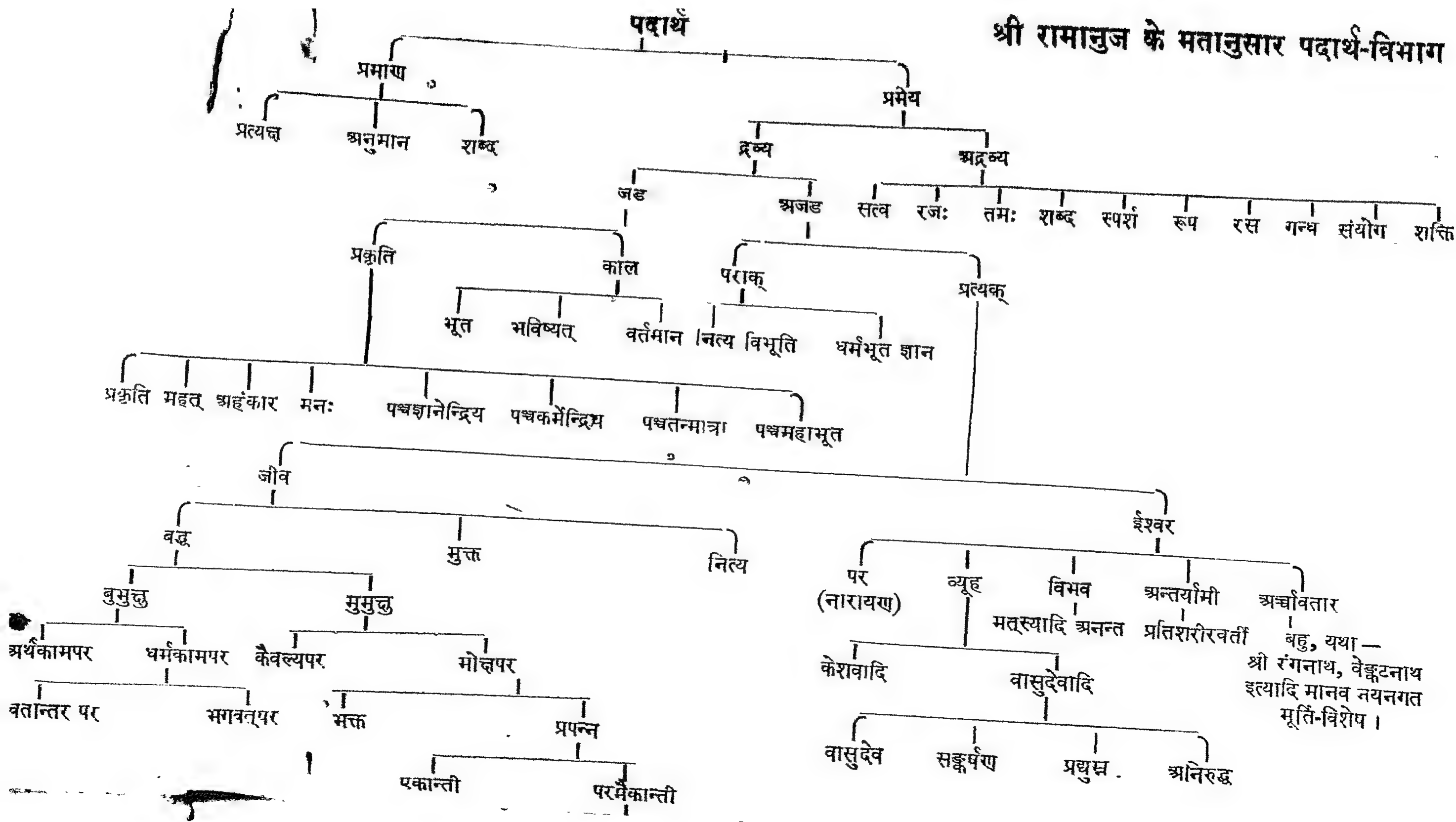
ब्रह्म—रामानुज के अनुसार ब्रह्म स्वगतभेद से चिदचिद्विशिष्ट है। सत्, चित् और आनन्द उसके तीन प्रमुख गुण हैं, जो उसे एक रूप तथा एक व्यक्तित्व प्रदान करते हैं। ब्रह्म सर्वज्ञ है। उसका ज्ञान इंद्रियाधीन नहीं है। ईश्वर का व्यक्तित्व अपने आप में पूर्ण है, मनुष्य केवल अपूर्ण रीति से ही व्यक्ति है। व्यक्तियों के लिए आवश्यक विभिन्नताएँ ब्रह्म के स्वगत ही हैं।

ब्रह्म ज्ञान, शक्ति और करुणा का समुद्र है। करुणावश उसने जगत् की सृष्टि की है, नियमों का विधान किया है, और इसी के कारण वह पूर्णत्व-कामी मानवों की सहायता करता है। परस्पर भिन्न होते हुए भी ये गुण एक

[1] -अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त; भाग १, पृ० ३८।

[2] -इण्डियन फ़िलासफ़ी-वालूम २, पृ० ६८२-७१२—ले० डॉ० राधाकृष्णन्।

श्री रामानुज के मतानुसार पदार्थ-विभाग



ही सत्ता के अधीन हैं और एकत्व को विभक्त नहीं करते। ये गुण भावमय हैं तथा चित् और अचित् आदि परमेश्वर के विशेषणों से भिन्न हैं। ईश्वर का निर्माण न तो प्रकृति से हुआ है और न वह कर्माधीन ही है, न तो वह प्राण-शरीर है और न सुख-दुःख आदि-अनुभव ही है। इह लोक तथा परलोक के उपभोगों का प्रदाता ईश्वर ही है। ब्रह्म रूप आकार-हीन है, चित् की व्यथा और अचित् के विकार से वह प्रभावित नहीं होता।

चित् और अचित् ब्रह्म से उसी प्रकार सम्बद्ध हैं, जिस प्रकार किसी पदार्थ से उसके गुण अथवा किसी वस्तु से उसका अंश या आत्मा से शरीर। ब्रह्म प्रकारि, नियन्ता और शेषी है; चिदचित् प्रकार, नियाम्य और शेष हैं। नित्य एवं वास्तविक होते हुए भी ये अपने विकास में ब्रह्माधीन हैं। जगत् ब्रह्म से ही अपनी सत्ता प्राप्त करता है और उसकी इच्छा का अनुचर है। ईश्वर से सम्बद्ध होने पर भी जीव और जगत् की अपनी प्रवृत्तियाँ, शक्ति और क्रियाएँ आदि होती हैं।

स्वरूप भेद के कारण चित् अर्थात् भोक्ता, अचित् अर्थात् भोग्य और ईश्वर अर्थात् प्रेरक (सर्वान्तर्यामी) वस्तुतः तीन हैं, किन्तु प्रकार और प्रकारि ऐक्य के कारण वे एक ही है।

ब्रह्म ही जगत् का कर्त्ता, पालक और लय कर्ता है। वह कारणों से परे है, ससार की अपूर्णताओं से अस्पृश्य है। रामानुज ने परमात्मा को 'विष्णु' नाम से अभिहित किया है। शिव तथा ब्रह्मा भी विष्णु ही हैं।

श्रुतियों में ब्रह्म को जहाँ 'निर्गुण' कहा गया है, वहाँ वस्तुतः उसमें 'प्राकृत हेय गुणों' का ही अभाव कहा गया है। (निर्गुणवादश्च परस्य ब्रह्मणो हेय गुण सम्बन्धादुपपद्यते—श्री भाष्य पृ० ८३) 'तत्वमसि' की व्याख्या करते हुए रामानुज ने कहा है कि वस्तुतः ईश्वर और जीव दो भिन्न सत्ताएँ हैं, फिर भी ब्रह्म और जीव में शरीर-आत्मा तथा विशेष्य-विशेषण सम्बन्ध है। ईश्वर वस्तुतः सर्वान्तरात्मा है। विशेषणों से युक्त अद्वैत ब्रह्म की कल्पना के कारण ही इस मत का विशिष्टाद्वैत नामकरण हुआ।

ब्रह्म पाँच रूपों में प्रकट होता है—१—अर्चा-मूर्तिरूप। २—विभव-अवतारादि। ३—व्यूह-संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। ४—अन्तर्यामी-अन्तःकरण का प्रेरक रूप। ५—पर-नारायण रूप (तत्त्वत्रय पृ० १२२—१४१) नारायण का निवास-स्थान बैकुण्ठ है; वे शेष-पर्यंक पर शयन करते हैं; लक्ष्मी, भू और लीला उनकी चरणसेवा करती हैं; लक्ष्मी ब्रह्म की क्रिया-शक्ति हैं, वही

पुरुषकार-रूपा हैं। ब्रह्म न्याय और लक्ष्मी क्षमा के प्रतीक हैं। लक्ष्मी के क्रिया और भूति (विकास) नामक दो रूप हैं।

ब्रह्म ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति और तेज आदि षडैश्वर्य युक्त है। वासुदेव में ये छहों ऐश्वर्य हैं; शेष तीन विभवों में केवल दो-दो ऐश्वर्य ही मिलते हैं। संकर्षण व्यक्तिगत आत्मा के, प्रद्युम्न मस्तिष्क के और अनिरुद्ध अहंकार के नियन्ता हैं। ब्रह्म के अवतार रूप के दो भेद हैं। **मुख्यावतार** तब होता है जब स्वयं विष्णु ही अवतरित होते हैं, जब व्यक्तिगत आत्मा आवेश में आ जाता है, तब **गौण अवतार** होता है।

इस सम्प्रदाय के परमोपास्य लक्ष्मी-नारायण हैं। नारायण का विग्रह सदा एक रस, अचिन्त्य, दिव्य, अद्भुत, नित्य, निर्मल, उज्ज्वल, सुगंधित, सुन्दर, सुकुमार, लावण्य और यौवनादि गुणों से युक्त है।

जीव—रामानुज के मत से जीव सत्, अचिंत्य, नित्य, ज्ञानाश्रय, निरवयव, निर्विकार, अव्यक्त और अणु है (तत्वत्रय, पृ० ५)। यह शरीर, इंद्रिय, मन, प्राण एवं बुद्धि से विलक्षण है; यह कर्ता, भोक्ता एवं ज्ञाता है। मानवीय स्तर पर यह स्थूल शरीर, प्राण, पंचज्ञानेन्द्रियों और पंच कर्मेन्द्रियों तथा मन से सम्बद्ध है। मन की अध्यवसाय, अभिमान और चिन्ता आदि तीन क्रियाएँ हैं। अणु जीव हृत्पिण्ड में निवास करता है; निद्रावस्था में यह वहीं विश्राम करता है, निद्रा आत्मा की चिरन्तरता में कोई बाधा नहीं उत्पन्न करती। अणुजीव अपने ज्ञान के संकोच एवं विस्तार की शक्ति से सुख-दुःख की अनुभूति उसी प्रकार करता है जिस प्रकार संकोच एवं विस्तार गुण वाली दीपशिखा अपने प्रकाश से बहुत सी वस्तुओं को प्रकाशित कर देती है। स्थान और समय की दृष्टि से दूरस्थ वस्तुओं का ज्ञान भी आत्मा के लिए सम्भव है। यह ज्ञान नित्य एवं निरपेक्ष है, सम्पूर्ण वस्तुओं में व्याप्त एवं सत्य है। पूर्व जन्म के कर्मानुसार यह ज्ञान सीमित हो जाता है।

आत्मा अनेक है। मुक्ति मिलने की अवस्था के पूर्व तक यह प्रकृति से बँधा रहता है। प्रकृति जीव का वाहन है, जिस प्रकार अश्व मनुष्य का। शरीर-बन्धन के कारण आत्मा ब्रह्म से अपना सम्बन्ध जोड़ नहीं पाता है। जीवन और मृत्यु के क्रमों में आत्मा अपरिवर्तित ही बना रहता है। प्रलयावस्था में आत्मा के विशेष रूपों का नाश हो जाता है, यद्यपि वह स्वयं अविनाशी है। फिर भी, जीव के पूर्व कृत कर्मों का विनाश नहीं होता और ज्यों ही सृष्टि प्रारम्भ होती है, वह अपनी-अपनी शक्तियों से विशिष्ट होकर जगत् में आ जाता है; जीव का ज्ञान वर्तमान तक ही सीमित है, अतः वह अपने भूत को देख नहीं सकता।

अहंकार जीव की स्वाभाविक विशेषता है। बन्धन और मुक्ति की अवस्था

में जीव ज्ञातास्वरूप ही बना रहता है। आत्मा क्रियाशील है, किन्तु जब तक कर्म द्वारा वह शरीर से सम्बद्ध है, तब तक उसके कर्म निर्धारित ही रहते हैं, शरीर से मुक्त होने पर वह संकल्प से ही अपनी भावनाओं को जान लेता है।

जीव और ईश्वर अभिन्न नहीं हैं। जीव ब्रह्मांश अवश्य है, किन्तु यह ब्रह्म से निकला हुआ एक भाग नहीं है, क्योंकि ब्रह्म अविभाज्य तथा अखंड है। यह ब्रह्म का परिणाम है, क्योंकि यह ब्रह्म से परे नहीं रह सकता, फिर भी आकाशादि की भाँति उत्पन्न परिणाम नहीं है। आत्मा की स्वाभाविक वृत्ति अपरिवर्तनीय है, किन्तु जिन परिवर्तनों से आकाशादि की उत्पत्ति होती है वे 'स्वरूपान्यथाभाव-लक्षण' हैं। दुःख आत्मा की ही प्रकृति है, ईश्वर की नहीं।

ईश्वर के अन्तः स्थित होने के फलस्वरूप जीव का इच्छा-स्वातन्त्र्य नष्ट नहीं हो जाता है, यद्यपि जीवात्मा का प्रयास-मात्र क्रियाशीलता के लिये आवश्यक नहीं है, विश्वात्मा का सहयोग भी आवश्यक है। केवलमात्र ईश्वर ही प्रकृति और कर्म के बन्धनों से मुक्त है। ईश्वर की सर्वप्रमुख विशेषता है शेषित्व; जीव उसका शेष है। रामानुजाचार्य के अनुसार जीवों के नित्य, मुक्त और बद्ध तीन भेद हैं। **नित्य** जीव कर्म और प्रकृति से मुक्त होकर आनन्दोपभोग करते हुए बैकुण्ठ में निवास करते हैं। **मुक्त जीव** उन्हें कहते हैं, जो अपनी बुद्धि, पुण्य और भक्ति के बल पर मुक्ति-लाभ करते हैं। **बद्ध जीव** वे हैं जो अपने अज्ञान एवं स्वार्थ के कारण संसार में ही भ्रमण करते-रहते हैं। बद्ध जीवों के बुभुक्षु और मुमुक्षु दो प्रमुख भेद हैं। ये चार प्रकार के होते हैं—दिव्य, मनुष्य, पशु और स्थावर।

मृत्यु के उपरान्त मुक्त देवयान से और पुण्यात्मा पितृयान से जाते हैं; किन्तु, दुष्ट चन्द्रलोक जाने के पूर्व ही पृथ्वी को लौट आते हैं। जीवों को ईश्वर के दूत ऊपर ले जाते हैं। रामानुज इस सम्बन्ध में मौन हैं कि जीव कर्मबद्ध कब से हुआ। उनके मत से सृष्टि अनादि है, अतः इस प्रश्न का उत्तर देना सहज सम्भव नहीं है।

प्रकृति-अचित्- प्रकृति, काल तथा शुद्ध सत्व ये तीन अचेतन पदार्थ हैं। वे अपरिवर्तनशील हैं और मनुष्य के प्रति उदासीन रहते हैं। प्रकृति न तो दृश्य है और न अनुमान का विषय, उसका ज्ञान धर्म ग्रन्थों से होता है। वह सत्, रज और तम गुणों से सृष्टि करती है। प्रलय में अचित्तत्व रूप-नाम-विभेद रहित होकर सूक्ष्मावस्था में रहता है और उसे तमस् कहते हैं। अचित्तत्व अज है, यद्यपि उसके रूप अगोचर और गोचर हुआ करते हैं।

सृष्टि-क्रम इस प्रकार है—तमस्—महत्—अहंकार—भूतादि। सात्विक अहंकार से एकादश इंद्रियाँ और तामस अहंकार से पंच तन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं; राजस अहंकार इन दोनों प्रक्रियाओं में सहायक होता है; अहंकार से सूक्ष्म शब्द फिर आकाश-स्पर्श-वायु आदि की उत्पत्ति होती है। ध्वनि सभी तत्वों में वर्तमान है। स्पर्श के ऊष्ण, शीत और सम आदि तीन भेद हैं। प्राण इन्द्रिय नहीं, वायु की अवस्था विशेष है। सांख्य के विपरीत विशिष्टाद्वैत का मत है कि प्रकृति ईश्वर द्वारा उत्पन्न तथा अनुप्राणित है।

काल—यह समस्त सत्ताओं का मूल है, यह दृश्य भी है। दिन, मास, वर्ष आदि का आधार यही है।

शुद्ध सत्व—नित्य विभूति रूप में ईश्वर का शरीर शुद्ध सत्व से बना है। प्रकृति की सहायता से ईश्वर लीला-विभूति रूप को प्राप्त होता है। ये सभी अचेतन पदार्थ ईश्वरेच्छानुगामी हैं। स्वयं भले या बुरे नहीं, कर्मानुसार ही ये जीव के सुख-दुःख के कारण होते हैं। कर्म और अविद्या से युक्त जीवों के लिए यह संसार ही आनन्द का क्षेत्र है। ईश्वर चित् से अधिक और अचित् से कम सम्बद्ध है, क्योंकि अचित् चित् से भी अनुशासित होता है।

सृष्टि—प्रलयावस्था में ब्रह्म 'कारणावस्था' में रहता है, चित् और अचित् सूक्ष्मावस्था में रहते हैं। अचित् अव्यक्त और चित् संकुचित रहता है। ब्रह्म की इच्छा से जब सृष्टि का प्रारम्भ होता है, सूक्ष्म अचित् स्थूल हो जाता है और आत्मा स्वपूर्वकर्मसंचित गुणावगुणों के आधार पर शरीर धारण करता है। परिवर्तन की इस अवस्था में ब्रह्म 'कार्यावस्था' में स्थित कहा जाता है। वस्तुतः सृष्टि और प्रलय एक ही कारण ब्रह्म की विभिन्न अवस्थाओं के द्योतक हैं। कारणावस्था में आत्मा अव्यक्त रहता है और अचित् शांत-स्थिर। आत्मा को स्वकर्मानुसार फलोपभोग देने के लिए भी सृष्टि होती है। रामानुज के अनुसार ईश्वर सृष्टि और प्रलय के कारण चिदचित् में उत्पन्न विकारों से प्रभावित नहीं होता। शुद्धसृष्टि में, पांचरात्रानुसार, ईश्वर के षडैश्वर्य की अभिव्यक्ति होती है और इन्हीं गुणों से वासुदेव तथा लक्ष्मी के शरीर का निर्माण होता है; विभव, व्यूह और बैकुण्ठ आदि भी शुद्धसृष्टि के अंग हैं। सृष्टि ईश्वर की लीलामात्र है, प्रकृति और जीव ईश्वर की क्रीड़ा के साधन हैं।

रामानुज ने शंकर के मायावाद का जम कर खण्डन भी किया है।

साधन-मार्ग—संसार में आने पर कर्म और अविद्या के प्रभाव से जीव अपने को शरीर ही समझने लगता है, किन्तु ईश्वर के हृत्स्थ होने के कारण वह

अपने पाप का अनुभव भी करता है, और ईश्वर से अपनी सहायता करने की प्रार्थना करता है। किन्तु, मोक्ष ज्ञान और कर्म द्वारा नहीं, भक्ति द्वारा ही सम्भव है। भक्ति परमात्मा के सतत चिन्तन एवं ईश्वर के पूर्णज्ञान की ओर पहुँचने को कहते हैं। ज्ञान और कर्म इस भक्ति के साधनमात्र हैं, जो हमारे स्वार्थ का समूलोच्छेदन कर हमारी इच्छा शक्ति को नया बल, हमारी चेतना को नई शक्ति और हमारे आत्मा को नई शांति प्रदान करते हैं।

भक्ति केवल भावावेश मात्र नहीं है, यह ईश्वरीय ज्ञान होने के साथ ही भगवान् की इच्छा का पालन भी है। मस्तिष्क और हृदय से ईश्वर के प्रति अनुराग इसका प्राण है और परमेश्वर का साक्षात्कार इसका परिणाम है। भक्ति के लिए विवेक-भोजन सम्बन्धी आचार-विचार तथा छुआ-छूत आदि का पालन; विमोक—ईश्वर की कामना तथा अन्य वस्तुओं से विराग; अभ्यास—भगवान् का निरन्तर चिन्तन; क्रिया—परउपकार; कल्याण—दूसरों की भलाई की कामना; सत्य, आर्जव, दया, अहिंसा, दान, और अनवसाद आदि रामानुज के मत से अत्यन्तावश्यक हैं।

भक्ति अपने में ही फलस्वरूप होने से अन्य सभी साधनों से श्रेष्ठ मानी गई है। भक्ति के प्रत्येक स्तर पर हम अपने को पूर्ण बनाते चलते हैं। इस प्रकार भक्ति और मोक्ष में अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध हो जाता है। भक्ति के दो भेद माने गए हैं:—(१) वैधी—प्रार्थना, उत्सव, मूर्ति-पूजा आदि। यह निम्नस्तर की भक्ति है; (२) मुख्या—केवल भक्ति के लिए भक्ति, इसमें स्वार्थ के लिए स्थान नहीं रहता।

रामानुज के मत से प्रपत्ति—भगवान् के प्रति अनन्य शरणागति—का द्वार सभी के लिए उन्मुक्त है, कर्म और ज्ञान का मार्ग केवल द्विजातियों के लिए है। फिर भी परम्पराओं से बहुत अधिक प्रभावित होने के कारण रामानुज ने प्रपत्ति का अधिकार द्विजातियों को तो इसी जन्म में दे दिया, किन्तु शूद्रों तथा स्त्रियों को उनका आदेश था कि वे अगले जन्म में भक्ति पाने के लिए प्रयास करें। रामानुज-सम्प्रदाय (लोकाचार्य) के टेंकलै (तिंगल)—दक्षिण शाखा—के अनुसार केवल प्रपत्ति ही मोक्ष का मार्ग है। अपने शरणागत की रक्षा ईश्वर मार्जार की भाँति करता है जो अपने शिशु को अपने मुँह में दबाए रहती है। यह मत आलवारों की विचारधारा के अधिक निकट है। बड़कलै (बड़गल) शाखा (वेदान्त देशिक)के अनुसार प्रपत्ति ईश्वर के पाने का एक मार्ग विशेष है, केवल वही एक मात्र मार्ग नहीं। जिस प्रकार बन्दर का छोटा बच्चा कुछ प्रयास करने पर ही माँ से

चिपका रहता है उसी प्रकार कर्म, ज्ञान, भक्ति और प्रपत्ति द्वारा जो अपने को योग्य बना लेता है, वही ईश्वर की कृपा का अधिकारी होता है।

वैष्णव-भक्ति में ईश्वर को गुरु, मित्र, पिता, माँ, पुत्र और प्रियतम माना गया है।

मोक्ष—रामानुज के अनुसार मोक्ष आत्मा का अदृश्य हो जाना नहीं, सीमा के बन्धनों से ऊपर उठ जाना है। मुक्तात्मा ईश्वर रूप (समान) हो सकता है, ईश्वर नहीं। मुक्तावस्था में आत्मा की स्वाभाविक प्रज्ञा और आनन्द की अभिव्यक्ति होती है, कर्म-बन्धन-हीन होने से वह स्वराट् है। मुक्त संसार में पुनः लौट कर नहीं आते। रामानुज जीवन्मुक्त होने में विश्वास नहीं रखते। भौतिक शरीर का परित्याग कर और कर्म-बन्धन से रहित होकर जीव ईश्वर का साहचर्य प्राप्त करता है। मुक्तावस्था में देवता, मनुष्यादि जैसा कोई भेद नहीं रहता, सभी आत्माओं को समानता प्राप्त हो जाती है।

मुक्तजीव ईश्वर की समस्त विभूतियों तथा पूर्णताओं (सर्वज्ञत्व तथा सत्य संकल्पत्व) से संपन्न हो जाता है; अन्तर केवल दो बातों का रहता है—१—आत्मा आकार में अणु ही बना रहता है, २—सृष्टिकार्य में उसका कोई अधिकार नहीं रहता (जगद्व्यापार वर्जम् ४।४।१७ पर श्री भाष्य)। ब्रह्म सर्वव्यापी है और सृष्टि-कार्य में उसका एकाधिकार है। ब्रह्मलोक में जीव विशुद्ध सत्वमय देह-युक्त होता है। इसी देह के माध्यम से वह अपनी इच्छा तथा विचारों को व्यक्त करता है। मुक्तजीवों के दो भेद माने गए हैं: १—शुद्धभक्त, जो यहाँ भगवान् की भक्ति में निरत होकर स्वर्ग में भी उनकी सेवा करना चाहते हैं। २—केवलिन्, जो अपने आत्मा के स्वरूप का सतत चिन्तन करते हुए मोक्ष-लाभ करते हैं।

रामानुज ने स्वर्ग में सकल सुखोपभोग एवं ऐश्वर्य-प्राप्ति की कल्पना की है।

रामानन्द स्वामी की समकालीन परिस्थितियाँ (१३००ई०–१५००ई० तक)

धार्मिक परिस्थिति—रामानन्द के समय तक इस्लाम का देश में पर्याप्त प्रचार हो गया था। इस धर्म के प्रचारकों को राज्याश्रय भी प्राप्त था। कभी-कभी तो स्वयं मुसलमान राजाओं ने ही तलवार की नोक पर इस धर्म का प्रचार किया। हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बनाया गया, उनके मन्दिर तोड़े गए और उनका सर्वस्व लूटा गया। हिन्दुओं ने भी अपने रक्षार्थ दबे रूप से आंदोलन कियां, किन्तु हमारा बुद्धिवादी वर्ग तथा हमारे भक्त-आचार्य इस धर्म से उदासीन ही रहे। उन्होंने इसका विरोध तक नहीं किया। इस काल तक 'मगध और

बंगाल को छोड़ कर भारत वर्ष के प्रायः सभी भागों में **बौद्ध-धर्म** नष्ट प्राय हो चुका था और वैदिक धर्म ने उसका स्थान ले लिया था।'[1] **जैन**-धर्म का प्रचार आन्ध्र, तामिल, कर्नाटक, राजपूताना, गुजरात, मालवा तथा बिहार और उड़ीसा के कुछ भागों में था। धीरे-धीरे दक्षिण में **शैवमत** प्रचारकों की शक्ति बढ़ती गई और बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी तक आते-आते सम्पूर्ण देश में—उड़ीसा में भी—यह धर्म क्षीण होता गया, किन्तु इसी समय जैन आचार्य हेमचन्द्र के प्रभाव से राजा जयसिंह और कुमारपाल ने इसकी उन्नति के लिए बहुत प्रयास किया, जिससे गुजरात, काठियावाड़, कच्छ, राजपूताना और मालवे में जैनधर्म का प्रचार बहुत हुआ। इन प्रदेशों के अतिरिक्त शेष भारत में जैन-धर्म का प्रचार नहीं के बराबर हुआ।[2] रामानन्द के समय तक शंकर के अद्वैत का खण्डन करके रामानुज ने शैवधर्म का भी प्रभाव बहुत कम कर दिया। उनसे प्रेरणा पाकर दाक्षिणात्य मध्व-निम्बार्कादि वैष्णवाचार्यों ने उत्तर भारत में भक्ति-सम्प्रदाय स्थापित किए। रामानन्द का सम्बन्ध दार्शनिक मतवाद की दृष्टि से रामानुज-सम्प्रदाय से ही रहा, किन्तु धीरे-धीरे उनके द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय में माधुर्य भाव का प्रवेश होने लगा और यह कृष्णभक्ति सम्प्रदायों से भी बहुत कुछ प्रभावित हुआ। इस दृष्टि से रामानन्द जी के कुछ आगे-पीछे के अन्य वैष्णव-सम्प्रदायों की विचारधारा का अध्ययन यहाँ आवश्यक प्रतीत होता है। ये वैष्णव-सम्प्रदाय निम्नलिखित हैं :—

१—निम्बार्क-सम्प्रदाय—निम्बार्क का समय ११६२ ई० के लगभग था।

२—मध्वाचार्य (समय ११९७ ई०-१२७६ ई०) का द्वैतवादी माध्व-सम्प्रदाय।

३—विष्णु स्वामी-सम्प्रदाय—वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैतवादी-सम्प्रदाय।

निम्बार्क-सम्प्रदाय[3]—निम्बार्क के मत से ब्रह्म, चित् (जीव) तथा अचित् (जड़) से भिन्न है, परन्तु चित् तथा अचित् दोनों ही तत्व ब्रह्मात्मक हैं। विभाग सहिष्णु अविभाग ही जीव, जगत् तथा ब्रह्म का परस्पर सम्बन्ध है। निम्बार्क के मत से ब्रह्म सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ तथा अच्युत विभवपूर्ण है। वह जगत् का निमित्त और उपादान दोनों ही कारण है। मकड़ी के तन्तु की भाँति ब्रह्म जगत् की सृष्टि करता है। निम्बार्क के मत से श्री कृष्ण ही परब्रह्म हैं (दशश्लोकी ४)।

१—मध्यकालीन भारतीय संस्कृति—गौरीशंकर हीराचन्द ओझा पृ० ५-६।

२—वही, पृ० ११।

३—'अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय', पृ० ४२-४६ तथा भारतीय दर्शन, बलदेव उपाध्याय पृ० ४६१-९४।

कृष्ण की शक्ति व्यक्त और अव्यक्त, अंश और अंशी रूप से व्याप्त है। अतः उसमें द्वैत नहीं है, पर उसके जीव-जगत् से विलक्षण होने से द्वैत भी है। कृष्ण अनन्त शक्ति, ऐश्वर्य और माधुर्य के आश्रय हैं। उनके ऐश्वर्य रूप की अधिष्ठात्री रमा, लक्ष्मी आदि और माधुर्य रूप की अधिष्ठात्री गोपियाँ तथा राधा हैं। ब्रज में कृष्ण द्विभुज और द्वारावती में चतुर्भुज हैं।

जीव—जीव अचित् से भिन्न, नित्य, ज्ञाता एवं अणुपरिमाण वाला है। शरीर-भेद से जीव भी भिन्न-भिन्न हैं। ईश्वर प्रेरक है, जीव प्रेर्यवान्; ईश्वर अंशी है, जीव अंश। जीव भगवान् का व्याप्य और उनके अधीन है। जीवों के तीन भेद किए गए हैं—१—**बद्धजीव**—माया-अविद्या-विवश जीव जब देहादि से अपना अभिन्न सम्बन्ध जोड़ लेता है, तब वह बद्ध कहा जाता है। २—**मुक्त जीव**—इस सम्प्रदाय में दो प्रकार की मुक्ति मानी गई है—क्रम-मुक्ति और सद्योमुक्ति। जो जीव अर्चनादि द्वारा प्राप्त स्वर्गादि भोगों का उपभोग करते हुए, प्रलय-प्राप्ति कर सायुज्य लाभ करते है, वे क्रममुक्ति पाते हैं, श्रवणादि द्वारा संसार के बन्धन से मुक्त होकर भगवत्कृपा के भागी हुए जीव सद्योमुक्ति पाते हैं। मुक्ति के फलस्वरूप कुछ जीवों को 'ऐश्वर्यानन्द' और कुछ को भगवान् का 'सेवानन्द' मिलता है। भगवान् का सामीप्य पाने पर जीव नित्य-सिद्ध-देह का लाभ करता है। ३—**नित्यसिद्धजीव**—ये संसार-दुःख से मुक्त तथा स्वभावतः भगवद्-अनुभावित हैं। गरुड़, सनकादि सिद्ध जीव हैं।

अचित् तत्त्व—इसके प्राकृत, अप्राकृत तथा काल आदि तीन भेद हैं। **प्राकृत** तीनों गुणों का आश्रय तत्व है। वह भगवदधीन है। प्रकृति आत्मा की देह, देहेन्द्रिय तथा मन, बुद्धि आदि रूपों में परिणत होकर जीव का बन्धन करती है। **अप्राकृत**—यह अंश विशुद्ध सत्व है। नित्य विभूति, विष्णुपद, परमव्योम, परमपद, ब्रह्म लोक इसी तत्व के दूसरे नाम हैं। मुक्त जीवों के भेद का उपकरण इसी का रूप है। काल से अलग होने के कारण यह निर्विकार है।

काल—यह नित्य, व्यापक, प्रकृत पदार्थों का नियामक है, किन्तु भगवदधीन है।

मोक्ष का उपाय—निम्बार्क-सम्प्रदाय में भगवत्कृपा को ही मोक्ष का साधन कहा गया है। नवधा भक्ति के अभ्यास से भगवत्प्रेम मिलता है। इस सम्प्रदाय में शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और उज्ज्वल आदि ही भक्ति के ५ भेद माने गए हैं।

माध्व सम्प्रदाय-द्वैतवादी सम्प्रदाय[१]—मध्व के अनुसार भेद स्वाभाविक एवं नित्य हैं। यह भेद ५ प्रकार का है—१—ईश्वर और जीव-भेद, २—ईश्वर

१—'अष्टछाप और बल्लभ-सम्प्रदाय' पृ० ४९-५४ के आधार पर।

ग्रौर जड़ भेद, ३—जीव ग्रौर जड़भेद, ४—जीव-जीव भेद, ५—जड़-जड़भेद। ईश्वर, जीव ग्रौर जगत् ये सभी भेद सत्य हैं। इस मत में द्रव्य-परमात्मा, लक्ष्मी, जीव, जगदादि; गुण-रूप सौंदर्यादि; कर्म-विहित, निषिद्ध, उदासीन; सामान्य-जाति, उपाधि; [illegible]; विशिष्ट-नित्य, ग्रनित्य; ग्रंशी; शक्ति-ग्रचिन्त्य, ग्राधेय, सहज, पदशक्ति तथा सादृश्य ग्रौर ग्रभावादि दश पदार्थ कहे गए हैं।

माध्व मत में **परमात्मा** के गुण ग्रसीम, नित्य एवं ग्रपरिमित हैं। सृष्टि, स्थिति, संहार, नियमन, ग्रावरण, बोधन (ज्ञान), बन्धन ग्रौर मोक्ष ग्रादि ग्राठ कारणों में परमात्मा के ग्रतिरिक्त ग्रन्य किसी चेतन का ग्रधिकार नहीं है। ब्रह्म या परमात्मा ज्ञानानन्दात्मक, ग्रप्राकृत तथा नित्यदेहयुक्त है। उसके मूल तथा ग्रवतरित रूप में कोई ग्रन्तर नहीं है। उसमें ग्रनेक रूप धारण करने की शक्ति भी है। **लक्ष्मी** परमात्मा से भिन्न तथा उसी के ग्रधीन हैं। वे नित्य तथा सर्व-गुण-पूर्ण हैं। परमात्मा के इंगित पर सृष्टि ग्रादि कार्यों को करती हैं। ब्रह्म की भी उत्पत्ति उन्हीं से होती है। लक्ष्मी ग्रजड़ प्रकृति ग्रर्थात् चित्स्वरूपा हैं, श्री, भू, सीता, रुक्मिणी उन्हीं के रूप हैं।

जीवों की संख्या ग्रनन्त है। उनके **मुक्ति-योग जीव**—ब्रह्मा, ग्रग्नि, वायु, देव, नारद, रघु ग्रादि; **नित्य संसारी जीव**—उत्तम पुरुषों को छोड़कर ग्रन्य सभी मनुष्य तथा **तमोयोग जीव**—राक्षसादि, तीन प्रमुख भेद हैं। मोक्ष पाने पर भी जीव-जीव तथा जीव-परमात्मा में भिन्नता बनी रहती है।

जड़ **प्रकृति** को उपादान कारण बना कर लक्ष्मी काल, सत्, रज, तम तीन गुण, तथा महदादि तत्वों की सृष्टि करती हैं। प्रकृति त्रिगुणों से भिन्न परिणाम धारण-कर्त्री एवं नित्य है। परमात्मा, लक्ष्मी तथा जीवों की स्वरूपगत इंद्रियाँ नित्य हैं, शेष ग्रनित्य। **ग्रविद्या** को ब्राह्मी सृष्टि कहा गया है ग्रौर इसके चार भेद माने गए हैं:—जीवाच्छादिका, परमाच्छादिका, कैवला, माया। संसार-जन्य दुःख ग्रविद्या-संभूत है।

मोक्ष-लाभ परमात्मा के ग्रनुग्रह तथा प्रेम द्वारा ही होता है। भगवान् के परम ग्रनुग्रह से जीव परमात्म-लोक में पहुँचता है ग्रौर मध्यम ग्रनुग्रह से स्वर्ग तथा ऊर्ध्वलोक के सुखभोग करता है। कर्मक्षय, उत्क्रांतिलय, ग्रर्चिरादि मार्ग तथा भोग मुक्ति के **चार भेद** हैं। सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य ग्रादि मुक्ति-भोग के चार भेद हैं। सायुज्य का ग्रर्थ है भगवान् में भगवद्देहद्वारा भोग साधन होना (सायुज्यं नाम भगवन्तं प्रविश्य तच्छरीरेण भोगः)।

रामानन्द-सम्प्रदाय में **रामसखे** इस दार्शनिक प्रणाली से बहुत प्रभावित थे।

श्री विष्णु स्वामी सम्प्रदाय—डॉ० दीनदयालु गुप्त[१] के मत से 'विभिन्न मतों के बीच में, यह पता लगाना कि विष्णु स्वामी सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य विष्णु स्वामी की स्थिति कब और कहाँ थी, कठिन है। बल्लभ-सम्प्रदायी ग्रन्थों से तथा किंवदंतियों से यह पता चलता है कि बल्लभाचार्य जी विष्णु स्वामी सम्प्रदाय की उच्छिन्न गद्दी पर बैठे और उन्होंने इसी सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के आधार पर अपने सिद्धान्तों को निर्धारित किया। यह भी जनश्रुति है कि महाराष्ट्र संत श्री ज्ञानदेव, नामदेव, केशव, त्रिलोचन, हीरालाल और श्रीराम विष्णु स्वामी- मतावलम्बी थे। महाराष्ट्र में प्रचार पाने वाला भागवत धर्म जो पीछे 'बारकरी-सम्प्रदाय' के नाम से प्रसिद्ध हुआ और जिसके अनुयायी ज्ञानदेव तथा नामदेव आदि उक्त भक्त थे, विष्णु स्वामी मत का ही रूपान्तर है।' बारकरी संप्रदाय के सम्बन्ध में डॉ० गुप्त के इस मत से महाराष्ट्री विद्वान् सहमत नहीं हैं। बल्लभाचार्य का समय विक्रम की १६ वीं शताब्दी है, रामानन्द से लगभग १०० वर्ष बाद उनका आविर्भाव हुआ किन्तु उत्तर रामानन्दी-सम्प्रदाय की रसिक-शाखा राधावल्लभी सम्प्रदाय से प्रभावित होने के साथ ही वल्लभ-सम्प्रदाय से भी प्रभावित हुई है, अतः संक्षेप में उसके मत को जान लेना अनावश्यक नहीं होगा।

वल्लभ-सम्प्रदाय की दार्शनिक विचारधारा[२]

ब्रह्म—ब्रह्म सच्चिदानन्द है, स्वतन्त्र एवं सर्वज्ञ है। वह सजातीय, विजातीय आदि द्वैतरहित, अद्वैत है। वह जगत् का समवायी और निमित्तकारण है। ब्रह्म में आविर्भाव और तिरोभाव की शक्ति है। श्री कृष्ण में सत्, चित् और आनन्द तीनों शक्तियाँ वर्त्तमान हैं। जड़तत्व में चित् और आनन्द दो धर्म तिरोभूत हैं और जीव में सत् और चित् दो धर्म प्रकट हैं, किन्तु आनन्द तिरोभूत है। सच्चिदानन्द ब्रह्म नित्य और उसकी लीला भी नित्य है। वह ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य आदि षडैश्वर्ययुक्त है। उसके पूर्ण पुरुषोत्तम श्री कृष्ण रूप, अक्षर ब्रह्म और अन्तर्यामी आदि तीन रूप हैं। श्री कृष्ण ही पूर्णानन्द-स्वरूप हैं। उनका देवकीनन्दन रूप रसात्मक, वासुदेव-रूप मोक्षदाता, संकर्षण रूप दुष्टों का संहारी, प्रद्युम्न रूप सृष्टि का रक्षक और अनिरुद्ध रूप धर्मरक्षक है।

जीव—जीव अक्षर ब्रह्म से उसी प्रकार निकला, जिस प्रकार अग्नि से स्फुलिंग निकलते हैं। परमात्मा अंशी और जीव अंश है। जीव में षडैश्वर्य का भी तिरोधान रहता है। जीवों को योग, दिव्यज्ञान, भगवत्कृपा से ही षडैश्वर्य

१—'अष्टछाप और बल्लभसम्प्रदाय' भाग १, पृ० ४२।

२—वहीं, भाग २, पृ० ३६३-६६२।

की प्राप्ति होती है। बल्लभसम्प्रदाय में जीव अणु माना गया है। ब्रह्मांश होने से जीव-ब्रह्म की अद्वैतता सिद्ध होती है।

पुष्टि-सृष्टि के जीवों के चार प्रकार होते हैं—शुद्ध-पुष्ट-भक्त, पुष्टिपुष्ट भक्त, मर्यादा-पुष्ट-भक्त और प्रवाही-पुष्ट-भक्त। शुद्ध पुष्टि-जीव भगवान्‌की नित्य लीला के भोगी हैं। भगवान् के शरीर धारण करने पर वे भी साथ आते हैं। जीवों के और भी भेद आचार्य बल्लभ ने किए हैं: दुर्ज्ञ, अज्ञ, व्यष्टि, समष्टि, पुरुष आदि।

जगत्—भगवान् के सदंश से जगत् की सृष्टि हुई है। इसमें आनन्द और चिद् धर्मों का तिरोधान रहता है। ब्रह्म कारण है और जगत्कार्य। यह जगत् शुद्ध ब्रह्म का अविकृत परिणाम है और लय होने पर शुद्ध ब्रह्म ही हो जायगा। ब्रह्म जगत् का निमित्त और उपादान दोनों कारण है; सृष्टि की इच्छा से ब्रह्म गणितानन्द अक्षर ब्रह्म बनता है, फिर अक्षर ब्रह्म के चित् रूप से जीव रूप पुरुष तथा सत् अंश से प्रकृति का प्रादुर्भाव होता है; फिर महदादि तत्वों की सृष्टि होती है। अन्तर्यामी रूप से ब्रह्म इस अण्डरूप सृष्टि का संचालन करता है।

जगत् ईश्वर कृत और संसार जीव की अविद्या, कल्पना अथवा भ्रम से निर्मित है। जीव की मुक्ति में संसार का लय है, किन्तु जगत् का लय नहीं।

माया—भगवान् की यह शक्ति है, इसके विद्या और अविद्या दो भेद हैं। संसार की रचना का कारण अविद्या माया ही है। अविद्या जीव की है, इसे हटाने के लिए भगवान् के अनुग्रह की आवश्यकता है। 'अध्यास' इसी का नाम है।

गोलोक—पूर्ण पुरुषोत्तम के लीलाधाम का नाम गोलोक है। यह सर्वत्र व्यापक है। भगवान् के अवतार के साथ ही वृन्दावन, ब्रज अथवा गोकुल के रूप में यह भी अवतरित हुआ था। यह माया के गुणों से स्वतन्त्र है। भक्त का यह परम लक्ष्यस्थान है।

रास—अप्राकृत देहधारी रसरूप कृष्ण की अप्राकृत गोपियों के साथ की नृत्यलीला का जो रससमूह है, वह रास है। नित्य रास गोलोक में मुक्तात्माओं के साथ होता है; अवतरित रास ब्रज में कृष्ण-गोपियों का रास था और नैमित्तिक रास अभिनय रूप में कृष्ण-भक्तों द्वारा किया जाता है।

गोपी—ये कृष्ण की आनन्द-प्रसारिणी शक्तियाँ हैं। राधा भगवान् के आनन्द की पूर्ण सिद्ध-शक्ति है। भक्तों के लिए गोपियाँ रसात्मकता सिद्ध कराने वाली शक्तियों की प्रतीक हैं। ब्रज की गोपियों में अन्यपूर्वा या अविवाहिता, अनन्यपूर्वा या कुमारिकाएँ तथा सामान्या या यशोदादि थीं। इनमें से प्रथम दो ही रास की अधिकारिणी थीं।

मोक्ष का साधन—पुष्टि सेवा के तीन फल हैं: भगवान् की नित्य लीला में प्रविष्ट होना, भगवान् के श्री अंग अथवा आभूषणादि बन जाना, वैकुण्ठादि में अवस्था पाना। इसे ही वल्लभ-सम्प्रदाय में मोक्ष कहा गया है। यह मोक्ष

भगवान् के प्रति माहात्म्य-ज्ञान रखते हुए सुदृढ़ और सर्वाधिक स्नेह-युक्त-भक्ति द्वारा लभ्य है। भक्ति प्रभु-अनुग्रह-साध्य है। इसके तीन भेद हैं : पुष्टि-पुष्ट-भक्ति, मर्यादा-पुष्टि-भक्ति, प्रवाही-पुष्टि-भक्ति। इनमें पुष्टि-पुष्ट भक्ति सर्वश्रेष्ठ है। इसे पाने के लिए भगवान् की तन-मन-धन से सेवा करनी चाहिए। भगवत्कृपा उत्कट प्रेम से मिलती है। भगवान् से मिलन की विकलता और विरहभाव की स्थिति प्रेम-भक्ति की पुष्टि के लिए आवश्यक है। यह प्रेम तीन अवस्थाओं वाला है—स्नेह, आसक्ति और व्यसन। स्नेह से लोक के प्रति होने वाले राग का नाश होता है, आसक्ति से गृह में अरुचि होती है और व्यसन से प्रेम की कृतार्थता मिलती है। इसके लिए ब्रह्म-सम्बन्ध आवश्यक है। आगे चल कर बल्लभ-सम्प्रदाय में अष्टयामीय पूजा, शृंगार, सजावट, कीर्तन आदि का भी विस्तार हुआ। आचार्य विट्ठल ने भक्ति के मान्य ग्रन्थों के आधार पर साम्प्रदायिक-भक्ति-पद्धति को और अधिक विस्तृत एवं प्रौढ़ किया।

समकालीन राजनैतिक परिस्थिति—रामानन्द के समय तक मुसलमानों की सत्ता भारत में स्थापित हो चुकी थी। सन् १२०६ से लेकर १२९० ई० तक दिल्ली का शासन गुलाम-वंश के हाथ में था। सन् १२९० में यह सत्ता जलालुद्दीन फिरोज़ द्वितीय के हाथ में चली गई और दिल्ली का सिंहासन खिलजी वंश के अधिकार में आ गया। सन् १३२० ई० में शासन में पुनः परिवर्तन हुआ और राज्यसत्ता गयासुद्दीन तुग़लक के हाथ में चली गई। तुग़लक वंश का शासन १४१२ ई० तक रहा। १४१२ ई० से लेकर सन् १४५१ ई० तक सैयद वंश तथा १४५१ ई० से १५२६ ई० तक लोदी वंश का शासन रहा। इसी के पश्चात् मुगलों के राज्य स्थापित हुए। रामानन्द जी के जीवनकाल में (१२९९ ई०–१४१० ई०) दिल्ली सिंहासन पर जलालुद्दीन फिरोज़, रुकुनुद्दीन इब्राहीम प्रथम, अलाउद्दीन मोहम्मद द्वितीय, शहाबुद्दीन उमर, क़ुतुबुद्दीन मुबारक़, नसीरुद्दीन खुसरू, गयासुद्दीनतुग़लक, मोहम्मद बिन तुग़लक, फिरोज़ तृतीय, तुग़लक द्वितीय, अबूबक्र, मोहम्मद तृतीय, सिकन्दर प्रथम, महमूद द्वितीय, नशरत शाह और दौलत खाँ लोदी आदि बादशाहों ने राज्य किया।

डॉ० ईश्वरी प्रसाद ने लिखा है कि "तुर्कों का शासन धर्म से अधिक अनुशासित होता था। बादशाह सीज़र और पोप के मिश्रित रूप से हुआ करते थे। मूर्ति पूजा खण्डन, बलात् धर्म-परिवर्तन आदि मुसलमानी राज्य के आदर्श थे। अपनी सम्पत्ति की रक्षा के लिए हिन्दुओं को जज़िया भी देना पड़ता था। हिन्दुओं के धार्मिक उत्सव बन्द थे। कुछ बादशाहों ने नए मन्दिरों का निर्माण तथा पुरानों की मरम्मत भी रोक दी थी। जिन बादशाहों ने उलमाओं की नीति

का समर्थन किया उनकी प्रशंसा की गई, अलाउद्दीन और मुहम्मद तुग़लक़ ने उनका विरोध किया था, किन्तु उलमाओं ने उन्हें चैन से नहीं रहने दिया। सिकन्दर लोदी के समय में तो हिन्दुओं पर अत्याचार करने का आन्दोलन-सा चल गया था। लोदी ने समस्त मन्दिरों को तुड़वा देने की आज्ञा दे रक्खी थी। मुसलमानी शासन में योग्यता की पूछ न थी, बादशाह की इच्छा प्रधान थी। उच्चपदों पर मुसलमान ही रक्खे जाते थे, अधिकांश जमीन भी उन्हीं के हाथ में थी, हिन्दू श्रमिकों की भाँति रहते थे। फलतः हिन्दू निर्धनता एवं संघर्ष का जीवन बिताते थे, उनका जीवनस्तर बहुत नीचा हो गया था। उन्हें ऊँचे पद कभी नहीं मिलते थे और उधर शासकवर्ग में विलासिता का पूरा पोषण हुआ। फलतः १४ वीं शताब्दी के अन्त तक शक्ति और पौरुष का ह्रास हो गया। हिन्दुओं को दबा कर और कभी ५० प्रतिशत तक कर लेकर आनन्दोपभोग करना उनका काम हो गया। फलतः हिन्दुओं की प्रतिभा बौनी हो गई। फिर भी, रामानन्द, कबीर, जैसे वैष्णवभक्त इसी काल में हुए।"[1]

सामाजिक परिस्थिति—डा० ईश्वरी प्रसाद के अनुसार[2] मुसलमानी राज्यों में मुसलमानों को अधिक सुविधाएँ प्राप्त थीं। उनकी समस्त धार्मिक मांगों को राज्य पूरा करता रहा, फिर भी, कुछ बादशाहों ने केवल उच्चकुल के लोगों को ही ऊँचे पद दिये थे... ...१२ वीं–१३ वीं शताब्दी में शराब और जुआ का अधिक प्रचार था। बलबन और अलाउद्दीन ने इन्हें रोकने की आज्ञाएँ दीं, किन्तु बाद के राजाओं ने उनके आदर्श का पालन नहीं किया। दरबारों में सुन्दर लड़कों, स्त्रियों आदि का मूल्य कभी-कभी—कुतुबुद्दीन मुबारक के समय में—५०० से २००० तक था। सम्पत्ति-वृद्धि के साथ ही मुसलमानों में अंधविश्वास और अज्ञानता भी बढ़ी। दासता एक सामान्य बात हो गई। मुसलमानी औरतों को शहर से बाहर जाने की आज्ञा न थी।

राजनीतिक सत्ता के छिन जाने से हिन्दुओं का पतन हो गया था। मुसलमानों को म्लेच्छ कह कर पुकारने वाली हिन्दू जाति का दृष्टिकोण अब बदल गया। हिन्दुओं को ऊँचे पद नहीं मिलते थे। अलाउद्दीन के समय में खुट, बलहर, चौधरी तथा मुकद्दम आदि द्वाबा के हिन्दू बहुत ही दीन हो गए। उनके घरों में सोना-चाँदी के 'तनका' अथवा 'जीतल' देखने को भी नहीं मिलता था। वे घोड़े पर चढ़ नहीं सकते थे, अस्त्र उन्हें नहीं मिलता था, वे अच्छे कपड़े

१—मेडिवल इंडिया, डॉ० ईश्वरी प्रसाद पृ० ५०२-५१४।
२—वही, पृ० ५१४।

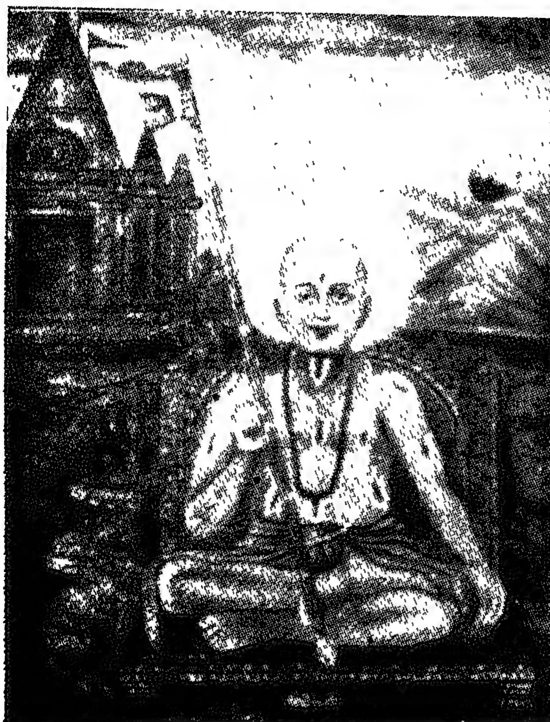
नहीं पहन सकते थे और न पान खा सकते थे। फिरोज़ ने ब्राह्मणों पर भी जज़िया लगा दिया था। सिकन्दर लोदी के समय में तो यह दमन अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था।

इब्नबतूता के अनुसार चौदहवीं शताब्दी में पढ़ने-लिखने वाले वर्ग की प्रतिष्ठा घट चुकी थी। मुहम्मदतुग़लक शेख़ और मौलवियों तक को उनके बुरे कामों के लिए दण्ड देता था। दासता उस काल में सामान्य बात थी। दासों की लड़कियों को रखना फ़ैशन हो गया था। लोगों की प्रवृत्ति धनसंग्रह की ओर थी, रुपया वसूल करने के लिए लोग राजा की शरण भी जाते थे।

सती की प्रथा प्रचलित थी, किन्तु राजाज्ञा आवश्यक थी। अपराधियों को कोड़ा मार कर गधे पर चढ़ा कर घुमाया जाता था। योगियों की करामातों को बादशाह तक देखते थे। वैवाहिक बन्धन की सदैव रक्षा नहीं होती थी। स्त्रियों को अलग रखने की प्रथा थी, किन्तु लड़कियों के लिए भी शिक्षालय थे। दक्षिण भारत में परिश्रम से ज्ञान प्राप्त कर लेने की ओर लोगों की रुचि थी। ब्राह्मणों का समाज में सम्मान था और देवताओं पर सिर चढ़ाने की प्रथा थी। सती प्रथा का प्रचार वहाँ भी था।

विभिन्न परिस्थितियों का रामानन्द स्वामी पर प्रभाव—दार्शनिक मतवाद की दृष्टि से रामानन्द स्वामी रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत से अधिक प्रभावित थे। फिर भी 'तत्ववाद' उनके लिए अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं था, उनके युग को तत्ववाद की आवश्यकता भी न थी। रामानन्द ने रामानुज के 'लक्ष्मीनारायण' के स्थान पर 'सीताराम' को अपना आराध्य बनाया और रामानुज के आचार-विचार का परित्याग कर उन्होंने अपनी भक्तिपद्धति को बहुत ही सरल किया। रामानुज के विपरीत उन्होंने भक्ति का द्वार हिन्दू-मुसलमान, ब्राह्मण-शूद्र, पुरुष-स्त्री सभी के लिए उन्मुक्त कर दिया। इस दृष्टि से उनका दृष्टिकोण बहुत ही क्रान्तिकारी था। उनके युग में किसी प्रकार के समन्वय-प्रधान मत की आवश्यकता थी। मैकालिफ़ आदि विद्वानों के मत से रामानन्द की विचारधारा को काशी के मुल्लाओं ने भी प्रभावित किया होगा। किन्तु, भारत के लिए यह उदारता और यह क्रान्ति नई नहीं थी। गौतमबुद्ध, महावीर स्वामी तथा वैष्णवाचार्य वासुदेव और स्वयं आलवार भक्तों का भी दृष्टिकोण इतना ही उदार था। रामानन्द वस्तुतः इन्हीं महान् सुधारकों की परम्परा में आते हैं। उनके प्रखर व्यक्तित्व ने ही क्रान्तिकारी कबीर और सुधारवादी तुलसी को जन्म दिया था।

जगद्गुरु श्रीरामानंदाचार्यजी महाराज



प्रथम अध्याय

अध्ययन की सामग्री तथा उसकी परीक्षा

रामानन्द स्वामी के जीवन, उनकी रचनाओं तथा रामानन्दीय सम्प्रदाय के इतिहास के अध्ययन की आधार भूत सामग्री :—

क—आन्तरिक आधार—प्रधान सामग्री ।

ख—प्राचीन ग्रन्थ—स्वामी जी के जीवन एवं सम्प्रदाय पर प्रकाश डालने वाले ग्रन्थ : मुख्य सामग्री :

ग—आधुनिक ग्रन्थ—१—जीवनचरित सम्बन्धी साम्प्रदायिक ग्रन्थ ।
२—हिन्दी साहित्य के इतिहास तथा अन्य प्रमुख धार्मिक इतिहास ।

घ—स्थानों की सामग्री—

ङ—जनश्रुतियाँ ।

च—सम्प्रदाय के सिद्धान्त-सम्बन्धी ग्रन्थ ।

क—आन्तरिक आधार—

रामानन्द स्वामी के नाम पर यों तो अनेक ग्रन्थ प्रचलित हैं, किन्तु लेखक ने केवल 'श्री वैष्णवमताब्जभास्कर:' तथा 'श्री रामार्चन पद्धति:' को ही स्वामी जी कृत माना है। यहाँ उन्हीं के आधार पर स्वामी जी के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने वाली सामग्री का विवेचन किया जायगा।

अपने जीवन के सम्बन्ध में स्वामी जी ने इन ग्रन्थों में कोई उल्लेख नहीं किया है, केवल यत्र-तत्र ऐसे उल्लेख भी मिलते हैं जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वामी जी रामानुज-सम्प्रदाय से ही पहले सम्बद्ध थे। अपने शिष्य सुरसुरानन्द के दस प्रश्नों का उत्तर देते हुए वे अपने पूर्वाचार्यों का स्मरण करते हैं :

प्राचार्याचार्यवर्यान् यतिपतिसहितान् सादरं तान् प्रणम्य ।
मन्त्रस्त्रशास्त्रानुसारं गुरुवरवचसा प्रोच्यते श्रूयतांतत् [१]॥

इसकी टीका जन्मस्थान (अयोध्या) के पण्डित श्री रघुवरशरण जी[२] ने यों की है :—

यतीनां सन्यासिनां पतिर्येतिपतिर्यतीन्द्रः श्री रामानुजः । प्राचार्याः श्री शठकोपप्रभृतयः आचार्याः स्वगुरुवः ॥

इसी प्रकार अन्यत्र रामानन्द स्वामी ने रामानुजीय पंचसंस्कारान्तर्गत शंखचक्र आदि मुद्राओं का भी स्मरण किया है :

तप्तेनमूले भुजयोः समंकनं चक्रेण शंखेन तथोर्द्ध्वपुण्ड्रम् ।
श्रुतिश्रुतं नाम च मंत्र-माले संस्कारभेदाः परमार्थहेतवः [३] ॥

वैष्णवों को, आगे चल कर, स्वामी जी ने आदेश भी दिया है कि वे 'श्री भाष्यादि' का अध्ययन कर अपना कालक्षेप करें :—

शक्तेः श्रीभाष्यतश्च द्रविड़मुनिकृतोत्कृष्ट दिव्यैः प्रबन्धैः ।
कालक्षेपो विधेयः सुविजितकरणैः स्वाकृतेर्यावदन्तम् ॥[४]

यही नहीं, अपने 'श्री रामार्चन पद्धतिः' नामक ग्रन्थ में स्वामी जी ने अपनी गुरु-परम्परा भी दे दी है। यह परम्परा दो स्थानों से प्रकाशित 'श्री रामार्चन पद्धति' में दो प्रकार से प्राप्त होती है। पण्डित रामनारायण दास द्वारा सम्पादित ग्रन्थ में वह इस प्रकार है—

लक्ष्मीनाथसमारम्भां •नाथयामुनमध्यमाम् ।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरु-परम्पराम् ॥
श्रीरामचन्द्रं सीतांच सेनेशं शठद्वेषिणम् ।
नाथं च पुण्डरीकाक्षं राममिश्रं च यामुनम् ॥
पूर्णं रामानुजम् चैव कूरेशं च पराशरम् ॥
लोकं देवाधिपं चैव श्री शैलेशं बरबरम् ॥

१—'श्री वैष्णव मताब्जभास्करः', सम्पादक—भगवदाचार्य, पृष्ठ ६। पाठान्तर: 'श्रीमांस्त-मीशंशरणमुपगतस्तद्विजिज्ञासुमुख्यै' : सम्पादक पं० रामटहलदास, पृष्ठ २।
२—'श्री वैष्णवमताब्जभास्करः', सम्पादक, रामटहलदास, पृष्ठ ६३।
३—वही, पृष्ठ ६
४—वही, पृष्ठ २८

नरोत्तमं च गंगाध्रं सदं रामेश्वरं तथा।
द्वारानन्दं च देवं च श्यामानन्दं श्रुतं तथा॥
चिदानन्दं च पूर्णं च श्रियानन्दं च हर्षकं।
राघवानन्दशिष्यं श्री रामानन्दं च संश्रये॥[१]

यह परम्परा यों होगी : श्री रामचन्द्र—सीता—सेनेश—शठद्वेषी—नाथ—पुण्डरीकाक्ष—राममिश्र—यामुन—पूर्ण—रामानुज—कुरेश—पराशर—लोक—देवाधिप—शैलेश—बरबर—नरोत्तम—गंगाधर—सद—रामेश्वर—द्वारानन्द—देव—श्यामानन्द—श्रुत—चिदानन्द—पूर्ण—श्रियानन्द — हर्षक—राघवानन्द—रामानन्द।

पं० रामटहल दास द्वारा सम्पादित प्रति में यह परम्परा इस प्रकार है :—

[illegible] श्रीराघवानन्दनम्।
श्री मंतंमुनिपुंगवं च हरियानन्दं श्रियानन्दकम्॥
देवानन्दमथो सदा गुणगणैराढ्यं मुनीशं वरम्।
द्वारानन्दमुनिं मुनीश्वरवरं रामेश्वरं सद्वरम्॥
श्रीमन्तं मुनिवर्यमेव च सदाचार्यं च गंगाधरम्।
वन्द्यं तं पुरुषोत्तमं च सदयं देवाधिपंसद्वरम्॥
श्री विद्यागुणवारिधिं मुनिवरं श्रीमाधवाचार्यकम्।
वैराग्यादिनिधिं गुणैकनिलयं श्रीवोपदेवं कविम्॥
कूरेशं यतिराजमद्भुतगुणं रामानुजं सद्वरम्।
पूर्णं श्री मुनियामुनं मुनिवरं श्रीराममिश्रं तथा॥
श्रीमन्तं मुनिपुण्डरीकनयनं नाथं मुनिं श्री शठ—
द्वेपं श्री पृतनापतिं जनकजां रामं सदा संश्रये॥[२]

इस परम्परा के अनुसार रामानन्द से पूर्व के गुरुवों का क्रम इस प्रकार होगा : रानानन्द—राघवानन्द—हरियानन्द—श्रियानन्द—देवानन्द—द्वारानन्द—रामेश्वर—सदाचार्य—गंगाधर—पुरुषोत्तम—देवाधिप—माधवाचार्य—वोपदेव—कूरेश—रामानुज—पूर्ण—यामुनमुनि—श्रीराम मिश्र—पुण्डरीकाक्ष—नाथमुनि—शठकोप—पृतनापति—सीता—राम।

ऊपर दोनों ही पाठों में पं० रामटहलदास का पाठ अधिक समीचीन है।

१—'श्री रामार्चन पद्धतिः' सं० पंडित रामनारायणदास, पृष्ठ २-३।

२—श्रीरामार्चनपद्धति : सं० रामटहलदास, पृष्ठ ३४-३५।

पं० रामनारायणदास की प्रति में 'श्री रामानन्दं च संश्रये' उक्ति रामानन्दकृत तो नहीं ही हो सकती। जहां तक इन परम्पराओं के मान्य होने का प्रश्न है, इसका विवेचन रामानन्दी-सम्प्रदाय का इतिहास बतलाते हुए किया जायगा। यहाँ इतना तो कहा ही जा सकता है कि रामानन्द राघवानन्द के शिष्य थे और उनका पूर्व सम्बन्ध रामानुज-सम्प्रदाय से था।

स्वामी रामानन्द ने राघवानन्द जी को पूर्ण ज्ञानी, ब्रह्मनिष्ठ, वाग्मी स्वाध्यायशाली, सद्वन्द्य, सदय, सहृदयों द्वारा अर्चित, सद्गुणयुक्त आदि कहा है:

गाढ़ाज्ञानतमोनिरासतरणिं तं ब्रह्मनिष्ठं तपः।
स्वाध्यायव्रतशालिनं पटुतरं मध्येवरं वाग्विदाम् ॥
सद्वन्द्यं सदयं सदा सहृदयैरर्च्यं कविं सद्गुणै—
राचार्यं शरणं शरण्यमनघं स्वीयं प्रपद्येऽनिशम् ॥[१]

ख—प्राचीन ग्रन्थ—

१—प्रसंग-पारिजात—चेतनदास कृत।

२—भक्तमाल—नाभादास : टीकाकार—प्रियादास, रीवांनरेश रघुराजसिंह, पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र, रूपकला।

३—अगस्त्य-संहिता ४—भविष्यपुराण ५—वैश्वानरसंहिता ६—वाल्मीकि-संहिता ७—रसिकप्रकाश भक्तमाल—महन्थ जीवारामजी कृत : टीकाकार जानकी रसिकशरण ८—मध्ययुग के अन्यग्रंथ।

प्रसंग-पारिजात—'प्रसंग-पारिजात'[२] की सूचना हिन्दी संसार को अक्टूबर १९३२ की 'हिंन्दुस्तानी' में श्री शंकरदयालु श्रीवास्तव ने दी थी। श्रीवास्तव जी के अनुसार गोरखपुर के मौनी बाबा ने अयोध्या के महात्मा बालकराम विनायक को इस ग्रन्थ का ज्ञान दिया था और साथ ही उसका अर्थ भी लिखा दिया था। मुझे इस ग्रन्थ की दो प्रकाशित प्रतियाँ मिली हैं, एक के टीकाकार हैं पं० भगवतदास मिश्र, जिसमें मूल के साथ टीका भी दी हुई है, दूसरी के सम्पादक हैं पण्डित रामरक्षा त्रिपाठी 'निर्भीक', जिसमें केवल टीका दी गई है। दोनों ही ग्रन्थों में टीका की भाषा समान है। अयोध्या मणिपर्वत के प्रसिद्ध रामायणी महात्मा पं० रामकुमार दास के पास इस ग्रन्थ की एक हस्तलिखित

१—वही, पृष्ठ ३५।

२—'प्रसंग-पारिजात', टीकाकार पं० भगवतदास मिश्र, श्रीरामनाम मंदिर, अयोध्या।

प्रति है, जिसे वे विनायक जी की प्रति की प्रतिलिपि बतलाते हैं। इस प्रति में काट-छांट बहुत अधिक है। सर्व प्रथम मैं इस ग्रन्थ द्वारा प्राप्त रामानन्द जी की जीवनी को उपस्थित करूंगा और इसके पश्चात् उसकी प्रामाणिकता पर विचार करूंगा। ग्रन्थ की भाषा नितान्त ही दुर्बोध्य है, अतः विषय-वस्तु टीका के आधार पर ही प्रस्तुत की जा सकेगी।

'प्रसंग-पारिजात' की रचना देशवाड़ी प्राकृत में गणभाषा के सांकेतिक शब्दों के योग से 'अदणा' छन्द में दिव्यसहाय से की गई है। इसके लेखक स्वामी रामानन्द के एक शिष्य चेतनदास कहे जाते हैं। स्वामी जी की वर्षी (ग्रन्थ के अनुसार सं १५१६ वि०) पर काशी में उपस्थित रामानन्दीयों ने लेखक से स्वामी जी के जीवन के प्रमुख अंशों को चमत्कार पूर्ण शैली में लिखने का अनुरोध किया।[१] चेतनदास ने इस वृत्तान्त को सामान्य लोगों से बचाने के लिये जनभाषा में न लिख कर (गणभाषा) में लिखा। इस ग्रन्थ से स्वामी जी के जीवन के सम्बन्ध में हमें निम्नलिखित बातें ज्ञात होती हैं :—

प्रयाग में जन्म का कारण :—यवनों के अत्याचार से त्रस्त हृषीकेश में एक सारस्वत दम्पति की तपस्या से प्रसन्न हो भगवान् ने १२ वर्ष तक के लिये उनका पुत्र होना स्वीकार किया। कालान्तर में वही दम्पति प्रयाग में कान्यकुब्ज दम्पति के रूप में अवतरित हुआ। रामानन्द के रूप में भगवान् ने अवतरित हो उन्हें कृतार्थ किया।

रामानन्द की **माता** का नाम सुरवी था, जो काशी के एक प्रसिद्ध त्रिवेदी की कन्या और प्रसिद्ध नैयायिक ओंकारेश्वर की बहिन थीं। **पिता** का नाम केवल वाजपेई जी दिया गया है। ये प्रयाग निवासी थे।

स्वामी जी की **जन्म-तिथि** माघ कृष्ण भृगुवार दी गई है। टीकाकार पं० भगवतदास मिश्र का कहना है कि यह तिथि सं० १३२४ वि० की है। कबीर का जन्म, इस ग्रन्थ के अनुसार, १३५५ वि० में हुआ था। बालक कबीर किसी का दूध नहीं पीता था। अतः अनन्तानन्द (अंग्रेज लेखक तथा कबीर पंथियों के अनुसार अष्टानन्द) द्वारा गुप्त रीति से स्वामी जी ने उसके पीने के लिये सुधामुची बूटी भेजी। इससे यदि हम यह अनुमान कर लें कि उस समय तक स्वामी जी की आयु कम-से-कम ३१ वर्ष की रही होगी, तो उनका जन्म सं० १३२४ में माना जा सकता है।

१—वही, छन्द १०८।

प्रमुख संस्कारों में **अन्नप्रासन** चौथे वर्ष पंचमी को सम्पन्न हुआ। बालक को 'पायस' विशेष प्रिय लगा। **कर्णवेध** उसी वर्ष महाशिवरात्रि को, और **उपनयन** आठवीं वर्षगांठ के सत्रहवें दिन माघ शुक्ल १२ को सम्पन्न हुआ।

बालक को रामायण, मनुस्मृति, भागवत आदि बाल्यकाल में ही कण्ठस्थ हो गए। उपनयन के उपरान्त बालक काशी चला गया। वहां माता-पिता को भी जाना पड़ा। बारहवर्ष की अवस्था में 'काली खोह' की एक 'विदुषी' का उत्तर देते हुए कुमार रामानन्द ने आजन्म अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा की, किन्तु पिता ने शांडिल्य गोत्रजा सालवी से उनका विवाह ठीक कर दिया। कन्या ने यह स्वप्न देख कर कि रामानन्द से विवाह हो जाने पर वह विधवा हो जायगी, रामानन्द के पास जाकर उनसे दीक्षा ले ली। रामानन्द ने शंख फूँक कर उसे दीक्षा दे दी और देखते-ही-देखते उसकी ज्योति सूर्यमण्डल में मिल गई। बालऋषि (कुमार) भी अदृश्य हो गया। पुत्र-शोक से विह्वल होकर मां तो दिवंगता हो गई, पिता भी मरणार्थ मणिकर्णिका जा रहे थे तभी दाक्षिणात्य ऋषि **राघवानन्द** से उनकी भेंट हो गई और उनके समझाने पर बाजपेई जी का मोह दूर हो गया। इसके अनन्तर राघवानन्द जी ने तातियां शास्त्री, कर्मठ जी, नवयुवक ब्रह्मचारी चतुर्वेदी जी तथा धर्मण जी की सहायता से रामयज्ञ का अनुष्ठान किया। चैत्र सुदी एकादशी को यज्ञ समाप्ति के साथ रामानन्द प्रकट हो गए। स्वामी जी ने उन्हें वैष्णवी दीक्षा दे उनका नाम रामानन्द रक्खा और इच्छा मरण का वरदान देकर वे स्वयं चले गये। इसके अनन्तर स्वामी रामानन्द पंचगंगा घाट पर स्थायी रूप से रहने लगे।

आश्चर्यजनक घटनाएँ—स्वामी जी की शंखध्वनि सुन कर मुर्दों का जी उठना, नृवेश में कलि का आकर स्वामी जी को तारकमंत्र की दीक्षा देना, राजयक्ष्मा से पीड़ित एक राजकुमार का स्वामी जी की आज्ञा से गंगा में कूद पड़ना और सातवें दिन नीरोग होकर पुनः निकल पड़ना, स्वयं गंगा जी का स्वामी जी को पायस खिलाना, आश्रम में आने पर विरोधियों का अपना विरोध भूल जाना, शिवरात्रि को विश्वनाथ जी के मन्दिर का द्वार स्वामी जी को देख कर अपने आप खुल जाना और स्वयं शिवपार्वती का उनका स्वागत करना, शिशोदिया वंश की राजकुमारी शशि को उसके खोये पति पुन्नू (पुहुकर) से मिला देना, गंगा में डूबते हुए गंगू ब्राह्मण और उसके सेवक जफर को स्वयं भगवान् द्वारा 'जय स्वामी रामानन्द' कह कर बचाया जाना, आश्रम पर आने पर यह भविष्य वाणी होना कि जफर किसी दिन राजा हो जायगा, पाद्मतेश्वर

नामक शिष्य को स्वामी जी ने खेचरी मुद्रा में संभाला और प्राची को प्रह्लाद के अवतरित होने के लिये माता बनने का आदेश दिया, योग के चमत्कार द्वारा शैव सिद्धों को परास्त करना, साधु अन्तोलिया की भटकती हुई प्रेतात्मा का स्वामी जी द्वारा तारा जाना, आकाशमार्ग से आये हुए दाक्षिणात्य योगी कृपाशंकर को आकाश में ही चारपाई बिछा कर स्वामी जी के शिष्य अनन्तानन्द द्वारा चमत्कृत कर दिया जाना, अपना नाम जपने वाली एक वणिक द्वारा लायी गई शुकी को स्वामी जी द्वारा उसका पूर्व जन्म का किन्नरी रूप दिया जाना और उसका भुवर्लोक प्रस्थान करना, स्वामी जी की कृपा से एक अंधे साधु के नेत्र खुल जाना, स्वामी जी द्वारा झीटा पण्डित को विद्या माया रूपी उनकी स्त्री (चुपन्ना) से मुक्त किया जाना, उनकी शंखध्वनि सुन कर अयोध्या में हिन्दू से मुसलमान बनाये गये लोगों का सरयू में स्नान करने के उपरान्त ही पंचमुद्रादि दिव्य संस्कारों से युक्त हो जाना, स्वामी जी का किसी वेदान्ताचार्य को साकेत धाम का दर्शन कराना, दो भ्रष्ट विद्याधरों को उनकी खोई पत्नियों से मिला देना, किसी अजामुखी कन्या को स्त्रीमुख प्रदान करना, तन्त्रविद्या में निपुण बीनी डाकिनी को उसकी कामुकता से मुक्त कर देना, सिन्ध के विनय मुनि चौरासी वाले को विल्व-पत्र से वेदमंत्र का उच्चारण करा कर स्वामी जी ने ब्रह्मज्ञान दिया, इसी प्रकार किसी ब्रह्म-राक्षस को उन्होंने प्रेत-योनि से मुक्त कर दिया, निम्बार्क संप्रदाय के कुछ साधुओं को एक बार कृष्ण रूप में और दूसरी बार रामरूप में दर्शन देकर तृप्त कर दिया, कबीर के प्रति काशी के पण्डितों की ईर्ष्या को स्वामी जी ने शंख फूंक कर मिटा दिया, चरणोदक भेज किसी पितृभक्त को जिला दिया, स्वय प्रकट हो एक सर्पदष्ट व्यक्ति को उन्होंने जीवन दान दिया, स्वामी जी के प्रभाव से हिन्दुओं को सतानेवाले मुसलमानो का अजान देते समय गला ही बन्द हो गया, इसी प्रकार विभिन्न सम्प्रदाय वालों को उन्होंने बादरायण, शंकर, व्यास, बोधायनादि के दर्शन करा कर चकित कर दिया, जगन्नाथपुरी में स्वयं जगन्नाथ ने बटुक रूप धारण कर स्वामी जी का स्वागत किया, वहीं सुरसुरानन्द ने एक जलहीन सरोवर को जलमग्न कर दिया और कबीर ने सिन्धु को आगे बढ़ने से रोक दिया, कांची में कबीर जुलाहे के वैष्णव होने पर जब ब्राह्मणों ने आपत्ति की तब उनकी भोजन की पंक्ति में ही कबीर प्रकट होने लगे, हार कर ब्राह्मणों ने स्वामी जी से क्षमा-याचना की, हरिद्वार में स्वयं नरनारायण ने स्वामी जी को दर्शन देकर उन्हें आगे बढ़ने से मना कर दिया, एक लिंग हीन बच्चे को स्वामी जी ने पुसंत्व दे दिया, पश्चिम के रिलिहास्वामी के सर्पराज चाकणूर और व्याघ्रराज हाड़ा नामक दो शिष्यों को पशुयोनि से मुक्त

कर स्वामी जी ने उनके गुरु के पास भेजा। इसी प्रकार अनेक अन्य चमत्कारों का उल्लेख इस ग्रन्थ में किया गया है।

स्वामी जी के शिष्य—रैदास-आलस्य वश चमड़े का व्यापार करने वाले किसी बनिये से भिक्षा ग्रहण करने के कारण एक ब्रह्मचारी स्वामी जी के शाप से अपना शरीर त्याग कर एक चमार के घर रैदास के रूप में उत्पन्न हुआ। पूर्व संस्कारों के कारण वह आश्रम पर आकर स्वामी जी का शिष्य हो गया। उसे निम्न जातियों में भक्ति-प्रचार करने का आदेश मिला।

अनन्तानन्द—पुष्कर क्षेत्र में पुष्करण विप्रवंश में अवधू के औरस और सौरिया माता के गर्भ से संवत् १३४३ वि० में कार्तिक पूर्णिमा शनिवार को स्वयं ब्रह्मा जी ने अवतार लिया। स्वामी जी से दीक्षा पाने पर उनका नाम अनन्तानन्द पड़ा। इन्हें ६४ पूर्व राम-ऋषियों का ज्ञान करा कर स्वामी जी ने परमार्थ तत्व की दीक्षा दी थी।

पाद्मतेश्वर—इन्हें स्वामी जी ने खेचरी मुद्रा में संभाला था। इनका अन्य कोई पता नहीं मिलता।

सेना—सेना नाई ने दाक्षिणात्य जंगम स्वामी के बाल मूड़ कर चुटिया रख दी। इस पर दोनों में विवाद हो गया। दोनों स्वामी रामानन्द के यहाँ आये। स्वामी जी ने दोनों को समझा दिया। सेना रामानन्द का भक्त हो गया।

कबीर—ज्योतिर्मठ के अधिष्ठाता और प्रतीची देवांगना के संयोग से संवत् १३५५ वि० ज्येष्ठ पूर्णिमा को प्रह्लाद ने कबीर के रूप में अवतार ग्रहण किया। नीरू-नीमा जुलाहे को बालक कबीर लहर तालाब पर मिला। मोमिन के पूछने पर बच्चे ने स्वयं कहा कि मैं बीरानन्द का दिव्या के जठर से उत्पन्न पुत्र हूँ। मोमिन ने उसका नाम कबीर रक्खा। कबीर किसी का दूध नहीं पीता था, अतः स्वामी जी ने गुप्त रीति से अनन्तानन्द को भेज कर सुधामुची बूटी बालक को चूसने को दी। फिर तो पड़ोसिन कर्मादेवी तथा गौ का भी दूध बालक पीने लगा। बड़ा होने पर कबीर कण्ठी, माला, तिलक आदि धारण कर अपने को रामानन्द का शिष्य कहने लगा। पण्डितों को इससे द्वेष हुआ। स्वामी जी के आश्रम पर कबीर के तेज से सभी प्रभावित हुए। इन्हें निम्न जातियों में भक्ति प्रचार का आदेश स्वामी जी ने दिया था। स्वामी जी के निधन के समय कबीर १६० वर्ष के थे।

सुखानन्द—बैशाख सुदी शुक्रवार को काशी के त्र्यम्बक शास्त्री की उज्जैन में व्याही कन्या जाम्बवती को शंकर के वरदान से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। युवा

होने पर रामभारती से उपदेश लेकर वह नीची बाग में रहने लगा। किसी के एक दिन यह कहने पर कि 'तेरी आयु के केवल चार दिन शेष हैं, तू शीघ्र रामानन्द से दीक्षा ले ले', वह गुरु की आज्ञा से स्वामी जी का शिष्य हो गया। उसका नाम सुखानन्द पड़ा।

सुरसुरानन्द—पैखम का ब्राह्मण भायूण, जो नारायण स्वामी द्वारा नारद भी कहा जाता था, एक दिन स्वामी जी की शंख-ध्वनि सुन कर आश्रम पर आकर नाचने लगा। स्वामी जी ने उसे अपना शिष्य बना लिया और उसका नाम सुरसुरानन्द रक्खा। उसकी जन्म-तिथि बैशाख सुदी नवमी थी।

नरहर्यानन्द—विन्ध्याटवी में टिवौड़ा के सिद्ध और महामाया के संयोग से उत्पन्न बालक ने अनाथ होकर स्वामी जी के पास आकर आत्मसमर्पण कर दिया। उसे सनत्कुमार का अवतार जान कर स्वामी जी ने अपना शिष्य बना लिया और उसका नाम नरहर्यानन्द रक्खा।

योगानन्द—काशी के न्यायशास्त्री यज्ञेशदत्त जी अपनी पत्नी के मर जाने पर स्वामी जी के शिष्य हो गए। स्वामी जी ने उन्हीं का नाम योगानन्द रक्खा।

पीपा—गाँगरौनगढ़ के राजा पीपा को शक्ति ने प्रसन्न होकर यह आज्ञा दी कि तुम नारायण के अवतार रामानन्द के पास काशी जाओ। पीपा के आश्रम पर आने पर स्वामी जी ने अनन्तानन्द द्वारा उन्हें कुएँ में गिर जाने की आज्ञा दी, परन्तु जब पीपा कुएँ में गिर पड़े तो उन्हें निकलवा कर स्वामी जी ने वैष्णवी दीक्षा दी। बाद में पीपा विरक्त हो गए और बड़े ही सत्संगी साधु सेवी हुए।

पद्मावती—तिरुभरि ग्राम के एक भक्त दम्पत्ति के घर कमल से पद्मावती का जन्म हुआ, जो काशी आकर स्वामी जी की शिष्या हो गई। वह दूसरी लक्ष्मी ही थीं।

भावानन्द—विट्ठल नाम के दक्षिणी ब्राह्मण को स्वामी जी ने शिष्य बना कर उसका नाम भावानन्द रक्खा। ये जनक के अंशभव थे। भावानन्द को स्वामी जी ने उनकी पत्नी से मिला कर गृहस्थ भी बना दिया।

स्वामी जी की दिग्विजय :—पीपा के निमन्त्रण पर स्वामी जी पहले **गाँगरौन गढ़** गए। वहाँ कुछ दिन रह कर वे **जगन्नाथ** धाम गए। जगन्नाथ जी ने बटु रूप धारण कर उनका स्वागत किया। उसके अनन्तर **रामेश्वर** जा-कर स्वामी जी ने शिष्यों सहित मन्दिर में प्रवेश कर शंकर के दर्शन किये। वहाँ उन्होंने मन्दिर का द्वार वैष्णवों के लिये खुलवा दिया और शैवों तथा वैष्णवों में

संधि स्थापित की। उन्होंने उस मंदिर को रामोपासकों का मंदिर बताया, और चलते समय शैवों के द्रोह को शान्त करने के लिये योगानन्द को वहीं छोड़ दिया। इसके अनन्तर स्वामी जी ने विजयनगर के राजा बुक्काराय तथा उनके मन्त्री विद्यारण्य स्वामी का आतिथ्य ग्रहण किया। राजा ने उनकी पालकी में कन्धा भी लगाया। जमात ६ दिन तक टिकी रही। खूब भण्डारा होता रहा। इसके पश्चात् स्वामी जी **कांची** की ओर बढ़े। वर्ण विचार के पालक कांची के ब्राह्मणों ने स्वामी जी की 'जमात' में कबीर और रैदास को देख कर घृणा की बातें कीं। वहाँ के प्रजेश विद्याधर ने स्वामी जी का स्वागत किया, पर ब्राह्मणों के भय से जनता पास न आई। पीपा की स्त्री सती सीता को गोदा देवी ने 'जुलाहे की जोय' कह कर संबोधित किया। इस पर सती के शाप से वह पृथ्वी में समा गई। इतना ही नहीं, जब-जब आचारी ब्राह्मण भोजन करने को बैठने लगे, तब-तब उन्होंने अपने मध्य में कबीर को पाया। हार कर वे स्वामी जी की शरण आये। सती ने फिर भी लोगों को शाप दे ही दिया कि यहाँ से कताई-बुनाई मिट जायगी और तुम लोग दरिद्र हो जाओगे। विद्यारण्य स्वामी तथा विजय-नगर के राजा के आग्रह से स्वामी जी ने इस शाप का समाधान यह कह कर किया कि इस समुद्र तट पर गोरा वणिक समाज आकर इस देश को चरखे-करघे से हीन करके कंगाल कर देगा। तब कबीर की ज्योति वणिक कुल में 'मोहनदास' के नाम से उतर कर रामनाम के प्रचार के साथ ही करघे-चरखे का प्रचार कर इस देश का उद्धार करेगी। फिर विद्यारण्य स्वामी के यह पूछने पर कि 'यवनों के कारण जो धर्मग्लानि हो गई है वह कैसे मिटेगी?' स्वामी जी ने कहा कि पंजाब में जनक जी, बंगाल में राधाभक्त गीताचार्य जी तथा बाल्मीकि और हनुमान् आदि अवतरित होकर चारों कोनों पर धर्म की व्यवस्था करेंगे। फिर स्वामी विद्यारण्य जी स्वस्थान चले गए। तत्पश्चात् स्वामी जी ने श्री **रंगम्, द्वारका,** आदि की यात्राएँ कीं। द्वारका में पीपा यादवराज कृष्ण के दर्शनार्थ समुद्र में कूद पड़े। श्री कृष्ण ने वहाँ उनका स्वागत किया और शंख चक्र की छाप देकर स्वयं तट तक पहुँचाया।

फिर जमात **मथुरा बृन्दाबन** होती हुई, श्रीकृष्ण छवि का रसास्वादन करती हुई **हरिद्वार** पहुँची। नरनारायण ने यहाँ स्वामी जी को दर्शन देकर आगे बढ़ने से रोक दिया। वहाँ से स्वामी जी **बृन्दाबन** लौट आये। कुमार-कुमारि-काओं को उन्होंने एक बहुत बड़ा भोज दिया। 'श्याम-श्यामा' भी वेष बदल कर उस भोज में सम्मिलित हुए। इस समय योगानन्द भी आ गये थे। तदनन्तर **चित्रकूट** आकर स्वामी जी ने देव देवियों का स्वागत ग्रहण किया। चार मास

रह कर वहाँ से जमात प्रयाग आई। एक रात रह कर स्वामी जी काशी आ गये। उन्होंने वहाँ एक बहुत बड़ा भण्डारा दिया।

विपक्षियों पर स्वामी जी का प्रभाव :—श्रृंगेरीमठ के शङ्कराचार्य भारती तीर्थ तथा उनके भाई माधवाचार्य आश्रम में आते ही आत्मविभोर होकर स्वामी जी का चरणस्पर्श करना ही चाहते थे, तभी उन्होंने उनके महत्व का स्मरण करा कर **माधवाचार्य** को गूढ़ ज्ञान दिया, तथा वेदों के भाष्य करने की शक्ति भी दी। **शंकराचार्य** इससे सन्तुष्ट हो गये। **रसूल की कन्या फातिमा** आश्रम में आकर स्वामी जी के चरणों की धूल रसूल के लिये ले गई। स्वामी जी ने **पाचरमुनि**, तथा **विद्यारण्य स्वामी** को तत्त्व-ज्ञान दिया। **क्षीरेश्वर भट्ट** को स्वामी जी ने 'ईशावास्यमिदं सर्वं' का उपदेश दिया। **शैव-सिद्धों** को स्वामी जी ने योगबल से परास्त किया, योगी **कृपाशंकर** को तो उन्होंने तत्व-ज्ञान भी दिया। इसी प्रकार **इब्बनूर और तकी** से बारह शर्तें मनवा कर स्वामी जी ने मुल्लाओं को हिन्दुओं पर अत्याचार करने से रोक दिया। **गोहिण-नाथ** को स्वामी जी ने प्रेम-योगी बना दिया तथा मीमांसक **चिपलूणकर** को शङ्ख बजाकर और विनयमुनि चौरासी वाले को विल्व पत्र से वेदमंत्र उच्चरित करवा कर तत्व-ज्ञान दिया। इसी प्रकार भाऊ जी शास्त्री तथा अन्य विद्वानों को एक साथ ही अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैत आदि पर प्रवचन दे कर संतुष्ट किया और उन्हें महर्षि **बादरायण, शंकर, शुक, विज्ञान-भिक्षु, श्री कण्ठ-शिवाचार्य, लक्ष्मणाचार्य, भास्कराचार्य, श्रीपति आचार्य, मध्वाचार्य, विष्णु स्वामी, निम्बार्क** तथा **बोधायन पुरुषोत्तमाचार्य** के शिष्य सारण के दर्शन भी कराये।

समकालीन व्यक्ति—समकालीन व्यक्तियों में कुछ प्रसिद्ध नाम ये हैं :—श्रृंगेरीमठ के शंकराचार्य भारती तीर्थ तथा उनके भाई माधवाचार्य, गंगू तथा उसका सेवक जफ़र (हसन गंगू संवत् १४०४ वि० ?), पाचर मुनि, विद्यारण्य स्वामी, क्षीरेश्वर भट्ट, काशी के विश्वनाथ पण्डित, अयोध्या के हरिसिंह देव के भतीजे गजसिंह, (हरिसिंह सं० १३८१ वि० बैशाख सुदी १०, शनिवार को जूनाखां तुग़लक के भय से तराई चले गये। उनके पचास वर्ष बाद गजसिंह स्वामी जी से मिला—टीकाकार) इब्बनूर और तक़ी, खुसरू, विजय नगर का राजा बुक्काराय, निजामुद्दीन औलिया।

सम्प्रदाय का विस्तार—कबीर और रैदास को अन्त्यजों में भक्ति-प्रसार करने का आदेश स्वामी जी ने दिया था। उनकी मृत्यु के उपरान्त अनन्तानन्द

ने दसों दिशाओं में उनके दश शिष्यों को नियुक्त कर सम्प्रदाय का विस्तार किया। अनन्तानन्द स्वयं काशी रहे।

स्वामी जी का साकेत गमन—हंस और कबूतर के रूप में आये हुए ब्रह्मा और यम से मृत्यु संकेत पाकर स्वामी जी ने सं० १५१५ विक्रमी, मधुमास शुक्ला प्रतिपदा को शनिवार के दिन यज्ञ-कुण्ड स्थापित कर तारकमंत्रराज का अनुष्ठान कराया। नवमी सोमवार को वे साकेतधाम चले गये। आश्रम पर केवल दैनिक कृत्य की वस्तुएं तथा खड़ाऊं रह गए। शोकाकुल जनता को कबीर ने आश्वासन दिया। मध्यान्ह में आकाश में शंख-ध्वनि हुई। सभी का मोह दूर हो गया। सभी ने स्नान किया। जल का स्पर्श कर चरणपादुका पत्थर की हो गई। 'श्री मठ' में उसी की स्थापना कर दी गई।

'प्रसंग-पारिजात' की प्रामाणिकता—'प्रसंग पारिजात' के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह उस काल की रचना नहीं है जिस काल की रचना इसे हिन्दी के विद्वान् मानते आये हैं। इस ग्रन्थ के तथाकथित लेखक चेतनदास के अनुसार ग्रन्थ की समाप्ति सं० १५१७ वि० में हुई थी, किन्तु इसमें इसके बाद की भी घटनाओं का उल्लेख किया गया है, जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि ग्रंथ किसी आधुनिक लेखक की चमत्कारप्रिय बुद्धि की कृति है। साथ ही समकालीन व्यक्तियों के संबंध में दी गई सूचनाएँ भी प्रायः तर्कसंगत नहीं हैं।

क—गांधी जी (मोहनदास—वणिक कुलोत्पन्न)—का उल्लेख इस ग्रन्थ की ६१ वीं अष्टपदी के अनुसार सती सीता ने जब विष्णुकांची के आचारियों द्वारा अपमानिता होकर उन्हें शाप दिया कि 'जुलाहे भक्त कबीर का अपमान करने के कारण यहाँ के वस्त्र उत्पन्न करने के सभी उपकरण नष्ट हो जाएँगे और देश बहुत दरिद्र हो जायगा', तब विद्यारण्य स्वामी के अनुरोध से स्वामी जी ने इस शाप का समाधान यह कह कर किया कि शाप के प्रभाव से समुद्र के इसी तट पर गोरा वणिक समाज आकर यहाँ के चरखे करघे के व्यवसाय को नष्ट कर देगा। फिर कबीर की ज्योति वणिक कुल में 'मोहनदास' के नाम से उत्पन्न होकर चरखे का प्रचार करेगी और रामनाम के महत्व को प्रकट करेगी।

ख—नानक, चैतन्य, तुलसीदास और समर्थ रामदास का उल्लेख—६२ वीं अष्टपदी में विद्यारण्य स्वामी के यह पूछने पर कि 'भारतवर्ष में जो संकट काल आ रहा है उससे उत्पन्न धर्म-ग्लानि कैसे मिटेगी?' रामानन्द जी ने कहा कि पंजाब में जनक, बंगाल में राधाभक्त गीताचार्य, वाल्मीकि और हनुमान् अवतरित होकर भारत की रक्षा करेंगे। टीकाकार के

मत से यहाँ क्रमशः नानक, चैतन्य तुलसीदास और समर्थ रामदास का उल्लेख किया गया है। परम्परा से भी टीकाकार का यह मत मान्य है। अतः यह स्पष्ट है कि संवत् १५१७ वि० में लिखित ग्रन्थ का लेखक समर्थरामदास (सं०१६६५ वि०—१७३८ वि०)[१] चैतन्य (जन्म सं० १५४२ वि०)[२], तुलसीदास (जन्म सं० १५८६ वि०) तथा नानक (जन्म सं० १५२६ वि०)[३], आदि का उल्लेख नहीं ही कर सकता था। यह कहना कि ये अंश प्रक्षिप्त होंगे, ठीक नहीं, क्योंकि जिस भाषा और जिस छन्द में इस ग्रन्थ की रचना हुई है, वह विश्व साहित्य में बेजोड़ है। इस भाषा में इस ग्रन्थ के लिखने का उद्देश्य ही यह था कि इस संकलन को तब तक छिपाया जाय जब तक इसमें उल्लिखित सभी घटनाएँ सही न हो जाँय।[४]

ग—स्वामी रामानन्द तथा कबीर आदि का जीवन काल—इस ग्रन्थ में कबीर का जन्मकाल सं० १३५५ वि० दिया गया है और अनन्तानन्द का सं० १३४३ वि० में। कबीर के उत्पन्न होने पर स्वामी रामानन्द ने अपने प्रिय शिष्य अनन्तानन्द द्वारा 'सुधामुची' बूटी कबीर के चूसने के लिये भेजी थी। अतः यह अनुमान कर लेना स्वाभाविक ही है कि स्वामी जी उस समय तक सिद्ध भक्त हो चुके होंगे। यदि उस समय उनकी आयु ३१ वर्ष (बारह वर्ष की आयु में तो वे अन्तर्धान ही हो चुके थे। फिर रामयज्ञ से जब राघवानन्द ने उन्हें प्रकट किया तब वे पंच गंगा घाट पर रहने लगे थे। टीकाकार के अनुसार स्वामी जी की जन्म तिथि सं० १३२४ वि० थी।) की मान ली जाय तो उनका जीवन-काल सं० १३२४ वि० से सं० १५१५ तक पूरे १९१ वर्ष का ठहरता है। कबीर का जीवन काल कम से कम १६० वर्ष (सं० १५१५ वि० में स्वामी जी की मृत्यु के समय वे जीवित थे) और अनन्तानन्द का कम-से-कम १७२ वर्ष तक का ठहरता है। एक तो इन भक्तों का इतना लम्बा जीवनकाल भी तर्कसंगत एवं सामान्य अनुभव सिद्ध नहीं, दूसरे रामानन्द का जन्म काल सं० १३२४ वि० और कबीर का जन्मकाल सं० १३५५ वि० मान लेना किसी भी अन्य प्रमाण से पुष्ट नहीं होता। 'अगस्त्य-संहिता' एवं रामानन्द

१—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, पृष्ठ ७०३।

२—वही, पृष्ठ ३०१।

३—वही, पृष्ठ ३८५—जे० डब्लू० यंगखन को अमृतसर में लिखी गई एक जन्म सारिखी मिली है जिसके अनुसार गुरुनानक महाराज जनक के अवतार थे—डा० वर्मा (यनसाइक्लोपीडिया अव् रिलीजन एण्ड इथिक्स वा० ९ पृष्ठ १८१)।

४—'प्रसंग-पारिजात' अष्टपदी १०८, पृष्ठ १३६।

सम्प्रदाय की मान्यताओं के आधार पर स्वामी जी का समय सं० १३५६ वि० से सं० १४६७ वि० तक माना जाता है, और कबीर की जन्म-तिथि अधिक से अधिक पहले ले जाने पर सं० १४२५ वि०[1] और उनकी मृत्यु-तिथि सं० १५०५ वि०[2] में विद्वानों द्वारा विभिन्न प्रमाणों से सिद्ध की गई है। अतः 'प्रसंग-पारिजात' के लेखक के ये उल्लेख भी तर्क संगत नहीं प्रतीत होते।

घ—इस ग्रन्थ में रामानन्द के समकालीन जिन व्यक्तियों अथवा स्थानों का नाम लिया गया है, उनमें अनेक ऐसे हैं जो असाधारण, अतः गढ़े हुए से प्रतीत होते हैं। निश्चय ही लेखक ने ये नाम ग्रन्थ को प्राचीन कृति बनाने के प्रयास में गढ़े होंगे। यहाँ कुछ नामों का ही उल्लेख पर्याप्त होगा।—मुरवी, सालवी, कालीखोह की विदुषी, तातियाँ शास्त्री, पैखम, भायूण, कर्मठ जी, धर्मण जी, टिघौड़ा, पुन्नू, पद्मतेश्वर, सुधावल (स्थान), सौरिया (अनन्तानन्द की माँ), रिलिहा स्वामी, पाचरमुनि, झीटा पण्डित, चुपन्ना, लिउटा, बीनी, विनयमुनि, भाऊ जी शास्त्री, पण्डित भरूकी, सर्पराज चाकणूर, व्याघ्रराज हाड़ा आदि।

ङ—प्रसिद्ध ऐतिहासिक व्यक्तियों में विद्यारण्य स्वामी, बुक्काराय, भारती-तीर्थ और उनके भाई (?) माधवाचार्य, तर्की, निजामुद्दीन औलिया, खुसरू, अयोध्या के हरिसिंह राजा का भतीजा गजसिंह, गंगू, जफर, गोहिणीनाथ आदि का उल्लेख इस ग्रन्थ में किया गया है। विद्यारण्य स्वामी का जन्म सं० १३२४ वि०[3] में माना जाता है। उन्होंने महाराज बीर बुक्क को विजयनगर के सिंहासन पर सं० १३९२ या १३९३ वि० में बैठाया, और स्वयं उसके प्रधान मंत्री बने। इस दृष्टि से विद्यारण्य स्वामी रामानन्द के समकालीन तो ठहरते हैं, किन्तु लेखक ने इनके सम्बन्ध में भी भूलें की हैं। विद्यारण्य स्वामी और माधवाचार्य को दो व्यक्ति समझ लिया गया है, जबकि ये दोनों नाम एक ही व्यक्ति के हैं।[4] फिर लेखक ने माधवाचार्य को 'भारतीतीर्थ' का अनुज लिखा है। कुछ लोगों के अनुसार भारती तीर्थ विद्यारण्य स्वामी का ही नाम था; किन्तु स्वयं विद्यारण्य स्वामी ने अपने ग्रन्थ 'जैमिनीय न्याय माला' की टीका 'विवरण' में

१—उत्तरी भारत की संत परम्परा, परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ ७३३।

२—हिंदी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, पृ० ५७।

३—कल्याण, भाग ११ सं० २—'अद्वैत सम्प्रदाय के प्रधान-प्रधान आचार्यों का परिचय', पृ० ६५२-५३।

४—वही, पृष्ठ ६५३।

भारतीतीर्थ को अपना गुरु लिखा है।[१] गोह्णिनाथ, गोरखनाथ के शिष्य कहे जाते हैं।[२] गोरखनाथ का समय ईसा की दसवीं शताब्दी अथवा अधिक से अधिक ११ वीं के प्रारम्भिक भाग में अर्थात् विक्रम की ११ वीं शताब्दी में ही कोई समय[३] माना जा सकता है। अतः गोह्णिनाथ का समय ११-१२ वीं शताब्दी या अधिक से अधिक १३ वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध होना चाहिये। अतः यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वे रामानन्द स्वामी के समकालीन ही थे, कदाचित् नहीं थे। प्रसिद्ध आलवार भक्तिन गोदा देवी के द्वारा सती सीता को गाली ('जुलाहे की जोय' कह कर) दिये जाने का उल्लेख किया गया है, किन्तु परम्परा के अनुसार गोदा देवी का समय रामानुजाचार्य से भी पहले पड़ता है।[४] इसके अतिरिक्त प्रत्येक महापुरुष या महत्वपूर्ण पदाधिकारी का स्वामी रामानन्द के सामने नतमस्तक हो जाना लेखक की कोरी कल्पना प्रतीत होती है। यह अवश्य है कि लेखक ने यथा सम्भव स्वामी रामानन्द के समकालीन व्यक्तियों का ही उल्लेख किया है। कुछ थोड़े से हेर-फेर के साथ रामानन्द के जीवन की व्यापक रूप-रेखा भी प्रायः वही है जो रामानन्द-सम्प्रदाय में मान्य है। कबीर-रैदास के सम्बन्ध में प्रायः प्रियादास के ही समान उल्लेख किये गये हैं।

च—इस ग्रन्थ में स्वामी जी के सम्बंध में अनेक असम्भव घटनाओं का संकलन किया गया है। इनका उल्लेख ऊपर हो चुका है। कार्यकारण सम्बन्ध का बिना कोई विचार किये ही लेखक ने इन घटनाओं की कल्पना कर ली है। समकालीन लेखक चमत्कारपूर्ण घटनाओं की सृष्टि करते हैं, पर उनकी संख्या अधिक नहीं होती। अयोध्या के जीवित संतों की भी जीवनियाँ चमत्कारपूर्ण घटनाओं से सजाकर अब तक लिखी जाती हैं।

छ—जिस भाषा में इस ग्रन्थ की रचना हुई है, उसकी कोई परम्परा नहीं मिलती। 'देशवाड़ी प्राकृत' में गणभाषा के सांकेतिक शब्दों के योग से 'अदणा' छन्द में इसकी रचना हुई है। जान पड़ता है कि प्राकृतों का ज्ञान रखने वाले किसी लेखक ने काल्पनिक शब्दों के योग से इसकी रचना की है। अयोध्या के अधिकांश रामानन्दी विद्वान् इसे महात्मा 'बालकराम विनायक' की ही कृति मानते हैं। उन्हें पाली-प्राकृत का अच्छा ज्ञान था। इस कथन का सत्य भी इस

१—वही, पृष्ठ, ६५२।

२—हिन्दी साहित्य की भूमिका, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ ६१।

३—उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० ६०।

४—आलवार चरितामृत-गंगा विष्णु श्रीकृष्णदास, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, पृष्ठ ७५ से ८८ तक।

बात से प्रमाणित हो जाता है कि महात्मा बालकराम जी समय-समय पर ऐसे ग्रन्थों का प्रकाशन कर दिया करते थे, जो किसी-न-किसी प्राचीन लेखक की कृति कहे जाते थे। 'भगवान् रामानन्दाचार्य' नामक ग्रन्थ में उन्होंने किसी 'रसूजे वहदानियत' नामक ग्रन्थ के आधार पर रामानन्द स्वामी के २२ उपदेशों का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित कराया था।[१] जो हो, रामानंद सम्प्रदाय इस ग्रंथ को अपने सम्प्रदाय का प्रामाणिक ग्रन्थ नहीं मानता। व्यक्तिगत अनुभव पर यह कहा जा सकता है कि स्वयं प्रकाशक महोदय को भी इस ग्रन्थ की भाषा का विशेष ज्ञान नहीं है और न तो वे इसके व्याकरण के विषय में ही कुछ संकेत करते हैं। एक दिन उनके सामने चेतनदास ने स्वयं प्रकट होकर आदेश दिया कि अब इस ग्रन्थ के प्रकाशन का समय आ गया है और भगवतदास जी ने इसे प्रकाशित करा दिया। 'भक्तमाल', 'अगस्त्यसंहिता' तथा वैरागी-सम्प्रदाय में प्रचलित अन्य ग्रन्थों के आधार पर स्वयं चेतनदास के रामानंद के शिष्य होने में संदेह किया जा सकता है।

ऊपर गांधी जी के नाम के आ जाने से यह अनुमान कर लेना असंगत नहीं कि इस ग्रंथ की रचना आधुनिक काल में ही हुई है। ग्रन्थ की सूचनायें भी अधिकांशतः अमान्य एवं अप्रामाणिक ही हैं। स्वामी जी के जीवन की जो व्यापक रूप-रेखा (जन्मस्थान, गुरु, शिष्य, दिग्विजय आदि के सम्बन्ध में) उसमें दी गई है, थोड़े से परिवर्तन-संशोधन के साथ उसे स्वीकार किया जा सकता है। नीचे इसकी भाषा का स्वरूप समझने के लिए एक उदाहरण दिया जा रहा है।

अष्टपदी ५४

निकवेरि नीगुणा वम्हहा। भक्ता सगुण सारम्हहा ॥
पैधूम जाहुस-जम्हहा। नखटी नुकाटी अम्हहा ॥ १ ॥
लखमी चुशेषी शेषफण। जुवदा अरंटा कैवरण ॥
टगुरी हुरी हरि हिडवण। जुवखी चुभी हिंगिस सपण ॥ २ ॥
शेषी हृदवस्थं-शेषणा। चिदटे चिदात्मा हेषणा ॥
लखमी महापा-झेषणा। लुँभा अचिद सुद सेषणा ॥ ३ ॥
औभाणु नीगुण-तत्तड़ा। सगुणथ वुताडिम भत्तड़ा ॥
टुकवारि टठणा-सत्तड़ा। जुग जग जुगी पर जत्तड़ा ॥ ४ ॥
जीवाण जिउठा दागमी। धउखी पिषा पुस नागमी ॥
न उठी उदापुह डाहमी। हुवटा जिवाणी पाहमी ॥ ५ ॥

१—भगवान् रामानन्दाचार्य—सं० हरिचरणलाल शास्त्री, पृष्ठ १००।

त्रिगिधा पुरुष विश्वानुगा। आवर्त आहुम परतुगा॥
तैमू तभू ऊभू उगा। ऐवर खवर पौसनजुगा॥ ६॥
धूसंधिनी सत आमुरी। संवित चिदंटा जामुरी॥
ह्लालादिनी भामा पुरी। आनन्द वधना भाहुरी॥ ७॥
साखोत्तरा साहुज्जरा। आचो भरा पानुज्जरा॥
व्याख्यार भावा कुज्जरा। नावैत नुक्का मुज्जरा॥ ८॥

(पृ० ७०-७१, सं० भगवतदास)

"**अर्थ**—स्वामी जी ने कहा-ब्रह्म तो वास्तव में निर्गुण ही है, क्यो कि वह अनुभा... प्रकृति से परे है। परन्तु भक्त ने, भक्ति के प्रभाव से उसे सगुण बना दिया। कल्याणादि दिव्यगुणों का मूर्तिमान् स्वरूप बना दिया। सृष्टि विकास, भगवत और भागवत का लीला-विलास है ॥१॥ लक्ष्मी जी, शेषी भगवान् और फणीश जी ही तो सृष्टि के मूल में प्रतिष्ठित हैं। कमलनाल और ब्रह्मा की उत्पत्ति तो पीछे हुई। आत्म समर्पण पूर्वक शेष जी और चरण कमल सेवा में तत्पर लक्ष्मी जी विमल भक्ति का उपदेश दे रही हैं ॥२। भगवान् शेषी, शेष जी के हृदय में विराजमान हैं। चित् में चिदात्मा का प्रकाश है। चित् शरीर है और चिदात्मा शरीरी है। लक्ष्मी जी महामाया हैं। भगवान् उनमें रमण कर रहे हैं। अचित् के शुद्ध सत्त्व में श्री नारायण रमण करते हैं। अचित् शरीर है, परमात्मा शरीरी है ॥३॥ यह सगुण ब्रह्म ही कृपा करके अपने निर्गुण और उससे परे स्वरूप का रहस्य अपने भक्तों को बता देते हैं। उसे जानने का दूसरा उपाय भी तो नहीं है। चतुर्व्यूह का असली भेद भगवान् ही जानते हैं ॥४॥ जीव अणु है और गुणों के वैषम्य से घट-घट में अलग-अलग है। श्रुति में परमात्मा को भी अणु से अणु और महान् से महान् कहा और रागद्वेष चिन्तन की प्रतीति से भी जीव बहु होते हुए भी एक है और व्यापक है ॥५॥ जीवात्मा, प्रज्ञात्मा और परमात्मा ये तीन पुरुष हैं। जीवात्मा-चिदाभास है, प्रज्ञात्मा चिन्मय है और परमात्मा चिदानन्द है। प्रज्ञात्मा ही परमात्मा से अभिन्न है। सुषुप्ति में प्रतिदिन मिलन होता है, पर इसे कोई नहीं जानता ॥६॥ सत् भाव का प्रकाश जिस शक्ति में होता है उसे क्रिया शक्ति संधिनी कहते हैं। चिद् भाव का प्रकाश जिसमें होता है उसे ज्ञान शक्ति संवति कहते हैं और आनन्द भाव का प्रकाश जिसमें होता है उसे इच्छा शक्ति आह्लादिनी कहते हैं ॥७॥ न्याय का अंश वेदान्त में भ्रमज्ञान है, उसे छांट कर शुद्ध वेदान्त के मनन से ही ज्ञान की उपलब्धि होती है। शुद्ध मन से, परमार्थ की इच्छा से-वेदान्त का चिंतन करना चाहिये ॥८॥"

—टीकाकार पं० भगवतदास

भक्तमाल :—'भक्तमाल' के लेखक नाभा जी रामानन्द जी की शिष्य-परम्परा में थे, इस कारण उन्होंने स्वामी जी तथा उनके सम्प्रदाय की उत्पत्ति अथवा विकास के सम्बन्ध में जो सूचनाएँ दी हैं, वे बहुधा प्रामाणिक हैं। नाभा जी के अनुसार स्वामी रामानन्द उनसे चार पीढ़ी ऊपर थे। भक्तमाल की रचना[1] सं० १६८० वि० के लगभग मानी जाती है। इस कारण नाभा जी के समय तक रामानन्दीय-सम्प्रदाय का बहुत विस्तार नहीं हो पाया था और न तो इस सम्प्रदाय में साम्प्रदायिकता की ही भावना आ पाई थी। इसलिये भी नाभा जी द्वारा उपस्थित की गई सामग्री प्रामाणिक ही मानी जा सकती है। कम-से-कम आज के रामानन्दी सम्प्रदाय के भक्त इस ग्रन्थ को अपना साम्प्रदायिक ग्रंथ समझते ही हैं। विभिन्न गादियों से जो परंपराएँ प्रकाशित हुई हैं, वे सभी भक्तमाल के लगभग मेल में ही हैं। जो कुछ भी अन्तर मिलता है वह रामानुज और रामानन्द के सम्प्रदायों के पारस्परिक सम्बन्ध को लेकर है। आज के रामानन्दी विद्वान् रामानुज-संप्रदाय से रामानंद स्वामी का कोई भी संबंध नहीं मानते, जबकि नाभा जी ऐसा स्पष्ट ही मानते हैं। इस संबंध में हम 'रामानंद-संप्रदाय का इतिहास तथा संबद्ध शाखाएँ' नामक अध्याय में विस्तृत विवेचन उपस्थित करेंगे। भक्तमाल को प्रायः सभी विद्वानों ने प्रामाणिक रचना माना है।

भक्तमाल में भक्तों के भक्ति-वैशिष्ट्य पर ही अधिक बल दिया गया है, उनके जीवन पर लेखक ने कोई प्रकाश नहीं डाला है। स्वामी रामानन्द जी के जीवन के सम्बन्ध में भी भक्तमाल कोई प्रकाश नहीं डालता। उनकी प्रशंसा केवल दो छप्पयों में की गई है। प्रथम छप्पय[2] से हमें निम्नलिखित बातें मालूम होती हैं—

क—श्री रामानुज स्वामी की पद्धति का प्रताप पृथ्वी में अमृत होकर फैल गया।

ख—उनके अनन्तर देवाचार्य, महामहिमा से युक्त हर्यानन्द जी तथा हर्यानन्द जी के शिष्य राघवानन्द जी हुए। राघवानन्द जी भक्तों को मान देने वाले थे। उन्होंने समस्त पृथ्वी को अपने विजयपत्र के अवलम्ब में कर लिया था और काशी को अन्त में अपना स्थान बना लिया। उन्होंने चारों वर्णों और आश्रमों को भक्ति का द्वार खोल दिया।

१—डा० दीनदयालु गुप्त, 'अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय', पूर्वार्द्ध पृष्ठ १०६।

२—भक्तमाल, सटीक, भक्ति सुधा स्वाद तिलक, सीतारामशरण भगवानप्रसाद रूपकला, तृतीयावृत्ति सन् १९५१ ई० (१५१) छप्पय ६६२। पृष्ठ २८१

ग—इन्हीं स्वामी राघवानन्द जी के शिष्य थे स्वामी रामानन्द जो मानो विश्व के मंगल की मूर्ति ही थे। इस प्रकार रामानुज-सम्प्रदाय की पद्धति का प्रताप दिनोंदिन बढ़ता ही गया।

द्वितीय छप्पय[1] से हमें निम्नलिखित सूचनाएँ मिलती हैं :—

क—भगवान् रामचन्द्र ही की भांति रामानन्द जी ने भी संसार के प्राणियो को तारने के लिये दूसरा सेतु तैयार कर दिया। ख—अनन्तानन्द, कबीर, सुखानन्द, सुरसुरानन्द, पद्मावती, नरहरि, पीपा, भावानन्द, रैदास, धना, सेन, सुरसुरानन्द की स्त्री आदि के अतिरिक्त स्वामी जी के और भी शिष्य थे, जो एक से एक 'उजागर' थे। सभी विश्व-मंगल के आधार और दशधा-भक्ति के 'आगर' थे। ग—रामानन्द ने बहुत काल तक शरीर धारण कर प्रणत जनों को पार कर दिया।

'भक्तमाल' में रामानुजाचार्य के पूर्व के आचार्यों की भी परम्परा दी हुई है। लगता है, भक्तमाल का लेखक अपने सम्प्रदाय का क्रमबद्ध इतिहास जैसे प्रस्तुत करना चाहता हो। वह रामानुज परम्परा से रामानन्द-परम्परा का सम्बन्ध मानता था, अन्यथा रामानुज परम्परा से उसका इतना लगाव ही क्यों होता?

लेखक के अनुसार रामानुज की पद्धति 'रमापद्धति[2]' (श्री सम्प्रदाय) थी। इस सम्प्रदाय का प्रारम्भ लक्ष्मी जी[3] से होता है। लक्ष्मी जी से विष्वक्सेन जी को मन्त्र मिला, उनसे शठकोप जी को, शठकोप जी से बोपदेव जी को मंत्र मिला, फिर बोपदेव जी के बाद की शिष्य-परम्परा इस प्रकार है :—नाथमुनि, पुण्डरीकाक्ष, राममिश्र, परांकुश, यामुनाचार्य, पूर्णाचार्य और रामानुज।

इसके अनन्तर नाभा जी ने अनन्तानन्द, कबीर, सुखानन्द, सुरसुरानन्द, पीपा, रैदास, सेन, सुरसुरी, नरहर्यानन्द, धना आदि स्वामी जी के शिष्यों की भक्ति-सम्बन्धी प्रमुख विशेषताओं का वर्णन किया है। नाभा जी ने भक्तों के जीवन पर प्रकाश डालने का कोई प्रयास नहीं किया है, फिर भी उनके द्वारा रामानन्द-सम्प्रदाय के सम्बन्ध में प्रस्तुत की गई सामग्री बहुमूल्य ही है। स्वयं लेखक का सम्बन्ध अनन्तानन्द की परम्परा से था, अतः सर्व प्रथम अनन्तानन्द के ही शिष्यों के नाम गिनाये गये हैं। योगानन्द, गयेश, कर्मचन्द, अल्ह, पैहारी, सारीरामदास, श्रीरंग आदि अनन्तानंद के मुख्य शिष्य कहे गये हैं।[4] इनके एक शिष्य

१—वही, (१५) छप्पय ६६१। पृष्ठ २८२।

२—वही, पृ० २५८।

३—वही, १३६ छप्पय ७०७ पृष्ठ २६१।

४—वही, २५३ छप्पय ६६० पृ० २६८।

नरहरिदास ने तो रघुवर, यदुबर दोनों के यश का गान करके निर्मल कीर्ति-रूपी धन का संचय किया था।[१] वैसे ये सभी शिष्य अनन्तानन्द के पद का स्पर्श कर लोकपालों के समान हो गये थे।[२]

अनन्तानन्द के शिष्यों में पयोहारी कृष्णदास सर्व प्रमुख थे। उन्होंने अन्न का त्याग कर केवल दूध का ही आहार किया। जिस पर उनकी कृपा हो गई उसे उन्होंने शोक रहित कर निर्वाण ही दे डाला। तेज के समूह वे थे, भजन उनका बल था और वे ऊर्ध्वरेता हो गये थे।[३] इन पयहारी जी के शिष्यों में कील्ह, अग्र, केवल, चरण, व्रतहठी नारायण, सूर्य, पुरुषा, पृथु, त्रिपुर, पद्मनाभ, गोपाल, टेक, टीला, गदाधारी, देवा, हेम, कल्याण, गंगा, विष्णुदास, कान्धर, रंगा, चांदन, सबीरी, गोविन्द आदि प्रमुख शिष्य थे।[४] आमेर के कछवाहा राजा पृथ्वीराज भी इनके शिष्य थे (भक्तमाल, पृष्ठ ७२४)।

इन शिष्यों में भी कील्ह और अग्र दो प्रमुख शिष्य थे। कील्ह के विषय में लेखक का कहना है कि भीष्म के समान ही कील्ह ने भी काल को वश में कर लिया था। वे रामचरणों में रात दिन रत रहा करते थे। इनको देख कर प्राणिमात्र का शिर नमित हो जाता था। सांख्य, योग, आदि का ज्ञान इन्हें हस्तामलकवत् था। ये सुमेरदेव के पुत्र थे। अन्त में ब्रह्मरन्ध्र वेध कर इन्होंने भगवान् को प्राप्त किया।[५] कील्ह के शिष्यों में आस करन, रूपदास, भगवानदास, चतुरदास, छीतरदास, लाखा जी, रायमल, रसिकरायमल, गौरदास, देवादास, दामोदर दास आदि प्रसिद्ध थे।[६]

अग्रदास ने भगवान् के भजन के बिना किञ्चित् मात्र भी काल व्यर्थ नहीं गँवाया। पूर्व भक्तों जैसा ही इनमें सदाचार था। भगवान् की सेवा का स्मरण और उनके चरणों का ध्यान ये निरन्तर करते रहते थे। इन्होंने एक उद्यान लगाया था। इससे उनकी बड़ी प्रीति थी। जिह्वा से निर्मल नाम की ही वर्षा ये करते थे। कृष्णदास पयहारी ने मन-कर्म-वचन से भक्ति में इन्हें दृढ़ कर दिया था, अग्रदास के सभी शिष्य धर्म की ध्वजा थे। उनमें कुछ के नाम ये

१—२, वही, छप्पय ६९० पृ० २९८।
३—१५६ छप्पय ६८७ पृ० ३०२।
४—वही, १५९ छप्पय ६८४ पृ० ३०८।
५—वही, १६० छप्पय ६८३ पृ० ३०९।
६—वही, ७४१ छप्पय १०२ पृ० ८४८।
७—वही, १६३ छप्पय ६८० पृ० ३१३।

हैं—जंगी, प्रयागदास, विनोदी, पूरनदास, बनवारीदास, नरसिंहदास, भगवानदास, दिवाकर, किशोर, जगतदास, जगन्नाथदास, सलूघौ जी, खेमदास, खीची जी, धर्मदास, लघुऊधों।[१] इन्हीं अग्रदास के शिष्य स्वयं नाभा जी भी थे। उन्हीं की आज्ञा पर 'भक्तमाल' की रचना की गई।

कृष्णदास पयहारी जी के तीसरे शिष्य टीला जी के शिष्यों में लाहा जी (इनकी परम्परा परम प्रकाशमान हुई), परमानन्ददास, खरतरदास, खेमादास, ध्यानदास, केशवदास, हरिदास, आदि प्रमुख शिष्य थे।[२]

रामानन्द-सम्प्रदाय की सबसे बड़ी पहली गादी गलता में कृष्णदास पयहारी जी द्वारा स्थापित की गई।[३] ये बड़े ही परोपकारी, कामिनी-कांचन से उदासीन, रामचरणानुरागी और [illegible] थे।

उपर्युक्त भक्तों के अतिरिक्त अन्य छोटे-छोटे भक्तों के विषय में भी नाभा जी ने छप्पय लिखे हैं। इसी प्रकार नाभा जी ने रामानन्द-सम्प्रदाय पर अन्य सम्प्रदायों के पड़ने वाले प्रभाव का भी संकेत कर दिया है। ऊपर कहा जा चुका है कि अनन्तानन्द के शिष्य (?) नरहरिदास ने रघुबर और यदुबर दोनों की ही कीर्ति का संचय किया था। आगे चल कर अग्रदेव ने कृष्ण-भक्ति से और भी अधिक प्रभाव ग्रहण किया। रामानन्द-सम्प्रदाय में मानसी भक्ति के प्रचारक अग्रदेव ही थे। शृंगारी सम्प्रदाय (रामानन्दी रसिक सम्प्रदाय) के ये आदि प्रवर्तक भी माने जाते हैं।

कृष्णदास पयहारी तो योगी थे ही, कील्ह ने तो सांख्य योग को [illegible]-वत् ही कर लिया था। इन्हीं कील्ह के एक शिष्य थे द्वारकादास जिनके विषय में भक्तमाल कार ने कहा है 'अष्टांगयोग तन त्यागियौ द्वारकादास जानै दुनी।'[४]

इस प्रकार नाभा जी के समय तक रामानन्दी सम्प्रदाय योग (नाथपंथी) तथा शृंगार (कृष्ण भक्तिशाखा का) दोनों से ही प्रभावित हो गया था। अगले अध्यायों में हमने नाभा जी द्वारा दी गई स्वामी रामानन्द की गुरु शिष्य परम्परा का विस्तृत विवेचन किया है, अतः यहाँ अनावश्यक समझ कर इस प्रसंग को छोड़ दिया जा रहा है।

१—वही, ७२५ छप्पय ११८ पृ० ८३५।

२—वही, ७२६ छप्पय। ११७ पृ० ८३६।

३—वही, ७८७ छप्पय ४६ पृ० ८९५।

४—वही, ७९४ छप्पय ४९ पृ० ८९३।

भक्तमाल की टीकाएँ क—प्रियादास की टीका—भक्तमाल की 'भक्ति रस बोधिनी' नाम की टीका प्रियादास जी ने सं० १७६६ वि० में लिखी। इन्होंने नाभा जी द्वारा दिये गये वृत्त के अतिरिक्त अपने समय तक प्रचलित हो गई धारणाओं एवं किंवदन्तियों को भी अपनी टीका में स्थान दे दिया है। इनकी भी दृष्टि भक्तों को प्रायः चमत्कार पूर्ण वातावरण से घिरे हुए रूप में ही चित्रित करने की ओर रही है। इसी कारण कहीं-कहीं इतिहास की भी अवहेलना इस टीका में की गई है।

प्रियादास जी ने स्वामी रामानन्द के सम्बन्ध में कोई सूचना नहीं दी है। उनकी गुरु परम्परा के सम्बन्ध में भी प्रियादास जी ने कुछ नहीं कहा। स्वामी जी के शिष्यों में अनन्तानन्द के विषय में भी टीकाकार को कुछ नहीं कहना है। श्री रंग जी तथा कृष्णदास पैहारी के विषय में प्रियादास जी ने अवश्य ही कुछ महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ दी हैं। श्री रंग जी द्यौसा के सरावगी वणिक थे।[१] उनके प्रसाद से एक प्रेत को मुक्ति मिली थी। कृष्णदास पयोहारी के सम्बन्ध में प्रियादास जी का कहना है कि उन्होंने कुल्हू के राजा के साथ बड़ी उदारता दिखलाई थी। इस राजा के वंशज प्रियादास जी के समय तक वर्तमान थे। ये बड़े ही वैष्णव भक्त थे।[२] पयोहारी जी के शिष्यों में कील्ह के विषय में श्री प्रियादास का कहना है कि जब इनके पिता सुमेरदेव का देहान्त हो गया, तब इन्होंने मथुरा में राजा मानसिंह के पास बैठे-बैठे ही 'ठीक है, भला है' कह कर आकाश मार्ग से जाते हुए पिता का स्वागत किया था। इन्होंने फूल की पिटारी में स्थित सांप से अपने को तीन बार कटाया था, परन्तु उन पर कोई प्रभाव न पड़ा। इन्होंने मरते समय भरी सभा में ब्रह्मांड फोड़ कर प्राण त्याग किया।[३] पयोहारी जी के दूसरे शिष्य अग्रदेव के सम्बन्ध में प्रियादास ने बतलाया है कि ये आमेर के राजा मानसिंह के समकालीन थे, राजा मानसिंह इनसे मिलने भी गये थे।[४]

रामानन्द जी के शिष्यों में रैदास के सम्बन्ध में प्रियादास ने जो कुछ कहा है उससे निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं।[५] :—रामानन्द जी का एक

१—वही, पृ० ३००-३०१, कवित्त ५११-१२।

२—वही, पृ० ३०३-५, कवित्त ५०६-१०।

३—वही, पृ० ३१०-१३, कवित्त ५०७-८।

४—वही, कवित्त ५०६ पृ० ३१४।

५—वही, कवित्त २५६, तथा २६४-२६६, पृष्ठ ४७०—७६।

ब्रह्मचारी शिष्य ही किसी चमड़े का व्यापार करने वाले वणिक् के यहां से भिक्षा लाने के अपराध में गुरु द्वारा शापित होकर रैदास के रूप में उत्पन्न हुआ। जन्म लेने पर वह दूध नहीं पीता था। रामानन्द ने स्वयं आकर उसे फिर दूध पिलाया। रैदास बाल्यावस्था से ही बड़ा हरिभक्त था। पिता ने उसे पिछवाड़े जगह दे दी। वहां रह कर यह दिन-रात साधु सेवा किया करता था। भगवान् ने रैदास को हठ पूर्वक मुद्रा लेने को बाध्य किया। इस धन से उन्होंने संतों के लिये निवास बनवा दिया। ब्राह्मणों को इससे स्पर्धा हुई परन्तु अन्त में रैदास के बढ़ते प्रताप से प्रभावित होकर वे मौन हो गये। चित्तौड़ की रानी झाली रैदास की शिष्या हो गई थीं। इन्होंने अपनी त्वचा के भीतर सोने का जनेऊ ब्राह्मणों को दिखाया था। रैदास जी के कुछ चमत्कारों का भी वर्णन प्रियादास ने किया है।

कबीर[१]—प्रियादास जी ने कबीर को भी रामानन्द जी का शिष्य कहा है। पंचगंगा घाट की सीढ़ियों पर लेट कर स्वामी जी के चरणों से टकरा कर, स्वामी जी की 'राम, राम कह' उक्ति को ही कबीर ने गुरुमंत्र मान लिया था। कबीर ने रामानन्द को दैवी प्रेरणावश गुरु किया था। नियमित रूप से उन्हें शिष्य नहीं किया गया था। प्रियादास ने तो यहां तक लिखा है कि जब कबीर अपने को रामानन्द जी का शिष्य कहने लगे, तब स्वामी जी ने उन्हें बुलाकर परदे की आड़ में बैठकर पूछा कि, 'तुम कब मेरे शिष्य हुए?' कबीर ने स्वामी जी को बतलाया कि सभी तंत्रों का सार 'रामनाम' है। इस पर स्वामी जी बड़े प्रसन्न हुए और पट खोल कर कबीर से मिले। कबीर के संबंध में प्रियादास ने अनेक चमत्कारपूर्ण उक्तियाँ कहीं हैं, जिनसे हमारे अध्ययन को कोई नई गति नहीं मिलती। अतः उन्हें यहां छोड़ दिया जाता है।

रामानन्द और पीपा जी—प्रियादास जी ने भी पीपा को रामानन्द स्वामी का शिष्य माना है। उनके अनुसार पीपा गांगरौन गढ़ के राजा थे। पहले वे देवी के उपासक थे, फिर बाद में देवी के ही आदेश से रामानन्द जी के शिष्य हो गए। कहते हैं कि पीपा जी जब स्वामी जी के मठ पर शिष्य होने के विचार से आए, तो स्वामी जी ने कहा कि मुझे राजा से कोई काम नहीं है। इस पर पीपा ने अपनी सारी सम्पत्ति दीनों को बांट दी। स्वामी जी ने पुनः आज्ञा दी कि पीपा से कह दो कि वह कुएँ में गिर पड़े। पीपा गिरने ही जा रहे थे कि स्वामी जी ने प्रसन्न होकर उन्हें शिष्य बनाना स्वीकार कर लिया।

१—वही कवित ३४८ से लेकर ३६१ तक।

जब पीपा के हृदय में भक्ति भावना दृढ़ हो गई, तब स्वामी जी ने एक वर्ष बाद गांगरौनगढ़ आने का वचन देकर उन्हें विदा कर दिया। एक वर्ष बाद पीपा ने स्वामी जी को चिट्ठी लिख कर जब बुलाया तो कबीर, रैदास आदि बीस शिष्यों को लेकर स्वामी जी गांगरौन गढ़ गए। पीपा ने स्वामी जी का अपूर्व स्वागत किया। कुछ दिन वहां रह कर स्वामी जी जब चलने लगे, तब पीपा ने भी विरक्त होकर उनका साथ दिया। पीपा की छोटी रानी सीता भी बलपूर्वक उनके साथ हो गई। यहां से स्वामी जी द्वारका गए और कुछ दिन वहां रह कर काशी लौट आए। पीपा के संबंध में प्रियादास ने अनेक कथाएँ दी हैं। अनावश्यक समझ कर उन्हें छोड़ दिया जाता है।[१]

रामानन्द और धना जी :—प्रियादास के अनुसार भगवान् ने धना की भक्ति से प्रसन्न होकर यह आज्ञा दी कि तुम काशी जाकर रामानन्द के शिष्य हो जाओ। भगवान् की आज्ञा पाकर धना ने रामानन्द का शिष्यत्व स्वीकार किया। फिर घर आकर वे भगवान् की उपासना करने लगे।[२]

रामानन्द और सेन :—सेन के सम्बन्ध में प्रियादास ने केवल एक नई सूचना दी है वह यह कि वे बांधवगढ़ के राजा के नाई थे।[३]

रामानन्द और सुखानन्द :—सुखानन्द के सम्बन्ध में प्रियादास जी ने कुछ भी नहीं कहा है। इसी प्रकार सुरसुरानन्द, सुरसुरी, नरहर्यानन्द, आदि के विषय में भी प्रियादास जी ने कुछ भी नहीं कहा है।

रामानन्द-सम्प्रदाय प्रियादास जी के समय तक रामानुज-संप्रदाय से उद्भूत हुआ माना जाता रहा है, इसके संकेत प्रियादास जी ने यत्र-तत्र दे दिये हैं। आमेर के राजा पृथ्वी राज को अपने गुरु पयहारी जी की कृपा से शंखचक्र की ही छाप मिली थी जो रामानुज-सम्प्रदाय की विशेष छाप है[४] और रामानन्दियों द्वारा अब तक स्वीकृत थी। इसी प्रकार केवलकूबा जी द्वारावती जाकर छाप लेना चाहते थे, किन्तु प्रभु की आज्ञा से वे घर पर ही रह गये और वहीं पर भगवान् की कृपा से उन्हें शंखचक्र की छाप लग गई।[५]

१—वही, पृष्ठ ४६३-५२१।
२—वही, पृ० ५२२-२४।
३—वही, पृ० ४२६।
४—वही, पृष्ठ ७२६ कवित्त २४४।
५—वही, क० १२३ पृ० ८३२।

भक्तमाल की टीकाएँ :—भक्तमाल रामरसिकावली—रीवां नरेश महाराज रघुराज सिंह ।

रीवाँ नरेश ने अपनी टीका में किसी वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अवलंबन नहीं किया है। इस कारण अनेक प्रचलित किंवदन्तियों, दंतकथाओं एवं अंधविश्वासों का उनके ग्रन्थ में समावेश हो गया है। वे इस बात को पूर्ण विश्वास के साथ कह सकते हैं कि कबीर ने स्वयं आकर उनके पिता महाराज विश्वनाथ सिंह से बीजक की टीका करने को कहा। इस प्रकार उनकी रचना (टीका) प्रमाण कोटि में नहीं आ सकती।

रामानन्द जी के संबंध में इन्होंने केवल एक नई सूचना दी है। वह यह कि उन्होंने—'वर्ष सप्तशत लौं तनु राख्यो। परमारथ तजि और न भाख्यो ॥' इसी प्रकार उन्होंने यह भी बतलाया कि भारतखंड में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं जो रामानन्द जी के प्रभाव को जानता न हो। यहाँ वर्ष सप्तशत का अर्थ १०७ वर्ष ही होगा, पर किस प्रमाण पर यह कहा गया है, कहना असंभव है। आगे हम इस मत की समीक्षा करने का अवसर पाएँगे, अतः यहाँ इसे यों ही स्वीकार कर लिया जाता है।

रामानन्द के शिष्यों में कबीर को इन्होंने विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न कहा है और रैदास के विषय में बतलाया है कि रामानंद के यहाँ जब वे शिष्य होने के लिये गये, तब स्वामी जी ने चमार जान-कर उन्हें लौटा दिया, पर भोजन के समय उन्होंने रैदास को पानी लिए हुए खड़ा देख कर अपना लिया और अपना शिष्य बना लिया। शेष शिष्यों एवं अनन्तानंद की शिष्य परंपरा के सम्बंध में रघुराज सिंह जी ने ऐसी सूचनाएँ दी हैं, जिनसे रामानंद जी के समय पर प्रकाश पड़ता है। यह कहाँ तक प्रामाणिक है, इसकी समीक्षा हम आगे इसी प्रसंग में करेंगे।

सेन बाँधवगढ़ बघेल राजा राम का सेवक था। यह नाई भगवान् की भक्ति से प्रभावित हो रामानंद के पास आया। स्वामी जी ने इसे शूद्र जान द्वार बन्द कर लिया, पर सेन के निकट जाने पर कपाट स्वतः खुल गया। अतः उसे संत समझ कर रामानन्द ने अपना लिया। सेन के विषय में आगे रघुराज सिंह ने लिखा है कि ये जिस राजाराम बघेल के यहाँ रहते थे, वे कबीर के शिष्य थे। पहले ये बघेल राजा गुजरात में रहा करते थे, पर कबीर के आदेश से विन्ध्य-पृष्ठ में चले आये। रीवानरेश ने इसी सम्बंध में अपनी वंश-परंपरा भी दी है—

मम पितु राजा रामहिं सोई। दशएँ पुरुष प्रकट भो जोई ॥

... ...

रामसिंह को सुवन जो, बीर भद्र अस नाम।
सो मोंहि कह्यो कबीर जी आगमग्रंथहिं ठाम ॥

यह परंपरा यों है :—१—राजाराम बघेल (कबीर के शिष्य) २—बीरभद्र ३—विक्रमादित्य ४—अमरेश ५—अनूप ६—भावसिंह ७— अनिरुद्ध ८—अवधूत ६—अजीत (रिपुजीत) १०—जयसिंह ११—विश्वनाथ सिंह १२—रघुराजसिंह। रीवांनरेश के अनुसार महाराज विश्वनाथ सिंह का जन्म सं० १८४६ वि० में हुआ। सं० १८५८ में इन्होंने किसी प्रियादास जी से दीक्षा ली, सं० १६११ में इनका देहावसान हुआ। स्वयं रघुराज सिंह का जन्म सं० १८८० कार्तिक कृष्ण ४ को हुआ था। इसके पूर्व रीवां नरेश ने यह बतला दिया है कि राजाराम के पिता बीर भानु थे, जिन्होंने हुमायूं की रानी को उस समय शरण दी थी, जब शेरशाह ने उसे भगाया था। राजाराम अकबर का समकालीन था। उनके निम्न कथन से यह बात और स्पष्ट हो जाती है :—

दिल्ली को पुनि राम नृप गए अकब्बर शाह।
कीन्यो अति सन्मान सो अकस मानि नरनाह ॥
औचक मारन को गये ते नृप रामहिं काँह।
फिरे मानि विस्मय सबै निरखि चारिचौबाँह ॥
नापित सेन स्वरूप धरि हरि जिनके तनु माँहि।
तेल लगायो राय सों कहिये केहि नृप काहि ॥[१]

इस प्रकार राजाराम का अकबर का समकालीन होना सिद्ध हो जाता है। वैसे शिवसिंह जी सेंगर[२] ने भी लिखा है, "निदान तानसेन ने (सं० १५८८ में उत्पन्न) दौलतखाँ, शेरखाँ बादशाह के पुत्र, पर आशिक होकर उनके ऊपर बहुत सी कविता की। दौलतखां के मरने पर श्री बांधवनरेश रामसिंह बघेला के यहाँ गए, फिर वहाँ से अकबर बादशाह ने अपने यहाँ बुला लिया। तानसेन और सूरदास जी से बहुत मित्रता थी।"

अतः इस प्रमाण के बल पर कहा जा सकता है कि रामानन्द स्वामी १६ वीं शताब्दी वि० तक वर्तमान थे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस तिथि को प्रामा-

---

१—भक्तमाल रामरसिकावली, पृष्ठ १०११।

२—शिवसिंह सरोज, पृ० ४२६ :सं० १६८३ वि०।

णिक मान भी लिया है, किन्तु डा० भण्डारकर, सर ज्यार्ज ग्रियर्सन, डा० ताराचन्द, डा० पीताम्बरदत्त वर्थ्वाल तथा श्री परशुराम चतुर्वेदी आदि विद्वानों ने 'अगस्त्य संहिता' के साक्ष्य तथा अन्य प्रमाणों के आधार पर स्वामी जी का समय कलि के ४४०० वर्ष बीतने पर सं० १३५६ वि० से सं० १४६७ वि० तक ही माना है। सम्प्रदाय में यह तिथि मान्य है, और जब तक इस प्रचलित धारणा के विरुद्ध कोई पुष्कल प्रमाण नहीं मिलता तब तक इसे ही ठीक मानना होगा। 'प्रसंग-पारिजात' एक अप्रामाणिक रचना है, अतः उसकी तिथियाँ (जन्म तिथि सं० १३२४ वि० तथा मृत्यु तिथि सं० १५१५ वि०) भी मान्य नहीं हो सकतीं। यह भी संभव है कि रघुराज सिंह ने भ्रमवश सेन नाई का सम्बन्ध राजाराम (वीरभानु के पुत्र) से जोड़ लिया हो, क्योंकि रघुराजसिंह जी के लिये यह बात एक सत्य घटना सी ही है कि कबीर ने स्वयं आकर उनके पिता से बीजक की टीका करने को कहा। इस संबंध में हम विशेष विवेचनस्वामी जी की जन्म-तिथि निर्धारित करते समय करेंगे। अतः इस प्रसंग के संबंध में इतना पर्याप्त है।

भक्तमाल की अन्य टीकाएँ—

१—भक्ति सुधा-स्वाद तिलक

२—भक्तमाल हरिभक्ति प्रकाशिका

यहाँ प्राचीन सामग्री का ही विवेचन किया जा रहा है, अतः सीताराम शरण भगवानप्रसाद रूपकला तथा पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र की टीकाएँ आधुनिक युग की चिन्ताधाराओं से प्रभावित होने के कारण मुख्य सामग्री के रूप में नहीं आतीं। फिर भी अध्ययन को क्रमबद्ध बनाने के दृष्टिकोण से इनका यहाँ उल्लेख कर दिया गया है। इनमें रूपकला जी ने तो अगस्त्य संहिता, भविष्य-पुराण आदि का साक्ष्य लेकर स्वामी जी के जीवन की रूपरेखा निर्धारित की है। साथ ही उन्होंने अग्रदास की 'रहस्यत्रय टीका' 'रसरंगमणि जी के भक्तमाल' आदि की भी सहायता ली है। 'अगस्त्य संहिता' द्वारा उपस्थित जीवनवृत्त हो उन्हें मान्य है। पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र जी ने स्वामी जी के संबंध में बतलाया है कि वे पहले दक्षिण देश में एक स्मार्त्त सन्यासी के शिष्य थे। फूल तोड़ने के लिये एक दिन वे किसी उद्यान में गए। वहाँ राघवानन्द जी ने उन्हें उनकी आसन्नमृत्यु का समाचार दिया और बाद में रामानन्द के शरणागत होने पर उनकी जान भी बचाई। कभी तीर्थाटन के उपरान्त लौटने पर रामानन्द को भोजन के सम्बन्ध में गुरु से मतभेद प्रकट करना पड़ा, अतः राघवानन्द ने उन्हें

अलग सम्प्रदाय चलाने को कहा। इस प्रकार रामानन्दी-सम्प्रदाय का जन्म हुआ। इस मत की लेखक ने अगले अध्याय में पूर्ण विवेचना की है।

अगस्त्य संहिता—अगस्त्य संहिता के अन्तर्गत 'भविष्यखण्ड' के १३१ वें अध्याय से लेकर १३५ वें अध्याय तक श्री रामानन्द जन्मोत्सव की कथा मिलती है। कदाचित् सबसे पहले डा० भण्डारकर ने अपने ग्रन्थ 'वैष्णविज़्म शैविज़्म, एण्ड माइनर रिलिजन्स आदि' नामक ग्रन्थ में इस ग्रन्थ को प्रामाणिक मान कर स्वामी रामानन्द जी का जीवन वृत्त प्रस्तुत किया था। इसके उपरान्त रूपकला जी ने भक्तमाल की टीका करते हुए इस ग्रन्थ का पूरा उपयोग किया। और उन्होंने भी इसे प्रामाणिक मानते हुए स्वामी जी का जीवन वृत्त इसी के आधार पर उपस्थित किया। फिर डा० ग्रियर्सन ने १९२० के जे० आर० ए० एस० में डा० फर्कुहर के इस कथन का कि 'रामानन्द दक्षिण के किसी रामावत सम्प्रदाय से सम्बद्ध थे, किन्तु उत्तर में आकर उन्होंने अपने सम्प्रदाय का प्रचार किया।' प्रतिवाद करते हुए कहा कि उन्हें 'अगस्त्य संहिता' की एक प्रकाशित प्रति में स्वामी जी का जीवन-चरित नहीं मिला, किन्तु बाराबंकी से प्रकाशित उसका हिन्दी अनुवाद उन्हें मिल गया था। इस ग्रंथ द्वारा उपस्थित किये गये जीवन वृत्त को डा० ग्रियर्सन ने प्रामाणिक ही माना। उनका कहना था कि यह जीवन चरित संस्कृत में लिखे हुए भागवत आगम का एक अंश है, और भक्तमाल की भाँति आश्चर्यजनक कथाओं से सजाया संवारा नहीं गया है। जहाँ स्वामी जी की प्रशंसा भी की गई है, वहां पूरी सावधानी के साथ ही। अतः इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता में पर्याप्त विश्वास किया जा सकता है। इसी ग्रन्थ के आधार पर ग्रियर्सन साहब ने यह सिद्ध किया कि रामानन्द दाक्षिणात्य नहीं थे। मुझे डाकोर से प्रकाशित 'रामानन्द जन्मोत्सव' ग्रन्थ प्राप्त हुआ है। ग्रियर्सन द्वारा उद्धृत पंक्तियाँ इस मूल का ही अनुवाद हैं। खेद है कि, ग्रियर्सन साहब के बाद किसी हिन्दी विद्वान् ने इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता की न तो पूरी परीक्षा ही की और न इसके आधार पर स्वामी जी के जीवन-वृत्त को उपस्थित करने का ही प्रयास किया। अतः सर्वप्रथम मैं यहाँ इस ग्रन्थ के आधार पर स्वामी जी के जीवन-वृत्त को उपस्थित करूँगा। मूल ग्रन्थ संस्कृत में है, अतः इस दृष्टि से भी यह प्रयास अनुचित न होगा।

एक समय महर्षि अगस्त्य जी से सुतीक्ष्ण ने पूछा कि विश्व के प्राणियों का कलि में किस प्रकार कल्याण सम्भव है, तब अगस्त्य जी ने उन्हें वही कथा सुनाई जिसे उन्होंने स्वयं सनकादिक कुमारों द्वारा सुनी थी। एक बार पृथ्वी पर

अत्याचार बढ़ता देख कर नारदमुनि भगवान् के पास जाकर बोले कि 'भगवन्, लोक में वेद-मार्ग से लोग विमुख होते जा रहे हैं। इसलिये आप कोई उपाय बतलाइए जिससे मेरी आप में अनुरक्ति दिन-दिन बढ़ती रहे।' भगवान् ने उन्हें बतालाया कि, 'मैंने लोक-कल्याण का उपाय पहले ही सोच लिया है। मैं तीर्थराज प्रयाग में आप सभी नित्य सूरियों के साथ अवतार लेकर वेद शास्त्रादि के सारभूत मोक्ष के साधन, भक्ति को बढ़ाने वाले धर्म मार्ग का विस्तार करूँगा। आप लोग यत्र-तत्र अवतीर्ण होकर मेरे द्वारा कथित उपदेश का धर्मनिष्ठ, सुशील होकर प्रचार करेंगे। जो व्यक्ति उस धर्मोपदेश को ग्रहण करेंगे वे अवश्य ही मोक्ष पा जायँगे।" भगवान् का यह बचन सुन कर नारदमुनि प्रसन्न होकर उनका यशोगान करते हुए संसार में विचरण करने लगे।

इसके अनन्तर रामानन्दावतार की पूरी कथा अगस्त्य जी ने दी है। मैं उसके विस्तार में न जा कर केवल उन तिथियों एवं घटनाओं का ही उल्लेख करूँगा जो स्वामी जी के जीवन एवं उनके सम्प्रदाय से विशेष सम्बद्ध हैं। इस संहिता की कथा में रामानन्द जी को विष्णु का अवतार कहा गया है। रामानन्द जी का जन्म कलि के ४४०० वर्ष गत होने पर तीर्थराज प्रयाग में कान्यकुब्ज ब्राह्मण पुण्यसदन तथा उनकी पत्नी सुशीला के घर माघ कृष्ण सप्तमी तिथि, सूर्य के सात दण्ड चढ़ने पर, सिद्धि योग युक्त चित्रा नक्षत्र, कुम्भ लग्न में होना कहा गया है। आठ वर्ष की अवस्था में यज्ञोपवीत, बारह वर्ष की अवस्था में काशी जाकर श्री सम्प्रदाय के आचार्य राघवानन्द से षडक्षर रामतारकमंत्र, शरणागतिमंत्र, रहस्यत्रय का वाक्यार्थ, तात्पर्यार्थ आदि का पाना कहा गया है। उन्हें वेद वेदांग पारंगत, भागवत धर्मज्ञाता, भगवदाराधनादि कर्मों के कर्ता, वैष्णव धर्म के उपदेष्टा, यशस्वी, उदारबुद्धि एवं प्रसन्नमुख, उद्धारक, जितेन्द्रिय, धर्मशीलों से परिवृत्त, सुशील, समदृष्टि, शान्त, दांत, जगद्गुरु, एवं सत्सम्प्रदाय-प्रवर्तक होने का लक्षण बतलाया गया है। साथ ही यह भी कहा गया है कि उन्हीं की कृपा से संसार के प्राणी रामभक्त परायण होंगे।

अगस्त्य संहिता ने रामानन्द के शिष्यों को विभिन्न देवताओं का अवतार बतलाया है और साथ ही उनकी जन्मतिथियाँ (संवतों को छोड़कर) दी हैं। रामानन्द के शिष्यों में क—अनन्तानन्द ब्रह्मा के अवतार थे। इनका जन्म कार्तिक मास की कृत्तिका नक्षत्र युक्त पूर्णिमा, शनिवार को धनलग्न में हुआ। इन्हें योगाभ्यास में स्थित, बुद्धिमान् और सदाचार में तत्पर कहा गया है। ख—सुरसुरानन्द—इन्हें नारद का अवतार कहा गया है। इनकी जन्मतिथि

बैशाख कृष्ण नवमी, गुरुवार, बृष लग्न दी गई है। ग—**सुखानन्द**-ये शंकर के अवतार कहे गये है। इन्हें बैशाख सुदि नवमी, शतभिषा नक्षत्र, तुला लग्न में उत्पन्न कहा गया है। ये शील के समुद्र, गुरु सेवा में अत्यन्त आसक्त, चन्द्र की भाँति अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धि वाले, पूर्वाचार्यों के सिद्धांतार्थ में स्थित एवं मंत्रमंत्रार्थ विद् कहे गये हैं। घ—**नरहर्यानन्द**—इन्हें सनत्कुमार जी का अवतार कहा गया है। बैशाख कृष्ण तृतीया, शुक्रवार, अनुराधा नक्षत्र, व्यतिपात योग, मेष लग्न में इनका जन्म कहा गया है। ये वर्णाश्रम के कर्मों में निष्ठ तथा भगवदाराधनादि शुभ कर्मों में सदा आसक्त कहे गये हैं। ङ०—**योगानन्द**—इन्हें कपिल का अवतार कहा गया है। इनका जन्म काल बैशाख बदी सप्तमी, बुधवार, मूलनक्षत्र, परिधयोग, कर्क लग्न दिया गया है। चः—मनु के अवतार **पीपा** का जन्म काल चैत्र पूर्णमासी, बुधवार, उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र, ध्रुव योग, धन लग्न कहा गया है। ये महायोगी, सत्पुरुषों द्वारा सेवित और वैष्णव धर्म के उपदेश में तत्पर कहे गये हैं। छ—**कबीर** को प्रहलाद जी का अवतार कहा गया है। इनका जन्म काल चैत्रबदी अष्टमी, मंगलवार, मृगशिरा नक्षत्र, शोभन योग, सिंह लग्न माना गया है। ये तीर्थक्षेत्र वास में रत, वेदांत शास्त्र में निष्ठा वाले तथा स्वामी रामानन्द जी के कैंकर्य परायण कहे गये हैं। ज—**भावानन्द**-इनको जनक का अवतार कहा गया है। इनकी जन्मतिथि बैशाख बदी षष्ठी, सोमवार, मूलनक्षत्र, परिधि योग, कर्क लग्न दी गई है। इन्हें महामति, महात्मा एवं रामसेवापरायण कहा गया है। झ—**भीष्म के अवतार सेना** बैशाख बदी द्वादशी, रविवार, पूर्वा भाद्रपद नक्षत्र, ब्रह्मयोग, तुलालग्न में उत्पन्न एवं भगवद्भक्तों के आराधन में आसक्त कहे गये हैं। ञ—बलि के अवतार **धना** बैशाख बदी अष्टमी, शनिवार, पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र, शिवयोग, बृश्चिक लग्न में उत्पन्न तथा भक्तिमान् पुरुषों में श्रेष्ठ, भगवत्भक्तों के आराधन में तत्पर, सदाचार में आसक्त, बुद्धिमान्, एवं गुरुपादाम्बुजार्चक कहे गये हैं। ट—शुकदेव जी के अवतार **गालवानन्द** चैत्र बदी एकादशी, सोमवार, शुभयोग, बृष लग्न में उत्पन्न महायोगी, बुद्धिमान्, वेद वेदांत रत, ज्ञाननिष्ठ एवं उपदेशपरायण कहे गये हैं। ठ—यमराज के अवतार थे **रमादास**, जो चैत्र सुदि द्वितीया, शुक्रवार, चित्रा नक्षत्र, हर्षण योग, मेष लग्न में उत्पन्न तथा वैष्णवों की आज्ञा के पालने वाले, भगवद्धर्म सेवी एवं उदारबुद्धि कहे गये हैं। ड—**पद्मावती** जी की जन्मतिथि चैत्रशुक्ल त्रयोदशी, गुरुवार, उत्तरा-फाल्गुनी नक्षत्र, ध्रुवयोग, कर्क लग्न, दी गई है। वे आचार्य निष्ठावाली, धर्मज्ञ, धर्मतत्पर, गुरुभक्ति परायण, एवं दूसरी लक्ष्मी जी की भाँति कही गई हैं।

रामानन्द के प्रभाव के विषय में कहा गया है कि वे अपने शिष्य प्रशिष्यों से घिर कर पृथ्वी में निरन्तर सुशोभित होंगे। जगद्गुरु होकर वे कल्याण मार्ग के कारण, शुभ ज्ञान देनेवाले, जगत् में प्राणियों के ध्येय और पूज्य होंगे। उनके दर्शन, स्मरण, अथवा नाम लेने मात्र से पृथ्वी के लोग निस्संन्देह मुक्त हो जावेंगे। उनके मन्त्रमन्त्रार्थ भूषित मत का अवलम्बन कर पृथवी मुनि वृत्ति वाले पुरुषों से सुशोभित हो जायगी। शरच्चन्द्र की भांति उनकी उज्ज्वल पावनकीर्ति का स्मरण कर लोग पापमुक्त हो जायंगे। उनकी कीर्ति भक्ति, ज्ञान एवं कल्याणदायिनी होगी, उससे लोगों का मोह दूर हो जायगा। रामानन्द मूर्तिमान् धर्म की भांति होंगे। उनसे शत्रु परास्त होंगे। अतः रामानन्दीय वैष्णवों को प्रतिवर्ष उनका जन्मोत्सव करना चाहिये। उनकी पूजा कर मनुष्य मनवांछित फल को पायेगा। इसके उपरान्त रामानन्द स्वामी के पूजन की विधि कही गई है, जिसका उद्धरण यहाँ अनावश्यक है।

स्वामी जी की दिग्विजय का भी यहां संक्षेप में उल्लेख किया गया है। अपने द्वादश सूर्य सदृश शिष्यो से घिर कर विष्णु की भांति रामानन्द इस पृथवी पर भ्रमण करते हुए, विशेष कर, द्वारकादि तीर्थों में श्रुति-स्मृति आदि से उत्पन्न वादों से शत्रुओं को पराजित करते हुए उन्हें राममन्त्र का उपदेश देते हुए आसमुद्र चारों दिशाओं में विचरण करते हुए, नास्तिकों को पराजित कर लोक-अज्ञान को दूर करते हुए एवं अनेक गुणों का लोगों में संचार करते हुए सुशोभित होंगे। वे प्रकृति से शीलवान्, दयासागर, महान्, धर्मत्राणार्थ अवतीर्ण विष्णु जी ही होंगे। वे भगवद्भक्ति वृत्ति वाले, विद्यावान्, निस्पृही, एवं आत्माराम होंगे। वे उदार कीर्ति होंगे, योगियों में अग्रगण्य, पाखण्डनाशक, सौशील्यादि गुणों के वर्द्धक होंगे। उनके दर्शनमात्र से तीनों ताप मिट जांयगे। वे वेदों के गुह्यार्थ का भी प्रकाश करेंगे और गुण, शील, शास्त्र, और कर्मों से समस्त शत्रुओं को पराजित करेंगे। इस प्रकार उनसे विश्व का अपार मंगल होगा।

स्वामी जी के १०८ नाम भी इस ग्रन्थ में गिनाये गये हैं। जिनमें उन्हें रामानन्द, रामरूप, राममंत्रार्थविद्, कवि, राममंत्रप्रद, रम्य, राममंत्ररत, प्रभु, योगिवर्य, योगगम्य, योगज्ञ, योगसाधन, योगिसेव्य, योगनिष्ठ, योगात्मा, और योगरूपधृक् भी कहा गया है। उन्हें वाग्मी, सुदर्शन, जगतपूज्य, एवं ध्रुव भी कहा गया है। गुणवर्ग के द्योतक पहले अक्षर र, य, श, म, भ, अ, सु, प, अ, स, ज, आदि हैं, और अन्त में कहा गया है कि कृच्छ्र चान्द्रायणैकादशी, जयन्ती, आदि व्रतों के भी आचरण करनेवाले रामानन्द जी थे।

अगस्त्य-संहिता की प्रामाणिकता—'अगस्त्य-संहिता' की रचना कब हुई और किसने स्वामी जी के जीवन-वृत्त का सकलन किया, यह नहीं कहा जा सकता। इसको प्रामाणिकता के सम्बन्ध में केवल इसी दृष्टिकोण से विचार किया जा सकता है कि इसके भविष्योत्तरखण्ड में प्राप्त स्वामी जी का जीवन-वृत्त प्रामाणिक है या नहीं ? निम्नलिखित कारणों से अगस्त्य सहिता की स्वामी जी सम्बन्धी कथा प्रामाणिक मानी जा सकती है।

१—इसमें स्वामी जी का जो भी जीवन-वृत्त दिया गया है, वह चामत्कारिक घटनाओं से हीन है। रामानन्द जी की जन्म-तिथि, जन्म-स्थान, गुरु, शिक्षा-दीक्षा, आदि के सम्बन्ध में जो कुछ मत इस ग्रन्थ में दिया गया है, वह एक ओर तो रामानंद सम्प्रदाय में निर्विवाद मान्य है, दूसरे उनकी सत्यता विभिन्न साक्ष्यों के आधार पर सिद्ध भी कर दी गई है। डा० भण्डारकर, डा० ग्रियर्सन, डा० वर्थ्वाल, आदि विद्वानों ने 'अगस्त्य संहिता' के आधार पर स्वामी जी की जन्मतिथि सं० १३५६ वि मानी है। विभिन्न दृष्टियों से भी देखने पर यह असगत नहीं प्रतीत होती। हम इसे प्रामाणिक तिथि मानते हैं, इस सम्बन्ध में हम विभिन्न मतों की समीक्षा स्वामी जी का जीवन-वृत्त उपस्थित करते समय करेंगे।

२—इस ग्रन्थ में स्वामी जी के शिष्यों की संख्या तथा नाम वही दिये गये हैं, जो भक्तमाल में भी लगभग मान्य हैं; केवल उन्हें किसी-न-किसी महाभागवत का अवतार मान लेने की प्रवृत्ति अगस्त्य-संहिता में विशेष है। इतनी छूट तो किसी भी साम्प्रदायिक व्यक्ति को अपने महापुरुषों के संबंध में लिखते समय दी जानी ही चाहिये। यह अवश्य है कि शिष्यो के जन्म के संवतों का यहाँ कोई उल्लेख नहीं है।

३—स्वामी जी के महत्व तथा उनकी दिग्विजय के वर्णन में कुछ भी अत्युक्ति नहीं की गई है। लेखक का दृष्टिकोण बहुत कुछ निष्पक्ष एवं उदार प्रतीत होता है। इसी प्रकार जब उसने स्वामी जी के १०८ नामों को गिनाया है, तब भी उनके गुणों पर ही विशेष ध्यान रक्खा गया है।

जो हो, अगस्त्य-संहिता का दृष्टिकोण पर्याप्त निष्पक्ष है। उसे संप्रदाय (रामानंदी) की पूरी मान्यता एवं विश्वास प्राप्त है। साथ ही विभिन्न दृष्टियों एवं साक्ष्यों के अनुसार देखने पर भी उससे प्राप्त स्वामी जी का जीवन वृत्त अप्रामाणिक नहीं ठहरता। अपने अध्ययन में हमने इस ग्रन्थ से प्राप्त तिथि,

तथा जन्म-स्थान, माता-पिता आदि निर्देशों की प्रामाणिकता की जांच भी प्रसंगानुकूल की है।

भविष्य पुराण :—'भविष्य पुराण' के प्रतिसर्ग पर्व, चतुर्थ खण्ड, सप्तम अध्याय में रामानन्द के अवतार की कथा दी हुई है।[१] रामानन्द की कथा कहने के पूर्व देवताओं को सूर्य के प्रभाव की एक गाथा सुनाई गई है, जिसमें मायावती के मित्रशर्मा और कलसेन राजा की चित्रिणी नामक द्वादशवर्षीया कन्या एक दूसरे पर गंगाद्वार में आकृष्ट होते हैं और सूर्य की पूजा कर उन्हीं की कृपा से विवाह बन्धन में बँध भी जाते हैं। अन्त में १०० वर्ष तक निर्जर रह कर आनन्दमय जीवन व्यतीत करते हुए वे मृत्यु के पश्चात् सूर्य में मिल जाते हैं।

सूर्य की इस गाथा को देवताओं के साथ देवराज ने सुना और प्रत्यक्ष ही भास्कर सूर्य को देखा। भक्ति नम्र देवों को देखकर तिमिर विनाशक सूर्य ने देव कार्य साधक वाणी में कहा कि, 'मेरे अंश से पृथ्वी पर एक पुत्र उत्पन्न होगा' और यह कह कर अपने बिम्ब की तेजराशि को उन्होंने काशी में केन्द्रित कर दिया। इसीसे कान्यकुब्ज ब्राह्मण देवल के पुत्र-रूप में रामानन्द का जन्म हुआ। यह बालक बाल्यावस्था से ही ज्ञानी व रामनामपरायण था। माता-पिता से त्यक्त होकर वह जब राघव की शरण गया, तब चतुर्दश कला युक्त साक्षात् भगवान् सीतापति ने प्रसन्नता से उसके हृदय में निवास किया। इस प्रकार सूत जी कहते हैं कि सूर्य के अंश से उत्पन्न बलवान् हरिभक्त रामानन्द की यही कथा है।

रामानन्द के शिष्यों के सम्बन्ध में इस प्रतिसर्ग पर्व में अनेक संकेत मिलते हैं। इसके अनुसार **रैदास**[२] मानदास चमार के पुत्र थे। ये एक बार काशी आये और वहां उन्होंने रामभक्त कबीर को पराजित किया। इसके पश्चात् वे शंकराचार्य के पास शास्त्रार्थ के लिये गये। पूरे रात दिन दोनों में शास्त्रार्थ होता रहा, और अन्त में ब्राह्मणों के नेता शंकराचार्य द्वारा पराजित होकर वे रामानन्द के पास आये और उनके शिष्य हो गये। **त्रिलोचन**[३], **नामदेव**[४] जिन्होंने दिल्ली के सिकन्दर सुल्तान द्वारा प्राप्त आधी करोड़ मुद्राओं से काशी में एक

१—श्लोक ५२-५८।

२—वही, अध्याय १८, श्लोक ५३-५५।

३—वही, अध्याय १५, श्लोक ६४-६७।

४—वही, अध्याय १६, श्लोक ५१-५५, अध्याय २० श्लोक ६४-६५।

घाट बनवाया था तथा गुर्जर देश के नरश्री[१] (नरसी मेहता) आदि का काशी आकर रामानन्द का शिष्य होना कहा गया है। इसी प्रकार रामानन्द **रंकन,**[२] **सधना**[३] के गुरु **कबीर**[४], **पीपा**[५] और **नानक**[६] के भी गुरु कहे गये हैं। जिस प्रकार निम्बादित्य, विष्णुस्वामी, मध्वाचार्य, शंकराचार्य, बराहमिहिर, वाणी-भूषण, धनवन्तरि, भट्टो जी, रोपण, और जयदेव ने कांची, हरिद्वार, मथुरा, काशी, उज्जयिनी, कान्यकुब्ज, प्रयाग, उत्पलारण्य, इष्टिका, और द्वारका में 'सुकन्दर' द्वारा हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के लिये स्थापित यन्त्र को उलट डाला था, उसी प्रकार अयोध्या में स्वामी रामानन्द के एक शिष्य ने मुसलमान हो गये हिन्दुओं को फिर से वैष्णव बनाया।[७] कहा जाता है कि रामानन्द के प्रभाव से वे सभी पंच संस्कारों से संयुक्त हो गए। ऐसे वैष्णवों को संयोगी[८] कहा गया है। इसी प्रकार २२ वें अध्याय में यह भी कहा गया है कि बाबर द्वारा भ्रष्ट किये जाने पर शंकराचार्य के गोत्रज मुकुन्द ब्रह्मचारी अपने २० शिष्यों के साथ अग्निप्रवेश कर गये।[९] बाद में मुकुन्द ब्रह्मचारी अकबर के रूप में अवतरित हुए।[१०] सात शिष्य तो अकबर के दरबार में सुशोभित हुए[११], और शेष १३ विभिन्न स्थानों में चले गये।[१२] इनमें से ५ शिष्यों ने रामानन्द-सम्प्रदाय में दीक्षा ले ली। श्रीधर अनप के पुत्र तुलसी शर्मा के रूप में उत्पन्न हुए। ये पुराणों में निष्णात थे। अपनी पत्नी के उपदेशों से प्रेरित होकर राघवानन्द के पास आकर रामानन्द-सम्प्रदाय में शिष्यत्व स्वीकार करके काशी रहने लगे थे।[१३] शम्भु चन्द्रभट्ट की जाति में हरिप्रिया नाम से उत्पन्न हुए

१—वही, अध्याय १७, श्लोक ६०-६६।
२—अध्याय १६, श्लोक ८१।
३—वही, अध्याय १८ श्लोक ५०-५१।
४—वही, अध्याय १७, श्लोक ४०।
५—वही, अध्याय १७, श्लोक ८३-८५।
६—वही, अध्याय १७ श्लोक ८६-८७।
७—वही, अध्याय २१, श्लोक ४५-७५।
८—वही, अध्याय २१, श्लोक ५४-५५ और ५८।
९—अध्याय २२ श्लोक ९ से ११ तक।
१०—श्लोक ९-१७, वही।
११—वही, श्लोक २०-२६ तक।
१२—वही, श्लोक २७।
१३—वही, श्लोक २७ से २९।

और रामानन्द-सम्प्रदाय में दीक्षित होकर अपने आराध्य की प्रशंसा के गीत में निरत रहने लगे।[१] वरेण्य अग्रभुक् (पण्डित रघुबर मिट्ठूलाल शास्त्री के मत से कदाचित् अग्रदास)[२] के नाम से उत्पन्न हुए। ये ज्ञान-ध्यान में सदैव निरत रहते थे। ये भाषा छन्दों के कवि थे और रामानन्द-सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये थे।[३] मधुव्रतिन् कीलक (कदाचित् कील्हदास) के रूप में उत्पन्न हुए। उन्होंने रामलीला का प्रचार किया और अन्त में वे रामानन्द सम्प्रदाय में प्रवेश कर गये।[४] विमल दिवाकर नाम से उत्पन्न हुए और उन्होंने सीता-लीला का प्रचार कर रामानन्द-सम्प्रदाय में दीक्षा ले ली।[५]

इसी तृतीय प्रतिसर्गपर्व के चतुर्थ खण्ड में एक राम शर्मन् की भी कथा दी हुई है।[६] वह इस प्रकार है :—काशी में एक शिवोपासक रामशर्मन् थे। शिवरात्रि के दिन शिव ने प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिया और एक वर माँगने को कहा। शिव के इस कथन पर रामशर्मा ने उनसे कहा कि मेरे हृदय में वही देवता निवास करें, जिसका आप ध्यान किया करते हैं। शिव ने इस पर राम-लक्ष्मण का ध्यान और बलभद्र की पूजा देकर अपने को अन्तर्धान कर लिया। भक्त रामानन्द था और द्वादशवर्षीय कृष्ण चैतन्य के पास जाकर उनका शिष्य हो गया; और उन्हीं के कहने से उसने 'अध्यात्म रामायण' की रचना की। इस कथा पर टिप्पणी करते हुए पण्डित रघुबर मिट्ठूलाल शास्त्री जी ने लिखा है कि इसका तात्पर्य केवल इतना है कि काशी के रामानन्द ने शैव धर्म को छोड़ कर वैष्णव धर्म को अपनाने के थोड़े ही दिन बाद और अपने रामानन्दी-सम्प्रदाय की स्थापना के पूर्व 'अध्यात्म रामायण' की रचना की, और कृष्ण चैतन्य के पास जाकर उनका शिष्य हो जाना लेखक की कोरी कल्पना जान पड़ती है।[७] क्योंकि बिना देश-काल का विचार किये किसी-न-किसी बड़े

१—वही, श्लोक ३०-३१।

२—'दि आथरशिप आव् अध्यात्म रामायण', गंगानाथझा रिसर्च इन्स्टीस्यूट जर्नल पृ० २२३।

३—भ० पु० तृ० प्र० खण्ड ४ अध्याय २२ श्लोक ३१-३२।

४—वही, श्लोक ३२-३३।

५—वही, श्लोक ३३-३४।

६—खण्ड ४, अध्याय १६, श्लोक २१-३२।

७—दि आथरशिप आव् अध्यात्म रामायण, पृष्ठ २१६।

महात्मा को वह कृष्ण चैतन्य के पास शांतिपुर नदिया में भेजता है, और उससे उनका शिष्यत्व स्वीकार करवाता है।[१]

इसी खण्ड में रामशर्मा का एक और परिचय दिया गया है।[२] इसके अनुसार रामानुज दाक्षिणात्य आर्यशर्मा के घर उत्पन्न हुए थे, और रामशर्मा के छोटे भाई थे। रामशर्मा पतंजलि के अनुयायी थे। एक बार तीर्थयात्रा के संबंध में ये काशी आए। वहाँ अपने १०० शिष्यों से घिर कर उन्होंने शंकराचार्य से शास्त्रार्थ प्रारम्भ कर दिया। शंकर द्वारा पराजित होकर उनके शब्द-बाण से दुःख अनुभव करते हुए लज्जानन होकर रामशर्मा फिर अपने घर को लौट गए। फिर शास्त्र पारंगत रामानुज अपने भाई के शिष्यों से घिर कर काशी आए। वहाँ उन्होंने वेदान्त शास्त्र पर शंकराचार्य से शास्त्रार्थ किया। रामानुज कृष्ण के पक्ष में थे और शंकराचार्य शिव के। रामानुज ने शंकराचार्य को उन सभी शास्त्रों में पराजित किया, जिन जिनका उन्होंने अवलम्बन किया। अन्त में शुक्ल वस्त्र पहन कर शंकराचार्य रामानुज के शिष्य हो गए, और 'गोविन्द' का नाम उच्चारण कर उन्होंने अपने को पवित्र किया।

इस कथांश पर भी पण्डित रघुवर मिट्ठूलाल शास्त्री ने टिप्पणी की है—'यह कथा लेखक की कपोलकल्पना है। यदि इसका कोई अर्थ हो सकता है तो केवल यही कि इसमें शंकराचार्य के अद्वैत दर्शन पर कृष्ण-भक्ति की विजय दिखाई गई है। इस अद्वैत दर्शन के सामने रामानन्द को भी झुकना पड़ा जो भक्ति के स्वयं समर्थक थे, और अपने अनुयायियों (साम्प्रदायिकों) के अनुसार जिनकी आचार्य-परम्परा (जिसमें सभी मूलतः दाक्षिणात्य थे) रामानुज की अपेक्षा कहीं अधिक प्राचीन है।'[३]

'भविष्य-पुराण' की प्रामाणिकता—क—'भविष्य-पुराण' में रामानन्द का जीवन-वृत्त कब जोड़ा गया, यह कहना कठिन है, किन्तु इतना तो निश्चित् है कि यह अंश तुलसीदास के समय में अथवा उसके बाद ही जोड़ा गया होगा। रामानन्द-संप्रदाय इतना विस्तृत, दृढ़ एवं उदार बन चुका होगा कि उसमें अद्वैत मतवालों को भी कुछ-न-कुछ आकर्षण प्राप्त होता रहा होगा। मुकुन्द ब्रह्मचारी

१—वही, पृष्ठ २१६।

२—'भविष्य पुराण', चतुर्थ खण्ड अध्याय १४ श्लोक ८७ से ११८ तक

३—'दि आथरशिप आव् अध्यात्म रामायण'—पं० रघुबर मिट्ठूलाल शास्त्री, पृष्ठ २२१।

के शिष्यों की कथा से यही संकेत मिलता है। भक्त 'दिवाकर' नाभादास के समकालीन थे, भक्तमाल में उनका उल्लेख हुआ है।

ख—तृतीय प्रतिसर्ग के लेखक ने इतिहास के सत्य की पूरी अवहेलना की की है। रैदास और शंकराचार्य, रामानन्द, शंकराचार्य तथा रामानन्द और नानक (जन्म सं० १५२६ वि०) को समकालीन कहा गया है। इसी प्रकार त्रिलोचन (जन्म सं० १३२४ वि०)[१], नामदेव, (वि० १३२७-१४०७)[२] तथा नरसी मेहता (सं० १४७२-१५३८)[३], और नानक (सं० १५२६ जन्म)[४] को रामानन्द का शिष्य कहा गया है। एक तो इस प्रकार का उल्लेख भक्तमाल आदि प्राचीन ग्रन्थों में नहीं मिलता कि उपर्युक्त भक्त स्वामी जी के शिष्य थे, दूसरे यदि इसे सत्य मान लिया जाय तो रामानन्द का जीवनकाल कम-से-कम १३२४ वि० सं० से सं० १५३८ तक मानना पड़ेगा। इस प्रकार उनकी आयु कम-से-कम २०० वर्ष की ठहरती है, जो असम्भव है। इतना अत्युक्तिपूर्ण उल्लेख प्रतिसर्ग पर्व के लेखक की अनभिज्ञता का ही परिणाम है। इसी प्रकार लेखक राघवानन्द और तुलसीदास को समकालीन मानता है। फिर, राघवानन्द जी तुलसी शर्मा को क्यों रामानन्द-सम्प्रदाय में दीक्षित करते? इससे यह अनुमान कर लेना कि लेखक तुलसीदास का भी समकालीन प्रतीत नहीं होता, असंगत न होगा। उसका इतिहास-सम्बन्धी ज्ञान एकदम शून्य है।

ग—इस सर्ग में रामशर्मन् की कथा को देख कर कुछ विद्वानों ने अनुमान किया है कि वे रामानन्द ही हैं, अतः 'अध्यात्म रामायण' रामानन्द की ही कृति है। किन्तु रामानन्द को काशी निवासी और रामशर्मन् को दाक्षिणात्य (आचार्य शर्मन् का पुत्र तथा रामानुज का अग्रज) कहा गया है, फिर लेखक ने रामानुज, रामशर्मन्, चैतन्य, और शंकराचार्य को समकालीन मान कर पुनः अपनी इतिहास ज्ञान-शून्यता का परिचय दिया है। अतः रामशर्मन् और रामानन्द को भिन्न ही मानना होगा। यदि लेखक की इतिहास-सम्बंधी अज्ञानता का विचार न भी किया जाय तो भी रामानंद को लेखक ने स्पष्ट ही काशी में उत्पन्न एवं राघव का शिष्य कहा है तथा रामशर्मन् को दाक्षिणात्य और चैतन्य महाप्रभु से प्रभावित।

१—उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, परशुराम चतुर्वेदी, पृ० १२३।

२—वही, पृ० ६६।

३—वही, पृष्ठ ६१।

४—वही, पृष्ठ २८६।

घ—रामानन्दी भक्त रामानंद को राम का अवतार मानते हैं, सूर्य का नहीं; उनके पिता का नाम सम्प्रदाय की मान्यताओं तथा 'अगस्त्य संहिता' के आधार पर पुण्यसदन है, देवल नहीं। रामानन्द माता-पिता द्वारा परित्यक्त होकर राघव (राघवानन्द) की शरण गए, इसका कोई निश्चित् प्रमाण नहीं मिलता। रामानंद बाल्यकाल से ही भक्त एवं ज्ञानी थे, तथा उनका मुख्य निवास-स्थान काशी था। इसे प्रायः सभी साक्ष्य स्वीकार करते हैं।

निष्कर्ष :—ऊपर की विवेचना से यह स्पष्ट है कि 'भविष्य-पुराण' के समस्त उल्लेखों को प्रमाण-कोटि में नहीं लिया जा सकता है।

वैश्वानर संहिता—वैश्वानर संहिता की सूचना डाकोर से सं० १९६३ में प्रकाशित 'श्री रामानन्द जन्मोत्सव' ग्रंथ में पं० रामनारायणदास ने दी है। यह संहिता कहाँ से प्रकाशित हुई, अथवा कहाँ मिल सकती है, इसकी कोई भी सूचना पण्डित जी ने नहीं दी है। उनके द्वारा इस संहिता से निम्नलिखित श्लोक रामानन्द के संबंध में उद्धृत किये गए हैं :—

सोऽवातरज्जगन्मध्ये जंतूनां भवसंकटात्।
पारं कर्तुं हि धर्मात्मा रामानन्दस्स्वयं स्वभूः॥ १॥
माघे कृष्ण सप्तम्यां चित्रा नक्षत्र संयुते।
कुम्भलग्ने सिद्धि योगे सुसप्तदन्डगेरवौ॥ २॥
रामानन्दः स्वयंरामः प्रादुर्भूतो महीतले॥
कलौ लोके मुनिर्जातः सर्वजीवदयापरः॥
तप्तकांचनसंकाशो रामानन्दः स्वयं हरिः॥ ३॥

इसके पश्चात् ही निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया गया है :—

रसेषुत्र्यवनीसंख्ये वर्षे वैक्रम राजके।
माघस्यासितसप्तम्यां रामानन्दो ह्यभूद्भुवि॥ १॥

उपर्युक्त श्लोकों से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं :—

क—जन्तुओं के ताप को दूर करने के लिये स्वयं भगवान् धर्मात्मा रामानन्द के रूप में जगत् में अवतरित हुए थे।

ख—रामानंद स्वयं राम के अवतार थे।

ग—वे धर्मात्मा, सर्वजीवदयापर एवं तप्तकांचन की भाँति प्रकाशमय थे।

घ—रामानन्द का जन्म माघ कृष्ण सप्तमी, चित्रा नक्षत्र, कुम्भ लग्न, सिद्धि योग, सूर्य के उदय होने के सात दण्ड बाद सम्वत् १३५६ वि० में हुआ था।

इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान पूर्णतया संदिग्ध है, अतः हम इसकी प्रामाणिकता के विषय में कुछ भी नहीं कह सकते। फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि इस ग्रन्थ की उद्धृत पंक्तियों में रामानन्द के संबंध में जो कुछ भी कहा गया है, वह सम्प्रदाय की रामानन्द-सम्बन्धी धारणाओं के पूर्णतया अनुकूल है। रामानन्द-सम्प्रदाय में रामानन्द, राम के ही अवतार माने जाते हैं। उनकी जन्मतिथि भी सं० १३५६ वि० माघ कृष्ण सप्तमी मानी जाती है। 'अगस्त्य संहिता' में भी यही तिथि दी गई है। भण्डारकर जैसे विद्वान् भी इस तिथि को स्वामी जी के जन्म की प्रामाणिक तिथि मानते हैं।

वाल्मीकि-संहिता—वाल्मीकि संहिता की मुख्य देन इस बात में है कि इस ग्रन्थ में भगवान् राम के रामानन्दावतार में तीर्थराज प्रयाग में जन्म लेने का कारण बतलाया गया है। एक समय भगवान् शंकर ने पार्वती को 'मैथिली महोपनिषत्' (जो पूरा का पूरा इस ग्रन्थ में मिल जाता है) सुना कर कहा कि इस 'उपनिषत्' को सुन कर आचार्य का स्तवन करना चाहिये। इस पर पार्वती ने पूछा, 'वह कौन सा आचार्य है जिसकी उपासना की जाय?', तब शंकर ने बतलाया कि यों तो संसार में अनेक आचार्य हो चुके हैं, किन्तु पाखण्ड प्रचुर कलि में विष्णु धर्म प्रवर्तक रामानंद के रूप में स्वयं भगवान् राम अवतार लेंगे; और क्योंकि धर्म प्रचारक ब्राह्मण ही होते आए हैं, इसलिये वे महापुण्य प्रयाग में जन्म धारण कर सर्वशास्त्र संपन्न ब्रह्मचारी, महाव्रती होकर त्रिदण्ड धारण कर काशी में निवास करेंगे। उन्हीं का संस्तवन महापातक नाशक है। इस पर पार्वती को शंका हुई कि 'भगवान् राम को तो साकेत ही प्रिय है, फिर वे तीर्थराज प्रयाग में क्यों प्रकट हुए?' शंकर इसी प्रश्न का उत्तर इस प्रकार देते हैं:—

किसी समय प्रयाग में दस वर्षीय मनसुख नामक बालक बन में रह कर तपस्या किया करता था। अपने बालरूप में अपनी निर्व्याजरति देख कर भगवान् वहीं प्रकट हो गए, और उन्होंने मनसुख के साथ बहुत देर तक क्रीड़ा की। जब वे चलने लगे तब मनसुख को बड़ा दुख हुआ, पर उसने उन्हें रोका नहीं, प्रत्युत वन्य फलों से उनका सत्कार ही किया। इससे संतुष्ट होकर भगवान् ने उससे वर मांगने को कहा। मनसुख ने वर मांगा कि उसका उनसे अविचल

एवं ध्रुव संबंध बना रहे। 'एवमस्तु' कह कर भगवान् अन्तर्धान हो गये। मनसुख को बड़ा कष्ट हुआ कि जिस घर से वह दूर है उसी को बसाने का वरदान उसने भगवान् से मांग लिया। परन्तु भगवान् ने उसे स्वप्न में आश्वासन दिया और उसकी इच्छा को पूर्ण करने के लिये ही उन्होंने प्रयाग में जन्म धारण किया।

'वाल्मीकि संहिता' की प्राचीनता के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। इतना तो स्पष्ट ही है कि इस ग्रन्थ का पता तब तक लोगों को नहीं था जब तक इसका प्रकाशन नहीं हुआ था। इस बात की पुष्टि के लिये मैं इस ग्रन्थ के सम्पादक श्री भगवतदास ब्रह्मचारी द्वारा लिखित भूमिका से इन पंक्तियों की ओर विद्वद्वर्ग का ध्यान आकृष्ट करता हूँ :—

"हमने अब से पहले कभी इसलिये प्रयत्न नहीं किया था कि हम भी ससार में सर्वोच्च और साम्प्रदायिक गिने जावें। परन्तु अब हम नये युग में हैं........अब तो अपने धर्म, कर्म, रूप, मर्यादा, सभी पदार्थों की गवेषणा करनी है.........ऐसा करने से हम उसी रेखा पर खड़े रह जावेंगे जहाँ रह कर हमने अपनी उन्नति का मार्ग भुला दिया है........जहाँ से हमें पंथाई की उपाधि मिली थी और जहाँ रह कर हमने इस कलंकित उपाधि को स्वीकार कर लिया था।" ग्रन्थ की मूल प्रति के विषय में लिखते समय श्री रघुवरदास वेदान्ती ने इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में लिखा है कि "पुरातत्वानुसंधायिनी समिति ने अल्पकाल में ही श्री रामानन्द-सम्प्रदाय का बहुत उपकार किया है। यह समिति कुछ काल से इस चिन्ता में थी कि कोई ऐसा प्रामाणिक ग्रन्थ उपलब्ध हो जिसमें श्री रामानन्द सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का अच्छा वर्णन हो। अनवरत परिश्रम के बाद अन्त में अहमदाबाद में पण्डित वृन्दाबन शर्मा जी के यहाँ नारद पांचरात्रान्तर्गत 'श्री मद्वाल्मीकि संहिता' की एक प्रति उपलब्ध हो ही गई। साथ ही दूसरी प्रति पूने के पणशीकर के० वी० शर्मा जी से उपलब्ध हुई। इन्हीं दोनों प्रतियों के आधार पर इस ग्रन्थ का सम्पादन किया गया है।" ऊपर के उद्धरणों से स्पष्ट है कि 'वाल्मीकिसंहिता' का प्रकाशन किसी निश्चित् उद्देश्य से किया गया है। इधर जब से रामानन्द-सम्प्रदाय और रामानुज-सम्प्रदाय में परम्परा-संबंधी झगड़े चले हैं, तब से अनेक ग्रन्थ प्रकाश में आये हैं। 'आनन्द भाष्य' का भी प्रकाशन इसी संबंध में इस ग्रन्थ के प्रकाशित होने के आठ वर्ष बाद सन् १९२९ में अहमदाबाद से ही हुआ था। जब तक इन ग्रन्थों की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ न प्राप्त हो जाँय और उनकी पूर्ण परीक्षा न हो

जाय तब तक उनकी प्रामाणिकता नितान्त ही संदिग्ध है। जो हो, स्वामी जी के प्रयाग में जन्म लेने का जो कारण इस ग्रन्थ में बतलाया गया है, उससे हमारे अध्ययन को कुछ भी गति नहीं मिलती। इससे केवल इतना ही ज्ञात होता है कि सम्प्रदाय रामानन्द को राम का अवतार मानता है। राम को यद्यपि साकेत प्रिय है, परन्तु भक्त मनसुख के लिये उन्होंने अपने रामानन्दावतार में प्रयाग में ही जन्म लिया।

रसिक प्रकाश भक्तमाल—'रसिक प्रकाश भक्तमाल' के लेखक महन्थ जीवाराम जी ने इस ग्रन्थ में रामानन्द-सम्प्रदायान्तर्गत 'रसिक-सम्प्रदाय' के भक्तों का विवरण उपस्थित किया है। ये चिरान (छपरा) के रहनेवाले कान्यकुब्ज महात्मा शंकरदास के पुत्र और अयोध्या जानकी घाट के प्रसिद्ध रामायण टीकाकार महन्थ रामचरणदास के शिष्य थे। जीवाराम जी को शंकरदास जी ने ही अग्रदास कृत 'ध्यान मंजरी' दी थी[1], और बाद में चल कर महन्थ रामचरण दास जी ने इनमें माधुर्य भाव की भक्ति को पुष्ट कर दिया। इन्हीं से इनको 'अलि' नाम का सम्बन्ध भी मिला। इस ग्रन्थ की रचना सम्वत् १८६८ वि० के लगभग हुई थी। जीवाराम जी के शिष्य वासुदेवदास उपनाम जानकी-रसिक शरण के मनमें सं० १६१६ श्रावण शुक्ला ६ सोमवार को इसकी टीका करने की इच्छा हुई जो सं० १६४२ वि० में समाप्त हुई। ग्रन्थकार ने इसका रचनाकाल यों दिया है :—

श्रीजनक किशोरी व्याहदिन, उत्सव साजसमाज।
विपुल संत भाविक जहां लह्यो पूर्ण रसराज॥
श्री गंगातट सरस थल लहि चिरान स्थान।
छपरा मुख्य निकुंज में सोइसमाज की ध्यान॥
मनन करत आश्चर्य सुख भयो स्वप्न अनुकूल।
नवलभक्त माला रच्यो सकल सुमंगल मूल॥
संवत अष्टादश विशद मकर मास गत पांच।
दिवस मनोहर छयानवे प्रकट नवल-जस सांच॥
माधवसित अट्ठानवे नवमी विमल विलास।
नवल किशोरी जन्म दिन पूरन रसिक प्रकाश॥

रसिक-सम्प्रदाय में जीवाराम जो द्वितीय 'नाभा' कहे जाते हैं और इस 'भक्तमाल'

१—रसिक प्रकाश भक्तमाल, छं० २३४।

को वही स्थान प्राप्त है, जो रामानन्द-सम्प्रदाय में नाभादास कृत भक्तमाल को है। नाभाकृत भक्तमाल के प्रसिद्ध टीकाकार रूपकला जी ने इस ग्रन्थ को प्रामाणिक मान कर अपनी टीका में इससे प्रचुर उद्धरण दिया है।

इस ग्रन्थ में रसिक-सम्प्रदाय का इतिहास प्रस्तुत करते समय लेखक ने स्वामी रामानन्द, स्वामी राघवानन्द और स्वामी ह्यर्यानन्द के विषय में कुछ पंक्तियां लिखी हैं। माधुर्य-रस की परम्परा बतलाते हुए सर्व प्रथम लेखक ने स्वामी ह्यर्यानन्द के विषय में निम्नलिखित छप्पय लिखा है :—

चरन कमल वन्दों कृपालु ह्यर्यानन्द स्वामी।
सर्वसु सीताराम रहसि दशधा अनुगामी॥
वालमीकिवर शुद्ध सत्व माधुर्य रसालय।
दरसी रहसि अनादि पूर्व रसिकन की चालय॥
नित सदाचार मैं रसिकता अति अद्भुत गति जानिये।
जानकि वल्लभ कृपालहि शिष प्रतिशिष्य बखानिये॥[1]

आगे लेखक स्वामी राघवानन्द तथा रामानन्द जी के विषय में कहता है :—

रसिक राघवानन्द बसे काशी अस्थाना।
गुरुरूप शिवलये दई रसिकाई ध्याना॥
काल करालहिं जीति शिष्यकिय रामानन्दा।
प्रकटी भक्ति अनादि अवध गोपुर स्वच्छन्दा॥
आचारज को रूप धरि जगत उधारन जतन किय।
महिमा महा प्रसाद की प्रगट रसिक जन सुक्खदिय॥[2]

उपर्युक्त उद्धरणों से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं :—

स्वामी ह्यर्यानन्द 'दशधा भक्ति' के अनुगामी एवं सीताराम की रहस्यकेलि के उपासक थे। उन्होंने वाल्मीकि द्वारा प्रगटित शुद्ध माधुर्य रस का दर्शन कर लिया था। उनके सदाचार में भी अद्भुत ढंग की रसिकता मिली हुई थी। अपने शिष्य-प्रशिष्यों को उन्होंने भगवान् जानकी-वल्लभ की स्वयं-प्राप्त कृपा का वर्णन कर सुनाया था। राघवानन्द काशी में शिव की उपासना करते थे, किन्तु शिव ने उन्हें रसिकता का ध्यान दिया था। राघवानन्द ने कराल काल को जीत कर रामानन्द को शिष्य किया, जिससे अवध के गोपुरों में अनादि भक्ति

१—वही, पृष्ठ १० छप्पय ६।
२—वही, छप्पय १०, पृष्ठ १०।

स्वच्छंद प्रगट हो गई। रामानन्द ने आचार्य का रूप धारण कर संसार का उद्धार किया था। फिर तो रसिक जनों के मन में महाप्रसाद की महिमा ही प्रगट हो गई, इससे उन्हें सुख मिला।

इस ग्रन्थ के लेखक का प्रमुख दृष्टिकोण रामानन्द-सम्प्रदाय में शृंगारी-भक्ति का इतिहास प्रस्तुत करना रहा है। इसलिये उसने हर्यानन्द, राघवानंद और रामानन्द को भी रसिक मान लिया है। 'श्री वैष्णवमताब्जभास्कर' में स्वामी रामानन्द जी ने जीव और ईश्वर के सम्बन्धों का निरूपण करते हुए भार्या-भर्तृत्व सबम्न्ध भी दोनों में बतलाया है। स्वयं वे कैंकर्य भाव के उपासक थे। लेखक ने इसी संकेत के बल पर कदाचित् स्वामी जी को माधुर्योपासक मान लिया हो। आगे चल कर इस 'भक्तमाल' में रामानन्द-सम्प्रदाय में माधुर्य भाव के विविध रूपों के विकास का अच्छा इतिहास मिल जाता है। इसका हमने पूर्ण उपयोग 'रामानन्द-सम्प्रदाय का इतिहास तथा सम्बद्ध-शाखाएँ' वाले प्रकरण में किया है। अतः यहाँ अनावश्यक समझ कर इस प्रसंग को छोड़ दिया जा रहा है।

रसिक प्रकाश भक्तमाल की टीका—टीकाकार वासुदेवदास उपनाम जानकी रसिकशरण :

यह टीका सं० १९४२ वि० में समाप्त हुई थी। टीकाकार महन्थ जीवाराम जी के ही शिष्य थे। उन्होंने रामानन्द स्वामी के सम्बन्ध में मूल छप्पय पर टीका करते हुए लिखा है कि एक दिन शंकर मतानुयायी रामदत्त को बुला कर राघवानन्द ने कहा कि तुम्हारा काल समीप है जाकर अपने गुरु से शीघ्र इसका उपाय पूछो। गुरु ने राघवानन्द के पास ही उन्हें भेज दिया। राघवानन्द ने पंचसंस्कार, तत्वत्रय, रसिकरीति आदि देकर उन्हें शिष्य बना लिया और उनका नाम रामानन्द रक्खा।[१] आगे चल कर अनन्तानंद के प्रसंग में टीकाकार ने बतलाया है कि रामभक्ति का प्रचार शठकोप, रामानुज आदि कर गए हैं, बीच में यह मन्द पड़ गया था, रामानन्द ने इसे पुनः जाग्रत किया।[२]

इस प्रकार लेखक एक ओर रामानन्द का सम्बन्ध रामानुज-संप्रदाय से जोड़ता है और दूसरी ओर रामानन्द को राघवानन्द के यहाँ आने के पूर्व शिवोपासक (शंकर मतानुयायी) बतलाता है। भक्तमाल (नाभाकृत) के टीकाकार 'रूपकला' जी इस मत से सहमत है। अधिकांश विद्वान् इस मत को ठीक ही

१—रसिक प्रकाश भक्तमाल, टीका पृष्ठ १०-११।

२—वही, पृष्ठ १२-१३।

मानते हैं। रामानन्द-सम्प्रदाय में प्रचलित आधुनिक विचार धारा के अनुसार रामानन्द का जन्म से ही रामानन्द नाम था। उनका जन्म प्रयाग में हुआ था और उनके पिता पुण्यसदन ने उन्हें सीधे राघवानन्द के ही चरणों में अर्पित कर दिया था। 'अगस्त्य संहिता' भी इसी मत के पक्ष में है। फिर भी यह निश्चित् रूप से नहीं कहा जा सकता कि कौन सा मत सही है। जो हो, इस ग्रन्थ में श्री जानकी रसिक शरण ने किसी प्रचलित किंवदन्ती का ही सहारा लिया होगा।

टीकाकार ने प्रायः प्रत्येक छुप्पय की टीका लिखी है, और भक्तों की सामान्य-जीवनी पर भी प्रकाश डाला है। आगे हमें रामानन्द-सम्प्रदाय की उपशाखाओं का विवेचन करते हुए इस ग्रन्थ का सहारा लेना पड़ेगा। वहाँ इसका व्यापक उपयोग किया गया है।

मध्ययुग के अन्य ग्रन्थ—जिनमें रामानंद जी का उल्लेख किया गया है—

इस संबन्ध में गोस्वामी हरिवंश जी के शिष्य ध्रुवदास (वि० १६ वीं शताब्दी के अंत और १७ वीं का प्रारम्भ) कृत 'भक्तनामावली', 'व्यास जी का वर्णन', भगवतरसिक (श्रीहरिदास जी के शिष्य) जी कृत 'भक्त नामावली', मलूकदास कृत 'ज्ञानबोध' आदि का नाम लिया जा सकता है।

व्यास जी ने रामानन्द के साथ ही सेन, धना, रैदास, कबीर, पीपा, और सुरसुरानन्द आदि का भी स्मरण किया है। भगवतरसिक कृत भक्तनामावली में स्वामी रामानन्द तथा उनकी शिष्य-परंपरा में पीपा, सेन, धना, कबीर, रैदास, अग्रदास, नाभा, लाखा, और कूबा जी का उल्लेख किया गया है। मलूकदास कृत 'ज्ञानबोध' में रामानंद तथा कबीर, रैदास, धना, पीपा, सेन, कूबा, जंगी जी, ज्ञानी आदि का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार नागरीदास जी के ग्रन्थ 'पदप्रसंग माला' में भी कबीर और रैदास के नाम मिलते हैं, किन्तु यहाँ रामानन्द जी का कोई उल्लेख नहीं है। ध्रुवदास जी ने अपने ग्रन्थ 'भक्त नामावली' में रामानन्द, कबीर, रैदास, धना, पीपा, सेन, नाभा जी आदि के सम्बन्ध में निम्नलिखित उल्लेख किया है :

रामानन्द—रामानंद, अंगद, सोभू, हरिव्यास अरु छीत।
एक एक के नाम तें, सब जग होइ पुनीत ॥

भक्तनामावली, सं० राधाकृष्णदास
पृ० १०, दोहा १०३,

अन्यभक्त—जिनि जिनि भक्तनि प्रीति की ताके बस भए आनि।
सैन होइ नृप टहल कियो, नाम देव छाईछानि॥
जगत विदित पीपा, धना, अरु रैदास कबीर।
महाधीर दृढ़ एकरस, भरे भक्ति गंभीर॥

वही, दोहा ६८-६६ पृ० १०,

इन दोहों से केवल इतना ही ज्ञात होता है कि रामानंद एक बहुत बड़े संत थे, जो संसार को पवित्र करनेवाले थे। सेन के लिए भगवान् ने राजा की सेवा की थी, पीपा, धना, रैदास और कबीर गंभीर-महाधीर थे एवं रामरस-भक्तिभाव से भरे थे।

बा० राधाकृष्ण दास ने इन भक्तों के संक्षिप्त जीवन-चरित का उल्लेख करते हुए निम्नलिखित मत व्यक्त किए हैं—रामानन्द जी भक्तमाल के साक्ष्य पर दक्षिण देश निवासी सन्यासी थे, राघवानन्द ने उन्हें आसन्न मृत्यु का समाचार देकर योग द्वारा बचाया। रामानन्द उनके शिष्य हो गए, फिर बदरिकाश्रम की यात्रा करके पंचगंगाघाट काशी में बस गये। खान-पान संबन्धी मतभेद के कारण गुरु ने इन्हें स्वतंत्र मत चलाने का आदेश दिया। राधाकृष्णदास ने 'भारतवर्षीय उपासक संप्रदाय' तथाँ भक्तमाल के साक्ष्य पर रामानन्द को रामानुज परंपरा में पांचवाँ आचार्य माना है और कबीर का समय सं० १५४५ वि० में मानकर रामानंद का जीवन-काल सं० १४०० और १५०० वि० के बीच माना है। उसी ग्रन्थ के आधार पर उन्होंने स्वामी जी के शिष्यों के भी नाम दिए हैं, किन्तु भक्तमाल में उद्धृत नामों को उन्होंने अधिक प्रामाणिक माना है।

राधाकृष्णदास के मत से रामानन्द के रामरक्षास्तोत्र (भाषा) और कदाचित् रामानंदीय वेदान्त भाष्य आदि ग्रन्थ प्राप्त हैं। पहले को उन्होंने स्वयं देखा था।

ग :—आधुनिक ग्रन्थ—रामानन्द स्वामी के जीवन एवं उनके सम्प्रदाय पर प्रकाश डालने वाले आधुनिक साम्प्रदायिक ग्रन्थ :—

१—रामानन्द दिग्विजय (संस्कृत महाकाव्य)—लेखक भगवदाचार्य।
२—रामानन्दायन (अवधी महाकाव्य)—लेखक स्वामी जयरामदेव।
३—जगद्गुरु रामानन्दाचार्य—स्वामी देवदास।
४—भगवान् रामानन्दाचार्य—संपादक हरिचरण लाल वर्मा।

रामानन्द-दिग्विजय—इस ग्रन्थ के लेखक श्री भगवदाचार्य रामानन्द-सम्प्रदाय के एक प्रमुख विद्वान् हैं। ग्रंथ के प्रारम्भ में लेखक ने एक विद्वता पूर्ण वक्तृता भी दी है, जिसमें उसने स्वामी रामानन्द जी के जीवन पर प्रकाश डालने वाले विभिन्न ग्रन्थों की समीक्षा की है। उसमें आधुनिक पाश्चात्य एवं पूर्वीय विद्वानों के मतों का भी विस्तृत खण्डन-मण्डन किया गया है। लेखक जिन निष्कर्षों पर पहुँचा है, उन्हीं के आधार पर इस संस्कृत महाकाव्य की रचना की गई है। फिर भी ग्रन्थ चमत्कारपूर्ण घटनाओं एवं कल्पना की क्रीड़ाओं से अछूता नहीं रह सका है। है भी यह महाकाव्य ही, एक इतिहास ग्रन्थ नहीं।

इस ग्रन्थ के प्रमुख आधार 'अगस्त्य संहिता' और साम्प्रदायिक मान्यताएँ है। कहीं-कहीं स्वतंत्र कल्पना-शक्ति से भी काम लिया गया हैं। यद्यपि इस ग्रंथ से स्वामी जी के सम्बन्ध में कोई नई सूचना नहीं प्राप्त होती है, फिर भी साम्प्रदायिक धारणाओं को संगठित करने का श्रेय इस ग्रन्थ को प्राप्त है। इस ग्रंथ से प्राप्त जीवन-वृत्तकी प्रमुख विशेषताएँ ये हैं :—

१—इस ग्रन्थ में स्वामी जी के जन्म का कारण यवनों के अत्याचार से धरा का त्रस्त होकर देवताओं के साथ विष्णु के पास जाना और उन्हें अवतार लेने के लिये बाध्य करना कहा गया है। २—जन्मस्थान, जन्मतिथि, माता-पिता के संबंध में अगस्त्यसंहिता को ही प्रमाण स्वरूप लिया गया है। ३—बालक रामानन्द को काशी के राघवानन्द ने ही दीक्षा दी और अन्त में सन्यास विधि से त्रिदण्ड ग्रहण करा कर पृथ्वी पर राममंत्र के प्रचार का आदेश दिया। इसके अनन्तर रामानन्द पंचगंगा घाट पर ही रहने लगे। ४—अपने मत का प्रचार करने में रामानन्द को योगियों, कार्तिकेय सम्प्रदाय के दण्डियों, तारादेवी के उपासकों, शैवों, और मुल्लाओं आदि से विशेष संघर्ष करना पड़ा। इनमें दुर्जनानन्द योगी, तारोपासक अपार स्वामी एवं उनकी कन्या, महासेन नामक दक्षिणी विद्वान्, एक दूसरे दक्षिणी विद्वान् सत्यमूर्ति, सिद्धसेन जैन, मैसूर के सुरेश्वराचार्य आदि कुछ विशेष व्यक्ति हैं। स्वामी जी ने इन सबको परास्त कर रामभक्त बना दिया। ५—स्वामी जी के शिष्यों की संख्या वही है जो 'अगस्त्यसंहिता' में दी गई है। जन्मतिथियाँ भी वही हैं। केवल कुछ शिष्यों के माता-पिता का नाम तथा जन्मस्थान आदि और जोड़ दिये गये हैं। **अनन्तानन्द** के पिता का नाम शिवविश्वनाथ त्रिपाठी और जन्मस्थान अयोध्या के पास महेशपुर ग्राम कहा गया है। **सुरसुरानन्द** का जन्म स्थान लक्ष्मणपुर (लखनऊ) और पिता का नाम सुरेश्वर कहा गया है। **सुखानन्द** को उज्जैन के समीप त्रिपुर ग्राम के विद्वान्

त्रिपुरारि के गृह उत्पन्न कहा गया है। **नरहर्यानन्द** को बृन्दाबन के समीप एक ग्राम में महेश्वर ब्राह्मण के घर में उत्पन्न कहा गया है। **योगानन्द** का जन्म सिद्धपुर के पण्डित मणिशंकर के यहाँ कहा गया है। **कबीर** को भार्यावियोग से व्यथित आकाशगामी किसी देवता के वीर्यस्खलन से काशी के लहर तालाब में कमल के पत्ते पर उत्पन्न कहा गया है। इसी प्रकार **भावानन्द** का जन्म मिथिला के बहुर्वह ग्राम में रघुनाथ मिश्र के घर कहा गया है। शेष शिष्यों के सम्बन्ध में 'अगस्त्य संहिता' की ही सूचनाएँ दी गई हैं।

दिग्विजय—दिग्विजय के सम्बन्ध में स्वामी जी ने दो बार यात्राएँ कीं। पीपा के निमन्त्रण पर पहले वे गांगरौनगढ़ गए फिर वहाँ से रैवतक पर्वत, यादवस्थली सोमनाथ, द्वारका, आबू, पुष्करक्षेत्र, उज्जैन, अयोध्या आदि स्थानों का भ्रमण करते हुए काशी लौट आये। दूसरी बार की यात्रा में स्वामी जी महाराष्ट्र, महीशूर (मैसूर), अंग, बंग, कलिंग, मिथिला, आदि स्थानों का भ्रमण करते हुए पुनः काशी आ गये। इसमें उन्होंने अपने तत्ववाद का प्रचार किया और विरोधियों को परास्त किया। अन्त में उन्होंने अयोध्या जा कर धर्म भ्रष्ठ हिन्दुओं को मुसलमान से हिन्दू बनाया।

सम्प्रदाय का विस्तार—स्वामी जी ने मृत्यु-काल समीप जान कर अनन्तानन्द को काशी रह कर और सुरसुरानन्द को पंजाब, भावानन्द को दक्षिण, नरहर्यानन्द को उत्कल, गालवानन्द को कश्मीर, पीपा तथा योगानन्द को गुर्जर देश, धना, कबीर, रमादास और सेन को काशी रह कर धर्म एवं भक्ति प्रचार का आदेश दिया।

स्वामी जी का साकेत-गमन—अपने संदेशों को जनता तक पहुँचा कर पूर्णतया निश्चिंत होकर, स्वामी जी इन्द्र द्वारा भेजे गये विमान पर चढ़ कर साकेत धाम को चले गये। मृत्यु-तिथि मूल-ग्रंथ में नहीं दी गई है। भूमिका में लेखक ने स्वामी जी की मृत्यु तिथि विक्रमीय सं० १५०५ मानी है।

इस ग्रन्थ में भगवदाचार्य जी ने जिन नई तिथियों, व्यक्तियों एवं घटनाओं का समावेश किया है, वे उनकी कल्पना से प्रसूत ही लगती हैं, किसी प्रामाणिक आधार पर आश्रित नहीं। सम्प्रदाय के लोग भी दुर्जनानन्द, अपार स्वामी, महासेन, आदि के नामों से परिचित नहीं हैं। अनन्तानन्द के पिता का नाम शिवविश्वनाथ और ग्राम का नाम महेशपुर या त्रिपुर-ग्राम निवासी त्रिपुरारि, महेश्वर, सिद्धपुर के मणिशंकर, बहुर्वह ग्राम के रघुनाथ मिश्र आदि सभी नाम कल्पित ही प्रतीत होते हैं। यह बात अवश्य महत्वपूर्ण है कि रामानन्द के शिष्यों

में अनन्तानन्द, नरहर्यानन्द, योगानन्द, भावानन्द, आदि ब्राह्मण थे, शेष अन्य विभिन्न जातियों से सम्बन्धित थे। भगवदाचार्य ने इस ग्रन्थ में 'श्री वैष्णव मताब्जभास्कर' ग्रन्थ को स्वामी रामानन्द कृत कहा है।

रामानन्दायन—यह महाकाव्य अवधी भाषा में दोहा, चौपाई छन्दों में लिखा गया है। इसके लेखक स्वामी श्री जयरामदेव हैं। यह ग्रन्थ प्रसंग-पारिजात से पूर्णतया प्रभावित है। साथ ही बाल्मीकि संहिता, अगस्त्य संहिता एवं रामानन्द दिग्विजय आदि ग्रंथों से भी सहायता ली गई है। स्वामी रामानन्द के सम्बन्ध में कोई नवीन सामग्री यहाँ भी नहीं मिलती। यह अवश्य है कि यहाँ रामानन्द सम्प्रदाय के तत्व-सिद्धान्तों का संक्षेप में सुन्दर विवेचन उपस्थित किया गया है। सारी कथा ५ कांडों में वर्णित है—अवतार कांड, लोक-कल्याणकांड, उपदेश-कांड, दिग्विजयकांड, और उत्तम कांड। इनके विषय शीर्षकों से ही स्पष्ट हैं। इस ग्रन्थ में रामानन्द की जन्मतिथि वही दी गई है जो 'अगस्त्य संहिता' में है। माता-पिता का नाम, गुरु, शिक्षा-दीक्षा संस्कार आदि का वर्णन भी 'अगस्त्य संहिता' के आधार पर है। प्रयाग जन्म लेने का कारण 'बाल्मीकि संहिता' तथा 'प्रसंग पारिजात' के अनुसार है। पंचगंगा घाट पर रहते हुए स्वामी जी द्वारा प्रेत हो गये कवि भास को सद्गति भी दी जाने का उल्लेख कवि ने किया है। इसी प्रकार रामयज्ञ से प्रकट होकर रामानन्द ने अनेक रूप धारण कर लोगों को कृतार्थ किया। रामानन्द के शिष्यों के संबंध में 'प्रसंग पारिजात' का ही आधार लेखक ने लिया है। केवल एकाध स्थल पर थोड़ा सा हेर-फेर किया गया है, जैसे अनन्तानन्द की जन्मतिथि यहाँ सं० १३६३ वि० (प्रसंगपारिजात में १३४३ वि०) दी गई है। धना जाट को खीरी का निवासी कहा गया है, पद्मावती त्रिपुरा नगर के एक विप्र के घर उत्पन्न हुई थीं और गालवानन्द पयावान नगर में। रामानन्द के शिष्यों में चेतनदास का नाम भी जोड़ा गया है और कहा गया है कि स्वामी जी ने इन्हें 'रामनाम' की महिमा तथा जाप की गुप्तरीति बतलाई थी। इसी प्रकार योगानन्द को स्वामी जी ने अष्टयामीय सेवा का उपदेश दिया था।

रामानन्द की दिग्विजय के सम्बन्ध में यहाँ मिथिला, नैपाल, रामेश्वर, आदि के भी नाम लिये गये हैं। सिद्धपूर, नैमिषारण्य आदि का भी उल्लेख किया गया है। समकालीन व्यक्तियों में मीमांसक कुमारिलभट्ट तथा शृंगेरीमठ के शंकराचार्य (ग्रन्थ के लेखक के अनुसार मध्वाचार्य के छोटे भाई) का भी नाम लिया गया है।

लेखक के अनुसार स्वामी जी ने 'श्री वैष्णव-मताब्जभास्कर' तथा 'आनन्द भाष्य' नामक दो ग्रन्थों की रचना भी की थी और इनका प्रचार भी उन्होंने किया था। लेखक के अनुसार सम्प्रदाय के प्रमुख भक्त थे पयोहारी कृष्णदास, कील्ह, अग्र, तुलसीदास, नाभा, टीला, खोजी, बीरमा, अनभव, देव, मलूक, थम्भन, चेतन, चतुर्भुज, तथा रैदास की शिष्या मीरा।

ग्रन्थकार ने राममन्त्र-राज की परम्परा भी दी है :—

राम, सीता, हनुमान्, ब्रह्मा, वसिष्ठ, पराशर, वेदव्यास, शुक, बोधायन पुरुषोत्तम, गंगाधर, सदाचार्य, रामेश्वर, द्वारानन्द, देवानन्द, श्यामानन्द, श्रुतानन्द, चिदानन्द, पूर्णानन्द, श्रियानन्द, राघवानन्द, रामानन्द आदि इस पम्परा में क्रमशः आते हैं।

संक्षेप में इस ग्रन्थ की यही देन है।

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य—'जगद्गुरु रामानन्दाचार्य' ग्रन्थ के लेखक वैष्णव श्री देवदास जी 'देव' हैं। इस ग्रन्थ में लेखक ने स्वामी रामानन्द के जीवन की व्यापक रूपरेखा तो 'अगस्त्य-संहिता' के आधार पर ही निर्मित की है, किन्तु घटनाओं के विस्तार में यत्र-तत्र वाल्मीकि संहिता, भविष्यपुराण, और रामानन्द-दिग्विजय से भी उन्होंने सहायता ली है। यह जीवन-चरित गद्य में लिखा गया है, किन्तु लेखक ने स्वामी रामानन्द के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में विभिन्न प्रचलित मतों की समीक्षा करने का कोई प्रयास नहीं किया है। यहाँ रामानन्द को राघवानन्द जी का शिष्य मान तो लिया गया है, पर इस विवाद पर कोई प्रकाश नहीं डाला गया कि रामानन्द राघवानन्द के शिष्य होने के पूर्व किसी अद्वैती गुरु के शिष्य थे और उनका नाम रामदत्त या रामभारती था। वस्तुतः लेखक का दृष्टिकोण आलोचनात्मक है ही नहीं। जहाँ ग्रंथकार ने स्वामी रामानन्द की दिग्विजय का वर्णन किया है, वहाँ भी उन्होंने कोई ऐसा तीर्थ स्थान अथवा प्रदेश न बचा जहाँ स्वामी जी को न पहुँचाया हो। गांगरौन, गिरिनार, प्रभासक्षेत्र, सोमनाथ, द्वारका, सिद्धपुर, आबू, आमेर, चित्तौड़, उज्जैन, चित्रकूट, प्रयाग, अयोध्या, गंगासागर, जगन्नाथ पुरी, रामेश्वरम्, विजयनगर, शिवकांची, विष्णुकांची, श्रीरंगम्, मैसूर, महाराष्ट्र, हरिद्वार, कश्मीर, सिन्ध, ब्रज, मिथिला, नेपाल आदि सभी स्थानों का नाम इस संबंध में दे दिया गया है। बीच-बीच में अनेक चमत्कार-पूर्ण घटनाओं का भी समावेश कर दिया गया है। कश्मीर-यात्रा के संबंध में कहा गया है कि स्वामी जी ने वहाँ अपने 'आनन्दभाष्य' पर अनेक प्रवचन दिए। लेखक के अनुसार स्वयं व्यास जी ने इस ग्रन्थ पर अपनी सम्मति दी और देश के विद्वानों ने स्वामी जी को

जगद्गुरु की उपाधि दी। बीच-बीच में लेखक ने साम्प्रदायिक मतवाद का विस्तृत विवेचन किया है, जिसमें स्वामी जी के ग्रन्थ 'श्री वैष्णव मताब्ज-भास्कर' का सहारा लेने के साथ-साथ उसने स्वतंत्र मतों का भी समावेश कर दिया है, जो स्वामी जी की तत्संबंधी मान्यताओं के समझने में विशेष सहायक नहीं होते। ग्रन्थकार के अनुसार 'श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर' की रचना स्वामी जी ने आबू में की थी।

इस ग्रन्थ में एक बात अवश्य ही उल्लेखनीय है, वह यह कि लेखक के अनुसार स्वामी जी का साकेत गमन वि० सं० १५२६ वैशाख सुदी ३ को हुआ था। इस प्रकार स्वामी जी की आयु १७० वर्ष ठहरती है। किसी विशेष प्रमाण के अभाव में इतनी लम्बी आयु मान लेना उचित एवं तर्कसंगत नहीं प्रतीत होता। एक दूसरी साम्प्रदायिक धारणा के अनुसार स्वामी जी का देहावसान सं० १४६७ वि० में हुआ था, जो अधिक तर्क-संगत एवं प्रामाणिक प्रतीत होता है। नाभा जी के कथन 'बहुत कालि वपु धारिकै प्रणतजनन को पार दियो।' को बहुत दूर तक नहीं खींचना चाहिए।

समग्रतः इस ग्रंथ से स्वामी जी के सम्बन्ध में हमें कोई नवीन प्रामाणिक सूचना नहीं मिलती।

भगवान् रामानन्दाचार्य—इस ग्रन्थ के सम्पादक हैं श्री हरिचरणलाल वर्मा शास्त्री। रामानन्द स्वामी का जीवन, उनकी धारणा, उनके ग्रंथ, उनके सम्प्रदाय आदि के सम्बन्ध में विभिन्न रामानन्दी-विद्वानों द्वारा लिखित निबंधों का अच्छा संग्रह इस ग्रन्थ में किया गया है। सम्प्रदाय के आधुनिक प्रमुख विद्वानों की अपने संप्रदाय के उत्पत्ति-विकास आदि के सम्बन्ध में जो धारणाएँ हैं वे प्रामाणिक रूप से इस ग्रन्थ में प्राप्त होती हैं, अतः इसका महत्त्व पर्याप्त बढ़ जाता है। इस ग्रन्थ से हमें निम्नलिखित सूचनाएँ प्राप्त होती हैं :—

जहाँ तक स्वामी जी की जन्म-तिथि, जन्म-स्थान, माता-पिता, गुरु आदि का प्रश्न है, लगभग सभी विद्वान् (श्री रामपदार्थ देव जी 'इन्दु' श्री वैष्णव, श्री रामाचरण, श्री शरण जी शास्त्री, श्री बाबू लाल भार्गव बी० ए०) 'अगस्त्य संहिता' के मत से सहमत हैं। स्वामी रामपदार्थ देव जी के अनुसार रामानन्द स्वामी ने 'श्री वैष्णव मताब्ज-भास्कर', 'आनन्दभाष्य', 'गीताभाष्य' 'रामार्चन पद्धति' आदि ग्रन्थों की रचना की। पं० अवधकिशोर दास और श्री रामाचरण शास्त्री ने केवल प्रथम तीन का ही उल्लेख किया है। श्री अच्युतानन्द दत्त ने 'आरती कीजै हनुमानलला की' पद को स्वामी जी कृत माना है। स्वामी जी के

मत को रामानन्दी विद्वानों ([illegible] वेदान्ती, रामपदार्थ देव, देवदास) ने विशिष्टाद्वैत ही माना है। श्री बाबूलाल भार्गव बी० ए० के अनुसार स्वामी जी के शिष्यों में कबीर, अनन्तानन्द, सुखानन्द, नरहर्यानन्द, सुरसुरानन्द, पीपा, भावानन्द, धना, रैदास, सेन, पद्मावती, गालवानन्द, योगानन्द, यादवानन्द आदि प्रमुख थे। इनके संबंध में प्रायः वही सूचनाएँ दी गई हैं, जो भक्तमाल और उसकी प्रियादास तथा रीवांनरेश रघुराज सिंह की टीकाओं में मिलती हैं। केवल एक बात सेन के सम्बन्ध में उल्लेखनीय है, वह यह कि वे दाक्षिणात्य थे। श्री अच्युतानन्द दत्त के अनुसार स्वामी जी के एक शिष्य निरन्जन थे, जो पहले मुसलमान थे और जिनका नाम उस समय नूरूद्दीन था। श्री रामाचरण शरण के अनुसार स्वामी जी ने भूमंडल पर दिग्विजय कर अपनी भक्ति-पद्धति का प्रचार किया। रामानन्द ने अपने उदार दृष्टिकोण के कारण स्वामी राघवानन्द की आज्ञा से एक नए सम्प्रदाय की स्थापना की (श्री अच्युतानन्द दत्त), किन्तु अन्य रामानन्दी विद्वान् ऐसा नहीं मानते। पंडित अवधकिशोरदास के अनुसार वास्तव में रामानन्द सम्प्रदाय ही श्री सम्प्रदाय है। इसकी परमाचार्य सीता जी हैं। रामानुज-सम्प्रदाय तो लक्ष्मीसम्प्रदाय है। श्री देवदास जी तो रामानुज-सम्प्रदाय को सम्प्रदाय ही नहीं मानते, क्योंकि उसका प्रचार कलियुग में हुआ है। उन्होंने श्री-सम्प्रदाय से रामानन्द-सम्प्रदाय का ही तात्पर्य लेने के लिये एक दूसरा तर्क भी दिया है। उनके अनुसार अब से तीन सौ वर्ष पूर्व जब वैष्णवों ने 'चतुः सम्प्रदाय' की स्थापना की तब 'रामानुज-सम्प्रदाय' उससे अलग ही रहा और रामानन्द-सम्प्रदाय को ही 'श्री सम्प्रदाय' के नाम से अभिहित किया गया। इस रामानन्द-सम्प्रदाय की परम्परा यों है :—सीता, हनुमान्, ब्रह्मा, वसिष्ठ, पराशर, व्यास, शुकदेव, पुरुषोत्तमाचार्य, बोधायन आदि। श्री बाबूलाल भार्गव ने धर्मसूरी, विजयसूरी, सत्यविजय, आदि जैनों तथा सिकन्दर लोदी को स्वामी रामानन्द जी का समकालीन बतलाया है। रामानन्द-सम्प्रदाय में अखाड़ों और उनके कर्तव्य के सम्बन्ध में श्री भगवान्दास जी खाकी ने अच्छा विवरण उपस्थित किया है। श्री भगवदाचार्य ने श्री वैष्णवों के पंच संस्कार पर प्रकाश डाला है। स्वामी रामानन्द की मृत्यु के संबंध में केवल श्री रामपदार्थ देव जी ने ही संकेत किया है। उनके अनुसार स्वामी जी सं० १४६७ वि० में १११ वर्ष की आयु में साकेतधाम चले गए।

संक्षेप में इस ग्रंथ की यही देन है।

ग—आधुनिक ग्रन्थ

हिन्दी साहित्य के प्रमुख इतिहास तथा कुछ प्रमुख धार्मिक इतिहास—

१—विल्सन—एसेज़ आन् दि रेलिजस सेक्ट्स अव् हिन्दूज़

२—गार्सां द तासी—इस्त्वार द ला लितरात्यूर ऐन्दुई एं ऐन्दुस्तानी—अनुवादक डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, एम० ए०, डी० लिट्०

३—शिवसिंह सेंगर—शिवसिंह सरोज।

४—ग्रियर्सन, एब्राहम जार्ज—१—माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर अव् हिन्दोस्तान।
२—जर्नल अव् रायल एशियाटिक सोसायटी अव् बंगाल (१६२० ई०)
३—इन्साइक्लोपीडिया अव् रेलीजन एण्ड एथिक्स।
४—इण्डियन ऐण्टीक्वेरी वाल्यूम ३२—नोट्स आन तुलसीदास।
५—नागरी प्रचारिणी पत्रिका।

५—मिश्रबन्धु—मिश्रबन्धु विनोद, प्रथम भाग।

६—एडविन ग्रीब्ज़—ए स्केच अव् हिन्दी लिटरेचर।

७—एफ० ई० के०—ए हिस्ट्री अव् हिन्दी लिटरेचर।

८—रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास।

६—डा० श्यामसुन्दरदास—हिन्दी साहित्य।

१०—हरिऔध—हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास।

११—डा० रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।

१२—डा० पीताम्बरदत्त बर्थ्वाल—हिन्दी काव्य में निर्गुण-सम्प्रदाय—अनु० श्री परशुराम चतुर्वेदी।

१३—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य की भूमिका, कबीर, हिन्दी साहित्य का इतिहास।

१४—परशुराम चतुर्वेदी—उत्तरी भारत की सन्त परम्परा।

१५—श्री बलदेव उपाध्याय—भागवत-सम्प्रदाय।

१६—कुछ अन्य ग्रन्थ।

ए स्केच अव् दि रिलीजस सेक्ट्स अव् दि हिन्दूज़—होरेस हेमन विल्सन—विल्सन महोदय ने अपने इस ग्रन्थ में स्वामी जी के जीवन चरित

के सम्बन्ध में कोई महत्त्वपूर्ण उल्लेख नहीं किया है। उन्होंने एक परम्परा का उद्धरण दिया है, जिसके अनुसार रामानन्द रामानुजाचार्य की पाँचवीं पीढ़ी—रामानुज—देवानन्द—हरीनन्द—राघवानन्द—रामानन्द—में थे, किन्तु इसको स्वीकार कर लेने पर रामानन्द का समय १३ वीं शताब्दी होगा। अतः विल्सन महोदय इस परम्परा को अस्वीकार करते हुए रामानन्द का समय १४ वीं शताब्दी के अन्त और १५ वीं० शताब्दी के प्रारम्भ में मानते हैं। इस सम्बन्ध में 'भक्त-माल' की जिस परम्परा का उद्धरण विल्सन महोदय ने किया है, उसमें हर्यानन्द का नाम नहीं है। आज भक्तमाल की सभी प्रचलित प्रतियों में रामानुज—देवाचार्य–हर्यानन्द–राघवानन्द–रामानन्द का ही क्रम मिलता है, कदाचित् विल्सन ने हर्यानन्द को ही हरीनन्द लिखा हो और देवाचार्य को देवानन्द। रामानुज-सम्प्रदाय से रामानन्द के अलग होने एवं नये सम्प्रदाय की स्थापना करने के सम्बन्ध में विल्सन महोदय ने एक जनश्रुति भी उद्धृत की है, जिसके अनुसार समस्त भारत का भ्रमण कर रामानन्द जब अपने मठ को लौटे तब उनके सहधर्मियों ने उनकी इस यात्रा में खानपान सम्बन्धी नियम के न पालन करने पर आपत्ति की और राघवानन्द ने भी इस आपत्ति को उचित समझा। फलतः रामानन्द को शेष शिष्यों से दूर भोजन करने का आदेश मिला। इस कठोर आज्ञा को अस्वीकार कर रामानन्द ने एक नए सम्प्रदाय को जन्म दिया और काशी में पंचगंगा घाट पर आकर अपना मठ स्थापित किया। विल्सन के समय में यह मठ ध्वस्त हो चुका था, किन्तु पास में ही एक पत्थर था जिस पर स्वामी जी के चरण अंकित कहे जाते थे। विल्सन ने स्वामी जी के ग्रंथों के सम्बन्ध में कोई सूचना नहीं दी है।[1]

१—डा० बर्थ्वाल का यह कहना कि प्रोफेसर विल्सन ने वेद पर उनके एक संस्कृत भाष्य की बात लिखी है (हिंदी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, अनु० परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ ३८), पता नहीं विल्सन के किस लेख के आधार पर है, यहाँ तो विल्सन ने स्पष्ट ही लिखा है :—

Shankar and Ramanuja writing to and for the Brahmanical order alone, composed chiefly, if not solely, Sanskrit Commentaries on the text of the Vedas or Sanskrit expositions of their popular doctrines and the teachers of these opinions, whether monastic or secular are indispensably of the Brahmanical caste–it does not appear that any works exist which are attributed to Ramanand himself but those of his followers are written in the provincial dialects etc.—'Religious sects of Hindus' पृ० ५७

विल्सन के अनुसार रामानन्द के अनुयायी 'अवधूत' कहे जाते हैं। उन्होंने रामानन्द के शिष्यों के नाम आशानन्द, कबीर, रैदास, पीपा, सुरसुरानंद, सुखानन्द, भावानन्द, धना, सेन, महानन्द, परमानन्द, श्रियानन्द आदि दिये हैं, जो भक्तमाल की सूची से कुछ भिन्न हैं। विल्सन ने भक्तमाल की भी सूची उद्धृत की है। प्रतीत होता है उन्होंने भक्तमाल की भाषा को ठीक नहीं समझा, अन्यथा रघुनाथ, सुखासुर, जीव आदि नाम तो न गिनाये गये होते। रघुनाथ शब्द भक्तमाल में रामानन्द के विशेषण की भाँति आया है। सुखानन्द और सुरसुरानन्द 'सुखासुर' समझ लिये गये हैं और जीव नाम किसी भी प्रचलित प्रति में नहीं मिलता। विल्सन ने किस प्रचलित प्रति के आधार पर यह उल्लेख किया है, स्पष्ट नहीं है। इन भक्तों के सन्बन्ध में शेष सूचनाएँ भक्तमाल और उस पर प्रियादास की टीका के आधार पर दी गई हैं। विल्सन ने रामानन्दी मठों के संगठन पर भी प्रकाश डाला है। विल्सन के अनुसार रघुनाथ या आशानन्द रामानन्द की गद्दी के उत्तराधिकारी हुए। जब कि समस्त वैरागी-परम्परा के अनुसार अनन्तानन्द ही रामानन्द की गद्दी पर बैठे थे। इस प्रकार अनेक भ्रान्तियाँ विल्सन महोदय को हो गई हैं। स्वामी अग्रदास के गुरु कृष्णदास पयोहारी को वल्लभ-सम्प्रदाय के कृष्णदास अधिकारी समझ कर उन्होंने नाभादास को रामानन्द-सम्प्रदाय से विलग मान लिया है। नाभादास और नारायणदास को भी एक न मान कर उन्होंने दो व्यक्ति माना है। इन सब भ्रान्तियों के होते हुए भी यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि विल्सन महोदय ने प्राचीन जनश्रुतियों का अच्छा उपयोग किया है और एक प्रकार से तत्कालीन प्रचलित सम्प्रदायों एवं पंथों के वैज्ञानिक अध्ययन की नींव भी उन्होंने ही डाली। उनके पश्चात् के लगभग सभी लेखकों ने उनको आधार मान कर रामानन्द के संबंध में मनमाने अनुमान लगाये हैं।

इस्त्वाँर दला लितरात्यूर ऐन्दुई ऐं ऐन्दुस्तानी—गार्सां द तासी के अनुसार "रामानन्द बनारस के फकीर या वैरागी, प्रसिद्ध हिन्दू सुधारक, रामानुज के शिष्य, और कबीर के गुरु, वैष्णवों के समस्त आधुनिक सम्प्रदायों के (मध्यवर्ती) सुधारक हैं। इनकी हिन्दी में लिखित कुछ धार्मिक कविताएँ हैं, जो आदि ग्रन्थ में सम्मिलित हैं। १४०० के लगभग यही व्यक्ति थे, जिन्होंने ईश्वर के समक्ष ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र सब की समानता सर्वप्रथम घोषित की। और जिन्होंने सब को बराबर अपने शिष्यों के रूप में ग्रहण किया: जिन्होंने यह घोषित किया कि सच्ची भक्ति वाह्य रूपों तक ही सीमित नहीं, किन्तु इन रूपों से ऊपर है। उन्होंने अपने प्रधान शिष्य कबीर के बारे में कहा है कि भले

ही वे जुलाहे हों ब्रह्मज्ञान के कारण वे ब्राह्मण हो गए हैं (दबिस्तान, शो और ट्रायर का अनुवाद, जिल्द २, पृष्ठ १८८)"। तासी ने कबीर का काल १४५० ई० कनिंघम के साक्ष्य पर माना है। धना के सम्बन्ध में उन्होंने भक्तमाल की ही कथा ली है। पीपा के विषय में लिखा है कि ये हिन्दू संत योगी थे। आदि ग्रन्थ में भी इनकी कविता मिलती है तथा ये बारहवीं शताब्दी के राजा शूरसेन के समय में जीवित थे। शेष कथा भक्तमाल के ही आधार पर दी गई है। इन्हें रामानन्द का शिष्य नहीं घोषित किया गया। रैदास के विषय में भक्तमाल की ही कथा तासी ने दी है। इन्हें स्वामी जी का शिष्य माना गया है। सेन के विषय में कहा गया है कि व्यवसाय की दृष्टि से ये नाई थे, ये वैष्णव थे। गुरु ग्रन्थ साहब में इनकी रचनाएँ मिलती हैं।

समीक्षा—१—तासी द्वारा दी गई सूचनाएँ अधिकतर भक्तमाल के साक्ष्य पर हैं, किन्तु उनमें कुछ भ्रान्तिपूर्ण भी हैं। जैसे रामानन्द रामानुज के शिष्य नहीं थे यह अनेक पुष्ट प्रमाणों से सिद्ध है, किन्तु तासी उन्हें रामानुज का शिष्य मानते हैं। २—रामानन्द ने पीपा को भी अपना शिष्य बनाया था, यह भक्तमाल से सिद्ध है। अतः तासी द्वारा दी गई पीपा जी की जीवन-तिथि नितान्त ही अप्रामाणिक एवं भ्रामक है। ३—तासी ने रामानन्द के शिष्यों के सम्बन्ध में कोई महत्वपूर्ण सूचना देने का प्रयास नहीं किया है।

शिवसिंह सरोज (शिवसिंह सेंगर) और माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर अव् हिन्दोस्तान (ग्रियर्सन कृत)—शिवसिंह सेंगर ने स्वामी रामानन्द के सम्बन्ध में कोई सूचना नहीं दी है, केवल एक स्थल पर सेन के प्रसंग में 'सेननापित बांधवगढ़ के सं० १५६० में उ०—हजारे में इनके कवित्त हैं। यह कवि स्वामी रामानन्द जी के शिष्य थे।' स्वामी रामानन्द का नाम लिया है। पंडित रूपनारायण पांडेय ने 'सरोज' के परिशिष्टांश में बतलाया है कि 'इन रींवाँ वाले सेन का जन्मकाल सं० १४५७ के लगभग है, सं० १५६० वाला सेन दूसरा है।' वस्तुत: सेंगर का उद्देश्य हिंदी साहित्य का इतिहास उपस्थित करना नहीं था। अत: उन्होंने कवियों के विषय में विशेष छान-बीन नहीं की थी। रामानन्द सम्प्रदाय के कुछ भक्तों की पंक्तियों को उद्धृत करते हुए शिवसिंह सेंगर ने एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सूचना स्वामी अग्रदास के संबंध में दी है। उनके अनुसार अग्रदास गलता गादी पर सं० १५९५ में उपस्थित थे। अग्रदास स्वामी रामानन्द के शिष्य अनन्तानन्द के शिष्य कृष्णदास पयोहारी के शिष्य थे। इनके शिष्य नाभा जी तुलसीदास के समकालीन थे। अतः इससे यह अनुमान कर लेना

अनुचित न होगा कि रामानन्द जी विक्रम की पंद्रहवीं शताब्दी में अवश्य ही वर्तमान रहे होंगे। कहा जाता है कि अग्रदास गलता की गादी पर बैठने के समय तक पूर्ण प्रख्यात हो चुके थे।

'सरोज' के आधार पर, किन्तु अधिक वैज्ञानिक ढंग से लिखे ग्रियर्सन महोदय के इतिहास में हमें रामानन्द के सम्बन्ध में कुछ व्यवस्थित सामग्री प्राप्त होती है। उनके अनुसार रामानन्द का आविर्भाव काल ईसा की चौदहवीं शताब्दी था। ग्रियर्सन साहब ने रामानन्द जी के कुछ जनभाषा में लिखे गीतों के पा जाने की भी सूचना दी है, किन्तु खेद है उन्हें अपने ग्रन्थ में उन्होंने उद्धृत नहीं किया। विल्सन को आधार मानने के कारण ग्रियर्सन महोदय ने भी कृष्णदास पयहारी (रामानन्दी) को कृष्णदास अधिकारी मान लिया है। 'भक्त-माल' में आये हुए अन्य रामानन्दी भक्तों की तिथियों को निर्धारित करने का भी प्रयास इस ग्रन्थ में लेखक ने किया है।

किन्तु, रामानन्द के सम्बन्ध में ग्रियर्सन महोदय की देन यहीं तक सीमित नहीं रह जाती। तुलसीदास पर 'इण्डियन ऐन्टीक्वैरी' में अपनी टिप्पणियां देते समय उन्होंने बाबा मोहनदास द्वारा प्राप्त रामानन्द की गुरु परम्परा दी है। इसमें उनका सम्बन्ध रामानुज-सम्प्रदाय से जोड़ा गया है। साथ ही उन आचार्यों के नाम (देवानन्द, श्रुतानन्द, नित्यानन्द आदि) भी इस परम्परा में आ गये हैं जो आधुनिक रामानन्दीयों द्वारा मान्य निजगुरु परम्परा में आते हैं। इस परम्परा को मानने के लिए कोई प्रमाण नहीं मिलता। परम्परा-सम्बन्धी प्रश्न पर आगे विचार किया जायगा।

ग्रियर्सन महोदय ने रामानन्द सम्बन्धी अपने अध्ययन को और आगे बढ़ाया है। 'इन्साइक्लोपीडिया अव् रेलीजन ऐण्ड एथिक्स' तथा 'रायल एशियाटिक सोसायटी के जर्नल' में उन्होंने रामानन्द के विस्तृत जीवन पर प्रकाश डाला है। 'अगस्त्य संहिता' से प्राप्त जीवन-वृत्त को प्रमाणिक मानते हुए उन्होंने फर्कुहर के इस मत का प्रत्याख्यान भी किया है कि रामानन्द दक्षिण से आये थे। रामानन्द के सम्बन्ध में उनके समय का निर्धारण भी ग्रियर्सन महोदय ने किया है। 'अगस्त्य संहिता' की तिथि (सं० १३५६ वि० में स्वामी जी का जन्म) उन्हें मान्य है। भण्डारकर जी ने भी इसे मान लिया है। ग्रियर्सन महोदय ने इस प्रचलित मत का भी खण्डन किया कि रामानन्द जी राघवानन्द स्वामी के शिष्य होने के पूर्व किसी अद्वैती गुरु के शिष्य थे। इस सम्बन्ध में भी उन्होंने 'अगस्त्य संहिता' और 'भक्तमाल' का साक्ष्य स्वीकार किया है। आगे चल कर

फ़र्कुहर ने उनके इस तर्क को स्वीकार भी किया। ग्रियर्सन महोदय ने रामानन्द का एक हिन्दी पद (आरति कीजै हनुमानलला की)॰ भी नागरी प्रचारिणी सभा की पत्रिका में छपवाया था। हिन्दी के इतिहासकारों ने इस पद को स्वामी जी कृत ही माना है।

मिश्रबन्धु-विनोद—मिश्रबन्धुओं ने विनोद के प्रथम भाग में रामानन्द के सम्बन्ध में कुछ सूचनाएँ दी हैं। उनका आधार विल्सन महोदय का उपर्युक्त ग्रंथ है। स्वामी जी का समय इन्होंने सं० १४५६ वि० माना है। राधाकृष्णदास का अनुकरण करते हुए 'रामरक्षा स्तोत्र' तथा 'रामानन्दीय वेदान्त' को स्वामी जी कृत मानने में उन्होंने सन्देह प्रगट किया है। इनको नागरी प्रचारिणी सभा की खोज में 'रामरक्षा स्तोत्र' और 'ज्ञानतिलक' नामक दो ग्रंथों का पता भी चला था।

ए स्केच अव् हिन्दी लिटरेचर—ग्रीव्ज़ महोदय ने रामानन्द के सम्बन्ध में कोई नई सूचना हमें नहीं दी है। उन्होंने रामानन्द को केवल एक वैष्णव आचार्य एवं सुधारक के रूप में ही स्वीकार किया है, ग्रंथकार या आचार्य के रूप में नहीं। इनके अनुसार रामानन्द के कुछ पद हिन्दी में प्रचलित थे, किन्तु खेद है कि ग्रीव्ज़ महोदय ने अपने इतिहास में उन्हें नहीं उद्धृत किया।

ए हिस्ट्री अव् हिन्दी लिटरेचर—'के' महोदय ने रामानन्द का समय सन् १४०० से सन् १४७० तक माना है। पीपा का समय १४२५ ई० और धन्ना का १४१५ ई० मानते हुए ही कदाचित् स्वामी जी का समय उन्होंने निश्चित् किया है, किन्तु स्वयं पीपा और धन्ना का समय भी अनुमानाश्रित ही प्रतीत होता है। अपने मत के समर्थन में उन्होंने कोई प्रमाण नहीं प्रस्तुत किया है। रामानन्द को उन्होंने ग्रन्थकार नहीं माना है, किन्तु 'आदि ग्रन्थ' में उपलब्ध स्वामी जी के पद का उन्होंने उल्लेख किया है, और यह भी कहा है कि उन्होंने हिन्दी में अनेक पदों की रचना की थी। लेखक ने उन्हें उद्धृत नहीं किया है। स्वामी जी के शिष्यों में भी उन्होंने अनन्तानन्द, सुरसुरानन्द, सुखानन्द, आदि का कोई उल्लेख नहीं किया। जो भी सूचनाएँ लेखक ने दी हैं, उनका कोई प्रामाणिक आधार उसने नहीं दिया।

हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने स्वामी रामानन्द जी के जीवन-चरित पर तो कोई विशेष प्रकाश नहीं डाला, किन्तु रामानन्द-सम्प्रदाय का उन्होंने विस्तृत अध्ययन उपस्थित किया है। शुक्ल जी के अनुसार रामानन्द जी का समय विक्रम की पंद्रहवीं शती के चतुर्थ और

सोलहवीं शती के तृतीय चरण के भीतर माना जा सकता है। विद्वान् शुक्ल जी ने इस सम्बन्ध में अपने तर्क भी उपस्थित किये हैं। शुक्ल जी के अनुसार रामानन्द रामानुज की परम्परा से सम्बद्ध थे। रामभक्ति शठकोप आदि आचार्यों को भी मान्य थी। शुक्ल जी के अनुसार रामानन्द जी के नाम पर आनन्दभाष्य, श्री वैष्णवमताब्जभास्कर, श्री रामार्चन पद्धति, रामरक्षा स्तोत्र, योगचिन्तामणि भगवद्गीता भाष्य आदि अनेक ग्रन्थ प्रचलित हो गये हैं, पर इनमें 'श्री वैष्णव मताब्ज भास्कर' और 'रामार्चन पद्धति' को ही शुक्ल जी ने स्वामी जी कृत माना है, उनके अनुसार 'भाष्य' का प्रचार इसलिये किया गया, क्योंकि कुछ रामानन्दी विद्वान् रामानन्द को रामानुज-सम्प्रदाय से स्वतन्त्र विद्वान् सिद्ध करना चाहते हैं। इसी प्रकार 'श्री रामरक्षा स्तोत्र' और 'योगचिन्तामणि' को भी शुक्ल जी ने रामानन्द-सम्प्रदाय की 'तपसी-शाखा' द्वारा स्वामी जी के नाम पर चलाये हुए ग्रन्थ माना है। शुक्ल जी ने रामानन्द के सम्बन्ध में इस मत को कि 'वे अद्वैतियों के ज्योतिर्मठ के ब्रह्मचारी थे, और उन्होंने १२ वर्ष तक गिरिनार या आबू पर्वत पर योग साधना करके सिद्धि प्राप्त की थी' केवल जनश्रुति मात्र माना है। प्रमाणाभाव में वे इस कथन को महत्त्व नहीं देते। रामानन्द-सम्प्रदाय में योग के प्रवेश का कारण शुक्ल जी ने श्री कृष्णदास पयहारी द्वारा आमेर के योगियों को परास्त करना और अपनी सत्ता बनाये रखने के लिये रामानन्दीयों द्वारा योग का अपना लेना कहा है। शुक्ल जी रामानन्द को विशिष्टाद्वैती ही मानते थे। अतः 'आरति कीजै हनुमानललाकी' पद को वे स्वामी जी कृत ही मानते हैं, किन्तु 'आदि ग्रन्थ' में आए पद को वे किसी अन्य रामानन्द कृत मानते हैं, स्वामी रामानन्द जी कृत नहीं।

शुक्ल जी ने रामानन्द-सम्प्रदाय में सखी-भाव की भक्ति के प्रवेश का भी उल्लेख किया है, और इसको रामभक्ति पर कृष्ण भक्ति का प्रभाव माना है। शुक्ल जी रामभक्ति में सखी भाव का प्रवेश उचित नहीं समझते। इस भावना के पोषक रसिक-सम्प्रदाय का संक्षिप्त इतिहास भी शुक्ल जी ने दिया है। 'भक्त-माल' से प्राप्त सामग्री का शुक्ल जी ने पूरा उपयोग किया। इस प्रकार समग्रतः शुक्ल जी ने रामानन्द सम्बन्धी अध्ययन को बहुत ही ठोस एवं वैज्ञानिक रीति से आगे बढ़ाया। आगे के लेखकों ने ग्रियर्सन और शुक्ल जी के आधार पर अपने मत निर्धारित किये हैं।

हिंदी साहित्य—स्वामी जी के जीवन एवं रचनाओं के सम्बन्ध में डाक्टर श्याम सुन्दरदास ने कोई सूचना नहीं दी है। रामानन्द को श्री रामानुज-सम्प्रदाय से

सम्बद्ध मानते हुए उन्होंने इस जनश्रुति का प्रत्याख्यान किया है कि रामानन्द राघवानन्द के यहाँ आने के पूर्व किसी अद्वैती गुरु के शिष्य थे। डाक्टर दास के अनुसार रामानन्द का दृष्टिकोण भक्ति के क्षेत्र में बहुत उदार था। शूद्रों तक को उन्होंने अपना लिया था। डा० दास का समस्त मत विल्सन, ग्रियर्सन तथा फर्कुहर के आधार पर बना प्रतीत होता है। इस दृष्टि से रामानन्द सम्बन्धी अध्ययन को वे आगे न बढ़ा सके।

हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास—पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' जी ने अपने इस ग्रन्थ में रामानन्द जी के संबंध में कोई नई बात नहीं कही है। उनके ग्रन्थ का महत्व केवल इस बात में है कि उन्होंने धना के दो पद, सेन का एक पद और एक पद पीपा का अपने ग्रन्थ में उद्धृत कर दिया है, जिससे हम इन भक्तों के मतों के संबंध में अपनी कुछ धारणाएँ बना सकते हैं।

हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा, एम० ए०, पी एच० डी०। इस इतिहास में डा० वर्मा ने रामानन्द-संबंधी समस्त खोजों का पूर्ण उपयोग किया है। डा० वर्मा ने ग्रियर्सन, फर्कुहर, सर भंडारकर तथा भक्तमाल के टीकाकार भगवान् प्रसाद रूपकला के मतों की पूर्ण समीक्षा की है। वे रामानन्द को रामानुज-सम्प्रदाय से ही सम्बद्ध मानते हैं। रामानन्द के जीवन-वृत्त के संबंध में उन्होंने डा० ग्रियर्सन, भंडारकर, तथा रूपकला जी के मत का समर्थन करते हुए 'अगस्त्य संहिता' का ही साक्ष्य स्वीकार किया है। स्वामी जी की जन्मतिथि भी उन्होंने सं० १३५६ वि० ही मानी है। 'भक्तमाल' के आधार पर उन्होंने स्वामी जी के द्वादश शिष्यों का भी उल्लेख किया है। साथ ही उनका जीवन-वृत्त भी (अनन्तानन्द, सुखानन्द, सुरसुरानन्द को छोड़ कर) उन्होंने भक्तमाल और प्रियादास की टीका के आधार पर उपस्थित किया है। धना, पीपा, रैदास का समय भी उन्होंने अन्य विद्वानों के साक्ष्य पर क्रमशः सं० १४७२, सं० १४८२, सं० १४४५ वि० निर्धारित किया है। स्वामी जी के अवसान काल के संबंध में निश्चित् न हो सकने के कारण वर्मा जी इन सम्वतों की प्रामाणिकता की पूरी परीक्षा नहीं कर सके हैं। नाभादास के 'बहुत काल वपुधारि कै प्रणत जनन को पार दियो' को ही वर्मा जी ने पर्याप्त मान कर उपर्युक्त तिथियों को लगभग प्रामाणिक सा मान लिया है। किन्तु, इस प्रकार रामानन्द की आयु कम-से-कम १४० वर्ष की माननी होगी, क्योंकि पीपा के जन्म लेने के समय तक तो वे १२६ वर्ष के हो चुके होंगे। कबीर को भी डा० वर्मा

ने रामानन्द का शिष्य माना है। उनका जन्म वर्मा जी के अनुसार संवत् १४५५ वि० में हुआ था, अतः कबीर को अपना शिष्य बना कर उन्हें अपनी दिग्विजय में साथ-साथ लिवा जाने के लिये स्वामी जी को कम-से-कम १३० वर्ष की आयु मिलनी चाहिये थी, क्योंकि कबीर को पक्का भक्त होने में ३० वर्ष तो लगे ही होंगे। इन्हीं सब उलझनों के कारण सन्त साहित्य के आधुनिक विद्वान् श्री परशुराम चतुर्वेदी को रामानन्द की तिथियों (सं० १३५६ वि०-सं० १४६७ वि०) को स्वीकार करके ही उनके शिष्यों की तिथियों को निश्चित् करने की आवश्यकता अनुभूत हुई है।

रामानन्द के ग्रन्थों में 'श्री वैष्णवमतान्तर (?) भास्कर' और 'श्री रामार्चन पद्धति' को डा० वर्मा ने स्वामी जी कृत माना है। 'रामरक्षा स्तोत्र' या 'संजीवन मंत्र' को वे अप्रौढ़ शैली में लिखे जाने के कारण स्वामी जी कृत नहीं मानते। भंडारकर का उद्धरण देते हुए उन्होंने स्वामी जी के द्वारा लिखे गये एक 'वेदान्त भाष्य' का उल्लेख तो किया है, किन्तु उसकी प्रामाणिकता के विषय में वे कोई मत न दे सके। फ़र्कुहर के मत से सहमत होते हुए लेखक का यह भी विश्वास है कि 'अध्यात्म रामायण' रामानन्द-सम्प्रदाय को अवश्य ही प्रभावित करता रहा है। तुलसी पर उनकी स्वतन्त्र प्रतिभा के कारण 'अध्यात्म रामायण' का प्रभाव तो मान्य हो सकता है, किन्तु रामानन्द-सम्प्रदाय में इस ग्रन्थ को कोई मान्यता नहीं मिलती ज्ञात हुई है। डा० वर्मा का विश्वास है कि अपने उदार दृष्टिकोण के कारण ही रामानन्द सन्त मत के प्रचार में सहायक हो सके।

हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय—ले० डा० पीताम्बर दत्त बथ्ंवाल, अनु० श्री परशुराम चतुर्वेदी। सन्त-साहित्य का अध्ययन प्रस्तुत करते समय डा० बथ्ंवाल ने रामानन्द स्वामी के सम्बन्ध में एक अच्छा अध्ययन प्रस्तुत किया था। यह अध्ययन बहुत ही प्रौढ़ एवं व्यवस्थित है। विद्वान् लेखक प्रचलित सभी मतों एवं धारणाओं की पूर्ण समीक्षा करके स्वामी जी के सम्बन्ध में अपना निश्चित् मत व्यक्त करता है। स्वामी जी के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में बथ्ंवाल जी को 'अगस्त्य संहिता' का साक्ष्य पूर्णतया मान्य है। जन्म एवं मृत्यु सम्बन्धी तिथियाँ भी प्रायः वही मान्य हैं (सं० १३५६ वि०—१४६७ वि०) राघवानन्द के शिष्य होने के नाते रामानन्द, डा० बथ्ंवाल के अनुसार, रामानुज परम्परा से सम्बद्ध तो थे, किन्तु पहले वे किसी अद्वैती गुरु के शिष्य थे। बथ्ंवाल के अनुसार स्वामी जी के ग्रन्थ दो प्रकार के मिलते हैं—'वैष्णवमताब्जभास्कर,' 'रामार्चन-पद्धति' और 'आनन्द भाष्य' रामानन्द के वैष्णव मत की व्याख्या करते

हैं; और 'सिद्धान्त पटल', 'योगचिन्तामणि' तथा 'रामरक्षा स्तोत्र' उन्हें योगमत से भी प्रभावित सिद्ध करते हैं। किन्तु, इन ग्रन्थों में 'श्री वैष्णवमताब्ज-भास्कर' तथा 'श्री रामार्चनपद्धति' को ही डा० बर्थ्वाल ने स्वामी जी कृत माना है, उन्होंने स्वामी जी कृत कुछ हिन्दी पदों का (सर्वांगी तथा 'आदि ग्रन्थ' में प्राप्त) उल्लेख किया है। 'भविष्य पुराण' के साक्ष्य पर डा० बर्थ्वाल ने स्वामी जी को एक बहुत बड़ा समाज-सुधारक भी कहा है। उनके अनुसार स्वामी जी ने भक्ति, योग, और अद्वैत वेदान्त की अनुपम संसृष्टि की थी।

डा० बर्थ्वाल ने रामानन्द जी के निर्गुणी शिष्यों का समय भी निर्धारित किया है। जनरल कनिंघम के मत का समर्थन करते हुए उन्होंने पीपा का समय सं० १४१० से १४६० तक माना है। इसी प्रकार कबीर का समय उन्होंने सं० १४२७ से सं० १५०५ वि० तक माना है। इसकी संगति स्वामी रामानन्द की मृत्यु तिथि सं० १४६७ वि० से पूरी रीति से ठीक बैठती है। श्री परशुराम चतुर्वेदी ने भी स्वामी जी सम्बन्धी उपर्युक्त तिथियों को स्वीकार कर कबीर की तिथियों को उसी के अनुरूप निश्चित् करने का प्रयास किया है। जब तक कोई अधिक प्रामाणिक सामग्री कबीर के रामानन्द का शिष्य होने के विरुद्ध नहीं मिलती अथवा सम्प्रदाय की रामानन्द के सम्बन्ध में मान्य तिथियों को जब तक कोई अधिक प्रामाणिक सामग्री अमान्य सिद्ध नहीं कर देती तब तक कबीर आदि की तिथियों को स्वामी जी की तिथियों के मेल में मानने के अतिरिक्त और कोई तर्क संगत उपाय है ही नहीं। सारी परम्पराएँ कबीर, पीपा, धना, रैदास को स्वामी रामानन्द के शिष्य ही मानती आई हैं। इस दृष्टि से डा० बर्थ्वाल की खोजों एवं उनके अनुमानों का मूल्य बहुत ही अधिक बढ़ जाता है।

हिन्दी साहित्य की भूमिका—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी।

डा० द्विवेदी ने अपने इतिहास तथा कबीर नामक पुस्तक में स्वामी रामानन्द के जीवन वृत्त के सम्बन्ध में कोई नवीन सामग्री नहीं उपस्थित की है। राघवानन्द के नाते वे रामानन्द को रामानुज-परम्परा से सम्बन्ध तो बतलाते हैं, पर उन्हें तात्विक दृष्टि से रामानुज का अनुयायी नहीं मानते। इस सम्बन्ध में वे फर्कुहर के मत से अधिक प्रभावित प्रतीत होते हैं। फर्कुहर ने पहले तो रामानन्द को दाक्षिणात्य माना था, और इसके लिये उन्होंने दक्षिण में रामावत-सम्प्रदाय की भी कल्पना की थी और रामानन्द को इस सम्प्रदाय से सम्बद्ध कहा था। किन्तु डा० ग्रियर्सन ने जब उनके लेखों का प्रतिवाद करते हुए 'अगस्त्य संहिता' का साक्ष्य सामने रक्खा, तब फर्कुहर ने अपने मत में कुछ परिवर्तन कर दिया, फिर वे

राघवानन्द को ही दाक्षिणात्य मानने लगे। फर्कुहर ने यह भी कहा कि रामानन्द-सम्प्रदाय में 'अगस्त्य संहिता' और अध्यात्म-रामायण' का पर्याप्त मान रहा है। अतः रामानन्द अद्वैत से अवश्य ही प्रभावित रहे होंगे। डा० द्विवेदी इस मत से सहमत से प्रतीत होते हैं। वे रामानन्द को संस्कृत के पण्डित तथा उच्चकुलोत्पन्न (ब्राह्मण) तो मानते हैं, पर उन्होंने कितने ग्रन्थों की रचना की, उनमें कितने प्रामाणिक हैं और कितने अप्रामाणिक, इस सम्बन्ध में वे केवल शुक्ल जी द्वारा उद्धृत स्वामी जी कृत ग्रन्थों के नामों का उल्लेख कर उनसे अपना अपरिचय ही प्रकट करते हैं। द्विवेदी जी के मत इस प्रकार केवल अनुमानाश्रित हैं, किसी पुष्ट आधार पर अवलम्बित नहीं।

स्वामी जी के शिष्यों के भी नाम कदाचित् विल्सन के ही आधार पर दे दिये गये। आशानन्द, परमानन्द, श्री आनन्द, महानन्द आदि रामानन्द के शिष्य थे, पता नहीं द्विवेदी जी ने किस प्रमाण पर इसे मान लिया ? भक्तमाल की प्रकाशित प्रतियों में ये नाम नहीं मिलते। इस सम्बन्ध में विल्सन को भी भ्रम हो गया था। वैरागी-परम्परा अथवा 'अगस्त्य संहिता' में भी ये नाम नहीं मिलते।

राघवानन्द से रामानन्द के विलग होने का कारण द्विवेदी जी ने वही दिया है, जिसे विल्सन ने अपने ग्रन्थ में प्रतिपादित किया है। द्विवेदी जी ने एक बात बहुत महत्त्वपूर्ण कही है, वह यह कि रामानन्द जी के मत में भक्ति ही सबसे बड़ी बात थी, तत्ववाद नहीं। 'आनन्दभाष्य' के सम्बन्ध में वैष्णवदास त्रिवेदी के मत का उल्लेख करते हुए भी द्विवेदी जी उसकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में अपने विचार निश्चित् रूप से प्रगट नहीं कर सके हैं। वे इसे प्रामाणिक रचना मानते हैं, क्योंकि इसे अप्रामाणिक सिद्ध करने के लिये अब तक प्रबल तर्क नहीं दियें गये हैं। द्विवेदी जी ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास (हिन्दी साहित्यःउद्भव और विकास) में रामानन्द सम्प्रदायान्तर्गत रसिक-सम्प्रदाय की मूल धारणाओं की अच्छी व्याख्या की है। उसकी स्वसुखी तथा तत्सुखी शाखा पर भी उन्होंने प्रकाश डाला है, साथ ही कुछ प्रसिद्ध कवियों एवं उनकी कृतियों का भी उल्लेख उन्होंने किया है। इस ग्रन्थ में द्विवेदी जी ने अपने रामानन्दी-सम्प्रदाय सम्बन्धी अध्ययन को बहुत ही व्यवस्थित एवं व्यापक बनाने का प्रयास किया है। नवीनतम शोधों का उन्होंने पूर्ण उपयोग किया है।

उत्तरी भारत की सन्त परम्परा—श्री परशुराम चतुर्वेदी, एम० ए०, एल-एल बी०। 'उत्तरी भारत की संत परम्परा' में लेखक का दृष्टिकोण रामानन्द

के सम्बन्ध में कोई नवीन मौलिक सामग्री प्रस्तुत करने का नहीं प्रतीत होता। उसने तो अपने समय तक की की गई खोजों को व्यवस्थित एवं संगठित करने का ही प्रयास किया है और यथासम्भव विभिन्न विरोधी मतों में समन्वय स्थापित करने की चेष्टा भी की है। उस पर स्पष्ट ही डा० फ़र्क़ुहर, डा० ग्रियर्सन, सर भण्डारकर, विल्सन तथा अन्य सन्त साहित्य के विद्वानों की छाप है। इस प्रकार इस ग्रन्थ का महत्त्व केवल इस बात पर है कि रामानन्द के सम्बन्ध में विभिन्न समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए लेखक ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अनुसरण कर एक तर्क संगत अध्ययन प्रस्तुत किया है और उसके द्वारा प्रस्तुत रूप रेखा बहुत कुछ सत्य के निकट जान पड़ती है। रामानन्द के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में डा० ग्रियर्सन तथा भण्डारकर का अनुसरण करते हुए लेखक ने 'अगस्त्य संहिता' के ही साक्ष्य को स्वीकार किया है। जन्म-मृत्यु सम्बन्धी तिथियां भी प्रायः वही हैं, जो इस सम्प्रदाय में मान्य हैं (सं० १३५६ वि०–१४६७ वि०)। इसे दृष्टि में रख कर उसने रामानन्द के विभिन्न शिष्यों की तिथियों की जांच की है। इसी प्रकार का दृष्टिकोण डा० बर्थ्वाल ने भी अपनाया था। चतुर्वेदी जी ने कबीर का काल सं० १४२५ वि० से सं० १५०५ वि० तक माना है, और इस प्रकार उनका रामानन्द का बहुत समय तक समकालीन होना वे सिद्ध करते हैं, यद्यपि यह मत किसी दृढ़ता के साथ उन्होंने नहीं प्रगट किया है। सेन, रैदास, पीपा, तथा धना आदि का रामानन्द जी का मन्त्र-प्राप्त शिष्य होने में उन्हें संदेह है। इन सन्तों के सम्बन्ध में जो तिथियां उन्होंने दी हैं वे स्वामी जी के जीवन काल के मेल में नहीं आतीं। उनके अनुमान से सेन, विक्रम की चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं पन्द्रहवीं के पूर्वार्द्ध में वर्तमान थे, पीपा का जन्मकाल वि० १४६५-१४७५ वि० के मध्य था, रैदास का समय वि० की १६ वीं शताब्दी के प्रायः अन्त तक चला जाता है। इसी प्रकार धना भगत विक्रम की १६ वीं शताब्दी के प्रायः प्रथम या द्वितीय चरण तक रहे। ये सभी मत अनुमानाश्रित ही हैं, किसी दृढ़ प्रमाण पर आधारित नहीं। चतुर्वेदी जी का यह भी कहना है कि ये सभी सन्त समकालीन भी नहीं ज्ञात होते, उनमें से किसी के रामानन्द के शिष्य होने का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिलता। आगे चल कर हम इस मत की समीक्षा करने का अवसर पाएँगे, अतः यहाँ इस विवाद को छोड़ दिया जाता है। जो हो, चतुर्वेदी जी का अध्ययन बहुत ही पूर्ण है और इस दृष्टि से पर्याप्त महत्त्व रखता है। समस्त उपलब्ध सामग्री की पूर्ण समीक्षा करके इस ग्रन्थ की रचना की गई है, और अब तक इस विषय पर लिखे गये ग्रन्थों में इसका अद्वितीय स्थान है।

भागवत सम्प्रदाय—श्रीबलदेव उपाध्याय एम० ए०, साहित्याचार्य। अपने ग्रन्थ 'भागवत-सम्प्रदाय' में पं० बलदेव उपाध्याय जी ने 'रामावत सम्प्रदाय' पर विशेष प्रकाश डाला है। विद्वान् लेखक ने रामानन्द स्वामी की समकालीन धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थितियों पर विस्तृत प्रकाश डालते हुये स्वामी जी के महत्त्व की बड़ी ही सुन्दर प्रतिष्ठा की है। उनके अनुसार रामानन्द जी राघवानन्द जी के शिष्य थे, जिन्होंने उत्तर भारत में दक्षिण भारत से विष्णुभक्ति को लाकर प्रचारित किया था। लेखक ने 'सिद्धान्त तन्मात्रा' को राघवानन्द जी की कृति के रूप में स्वीकार किया है। उन्होंने रामार्चन पद्धति तथा आचार्य शुक्ल द्वारा दिये गए तर्कों के साक्ष्य पर स्वामी जी का आचार्य-काल पंद्रहवें शतक (१४५० ई०) के मध्यभाग के पीछे ही स्थिर किया है। लेखक ने स्वामी जी के जीवन-वृत्त को भी उपस्थित करने का प्रयास किया है। इस सम्बन्ध में उन्होंने प्रसंग-पारिजात तथा मौलाना रशीदुद्दीन कृत 'तज़कीर तुक .फ़ुकरा' का भी उल्लेख किया है, किन्तु खेद है विद्वान् लेखक ने उनकी प्रामाणिकता की परीक्षा करने का कोई प्रयास नहीं किया है। लेखक ने 'श्री वैष्णवमताब्जभास्कर' के आधार पर स्वामी जी के मत एवं सिद्धान्तों का भी विवेचन किया है। स्वामी जी कृत हिंदी पदों एवं ग्रन्थों की चर्चा पर्याप्त अन्वेषण के उपरान्त ही इस ग्रन्थ में की गई है। रामानन्द स्वामी के प्रमुख शिष्यों (सेन, पीपा, रैदास, कबीर) तथा रामानन्द सम्प्रदाय के प्रमुख व्यक्तियों (अनन्तानन्द, कृष्णदास पयहारी, कील्ह) के सम्बन्ध में भी विद्वान् लेखक ने नया प्रकाश डाला है। वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण एवं रामचरित मानस का एक तुलनात्मक अध्ययन भी विद्वान् लेखक ने प्रस्तुत किया है। इस प्रकार कुल मिलाकर यह ग्रन्थ आवश्यक उपलब्ध समस्त सूचनाओं का संग्रह सा उपस्थित करता है। इस दृष्टि से यह प्रयास कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

कुछ अन्य ग्रन्थ—रामानन्द-सम्बन्धी अध्ययन को ठोस ढंग से सर्वप्रथम भण्डारकर महोदय ने (वैष्णविज़म, शैविज़म आदि ग्रन्थ में) आगे बढ़ाया था। उन्होंने 'अगस्त्य संहिता' को प्रामाणिक मानते हुए रामानन्द का जीवन वृत्त उपस्थित किया है। उनके निष्कर्षों को और भी अधिक प्रामाणिक ढंग से सर जार्ज ग्रियर्सन ने उपस्थित किया। ये दोनों ही विद्वान् रामानन्द को उत्तर भारत (प्रयाग) में ही उत्पन्न मानते हैं। रामानन्द का समय इन दोनों ही के अनुसार विक्रम सं० १३५६-१४६७ वि० तक है। जी० ए० नटेसन ने 'फ्राम रामानन्द टु रामतीर्थ' नामक ग्रन्थ में ग्रियर्सन के ही आधार पर रामानन्द का जीवन-वृत्त

उपस्थित किया है। कुछ दूसरे विद्वान् रामानन्द को दाक्षिणात्य मानते हैं। सर्वप्रथम विलसन ने अस्पष्ट शब्दों में दाक्षिणात्य राघवानन्द के साथ रामानन्द का सम्बन्ध जोड़ कर इस प्रकार का संकेत किया था। मैकालिफ़ ने रामानन्द को मेलकोटा (मैसूर) में उत्पन्न कहा है और इसी आधार पर फ़र्क़ुहर ने 'ऐन आउटलाइन आव् दि रिलीजस लिटरेचर अव् इंडिया' तथा 'जर्नल अव् दि रायल एशियाटिक सोसायटी' में पहले तो रामानन्द को दक्षिण के किसी र[illegible] से सम्बद्ध तथा 'अध्यात्म रामायण', 'अगस्त्य संहिता' 'वाल्मीकि रामायण' से प्रभावित कहा, पर बाद में उन्होंने रामानन्द के गुरु राघवानन्द को ही दाक्षिणात्य माना। फिर भी उनके पास इस मत को पुष्ट करने के लिये कोई प्रमाण नहीं था, इसे उन्होंने स्वयं ही स्वीकार किया है। बाद में चल कर फ़र्क़ुहर के मत को विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न ढंग से स्वीकृत या अस्वीकृत किया। आगे हम उनके मतों की विवेचना करेंगे, अतः यहाँ इतना ही अलम् होगा। डा० फ़र्क़ुहर के इस संकेत को और आगे बढ़ाते हुए पं० रघुबर मिट्ठू लाल शास्त्री ने तो 'अध्यात्म रामायण' को स्वामी रामानन्द की कृति ही मान लिया। आगे हमने इस मत की भी समीक्षा की है।

घ—स्थानों की सामग्री

(१) काशी—काशी में पंचगंगा घाट पर स्वामी रामानन्द जी रहा करते थे। यह मठ अब जीर्ण-शीर्ण हो चुका है। यह अद्यावि रामानन्दी वैष्णवों के हाथ में ही है। अभी कुछ दिन पूर्व यहाँ के महन्थ पण्डित रामलखनदास थे। सन् १९५२ ई० में उनका देहावसान हो गया। पंचगंगा घाट पर इस समय स्वामी जी का एक चित्र है जो रामानन्दीयों में मान्य चित्र का बृहत्रूप है। इस चित्र में 'यति सार्वभौम भगवान् भाष्यकार जगद्गुरु श्री १०८ रामानन्दाचार्य' लिखा है। नीचे 'रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले' लिखा गया है। स्वामी जी का चित्र द्वादश तिलक से युक्त है। चित्र में प्रामाणिकता कुछ भी नहीं है। पंचगंगा घाट पर दूसरी महत्त्वपूर्ण वस्तु है स्वामी जी की चरणपादुका। कहा जाता है कि स्वामी जी की मृत्यु के उपरान्त वह पादुका पत्थर की हो गई। एक वेदी पर उसकी स्थापना कर दी गई है। वह संगमरमर की बनी है। दीवाल पर कुछ मूर्तियाँ भी रक्खी गई हैं। उत्तर से दक्षिण उनका क्रम यों है:—कबीरदास, अनन्तानन्द, हनुमान् जी, नरसिंह जी। इस सामग्री के अतिरिक्त वहाँ और कोई वस्तु उपलब्ध नहीं होती। स्थान की गुरु-परम्परा भी नहीं मिलती, हस्तलिखित ग्रन्थों की बात तो दूर ही है।

(२) **अयोध्या**—अयोध्या में जानकी घाट पर एक 'श्री रामानन्द मंदिर' है। स्वामी रामानन्द की मूर्ति में दाढ़ी और मूँछ भी है। सिर खल्वाट् है। रंग गौर है, मस्तक में ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाया जाता है। पुजारी जी से पूछने पर ज्ञात हुआ कि यह मूर्ति जयपुर से ३०-३२ वर्ष पूर्व मँगाई गई थी। पता नहीं यह किस आधार पर बनाई गई है। पं० रामटहलदास ने अपने 'श्री वैष्णव मताब्जभास्कर' ग्रन्थ में स्वामी रामानन्द का जो चित्र दिया है उसमें भी स्वामी जी दाढ़ी-मूँछ युक्त हैं। रामानन्दी वैष्णवों का एक वर्ग स्वामी जी को योगी मानता आ रहा है। यह वर्ग राजपूताना में विशेषकर पाया जाता है। सम्भवतः अयोध्या की मूर्ति इसी भावना से प्रभावित हो।

(३) **आबू और जूनागढ़**—कहा जाता है कि आबू और जूनागढ़ की पहाड़ियों पर स्वामी जी के चरण चिह्न की स्थापना की गई है। जूनागढ़ में तो उनकी एक गुफा भी मिलती है। भगवदाचार्य के अनुसार आबू में स्वामी जी ने 'श्री रघुनाथ जी का एक मंदिर' बनवा कर मूर्ति स्थापना की थी। यह मंदिर आज भी वर्तमान है।

(ङ) **जनश्रुतियाँ**—रामानन्द के सम्बन्ध में जो भी जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं, उनमें अधिकांश का उल्लेख प्रथम किया जा चुका है। यहाँ संक्षेप में उन्हें फिर से क्रमबद्ध रूप में उपस्थित किया जा रहा है।

(१) रामानन्द का दक्षिण से उत्तर आना—रामानन्द के सम्बन्ध में सबसे प्रचलित जनश्रुति यही है कि वे दाक्षिणात्य थे। इसका आधार कदाचित् कबीर दास की यह उक्ति 'भक्ती द्राविड़ ऊपजी ले आये रामानन्द' ही है, किन्तु कबीर दास की प्रामाणिक प्रतियों में यह उक्ति नहीं पाई जाती। लगता है यह 'भागवत' के भक्ति-माहात्म्य अंश की 'उत्पन्नाद्राविड़े साहम् बृद्धिं कर्णाटके गता' उक्ति से प्रभावित है। जो हो, विद्वानों ने इसे आधार मान कर रामानन्द को दाक्षिणात्य सिद्ध करने का प्रयास किया है, किन्तु प्रमाणाभाव में इस जनश्रुति का कोई महत्त्व नहीं रहता।

(२) पहली जनश्रुति से ही सम्बद्ध दूसरी जनश्रुति यह है कि रामानन्द पहले किसी अद्वैती गुरु के शिष्य थे। राघवानन्द द्वारा अपने समीपस्थ मृत्यु-समय की सूचना पाकर वे अपने गुरु के साथ आकर राघवानन्द जी के शिष्य हो गये। राघवानन्द ने उन्हें वैष्णवी दीक्षा दी और योगस्थ करके मृत्यु से उनकी रक्षा की। इस जनश्रुति को प्रमाण मान कर अनेक विद्वानों ने रामानन्द को अद्वैत तथा विशिष्टाद्वैत में समन्वय स्थापित करने वाला भी कहा है। इसी जनश्रुति

को संकेत मान कर श्री रघुवर मिट्ठूलाल शास्त्री ने 'अध्यात्म-रामायण' को स्वामी जी कृत माना है। खेद है कि इस सर्वप्रचलित जनश्रुति का भी कोई प्रामाणिक आधार नहीं मिलता। 'भक्तमाल' आदि ग्रन्थों में इसका कोई उल्लेख नहीं है।

(३) तीसरी जनश्रुति रामानन्द के राघवानन्द से अलग होने एवं रामानन्द-सम्प्रदाय के स्थापित करने के सम्बन्ध में है। कहा जाता है रामानन्द कभी सम्पूर्ण देश का भ्रमण कर जब अपने गुरु-मठ लौटे तब उनके साथियों ने रामानन्द की खान-पान सम्बन्धी उदारता को देख कर राघवानन्द से उन्हें 'श्री सम्प्रदाय' से वहिष्कृत कर देने को कहा। कहा जाता है राघवानन्द ने रामानन्द की प्रतिभा से प्रभावित होकर उन्हें एक स्वतन्त्र नवीन-सम्प्रदाय स्थापित करने की अनुमति दी। इस जनश्रुति का भी कोई आधार विशेष नहीं मिलता।

(४) एक अन्य जनश्रुति के अनुसार रामानन्द ने बारह वर्ष तक गिरनार या आबू पर्वत पर योग-साधना करके सिद्धि प्राप्त की थी। रामानन्द-सम्प्रदाय में योग से प्रभावित भक्तों के (तपसी शाखा) बीच इस जनश्रुति का विशेष प्रचार है। यह जनश्रुति भी किसी विशेष प्रमाण से पुष्ट नहीं होती। कुछ लोग तो उन्हें अद्वैतियों के ज्योतिर्मठ के ब्रह्मचारी भी मानते हैं।

(५) एक और जनश्रुति के आधार पर रामानन्द को वर्णाश्रम के बन्धनों को ढीला करने वाला भी कहा गया है। इस सम्बन्ध में निम्न-लिखित पद उद्धृत किया जाता है :—'जाति पाँति पूछै नहि कोई। हरि को भजै सो हरि को होई॥' वस्तुतः रामानन्द ने केवल भक्ति के क्षेत्र में इसी प्रकार के बन्धनों को अस्वीकृत किया था, सामाजिक व्यवस्था में वे इनके विरोधी नहीं थे।

(च) सम्प्रदाय के मान्य ग्रन्थ—१—श्री वैष्णव-मताब्ज-भास्कर, २—श्री रामार्चन-पद्धति, ३—आनन्द भाष्य, ४—जानकी भाष्य, ५—अगस्त्य संहिता, ६—राम तापन्युपनिषद्, ७—रहस्यत्रय-अग्रदास कृत ८—रामस्तव राज-भाष्य, [illegible]; रहस्यत्रय, रामतापन्युपनिषद्-भाष्य—स्वामी हरिदास कृत। ९—रामपटल, १०—त्रिरत्नी-भगवदाचार्य कृत।

इनके अतिरिक्त अन्य अनेक छोटे-मोटे ग्रन्थ हैं, जिनका रामानन्द-सम्प्रदाय की उपशाखाओं—तपसी शाखा में श्री रामरक्षा-स्तोत्र, सिद्धान्त पटल, योग

चिन्तामणि; शृंगारी शाखा में अष्टयामीय पूजा-पद्धति पर अग्रदास, नाभादास, रामचरणदास आदि के ग्रन्थ, तथा अन्य सिद्धान्त सम्बन्धी ग्रन्थ—में बहुत अधिक मान है। तुलसीकृत 'रामचरित मानस' का प्रचार रामानन्द-सम्प्रदाय में बहुत अधिक है। विद्वानों ने अपने मत के प्रचार में 'मानस' की सहायता भी बहुत ली है। आज भी उस पर रामानन्दी विद्वानों द्वारा सुन्दर से सुन्दर टीकाएँ लिखी जा रही हैं। 'मानसपीयूष' नामक संसार का सबसे बड़ा मानस-तिलक रामानन्दीय महात्मा अन्जनीनन्दन शरण जी की ही देन है।

द्वितीय अध्याय

रामानन्द स्वामी का जीवन-वृत्त

रामानन्द स्वामी की जन्म-तिथि—रामानन्द स्वामी के जीवन-काल के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है, और उनकी जन्म-तिथि के सम्बन्ध में तो मतभेद का होना स्वाभाविक ही है। उनके जीवन-वृत्त से सम्बन्धित कुछ समस्याएँ इतनी जटिल हैं कि बिना उनका पूर्ण समाधान किये स्वामी जी के जीवन-काल के सन्बन्ध में कुछ भी निश्चित् मत नहीं दिया जा सकता। इन भिन्न-भिन्न समस्याओं का समाधान करने की चेष्टा करते हुए विभिन्न विद्वानों ने स्वामी जी का जीवन-काल विक्रम की १४ वीं शताब्दी के अन्त से प्रारम्भ करके विक्रम की १६ वीं शताब्दी के तृतीय चरण तक माना है। नीचे हम कुछ प्रमुख मतों की आलोचना करके एक संभाव्य निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रयास करेंगे :—

१—स्वामी जी की सबसे प्राचीन जन्म-तिथि सन् १२९९ ई० (सं० १३५६ वि०, कलि के ४४०० वर्ष बीतने पर), माघ कृष्ण सप्तमी, चित्रा नक्षत्र, सिद्धियोग, कुम्भ लग्न, दिन के सात दण्ड चढ़ने पर, गुरुवार को मानी जाती है। 'अगस्त्य संहिता' के 'भविष्योत्तर खण्ड' में इस मत की प्रतिष्ठा की गई है। प्रमुख विद्वानों में मानियर विलियम्स[१], जे० सी० केम्पवेल ओमन[२], सर भण्डार कर[३], परशुराम चतुर्वेदी[४], डॉ० पीताम्बर दत्त वथ्वाल[५], डॉ० रामकुमार

१—मानियर विलियम्स-ब्राह्मनिज़्म ऐण्ड हिन्दूइज़्म, पृ० १४१, पृ० १४७, (सन् १८९० ई०)।

२—मिस्टिक्स, ऐसेटिक्स ऐण्ड सेन्ट्स् अव् इण्डिया, पृ० १२०।

३—वैष्णविज़्म शैविज़्म आदि तथा दि नाइन्थ इण्टरनेशनल काँग्रेस अव् ओरियन्टलिस्ट्स, वाल्यूम १, पृ० ४२३।

४—उत्तरी भारत की संत-परम्परा, पृ० २२२।

५—हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ० ४१।

वर्मा[१], रामानन्द-सम्प्रदाय के विद्वान् श्री भगवदाचार्य[२] तथा सीताराम शरण भगवान् प्रसाद रूपकला[३] आदि इस मत से पूर्णतया सहमत हैं। अपने मत के समर्थन में उन्होंने 'भक्तमाल' में नाभादास द्वारा दी गई रामानन्द की गुरु-परम्परा भी उद्धृत की है। 'भक्तमाल' के अनुसार रामानुज के उपरान्त देवाचार्य-हर्यानन्द-राघवानन्द-और रामानन्द क्रमशः आचार्य हुए। रामानुज की मृत्यु सन् ११३७ ई० में मानी जाती है। अतः प्रत्येक पीढ़ी के लिये ३०-३० वर्ष का समय मानकर सन् १२९९ ई० को डॉ० वर्थ्वाल जैसे विद्वान् रामानन्द की जन्मतिथि के रूप में स्वीकार करते हैं। डॉ० वर्थ्वाल तथा चतुर्वेदी जी ने तो कबीर का समय सं० १४२५ वि० से सं० १५०५ वि० तक स्थिर करने का प्रयास भी किया है। कनिंघम के साक्ष्य पर डॉ० वर्थ्वाल ने पीपा का समय सं० १४१० वि० से सं० १४६० वि० तक माना है। इन तर्कों के अतिरिक्त डॉ० भण्डारकर ने एक अन्य तर्क भी अपने मत के समर्थन में दिया है। उनके अनुसार रामानन्द भाष्य में (१-४-११) अमलानन्द (सन् १२४७ ई०-६० ई०) के 'वेदान्त-कल्पतरु' का उल्लेख हुआ है। इस दृष्टि से भी सन् १२९९ ई० को रामानन्द की जन्म तिथि मान लेना अनुचित नहीं कहा जा सकता। (खेद है मुझे 'आनन्द भाष्य' में इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं मिला।) रामानन्द-सम्प्रदाय के लगभग सभी विद्वान् 'अगस्त्य संहिता' के इस मत से सहमत हैं।

२—द्वितीय मत डॉ० जे० एन० फ़र्कुहर[४] का है। इसके अनुसार रामानन्द का समय १४०० ई० से १४७० ई० तक था। एच० एच० विल्सन,[५] एफ़० ई० के,[६] मेकालिफ़[७] और डॉ० ताराचन्द[८] आदि विद्वान् इस मत से सहमत हैं। डॉ० फ़र्कुहर ने नामदेव (१४०० ई०-६० ई०) को रामानन्द का पूर्ववर्ती मान कर, पीपा का समय सन् १४२५ ई०, कबीर का १४४० ई०, और रैदास का १४७० ई० में निश्चित् कर स्वामी जी का उपर्युक्त समय निर्धारित किया

१—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ३००-१।
२—रामानन्द दिग्विजय, भूमिका, पृ० ११।
३—भक्तमाल, पृ० २८८।
४—जे० आर० ए० एस०, सन् १९२०, पृ० १८२-९३।
५—एसेज़ आन दि रिलीजन अव् हिन्दूज़, वाल्यूम १, पृ० ४७।
६—ए हिस्ट्री अव् हिन्दी लिटरेचर, पृ० २०।
७—दि सिख रिलीजन, वाल्यूम ६, पृ० १००-१।
८—इन्फ़्लूयेंस अव् इस्लाम आन इंडियन कल्चर, पृ० ९४।

है। डॉ० ताराचन्द ने रूपकला जी के साक्ष्य पर रामानन्द को रामानुजाचार्य की शिष्य-परम्परा में इक्कीसवां आचार्य मानकर उपर्युक्त मत के समर्थन में अपना मतदान किया है। उन्होंने कबीर आदि का समय परम्परागत मत को मान कर ही निर्धारित किया है। अगस्त्य-संहिता का मत डॉ० ताराचन्द को मान्य नहीं है।

३—तृतीय मत के प्रवर्तक एकमात्र आचार्य रामचन्द्र शुक्ल[१] हैं। शुक्ल जी के अनुसार रामानन्द का समय विक्रम की १५वीं शती के चतुर्थ और १६वीं शती के तृतीय चरण के भीतर माना जा सकता है। शुक्ल जी के मत से तक़ी और सिकन्दर लोदी (सं० १५४६-७४ वि०) स्वामी रामानन्द के समकालीन थे। सेन का समय रीवां नरेश रघुराज सिंह के साक्ष्य पर शुक्ल जी ने सं० १५७५-८० वि० (राजाराम का भी समय) के लगभग माना है। फिर 'रामार्चन पद्धति' के आधार पर वे रामानन्द को रामानुजाचार्य की परम्परा में चौदहवाँ आचार्य मानते हैं; और इन चौदह पीढ़ियों के लिये ३०० वर्ष का समय दे कर वे रामानन्द का उपर्युक्त समय निर्धारित करते हैं।

उपर्युक्त मतों की समीक्षा—उपर्युक्त मतों में द्वितीय मत के पीछे कोई सुदृढ़ आधार नहीं है। पीपा और कबीर का आविर्भाव-काल केवल जनश्रुतियों के आधार पर निश्चित् रूप से क्रमशः सन् १४२५ ई० और सन् १४४० ई० में मान लेना अधिक तर्कसंगत नहीं प्रतीत होता। इसी प्रकार रामानन्द को रामानुजाचार्य की परम्परा में २१ वां आचार्य मान लेने का कोई प्रामाणिक आधार नहीं मिलता। 'भक्तमाल' में रूपकला जी ने 'राममन्त्रराज' की परम्परा दी है, रामानन्द की गुरु-परम्परा नहीं। अतः डॉ० ताराचन्द का आधार भी प्रामाणिक नहीं है। जहाँ तक तृतीय मत का प्रश्न है, यह भी केवल मात्र जन-श्रुतियों पर ही आधारित प्रतीत होता है। जब तक कोई प्रामाणिक एवं निश्चित् आधार न मिल जाय, तब तक रामानन्द को तक़ी और सिकन्दर लोदी का समकालीन मान लेना भी संदिग्ध प्रश्न बना रहेगा। केवल मात्र कुछ इतिहास लेखकों के अनुमानों को सब कुछ न समझ लेना होगा। डा० रामप्रसाद त्रिपाठी जैसे विद्वानों ने तो कबीर और सिकन्दर लोदी के भी समकालीन होने में सन्देह प्रकट किया है। डा० त्रिपाठी के अनुसार 'कबीर का समय चौदहवीं शताब्दी का उत्तर काल और सम्भवतः पन्द्रहवीं शताब्दी का पूर्वकाल मानना अधिक युक्तिसंगत है।[२] रीवां नरेश

१—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ११७।

२—हिन्दुस्तानी, १९३२ ई०, पृ० २१५ (जनवरी अंक)।

का साक्ष्य मान कर सेन का समय विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के मध्य तक ले जाना और इस आधार पर रामानन्द का समय सोलहवीं शताब्दी के तृतीय चरण तक निर्धारित कर देना अधिक तर्कसंगत नहीं प्रतीत होता। जैसा पूर्व कहा जा चुका है, रीवां नरेश के लिये कबीर महाराज विश्वनाथ सिंह को भी सशरीर आकर उपदेश दे सकते हैं। यों ही यश के लोभ से रीवां नरेश ने सेन भक्त को राजाराम का समकालीन मान लिया होगा। राजाराम के समय के सेन कदाचित् प्रसिद्ध सेन नाई से भिन्न व्यक्ति रहे हों। इस सेन का परिचय देते समय 'शिवसिंह सरोज' में लिखा है—'सेन कवि नापित बाँधवगढ़ के संवत् १५६० में उपस्थित। हज़ारे में इनके कवित्त हैं। यह कवि स्वामी रामानन्द जी के शिष्य थे।'[१] किन्तु, इस उक्ति पर टिप्पणी देते हुए पंडित रूपनारायण पाण्डेय ने परिशिष्ट में लिखा है,[२] 'इन रीवां वाले सेन का जन्म-काल सं० १५४७ के लगभग है। सं० १५६० वाला सेन दूसरा है।' इस प्रकार रीवां नरेश के उल्लेख को निस्संदिग्ध प्रमाण नहीं माना जा सकता। 'रामार्चन-पद्धति' का साक्ष्य चाहे सही मान लिया जाय, किन्तु यह निर्विवाद रूप से नहीं कहा जा सकता कि रामानन्द रामानुज की परम्परा में १४ वें आचार्य थे। वस्तुत: जब तक प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ न प्राप्त हों, तब तक रामानन्द-सम्प्रदाय के किसी भी प्रकाशित ग्रन्थ का पाठ नितान्त शुद्ध नहीं माना जा सकता। जब से परम्परा-सम्बन्धी झगड़े उठ खड़े हुए हैं, रामानन्द स्वामी के ग्रन्थों में अनेक पाठान्तर किये गये हैं।

जहाँ तक प्रथम मत का प्रश्न है, बहुमत इसी के पक्ष में जान पड़ता है। इसका मुख्याधार 'अगस्त्य संहिता' है। सम्प्रदाय के उपासक एवं विद्वान् भी इसी मत का अवलम्बन करते हैं। यद्यपि 'अगस्त्य-सहिता' को 'भक्तमाल' से प्राचीन रचना निस्संदिग्ध रूप से नहीं कहा जा सकता, फिर भी जिस सीधी-सादी शैली का इसमें अनुसरण किया गया है उससे किसी पक्षपात की आशका कम ही होती है। फिर भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से विचार करने पर भी सं० १३५६ वि० में रामानन्द स्वामी का जन्म मान लेना अनुचित नहीं प्रतीत होता। कम-से-कम मध्य-युग की सबसे अधिक प्रामाणिक रचना 'भक्तमाल' के साक्ष्य पर तो इस मत का समर्थन किया ही जा सकता है। 'भक्तमाल' के अनुसार रामानन्द रामानुजाचार्य की परम्परा में पांचवें प्रमुख आचार्य थे। रामानुज की मृत्यु-तिथि सं० ११६४ वि० में मानी जाती है। यदि यह मान लिया जाय कि नाभादास

१—शिवसिंह सरोज, पृ० ५०१।

२—'शिवसिंह सरोज', परिशिष्ट, पृष्ठ ६।

ने बीच के कुछ आचार्यों को छोड़ दिया हो तो भी दोनों आचार्यों (रामानुज तथा रामानन्द) के बीच एक सौ बासठ वर्ष का अन्तर अधिक नहीं प्रतीत होता है। इस काल में 'श्रीसम्प्रदाय' उत्तरभारत की धार्मिक समस्याओं को सुलझाने में अक्षम भी सिद्ध हो चुका होगा और उसका पुनः संस्कार करने के लिये रामानन्द जैसे प्रतिभाशील सुधारक की आवश्यकता भी पड़ सकती है।

दूसरे, मध्य-युग के प्रमुख सन्तों की तिथियाँ स्वयं संदिग्ध वातावरण में ही वर्तमान हैं। कतिपय भ्रामक किंवदन्तियों के आधार पर उनका समय निर्धारित करके स्वामी रामानन्द के समय को शताब्दियों आगे-पीछे ले जाने का प्रयास करना अत्यन्त उपहासास्पद होगा। कबीर के सम्बन्ध में नवीनतम खोज करने वाले विद्वान् उनका समय सं० १४२५ वि० से सं० १५०५ वि०[1] तक ठहराते हैं। जनरल कनिंघम ने पीपा का समय सं० १४१७ से सं० १४४२ वि० (ईसवी सन् १३६०-८५ तक) तक माना है।[2] इसी आधार पर डा० बर्थ्वाल ने पीपा का जीवन-काल लगभग सं० १४१० से १४६० तक माना है। रामानन्द के अन्य शिष्यों का समय प्रामाणिक सामग्री के अभाव में अनिश्चित् सा ही है। केवल कुछ छिटफुट पदों के आधार पर जो भी अनुमान किया जायगा उसे प्रमाण-कोटि में नहीं रखा जा सकता।

अनेक प्रामाणिक सूत्रों के आधार पर त्रिलोचन और नामदेव दो महाराष्ट्र सन्तों को रामानन्द का पूर्ववर्ती माना जाता है। नामदेव का समय सं० १३२६-१४०७ तक माना जाता है, और त्रिलोचन् का जन्मकाल सं० १३२४ वि० में माना गया है। यदि रामानन्द स्वामी का जन्म सं० १३५६ वि० में मान लिया जाय तो भी उपर्युक्त महाराष्ट्र संत उनके पूर्ववर्ती या कम-से-कम अग्रज ही ठहरते हैं।

इस संबंध में रामानन्द-संम्प्रदाय की कुछ प्रामाणिक गुरु-परम्पराएँ भी हमारा पथ-निर्देश कर सकती हैं। 'भक्तमाल' के अनुसार नाभादास की गुरु-परम्परा इस प्रकार थी—रामानन्द-अनन्तानन्द-कृष्णदास पयहारि-[illegible] अथवा नारायणदास। नाभादास तुलसीदास के समकालीन माने जाते हैं। अग्रदास के आदेश पर ही 'भक्तमाल' की रचना की गई थी। नाभादास के अनुसार रामानन्द ने बहुत काल तक शरीर धारणकर 'प्रणत जनों' को पार किया था। परम्परा के

१—उत्तरीभारत की सन्त परम्परा, परिशिष्ट, पृ० ७३३।

२—आर्कियालॉजिकल सर्वे ऑव् इण्डिया रिपोर्ट, भाग २, पृ० २९५-९७।

अनुसार रामानन्द की मृत्यु सं० १४६७ वि० में मानी जाती है। अतः रामानन्द और नाभा के समय में लगभग १५० वर्ष का अन्तर हुआ। उन दिनों जब गद्दी स्थापन की प्रवृत्ति इस सम्प्रदाय में बहुत व्यापक रूप से नहीं आ सकी थी, पाँच पीढ़ियों के लिये यह समय अधिक नहीं प्रतीत होता। सं० १६७७ में रेवासा[1] स्थान की जो गुरु-परम्परा प्रकाशित हुई थी, उसमें रामानन्द स्वामी की शिष्य-परम्परा में सत्रह महन्थों के नाम दिए गए हैं। तत्कालीन महन्थ जगन्नाथाचार्य थे। गलता गादी की उसी सम्वत् में प्रकाशित गुरु-परम्परा के अनुसार गलता में रामानन्द की शिष्य-परम्परा में सोलह महन्थ हुए। कूबा जी की द्वारा गादी में उपर्युक्त सम्वत् तक चौदह महन्थ हुए। इसी सम्वत् तक टीला जी की द्वारा गादी में (खेलना, भोलास) सत्रह महन्थ, डाकोर की गुरु-परम्परा में भी १७ महन्थ और बालानन्द की द्वारा गादी में १८ महन्थ हुए। इन उपर्युक्त गुरु-परम्पराओं की तुलना करने से यह स्पष्ट है कि सामान्यतया रामानन्द की शिष्य-परम्परा में सम्वत् १६७७ तक विभिन्न मठों में लगभग १६ महन्थ हो चुके थे। इनमें से प्रत्येक स्थान की परम्परा में कुछ-न-कुछ महन्थों के नाम छूट भी गये होंगे, क्योंकि सभी महंथों के कार्यकाल को मठों की किसी पोथी विशेष में लिखने की प्रथा वर्तमानकाल के पूर्व प्रायः नहीं पाई जाती। जब से परम्परा सम्बन्धी झगड़ा उठा है, तभी से इस प्रकार की छानबीन विशेष रूप से होने लगी है और बहुत से स्थानों की गुरु-परम्पराएँ स्मृति आदि के ही आधार पर निर्मित कर ली गई हैं। अतः यह मान लेना अनुचित नहीं कि उपर्युक्त प्रत्येक स्थान पर रामानन्द के उपरान्त सं० १६७७ तक लगभग २० महन्थ हो चुके होंगे। यदि इनमें से प्रत्येक का कार्यकाल २५ वर्ष भी माना जाय तो २० महन्थों के लिये ५०० वर्ष का समय निकाल देने पर रामानन्द का समय विक्रम की १५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक मानना असंगत न होगा। फिर भी इन परंपराओं के आधार पर किसी निश्चित् निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सकता, इनके माध्यम से कुछ संकेत मात्र ग्रहण किए जा सकते हैं। रामानन्द सम्प्रदाय में सं० १३५६ वि० ही स्वामी रामानन्द की जन्मतिथि मानी जाती है। पं० राम-टहलदास ने 'रामार्चन पद्धति' में दी हुई गुरु-परम्परा के आधार पर स्वामी जी का समय वही माना है जो शुक्ल जी द्वारा मान्य है। जब तक 'रामार्चन पद्धति' की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ न मिल जायँ या साम्प्रदायिक मत को अप्रामाणिक सिद्ध करने के लिये कुछ निश्चित् सामग्री न प्राप्त हो जाय, तब तक स्वामी जी

१—'श्री वैष्णव-मताब्ज-भास्कर', सं० पं० रामटहलदास, पृ० १०२ और उसके आगे।

के जन्म-काल के रूप में साम्प्रदायिक मत को ही स्वीकार किया जा सकता है। वस्तुतः इन सन्तों एवं आचार्यों की निश्चित् तिथियों के सम्बन्ध में कुछ भी कहना नितान्त ही [illegible] नहीं हो सकता। भारतवर्ष में जीवन-चरित लिखने की प्रथा बहुत ही कम रही है। जो जीवनचरित मिलते भी हैं, उनमें तिथियों का कोई उल्लेख नहीं मिलता। इस कारण किसी निश्चित् तिथि के अभाव में केवल मात्र इस बात को भी जान लेना पर्याप्त होगा कि किसी आचार्य विशेष या व्यक्ति विशेष का शताब्दियों में क्या समय था, जिससे उसके महत्त्व को ठीक रूप से समझने में सरलता हो। मेरी दृष्टि से रामानन्द के सम्बन्ध में भी केवल इतना ही जान लेना पर्याप्त होगा कि वे त्रिलोचन, नामदेव आदि के पश्चात्-वर्ती तथा कबीर, रैदास, धना, सेन, पीपा, आदि के पूर्ववर्ती थे। समस्त वैष्णव-आन्दोलन में जो सुधार-भावना पाई जाती है, उसका बहुत कुछ श्रेय रामानन्द को ही है।

रामानन्द-सम्प्रदाय में माघ कृष्ण सप्तमी को प्रतिवर्ष रामानन्दीय मठों एवं अयोध्या, मिथिला, चित्रकूट आदि साम्प्रदायिक केन्द्रों में स्वामी रामानन्द की जयंतियाँ बड़े धूमधाम से मनाई जाती हैं। हमें भक्तों की इस भावुक आधारशिला को मान्यता देनी ही चाहिये। जब तक कोई निश्चित् एवं प्रामाणिक सामग्री सामने न आ जाय, तब तक रामानन्द की जन्म-तिथि सं० १३५६ वि० (सन् १२९९ ई०) माघ कृष्ण सप्तमी को मान लेने में विशेष आपत्ति नहीं होनी चाहिये। फिर भी मैं इस निष्कर्ष को नितान्त अंतिम नहीं कह सकता। इस सम्बन्ध में प्रामाणिक सामग्री की खोज करनी ही होगी और सम्भव है भविष्य में किसी निश्चित् निष्कर्ष पर पहुँचा जा सके। तब तक प्रस्तुत परिस्थितियों में मुझे साम्प्रदायिक मत[1] के स्वीकार कर लेने के अतिरिक्त अन्य कोई तर्कसंगत मार्ग नहीं दिखलाई पड़ता।

१—अगस्त्य संहिता—खंनभोवेदवेदप्रमिते वर्षे गते कलौ।

कालिन्दी जान्हवीसगशोभिते देवपूजिते॥
तीर्थराजे महापुण्ये प्रयागे तीर्थ उत्तमे॥

माघकृष्णसप्तम्यां शुभधर्मप्रवर्तके। सप्तदण्डगते सूर्ये सिद्धयोगयुजि प्रभुः॥
नक्षत्रे त्वष्ट्रदैवत्ये कुम्भलग्ने शुभग्रहे॥

आविर्भूतो महायोगी द्वितीय इवभास्करः। रामानन्द इतिख्यातो लोकोद्धरणकारणः॥
—स० पं० रामनारायणदास, पृ० १३-१४

जन्म-स्थान—मैकालिफ़[१] के अनुसार रामानन्द गौड़ ब्राह्मण थे, उनका जन्म मैसूर राज्य में मेलंकोटा नामक स्थान में हुआ था। पहले डा० फर्क़ुहर[२] की भी धारणा थी कि रामानन्द दाक्षिणात्य थे। उनके अनुसार रामानन्द का सम्बन्ध दक्षिण के किसी राम-सम्प्रदाय से था, जिसके धर्म-ग्रन्थ वाल्मीकि-रामायण, अध्यात्म रामायण और रामतापन्युपनिषद् थे। 'अगस्त्य संहिता' में इस पंथ के मतों का विवेचन किया गया है। '[illegible]' और 'अ[illegible]' को लेकर रामानन्द उत्तर भारत आए और काशी को उन्होंने अपना केन्द्र-मठ बनाया। दार्शनिक आधार के लिए वे रामानुज के 'श्री भाष्य' का भी आश्रय लेते रहे। इसी कारण किसी रामानन्द-भाष्य की रचना न हो सकी। किन्तु, आगे चलकर फर्क़ुहर[३] को प्रमाणाभाव में अपने इस मत का परित्याग करना पड़ा। फिर वे राघवानन्द को ही दाक्षिणात्य मानने लगे। रामानन्दी विद्वान् गोपालदास ने 'वैष्णव धर्म रत्नाकर'[४] नामक ग्रन्थ में रामानन्द को दाक्षिणात्य ही माना है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी[५] जैसे हिन्दी के धुरन्धर विद्वान् ने भी इस मत का समर्थन किया है। किन्तु, इन विद्वानों ने अपने मत के समर्थन में किसी प्रमाण का आश्रय न लेकर केवल जनश्रुति मात्र का आधार लिया है। इस जनश्रुति के भी प्राचीन होने के प्रमाण नहीं मिलते। इसका आधार कबीर के नाम पर प्रचलित 'भक्ती द्राविड़ ऊपजी ले आये रामानन्द' उक्ति प्रतीत होती है। किन्तु इसे निर्विवाद रूप से कबीरदास कृत मान लेने में भी

वैश्वानर संहिता—रसेषुत्र्यवनीसंख्येवर्षे वैक्रमराजके। माघस्यासितसप्तम्यां रामानन्दोह्यभूद्भुवि ॥ अथवा पं० रामनारायण दास द्वारा उद्धृत—

रामानन्दमहामुनिस्समभवद्रागेपुरामावनीयुक्ते (सं० १३५६ वि०)
वैक्रमवत्सरेघटतनौ माघासितैत्वाष्ट्रभे।

सप्तम्यां गुरुवासरे युजितथासिद्धौ प्रयागाश्रमाच्छ्रीमद्भूसुरराजपुण्यसदनाद्रामावतारः कृती ॥ वही, पृष्ठ ४७।

१—दि सिख रिलीजन, वा० ६, पृ० १००-१।

२—'दि हिस्टारिकल पोज़ीशन अव् रामानन्द', जे० एन० फ़र्क़ुहर, जे० आर० ए० एस, १९२०, पृ० १८५-९२।

३—'दि हिस्टारिकल पोज़ीशन अव् रामानन्द', जे० एन० फ़र्क़ुहर, जे० आर० ए० एस०, १९२२।

४—वैष्णव धर्म रत्नाकर-वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।

५—हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ ४७।

आपत्ति हो सकती है। फिर भी यदि इसे कबीर कृत मान भी लिया जाय तो इससे यह अर्थ निकालना कि द्राविड़ देश में उत्पन्न भक्ति को लाने वाले रामानन्द जी भी द्राविड़ देश के थे, युक्ति-संगत नहीं प्रतीत होता। भागवत-माहात्म्य में भक्ति ने स्वयं कहा है—'उत्पन्ना द्राविड़े साहं वृद्धिं कर्णाटके गता। क्वचित्क्वचिन्महाराष्ट्रेगुर्जरेजीर्णताम् गता'। इसी 'उत्पन्ना द्राविड़े साहं' का 'भक्ती द्राविड़ ऊपजी' अनुवाद प्रतीत होता है। रामानन्द इसी द्राविड़ भक्ति के एक प्रमुख प्रवर्तक आचार्य थे, न कि द्राविड़ देश में वे स्वयं उत्पन्न हुए थे। उत्तर भारत में भक्ति के सभी प्रवर्तक आचार्य निश्चित् रूप से द्राविड़ नहीं ही थे, अतः इसका यह अर्थ लगाना अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है कि रामानन्द जी ने द्राविड़ देश में उत्पन्न भक्ति का उत्तर भारत में विशेष प्रचार किया, और यह कथन ठीक भी है। डा० ग्रियर्सन[१] के अनुसार उपर्युक्त मत केवल योरोपीय विद्वानों में ही प्रचलित है।

'अगस्त्य संहिता' के अनुसार रामानन्द का जन्म प्रयाग में हुआ था। 'भविष्य-पुराण' रामानन्द स्वामी का जन्म काशी में मानता है। प्रायः सभी प्रमाणों से यह सिद्ध ही है कि स्वामी रामानन्द जी का केन्द्रमठ काशी पंचगंगा घाट पर ही था, अतः यह कहा जा सकता है कि 'भविष्य पुराण' का संकेत रामानन्द के काशी निवास की ही ओर हो। रामानन्द-सम्प्रदाय के सभी विद्वान् तथा रामानन्द के जीवन पर प्रकाश डालने वाले सभी साम्प्रदायिक ग्रन्थ स्वामी रामानंद का जन्म प्रयाग में ही मानते हैं। आधुनिक विद्वानों में डा० बर्थ्वाल, रूपकलाजी, डा० ग्रियर्सन, परशुराम चतुर्वेदी आदि प्रायः सभी प्रमुख विद्वान् 'अगस्त्य संहिता' के मत से सहमत हैं। वैष्णव-धर्म के विशेषज्ञ सर भण्डारकर ने भी इस मत का समर्थन किया है; फिर भी यह निश्चित् रूप से नहीं कहा गया है कि प्रयाग में वह कौन सा स्थल है जहाँ स्वामी जी का जन्म हुआ था और न उनकी स्मृति में कोई चिन्ह ही वहाँ उपलब्ध होता है। प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक ने कुछ निश्चित् स्थान ढूंढ़ने के लिये प्रयाग के रामानन्दी साधुओं से पूछ-ताछ की, किन्तु वे कोई उत्तर न दे सके।

ऐसी परिस्थिति में साम्प्रदायिक मत अधिक दृढ़ प्रतीत होता है। रामानंद का जन्म प्रयाग में हुआ था, किन्तु किस स्थल पर यह कहना पुष्कल प्रमाण की अपेक्षा रखता है। जब तक रामानन्द को दाक्षिणात्य मानने वाले विद्वान् अपने

१—'होम अव् रामानन्द'-जी० ए० ग्रियर्सन, जे० आर० ए० एस०, १९२०, पृ० ५९१।

मत के समर्थन में अनुमान के स्थान पर कोई प्रामाणिक सामग्री अथवा तर्क उपस्थित नहीं करते तब तक 'अगस्त्य संहिता' के मत में सन्देह करने का कोई कारण नहीं प्रतीत होता। रामानन्द-सम्प्रदाय की सम्पूर्ण आस्था इस मत के साथ है। एक विशाल सम्प्रदाय की धारणाओं के विरुद्ध मत प्रतिपादित करने के लिये जिस प्रकार के दृढ़ तर्कों एवं सामग्री की आवश्यकता पड़ती है, अनेक प्रयास करने पर भी मुझे उस प्रकार की सामग्री संकेत रूप में भी उपलब्ध न हो सकी। दक्षिण के नगरों के डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियरों से भी कोई सहायता इस सम्बन्ध में न मिल सकी। अतः साम्प्रदायिक मत के स्वीकार कर लेने में मुझे कोई आपत्ति नहीं दिखलाई पड़ती।

माता-पिता—'अगस्त्य संहिता' के अनुसार रामानन्द के पिता का नाम पुण्यसदन और माता का नाम सुशीला देवी था। 'भविष्य पुराण' में उनके पिता का नाम देवल लिखा गया है। रामानन्द-सम्प्रदाय में 'अगस्त्य संहिता' का ही मत मान्य है। 'भक्तमाल' के प्रसिद्ध टीकाकार श्री रूपकला[१] ने 'अगस्त्य संहिता' के ही मत का समर्थन किया है। उनके अनुसार अर्थ-विचार से देवल तथा पुण्यसदन (भूरिशर्मा) की एकता माननी चाहिये। हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् डॉ० पीताम्बरदत्त बर्थ्वाल तथा श्री परशुराम चतुर्वेदी 'अगस्त्य संहिता' के मत के पोषक हैं। सम्प्रदाय में प्रचलित इस मत के विरोध में अभी कोई प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं हुई है। रामानन्द को दाक्षिणात्य मानने वाले विद्वान् इस सम्बन्ध में कोई भी सामग्री प्रस्तुत नहीं कर सके। ऐसी परिस्थिति में जब तक प्रामाणिक रीति से कोई सामग्री इस मत के विरोध में न मिल जाय, तब तक इसे स्वीकार कर लेने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। 'प्रसंग-पारिजात' में रामानन्द की मां का नाम सुरवी देवी लिखा है, किन्तु यह मत सम्प्रदाय में मान्य नहीं है।

जाति—मैकालिफ़[२] ने रामानन्द को गौड़ ब्राह्मण माना है, किन्तु अपने पक्ष के समर्थन में उन्होंने कोई प्रामाणिक सामग्री नहीं उपस्थित की। 'अगस्त्य-संहिता' के अनुसार रामानन्द के पिता पुण्यसदन कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। सीताराम शरण भगवान् प्रसाद रूपकला ने इस मत को ही स्वीकार किया है। साम्प्रदायिक ग्रन्थों में भी इस मत को स्वीकार किया गया है। हिन्दी के आधुनिक

१—रूपकला-भक्तमाल की टीका, पृष्ठ २९६।

२—दि सिख रिलीजन, वा ६, पृ० १००।

विद्वानों में डॉ० वर्थ्वाल तथा परशुराम चतुर्वेदी जी 'अगस्त्य संहिता' के इस मत से सहमत हैं। डॉ० ग्रियर्सन[1] का मत है कि किसी मत के प्रवर्तक के सम्बन्ध में चाहे अनेक असम्भव दन्तकथाएँ प्रचलित हो जाँय, किन्तु उसकी जाति-उपजाति के सम्बन्ध में दन्तकथाओं का प्रचलित हो जाना प्रायः असम्भव है। अतः उन्होंने 'अगस्त्य-संहिता' के साक्ष्य को प्रायः प्रामाणिक ही माना है। 'प्रसंग-पारिजात' में पुण्यसदन को वाजपेयी कहा गया है, किन्तु बहुमत रामानन्द को कान्यकुब्ज ब्राह्मण ही मानता है, मिश्र या वाजपेयी नहीं। ऐसी परिस्थिति में रामानन्द-सम्प्रदाय में प्रचलित तथा 'अगस्त्य-संहिता' द्वारा प्रचारित मत को स्वीकार ही कर लेना युक्ति संगत प्रतीत होता है। इस सम्बन्ध में किसी अन्य प्रामाणिक सामग्री का नितान्त अभाव है। 'भविष्य पुराण' भी इस मत का समर्थन करता है।[2]

गोत्र—विरक्त वैष्णव होने के नाते कुछ विद्वानों ने रामानन्द को अच्युत गोत्र का कहा है। भगवदाचार्य के अनुसार, "स्वामी जी त्रिदण्डी सन्यासी थे, चतुर्थ उनका आश्रम था; गोत्र उनका वही था जो उनके पिता का था। पंचमाश्रम और अच्युत गोत्र ये दोनों शब्द विरक्तता की चरमसीमा के सूचक हैं, न कि वस्तुतः तदर्थ प्रतिपादक। जब आश्रम का परित्याग करना है, तब पंचमाश्रम नामक एक अन्य आश्रम की कल्पना का प्रयोजन क्या है?।[3]" इस सम्बन्ध में कोई निश्चित् सामग्री नहीं उपलब्ध है।

पूर्वनाम—रामदत्त-भक्तमाल के प्रसिद्ध टीकाकार श्री रूपकला[4] जी के अनुसार रामानन्द का पूर्वनाम रामदत्त था, किन्तु यह मत सम्भवतः 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' के टीकाकार के आधार पर दिया गया प्रतीत होता है। पता नहीं, टीकाकार ने किस आधार पर यह मत व्यक्त किया था। केवल किंवदन्ती के आधार पर ही कदाचित् उन्होंने यह मत दिया था।

१—ग्रियर्सन-दि होम आव् रामानन्द, जे० आर० ए० एस०, १९२०, पृ० ५९१।
Impossible or marvellous legends may grow up regarding the founder of a sect, but one thing about which we may expect a tradition to be accurate is the name of the Brahman sect to which he belonged.

२—भविष्य पुराण-देवलस्य च विप्रस्य कान्यकुब्जस्य वैसुतः।

३—रामानन्द दिग्विजय-भगवदाचार्य (प्रथम संस्करण की भूमिका)।

४—भक्तमाल की टीका-रूपकला- पृ० २८९।

रामभारती—'वैष्णव धर्म रत्नाकर[१]' के अनुसार रामानन्द का पूर्वनाम रामभारती था। राघवानन्द से दक्षिण देश में जब रामभारती की भेंट हुई, तब उन्होंने शैव रामभारती को अपने योग बल से आसन्न मृत्यु से बचा कर अपने सम्प्रदाय में दीक्षित किया। इसके पश्चात् उनका नाम रामानन्द पड़ा। नाम संस्कार वैष्णवों के पंचसंस्कार में एक प्रमुख संस्कार है। गुजराती ग्रन्थ 'रामानन्द धर्म-प्रकाश'[२] के अनुसार अपनी माता को साधुज्ञान दे उसे अपने मित्र मोतीशंकर के पास रख कर स्वामी जी काशी के एक शिवमार्गी गिरिजाशकर के पास गए और उनसे पंच संस्कार लेकर 'रामभारती' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

किन्तु, उपर्युक्त मत का भी कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता। 'रामानन्द-धर्म प्रकाश' एक आधुनिक कृति है। उसमें भी किसी प्रमाण (साक्ष्य) का उल्लेख नहीं किया गया है और 'वैष्णव धर्म रत्नाकर' भी इस सम्बन्ध में मौन है। सम्प्रदाय में इस मत को कोई मान्यता नहीं मिली है, फिर पंच संस्कार लेने पर 'आनन्दान्त' नाम रखने की किसी प्रथा का भी उल्लेख कहीं नहीं मिलता।

इसके विपरीत 'अगस्त्य संहिता', 'भविष्य पुराण', तथा 'प्रसंग-पारिजात' अथवा रामानन्द-सम्प्रदाय के अन्य ग्रन्थों में रामानन्द स्वामी का पूर्वनाम 'रामानन्द' ही मिलता है। सम्प्रदाय के विद्वानों का मत है कि नाम संस्कार होने पर भी भगवत् सूचक नामों में कोई परिवर्तन नहीं किया जाता। इसी कारण रामानन्द के नाम में वैष्णवी दीक्षा पाने पर भी कोई परिवर्तन नहीं किया गया।

गुरु राघवानन्द—'अगस्त्य संहिता,'[३] नाभादास कृत 'भक्तमाल'[४]

१—वैष्णव-धर्म-रत्नाकर-गोपालदास, पृ० ८४।

२—रामानन्द दिग्विजय-भगवदाचार्य, भूमिका, पृ० २३।

३—आचार्यलक्षणैर्युक्तं वेदवेदान्तपारगम्। श्री सम्प्रदायश्रेष्ठं च जनोद्धारपरं सदा ॥ १५ ॥ विज्ञायराघवानन्दं लब्ध्वातस्मात्षडक्षरम्। रहस्यत्रयवाक्यार्थं तात्पर्यार्थं च सन्मतम् आचार्यलक्षणैर्दिव्यैर्लक्षितो वै भविष्यति ॥१६॥ 'अगस्त्यसंहिता', सं० पं० रामनारायणदास, पृष्ठ १७।

४—देवाचारजद्वितिय महामहिमा हरियानंद। तस्य राघवानन्द भये भक्तन को मानद॥ पत्रावलम्ब पृथिवीकरी व दृढ़ काशी स्थाई। चारिवरन आश्रम सबहीको भक्तिदृढ़ाई॥ तिनके रामानन्द प्रगट विश्वमंगलजिनिवपुधर्यो। श्री रामानुजपद्धतिप्रतापअवनि अमृत ह्वै अनुसर्यो-'भक्तमाल',-रूपकला, पृष्ठ २८१-२।

'भविष्य पुराण'[1] आदि सभी ग्रन्थों के अनुसार रामानन्द के गुरु राघवानन्द नाम के कोई वैष्णव-आचार्य थे। 'श्री रामार्चन पद्धति'[2] में स्वयं रामानन्द ने राघवानन्द स्वामी को अपना गुरु कहा है। प्रायः सभी पाश्चात्य एवं पूर्वी विद्वानो ने राघवानन्द को ही रामानन्द का दीक्षा-गुरु माना है। रामानन्दी विद्वानों के अनुसार उपनयन संस्कार हो जाने के उपरान्त ही रामानन्द को उनके पिता पुण्यसदन शर्मा ने काशी के वैष्णवाचार्य राघवानन्द के समीप भेज दिया। 'भविष्य पुराण' के अनुसार माता-पिता से परित्यक्त होकर रामानन्द 'राघव' की शरण गए थे। गुरु की कृपा से चतुर्दश कला वाले भगवान् ने इनके हृदय में प्रकाश की किरणें भर दीं।[3] 'अगस्त्य संहिता' के अनुसार भी द्वादश वर्ष की आयु प्राप्त करने पर रामानन्द राघवानन्द के समीप जाकर विद्याध्ययन करने लगे। फिर उन्हीं से रामषडक्षर-मंत्र पाकर वे वैष्णवाचार्यों में प्रमुख स्थान के अधिकारी हुए। रामानन्द-सम्प्रदाय में 'अगस्त्य-संहिता' का ही मत मान्य है।

दण्डी गुरु—एक किंवदन्ती के अनुसार रामानन्द पहले किसी सन्यासी के शिष्य होकर स्मार्त्त रीति से अपने धर्म-कर्म में प्रवृत्त हुए थे, किन्तु एक दिन राघवानन्द से उनकी भेंट हो गई। राघवानन्द ने उनकी आसन्न-मृत्यु की उन्हें सूचना दी और फिर अपनी शरण में लेकर उस मृत्यु से बचा भी दिया। कहा जाता है कि स्वयं दण्डी सन्यासी गुरु ने रामानन्द को राघवानन्द को समर्पित कर दिया था। रूपकला[4] तथा 'वैष्णव-धर्म-रत्नाकर' के लेखक गोपालदास ने[5] इस मत का प्रवर्तन किया है। मैकालिफ़, डा० बर्थ्वाल, श्री परशुराम चतुर्वेदी आदि विद्वानों ने इस मत को स्वीकार भी किया है। किन्तु इस किंवदन्ती में कितना अंश सत्य का है, यह नहीं कहा जा सकता। कम-से-कम इसका कोई प्रामाणिक आधार नहीं मिलता। 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' के टीकाकार जानकी रसिकशरण ने भी इस किंवदन्ती का उल्लेख किया है, फिर भी इस पर विश्वास

१—बाल्यात्प्रभृति स ज्ञानी रामनामपरायणः। पित्रामात्रायदात्यक्तो राघवंशरणंगतः। तदातु भगवान् साक्षात् चतुर्दशकलोहरिः। सीता पतिरतद्धृदये निवासंकृतवान्मुदा ॥—भविष्य पुराण, सप्तम् अध्याय : चतुर्थखण्ड, श्लोक ५६-५७।

२—रामानन्दबुधो दयाजलनिधि श्रीराघवानन्दनम्......द्वेपं श्री पृतनापतिजनकजां रामं सदासंश्रये ॥ श्रीरामार्चन पद्धति—पं० रामटहलदास, पृष्ठ ३५।

३—वही, देखिए नं० १।

४—भक्तमाल, रूपकला, पृष्ठ २८९।

५—वैष्णवधर्मरत्नाकर, पृष्ठ ९७।

करने के लिये और भी प्राचीन एवं सबलतर प्रमाणों की आवश्यकता है। प्रामाणिक सूत्रों से तो यह स्पष्ट हो जाता है कि रामानन्द ने राघवानन्द से ही दीक्षा ली थी। वेद-वेदांग एवं शास्त्रों का अध्ययन करके उन्हीं से षडक्षर-मंत्र भी प्राप्त किया था। आधुनिक रामानन्द- सम्प्रदाय में यही मत मान्य है।

राघवानन्द और रामानुज-संप्रदाय—भक्तमाल (नाभादासकृत) के अनुसार राघवानन्द स्वामी हर्यानन्द के शिष्य थे। हर्यानन्द के गुरु देवाचार्य को रामानुजाचार्य के बाद ही कहा गया है। कदाचित् वे रामानुज के शिष्य ही थे। इस प्रकार राघवानन्द रामानुज-परम्परा में, भक्तमाल के अनुसार, चौथे आचार्य ठहरते हैं। किन्तु 'रामार्चन-पद्धति' के अनुसार उन्हें रामानुजाचार्य की शिष्य-परम्परा में १४ वां आचार्य माना गया है। नाभाजी ने १० आचार्यों के नाम छोड़ दिया होगा, यह विश्वसनीय नहीं प्रतीत होता। रामानन्द-सम्प्रदाय के छोटे से भी छोटे सन्त को उन्होंने भक्तमाल में समेट लिया है, फिर रामानुज-सम्प्रदाय के दिग्गज महन्थों के भी नाम वहाँ गिनाये गये हैं। अतः यह अधिक सम्भव है कि रामानुज-सम्प्रदाय के कुछ महत्वपूर्ण आचार्यों के ही चरित का इन्होंने गान किया हो और शेष को छोड़ दिया हो। जो हो, समस्त प्राचीन प्रमाणों के आधार पर इतना तो सिद्ध होता ही है कि राघवानन्द विशिष्टाद्वैत मत के अनुयायी थे। आधुनिक रामानन्दी विद्वान् उन्हें रामानुज सम्प्रदाय के विशिष्टाद्वैत का अनुयायी न मान कर किसी प्राचीन काल से चले आते हुए रामावत-सम्प्रदाय का अनुयायी मानते हैं। इस रामावत-सम्प्रदाय की सत्ता निर्विवाद नहीं है, इसे कुछ विद्वान् (जिनमें रामानन्दी विद्वान् पं० रामटहलदास भी थे) आधुनिक एवं मनगढ़न्त भी मानते हैं। इस सम्बन्ध में अपना मत मुझे अन्यत्र व्यक्त करना है, अतः यह प्रसंग यहीं समाप्त किया जाता है।

राघवानन्द स्वामी के ग्रन्थ—राघवानन्द स्वामी ने कितने ग्रन्थ लिखे, इस सम्बन्ध में हमें कोई ज्ञान नहीं है। इधर कुछ वर्ष पूर्व डॉ० बर्थ्वाल ने 'सिद्धान्त-पंचमात्रा'[१] नामक एक ग्रन्थ की खोज की थी, जिसे स्वामी राघवानन्द कृत कहा गया था। एक तो यह ग्रन्थ अधूरा है, दूसरे इसकी भाषा-शैली से यह स्पष्ट है कि इसकी रचना किसी सामान्य श्रेणी के लेखक ने की है। 'रामरक्षा स्तोत्र' अथवा 'सिद्धान्त-पटल' की जो शैली है, वही शैली 'सिद्धान्त-पंचमात्रा' की भी है। अतः जब तक इस ग्रन्थ की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ

१—हिन्दी काव्य में योग प्रवाह, पृ० ८।

न मिल जायँ और जब तक इनकी पूरी परीक्षा न हो ले, तब तक इसे स्वामी राघवानन्द कृत मान कर उससे कोई निष्कर्ष निकाल लेना उचित नहीं है।

राघवानन्द और रामानन्द का मतभेद—कुछ विद्वानों के अनुसार रामानन्द-संप्रदाय के प्रवर्तक स्वामी रामानन्द थे तो विशिष्टाद्वैती स्वामी राघवानन्द के शिष्य ही, किन्तु उनका दृष्टिकोण अपने गुरु की अपेक्षा अधिक उदार था। जाति-पांति का बन्धन भक्ति के क्षेत्र में उनके लिये अमान्य था। रामानुज-सम्प्रदाय में छुआछूत, जाति-पाँति आदि का भेद-भाव अधिक किया जाता है। राघवानन्द इस भेद-भाव को कुछ-न-कुछ अवश्य ही मानते थे। किंवदन्ती है[1] कि रामानन्द के इस अधिक उदार दृष्टिकोण को देखकर राघवानन्द ने उन्हें अपना नया सम्प्रदाय चलाने की स्वीकृति दे दी। रामानन्द ने अपने वैरागी सम्प्रदाय में नाई, जाट, क्षत्रिय, जुलाहा, चमार, ब्राह्मण तथा स्त्री आदि सभी का समावेश कर लिया, और इस प्रकार मध्ययुग में एक सबल सम्प्रदाय की स्थापना की। फिर भी, राघवानन्द स्वामी के विशिष्टाद्वैत का उन पर बहुत ही अधिक प्रभाव पड़ा और आज भी उनका सम्प्रदाय अन्य सभी धार्मिक सम्प्रदायों के प्रभावों को समेट कर भी विशिष्टाद्वैत दर्शन को छोड़ नहीं पाया है। खेद है, इस अत्यंत महत्त्वपूर्ण किंवदन्ती का भी कोई प्रामाणिक आधार अब तक उपलब्ध नहीं हो सका है।

शिक्षा-दीक्षा—'अगस्त्यसंहिता' तथा 'भविष्य पुराण' के साक्ष्य पर हम देख चुके हैं कि रामानन्द को गुरु राघवानन्द की कृपा से सत्य का साक्षात्कार हुआ था। गुरु ने विशिष्टाद्वैत की शिक्षा देने के साथ ही उन्हें सर्वशास्त्र-संपन्न भी करा दिया था। तत्वज्ञान उन्हें गुरु से ही मिला था।

फिर भी, रामानन्द पर युग-धर्म का भी बहुत प्रभाव पड़ा था। मेकालिफ़[2] का कहना है कि रामानन्द निश्चय ही काशी के विद्वान् मुसलमानों के सम्पर्क में आये होंगे। उनसे उन्होंने प्रभाव भी ग्रहण किया होगा। तभी अपने दृष्टिकोण में वे इतने उदार हो सके।

रामानन्द को योग से सम्बद्ध मानने वाले 'तपसीशाखा' के भक्तों का यह कथन है कि रामानन्द ने गिरनार या आबू पर्वत पर योग-साधना करके सिद्धि-प्राप्त की थी।[3]

१—भक्तमाल, रूपकला।

२—दि सिख रिलीजन, वा० ६, पृ० ९३ तथा उसके आगे।

३—रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृ० ११०।

किन्तु इस मत के लिये कोई ठोस प्रमाण नहीं मिला। कुछ विद्वानों के मत से रामानन्द ने अद्वैतियों के ज्योतिर्मठ में ब्रह्मचारी रह कर वेदान्त का अध्ययन भी किया था[१]। किन्तु साम्प्रदायिक धारणा[२] के अनुसार रामानन्द ने आठ वर्ष की अवस्था से विद्यारम्भ किया और चार वर्ष में ही इतने पण्डित हो गये कि 'प्रयाग निवासी पण्डित लोग अब आपको अधिक नहीं पढ़ा सकते थे। तब १२ वर्ष की अवस्था में वे काशी आये।' यहाँ आकर—कुछ विद्वानों का मत है—रामानन्द किसी सन्यासी के शिष्य होकर स्मार्त्त रीति से धर्म-कर्म में प्रवृत्त हुए और बाद में उन्हें गुरु राघवानन्द ने वैष्णवी दीक्षा देकर विशिष्टाद्वैत मत का महान् आचार्य बना दिया। रामानन्द के जीवन चरित लिखने वाले आधुनिक विद्वानों ने इस बात पर बहुत अधिक बल दिया है कि रामानन्द ने शास्त्रार्थ में मुसलमानों, सिद्धों, योगियों, जैनियों, एवं अद्वैतवादियों को अनेक बार परास्त किया था। यद्यपि इस मत के पीछे भावुकता पूर्ण मूल्यांकन अधिक है, फिर भी इतना तो सत्य है ही कि रामानन्द एक महान् सुधारक एवं प्रतिभाशील व्यक्ति थे। उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उनके युग के सभी महान् मेधावी भक्त अथवा सुधारक उनके या तो शिष्य हो गये थे अथवा उनका गुरुवत् सम्मान करते थे। कबीर, रैदास, पीपा, सेन, धना आदि ऐसे ही प्रतिभाशील व्यक्ति थे। आज उत्तर भारत में रामानन्द-सम्प्रदाय जितना अधिक सुसंगठित एवं शक्ति-पूर्ण है, उतना अन्य कोई सम्प्रदाय नहीं।

तीर्थाटन—कहा जाता है कि दिग्विजय की इच्छा से तो रामानन्द स्वामी ने समस्त भारतवर्ष का ही पर्यटन किया था,[३] किन्तु विशुद्ध तीर्थाटन की दृष्टि से भी उन्होंने सुदूर पूर्व और उत्तर की यात्रायें की थीं।[४] रूपकला जी के मत से स्वामी जी ने बहुत तीर्थाटन किया था। उन्होंने गंगासागर जाकर कपिलदेव का उद्धार किया था। रामानन्द का मुख्य निवास-स्थल तो पंचगंगा घाट काशी ही था, किन्तु कहा जाता है कि उन्होंने बदरिकाश्रम[५], रामेश्वर[६], द्वारका, मिथिला आदि प्रमुख तीर्थों की यात्रायें भी की थीं। इस प्रकार उन्होंने युग की

१—वही, पृ० ११०।

२—भक्तमाल, भक्ति-सुधा-स्वाद-तिलक, रूपकला, पृ० २८६।

३—रामानन्द-दिग्विजय, भगवदाचार्य।

४—भक्तमाल-रूपकला, पृ० २६०।

५—दि सिख रिलीजन, मैकालिफ़, पृ० १००, वा० ६।

६—रामानन्द-दिग्विजय-भगवदाचार्य।

की परिस्थितियों का पूरा अध्ययन किया, और अपने दृष्टिकोण को बहुत कुछ उदार बना लिया। कहा जाता है कि जब अपनी इस तीर्थयात्रा के उपरान्त रामानन्द गुरुमठ पहुँचे तब उनके साथियों ने उनके साथ भोजन करने में आपत्ति प्रकट की। राघवानन्द स्वामी को इस सत्य को स्वीकार करना ही पड़ा, किन्तु रामानन्द की मेधा से प्रसन्न होकर उन्होंने एक नया सम्प्रदाय चलाने की उन्हें अनुमति दे दी।[१] यह भी अभी कहा जा चुका है कि इस किंवदन्ती पर विश्वास नहीं किया जा सकता। कोई प्रामाणिक एवं प्राचीन सामग्री न मिलने से इस सम्बन्ध में कोई मत निश्चित् कर लेना उचित न होगा। केवल इतना कहा जा सकता है कि रामानन्द ने तीर्थों का भ्रमण करके ही अपने दृष्टिकोण को युग-धर्म के अनुकूल बना लिया था।

नये सम्प्रदाय का निर्माण—वैष्णवी भक्ति के आचार्य माने जाते हैं रामानुजाचार्य स्वामी, किन्तु रामभक्ति के आचार्य रामानन्द ही माने गये हैं। उनके पूर्व [illegible] में 'लक्ष्मीनारायण' को ही इष्टदेव के रूप में स्वीकार किया गया था और राम, कृष्ण, नृसिंह आदि उनके विशेष अवतारों की उपासना भक्त लोग अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुसार किया करते थे। कृष्ण-भक्ति को तो आचार्यों का पर्याप्त बल मिल चुका था और देश के कोने-कोने में उसका प्रचार भी हो चुका था, किन्तु अनादि काल से चली आती हुई राम-भक्ति परम्परा को कोई भी आचार्य रामानन्द स्वामी के पूर्व नहीं मिला था। अतः यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि रामानन्द स्वामी ने किस प्रेरणा से अपने रामावत-सम्प्रदाय की स्थापना कर उत्तर भारत में वैरागियों का विशाल दल खड़ा कर दिया। इस प्रश्न का उत्तर दो प्रकार से दिया गया है। एक मत के प्रवर्तक हैं श्री एच०-एच० विल्सन तथा रामानन्द-सम्प्रदाय के प्रसिद्ध भक्त रूपकला जी, तथा उनका अनुसरण करने वाले विद्वान् मैकालिफ़, डा० बर्थ्वाल तथा परशुराम चतुर्वेदी जी। दूसरे मत के प्रवर्तक हैं डा० फर्कुहर तथा रामानन्द-सम्प्रदाय के कुछ आधुनिक विद्वान्।

विल्सन[२] के अनुसार भारतवर्ष का भ्रमण कर रामानन्द जब अपने गुरु-मठ आये तब उनके साथियों ने उन्हें अपने साथ बिठा कर खिलाने में आपत्ति की, क्योंकि उन्हें आशंका थी कि रामानन्द ने अपने भ्रमण में खान-पान आदि

१—दि सिख रिलीजन, वा० ६, मैकालिफ़, पृष्ठ १०२-३।

२—रिलीजन अव् हिन्दूज़, वा० २, एच० एच० विल्सन, पृष्ठ ४८।

में किसी नियम का पालन नहीं किया होगा। राघवानन्द ने भी इस आपत्ति की सत्यता को स्वीकार किया। इस अपमान को सहन न कर सकने के कारण रामानन्द ने एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय की स्थापना की। रूपकला जी का मत है कि रामानन्द के उदार-दृष्टिकोण को देख कर राघवानन्द ने स्वयं ही उन्हें एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय चलाने की अनुमति दे दी। किन्तु इस किंवदन्ती का अभी तक कोई पुष्ट आधार नहीं मिला है, यद्यपि यह सत्य है कि [illegible] में खानपान, छुआछूत आदि का कोई भेद-भाव नहीं होता रहा है। आधुनिक-काल में अवश्य ही मन्त्रोपदेष्टा प्रायः ब्राह्मण ही होने लगे हैं।

द्वितीय मत के प्रवर्तक डा० फ़र्क़ुहर[१] हैं। उनके अनुसार दाक्षिणात्य रामावत सम्प्रदाय के वैरागी राघवानन्द ने उत्तर भारत में आकर रामानन्द को अपना शिष्य बना लिया था। जिस रामावत-सम्प्रदाय के सदस्य राघवानन्द स्वामी थे उसमें 'अध्यात्म रामायण' ही धर्म-ग्रन्थ के रूप में स्वीकृत था और 'वाल्मीकि रामायण' का पठन-पाठन विधिवत् होता था। क्रमशः उत्तर भारत में उनका सम्पर्क रामानुज-सम्प्रदाय से हुआ और यह सम्पर्क इतना अधिक बढ़ गया कि नाभाजी के समय तक रामावत-सम्प्रदाय तथा रामानुज-सम्प्रदाय में कोई अन्तर नहीं रह गया। इस प्रकार रामानन्द ने स्वयं किसी सम्प्रदाय का निर्माण नहीं किया, राम-भक्ति उन्हें राघवानन्द स्वामी से मिली और उत्तर भारत के रामानुजीयों से विशिष्टाद्वैत मतवाद। अतः डा० फ़र्क़ुहर के मत से रामानन्द परम्परा से चले आते हुए रामावत-सम्प्रदाय के ही एक प्रमुख आचार्य थे। डा० फ़र्क़ुहर के इस मत से आज के रामानन्दी विद्वान् मूलरूप से सहमत हैं। केवल दोनों में अन्तर इतना ही है कि आज के विद्वान् 'अध्यात्म रामायण' को अपना साम्प्रदायिक ग्रन्थ नहीं मानते, विशिष्टाद्वैत को ही वे अपना तात्विक मत मानते हैं और उनका विश्वास है कि आदि काल में केवल एक 'श्री सम्प्रदाय' था। कालान्तर में उसकी दो शाखायें हो गईं—एक शाखा में 'लक्ष्मीनारायण' की उपासना होती थी और उस शाखा के उपासक थे आलवार भक्त तथा रामानुज आदि प्रमुख आचार्य और दूसरी शाखा में 'सीताराम' की उपासना होती थी, और इस शाखा के प्रसिद्ध आचार्य हुए बोधायन, देवाचार्य, ह्यानन्द, राघवानन्द

१—जर्नल अव् दि रायल एशियाटिक सोसायटी अव् ग्रेट ब्रिटेन ऐण्ड आयरलैण्ड, १९२२ई०, दि हिस्टारिकल पोज़ीशन अव् रामानन्द, पृ०१८५-९२–जे०एन० फ़र्क़ुहर ने १९२० के जे०आर०ए०एस० में जो लेख निकाला था, उस मत में उन्होंने १९२२में पर्याप्त परिवर्तन कर दिया है। यहां उनका दूसरा मत ही दिया जा रहा है।

आदि। रामानन्द इसी दूसरे सम्प्रदाय के एक महान् आचार्य थे। इस मत के प्रवर्त्तक हैं पण्डित रघुवरदास वेदान्ती तथा श्री भगवदाचार्य।

विद्वानों का अधिकांश वर्ग प्रथम मत का ही प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से समर्थन करता है। दूसरा मत केवल मात्र तर्काश्रित है। यह तर्क भी साम्प्रदायिक संकीर्णताओं से बोझिल है। इसकी पूरी समीक्षा हम अगले अध्यायों में करेंगे। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि इस मत को न मानने के अनेक कारण हैं। फिर इस प्रश्न के सम्बन्ध में हम कोई निश्चित् उत्तर भी नहीं दे सकेंगे। वस्तुतः यह प्रश्न अधिक ठोस प्रमाणों की अपेक्षा रखता है। उपलब्ध सामग्री में सबसे अधिक प्रामाणिक 'अगस्त्य-संहिता' इस सम्बन्ध में कोई संकेत नहीं करती। यदि केवल अनुमान की बात कही जाय तो निश्चय ही प्रथम मत अधिक सबल एवं तर्क-संगत है। राघवानन्द से अलग होने के कारण रामानन्द को गुरु-द्रोही भी नहीं कहा जा सकता। प्रतिभा अपना मार्ग ढूँढ़ लेती है, गुरु-मत में संशोधन करना ही गुरु की परम्परा को आगे बढ़ाना था। रामानन्द ऐसे ही मेधावी शिष्य थे। आज उन्हीं के कारण राघवानन्द का भी नाम आदर से लिया जाता है।

रामानन्द स्वामी का केन्द्र-मठ—रामानन्द स्वामी का केन्द्र-मठ पंचगंगा घाट काशी में था। आज भी यह मठ अपने अवशिष्ट रूप में वर्तमान है। सन् १९५१ में यहाँ के महन्थ पण्डित रामलखन दास जी थे। इस समय यहाँ रामानन्द स्वामी की तथाकथित चरण-पीठिका वर्तमान है। दीवाल पर कबीर, सुरसुरानन्द, अनन्तानन्द, तथा हनुमान् जी आदि की मूर्तियाँ हैं। मुसलमानी काल में इस मठ को ध्वस्त कर दिया गया था। इस कारण यहाँ न तो साम्प्रदायिक हस्तलिखित ग्रन्थ ही मिलते हैं, और न कुछ पुराने स्मृतिचिह्न हैं। फिर भी वातावरण रामानन्द की स्मृति से ओत-प्रोत है। यहीं रह कर उस मनस्वी ने अपने मतवाद का दृढ़ता से प्रचार किया था, यहीं से उस धर्म की ज्योति फूटी थी जिसकी एक किरण तुलसी के रूप में युग-युग के अन्धकार में प्रकाश भर गई।

रामानन्द स्वामी के शिष्य—रामानन्द-सम्प्रदाय का सबसे अधिक प्रामाणिक इतिवृत्त उपस्थित करने वाला ग्रन्थ नाभादास कृत 'भक्तमाल' है, यह हम पिछले अध्याय में देख चुके हैं। 'भक्तमाल' के अनुसार अनन्तानन्द, कबीर, सुखानन्द, सुरसुरानन्द, पद्मावती, नरहर्यानन्द, पीपा, भावानन्द, रैदास, धना, सेन,

सुरसुरी, आदि द्वादश शिष्य रामानन्द के प्रमुख शिष्यों में थे।[1] 'अगस्त्य संहिता' के अनुसार भी[2] अनन्तानन्द, सुरसुरानन्द, सुखानन्द, नरहर्यानन्द, योगानन्द, पीपा, कबीर, भावानन्द, सेन, धना, गालवानन्द, रमादास, तथा पद्मावती आदि रामानन्द के शिष्य क्रमशः ब्रह्मा, नारद, सनत्कुमार, कपिलदेव, मनु, प्रह्लाद, जनक, भीष्म, बलि, शुकदेव, यमराज और लक्ष्मी के अवतार कहे गये हैं। अग्रस्वामी की रहस्यत्रय की टीका के अनुसार भी अनन्तानन्द, सुरसुरानन्द, सुखानन्द, नरहर्यानन्द, पीपा, कबीर, पद्मावती, भावानन्द, सेन, धना, रैदास, सुरसुरी और गालवानन्द आदि शिष्यों को द्वादश आदित्य के समान कहा गया है।[3] प्रथम सात को 'नन्दनाः' और अन्तिम ६ को 'जितेन्द्रियाः' कहा गया है। इस प्रकार रामानन्द-सम्प्रदाय के प्रामाणिक ग्रन्थों में अनन्तानन्द, सुरसुरानन्द, कबीर, सुखानन्द, नरहर्यानन्द, पीपा, सेन, धना, रैदास (रमादास), पद्मावती आदि सामान्य रूप से रामानन्द स्वामी के शिष्य माने गये हैं। 'भक्तमाल' की सुरसुरी का उल्लेख अग्रदास की रहस्यत्रय टीका में तो है, किन्तु 'अगस्त्य संहिता' में नहीं, 'अगस्त्य संहिता' के योगानन्द को 'भक्तमाल' में अनन्तानन्द का शिष्य कहा गया है। रूपकला जी ने भी उसका समर्थन किया है।[4] गालवानन्द को 'अगस्त्यसंहिता' तथा 'रहस्यत्रय की टीका' में रामानन्द का शिष्य कहा गया है, किन्तु 'भक्तमाल' में उनका कोई उल्लेख नहीं है। लगभग सभी विद्वानों ने 'भक्तमाल' के साक्ष्य को स्वीकार किया है। केवल कुछ अंग्रेज विद्वानों को 'भक्तमाल' के अर्थ समझने में भ्रान्ति हो गयी है, जिसका

१—अनन्तानन्द कबीर सुखा सुरसुरी पद्मावति नरहरि।
पीपा भावानन्द रैदास धना सेन सुरसुर की घरहरि॥
औरो शिष्य प्रशिष्य एक से एक उजागर।
विश्व मंगल आधार सर्वानन्द दशधा के आगर॥
बहुत काल वपु धारि कै प्रणत जनन को पार दियो।
श्री रामानन्द रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जग तरन कियो॥

२—अगस्त्य संहिता-श्रीरामानन्दजन्मोत्सव, सं० रामनारायणदास, डाकोर, पृ० १९-२४।

३—राघवानन्द एतस्य रामानन्दस्ततोऽभवत्। सार्धद्वादशशिष्याः स्युःश्रीरामानन्दसद्गुरोः॥
द्वादशादित्यसंकाशास्संसारनिर्भर प्रज्ञाः। श्रीमदनन्तानन्दस्तु सुरसुरानन्दस्तथा॥
नरहरियानन्दस्तु योगानन्दस्तथैव च। सुखाभावागालवं च सप्तैते नाम नन्दनाः॥
कबीरश्च रमादासः सेना पीपा धनास्तथा। पद्मावतीतदर्द्धं च षडेतैच जितेन्द्रियाः॥
येषां शिष्यप्रशिष्यैश्च व्याप्ताभारत-भारती। भक्तमाल, रूपकला, पृ० २८४-८५॥
४—वही, पृ० २८६।

अनुकरण हिन्दी के मान्य विद्वानों ने भी किया है। इस सम्बन्ध में विल्सन महोदय ने अधिक भूलें की हैं। उन्होंने[१] 'रघुनाथ' को रामानन्द का शिष्य लिखा है। सुखा-सुरसुर को एक व्यक्ति मान कर उसका नाम 'सुखासुर' रक्खा है; और जीव नाम का एक और शिष्य जोड़ दिया है। इसी प्रकार नरहर्यानन्द को नरहरि या हर्यानन्द लिख दिया है। उन्होंने रघुनाथ का दूसरा नाम 'आशानन्द' दिया है, जो कदाचित् अनन्तानन्द के लिये भूल से प्रयुक्त हुआ है।

जो हो, रामानन्द-सम्प्रदाय में प्रायः सभी विद्वानों को 'भक्तमाल' में दी हुई रामानन्द की शिष्य-परम्परा ही मान्य है। हिन्दी के विद्वानों में लगभग सभी ने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रीति से इस परम्परा को ही माना है। डा० बर्थ्वाल जैसे विद्वानों ने तो इसी आधार पर कबीर और पीपा की जन्मतिथियों को भी फिर से निर्धारित करने का प्रयास किया है। रामानन्द के शिष्यों में कबीर, सेन, पीपा, धना और रैदास को लेकर ही विवाद खड़ा किया गया है। श्री परशुराम चतुर्वेदी का इस सम्बन्ध में नवीनतम प्रयास है।[२] उन्होंने इन भक्तों की प्रामाणिक बानियों का अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला है :—"उन पाँच व्यक्तियों (सेन, कबीर, पीपा, रमादास या रैदास, धना) में से कदाचित् किसी ने भी स्पष्ट शब्दों में रामानन्द को अपना गुरु स्वीकार नहीं किया है और उनमें से सभी ने उनका नाम तक नहीं लिया है। कम-से-कम पीपा जी ने अपने को कबीर साहब द्वारा तथा धन्ना ने नामदेव, कबीर साहब, रैदास तथा सेन नाई की कथाओं द्वारा प्रभावित होना स्वीकार किया है। सम्भव है कि उक्त सभी सन्त एक ही समय और एक ही साथ ऐसी स्थिति में वर्तमान भी न रहे होंगे जिससे उनका स्वामी रामानन्द का शिष्य और आपस में गुरु-भाई होना किसी प्रकार सिद्ध किया जा सके।[३]" किन्तु चतुर्वेदी जी ने अपने मत के समर्थन में जो भी तर्क दिये हैं, वे इतने सबल एवं प्रौढ़ नहीं हैं जिनके बल पर सैकड़ों वर्षों से चली आती परम्परा का निराकरण किया जा सके। फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि जब तक उपर्युक्त सन्तों की बानियों का प्रामाणिक संकलन उपलब्ध नहीं हो जाता अथवा उनके जीवन पर प्रकाश डालने वाली प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं हो जाती, तब तक इस सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय देना सम्भव नहीं होगा। यह अवश्य ही कहा जा सकता है कि रामानन्द

१—रिलीजस सेक्ट्स अव् दि हिन्दूज, वा० २, पृ० ५८।

२—उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृष्ठ २२४-२६।

३—वही, पृ० २२४।

के उपदेशों की जो आत्मा (स्पिरिट) है वह इन सन्तों की बानियों में पूर्ण रीति से वर्तमान है। जिस उदार दृष्टिकोण से रामानन्द ने जीवन के सत्यों की परीक्षा की है और जिस भक्ति का उपदेश इन्होंने अपने शिष्यों को दिया था, वह पूरी की पूरी मात्रा में इन भक्तों की बानियों में पायी जाती है।

उपर्युक्त सन्तों के सम्बन्ध में हम आगे और कुछ कहेंगे। यहाँ इतना और कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि इन भक्तों में सभी जाति का प्रतिनिधित्व हो गया था। कबीर जुलाहे थे, रैदास चमार थे, धना जाट था, सेन नाई और पीपा राजपूत क्षत्रिय थे। प्रियादास ने 'भक्तमाल' की टीका में इनके सम्बन्ध में अनेक आश्चर्यजनक कथाओं का संकलन किया है।

रामानन्द स्वामी की दिग्विजय—रामानन्द स्वामी की दिग्विजय के सम्बन्ध में 'भक्तमाल' में कोई उल्लेख नहीं है। 'अगस्त्यसंहिता' में केवल इतना ही संकेत है कि रामानन्द अपने द्वादश शिष्यों से परिवृत होकर द्वारकादि तीर्थों को जायँगे और विशिष्टाद्वैत के विरोधी व्यक्तियों को परास्त कर वे 'रामषडक्षर-मन्त्र राज' का प्रचार करते हुए आसमुद्र श्री राम के प्रति जनसमाज में अनुराग को बढ़ाएँगे। उनके प्रताप से नास्तिक नष्ट होंगे और मनुष्यों का अज्ञान दूर हो जायगा।[१] इससे इतना तो स्पष्ट है ही कि रामानन्द स्वामी ने अपने मत का प्रचार करने के लिये भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों में स्थित तीर्थों की यात्रा की थी और प्रतिपक्षियों को परास्त कर विशिष्टाद्वैत मत की प्रतिष्ठा की। प्रियादास ने 'भक्तमाल' की टीका में पीपा के सम्बन्ध में लिखते समय बतलाया है कि पीपा के निमन्त्रण पर स्वामी जी कबीर, रैदास आदि शिष्यों के साथ गांगरौनगढ़ गए। वहाँ से सारी जमात द्वारका पहुँची। वहाँ कुछ दिन रह कर जमात काशी लौट आई, किन्तु पीपा वहीं रुक गए और उन्होंने श्री कृष्ण के दर्शन किए।[२] इन दोनों सूत्रों के अतिरिक्त 'भविष्य पुराण' में भी कुछ इस प्रकार के संकेत पाये जाते हैं, जिनसे यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है

१—अगस्त्यसंहिता, सं० पं० रामनारायणदास, पृ० ३५–३६।

शिष्यैर्द्वादशभिःश्रीमानथैतैरर्कसन्निभैः। [illegible] यथा विष्णु प्रतापवान्॥
विराजमानस्सततं पर्यटन्नवनीमिमाम्। द्वारकादिषु तीर्थेषु तत्र तत्र जगद्गुरुः॥
विद्विषां जित्वरोवादैः श्रुतिस्मृतिसमुत्थितैः। विपरीतान्वशीकुर्वन् शिष्यांश्चनतानथ॥
षडक्षरं मन्त्रराजन्तेभ्यश्चोपादिशन्मुनिः। मन्त्रार्थश्रावयन्नित्यं मंत्रज्ञैस्तैरुपासितः॥
आसमुद्रं चतुर्दिक्षु विचरन् धर्मतत्त्परः। कर्त्तावैवहुधा लोकं रामाभिरतमुत्तमम्॥

२—भक्तमाल, टीका प्रियादास सं० रूपकला जी।

कि रामानन्द जी ने अयोध्या में जाकर मुसलमान हो गये हिन्दुओं को फिर से वैष्णव बना दिया। ऐसे वैष्णव 'संयोगी' कहे गये।[१]

इन उपर्युक्त साक्ष्यों से इतना स्पष्ट है कि रामानन्द ने जहाँ एक ओर सद्धर्म के प्रचार का बीड़ा उठाया था, वहीं विधर्मियों का उत्तर उन्हीं की भाषा में दिया था। उन्होंने कम-से-कम उत्तर भारत के प्रमुख धर्म-केन्द्रों की यात्राएँ की थीं, विधर्मियों को पराजित किया था और एक अग्रचेता की भाँति धर्म भ्रष्ट हिन्दुओं को फिर से वैष्णव बना दिया था। रामनाम के सबसे बड़े प्रचारक रामानन्द स्वामी ही माने गये हैं। यह उनकी ही साधना का फल था कि भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक रामषडक्षर मन्त्र का इतनी दृढ़ता से प्रचार हो सका। कदाचित् इसी आधार पर आधुनिक काल के वैरागी विद्वान् रामानन्द-दिग्विजय का वर्णन करते हुए प्रायः सभी प्रमुख तीर्थों का नाम लेते हैं। 'अध्ययन की सामग्री और उसकी परीक्षा' नामक अध्याय में हम देख चुके हैं कि रामानन्द के जीवन-वृत्त से सम्बन्धित अधिकांश सामग्री प्रायः अप्रामाणिक है। किसी प्राचीन परम्परा के आधार पर भी यह लिखी गई नहीं प्रतीत होती।

अतः रामानन्द-दिग्विजय के सम्बन्ध में 'अगस्त्य संहिता', 'भविष्यपुराण' तथा 'भक्तमाल' की प्रियादास कृत टीका के अतिरिक्त अन्य वर्णनों को प्रमाण-कोटि में नहीं लिया जा सकता।

रामानन्द स्वामी और हिन्दी भाषा—हिन्दी साहित्य के प्रायः सभी इतिहासकारों ने हिन्दी भाषा के विकास का प्रमुख श्रेय रामानन्द स्वामी को दिया है।[२] स्वयं स्वामी जी ने कोई ग्रन्थ हिन्दी में लिखा हो, इसका प्रमाण नहीं

१—भविष्यपुराण—वें० प्रेस, १८६६ ई०, अध्याय २१, पृ० ३६२–३

ये म्लेच्छयन्त्रबलतोयवनाबभूवुर्हिन्दून् विधाय सकलानपितान्मुर्नाशः।
शुद्धां मतिं हरिपदे हृदि सन्दृढ़य्यकाशी स्वशिष्यसहितः पुनरागतोऽसौ॥
म्लेच्छास्ते वैष्णवाश्चासन् रामानन्दप्रभावतः।
संयोगिनश्च ते ज्ञेया अयोध्यायां बभूविरे॥
कण्ठे च तुलसी माला जिह्वा राममयीकृता।
भाले त्रिशूलचिह्नं च श्वेतरक्तंतदा भवत्॥

२—"रामानन्द ने संस्कृत के स्थान पर जनसमाज की बोली ही में वैष्णवधर्म का प्रचार किया।," हि० सा० आ० इ०, पृ० ४७८। हिन्दी साहित्य–पृ० ६३ 'अब तक धार्मिक आंदोलन केवल संस्कृत भाषा का ही आश्रय लेकर होता था। यहाँ तक कि वल्लभाचार्य और

मिलता। कुछ विद्वानों ने उनके द्वारा हिन्दी में लिखे गये गीतों का उल्लेख किया है। इन हिन्दी-गीतों की आलोचना हमने 'रामानन्द स्वामी के ग्रन्थ और उनकी प्रामाणिकता' नामक अध्याय में की है। उनमें दो-एक को छोड़ कर शेष रामानन्द कृत नहीं कहे जा सकते। फिर भी इसी के बल पर कहा जा सकता है कि रामानन्द ने अपने इन गीतों में वह ओज और शक्ति भर दी थी जो कबीर, रैदास, पीपा, धना, सेन जैसे हिन्दी भाषा के समर्थ उपासकों को जन्म दे सकी। रामानन्द के हिन्दी भाषा के प्रति इस उदार दृष्टिकोण ने हिन्दी का बहुत उपकार किया है, 'गाँवों की बोली' उनके शिष्यों के ओजस्वी कण्ठों का बल पाकर बलवती हो उठी। तुलसी जैसे समर्थ रामभक्त हिन्दी-भाषा-कवि को जन्म देने का श्रेय रामानन्द के पथ को ही है। रामानन्द द्वारा प्रचारित आन्दोलन का महत्व इस दृष्टि से बहुत अधिक है।[१]

रामानन्द स्वामी और समाज-सुधार—रामानन्द का दृष्टिकोण जाति-पाँति के सम्बन्ध में बहुत ही उदार था। मुसलमानों द्वारा भ्रष्ट किये गये हिन्दुओं को पुनः वैष्णव बना लेने में उन्हें आपत्ति नहीं थी। 'भविष्य पुराण' के अनुसार रामानन्द ने म्लेच्छ हो गये हिन्दुओं को फिर से वैष्णव बना दिया था। रामानन्द के प्रभाव से उनके शरीर पर वैष्णवों के चिन्ह अपने आप बन गये थे।[२] इसी संकेत के आधार पर मैकालिफ़,[३] ग्रियर्सन,[४] तथा हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने रामानन्द को बहुत बड़ा समाज-सुधारक मान लिया है। इसमें संदेह नहीं कि रामानन्द के शिष्यों में जुलाहे और चमार को भी स्थान मिल गया था और स्वयं उन्होंने अपने ग्रन्थों में भी यह मत प्रतिपादित किया है कि भक्ति के क्षेत्र में सब किसी को अधिकार है,[५] किन्तु स्वामी जी ने जाति-प्रथा के मिटाने के लिये कोई प्रयास किया हो, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता।

रामानन्द ने जो कुछ लिखा, संस्कृत में ही लिखा था, इसके अनन्तर प्रवृत्ति बदली और देश भाषाओं का अधिकाधिक प्रयोग होने लगा।" डा० श्यामसुन्दरदास।

१—ए हिस्ट्री अव् हिन्दी लिटरेचर, एफ० ई० के, पृ० २१।

२—भविष्य पुराण, ३. ४अ. श्लोक २१, ५३।

३—मैकालिफ़-दि सिख रिलीजन, वा० ६, पृ० १०३।

४—ग्रियर्सन-इन्साइक्लोपीडिया आव् रिलीजन ऐण्ड एथिक्स, पृ० ५६०।

५—श्रीवैष्णवमताब्जभास्करः—प्राप्तुं परां सिद्धिमकिंचनो जनो द्विजातिरिच्छञ्छरणम् हरिं व्रजेत्। परं दयालुं स्वगुणानपेक्षितक्रियाकलापादिकजातिबन्धनम्॥

रामानन्द-सम्प्रदाय के मान्य विद्वान् भगवदाचार्य जी का मत इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य है :—

'शास्त्रानुसार श्री स्वामी जी ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र तथा स्त्रियों को भी नाममात्र के परिवर्तन के साथ एक ही राममंत्र से दीक्षित किया। भगवच्छरणागति स्वीकार करने में किसी जाति या कुल का बन्धन नहीं है। वह वर्णाश्रम के ठीक-ठीक शास्त्रीय रीति से पालन करते हुए भी एक ऐसे तत्व का सम्मेलन जानते थे कि जिसमें इस जाति का नामावशेष मात्र न रह जावे। वे इस बात की आवश्यकता समझते थे कि जो हिन्दू बलात्कार से धर्मान्तर स्वीकार करते हों उनमें यदि पीछे ले आने की शक्ति हो तो ले आ सकते हैं। अतएव उन्होंने अयोध्या में विलोम-मंत्र-द्वारा मुसलमान बनाये गये हिन्दुओं को पुनः हिन्दू जाति में प्रविष्ट किया।'[1] आगे स्वामी भगवदाचार्य पुनः लिखते हैं[2] :— "कुछ लोगों के अनुसार स्वामी जी ने वर्ण-व्यवस्था में शिथिलता उत्पन्न की। पर बात असल में यह है कि स्वामी जी पूर्णरूप से वर्ण और आश्रम के आग्रही थे। हां भक्ति को वे किसी जाति विशेष की वस्तु नहीं मानते थे.........वे मानते थे कि विरक्त भगवद्भक्त प्रत्येक जाति के लोग हो सकते हैं। परन्तु मंत्र देने का अधिकार ब्राह्मण को ही है।" भगवदाचार्य के इस मत का आधार क्या है यह कहना सम्भव नहीं है। रामानन्द-सम्प्रदाय बहुत दिनों तक रामानुज-सम्प्रदाय में घुल-मिल सा गया था। अतः यदि उसकी रूढ़ियों का प्रभाव इस पर भी पड़ा हो तो असम्भव नहीं। रामानन्द के शिष्यों में अनेक ने अपने पन्थ चलाये, स्वयं रामानन्द-सम्प्रदाय में सभी मंत्रोपदेष्टाचार्य ब्राह्मण ही रहे हों, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। रूपकला जी कायस्थ थे, किन्तु अयोध्या में तथा उसके बाहर उनके शिष्यों की संख्या कम नहीं है। जो हो, इतना तो निर्विवाद है कि भक्ति के क्षेत्र में रामानन्द स्वामी किसी प्रकार का भेदभाव नहीं मानते थे। स्वयं राघवानन्द स्वामी जी ने भी तो—नाभादास के शब्दों में—'चारि वरन आश्रम सबही को भक्ति दृढ़ाई' थी, फिर उन्हीं के शिष्य रामानन्द के हाथों तो यह काम और भी दृढ़ता से होना चाहिये था।

वैरागी सम्प्रदाय की स्थापना—रामानुज सम्प्रदाय की छुआ-छूत सम्बन्धी कट्टरता से असहमत होने के कारण, कहा जाता है, रामानन्द ने अपने नवीन वैरागी सम्प्रदाय की स्थापना की थी। गत पृष्ठों में इस सम्बन्ध में प्रकाश डाला

१—रामानन्द-दिग्विजय, भूमिका, पृ० १४।

२—वही, भूमिका, पृष्ठ ५६।

जा चुका है। यहाँ इस सम्प्रदाय के सम्बन्ध में कुछ सामान्य बातें कह देनी हैं। रामानन्द सम्प्रदाय के साधु वैरागी कहे जाते हैं। कुछ लोगों ने उन्हें अवधूत भी कहा है, पर स्वयं रामानन्दी साधु अपने को सामान्यतः ऐसा नहीं कहते।[१] अवधूत-मार्ग एक अलग मार्ग ही है। विल्सन[२] के अनुसार इन साधुओं का नाम अवधूत इसलिये पड़ा था, क्योंकि ये मुक्त एवं स्वतन्त्र थे। इन वैरागी साधुओं का संगठन बहुत ही सुदृढ़ एवं पक्का है। अयोध्या, चित्रकूट एवं मिथिला इनके प्रमुख केन्द्र हैं। इनके अपने मठ हैं, अपने अखाड़े हैं और अपनी संस्थाएँ हैं। यह सम्प्रदाय समय के अनुकूल सदैव बदलता रहा, और अनेक बार आपत्तिकाल में इसने देश की रक्षा एवं सेवाएँ की हैं। आज उत्तर भारत में इतना दृढ़ एवं सुसंगठित सम्प्रदाय कोई दूसरा नहीं है।

रामानन्द स्वामी का साकेत-गमन—रामानन्द स्वामी की मृत्यु-तिथि भी उतनी ही अनिश्चित् है जितनी उनकी जन्म-तिथि। गत पृष्ठों में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि रामानन्द के जन्म-काल को विक्रम की चौदहवीं शताब्दी के पश्चात् नहीं ले जाया जा सकता। इस सम्बन्ध में हमने अपने तर्क भी दे दिये हैं। यहाँ रामानन्द स्वामी की मृत्यु सम्बन्धी तिथियों पर ही विचार कर लेना आवश्यक है। रामानन्द स्वामी की मृत्यु के सम्बन्ध में पं० रामनारायण दास द्वारा सम्पादित 'अगस्त्यसंहिता' में एक तिथि इस प्रकार दी गई है :—

श्रीमद्विक्रमवत्सरेऽश्वरसवारीशेन्दुसंख्येधराम्–(१४६७ वि०)–
त्यक्त्वामाधवमासके सुदि तृतीयायांतिथावुज्ज्वलम् ॥
धर्मंभागवतंविमुक्तिफलकं विन्यस्यजीवेपुवै ।
रामानन्दसुदेशिकस्समगमत्साकेतलोकं परम् ॥

किन्तु यहाँ यह स्पष्ट नहीं है कि यह मत किसका है ? 'अगस्त्यसंहिता' का यह कोई अंश नहीं ही है। प्रायः अधिकांश रामानन्दी विद्वान् इस मत से सहमत हैं। रूपकला जी ने भी इसे स्वीकार कर लिया है।[३] हिन्दी साहित्य के प्रमुख विद्वान् तथा भाषा-शास्त्रविद् डा० ग्रियर्सन[४] तथा डा० बर्थ्वाल[५] ने भी इस तिथि को रामानन्द की मृत्यु-तिथि के रूप में स्वीकार कर लिया है।

१—वैष्णव धर्मरत्नाकर-जे० गोपालदास।

२—एच० एच० विल्सन-एसेज़ आन् दि रिलीजन अव् हिन्दूज़, पृ० ५५।

३—भक्तमाल, रूपकला, पृ० २६३।

४—जी० ए० नटेसन-फ्राम रामानन्द टू रामतीर्थ, पृष्ठ १३।

५—डा० बर्थ्वाल-हिंदी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ० ४२।

रामानन्द की आयु इस तिथि से १११ वर्ष की ठहरती है। किन्तु 'नाभादास' के साक्ष्य पर इसे स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। 'भक्तमाल' में स्पष्ट ही उल्लेख है कि रामानन्द ने बहुत काल तक शरीर धारण कर प्रणतजनों को पार किया था। रीवांनरेश रघुराज सिंह ने भी रामानन्द के शतायु होने का उल्लेख किया है।[१] उनके अनुसार रामानन्द १०७ वर्ष तक जीवित थे। गुरु राघवानन्द ने अपनी अपार कृपा से रामानन्द को दीर्घायु कर दिया था। अतः यह सहज ही अनुमान कर लिया जा सकता है कि रामानन्द की आयु असाधारण रूप से लम्बी थी। सं० १४६७ वि० में रामानन्द स्वामी की मृत्यु मान लेने से अनेक समस्याओं का समाधान भी हो जाता है।

ओड़छे के हरिराम व्यास के एक पद से विदित है कि नामदेव और त्रिलोचन रामानन्द जी से पूर्व ही दिवंगत हो चुके थे। त्रिलोचन का जन्म सं० १३२४ वि० में माना जाता है। नामदेव उनके समकालीन ही थे। वे कितने ही दिन जीवित क्यों न रहे हों १४६७ वि० तक उनका स्वर्गवासी हो जाना असम्भव नहीं जान पड़ता। कबीर, पीपा आदि का जो समय डा० बथ्र्वाल आदि विद्वानों ने स्थिर किया है वह भी इसके विपरीत नहीं पड़ता। अतः सं० १४६७ वि० वैशाख सुदी, तृतीया को रामानन्द जी की मृत्यु-तिथि मान लेना अनुचित नहीं प्रतीत होता।

रामानन्द की मृत्यु-तिथि के सम्बन्ध में दूसरों का मत उद्धृत करते हुए 'भक्तमाल' के प्रसिद्ध टीकाकार श्री रूपकला जी[२] ने लिखा है कि 'कोई-कोई लिखते हैं कि स्वामी श्री रामानन्द जी महाराज इस संसार को त्याग सं० १५०५ में श्री साकेत परमधाम को गए। १४८ वर्ष यहाँ विराजे थे।' किन्तु रामानन्द स्वामी को १४८ वर्ष का जीवनकाल मिला होगा, इसमें सन्देह के लिये पूरा स्थान है। कम-से-कम इस मत के पक्ष में बड़े सबल प्रमाणों का होना आवश्यक है। इसीलिये रूपकला जी की इनमें कोई आस्था नहीं प्रतीत होती।

फिर भी रामानन्द के जीवन एवं मृत्यु की तिथियों के सम्बन्ध में सभी विद्वान् एकमत नहीं हैं। लोगों ने इस सम्बन्ध में तर्क एवं अनुमान का सहारा

१—वर्ष सप्तशत लौं तनुराख्यो। परमारथ तजि और न भाख्यो॥
तासु प्रभाव विदित चहुँ पाहीं। भरतखंड जानत को नाहीं॥
—भक्तमाल रामरसिकावली।

२—भक्तमाल, रूपकला, पृ० २८२।

अधिक लिया है। केवल जन्मतिथि के सम्बन्ध में 'अगस्त्यसंहिता' में निश्चित् उल्लेख है। विद्वानों ने इस ग्रन्थ को प्रामाणिक ही माना है, अप्रामाणिक मान लेने का कोई प्रबल कारण नहीं दिखलाई पड़ता। रामानन्द-सम्प्रदाय के विद्वान् इसे अपना मान्य ग्रन्थ समझते हैं और इस ग्रन्थ की तिथि को स्वीकार कर लेने पर रामानन्द की मृत्यु-तिथि को १४६७ वि० से आगे ले जाने में असंगति दोष ही आयेगा। हिन्दी के कुछ इतिहासकारों ने भी इस तिथि को रामानन्द की मृत्युतिथि के रूप में स्वीकार किया है। अतः कुछ दृढ़ता के साथ ही रामानन्द स्वामी की मृत्यु-तिथि सं० १४६७ वि० वैशाख शुक्ल तृतीया को मानी जा सकती है।

रामानन्द का व्यक्तित्व—'अगस्त्य संहिता' के अनुसार रामानन्द प्रकृति से शीलवान्, दयासागर, महान्, धर्मरक्षणार्थ अवतीर्ण साक्षात् विष्णु के ही समान थे। वे भगवद्भक्त, विद्यावान्, निस्पृही, एवं आत्माराम थे। वे उदार-कीर्ति थे, योगियों में अग्रगण्य थे। पाखण्ड-नाशक थे तथा सौशील्यादि गुणों के वर्द्धक थे। उनके दर्शन मात्र से तापत्रय मिट जाते थे। वे वेदों के गुह्यार्थ का भी प्रकाश करते थे और गुण, शील, शास्त्र, और अपने कर्मों से समस्त शत्रुओं को पराजित करते थे। रामानन्द कल्याण मार्ग के कारण, शुभज्ञानप्रद, प्राणियों के ध्येय एवं पूज्य थे। 'अगस्त्य संहिता' का निश्चित् मत है कि उनके दर्शन, स्मरण, अथवा नाम लेने मात्र से पृथ्वी के लोग निस्संशय मुक्त हो जायँगे। उनके मंत्र-मंत्रार्थ भूषित मत का अवलम्बन कर पृथ्वी मुनि-वृत्तिवाले पुरुषों से सुशोभित हो जायगी। शरच्चन्द्र की भाँति उनकी उज्ज्वल पावनकीर्ति का स्मरण कर लोग पाप मुक्त हो जायँगे। उनकी कीर्ति भक्ति, ज्ञान एवं कल्याण-दायिनी होगी। उससे लोगों का मोह दूर हो जायगा। रामानन्द मूर्तिमान् धर्म की भाँति होंगे, उनसे शत्रु परास्त होंगे। अपने द्वादश शिष्यों से घिर कर विष्णु की ही भाँति रामानन्द श्रुति-स्मृति आदि से उत्पन्न वादों से शत्रुओं को पराजित करते हुए उन्हें राममंत्र का उपदेश देकर आसमुद्र चारों दिशाओं में विचरण कर नास्तिकों को पराजित कर लोकाज्ञान को दूर कर अज्ञान का विनाश करेंगे। 'अगस्त्य संहिता' में उन्हें रामरूप, राममन्त्रार्थवित्, कवि, राममन्त्रप्रद, रम्य, राम मन्त्ररत, प्रभु, योगिवर्य, योगगम्य, योगज्ञ, योगसाधन, योगिसेव्य, योगनिष्ठ, योगात्मा, योगरूपधृक्, सुशान्त, शास्त्रकृत्, शास्ता, शत्रुजित्, शांतिरूपधृक्, समयज्ञ, शमी, शुद्ध, शुद्धधी, शुद्धवेषधृक्, महान्, महामति, महामान्य, वदान्य, भीमदर्शन, भयहृत्, भयकृत्, भर्ता, भव्य, भवभयापहः, भगवान्, भूतिद, भोक्ता,

भूतेज्य, भूत-भृत्, विभु, ज्ञातज्ञेय, अतिगम्भीर, गुरु, ज्ञानप्रद, वशी, अमोघ, अमोघदृक्, दान्त, अमोघभक्ति, अमोघवाक्, सत्य, सत्यव्रत, सभ्य, सत्प्रिय, सत्परायण, सिद्धि, सिद्धिद, साधु, सिद्धिभृत्, सिद्धिसाधन, सिद्धिसेव्य, शुभकर, सामवित्, सामग, मुनि, पूतात्मा, पुण्यकृत, पुण्य, पूर्ण, पूर्तिकर, अघहा, अर्च्य, अर्चक, कृती, सौम्य, कृतज्ञ, क्रतुकृत्, क्रतु, अजेय, शीलवान्, जेता, विनीत, नीतिमान्, स्वभू, वाग्मी, श्रुतिधर, श्रीमान्, श्रीदः, श्रीनिधि, आत्मद, सर्वज्ञ, सर्वग, साक्षी, सम, समदृशि, सदृक्, शुभज्ञ, शुभद, शोभी, शुभाचार, सुदर्शन, जगदीश, जगत्पूज्य, यशस्वी, द्युतिमान् और ध्रुव आदि कहा गया है।

'भक्तमाल' के अनुसार रामानन्द ने रामचन्द्र की ही भाँति संसार के प्राणियों को तारने के लिये दूसरा सेतु तैयार कर दिया था। अनन्तानन्दादि शिष्यों में उन्होंने दस प्रकार की (दशधा) भक्ति कूट-कूट कर भर दी थी। वे दीर्घजीवी थे, अतः अपनी उदारता से उन्होंने अनेक प्रणतजनों को पार कर दिया था इस संसार सागर से। 'भक्तमाल' में उनके शिष्यों की जो सूची दी गई है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि रामानन्द का दृष्टिकोण बहुत ही उदार था। उनके विचार से चाहे कोई ब्राह्मण हो, चाहे शूद्र, चाहे जुलाहा, जाट, नाई, क्षत्रिय अथवा रैदास हो, रामभक्ति का अधिकारी हो सकता है। 'श्री वैष्णव-मताब्ज-भास्कर' में उन्होंने स्पष्ट ही कहा है कि सभी प्रपत्ति के अधिकारी हैं। कुल-बल-शक्ति-धन आदि का यहाँ कोई अपेक्षा नहीं है। केवल चाहिए भगवान् के चरणों में विशुद्ध आत्म-समर्पण। यही कारण था कि रामानन्द से प्रेरणा पाकर मध्ययुग में भक्तों का एक ऐसा वर्ग तैयार हो गया, जो पददलित जातियों को समान रूप से भक्ति का अधिकारी मानता था। ऐसे भक्तों में कबीर, रैदास, सेन, धन्ना और पीपा आदि प्रमुख हैं। रामानन्द ने स्त्रियों के लिये भी भक्ति का द्वार खोल दिया था। पद्मावती और सुरसुरी उनकी दो प्रसिद्ध शिष्याएँ थीं। कहा जाता है कि खानपान के सम्बन्ध में भी रामानन्द का दृष्टिकोण बहुत ही उदार था। वे छुआ-छूत को नहीं मानते थे। लगता है कि रामानन्द हृदय की विशुद्धता पर अधिक बल देते थे, वाह्याचार पर कम। '[illegible]' के अनुसार अयोध्या में उन्होंने म्लेच्छ हो गये हिन्दुओं को पुनः कण्ठी-माला देकर वैष्णव बना दिया था।

अतः यह स्पष्ट है कि रामानन्द का व्यक्तित्व बहुत ही महान् था। उन्होंने युग की परिस्थितियों का भारतवर्ष भर में भ्रमण कर विस्तृत अध्ययन किया था और अपने विचारों को परिस्थितियों के अनुरूप ही बनाया था। मुसलमानों की

नीति से हिन्दुओं का और भी अधिक अहित हुआ होता, यदि उस समय रामानन्द जैसे उदार वैष्णवाचार्य न हुए होते।

रामानन्द ने भाषा के क्षेत्र में भी नवीनता उत्पन्न की। कहा जाता है, उन्होंने स्वयं कुछ पद हिन्दी में लिखे और अपने शिष्यों को हिन्दी ही में लिखने के लिये प्रेरणा भी दी थी। कबीर ने कदाचित् उन्हीं से प्रेरणा पाकर कहा था,

'संस्कीरत है कूप जल, भाषा बहता नीर'

तुलसीदास ने भी कदाचित् उन्हीं से प्रेरणा पाकर "नाना पुराण निगमागम सम्मत" मत को भाषाबद्ध किया था 'भाषा बद्ध करब मैं सोई'।

रामानन्द ने तत्ववाद पर अधिक बल नहीं दिया है। भक्ति ही उनके लिये सब कुछ थी। उनके उपास्य हैं 'राम' और उनकी साधना है 'राम के प्रति अनन्य शरणागति'। रामानन्द को पाकर रामभक्ति-लता समूचे भारतवर्ष की ऊर्वर भूमि में बहुत ही पल्लवित हुई।

तृतीय अध्याय

रामानन्द स्वामी के ग्रन्थ तथा उनकी प्रामाणिकता

रामानन्द स्वामी के ग्रन्थों के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों को कोई भी निश्चित् सूचना नहीं मिल सकी थी। विल्सन को रामानन्द स्वामी के किसी भी ग्रन्थ का पता नहीं था, मैकालिफ़ का अनुभव था कि रामानन्दीय साधु अपने सम्प्रदाय तथा उसके संस्थापक के सम्बन्ध में कोई भी सूचना नहीं देते।[1] उन्हें केवल गुरु ग्रन्थ साहब में संकलित रामानन्द का एक ही पद प्राप्त हो सका, ग्रियर्सन महोदय को रामानन्द के कुछ हिन्दी पद प्राप्त हो गये थे,[2] पर उनमें से दो-एक को ही प्रकाश मिल सका, फर्क़ुहर को रामानन्द जी के ग्रन्थ न मिल सके, अतः उन्हें यह अनुमान लगाना पड़ा कि रामानन्द 'अगस्त्यसंहिता' 'वाल्मीकि रामायण', 'रामतापिन्युपनिषद्', 'अध्यात्म रामायण' आदि से अधिक प्रभावित थे, उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि कभी-कभी 'श्री भाष्य' का अध्ययन रामानन्दी विद्वान् करते थे, क्योंकि रामानन्दी-भाष्य तो लिखा ही नहीं गया था।[3] किन्तु इस विचार-परम्परा से प्रभावित कुछ विद्वानों को छोड़ कर प्रायः सभी भारतीय विद्वानों ने रामानन्द जी के नाम पर प्रचलित ग्रन्थों का उल्लेख किया है। साम्प्रदायिक विद्वान् तो एकाधिक ग्रन्थों के नाम इस सम्बन्ध में देते हैं। इधर जब से रामानन्द-सम्प्रदाय में रामानुज-सम्प्रदाय से स्वतंत्र होने की भावना प्रबल हुई है, तब से रामानन्द जी द्वारा लिखित कहे जाने वाले अनेक ग्रन्थ प्रकाश में आये हैं। अतः जहाँ अँग्रेज विद्वानों का अनुसरण कर

१—'दि रामानन्दीज़ मेक इट ए स्पेशल प्वाइंट टु कीप आल डिटेल्स अव् देयर सेक्ट ऐण्ड इट्स फ़ाउण्डर ए प्रोफ़ाउण्ड सीक्रेट'—दि सिख रिलीजन, वा० ६, पृ० १००।

२—दि माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर अव् हिन्दुस्तान, पृ० ७।

३—जे० आर० ए० एस०—दि हिस्टारिकल पोजीशन अव् रामानन्द—जे० एन० फ़र्क़ुहर, पृष्ठ १८५-९२।

हम यह नहीं कह सकते कि रामानन्द जी ने कोई ग्रन्थ नहीं लिखा, वहीं यह भी मानने को हम प्रस्तुत नहीं कि रामानन्द जी के नाम से सम्प्रदाय में प्रचलित सभी ग्रन्थ स्वामी जी ही कृत हैं। रामानन्द स्वामी जी द्वारा लिखित कहे जाने वाले निम्नलिखित ग्रन्थों का मुझे अब तक पता चला है :—

१—श्री वैष्णवमताब्जभास्कर
२—श्री रामार्चन पद्धति
३—गीता भाष्य
४—उपनिषद् भाष्य
५—आनन्द भाष्य
६—सिद्धान्त पटल
७—रामरक्षा स्तोत्र
८—योगचिन्तामणि
९—श्री गुरु रामानन्द-कबीर जी का ज्ञान तिलक
१०—श्री रामाराधनम् (संस्कृत)
११—वेदान्त विचार (भाषा)
१२—रामानन्दादेश
१३—राममंत्र जोग ग्रन्थ
१४—राम अष्टक
१५—ग्यान लीला
१६—कुछ फुटकलपद
१७—अध्यात्म रामायण

उपर्युक्त ग्रन्थों में कुछ ग्रन्थ ऐसे हैं जिनको प्रत्येक रामानन्दी विद्वान् सम्प्रदाय के प्रामाणिक ग्रन्थ मानता है, कुछ ग्रन्थ ऐसे हैं जो रामानन्द-सम्प्रदाय के अन्तर्गत किसी शाखा विशेष में ही प्रचलित हैं; कुछ ग्रन्थ ऐसे हैं जो स्वामी जी कृत कहे जाते हैं, किन्तु वास्तव में वे स्वामी जी कृत नहीं हैं; और कुछ ग्रन्थ ऐसे हैं जिन्हें तर्क द्वारा स्वामी जी कृत कहा गया है। नीचे इन ग्रन्थों की प्रामाणिकता पर विचार किया जायगा।

ग्रन्थों की प्रामाणिकता—(१) श्री वैष्णवमताब्जभास्कर—रामानन्द-सम्प्रदाय के प्रायः सभी विद्वान् एवं सामान्य भक्त तथा हिन्दी साहित्य के प्रमुख भारतीय इतिहासकारों ने इस ग्रन्थ को स्वामी रामानन्द कृत ही माना है। यह ग्रन्थ संस्कृत भाषा में लिखा गया है। इसका प्रकाशन सर्वप्रथम काशी के लीथो

प्रेस से हुआ था। यह प्रति अब अप्राप्य है। इस समय इस ग्रन्थ की दो प्रमुख प्रतियाँ प्राप्त हैं, एक के सम्पादक हैं पंडित रामटहलदास और दूसरी के श्री भगवदाचार्य।

इस ग्रन्थ का परिचय देते हुए पंडित रामटहल दास स्वसंपादित ग्रन्थ की भूमिका में कहते हैं:—'आज हम जिस ग्रन्थ रत्न को उद्धृत करने के लिये उत्सुक हैं वह इन्हीं श्री परमाचार्य स्वामी जी का श्रीमुख-वचनामृत है कि जिनके संतान भारतवर्ष के कोने-कोने में श्री रामानन्दीय रूप से प्रख्यात हो रहे हैं। यदि कोई श्री रामानन्दीय होने का दावेदार हो सकता है तो इसी ग्रन्थ के प्रमाण से ही होगा।'[1] आगे सम्प्रदाय के प्रमुख मठों में परम्परा द्वारा इस ग्रन्थ के उपदिष्ट होने का उल्लेख करता हुआ लेखक कहता है:—'हमारे परमाचार्य स्वामी जी ने बड़ी विद्वत्ता के संयुक्त वैदिक वर्णाश्रम सहित परम वैदिक श्री वैष्णव धर्मानुकूल अपने श्री भाष्यकारादि पूर्वाचार्यों की प्राचीन पद्धति के अनुगुण इस 'श्री वैष्णव-मताब्ज-भास्कर' ग्रन्थ रत्न को बना कर अपने शिष्य वर्गों को प्रथम उपदेश दिया। गलता, रैवासा, श्री बालानन्द जी का स्थान इन तीन स्थानों में यह ग्रन्थ शिष्य-परम्परानुगत उपदिष्ट होता आया है।'[2] लेखक ने इसकी प्राचीनता और प्रामाणिकता का भी उल्लेख किया है, "गत ७० वर्षों के प्रथम जयपुर नरेश श्रीराम सिंह महाराज ने वाममार्गी गुसाइयों के द्वारा ६४ प्रश्न करवाए थे। इन प्रश्नों ने कुछ स्थानों को छोड़ बाकी सबके महत्त्व पर कठोर बज्रघात किया...उस वक्त एक आंतरिक प्रश्न और भी हुआ कि श्रीरामानन्दीय समाज की जड़बुनियाद कहाँ से है! इस पर गलता गादी के महन्थ श्री सीतारामाचार्य जी तथा श्री बालानन्द जी के स्थान के महन्थ श्री ज्ञानानन्द जी एवं रेवासा के महन्थ श्री रामानुजदास जी ये सब मिल कर एक मत हो सभा के मध्यगत सप्रमाण प्रमाणित हुए थे कि हमारी मूल बुनियाद गादी श्री तोताद्रि ही है। एवं हमारा मूल अनुष्ठेय ग्रन्थ-रत्न यह 'श्री वैष्णवमताब्ज-भास्कर' ही है।"[3] लेखक का मत है कि आज से ३०० वर्ष पूर्व ही इसी प्रकार के प्रश्न पर इस ग्रन्थ का प्रामाण्य दिया गया था। वह कहता है:—"तीन सौ वर्षों के प्रथम भी ऐसी घटना गिरिनार में हो चुकी थी। एवं एक समय खास मयसूर राज्य में भी यही छिड़ गया था कि 'श्री रामानन्दीय सम्प्रदाय'

१—'श्री वैष्णव-मताब्ज-भास्कर'—पंडित रामटहल दास, भूमिका, पृष्ठ ३।

२—वही, पृष्ठ १५।

३—वही, पृष्ठ १५-१६।

'श्री सम्प्रदाय' के पूर्ण प्रचारक हैं, उस वक्त भी इस ग्रन्थ-रत्न ने श्री सम्प्रदाय के पूर्ण तत्वों को बता कर हमारी विजय में श्री प्राप्त कराई थी।'[1] इस ग्रन्थ का प्रचार किस प्रकार हुआ, इस पर प्रकाश डालते हुए लेखक लिखता है :—
"यह ग्रन्थ सबसे प्रथम श्री सुरसुरानन्द जी ने अपने शिष्यों को काशी जी में पंचगंगा घाट पर उपदेश दिया। एवं श्री अनन्तानन्द जी ने श्री कृष्णदास जी को दिया। उन्होंने श्री अग्रदास को दिया। यह अग्रस्वामी जी की हस्तलिखित पुस्तक पूर्वोक्त जयपुर के विवाद में प्रमाण देने के लिये रेवासा से मँगाई गई थी, किन्तु तब से यह पुस्तक जयपुर राजकीय 'सरस्वती-भवन' में अद्यावधि जब्त है। इस ग्रन्थ की एक प्रति काश्मीर नरेश के पुस्तकालय में भी अति प्राचीन धरी है।...बड़ी जगह के प्रथमाचार्य श्री रामप्रसाद जी से चार पुश्त प्रथम श्री मस्तराम जी के शिष्य श्री लक्ष्मीरामदास जी बड़े भारी विद्वान् हुए थे। उन्होंने रेवासा से इस ग्रन्थ को श्री अवध में लाकर समस्त श्री वैष्णवों के मध्यगत कालक्षेप की कथा सुनाई थी। इसी मिति से इस ग्रन्थ का पूर्ण प्रचार आरम्भ हुआ। तत्पश्चात् पं० सूर्यबली जी एवं पंडित श्री रघुवरशरण जी उन्होंने इस ग्रन्थ की संस्कृत टीका बड़ी विलक्षण तथा विद्वत्तापूर्ण मय विस्तार के बना कर उसे सं० १६३६ में छपवाया था। मूल-मात्र एक वक्त कलकत्ता में भी छपा था।"[2]

इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रतियों के सम्बन्ध में दूसरी प्रति के सम्पादक श्री भगवदाचार्य का कहना है कि 'इस ग्रन्थ की मुझे भिन्न-भिन्न समय की लिखी हुई ५ प्रतियाँ और दो मुद्रित प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं। एक काश्मीर से, दूसरी प्रयाग से, तीसरी और चौथी श्री अवध से, पाँचवीं सिन्ध हैदराबाद से, छठवीं बगसरा (काठियावाड़) से और सातवीं पूना से। इन सातों प्रतियों के अतिरिक्त एक प्रति मेरे पुस्तकालय में है जो कि मेरे पूज्य श्री गुरुदेव महाराज जी से प्राप्त हुई है। इस प्रकार इस गुरुदत्त प्रति के सहित इस ग्रन्थ की आठ प्रतियों के आधार पर इस ग्रन्थ का संशोधन मैंने किया है। इन प्रतियों का क्रम से क, ख, ग, घ, च, छ, ज, यह सांकेतिक नाम मैंने यत्र-तत्र टिप्पणियों में व्यवहृत किया है......न्यूनाधिक का ग्रहण और परित्याग मैंने अपने श्री गुरुदत्त पुस्तक के आधार पर किया है।'[3] जिस आधार पर इस प्रति में पाठ संशोधन किया गया

१—वही, पृष्ठ १६।
२—वही, पृष्ठ १७।
३—'श्री वैष्णवमताब्जभास्कर'-सं० भगवदाचार्य, भूमिका, पृ० ६।

है उसके सम्बन्ध में भगवदाचार्य का कहना है:—"हमारे संप्रदाय का मूल मंत्र है श्री राम मंत्र। अत: श्री राम जी ही हमारे यहाँ परमोपास्य देव हैं। श्रीराममंत्र के साथ जो श्लोक प्रतिस्पर्धा करते हुए प्रतीत होते हैं उन्हें अधिक और प्रक्षिप्त समझ कर मैंने छोड़ दिया है और नीचे टिप्पणी में रख दिया है। पाठ-भेद तो बहुत ही स्थलों में है। उन्हें भी मैंने श्री गुरुदत्त पुस्तक के अनुसार ही रक्खा है।"[१] ग्रन्थ में श्लोकों की संख्या के सम्बन्ध में अपने विचार उपस्थित करते हुए भगवदाचार्य जी कहते हैं:—ख, ज, और गुरुदत्त के अतिरिक्त अन्य सब प्रतियों में श्लोक संख्या १६१ है। ख पुस्तक में १६२ श्लोक हैं, जिनमें २ श्लोक तो अत्यन्त नवीन हैं, अन्य किसी भी प्रति में नहीं मिलते हैं। तथा उनकी आवश्यकता भी नहीं थी। वे नवीन श्लोक ये हैं :—

प्रशान्तचित्तायजितेन्द्रियाय प्रहीणदोषाययथोक्तकारिणे।
गुणान्वितायानुगतायसर्वदा प्रदेयमेतत् सततं मुमुक्षवे ॥ १८६ ॥
यः पठेच्छृणुयाद्भक्त्या सन्दर्भमिदमुत्तमम्।
सर्वार्थसिद्धिंसम्प्राप्य लभेदन्ते परंपदम् ॥ १६१ ॥

...........यद्यपि ख, ज, पुस्तक के अतिरिक्त अन्य पुस्तकों में श्लोक संख्या १६१ लिखी है परन्तु वहाँ गणना करने पर १६२ श्लोक होते हैं। उनमें श्लोक-संख्या ११ दो बार भूल से लिखी है। यही भूल सब पुस्तकों में चली आई है। ख पुस्तक अभी ही मुद्रित हुआ है परन्तु उसमें भी आँख मूँद कर मक्षिकास्थाने मक्षिकापात् किया गया है.........मैंने गुरुदत्त पुस्तक की ही सहायता ली है अत: इस पुस्तक में भी १८६ श्लोक रक्खे गये हैं। प्रकरण के अनुसार श्लोकों की संख्या इस प्रकार है:-प्रश्न १ श्लोक ४, प्रश्न २-४५; ३-६, ४-५२, ५-१३, ६-२१, ७-८, ८-१४, ९-६, १०-१३, कुल जोड़ १८६।"[२]

'श्री सम्प्रदाय-दिग्दर्शन'[3] ग्रन्थ में भगवदाचार्य के गुरु श्री रामैमनोहर-प्रसाद जी ने इस ग्रन्थ के प्रचार का उल्लेख करते हुए लिखा है: 'हमारे रामानन्द जी स्वामी कृत 'श्री वैष्णव-मताब्जभास्कर:' और 'श्री रामार्चनपद्धति:' ये दोनों ग्रन्थ अन्दाज से ६०० वर्ष पहले के आज तक उपलब्ध होते हैं......ये दोनों ग्रन्थ चालीस वर्ष पहले के हमारे श्री रामानन्दी वैष्णवों के छपाये हुए भी

१—वही, पृष्ठ ५-६।

२—वही, पृष्ठ ६-७।

३—'श्री वैष्णवमताब्जभाष्कर', पृष्ठ ५८ में पं० रामटहलदास द्वारा उद्धृत।

हैं।" वैष्णवभक्त श्री गोपालदास ने अपने ग्रन्थ 'वैष्णवधर्मरत्नाकर'[१] में इस ग्रन्थ की रचना का उद्देश्य बतलाते हुए लिखा है—'हे शिष्य, तहाँ काशी में सर्व जीवों के कल्याण के अर्थ, रामानन्दीय वैष्णव-मताब्ज-भास्कर इस नाम के ग्रन्थ को रचे उस ग्रन्थ में मुमुक्षु वैष्णवों को करने योग्य मोक्ष के सकल अर्थों का निरूपण हुआ है।'

इस प्रकार इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता निर्विवाद है। यह अवश्य है कि इसकी कोई भी हस्तलिखित प्रति लेखक को प्राप्त न हो सकी। रामानन्द-सम्प्रदाय में इस ग्रन्थ का अत्यन्त महत्त्व है।

जहाँ तक प्रतियों के पाठ का सम्बन्ध है, लेखक ने पं० रामटहल दास के ही पाठ को प्रामाणिक माना है। भगवदाचार्य ने विभिन्न प्रतियों से जो पाठान्तर उद्धृत किया है, उनसे पं० रामटहलदास का पाठ मिलता है और दूसरी बात यह है कि भगवदाचार्य जी ने रामानन्द-सम्प्रदाय को रामानुज-सम्प्रदाय से भिन्न सिद्ध करने के लिये स्वतन्त्र पाठ रखा है, जो अन्य प्रतियों के पाठ को देखते हुए मान्य नहीं हो सकता।

'हिन्दी-विश्व-कोष'[२] में रामानन्द नाम के कई प्रसिद्ध पण्डितों का उल्लेख किया गया है: "रामानन्द-कई एक प्रसिद्ध पण्डित-१—वाक्यसुधा की टीका के प्रणेता ब्रह्मानन्द भारती के गुरु। २—व्रतदर्पण के प्रणेता, जानकी मण्डल के पिता और गोपाल के पुत्र। ३—न्यायामृत व्याख्या व न्यायामृत तरंगिणी के रचयिता। ये रामाचार्य नाम से भी परिचित थे। ४—बृहत् रुद्रोपपुराण की टीका और बृहत् रुद्रयामल की टीका के प्रणेता। ५—रामार्चन पद्धति के प्रणेता ६—वैष्णवमताब्जभास्कर के रचयिता। ७—शिवरामस्तोत्र के प्रणेता। ८—शूद्रकुलदीपिका के प्रणेता। ९—हरिवंश टीकाकार। १०—काशीखण्ड टीका के प्रणेता। इन्होंने वासुदेव के अनुरोध से यह ग्रन्थ संकलन किया।... ये मुकुन्द-प्रिय के पुत्र और रामेन्द्रचन्द्र के पौत्र थे। पहले अपने पितामह फिर चतुर्भुज से शिक्षा पाई।" कोषकार ने इस उद्धरण में कुछ रामानन्द पण्डितों का परिचय तो दे दिया है और वे सभी स्वामी रामानन्द से भिन्न हैं भी, किन्तु उन्होंने बृहत् रुद्रोपपुराण की टीका, बृहत् रुद्रयामल की टीका, रामार्चन-पद्धति, वैष्णवमताब्जभास्कर, शिवरामस्तोत्र, शूद्रकुलदीपिका, हरिवंश-टीका आदि के लेखकों का कोई भी परिचय नहीं दिया। रुद्रोपपुराण और रुद्रयामल की टीकाएँ स्वामी

१—वैष्णवधर्मरत्नाकर-गोपालदास, पृ० १००।

२—हिन्दी विश्वकोर, पृ० ४९०।

रामानन्द कृत नहीं हो सकतीं, उनका प्रणेता कोई शिवोपासक पण्डित ही हो सकता है। रामानन्द-सम्प्रदाय के कुछ विद्वान् (भगवदाचार्य) राम-भक्ति में शिव का कोई स्थान ही नहीं मानते, किन्तु, दूसरे राम-भक्ति के साथ-ही-साथ शिव-भक्ति (पूजा) को स्वीकार करते हैं, स्वतन्त्र रूप से नहीं। विन्दु ब्रह्मचारी ने 'शिवरामाष्टक' को स्वामी रामानन्द कृत कहा भी है। इसी प्रकार शूद्रकुलदीपिका, हरिवंश-टीका, काशी-खण्ड टीका आदि भी स्वामी रामानन्द कृत नहीं कहे जा सकते। रामानन्द-सम्प्रदाय में न तो उनको कोई मान्यता ही मिली है और न उनका प्रचार ही है। इस प्रकार रामार्चनपद्धति, वैष्णवमताब्जभास्कर तो रामानन्द स्वामी कृत ही कहे जा सकते हैं। शिवरामस्तोत्र की रचना किस रामानन्द ने की, यह अज्ञात ही है। विन्दु ब्रह्मचारी ने जिस शिवरामाष्टक को स्वामी जी कृत माना है, रामानन्द-सम्प्रदाय के ग्रन्थों में उसे कोई स्थान नहीं प्राप्त है। विश्व-कोषकार ने एक और समस्या उपस्थित कर हमें उलझन में डाल दिया है। एक ओर 'रामानन्दीय'[१] का परिचय देते हुए जहाँ लेखक लिखता है :—'रामानन्द प्रणीत वेदान्त विषयक एक प्रसिद्ध ग्रन्थ', वहीं वह किन्हीं रामानन्द स्वामी (विश्वकोषकार के अनुसार तत्वसंग्रह, रामायण मुक्तितत्व तथा विद्याभूषण के प्रणेता) का परिचय देते हुए लिखता है :—[२] 'यद्यपि रामानन्द स्वामी का बनाया कोई ग्रन्थ नहीं मिलता, तो भी उनके मतानुवर्ती वैष्णवों ने आगे चलकर बहुत से ग्रन्थ संकलित किए।' यहाँ किन्हीं शब्द का प्रयोग इसलिए किया गया है, क्योंकि ये ग्रन्थ रामानन्द-सम्प्रदाय में न तो प्रचलित ही हैं और न मान्य। वस्तुतः विश्वकोषकार को स्वामी रामानन्द तथा अन्य रामानन्द विद्वानों में कुछ भ्रम सा हो गया है। यह अवश्य है कि विश्वकोषकार से हमें इतना संकेत मिलता ही है कि 'श्री वैष्णवमताब्जभास्कर' रामानन्द द्वारा प्रणीत है। हिन्दी के इतिहासकार (शुक्ल जी, डा० वर्मा आदि), तथा संत साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् डा० पीताम्बरदत्त बर्थ्वाल एवं रामानन्द-सम्प्रदाय के प्रायः सभी लेखक एवं विद्वान् इस ग्रन्थ को स्वामी रामानन्द कृत ही मानते हैं। अतः अपने अध्ययन के लिए हम भी इस ग्रन्थ को स्वामी रामानन्द कृत ही मानेंगे।

वर्ण्य विषय—इस ग्रन्थ में स्वामी रामानन्द ने अपने प्रिय शिष्य सुरसुरानन्द के निम्नलिखित दस प्रश्नों का उत्तर दिया है :—तत्व क्या है ? श्रीवैष्णवों

१—हिन्दी विश्वकोष, पृ० ४६१।

२—वही, पृ० ४८७।

का जाप्यमंत्र क्या है ? वैष्णवों के इष्ट का स्वरूप, मुक्ति के सुलभ साधन, श्रेष्ठधर्म, वैष्णवों के भेद, वैष्णवों का निवासस्थान, वैष्णवों का कालक्षेप और मोक्ष के साधन। प्रथम प्रश्न के उत्तर में प्रकृति, जीव, ईश्वरतत्व का निरूपण किया गया है। द्वितीय प्रश्न के उत्तर में श्री राममंत्रार्थ, श्रीरामद्वयमंत्रार्थ, श्री-रामचरममंत्रार्थ की व्याख्या की गई है। जीव ईश्वर के पारस्परिक सम्बन्ध, तत्वत्रय, आकारत्रय, अर्थपंचक, भगवत्स्वरूप, 'चिदचित्स्वरूप, परस्वरूप, आचार्य स्वरूप आदि की भी व्याख्या इसी प्रश्न के सम्बन्ध में की गई है। तृतीय प्रश्न के उत्तर में सीताराम तथा लक्ष्मण आदि का दिव्य ध्यान करना बतलाया गया है। चतुर्थ प्रश्न के उत्तर में पंचसंस्कार, राममन्त्र का जाप, तुलसी-माला धारण करना, तत्वचिन्तन करते हुए भगवद्भक्ति करना, रामनवमी कृष्णजन्माष्टमी, नृसिंह चतुर्दशी, वामन जयन्ती, जानकी नवमी, षड्विंश एकादशी आदि विष्णु पंचक व्रतों का धारण करना आदि पर विचार प्रकट किया गया है। पंचम प्रश्न के उत्तर में अहिंसा, भगवान् का षोडशोपचार से नित्याराधन, वर्णाश्रम-धर्म का पालन करते हुए वैदिक धर्म का पालन, भगवान् में अटूट भक्ति, श्रवण-कीर्तनादि वैष्णवों के कर्त्तव्य बतलाए गए हैं। छठें प्रश्न के उत्तर में जीव-तत्व का निरूपण किया गया है। सातवें प्रश्न के उत्तर में वैष्णवों को पंचायुध धारण करने तथा तीर्थाटन-सत्संग-श्रवण-कीर्तनादि युक्त प्रेमाभक्ति करने का आदेश दिया गया है। यही उनके लक्षण भी हैं। आठवें प्रश्न के उत्तर में प्रयाग, मथुरा, अयोध्या, काशी, चित्रकूट, मिथिला आदि स्थानों में वैष्णवों को निवास करने की आज्ञा दी गई है और साथ ही यह भी कहा गया है कि वे जिस किसी तीर्थ स्थान में रहें वहाँ के प्रमुख देवता का सम्मान अवश्य करें। नवें प्रश्न के उत्तर में श्री वैष्णवों को त्रिसंध्या करते हुए शुभकर्म करने तथा रामायण, महाभारत और भाष्यादि के अध्ययन का आदेश दिया गया है। दसवें प्रश्न के उत्तर में प्रपत्ति, मोक्ष का मार्ग, साकेत-धाम, भगवत् प्राप्ति आदि का वर्णन किया गया है। इस प्रकार इस ग्रंथ की समाप्ति होती है।

श्री रामार्चन पद्धति—पण्डित रामचन्द्र शुक्ल, डा० पीताम्बरदत्त बर्थ्वाल, डा० रामकुमार वर्मा आदि हिन्दी के प्रमुख विद्वान् तथा पण्डित रघुबरदास वेदान्ती,[१] पं० रामटहलदास, पं० रामनारायण दास, तथा पं० रामपदार्थदास

१—वेदान्ती जी इसे स्वामी रामानन्द कृत मानते तो हैं, परन्तु कुछ संकोच के साथ ही। आनन्दभाष्य की भूमिका में उन्होंने लिखा है :.........इयंचश्रीस्वामिच-

वेदान्ती आदि रामानन्द-सम्प्रदाय के प्रमुख लेखक 'रामार्चन पद्धति' को स्वामी रामानन्द जी कृत मानते हैं। हिन्दी विश्व-कोषकार ने भी इस ग्रन्थ के लेखक का नाम रामानन्द ही दिया है, यद्यपि इस रामानन्द का उन्होंने कोई परिचय नहीं दिया है।

इस ग्रन्थ के सम्पादक पं० रामटहलदास का कहना है कि 'श्रीरामानन्द स्वामी जी ने इसका प्रथम उपदेश श्री अनन्तानंदजी एवं श्री सुरसुरानन्द जी को दिया था। तदनु उक्त आचार्य चरणों के शिष्य-प्रशिष्यों में इसका खूब ही प्रचार हुआ। किन्तु कराल काल की विकरालता ने इसके वास्तविक रूप का तिरोभाव ही कर दिया।......श्री युक्त पं० रघुवरशरण जी ने इसकी प्राचीन लिपि रेवासा (जयपुर) से लाकर श्री अवध में प्रचार कराया। किन्तु यह ग्रंथ संस्कृत में होने से इसका प्रचार नहीं के समान हुआ।'[1] इस ग्रन्थ की हस्त-लिखित प्रतियाँ अप्राप्य हैं, मुद्रित प्रतियों में एक के सम्पादक हैं पण्डित रामटहल-दास और दूसरी के सम्पादक हैं पं० रामनारायण दास। इन दोनों ही प्रतियों में कुछ पाठ-भेद भी पाया जाता है। जब तक इस ग्रंथ की कुछ [illegible] प्रतियाँ नहीं प्राप्त होतीं, तब तक यह कहना कि कौन सा पाठ ठीक और कौन सा अप्रामाणिक है, सम्भव नहीं है। पण्डित रामटहलदास द्वारा प्रकाशित प्रति का पाठ सम्प्रदाय में मान्य है, अतः हम उसे ही प्रामाणिक स्वीकार करेंगे।

इस ग्रंथ को अप्रामाणिक मानने वाले रामानन्दी विद्वान् भगवदाचार्य एक ओर रामानन्द-दिग्विजय की भूमिका में लिखते हैं, "कितने ही दुराग्रही लोगों का कहना है कि 'श्री रामार्चन-पद्धति' भी श्री रामानन्द स्वामी जी की ही बनाई गई है। 'रामानन्द कृता सेयं श्रीरामार्चनपद्धतिः' यह श्लोक प्रमाण में रक्खा जाता है। पर उसकी रचना आचार्य के योग्य नहीं। यदि यह रचना उनकी है भी तो पाठ-भेद अवश्य ही मुद्रित प्रति में किया गया है। दो प्रेस से यह ग्रन्थ छपा है और दोनों में पाठ-भेद है।"[2] और दूसरी ओर वे इस ग्रंथ को निश्चय रूप से रामानन्द स्वामी कृत मानते हैं। वे लिखते हैं,[3] "यह ग्रंथ (श्रीवैष्णवमता-

रणैरेवप्रणीतेत्यत्र विप्रतिपद्यन्त एवानेके श्रीरामानन्दीयवैष्णवाः। नह्यत्रसुदृढ़-मुत्पश्यामो वयमपि गमकम्। [illegible] तेषामेवकृतिरियमि त्येतावताऽस्माभिरपि तत्कृतिषु परिगणिता"—आनन्दभाष्य-भूमिका, पृष्ठ १८।

१—श्री वैष्णवमताब्जभास्कर, पृष्ठ ३३।

२—'श्रीरामानन्द-दिग्विजय'—भगवदाचार्य, पृष्ठ ५५।

३—'श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर' भगवदाचार्य,: सं० १९८६ वि० : भूमिका, पृष्ठ ४।

ब्जभास्कर) श्री स्वामी जी महाराज का द्वितीय ग्रंथ है। इसके पूर्व में 'श्रीमदानन्द भाष्य' निर्मित हो चुका है। इसीलिये इसमें 'आनन्द-भाष्य' से कालक्षेप करने की आज्ञा दी गई है। गीताभाष्य और श्रीरामार्चन-पद्धति इत्यादि ग्रन्थ इसके पीछे निर्मित हुए हैं।" इस प्रकार रामानन्द-सम्प्रदाय के लगभग सभी विद्वान् श्री रामार्चन पद्धति को स्वामी रामानन्द कृत ही मानते हैं। जिन्हें इस सम्बन्ध में कुछ आपत्ति है वह इसी कारण कि इसके आरम्भ में रामानन्द जी ने जो अपनी गुरु-परम्परा दी है, वह रामानुज-सम्प्रदाय से उनका निश्चित् सम्बन्ध निर्दिष्ट करती है। अतः रामानन्द-सम्प्रदाय के वे विद्वान् जो रामानुज सम्प्रदाय से अपना कोई भी सम्बन्ध स्वीकार नहीं करना चाहते, इस ग्रन्थ को स्वामी रामानन्द जी कृत नहीं मानते हैं।[१] इस निबन्ध में आगे हम देखेंगे कि उपलब्ध सामग्री के बल पर रामानन्द स्वामी को रामानुज-सम्प्रदाय से सम्बद्ध मानना ही पड़ेगा। कालान्तर में उन्होंने कारणवश अपना एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय स्थापित कर लिया। अपने अध्ययन के सम्बन्ध में 'श्री रामार्चन पद्धति' को स्वामी रामानन्द कृत मान लेने में हमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। जहाँ तक शुद्ध प्रामाणिक पाठ का प्रश्न है, प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के अभाव में हम पण्डित रामटहलदास द्वारा प्रकाशित एवं सम्पादित प्रति का पाठ ही मान्य समझते हैं। वस्तुतः पाठ-भेद इस ग्रंथ के प्रतिपाद्य को अप्रामाणिक सिद्ध नहीं करता, न ही उसे किसी भी मौलिक रीति से प्रभावित ही करता है।

वर्ण्य विषय—इस ग्रन्थ के आरम्भिक श्लोकों में भगवान् राम एवं श्री-रामानुजादि पूर्वाचार्यों का स्मरण कर रामानन्द जी ने अपनी गुरु-परम्परा दी है। छठें श्लोक में अपने गुरु राघवानन्द जी की उन्होंने वन्दना की है। इसके उपरांत भगवान् राम की पूजा करने की विधियों का विस्तार से वर्णन किया गया है। स्वामी जी ने उपासक के शरीर की शुद्धि तथा उसके नित्य-कर्म के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की है। मूर्ति-स्नान, पार्षदों का आह्वान्, भगवान् राम का षोडशोपचार से पूजन, फिर सांग-सायुध-सपरिकर-पूजनविधि, भगवान् राम की स्तुति, राजभोग, भागवतो को प्रसाद-अर्पण आदि इस ग्रन्थ

१—परम्परा परित्राण पृष्ठ ३०-३१ में स्वा० भगवदाचार्य ने लिखा है :—सारांश यह है कि श्री रामार्चन पद्धति में जो परम्परा छपी है वह नवीन कल्पित है और किसी अनभिज्ञ पुरुष ने उसमें स्वामी जी के नाम से छपा दी है। इस पद्धति में अन्य कितने ही विषय स्वसम्प्रदाय विरुद्ध छापे गये हैं शीघ्र ही मैं उसका संशोधन करके हस्तलिखित प्राचीन प्रति के अनुसार प्रकाशित कराऊँगा।"

के विविध विषय एवं विस्तार हैं। अन्त में यह भी कहा गया है कि पूर्वाह्ण तथा अपराह्ण में पूर्ण विधि से नित्य ही श्री रामार्चन [illegible]।

गीता-भाष्य—भगवदाचार्य ने अपने ग्रन्थ रामानन्द-दिग्विजय[1] की भूमिका में स्वामी जी कृत किसी 'गीताभाष्य' की सूचना दी थी। उन्होंने यह भी लिखा था कि इसके सात अध्यायों का ही पता चला है। कदाचित् इसी सूचना के आधार पर 'आनन्द-भाष्य' की भूमिका[2] में पण्डित रघुवरदास वेदान्ती जी ने स्वामी रामानन्द द्वारा लिखित गीताभाष्य की विशेषता बतलाते हुए लिखा था, '[illegible] परभक्तिप्रकाशनपरं।' इसके पूर्व ही लेखक लिख चुका है, "इमेच श्रीमदाचार्यभगवत्पादाः आनन्दभाष्यम् उपनिषद्भाष्यम् गीताभाष्यम् वैष्णव-मताब्ज-भास्करश्रीरामार्चनपद्धतिश्चेतीमे ग्रन्था विशेषानुपकाराय विरचयांचक्रे।"[3] किन्तु इस ग्रन्थ की न तो कोई हस्त-लिखित प्रति ही उपलब्ध है और न कोई प्रकाशित प्रति ही। नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट[4] में एक भगवद्गीता-भाषा रामानन्दकृत कही गई है, किन्तु संपादक पं० श्यामविहारी मिश्र के अनुसार ये रामानन्द, रामानन्द स्वामी से भिन्न हैं। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने रामानन्द स्वामी द्वारा रचित कहे जाने वाले 'भगवद्गीताभाष्य' के सम्बन्ध में कहा है,[5] 'इधर साम्प्रदायिक झगड़ों के कारण कुछ नए ग्रन्थ रचे जाकर रामानन्द जी के नाम से प्रसिद्ध किए गए हैं—जैसे ब्रह्मसूत्रों पर आनन्दभाष्य और भगवद्गीताभाष्य—जिनके सम्बन्ध में सावधान रहने की आवश्यकता है।' वर्तमान रामानन्द-सम्प्रदाय में शुक्ल जी द्वारा कथित मनोवृत्ति पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है, अतः यह असम्भव नहीं कि कुछ लोग इस प्रकार के किसी गीताभाष्य के लिखने का प्रयास कर रहे हों। अभी तक तो यह ग्रन्थ प्रकाश में आया ही नहीं है और न तो रामानन्दी विद्वानों को ही इस प्रकार के भाष्य का पता है। अतः इस ग्रन्थ का उपयोग हम अपने अध्ययन में न कर सकेंगे।

उपनिषद् भाष्य—पं० रघुवरदास वेदान्ती ने 'आनन्द-भाष्य' की भूमिका

१—[illegible], पृ० ५५।

२—आनन्द-भाष्यम्-भूमिका, पृ० १७।

३—वही।

४—ना० प्र० स० खोज रिपोर्ट, सन १९०९-१०-११। संपादक-पं० श्यामविहारी मिश्र।

५—हिन्दी साहित्य का इतिहास-पं० रामचन्द्र शुक्ल, नवीन संस्करण, पृ० ११९।

में रामानन्द स्वामी जी द्वारा लिखित उपनिषद् भाष्य की सूचना दी है ।[१] इनके अनुसार इस ग्रन्थ की विशेषता है, 'परेषां दुर्व्याख्यानेन [illegible] श्रुतीनां विशुद्धार्थ-प्रकाशन-परम् ।' और स्वयं 'आनन्द-भाष्य'[२] में इस प्रकार का उल्लेख मिलता है : "इत्याद्यनेकश्रुतिभिः परमात्मनः सर्वोत्कृष्टदिव्यज्ञानादिमत्त्वेन न क्वापिनिर्विशेषप्रतिपादकत्वम् । एतच्चतदुपनिषद्विवेचनायां स्पष्टीकृतमस्माभिरिति तत एवावगन्तव्यं विशेषार्थिभिरतोऽत्र विरम्यते ॥" यदि 'आनन्द-भाष्य' को स्वामी रामानन्द कृत मान लिया जाय, तब अवश्य ही यह उल्लेख कुछ महत्त्वपूर्ण हो सकता है, अन्यथा नहीं । न तो इस ग्रन्थ (उपनिषद्भाष्य) की कोई प्राचीन हस्तलिखित प्रति ही उपलब्ध है और न यह ग्रन्थ प्रकाश में ही आया है । वस्तुतः रामानुज—सम्प्रदाय से रामानन्द का कोई भी सम्बन्ध न सिद्ध करने के आन्दोलन के फलस्वरूप जब 'आनन्द-भाष्य' प्रकाशित किया गया, तभी 'उपनिषद्-भाष्य' अथवा 'गीताभाष्य' की सूचना तो दे दी गई, किन्तु अज्ञात कारणों से वे अब तक प्रकाश में न आ सके । जो हो, जब तक ये ग्रन्थ प्राप्त नहीं हो जाते, तब तक उनके सम्बन्ध में कुछ भी मत देना उचित नहीं । वेदान्ती जी के अतिरिक्त अन्य किसी भी विद्वान् ने इस ग्रन्थ की सूचना नहीं दी है ।

आनन्द-भाष्य—आनन्द-भाष्य के प्रकाशन ने रामानन्द-सम्प्रदाय के अध्ययन-क्रम में एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण परिस्थिति उत्पन्न कर दी है । विद्वानों ने इस प्रकाशन को प्रारम्भ से ही सन्देह की दृष्टि से देखा है और आज तक सभी विद्वान् एक स्वर से इस ग्रन्थ को स्वामी रामानंद कृत नहीं मानते । परिस्थिति तो यह है कि स्वयं रामानन्द-सम्प्रदाय में अनेक विद्वान् ऐसे हैं जो इस भाष्य को आधुनिक रचना के रूप में ही स्वीकार करते हैं । उनके अनुसार स्वामी जी ने किसी भाष्य की रचना नहीं की थी । हिन्दी साहित्य के भारतीय इतिहासकारों ने इसे संदिग्ध दृष्टि से ही देखा है । अतः इस भाष्य के सम्बन्ध में किसी भी निश्चित् निष्कर्ष पर पहुँचने के पूर्व हमें दोनों पक्षों—इसको प्रामाणिक-अप्रामाणिक मानने वालों के तर्कों को भलीभाँति समझ लेना चाहिए ।

आनन्द-भाष्य को प्रामाणिक मानने वाले विद्वानों के मत—सर्वप्रथम हम इस भाष्य के भूमिका-लेखक पं० रघुवरदास वेदान्ती के मत को उपस्थित करेंगे । संक्षेप में वेदान्ती जी के विचार निम्नलिखित हैं :—

१—आनन्द-भाष्य, भूमिका, पं० रघुवरदास वेदान्ती, पृ० १७ ।

२—आनन्द-भाष्य-जन्माद्यधिकरणम्, अध्याय १, पा० १, पृ० ३६ ।

भाष्य-निर्माण का कारण—समस्त भारत का पर्यटन करने के पश्चात् रामानन्द जी जब काशी में स्थायी रूप से निवास करने लगे तब उन्हें विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के प्रचार करने की चिन्ता हुई। प्रारम्भ में केवल एक ही श्री सम्प्रदाय था जो अनादिकाल से अनवच्छिन्न रूप से चला आ रहा था। कालान्तर में मन्त्र, उपास्य, उपासना, आचार आदि के भेद से इस मूल श्रीसम्प्रदाय में दो शाखाएं हो गईं। एक शाखा में राममन्त्र ही मुख्यमंत्र था और उपास्य श्री भगवान् राम थे, दूसरी शाखा का मुख्यमंत्र नारायणमंत्र हुआ और उपास्य थे भगवान् नारायण। अनेक विघ्न-बाधाओं के कारण रामसम्प्रदाय छिन्न-भिन्न हो गया और इस सम्प्रदाय के अनेक उपासक दूसरे सम्प्रदायों के आश्रय में चले गए। इन उच्छृंखल राम-सम्प्रदायानुयायियों को श्री सम्प्रदाय की दूसरी शाखा ने शास्त्रबल से अपने सम्प्रदाय में मिला लिया और अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ-रत्नों की रचना कर यह नारायणीय शाखा बहुत ही प्रसिद्ध हो गई। अतः रामशाखा क्रमशः शिथिल होने लगी। इसके रहस्य-ग्रन्थ लुप्त होने लगे। फलस्वरूप अधिक समय व्यतीत हो जाने पर रामशाखा नारायणीय शाखा में घुल-मिल कर उससे अपना अभिन्नत्व स्थापित कर बैठी। फलतः श्री राममन्त्र के साथ ही श्री नारायणमन्त्र की समानता भी स्वीकार कर ली गई। रामसम्प्रदाय के अनेक ग्रन्थ विनष्ट कर दिए गए। पूर्वाचार्यों द्वारा प्रणीत श्रौतस्मार्त्त ग्रन्थ भी अन्धकार के गह्वर में फेंक दिए गए। रामसम्प्रदाय की इस परिस्थिति से रामानन्द क्षुब्ध हो उठे। अतः उन्होंने हनुमान्, ब्रह्मा, वसिष्ठ, पराशर, व्यास, शुक, पुरुषोत्तम, गंगाधर आदि प्रमुख आचार्यों की वेदान्त-विषयक धारणा के अनुगुण ही आनन्द-भाष्य की रचना की। विशिष्टाद्वैत प्रतिपादक श्री वैष्णव-सर्वस्व यह भाष्य विद्वानों द्वारा अविदित नहीं है।

भाष्य के प्रकाशन पर किए गए आक्षेपों का उत्तर—इस भाष्य को अनेक विद्वान् नवीन कृति ही मानते हैं, स्वामी रामानन्द प्रणीत नहीं। पण्डित रघुवरदास वेदान्ती ने इसका उत्तर भी भूमिका में दिया है। उनके अनुसार—(१) कुछ लोगों का कहना है कि आनन्द-भाष्य अभिनव-परम्परा का प्रचार करने वालों की ही कृति है, रामानन्द स्वामी की कृति नहीं। विशिष्टाद्वैत-मत-प्रतिपादक श्री भाष्य के रहते हुए आनन्द-भाष्य की आवश्यकता ही क्या थी? २—अथवा यदि यह ग्रन्थ स्वामी रामानन्द प्रणीत ही है तो लोक में इसका आज से पूर्व प्रचार ही क्यों नहीं था? आधुनिक नवीन परम्परा के प्रचार के पूर्व तो इसका किसी ने नाम भी नहीं सुना था। वेदान्ती जी ने इन प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार

दिया है। (१) पहला कारण केवल अनुमानाश्रित है, अतः वह प्रमाण-कोटि में नहीं आ सकता। फिर लोक में रामानन्द द्वारा रचित यह ग्रन्थ उपलब्ध होता ही रहा है। सुधियों के पुस्तकालयों में यह ग्रन्थ सुरक्षित रखा पाया गया है। श्रीरामानन्दीयों को इस ग्रन्थ का सम्यक्ज्ञान था। रामानुजीयों को इसका ज्ञान नहीं था, इसके प्रमाण नहीं मिलते। यदि यह कहा जाय कि कुछ वैष्णवों को इस ग्रन्थ का पता नहीं था तो इसी युक्ति से इच्छा न रहते हुए भी यह मानना पड़ेगा कि श्री भाष्य रामानुज कृत नहीं। यदि विशिष्टाद्वैत मत से पूर्ण श्री वैष्णवमताब्जभास्कर आदि रामानन्द स्वामी प्रणीत ग्रन्थ पहले से मिलते रहे हैं, तब यह कहना निराधार है कि श्री भाष्य के रहते हुए विशिष्टाद्वैतवादी आनन्द-भाष्य की क्या आवश्यकता थी? एक अंश की समानता होने मात्र से आनन्द-भाष्य की रचना अनावश्यक नहीं सिद्ध की जा सकती।

२—वेदान्ती जी ने आगे कुछ ऐसे विद्वानों का मत दिया है जो यह कहते हैं कि 'इतिहासकारों के मत से रामानन्द स्वामी ने केवल श्रीवैष्णवमताब्ज-भास्कर और श्री रामार्चनपद्धति की रचना की है, आनन्दभाष्य की नहीं।' उनका यह प्रयास वेदान्ती जी के मत से पयोधरधाराप्रपात से पतित विन्दुओं को पकड़ कर अम्बर पर चढ़ना मात्र है। आधुनिक इतिहासकारों का मत अप्रामाणिक है, क्योंकि रामानन्द-सम्प्रदाय में आनन्द-भाष्य सदैव उपलब्ध होता रहा है। फिर आधुनिक इतिहासकारों का मत प्रमाणाभाव में ठीक भी नहीं होता है।

कुछ लोगों का यह कहना कि नवीन परम्परा के लिए प्रमाण की खोज करते समय आधुनिक विद्वानों ने ही इस ग्रन्थ की रचना की है, वेदान्ती जी के मत से नितान्त ही अनुचित है। वैभव-सम्पन्न व्यक्तियों के गृहों में अनेक वस्तुएँ गुप्त पड़ी रहती हैं। यदि अधिक उपयोग में आने वाली वस्तुओं के अतिरिक्त कोई मूल्यवान् पदार्थ गुप्त ही पड़ा रहे अथवा यदि किसी वस्तु का उपयोग अधिक करते-करते गृहपति उसे जीर्ण समझ कर घर में सुरक्षित रूप से रख दे और उसी प्रकार की अन्य वस्तुओं से काम चलावे तो कोई क्या यह कह देगा कि गृहपति के पास अमुक वस्तु थी ही नहीं? अथवा यदि कोई वस्तु कभी घर में अदृष्ट हो जाय और गृहपति दूसरी उसी ढंग की वस्तु से काम चला ले, किन्तु कालान्तर में वह वस्तु उसे फिर मिल जाय तो क्या यह कहा जायगा कि गृहपति के घर में उस वस्तु का अभाव था? इसी प्रकार 'आनन्दभाष्य' किसी विद्वद्वर की मञ्जूषा में कुटिल कीटजुष्ट रूप में सुरक्षित था और आवश्य-

कता पड़ने पर प्राप्त हो गया। जब तक किसी वस्तु का उपयोग नहीं होता, तब तक ही उसे ढूँढ़ने का कोई प्रयास नहीं किया जाता। आवश्यकता आविष्कार की जननी है। आवश्यकता पड़ने पर यदि 'आनन्द-भाष्य' खोजियों को प्राप्त हो गया तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? फिर लब्ध-प्रचार-परम्परा भी नवीन नहीं है। इसका निरूपण अग्राचार्य प्रभृति विद्वानों ने पहले ही कर दिया है।

आनन्द-भाष्य नाम का कारण—इस सम्बन्ध में वेदान्ती जी ने निम्न-लिखित अनुमान लगाए हैं :—

१—ब्रह्म का आनन्द प्रमुख गुण है। अतः आनन्द पदाभिधेयब्रह्म के नाम पर ही इस भाष्य का नाम रखा गया होगा।

२—इसका नाम कदाचित् रामानन्द स्वामी के नाम पर ही पड़ा हो, जिस प्रकार श्रीरामानुजभाष्य अथवा श्री शांकरभाष्य आदि भाष्यों के नाम उनके लेखकों के नाम पर पड़े।

ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रतियाँ—वेदान्ती जी ने जिन हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर इस ग्रन्थ का संशोधन किया है, उनका उल्लेख उन्होंने इस भूमिका में किया है। पहली प्रति तो 'सुखद समीरकाश्मीरजनपदनिवासरसिक' उनके आचार्य ने वेदान्त में उनकी कुछ गीत देखकर उन्हें दी थी। उस समय वेदान्ती जी न्याय-वेदान्त अध्ययन में निरत थे, अतः उसका उपयोग वे न कर सके। जब रामानन्द-सम्प्रदाय को स्वतन्त्र मानने में लोगों ने आपत्ति की तब 'गुरु-पुस्तक-भवन' से उन्होंने इस भाष्य को निकाल कर प्रमाण स्वरूप रखा। वेदान्ती जी के अनुसार इस प्रति में अशुद्धता तो नहीं है, किन्तु अनेक अक्षर मिट गए हैं। कश्मीर के किसी वेणीराम नाम के पण्डित ने राजकीय पुस्तकशाला के लिए सं० १८६७ में इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि की थी।

इस ग्रन्थ की दूसरी प्रति उन्हें अयोध्या में आए हुए किसी नैपाली वैष्णव ने अपने स्थान से लाकर दी थी। यह वैष्णव वेदान्ती जी को हरिहर-क्षेत्र में मिला था। सामयिक वार्ता-प्रसंग में ही उसने यह सूचना दी कि उसके यहाँ रामानन्द-भाष्य की हस्तलिखित प्रति वर्तमान है। वेदान्ती जी के अनुसार इस प्रति के अन्त में यह लिखा हुआ है[१] :—'इति श्रीमदानन्दनामकेश्रीरामा-

१—आनन्दभाष्य-संशोधक रघुवरदास वेदांती, भूमिका, पृष्ठ २१।

नन्दभाष्ये चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः । श्रीसीतारामार्पणमस्तु । सं० १८३५ लि० प० रामसेवकदासवैष्णवेन ।' यह प्रति भी खण्डिताक्षरों से पूर्ण है ।

इन दोनों ही प्रतियों के आधार पर वेदान्ती जी ने इस ग्रन्थ का संशोधन किया है, किन्तु जहाँ दोनों ही प्रतियों में कुछ शब्द खण्डित हो गए हैं, वहाँ उन्होंने स्वतंत्र बुद्धि का प्रयोग भी किया है। वे स्वयं लिखते हैं :—"इदन्त्वाचक्ष्महे-पुस्तकद्वयमासाद्यापि स्वीयबुद्धिवैशद्यानुगुणं यथासाध्यं संशोध्येदमुपह्रियते भवद्भ्योभाष्यरत्नम् । परमुपलब्धयोर्द्वयोः पुस्तकयोरेकस्य विशुद्धत्वेऽप्यतिजीर्णत्वाद्विगलिताक्षरत्वाच्चापरपुस्तकसाहाय्येनैव सर्वथा दुर्वाच्यमपि विशुद्ध पुस्तक-पाठं दर्शं दर्शं संशोध्य सत्यप्यस्मिन् पुस्तके क्वचित्पाठभेदेऽयमेवपाठः स्थापितः एवमुस्थिते सभावयामः क्वचित्संदिग्धार्थतापिपदे वाक्ये वा सम्पद्यतेति ।"[१]

भगवदाचार्य का मत—पण्डित रघुवरदास वेदान्ती की ही भाँति रामानन्द-सम्प्रदाय के दूसरे प्रसिद्ध विद्वान् भगवदाचार्य भी 'आनन्द भाष्य' को रामानन्द स्वामी कृत ही मानते हैं। उनके मत को मै यहाँ उन्हीं के शब्दों में उद्धृत कर रहा हूँ :—

"वह आनन्दभाष्य जिसे महान्त रघुवरदास जी ने प्रकाशित कराया है वह रामानन्द स्वामी जी का बनाया हुआ है ही नहीं। वह तो महान्त रघुवराचार्य का बनाया हुआ है यह बात श्री रघुवर जी ने मेरे पास अपने एक पत्र में लिखी है, मै उस पत्र को किसी भी सभा में रख सकता हूँ।"[२] "रघुवरदास या तो यह बता दें कि वस्तुतः उन्होंने इस भाष्य को बनाया है और या तो यह स्पष्ट कर दें कि मैंने व्यर्थ की प्रशंसा इकट्ठी करने के लिए झूठ ही अपने को आनन्द-भाष्य का कर्ता लिख दिया है—निर्णय तो आज यह करना है कि रघुवरदास कहते हैं कि मैंने इस भाष्य को बनाया है उनका यह कहना सत्य है या नहीं?—उनसे स्पष्ट लिखवा लिया जाय कि उन्होंने उस पत्र में अपने को आनन्द भाष्य का कर्ता लिख कर सम्प्रदाय का बहुत बड़ा अपकार केवल भ्रम, प्रमद, और विप्रलिप्सा से ही किया है।......सर्व साधारण और विशेषकर बाह्य विद्वानों के भ्रम और शंका को दूर करने के लिए आनन्द-भाष्य की उस प्राचीन प्रति को जिस पर से अहमदाबाद वाला संस्करण छपा है—एक ऐसे स्थान पर कुछ दिनों के लिए रख दिया जाय जहाँ पर सभी विद्वान् उसे देख

१—वही, पृ० २२ ।

२—तत्वदर्शी वर्ष ४, अंक १२, पृ० ५, सन् १६३२ ई० ।

कर अपना भ्रम मिटा सकें तथा सरकारी एक्सपर्ट के द्वारा उसकी जाँच करा कर उसकी प्राचीनता की पुष्टि करा देनी चाहिए।......इस अज्ञानता का अन्त तो हो जाना चाहिए कि हम और आप कह दें कि यह प्राचीन है तो वह प्राचीन हो जायगा। प्राचीनता की परीक्षा के लिए नए-नए उपाय बन गए हैं। उन पर यदि 'आनन्द-भाष्य' न टिक सका तो वह सम्प्रदाय के हित के लिए सर्वथा अक्षम वस्तु सिद्ध होकर रहेगा।"[१]

ऊपर के उद्धरण से यह स्पष्ट है कि भगवदाचार्य को रघुवरदास जी ने अपने एक पत्र द्वारा सूचित किया था कि 'आनन्द-भाष्य' वस्तुतः उनकी ही रचना है। स्वयं भगवदाचार्य ने भी रघुवरदास वेदान्ती द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ को पूर्णतया प्रामाणिक नहीं माना है। स्वसम्पादित श्री वैष्णवमताब्जभास्कर की भूमिका में वे लिखते हैं, "श्री रामानन्द-सम्प्रदाय में विन्दु-श्री के प्रवर्तक या प्रचारक श्री स्वामी रामप्रसादाचार्य जी महाराज ने वेदान्त-सूत्रों पर एक बृहद्-भाष्य लिखा था जिसका नाम 'जानकी भाष्य' था, जो अब कुछ वर्षों से प्रकाशित भी हो चुका है। उसकी हस्तलिखित कितनी ही प्रतियाँ भी यत्र-तत्र उपलब्ध हैं और चाहे जब किसी भी कोर्ट में उपस्थित की जा सकती हैं। उसी 'जानकी-भाष्य' को अत्यल्प परिवर्तन के पश्चात् 'आनन्द-भाष्य' बना कर अहमदाबाद में छपवा कर प्रकाशित कर दिया गया है। उसके सम्बन्ध में तत्वदर्शी में विवेचना-पूर्ण लेख भी निकल चुके हैं। उन लेखों ने सम्प्रदाय की स्थिति को निर्बल बना दिया है। जब तक प्रामाणिकों के समक्ष प्रामाणिक रूप में यह न सिद्ध कर दिया जाय कि यह 'आनन्दभाष्य' 'जानकीभाष्य' का ही रूपान्तर नहीं है तब तक 'आनन्दभाष्य' श्री रामानन्द स्वामी जी महाराज-प्रणीत है, यह कभी माना या मनाया नहीं जा सकता। अब हमारे सम्प्रदाय में पाप का बहुत बड़ा कूप तैयार हो गया है। इस कूप में श्री रामानन्द सम्प्रदाय अपने अज्ञानी और अविचारी सेवकों के कारण डूब कर समाधि ले लेगा।"[२] इस उद्धरण से भी स्पष्ट है कि जहाँ भगवदाचार्य 'आनन्दभाष्य' को स्वामी रामानन्द प्रणीत ही मानते हैं, वहीं उन्होंने इस बात का भी संकेत किया है कि पण्डित रघुवरदास वेदान्ती द्वारा प्रकाशित 'भाष्य' शत-प्रतिशत प्रामाणिक नहीं है। इसी कारण उन्होंने इस 'भाष्य' का 'चतुर्थ अध्याय' स्वतन्त्र रूप से हिन्दी अनुवाद सहित

१—तत्वदर्शी-सं० भगवदाचार्य, वर्ष ७, अंक ७, सन् १९३८ ई०, पृष्ठ ६-७।

२—श्री वैष्णवमताब्जभास्कर, सं० भगवदाचार्य, संवत् २००२ वि०, पृ० १२।

प्रकाशित कराया है। उसकी भूमिका में वे लिखते हैं :—"अनन्त श्रीयुक्त स्वामी श्री रामानन्दाचार्य जी महाराज कृत ब्रह्मसूत्रों का 'आनन्दभाष्य' मुद्रित हो चुका है।...मुद्रित ग्रन्थ संशोधक महाशय की अनवधानता से अत्यन्त अशुद्ध है।...तब मैंने अपने पुस्तकालय का 'आनन्दभाष्य' निकाला जो कि मुझे मेरे पूज्य श्री गुरु महाराज जी से प्राप्त हुआ है। उसके अनुसार इस मुद्रित भाष्य के पाठ में अनेक स्थलों पर अत्यन्त अन्तर है। मुझे मेरे ग्रन्थ का ही पाठ शुद्ध और उचित प्रतीत हुआ। अतः इस 'आनन्द-प्रपा' सहित भाष्य में मैंने अपने ग्रन्थ का ही पाठ रक्खा है।...मैंने विचार किया कि यदि इस पाठान्तर को अपने सम्प्रदाय के अन्य विद्वानों को दृष्टिगत कराये बिना मुद्रित करा देता हूँ तो मुझसे भी वैसी ही एक बड़ी भारी भ्रान्ति हो जावेगी जैसी भ्रान्ति अहंकारी पुरुष अनेक बार करता है। अतः मैं अयोध्याजी आया।...अन्त में सब विद्वानों (पं० रामबल्लभाशरण, पं० सरयूदास जी, वासुदेवदास, पं० रामपदार्थ दास) ने मेरे ही ग्रन्थ के पाठ को समीचीन और उचित मान कर मुद्रित कराने का परामर्श दिया। मेरे 'आनन्दभाष्य' में ब्रह्म-सूत्र की प्रमिताक्षरा नाम की एक अन्य व्याख्या भी लिखी हुई है जिसके कर्ता श्री देवाचार्य जी महाराज हैं जो आनन्द-भाष्यकार रामानन्द स्वामी जी महाराज से कई पीढ़ी पूर्व के हैं। श्री नाभा जी के 'भक्तमाल' में भी जिनका नामोल्लेख है।...सहस्र वर्षों से भी प्राचीन यह प्रमिताक्षरा वृत्ति आज भी साम्प्रदायिकों के प्राचीन पुस्तक-संग्रहालयों में उपलब्ध है। 'आनन्दभाष्य' का यही मूल होना चाहिए।"[१]

इस सम्बन्ध में भगवदाचार्य ने ज्योतिषप्रकाश प्रेस, काशी से प्रकाशित 'आनन्दभाष्य' के चतुर्थ अध्याय का भी उल्लेख किया है। खेद है कि यह प्रति अब अप्राप्य हो गई है।

भगवदाचार्य के उपर्युक्त वक्तव्यों से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं :—१—अहमदाबाद की प्रति (महान्त रघुवरदास द्वारा संपादित) का पाठ अत्यन्त अशुद्ध है। २—भगवदाचार्य को लिखे गए एक पत्र में रघुवरदास ने 'आनन्द-भाष्य' को निज-कृति कहा है। ३—रघुवरदास का यह कथन भगवदाचार्य के मत से केवल भ्रम, प्रमाद, और विप्रलिप्सा-वश किया गया है। वस्तुतः उनके इस कथन मात्र से यह ग्रन्थ उनकी कृति नहीं हो जायगा। ४—फिर कुछ लोगों का

१—आनन्दभाष्य- चतुर्थ अध्याय—आनन्दप्रपा टीका सहित, सं० भगवदाचार्य, भूमिका पृ० २।

यह कहना कि अहमदाबाद से प्रकाशित 'आनन्दभाष्य' जानकीभाष्य (लेखक रामप्रसादाचार्य) का ही सक्षिप्त रूपांतर है, वस्तुतः ठीक नहीं है। ५—भगवदाचार्य के पास 'आनन्दभाष्य' की एक गुरुदत्त प्रति है; उसके पाठ को अवध के तत्कालीन सभी विद्वान् प्रामाणिक मानते थे और उसी के आधार पर उन्होंने 'आनन्दभाष्य' के चतुर्थ अध्याय का प्रकाशन कराया है। ६—'आनन्दभाष्य' का मूल कदाचित् रामानन्द के कई पीढ़ी पूर्व के आचार्य देवाचार्य कृत ब्रह्मसूत्रों की प्रमिताक्षरा व्याख्या है, जो भगवदाचार्य के गुरुदत्त 'आनन्दभाष्य' में लिखी मिलती है।

आनन्दभाष्य को अप्रामाणिक मानने वाले विद्वानों के मत— आनन्दभाष्य को अप्रामाणिक मानने वाले विद्वानों में रामानन्द-सम्प्रदाय के ही एक प्रमुख विद्वान् पण्डित रामटहलदास थे। उन्होंने 'आनन्दभाष्य' के प्रकाशित होने के (सं० १९८६ वि०) दो वर्ष पूर्व (सं० १९८४ वि०) ही अपने ग्रन्थ 'श्री वैष्णवमताब्जभास्कर' में लिखा था,[1] "सुना जाता है कि नूतन परम्पराकार महाशयगण श्री रामानन्द स्वामी जी के नाम से नूतन वेदान्तभाष्य भी तैयार कर रहे हैं। करें, किन्तु विश्व के त्रैकालिक विद्वान् इतिहासकारों ने तो यही निश्चित् किया है कि उक्त स्वामी जी के दो ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थ हैं ही नहीं। अब उनके नाम से भाष्य लिख कर प्रकट करना मानो उनके महत्त्व व प्रभाव को उड़ा देने का ही ढंग है। क्योंकि वर्तमान एवं भविष्य के भव्य-विद्वान् यह तो अवश्य ही क्यों न कहेंगे कि श्री स्वामी जी भाष्य नहीं लिख सके। अतः पाँच सौ वर्षों के पश्चात् उनके नाम से आज तैयार किया गया। 'यदि कहूँ का ईंट कहीं का रोड़ा भानुमती का किस्सा जोड़ा' वाली कहनावट के अनुसार कुछ जोड़-जाड़ के कथड़ी तैयार भी कर लें, किन्तु श्री रामानन्द स्वामी जी का बल, प्रताप, अलौकिक विद्वत्ता, अतुलशक्ति, प्राचीनाचार्य-निष्ठा, श्री साम्प्रदायिक सिद्धान्त, रहस्य एवं वाद, तत्वज्ञान तथा क्षमा, शान्ति, सत्यता, न्यायपूर्ण सभ्यता, अष्टांग योगमय सिद्धता, त्रिकालज्ञा, अपरिमित ऐश्वर्य, लोक-प्रियता इत्यादि महान् गुण आज के नूतन भाष्यकारों में क्यों होने लगेंगे। उन हमारे पूर्वाचार्य जी का सहस्रांश भी तो किसी में नहीं है तब उनकी समता करना एवं कथनी आप कथैंगे और नाम श्री स्वामी जी का लगावेंगे यह कितनी कालिमा है?......आल इंडिया में हजारों नहीं लाखों विद्वान् हो चुके हैं किन्तु इन विद्याभास्कर जी (पंडित भगवत् दास-अब भगवदाचार्य) को छोड़ कर किसी ने भी श्री अम्बा जी को बद्ध नहीं लिखा। जिन्हें तत्वत्रय मात्र का भी ज्ञान नहीं

१—श्री वैष्णवमताब्जभास्कर-सम्पादक पंडित रामटहल दास, पृष्ठ १३१-३२।

वे भाष्य लिखने में क्योंकर सफल होंगे ? अस्तु । आप भाष्य लिखें किन्तु उसके प्रथम आप अपने मस्तिष्क में अक्ल की लेखनी से हमारा भी एक मंत्र अंकित कर लेवें वह यह कि 'सजीव-निर्जीव जड़-जीवात्मक इस जगत् का ब्रह्म सद्वारक परिणामी उपादान है अर्थात् ब्रह्म के शरीर-स्थानीय जड़ वस्तु के द्वारा परिणाम होता है।' एवं चरमात्रधान अर्चिरादि मोक्ष-मार्ग सिद्धान्त श्री पूर्वाचार्यों के अनुगमन विशिष्टाद्वैत मानोगे तो बलात्कारेण गलहस्तम्बनतया श्री भाष्यकार के सिद्धान्त अनुयायी बने बिना त्रिकाल में भी नहीं रह सकोगे । यदि इन (मध्व, शुद्धाद्वैत, भेदाभेद, अद्वैत) उपरोक्त किसी भी सम्प्रदाय-सिद्धान्त की लेशमात्र भी छाया छू जायगी तो किसी-न-किसी सम्प्रदायाचार्य के अनुयायी बने बिना छुटकारा कभी क्यों होगा ? हम तो यह स्पष्ट कह देते हैं कि जिन्होंने नव्य परम्परा जिस मशीन से ढाली उसी मशीन से नव्य-भाष्य भी क्यों न ढाल दिया जाय ?"

पंडित रामटहलदास के उपर्युक्त वक्तव्य से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं। १—आनन्दभाष्य के सम्बन्ध में सं० १९८४ वि० तक विद्वानों को कोई ज्ञान नहीं था। २—इस 'भाष्य' की रचना नूतन परम्पराकारों की देन है, स्वयं रामानन्द ने कोई भाष्य नहीं लिखा। ३—प्रायः सभी भाष्यों में किसी-न-किसी नवीन मत की स्थापना की गई है। यदि उनमें से किसी मत का अवलम्बन रामानन्द के नाम पर लिखे जाने वाले 'भाष्य' में किया गया तो उस सम्प्रदाय विशेष से बिना अपना संबंध स्थापित किये निर्वाह न होगा। ४—रामानन्द स्वामी जैसी प्रतिभा के अभाव में जो भी 'भाष्य' उनके नाम पर लिखा जायगा वह विद्वत्तापूर्ण नहीं हो सकता, अतः उससे स्वामी जी का नाम कलंकित ही होगा।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत—आचार्य पंडित रामचन्द्र शुक्ल के मत से इधर साम्प्रदायिक झगड़ों के कारण कुछ नए ग्रन्थ रचे जाकर रामानन्द जी के नाम से प्रसिद्ध किए गए हैं—जैसे ब्रह्मसूत्रों पर 'आनन्दभाष्य' और 'भगवद्गीताभाष्य'-जिनके संबंध में सावधान रहने की आवश्यकता है। बात यह है कि कुछ लोगों ने रामानुज-परम्परा से रामानन्द जी को बिलकुल स्वतन्त्र आचार्य प्रमाणित करने के लिए उनके नाम पर एक वेदान्तभाष्य प्रसिद्ध किया है।[१]

१—हिन्दी सा० का इतिहास—रामचंद्र शुक्ल—पृष्ठ ११९ ।

डा० पीताम्बरदत्त बर्थ्वाल का मत—वेदान्त-सूत्र पर 'आनन्दभाष्य' नामक एक भाष्य उनके नाम से प्रचलित हुआ है। उसके शूद्राधिकार में शूद्र को वेदाध्ययन का अधिकार नहीं माना गया है। अभी इस 'भाष्य' पर कोई मत निश्चित् करना ठीक नहीं है।[१] आगे 'आनन्दभाष्य' पर टिप्पणी लिखते समय बर्थ्वाल जी ने फिर लिखा है—मुझे विदित हुआ है कि इस ग्रन्थ को स्वामी रामानन्द की असली रचना मान लेना असंदिग्ध नहीं कहा जा सकता।[२]

इसी प्रकार कल्याण के वेदान्त-अंक में प्रकाशित श्री वैष्णवदास त्रिवेदी के 'श्री रामानन्दाचार्य कृत श्री आनन्द-भाष्य' लेख पर सम्पादक महोदय ने निम्न-लिखित टिप्पणी दी है :—कुछ सम्भ्रान्त महानुभावों का दृढ़ मत है कि आनन्दभाष्य श्री रामानन्द स्वामी द्वारा लिखित नहीं है। किन्ही आधुनिक सज्जन ने किसी कारणवश इसे रचकर श्री रामानन्द स्वामी के नाम से प्रचारित कर दिया है। वे लोग इस मत के समर्थन में प्रमाण भी देते हैं। परन्तु हम इस विषय में सर्वथा अनभिज्ञ हैं, हम नहीं कह सकते कि इसमें कौन सी बात सत्य है और न कल्याण इस विवाद में पड़ना ही चाहता है। यह लेख इसीलिए इस टिप्पणी सहित छापा गया है।[3]

ऊपर 'आनन्दभाष्य' को प्रामाणिक तथा अप्रामाणिक मानने वाले प्रमुख विद्वानों के मत उद्धृत किए गए हैं। अब देखना यह है कि 'आनन्दभाष्य' को अप्रामाणिक मानने वाले विद्वानों ने इसके सम्बन्ध में जितने आक्षेप किए हैं, उनका उत्तर भाष्य को प्रामाणिक रचना मानने वाले विद्वानों ने सम्यक्-रीति से दिया है या नहीं ? आनन्दभाष्य के सम्बन्ध में निम्नलिखित सन्देह प्रकट किए गए हैं :—

१—रामानन्द स्वामी ने किसी भाष्य की रचना नहीं की थी। यदि उन्होंने किसी भाष्य की रचना की होती तो उनके ही सम्प्रदाय में कम-से-कम उसका पठन-पाठन एवं पूर्ण प्रचार होता। रामानन्द-सम्प्रदाय से पूर्व-सम्बन्धित पंडित रामटहलदास को इस 'भाष्य' का कोई पता नहीं था। जिस समय उन्होंने श्री 'वैष्णवमताब्जभास्कर' का सम्पादन किया (सं० १९८४ वि०), उस समय तक न तो 'आनन्दभाष्य' की कोई सूचना ही विद्वानों को थी और न कोई प्रकाशित

१—हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय-अनु० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० २६।

२—वही, पृष्ठ ४०६।

३—कल्याण-वेदांत-अंक, गीता प्रेस, सं० १९९३ वि०, पृष्ठ २७७।

प्रति ही उनके समक्ष थी। २—'आनन्दभाष्य' की रचना का सीधा सम्बन्ध उस आन्दोलन से है जो रामानन्द स्वामी को रामानुज-सम्प्रदाय से पृथक् एवं स्वतंत्र 'श्री सम्प्रदाय' का एक प्रमुख आचार्य सिद्ध करने के लिये उठ खड़ा हुआ है और जिसके फल-स्वरूप रामानन्दी 'श्री सम्प्रदाय' की एक नूतन-गुरु-परम्परा का प्रचार किया गया है, जो अग्रस्वामी कृत कही जाती है। ३—किसी भी 'भाष्य' की रचना एक स्वतंत्र मत स्थापित करने के लिये की जाती है। यदि विशिष्टाद्वैत मत का ही समर्थन एवं प्रतिपादन करना था, तो 'आनन्द-भाष्य' की आवश्यकता ही क्या थी? 'श्री भाष्य' तो इस मत के समर्थन में लिखा ही जा चुका था।

इन प्रश्नों के जो उत्तर पं० रघुवरदास वेदान्ती ने दिए हैं, उनके लिए उन्होंने कोई दृढ़ प्रमाण नहीं उपस्थित किए। उनके मत संक्षेप में निम्नलिखित हैं :—१ प्रथम प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने यह कहा है कि 'आनन्दभाष्य' का रामनन्द सम्प्रदाय में प्रचार था और इस सम्प्रदाय के विद्वान् उसका पठन-पाठन भी करते थे। यदि आधुनिक इतिहासकारों को इस ग्रन्थ का पता न हो तो इस कारण 'भाष्य' की सत्ता ही निर्मूल नहीं हो जाती। आगे चल कर उन्होंने दो हस्तलिखित प्रतियों का भी उल्लेख किया है, जिनके आधार पर इस ग्रन्थ का उन्होंने संशोधन किया है। खेद है, अनेक प्रयास करने पर भी मुझे वे हस्तलिखित प्रतियाँ नहीं प्राप्त हो सकीं। कम-से-कम अवध (अयोध्या) में इस ग्रन्थ की किसी भी हस्तलिखित प्रति का पता नहीं चला। फिर यह भी सत्य ही है कि स्वयं रामानन्द-सम्प्रदाय के ही किसी भी भूतकालीन विद्वान् अथवा भक्त ने इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं किया है। किसी सम्प्रदाय का एक प्रवर्त्तक विद्वान् कोई ग्रन्थ लिखे—विशेषकर 'भाष्य' जैसा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ—और उसके अनुयायी उसके सम्बन्ध में मौनावलम्बन कर लें, इसे सहसा स्वीकार करते नहीं बनता। रामानन्द जैसे महत्वपूर्ण एवं प्रखर सुधारक का लिखा भाष्य केवल साम्प्रदायिकों के पुस्तकालयों में पड़ा रह गया, यह स्वयं आश्चर्यजनक घटना है। २. फिर यदि यह मान ही लिया जाय कि साम्प्रदायिकों में इस भाष्य का पठन-पाठन होता ही रहा है, तो इसकी अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध होनी चाहिए थीं। स्वयं रघुवरदास जी को बड़ी कठिनता से दो हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हो सकी थीं। जब तक ये हस्तलिखित प्रतियाँ भी विद्वानों के समक्ष उपस्थित नहीं कर दी जातीं और उनकी प्राचीनता की पूर्ण परीक्षा नहीं कर ली जाती, तब तक 'आनन्द-भाष्य' को प्रामाणिक रचना मान लेना कहाँ तक

उचित होगा, इसका निर्णय स्वयं विद्वद्वर्ग कर सकता है। फिर यदि भगवदाचार्य का यह कहना कि रघुवरदास जी ने अपने एक पत्र में उन्हें यह सूचित किया है कि यह 'भाष्य' उन्हीं की कृति है, ठीक हो तो इस प्रकाशित 'आनन्द-भाष्य' को सन्देह की दृष्टि से देखना उचित ही है। यदि भगवदाचार्य वेदान्ती जी के इस कथन को उनका 'प्रमाद या भ्रम' मानते हैं और 'आनन्द-भाष्य' को स्वामी जी ही की रचना मानते हैं तो उन्हें भी अपनी गुरु-दत्त पुस्तक को विद्वानों के समक्ष रख कर उसकी प्रामाणिकता सिद्ध कर देनी चाहिये। जिस प्रमिताक्षरा-वृत्ति को उन्होंने 'आनन्दभाष्य' का मूल कहा है, उसकी भी अन्य हस्तलिखित प्रतियाँ अप्राप्य हैं। स्वयं भगवदाचार्य इस बात को स्वीकार करते हैं कि जब तक 'आनन्द-भाष्य' की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ 'एक्सपर्ट्स' द्वारा जाँच नहीं ली जातीं, तब तक यह मनवा लेना कठिन है कि 'आनन्द-भाष्य' रामानन्द जी कृत ही है।

२—जहाँ तक द्वितीय आक्षेप का प्रश्न है, स्वयं रघुवरदास वेदान्ती यह स्वीकार करते हैं कि आनन्द-भाष्य की खोज का मूल कारण परम्परा-सम्बन्धी प्रश्न ही था। जब तक रामानुज-सम्प्रदाय से रामानन्द-सम्प्रदाय को असम्बद्ध मानने का प्रश्न नहीं था, तब तक न तो किसी साम्प्रदायिक-भाष्य की खोज ही की गई और न ऐसे ही ग्रन्थों को ढूँढ़ा गया जिनमें रामानन्दी-सम्प्रदाय में मान्य सिद्धान्तों का विवेचन हो। कारण स्पष्ट था। रामानन्दी विद्वान् 'श्री भाष्य' का पठन-पाठन करते थे और केवल आचार-सम्बन्धी स्वतन्त्रताओं को छोड़कर अन्य सभी दृष्टियों से अपने को वे रामानुज-सम्प्रदायान्तर्गत मानते थे। अपने अनेक लेखों में स्वयं भगवदाचार्य ने इस बात का उल्लेख किया है कि उनके रंगमंच पर आने के पूर्व रामानन्दी साधु अपने को रामानुज-सम्प्रदाय से ही सम्बद्ध मानते थे। अग्रस्वामी द्वारा लिखित कही जाने वाली गुरु-परम्परा आज भी विवाद का विषय बनी हुई है। स्वयं रामानन्द-सम्प्रदाय में अनेक विद्वान् उसे स्वीकार नहीं करते। इस नवीन परम्परा के प्रवर्त्तक अपने पक्ष के समर्थन में कोई लिखित प्राचीन सामग्री भी नहीं उपस्थित करते। फिर इस सम्बन्ध में जिस प्राचीन 'श्री सम्प्रदाय' की कल्पना की जाती है, उसका भी कोई दृढ़ प्रमाण नहीं उपस्थित किया जाता। न तो उसका प्राचीन इतिहास ही कहीं सुरक्षित बतलाया गया है। ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्न एवं समस्याओं के समर्थन में जो भी सामग्री प्रकाशित की जाय उसकी आधार-भूता प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ अवश्य ही प्राप्य होनी चाहिये। अन्यथा विद्वानों को उन्हें प्रामाणिक मानने में शत-प्रति-शत आपत्ति होगी। इस 'भाष्य' के प्रकाशित होने के लगभग ८ वर्ष पूर्व जब वेदान्ती पंडित

रघुवरदास जी ने वाल्मीकि-संहिता का श्री भगवदाचार्य के सम्पादकत्व में प्रकाशन कराया था तब भी उन्होंने भूमिका में यह लिखा था कि 'पुरातत्वानुसंधायिनी समिति', अयोध्या 'कुछ काल से इस चिन्ता में लगी हुई थी कि कोई ऐसा प्रामाणिक ग्रन्थ उपलब्ध हो जिसमें श्री रामानन्द-सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का अच्छा वर्णन हो। अनवरत परिश्रम के बाद.........नारदपांचरात्रान्तर्गत श्रीमद्वाल्मीकि संहिता की एक प्रति उपलब्ध हो ही गई।" खेद है इस ग्रन्थ की यह हस्तलिखित प्रति भी परीक्षा के लिए सामने न आ सकी।

विपक्षियों का तीसरा आक्षेप अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। रामानन्द-सम्प्रदाय में आज भी रामानुज-भाष्य का पठन-पाठन होता है। रामानन्दी-विद्वान् अपने मत को विशिष्टाद्वैत मत ही मानते हैं और प्रायः रामानन्दी विशिष्टाद्वैत तथा रामानुजी विशिष्टाद्वैत में कोई अन्तर भी नहीं मानते। इसके अतिरिक्त रामानन्द-सम्प्रदाय को भी आज 'श्री सम्प्रदाय' ही कहा जाता है। ऐसी परिस्थिति में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि 'आनन्दभाष्य' लिखने की आवश्यकता ही स्वामी रामानन्द को क्यों पड़ी ? यदि यह कहा जाय कि उन्हें विच्छिन्न होते हुए 'श्रीसम्प्रदाय' (रामसम्प्रदाय) को स्थिरता प्रदान करनी थी, अतः उन्होंने 'आनन्द-भाष्य' की रचना की, तो यह पूछा जा सकता है कि जाति-पांति सम्बन्धी जिस उदार दृष्टिकोण का समर्थन 'श्री वैष्णवमताब्जभास्कर' में किया गया है, वही दृष्टिकोण 'भाष्य' में क्यों नहीं अपनाया गया ?[१] इसके विपरीत रामानन्द-सम्प्रदाय में जो भी विशेषताएँ अब तक उत्पन्न हो गई हैं, उन सबका समावेश इस 'भाष्य' में हो गया ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'आनन्दभाष्य' को रामानन्द स्वामी कृत न मानने वाले विद्वानों ने इस सम्बन्ध में जो-जो प्रश्न उठाया है, उनका पूरा एवं संतोषजनक समाधान रामानन्दी विद्वान् अभी तक नहीं कर सके हैं। ऐसी परिस्थिति में इस 'भाष्य' की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में तब तक सन्देह बना रहना स्वाभाविक है, जब तक इस ग्रन्थ की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ हमारी जाँच के लिये सामने नहीं आ जातीं।

आनन्द-भाष्य और जानकी-भाष्य—भाषा, भाव, प्रतिपादन-शैली आदि की दृष्टि से रामानन्द-सम्प्रदाय में बिन्दु-श्री के प्रवर्त्तक श्री स्वामी रामप्रसाद कृत 'जानकीभाष्य' और 'आनन्दभाष्य' में पर्याप्त समानता परिलक्षित होती है।

१—डा० पीताम्बरदत्त बर्थ्वाल—हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृष्ठ २६।

कुछ विद्वानों का विचार है कि किसी आधुनिक विद्वान् ने 'जानकी भाष्य' के आधार पर 'आनन्द-भाष्य' की रचना कर उसे रामानन्द स्वामी के नाम से प्रचलित कर दिया है। इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रतियाँ अयोध्या में उस समय भी प्राप्य थीं जब 'आनन्द-भाष्य' का प्रकाशन भी नहीं हुआ था और न उसकी कोई हस्तलिखित प्रति ही अयोध्या में वर्तमान थी। स्वयं पण्डित रघुवरदास वेदांती ने भी इसे स्वीकार किया है, 'पुनरयोध्यायामेव कस्मिंश्चिद्वैष्णवमंदिरेऽप्येकं पुस्तकमस्तीति श्रुतमस्माभिः परं न दृष्टम्। एतदुपक्रम्य मन्मित्रेण दृष्टतद्ग्रन्थेनाभ्यधायि यन्न तद्रामानन्दभाष्यमपि तु केनचन वेदान्तसूत्रमुल्लिख्य तट्टीकामिषेणोपनिषद्गीतावाक्यान्यधस्तादुद्धृत्य जानकीभाष्यमितिनाम्ना ख्यापितम्।... ......मन्यामहे श्रेयोनिधानमिदमेवानन्दभाष्यं मूलतो विपर्यस्य ख्यातिसतृष्णः कश्चिद्रचयांचकार दुर्वचश्चीवर चणामिमां ग्रन्थकन्थाम्'।[1]

यहाँ दोनों ग्रन्थों के कुछ उद्धरणों से यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि उनमें कितनी समानता है :—

जानकीभाष्य—आरम्भ का 'श्रीरामाख्यपरंब्रह्मजगज्जन्मादिकारणं। स्वभक्तैर्ध्येयमाप्यंच वन्दे दिव्यगुणाकरम्॥' श्लोक **आनन्दभाष्य** में भी पाया जाता है, केवल प्रथम पंक्ति में 'जगज्जन्मादिकारणं' के स्थान पर 'सदाम्नायान्तदीपितम्' पाठ है। **जानकीभाष्य**—१-१-१५ "आनन्दप्रचुरः परमात्मेत्यत्रहेतुमाह 'तद्धेतुव्यपदेशाच्चेति।' 'एषह्येवानन्दयतीति' एष परमात्माजीवानानन्दयतीति जीवानन्ददानेपरमात्मनो हेतुत्वव्यपदेशात्, योऽन्यानानन्दयतीति स आनन्दप्रचुरो भवतीति यथालोके स्वयंधनी अन्यं धनिनंकरोति तद्वदानन्दयतीति दीर्घं छान्दसं अथवा इतश्चानन्दमयः परमात्मेत्याह तद्धेतुव्यपदेशाच्च, तस्यानन्दमयस्यापरमात्मत्वे यो जगत्सृष्ट्यादिकर्तृत्वरूपोऽव्यभिचारी हेतुस्तस्य 'आनन्दाद्ध्येवखल्विमानिभूतानि जायन्ते' इत्यादिना व्यपदेशादानन्दमयः परमात्मा, तथाहि 'यतोवा इमानि...'(पृष्ठ ५८-५६) **आनन्दभाष्य**—१-१-१५—दूसरे वाक्य में 'परमात्मनो' और 'हेतु' शब्द के बीच में 'अत्र' शब्द तथा 'तद्वदानन्दयतीति' के स्थान पर 'तथानन्दयतीति निर्देशः' शब्द है। शेष पदावली 'जानकी भाष्य' की ही है।

जानकीभाष्य—१-१-२७ "[illegible]यानिनिर्दिश्य। 'सैषाचतुष्पदे' तिगायत्र्याश्च [illegible] ब्रह्मण्येवोपपत्तेः। अक्षरसन्निवेशरूपाया गायत्र्यास्तदनुपपत्तेश्चैवम् गायत्री शब्द निर्दिष्टम् ब्रह्मैवज्योतिः शब्दवाच्यं भवतीत्यर्थः।" (पृष्ठ ७१) **आनन्दभाष्य** (पृष्ठ ८६) में अक्षरशः यही पाठ है।

१—'आनन्दभाष्य-भूमिका', पृ० २१, टिप्पणी।

जानकीभाष्य—१-२-४ 'नाशारीर' इति पूर्वपदस्यानुषंगः, नशारीरमनोमयत्वादिगुणकः कुतः 'कर्मकर्तृव्यपदेशात्' 'एतमितः प्रेत्य संभवितास्मीति' प्रकृतं मनोमयत्वादिगुणकमुपास्यं परमात्मानं प्राप्यत्वेन कर्मत्वेनव्यपदिशति। अभिसंभवितास्मि प्राप्तास्मीत्युपासक कर्तृत्वेन व्यपदिशति। अत उपास्योपासकयोः प्राप्तृप्राप्यत्वयोरेकनिष्ठत्वानुपपत्तेर्नशारीर उपास्यः, अतो न मनोमयत्वादि गुणकः। (पृ० ७६)

आनन्दभाष्य—१-२-४ (थोड़े से हेर-फेर से) 'न शारीर' इति पूर्व पदानुषंगः। शारीरोमनोमयत्वादि गुणकोन भवितुमर्हति। कुतः। कर्मकर्तृव्यपदेशात्। 'एतमितः प्रेत्याभिसंभवितास्मि' इति प्रकृतं मनोमयत्वादि गुणकमुपास्यं परमात्मानं प्राप्यत्वेन कर्मत्वेन व्यपदिशति। अभिसंभवितास्मीति प्राप्तारमीत्युपासकं जीवं कर्तृत्वेनव्यपदिशति। अतः प्राप्ता जीव उपासकः प्राप्यंब्रह्मोपास्यं न च सत्यां गतावेकस्यैव कर्मकर्तृव्यपदेशो युज्यते। तथोपास्योपासकभावोऽपिभेदाधिष्ठान एवेति न शारीरो मनोमयत्वादिगुणकः॥ (पृ० ६८-६६)

नोट—इनमें अधिकांश वाक्यांश दोनों ही ग्रन्थों में समान हैं।

जानकीभाष्य—१-२-२८ (पृष्ठ १०६) और आनन्दभाष्य १-२-२८ (पृष्ठ १२०) में सूत्र की व्याख्या करते समय समान शब्दावली का प्रयोग किया गया है, केवल आनन्दभाष्य में द्वितीय वाक्य के पूर्व 'न देवता न वा' पद और अन्त में 'वोध्यः' पद अधिक मिलते हैं।

जानकीभाष्य के १-३-१६ (पृष्ठ १३६) सूत्र की व्याख्या आनन्दभाष्य (यहाँ उसी सूत्र की संख्या १-३-१७ दी गई है, पृष्ठ १४०) में पूर्णतया समान शब्दावली में की गई है। इसी प्रकार सूत्र १-४-२०, २-१-१२ ('आनन्दभाष्य' में २-१-१३), २-२-२४, २-३-२४, २-४-३, ३-२-३३, ३-४-४८ आदि सूत्रों की व्याख्या दोनों ही 'भाष्यों' में पूर्णतया समान शब्दावली में की गई है। कुछ सूत्रों की व्याख्या में कुछ और वाक्य या वाक्यांश जोड़ भर दिए गए हैं, व्याख्या की आत्मा (स्पिरिट) वही है। 'जानकीभाष्य' में १-३-३१ (पृष्ठ १६४) सूत्र की व्याख्या में जिस शब्दावली का प्रयोग किया गया है, प्रायः वही शब्दावली आनन्दभाष्य (सूत्र १-३-३२) में भी प्रयुक्त हुई है, केवल दूसरे के अन्त में 'देवानांमध्वादिविद्यास्वधिकार इति पूर्वोदितस्य जैमिनेर्मतम्' वाक्य और जोड़ दिया गया है। सूत्र १-४-२४ की व्याख्या दोनों ही भाष्यों में प्रायः समान शब्दों में की गई है, केवल जानकीभाष्य के 'तस्यजगदुत्पादनत्वंचेति निमित्तत्वमुपादानत्वञ्च' और 'ब्रह्मणोनिष्पद्यते' के बीच में

'आनन्दभाष्य' में 'एकस्यैव' शब्द और जोड़ा गया है। सूत्र २-१-२६ की व्याख्या में प्रथम तीन वाक्य तो दोनों में समान ही हैं। चतुर्थ वाक्य में 'जानकी भाष्य' के 'तस्य निरवयवत्वपक्षे' तथा 'निष्कलनित्यादिनिरवयवत्वशब्दकोप-प्रसक्तोरिति' के बीच में आनन्दभाष्य में 'चिदंशो जीवविभागयुक्तोऽचिदंशश्चा-काशादिविभाग विभक्त इत्युक्तौ' वाक्यांश तथा 'जानकीभाष्य' के 'प्रसक्तोरिति' और 'पूर्वपक्षः' शब्दों के बीच में 'न ब्रह्मणो जगत्कारणत्वमिति' वाक्यांश और जोड़ा गया मिलता है। सूत्र ३-४-४८ की व्याख्या में 'आनन्दभाष्य' में केवल एक वाक्य और अन्त में जोड़ दिया गया है—"तस्मादत्र मौनंविद्यासहकारितया विधीयते।" कहीं-कहीं यह जोड़ केवल एक शब्द का ही है, शेष शब्दावली दोनों में समान है। सूत्र २-३-२६ की व्याख्या में 'आनन्दभाष्य' के 'ज्ञान गुणशक्तेर्विपरिलोपोन विद्यते' के स्थान पर 'आनन्दभाष्य' में 'ज्ञानगुणस्य विपरिलोपोविनाशोनविद्यते' पाठ मिलता है। इसी प्रकार सूत्र २-२-५ की व्याख्या में 'आनन्दभाष्य' के अन्तिम वाक्य के 'गोमयाकारेणपरिणामस्यदर्शनाच्च' शब्द के स्थान पर 'आनन्दभाष्य' में 'गोमयाद्याकारेण परिणामस्यदर्शनाच्च' पाठ मिलता है।

कहीं-कहीं 'आनन्द-भाष्य' में कुछ कम शब्दों में ही काम चला लिया गया है, फिर भी दोनों की शब्दावली में अद्भुत साम्य मिलेगा। सूत्र २-४-२१ की व्याख्या में 'आनन्द-भाष्य' में 'जानकी-भाष्य' का 'यत्रपृथिव्याभागाधिक्यं सा पृथिवीत्युच्यते, यत्रापां भागाधिक्यं ता आपइत्युच्यन्ते, यत्रतेजसो भागाधिक्यं तत्तेजइत्युच्यते' वाक्य नहीं मिलता, पर शेष शब्दावली में साम्य पाया जाता है। सूत्र ३-३-११ में 'आनन्द-भाष्य' में 'जानकी-भाष्य' के 'ब्रह्मोपासनासु' शब्दमात्र का अभाव तथा 'रूपेभ्यः' के स्थान पर 'करेभ्यः' शब्द पाया जाता है। सूत्र ३-३-११ की व्याख्या में 'आनन्द-भाष्य' में 'जानकी-भाष्य' के केवल दो शब्दों 'उद्गीथांगभावाश्रुतेरित्यर्थः' तथा 'क्रत्वंगभावो हि सहभावः' का अभाव है। शेष शब्दावली में पूर्णतया साम्य है। सूत्र ४-१-८ की व्याख्या में 'आनन्द-भाष्य' में 'जानकी-भाष्य' की व्याख्या का अंतिम शब्द 'अर्थः' मात्र नहीं है, शेष शब्दा-वली समान ही है।

कहीं-कहीं शब्दों में बहुत ही सूक्ष्म हेरफेर किया गया है। इस सम्बन्ध में पर्यायवाची शब्दों का प्रायः सहारा लिया गया है। शेष शब्दावली दोनों में ही समान है। सूत्र ३-२-५ की व्याख्या में 'जानकी-भाष्य' के अन्तिम वाक्य 'यथाभस्मयोगादग्नेः प्रकाशनसामर्थ्यतिरोभावस्तद्वदित्यर्थः' के स्थान पर 'आनन्द-

भाष्य' में 'यथा...... प्रकाशनसामर्थ्यं तिरोभवति तद्वदत्रापितिरोभाव इति' पाठ मिलता है। सूत्र ३-४-४५ की व्याख्या में जानकी-भाष्य के द्वितीय वाक्य 'यजमानफलसाधनभूतस्य क्रतोः सांगनिष्पादनाय' के स्थान पर 'यजमान...भूतस्य सांगस्य क्रतो निष्पादनाय' तथा अन्तिम वाक्य में 'फलश्रुतेरविरोधः' के स्थान पर 'फलश्रुतेरप्यविरोधः' शब्द या वाक्यांश 'आनन्द-भाष्य' में मिलता है। सूत्र ४-१-६ की व्याख्या में 'जानकी भाष्य' के वाक्यांश 'पृथिवीपर्वतादीनां यदचलत्वं दृश्यते तदपेक्ष्यध्यायमानस्याचलत्वमावश्यकत्वादासीनस्यैवाचलत्वसम्भवतासीन एवोपासीतेत्यर्थः' के स्थान पर 'आनन्द-भाष्य' में 'ध्यायमानस्याचलत्वमावश्यकं। तच्चासीनस्यैव संभवति। तस्मादासीनेवोपासीतेति' मिलता है। सूत्र ४-३-६ की व्याख्या में 'जानकी-भाष्य' के द्वितीय वाक्य का 'अर्चिरादिनागतस्यामृतत्वापुनरावृत्तित्व' अंश 'आनन्द-भाष्य' में नहीं है और अन्त में 'इति श्रुतेश्चावगम्यते' के स्थान पर 'श्रौताभिधानादिति' पाठ मिलता है। सूत्र ४-४-२ में 'जानकी-भाष्य' के 'इत्यनेनोच्यते' शब्द के स्थान पर 'आनन्द-भाष्य' में 'इतिवाक्य विषयः' पाठ मिलता है।

भाव साम्य तो समूचे ग्रन्थ में ही पाया जाता है। इस संबंध में केवल एक उदाहरण ही पर्याप्त होगा। सूत्र ३-१-५ की व्याख्या :—

जानकीभाष्य—प्रथमेद्युलोकाख्याग्नावपामाहुतेरश्रवणात् । किन्तु 'तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाश्रद्धांजुह्वती' ति प्रथमेऽग्नौश्रद्धायाएवाहुतेः श्रवणादापोभूतान्तरसंसृष्टा गच्छन्तीतिनोपपद्यतइति चेन्न हि। यतस्ता एवापः श्रद्धाशब्देनोच्यन्ते। कुतः। उपपत्तेः। 'वेत्थयथा पंचम्यामाहुतवापः पुरुषवचसो भवन्ती' ति प्रश्नवाक्येऽपामेवाहुतेःश्रवणात्। तासामेव पुरुषवचस्तस्य च कथंचिदप्यनुपपत्तेः। प्रतिवचनवाक्येश्रद्धाशब्देनाप एवोक्ता भवन्ति। 'श्रद्धावाआपः' इत्यपांश्रद्धाशब्दवाच्यत्वंश्रुत्यावगम्यते ॥ ५ ॥' (पृष्ठ ३६८)

आनन्दभाष्य—प्रथमेद्युलोकाख्याग्नावपामाहुतेरश्रवणात् किन्तु तस्मिन्नेत.........जुह्वति इति प्रथमेऽग्नौश्रद्धायाएवाहुतेः श्रवणादापोभूतान्तरसंसृष्टा गच्छन्तीति नोपपद्यतइति चेन्न, यस्मात्ता एवापः श्रद्धाशब्दवाच्याभवन्ति। कुतः। उपपत्तेः। श्रद्धाशब्देनापामेव ग्रहणं तथा सत्येव प्रश्नस्य तन्निरूपणस्यचोपपत्तिः तथाहि 'वेत्थयथा.........भवन्ति' इत्यत्रोद्देश्यतयाऽपामेव पुरुषवचस्त्वं प्रष्टुरभिमतम्। तथा तत् प्रतिवचनारम्भे तु द्युलोकाग्नौ होम्यत्वेन श्रद्धाभिगता। तत्र श्रद्धाया एवाब्रूयत्वमेष्टव्यम्। नो

चेन्प्रश्नप्रतिवचनयोर्विषयभेदः स्यात् । 'श्रद्धावाआपः' इति श्रुतेः श्रद्धाशब्देनाप एवोच्यंते । तथा च भूतसूक्ष्मैः संपरिष्वक्त एव गच्छतीति ।।५।।

उपर्युक्त उद्धरण में कुछ वाक्यों में तो शब्दसाम्य भी है, पर प्रतिपाद्य दोनों का निश्चित् रूप से एक ही है । इस प्रकार के अनेक उद्धरण दोनों ही ग्रन्थों के किसी भी पृष्ठ से दिये जा सकते हैं ।

'जानकीभाष्य' निश्चित् रूप से १५० वर्ष से अधिक पुराना नहीं है। अतः उस समय रामनन्द-सम्प्रदाय की जो दार्शनिक मान्यताएँ थीं, उनका प्रतिबिम्ब उसमें पड़ना आवश्यक था । फिर उस समय तक रामानन्दी विद्वान् रामानुज-सम्प्रदाय से भी अपने को सम्बद्ध समझते थे और 'श्री भाष्य' का पठन-पाठन करते थे । जब रामानन्द-सम्प्रदाय में शृंगार का प्रवेश हो गया और 'रक्त' श्री के स्थान पर 'विन्दुश्री' का प्रचार हुआ, तब इसके प्रवर्त्तक स्वामी रामप्रसाद जी को 'जानकीभाष्य' के भी लिखने की आवश्यकता प्रतीत हुई। जानकी-राम की महत्ता का स्वीकार तो इस ग्रन्थ में किया गया, किन्तु मूल दार्शनिक पृष्ठभूमि 'श्रीभाष्य' की ही बनी रही । कदाचित् उस समय तक रामानन्द-सम्प्रदाय के लोग स्वामी-रामानन्द के उदार दृष्टिकोण को भूल कर खान-पान, जाति-पांति के सम्बन्ध में संकीर्ण भी हो गए थे । अतः 'अपशूद्रोधिकरण' में स्वामी रामप्रसाद जी ने शूद्रों को वेदाधिकार नहीं दिया। 'आनन्दभाष्य' में भी शूद्रों को इस प्रकार का कोई अधिकार नहीं दिया गया, जब कि 'श्री वैष्णवमताब्जभास्कर' ग्रन्थ में स्वामी रामानन्द जी घोषित कर चुके हैं कि भक्ति में जाति-पांति का भेदभाव व्यर्थ है:—

प्राप्तुंपरांसिद्धिमकिंचनोजनो द्विजातिरिच्छन्छरणं हरिं व्रजेत् ।
परंदयालुं स्वगुणानपेक्षितक्रियाकलापादिक जाति बन्धनम् ॥[1]

अत: यह सन्देह कर लेना कि 'आनन्द-भाष्य' की रचना स्वामी जी ने नहीं की, कुछ अनुचित सा नहीं प्रतीत होता । इसी आधार पर तो डा० बर्थ्वाल[2] ने इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता में सन्देह किया है। एक ही व्यक्ति की कृतियाँ होने के कारण 'आनन्द-भाष्य' और 'श्री वैष्णवमताब्जभास्कर' में विचारधारा की दृष्टि से पर्याप्त साम्य होना चाहिए था । 'श्री वैष्णवमताब्जभास्कर' के लेखक ने कहीं भी अपने मत को विशिष्टाद्वैत के नाम से अभिहित नहीं किया है । तत्व-विवेचन उसका प्रधान उद्देश्य भी नहीं प्रतीत होता है । विशिष्टाद्वैत की स्थूल

१—श्री वैष्णवमताब्जभास्कर-भगवदाचार्य, पृ० १७३ ।

२—हि० का० नि० संप्रदाय, डा० बर्थ्वाल, पृष्ठ २६ ।

बातों को अपना कर भी लेखक कहीं भी उसके विस्तार में प्रवेश नहीं करता है। लेखक ने राम को ही परं ब्रह्म एवं अपना आराध्य माना है, फिर भी अन्य साम्प्रदायिक आराध्य देवों के प्रति उसका दृष्टिकोण सर्वत्र ही उदारता का रहा है। वैष्णवानुरूप उदारता ही 'श्री वैष्णवमताब्जभास्कर' ग्रन्थ की विशेषता है। दूसरों के मतों के खंडन की प्रवृत्ति भी यहाँ नहीं मिलती। 'आनन्द-भाष्य' में उतनी ही साम्प्रदायिकता है, जितनी 'श्री भाष्य' में और 'आनन्द-भाष्य' का दृष्टिकोण प्रायः उतना ही संकीर्ण है जितना 'श्री भाष्य' का। 'आनन्द-भाष्य' में 'श्री वैष्णवमताब्जभास्कर' के उस उदार दृष्टिकोण का भी अभाव है, जिसके अनुसार भक्ति का द्वार शक्त-अशक्त, कुलीन-अकुलीन, ब्राह्मण-शूद्र, स्त्री-चांडाल-आदि सभी के लिये खुल गया था। भागवतों की उपासना करने से ब्राह्मणादि तक भी सिद्धि-प्राप्त करते हैं, ऐसा 'श्री वैष्णवमताब्जभास्कर' ग्रन्थ का निश्चित् मत है। 'आनन्द-भाष्य' में इस प्रकार की उदारता के प्रति कोई सहानुभूति नहीं दिखलाई गई है। लगता है ज्यों-ज्यों समय बीतता गया रामानन्दी साधु अपने आचार्य के उपदेशों को भूलते गए और रामानुजी साधुओं एवं आचार्यों के साथ रहते-रहते उनकी भाँति ही साम्प्रदायिक होते गए। 'आनन्द-भाष्य' इन्हीं साम्प्रदायिक संकीर्णताओं से परिपूर्ण है और इसी कारण इसे रामानन्द जी की रचना के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता।

'आनन्दभाष्य' और 'जानकीभाष्य' के तत्व-चिन्तन का स्तर समान ही है, दोनों की विचारधारा में प्रायः कोई अन्तर नहीं है। 'जानकीभाष्य' अपने समय का प्रतिनिधि भाष्य है। स्वामी रामप्रसाद का समय सं० १८०८ वि० माना गया है। इनके इस 'भाष्य' की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ अयोध्या में मिल जाती हैं। अतः इसकी प्रामाणिकता में सन्देह नहीं किया जा सकता। (कुछ विद्वानों के अनुसार स्वामी रामप्रसाद जी के विद्वान् शिष्य हरिदास जी ने 'जानकी भाष्य' की स्वयं रचना कर अपने गुरु के नाम से इसे प्रचारित कर दिया।) 'आनन्दभाष्य' की हस्तलिखित प्रतियों का नितान्त ही अभाव है। जिन प्रतियों का उल्लेख रघुवरदास जी अथवा भगवदाचार्य जी ने किया है, वे भी अनुपलब्ध हैं। स्वयं भगवदाचार्य जी ने मेरे एकाधिक पत्रों का उत्तर देते समय इन हस्तलिखित प्रतियों के मिलने के स्थान नहीं बतलाए हैं। मैंने उस प्रति को भी देखने की जिज्ञासा की थी, जिसके आधार पर उन्होंने अहमदाबाद वाली 'आनन्दभाष्य' की प्रति छपवाई थी, किन्तु भगवदाचार्य जी से इस सम्बन्ध में मुझे कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। स्पष्ट है, 'आनन्दभाष्य' की हस्तलिखित प्रतियाँ किसी आशंकावश ही जानबूझ कर छिपाई जा रही हैं। 'आनन्दभाष्य' और

'जानकीभाष्य' में भाव-भाषा सम्बन्धी कितना साम्य है, इस सम्बन्ध में हम ऊपर विस्तृत विवेचना प्रस्तुत कर चुके हैं। अतः कुछ विद्वानों का यह अनुमान कि परम्परा-सम्बन्धी झगड़े के छिड़ जाने पर रामानन्द को स्वतन्त्र आचार्य सिद्ध करने के लिए [illegible]-भाष्य के आधार पर 'आनन्दभाष्य' की रचना करके लोगों ने उसे स्वामी जी के नाम पर चला दिया, वर्तमान परिस्थितियों में अधिक तर्कसंगत एवं महत्वपूर्ण हो जाता है।

जो हो, इतना तो स्पष्ट ही है कि इस ग्रन्थ के प्रकाशन का सम्बन्ध एक प्रमुख साम्प्रदायिक समस्या से था और इसके पूर्व न तो सम्प्रदाय में इसका पठन-पाठन ही अधिक होता था और न इसका पर्याप्त प्रचार ही था। इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रतियों के अभाव का यही प्रमुख कारण है। अतः जब तक इस ग्रन्थ की ३००-४०० वर्ष पुरानी एकाधिक हस्तलिखित प्रतियाँ न मिल जायं, तब तक इसे रामानन्द स्वामी कृत मान लेने का कोई कारण नहीं दिखलाई पड़ता है।

अपने अध्ययन के सम्बन्ध में हम इसे रामानन्द-सम्प्रदाय का एक प्रमुख भाष्य मान कर ही इसका उपयोग कर सकेंगे, रामानन्द स्वामी की कृति मान कर नहीं। इसके आधार पर आधुनिक रामानन्द-सम्प्रदाय की विचार धारा को समझा जा सकता है, रामानन्द स्वामी के मत को नहीं, ऐसी मेरी दृढ़ धारणा है और इसी रूप में इस ग्रन्थ का उपयोग प्रस्तुत प्रबन्ध में हुआ है।

सिद्धांत पटल—'सिद्धान्तपटल' रामानन्द सम्प्रदायान्तर्गत तपसी-शाखा का एक प्रमुख ग्रन्थ माना जाता है। इसके लेखक स्वामी रामानन्द जी ही कहे जाते हैं। इस ग्रन्थ के मन्त्रों की सूची पर एक विहंगम दृष्टि डालने से ही यह पता चल जाता है कि इसकी रचना नाथ-पन्थ और वैष्णव धर्म में सामंजस्य स्थापित करने के दृष्टिकोण से की गई है। रामानन्द-सम्प्रदाय में योग का प्रवेश पयहारी कृष्णदास के ही समय में हो गया था। उनके शिष्य कील्ह और कील्ह के शिष्य द्वारकादास ने तो इस योग-परम्परा को और भी आगे बढ़ाया। इन्हीं के शिष्य-प्रशिष्यों ने अपनी एक अलग शाखा स्थापित कर ली, जिसका नाम 'तपसी शाखा' पड़ा, इसी 'तपसी शाखा' की ओर से डाकोर से सिद्धान्त-पटल का प्रकाशन कराया गया है, भार्गव-पुस्तकालय, गायघाट तथा वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से भी इस ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ है।

रामानन्द ने नाथ-पंथी योग को भी अपने में समेट लिया था और वे निरन्जन की ही उपासना करते थे, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। अतः

'सिद्धान्त पटल' को स्वामी रामानन्दकृत मान लेने में अनेक आपत्तियाँ हो सकती हैं। कम-से-कम इस ग्रंथ में ऐसे संकेत मिलते हैं जिनके बल पर यह कहा जा सकता है कि यह ग्रन्थ रामानन्द स्वामी कृत नहीं है। १-इस ग्रन्थ में सर्वत्र ही रामानन्द जी का गुरु रामानन्द के नाम से स्मरण किया गया है (हम यहाँ गायघाट, काशी से प्रकाशित प्रति से ही पृष्ठ संख्या देंगे)। ग्रन्थ के अन्त में लिखा है 'इति श्री गुरु रामानन्द जी कृत सिद्धान्त पटलम् (अवधूत-मार्ग) समाप्त।' (पृष्ठ ५०)। ग्रन्थ के मध्य में भी इस प्रकार के आदरसूचक शब्द का प्रयोग रामानन्द जी के नाम के साथ किया गया है। जैसे 'इति श्री गुरु रामानन्द स्वामी की पंचमात्रा सम्पूर्णम्।' (पृ० ४)। या 'इति श्री गुरु रामानन्द का वैराग्य-आभूषण-मंत्र'। (पृष्ठ १०)।

२—कभी-कभी रामानन्द जी के नाम के साथ इस प्रकार 'गुरु' शब्द का प्रयोग किया गया है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कोई दूसरा व्यक्ति उनके उपदेशों का या तो संग्रह कर रहा हो अथवा स्वयं उनके नाम पर लिख रहा हो। स्वयं रामानन्द इस प्रकार अपने को नहीं लिख सकते थे—'श्री गुरु रामानन्द को बच्चा सच्चा जोग'[१], 'ओम् अब जागे श्री गुरु रामानन्द अवधूता। सेली सिंघी जंग लंगोटा....।'[२] 'आसन बैठे गुरु रामानन्दा। दोऊ कर जोड़ आसन की रक्षा करैं। देव तैंतीस कोटि रक्षा करैं।'[३] 'श्री गुरु रामानन्द स्वामि की कण्ठी हीरा तीन लोक में छाजै'[४] 'गुरु परताप बाघम्बर चलाया। और चलाया मृगछाला। जापर बैठे श्री गुरुरामानन्द जी।'[५] 'ॐ स्वामी जी जंगजहूरा पग की खड़ाऊँ पग का तोड़ा।'[६] 'ओं श्री गुरु रामानन्द जी सेली सिंघी जंग लंगोटा'।[७] 'शब्द स्वरूपी श्री गुरुराघवानन्द जी ने श्रीरामानन्द जी कूं सुनाया।'[८] 'छोटे से मोटा करि श्री गुरु रामानन्द जी बोलै भस्म को करो विचार।'[९] 'ॐ आदि शेष लीन्ह लक्ष्मण

१—सिद्धान्त पटल, पृ० ४१।
२—वही, पृ० ३।
३—वही, पृ० ६।
४—वही, पृ० ७।
५—वही, पृ० ८।
६—पृ० ९।
७—पृ० ११।
८—पृ० १७।
९—पृ० ४०।

अवतार। गुरु रामानन्द गुण कै रासी। रटै ररंकार मायावादी मतराम रघुनाथ उपासी। श्री रंगधाम हरिनिकट निवासी'।[१] 'प्रथम तुम्बा कवन चलाया। नवनाथ चौरासी सिद्धों ने चलाया। फेर तुम्बा कवन चलाया गुरु राघवानन्द जी ने चलाया। फिर तुम्बा कवन चलाया। गुरु रामानन्द जी ने चलाया। एक-एक तुम्बा राखो भाई।'[२]

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि इस ग्रन्थ का लेखक रामानन्द से भिन्न ही कोई व्यक्ति है।

३—कहीं-कहीं रामानंद के लिये 'गुसाईं (गोसाईं)' शब्द भी लिखा गया है, साथ ही 'कबीर' तथा 'जमाल' का भी नाम आ गया है। 'ओं अवधूत बाघ सिंह मृग छाला बिछाई कौन गुरु फुरमाई। श्री गुरु रामानन्द गोसाईं।'[३] 'श्री गुरु रामानन्द निर्वाण गुसाईं। जिन्ने बाघम्बर करके चलाई।'[४] कबीर के नाम से छंद भी इस ग्रंथ में मिलते हैं। 'गुरु के शब्द सो भिक्षा माँगो। अन्तकाल नहीं भारी। दास कबीर कहै झोली झंडा साथ। दूध की भिक्षा परमारथ राम।'[५] 'कहै कबीर सुनो जमाल। पंचधूनी चेता बेहाल।'[६] "सतगुरु हम पर मेहेर करि एक किया परसंग। बादर उमग्यो प्रेम को भीज्यो सगरो अंग।"[७]

इस प्रकार अन्तःसाक्ष्य के बल पर इस ग्रन्थ को स्वामी रामानन्द जी कृत नहीं ही माना जा सकता। कुछ संस्कृत छन्दों को छोड़ कर (कदाचित् ये छंद संकलित हैं) भाषा-शैली की भी दृष्टि से यह एक निम्न कोटि की रचना है। उदाहरण के लिये निम्नलिखित मंत्र को लिया जा सकता है :—

"सुई-सुई का धागा। खलका चोला शीवन लागा। धोला काला डोरा। ऊँ रमै साधु का चोला। चक्कू चकमक मतंगा चीपिया। पथरी गोपी चन्दन। गंगा की रज चेला विलसे गुरु की साखी। सरस्वती उपदेश बतावे।"[८] आदि।

१—पृ० ४४।
२—वही, पृष्ठ ४५।
३—पृष्ठ ३०।
४—पृष्ठ ३०।
५—पृष्ठ १९।
६—पृष्ठ ३१।
७—पृष्ठ ४३।
८—पृष्ठ ४।

कबीर और कमाल के नामों का आना भी रामानन्द की रचना इसे सिद्ध नहीं करता। इसे कबीरदास की भी रचना नहीं मान सकते। एक तो इसमें वैष्णव कर्म-काण्ड को पूरी मान्यता दी गई है, दूसरे कबीर के नाम पर पाए गए ग्रन्थों में 'सिद्धान्त-पटल' का कहीं नाम भी नहीं आता।[1] इस ग्रन्थ के रचयिता कदाचित् कोई क्षेमदास हों, जिनका नाम इस ग्रन्थ में इस प्रकार आया है 'गंगा की रज चेला विलसे गुरु की साखी। सरस्वती उपदेश बतावे। क्षेमदास गुरु अगम समावै।'[2] 'भक्तमाल' के अनुसार रामानन्द की शिष्य-परम्परा में एक खेमदास पयहारी कृष्णदास के शिष्य टीला जी के शिष्य थे[3] और दूसरे अग्रदास के।[4] टीला की परम्परा में योग का प्रचार अधिक था और अग्र की परम्परा में शृंगार का। अतः यह अनुमान कदाचित् असंगत न होगा कि इस ग्रन्थ के रचयिता टीला जी के शिष्य खेमदास (क्षेमदास?) ही रहे हों और ग्रन्थ के माहात्म्य को बढ़ाने के लिये उन्होंने एक ओर तो रामानन्द का नाम दे दिया हो और दूसरी ओर कबीर के पदों का भी संग्रह कर लिया हो। रामानन्द सम्प्रदाय के (तपसी शाखा को छोड़ कर) प्रमुख विद्वान् भी इस ग्रन्थ को स्वामी रामानन्द जी कृत नहीं मानते।[5]

राम रक्षा स्तोत्र—'सिद्धान्त पटल' की भाँति 'रामरक्षा स्तोत्र' भी स्वामी रामानन्द जी कृत कहा जाता है। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की १९००ई० की खोज रिपोर्ट में यह ग्रन्थ रामानन्द कृत कहा गया है और इसका प्राप्ति-स्थान पं० माखनलाल मिश्र, मथुरा कहा गया है। १९०६-७-८ की रिपोर्ट में इस ग्रंन्थ

१—हि० सा० आ० इ०, डा० वर्मा, पृष्ठ ३५८-६७।

२—सिद्धान्त पटल, पृष्ठ ४।

३—भक्तमाल, छप्पय ११७।

४—वही, छप्पय, ११८।

५—परम्परा-परित्राणम्-भगवदाचार्य पृ० ३१-३२। 'जहाँ एक ओर ऐसा कहते हैं वहाँ दूसरी ओर सिद्धान्त पटल को सामने रखते हैं और कहते हैं कि श्री स्वामी रामानन्द जी का बनाया हुआ है। स्वामी जी का बनाया हुआ है इसमें कुछ प्रमाण दोगे या ऐसी ही पुंगलभक्षण करते रहोगे।......तुम समझते थे कि इस 'सिद्धान्त पटल' को आगे ले पटको यदि कोई झूठा कहेगा तो तपसीमहात्मा माथा फोड़ डालेंगे और सत्य कहेगा तो गोवर-गणेशों का दुर्गन्धितमत सिद्ध हो जावेगा।......तपसी महात्माओं को मैं समझा लूंगा। मैं मानता हूँ कि वे जल्दी नहीं समझेंगे। परन्तु यह तो मुझे विश्वास है कि श्री रामानन्दस्वामी जी के वह सच्चे भक्त हैं।' इस उद्धरण से स्पष्ट है कि भगवदाचार्य पटल को स्वामीजी कृत नहीं मानते।

के लेखक कबीर माने गए हैं। खोज रिपोर्ट सन् १६०६-१०-११ के अनुसार इसकी एक प्रति पं० भानुप्रताप तिवारी, चुनार के यहाँ पाई गई थी। खोज रिपोर्ट सन् १६१७-१८-१६ ई० के अनुसार इसकी एक अन्य प्रति लक्ष्मण किला, अयोध्या में रामरक्षा सन्जीवन-मंत्र के नाम से पाई गई थी। विषय मंत्र बतलाया गया था। उन्हीं वर्षों की रिपोर्ट में लक्ष्मण-कोट, अयोध्या में रामरक्षा मंत्र नाम से एक अन्य प्रति का भी उल्लेख किया गया है। इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि 'श्री सं० १६४४ मिती माघ कृष्ण ३, बुधवासरे' की गई थी। १६२०-२१-२२ की खोज रिपोर्ट के अनुसार इस ग्रन्थ की एक प्रतिलिपि ठाकुर दास पंचायती, खजुआ, फतेहपुर में पाई गई थी। इसके विषय परमात्मा व गुरु की वन्दना, कष्ट-पीड़ादि के दूर होने का आदेश, योगिनी आदि को आदेश, खेचरी मुद्रा, चन्द्र- सूर्य को आदेश तथा राम, लक्ष्मण, सीता और हनुमान् से रक्षार्थ प्रार्थना आदि कहे गए हैं। १६२६-३०-३१ की खोज-रिपोर्ट के अनुसार इस ग्रन्थ की एक प्रति डा० बर्थ्वाल को श्री रामानुज के नाम से मिली थी, यद्यपि उनके ही अनुसार, यह १६३० वाली रिपोर्ट की प्रति से मिलती-जुलती है। इस ग्रन्थ की एक और प्रति आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल के पास थी, जिसकी सूचना उन्होंने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' नामक ग्रन्थ में दी थी।[१]

इस ग्रन्थ की एक प्रति मुझे अयोध्या में प्राप्त हुई है। किसी रामानन्दी विद्वान् ने इस ग्रन्थ के रामानन्द स्वामी कृत होने की सूचना नहीं दी है। खोज-रिपोर्ट के सम्पादकों में न तो मिश्रबन्धु[२] ही इसे स्वामी रामानन्द कृत मानते हैं, न श्री हीरालाल जैन[३] ही। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने तो यहाँ तक लिखा है, 'झाड़-फूंक के काम के ऐसे-ऐसे स्तोत्र भी रामानन्द के गले मढ़े गए हैं।'[४] हिन्दी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास में डा० रामकुमार वर्मा का भी मत है, "सम्प्रदाय सम्बन्धी एक ग्रन्थ का पता चलता है। वह है 'राम-रक्षास्तोत्र' या 'संजीवन-मंत्र', पर उस ग्रन्थ की रचना इतनी निम्नकोटि की है कि वह रामानन्द के द्वारा लिखा गया ज्ञात नहीं होता। यह भी संभव हो सकता है कि मंत्र या

१—हिन्दी साहित्य का इतिहास-पं०रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १२२।

२—खोज रिपोर्ट, १६०६-११।

३—'इट अपीयर्स टु बी ए वर्क आव् ए वेरी इन्फ़ीरियर क्लास आव् राइटर' श्री हीरालाल जैन। खोज रिपोर्ट-१६१७-१६।

४—हि० सा० इ०, पृ० १२३।

स्तोत्र लिखने में प्रतिभा का प्रदर्शन नहीं हो पाता ।......सम्भव है प्रारम्भक रामरक्षा स्तोत्र रामानन्द ने लिखा हो, बाद में उसका रूप विकृत हो गया हो। यह भी सम्भव है कि रामानन्द के शिष्यों में से किसी ने रामानन्द के नाम से ही यह ग्रन्थ लिख दिया हो। जो हो, यह रचना अत्यन्त साधारण है।"[१]

खोज-रिपोर्ट में प्राप्त ऊपर जिन प्रतियों का उल्लेख किया गया है वे भी एक दूसरे से पूर्णतया मिलती-जुलती नहीं प्रतीत होतीं। इन प्रतियों के प्रारम्भ और अंत के जो उद्धरण रिपोर्ट में दिए गए हैं तथा जो प्रति मेरे पास है उसके आधार पर यह निश्चित् रूप से कहा जा सकता है कि यह ग्रन्थ भाषा-शैली की दृष्टि से बड़ी ही निम्न-कोटि का है। नाथ और निरन्जन सम्प्रदायों का भी इस ग्रन्थ पर पूरा प्रभाव पड़ा हुआ प्रतीत होता है। निरन्जन, अलख, पिण्ड, निराकार, कमलदल, त्रिकुटी, आदि की चर्चा के साथ ही राम, सीता, लक्ष्मण और हनुमान् का भी स्मरण किया गया है। इस प्रकार विषय की दृष्टि से सिद्धान्त-पटल और रामरक्षा स्तोत्र में पर्याप्त समानता पाई जाती है। अतः यह अनुमान कर लेना असंगत न होगा कि रामानन्द स्वामी का योग से संबंध दिखलाने के लिये ही सिद्धान्त-पटल की भाँति इस ग्रंथ को भी स्वामी रामानन्द जी के नाम पर प्रचलित कर दिया गया होगा। इतनी निम्नकोटि की रचना स्वामी रामानन्द की कृति तो नहीं ही हो सकती। नीचे खोज-रिपोर्टों में दिए गए कुछ उद्धरण यहाँ भी उद्धृत कर दिये जाते हैं। प्रायः सभी प्रतियों में पर्याप्त पाठ-भिन्नता है—

१६०० की खोज-रिपोर्ट में प्राप्त प्रति :—

प्रारम्भ—श्री गणेशायनमः। अथ राम रक्षा लिषितम्। ओं संध्या-तारणी सर्वदोष निवारिणी। संध्याकरे विघ्न टरें पिंफ प्राण की रक्षा नाथ निरन्जन करे ध्यान धाम (?) मन पहुपै पंचहुताशनम् क्षमा जाप समाधि पूजा नमो देव निरन्जनम्॥ १॥

अन्त—गर्जंत पवन बाजन्त वेयरण शंख सब दले त्रिकुटी सारं। दास रामानन्द निजु तत्त्व विचारं। निजु तत्त्व ते होते ब्रह्मज्ञानी। श्री रामरक्षा दीयउ धरे प्राणी। राजद्वारे पथे घोरे संग्रामे शत्रुसंकटे। जाप लागा घोरे। श्री रामचन्द्र उचरेते लक्ष्मण जी सुनते जानकी सुनते। हनुमान् सुनते पापं न लिपन्ते।

१—हि० सा० आ० इ०—डा० वर्मा, पृ० सं० ४८१।

पुन्य ना हरन्ते। संध्याकाले प्रातःकाले जे नरा पठन्ते सुनते मोक्ष-फल पावते। इति रामरक्षा रामानन्द की।

१६०६-११ की खोज-रिपोर्ट में प्राप्त प्रति—

प्रारम्भ :—श्री गणेशायनमः। ओं अस्य श्री रामरक्षा स्तोत्र मंत्रस्य बीजमंत्रं मूलमंत्रं। ओं अखण्डमण्लाकारव्याप्ते विष्णु सर्वं चराचरं। तस्मै श्री गुरुभ्यो नमः परं गुरुभ्यो नमः परमात्मा गुरुभ्यो नमः ओं आदि देव आदि गुरुदेव परम गुरुदेव अनन्त गुरुदेव अलख गुरुदेव के चर्नारविन्दे नमस्तेतद्पददर्शण तस्मै श्री रामरक्षादद।

अन्त :—ओं बज्रआसन बज्रकेवार बज्र बाधौ रसौ द्वार जो बज्र पर मेलै घाव उलटी बज्र ताही को खाय। हृदय मेरे हरि बसै देखै देव अनन्त श्री रामचन्द्र रक्षा करै......आदि।

मेरे पास जो पुस्तक है उसका आदि इस प्रकार है :—ओं संध्यातारिनि सर्वदुःखनिवारिनि, संध्याटरे विघ्नहरे पिण्डप्राण की रक्षा श्री रामनिरन्जन करें। ज्ञानदिप मनपुष्प पंचइन्द्रि हुता क्षेमा जाप समाधि पुजा, ओं नमो देव निरन्जनम्।

अन्त—गाजन्ते गगण बाजन्ते मधुर शंख सब्द धुन त्रीकुट सारा। श्री रामानन्द निज तत्व विचारा। ब्रह्म चिन्हते सोई ब्रह्मज्ञानी। आ श्री रामरक्षा दिये उर धरे प्रानी। राज द्वारे पथे घोरे संग्रामे सत्रु संकटे। श्री रामरक्षा स्तोत्र मंत्र श्री रामचन्द्र उच्चरन्ते, श्रीलक्ष्मणकुमार सुनन्ते। बीजमंत्र जपते। श्रीसीता सुनते। श्री हनुमान सुनन्ते, प्रानी लागे रहन्ते। ते नरा मोक्ष फल पावन्ते। इति श्री रामानन्द स्वामी कृत श्री रामरक्षा स्तोत्र मंत्र श्री बेट द्वारका मंदिर श्री रामझरोखा निवासीना श्री मद्भगवन्नारायण वंशोद्भव वैष्णव श्री महन्तो सीयाराम दासेन यथा शक्ति संशोधितं श्री द्वारकानाथ स्तुति, श्री द्वारका माहात्म्यं इदम् पुस्तकं समाप्तिमगमत्।

प्रायः यही भाषा-शैली अन्य प्राप्त प्रतियों की भी है, अतः अन्य उदाहरण देना अनावश्यक प्रतीत होता है।

योगचिन्तामणि—योगचिन्तामणि की सूचना पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' नामक ग्रन्थ में दी है। उन्होंने लिखा हैः— 'रामानन्द स्वामी और योग का सम्बन्ध दिखाने के लिये स्वामी रामानन्द के नाम से चलाये हुए ऐसे दो रद्दी ग्रन्थ हमारे पास हैं—एक का नाम है योग-चिन्ता-मणि, दूसरे का नाम है रामरक्षा स्तोत्र।'[१] आगे शुक्ल जी ने इस ग्रन्थ से एक पद उद्धृत भी किया है।

१—हिन्दी साहित्य का इतिहास—पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ १२२।

विक़ट कटक रे भाई । काया चढ़ा न जाई ।
जहँ नाद विन्दु का हाथी । सतगुरु ले चले साथी ॥
जहाँ है अष्टदल कमल फूला । हंसा सरोवर में भूला ॥
शब्द तो हिरदय बसे, शब्द नयनों बसे, शब्द की महिमा चार वेद गाई ॥
कहै गुरु रामानन्द जी, सतगुर दया करिमिलिया, सत्य का शब्द सुनु रे भाई ॥
सुरत नगर का सयल । जिसमें है आतमा का महल ॥

उपर्युक्त उद्धरण में 'कहै गुरु रामानन्द जी' पद से स्पष्ट है कि यह रामानन्द स्वामी की रचना नहीं है। भाषा-शैली भी बड़ी ही अप्रौढ़ है। रामानन्द जी के नाम पर प्रचलित हिन्दी भाषा में लिखे गए पदों (हनुमान् जी की स्तुति या अन्य पद) की भाषा-शैली बड़ी ही गँठी हुई एवं मंजी सी है। इस दृष्टि से भी 'योग-चिन्तामणि' रामानन्द स्वामी जी की रचना नहीं प्रतीत होती। रामानन्द-सम्प्रदाय के विद्वानों ने इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में न तो कोई सूचना ही दी है और न इसे स्वामी जी कृत रचनाओं की सूची में परिगणित ही किया है। अयोध्या के लगभग सभी प्रमुख रामानन्दी विद्वानों से मैंने पूछ-ताछ की, परन्तु वे इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में मुझे कोई भी सूचना नहीं दे सके। ज्ञात नहीं शुक्ल जी ने किस सूत्र से इस ग्रन्थ का संचय कर लिया था। जो भी हो, इतना तो निर्विवाद है कि यह रचना वैष्णव रामानन्द की नहीं है, चाहे और किसी रामानन्द की हो तो हो। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार रामानन्दी सम्प्रदाय की तपसी-शाखा में सिद्धान्त-पटल का प्रचार कर दिया गया है, उसी प्रकार 'रामरक्षा स्तोत्र' और 'योगचिन्तामणि' भी स्वामी रामानन्द जी के गले मढ़ दिए गए हैं। सम्प्रदायों के इतिहास में ऐसी घटनाएं असम्भव नहीं होती। साम्प्रदायिक विचार-धारा का विवेचन करनेवाले 'वैष्णव-धर्मरत्नाकर' के विद्वान् रामानन्दी लेखक पं० गोपालदास ने भी इस ग्रन्थ का कोई उल्लेख नहीं किया है। ऐसी परिस्थिति में इस ग्रन्थ को स्वामी जी कृत नहीं ही माना जा सकता।

श्री गुरु रामानन्द कबीर जी का ज्ञान तिलक—खोज रिपोर्ट सन् १९१७-१८-१९ ई० में इस ग्रन्थ का उल्लेख किया गया है। श्री सरस्वती-भण्डार, लक्ष्मण किला, अयोध्या में इसकी एक प्रति सुरक्षित है। ग्रन्थ के लेखक कदाचित् कबीर जी हैं। सभा की एक रिपोर्ट में इस ग्रन्थ से जो उद्ध-

रख दिए गए हैं उनसे यह स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ स्वामी रामानन्द-कृत नहीं है। नीचे का उद्धरण इसके प्रमाण में दिया जा सकता है।

"गुरु रामानन्द जी के वदन पर सदके करूँ सरीरा। अब की बार उबार लेहु स्वामी कम धुज दास कबीर।" या। "इति श्री गुरु रामानन्द कबीर जी का ज्ञान तिलक सम्पूर्णम्।" लक्ष्मण किला के पुस्तकालय में मुझे यह ग्रन्थ नहीं मिला।

श्री रामाराधनम् (संस्कृत) तथा 'वेदान्त-विचार' (भाषा)—लक्ष्मण किला, अयोध्या के पुस्तकालय की सूची में ये दोनों ग्रन्थ मुझे स्वामी रामानन्द जी के नाम से मिले हैं। पहले में कदाचित् 'वैष्णवमताब्ज-भास्कर' तथा 'श्री रामार्चनपद्धति' आदि के आधार पर भगवान् रामचन्द्र की स्तुति की गई है और अन्त में कदाचित् संकलनकर्ता ने अपनी बनाई हुई स्तुति भी जोड़ दी है। इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में मुझे किला के महन्थ से कोई भी सूचना नहीं मिल सकी। इस समय यह ग्रन्थ पुस्तकालय में है भी नहीं !

वेदान्त विचार—किले के पुस्तकालय की पुस्तक-सूची में इस ग्रन्थ के लेखक स्वामी रामानन्द कहे गए हैं, पर प्रयास करने पर भी मुझे यह ग्रन्थ नहीं मिल सका। इसे भी किसी ने वहाँ से हटा दिया है। अतः इसके सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। हो सकता है, ये स्वामी रामानन्द वैष्णवाचार्य स्वामी रामानन्द से भिन्न हों, क्योंकि रामानन्द-सम्प्रदाय में इस वेदान्त भाष्य की कोई चर्चा नहीं पाई जाती।

रामानन्द आदेश—'हिन्दी-पुस्तक-साहित्य[१]' में डा० माताप्रसाद गुप्त ने सिद्धान्त-पटल के साथ ही इस ग्रन्थ को भी स्वामी रामानन्द कृत माना है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन, अहमदाबाद से मोहनदास आत्माराम ने कराया था। यह ग्रन्थ अब अप्राप्य है। अनेक प्रयास करने पर भी मुझे इसकी कोई प्रति प्राप्त न हो सकी। अतः इसके सम्बन्ध में कुछ भी निश्चित् रूप से नहीं कहा जा सकता है। सम्भवतः इसमें स्वामी रामानन्द जी के कुछ उपदेशों का संग्रह हो।

राममंत्र जोग ग्रन्थ—पं० बलदेव उपाध्याय के अनुसार यह २१ दोहा-चौपाइयों का एक छोटा सा पद है, जिसमें राम मंत्र के श्रवण तथा जप का सुन्दर विधान बतलाया गया है। इसके अन्त में कहा गया है—

---

१. डॉ० मा० प्र० गुप्त-हिन्दी पुस्तक साहित्य पृ० ३४१,५६३।

जैसे पांणी लूंण मिलावा
　　अैसी धुनि मैं सुरति समावा ॥ १६ ॥
राममंत्र अैसी विधि षोजै
　　जो कोई षोजै राम।
सत गुरु के परताप तैं,
　　रामानन्द जी हम पाया विसराम ॥ २० ॥

(यह 'सेवादास की बानी' में संगृहीत है। हस्तलेख नं० ८७३, पृ० ६३३, सं० १६५६)

राम अष्टक—यह अष्टक काशी-नागरी-प्रचारिणी, सभा के पुस्तकालय में 'शब्द सागर' ग्रन्थ में (हस्तलेख ६५१, लि० का० १८६७, ना० प्र० सभा संग्रह) संगृहीत है। ८ पदों में राम की स्तुति की गई है। छन्द के अन्त में निम्नलिखित पद मिलता है 'श्री राम जीव पूरन ब्रह्म है'—छन्दान्त में आता है—

राम अष्टक पढ़त निसुदिन
　　सत्यलोक सोग छीतं।
रामानन्द अवतार अवधु
　　श्री राम जीव पूरन ब्रह्म है ॥

ग्यानलीला—१३ छन्दों में इस पद में भगवान् के गुण गाने, तथा भक्ति करने का विशेष उपदेश दिया गया है—

है हरि बिना कूंणा रखवारो। चित दै सुमिरौ सिरजन हारौ ॥
संकट ते हरि लेत उबारी। निसदिन सुमिरो नाम मुरारी ॥
नांथ न केवल सबसे न्यारा। रटतअघट घट होइ उजारा ॥
रामानन्द यूं कहै समुझाई। हर सुमर्‍या जमलोक न जाई ॥
　　　　(हस्तलेख नं० ७४६ सभा-संग्रह)

उपर्युक्त ग्रन्थों की समीक्षा—इन तीन ग्रन्थों की सूचना 'भागवत संप्रदाय'[१] में प० बलदेव उपाध्याय जो ने दी है। उन्होंने इन सभी पदों को स्वामी रामानन्द कृत स्वीकार कर लिया है। ये ग्रन्थ नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी में सुरक्षित हैं। जहाँ तक उपलब्ध सामग्री का प्रश्न है, रामानन्द के नाम पर प्रचलित हिन्दी ग्रन्थ प्रायः अप्रामाणिक ही हैं। अभी तक जो भी हिन्दी ग्रन्थ स्वामी

१—'भागवत-सम्प्रदाय', बलदेव उपाध्याय, पृ० २७९।

ी के नाम पर उपलब्ध हुए हैं, उनकी भाषा-शैली बड़ी ही निम्नकोटि की है। छन्द-नियम-हीन तो वे हैं ही। श्रीराम रक्षा स्तोत्र, योगचिन्तामणि, सिद्धान्त-पटल भी तो इसी कोटि की रचनाएँ हैं, रामानन्द-संप्रदाय में स्वामी जी के हिन्दी-ग्रन्थों का प्रचलन एक दम नहीं है। अतः जब तक उन ग्रन्थों की एकाधिक हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध न हो जायँ अथवा उनकी प्राचीनता निर्विवाद सिद्ध न हो जाय, तब तक उनके सम्बन्ध में निश्चित् मत व्यक्त कर देना भ्रान्ति-हीन नहीं हो सकता।

रामानन्द जी के कुछ फुटकल पद

हनुमान-स्तुति

आरति कीजै हनुमान लला की। दुष्ट दलन रघुनाथ कला की॥
जाके बल भर ते महि काँपै। रोगसोग जाकी सिमा न बाँधै॥
अन्जनी सुत महा बल दायक। साधु संत पर सदा सहायक॥
बाएँ भुजा सब असुर संघारी। दाहिन भुजा सब संत उधारी॥
लछिमन धरति में मूर्छि पर्‌यो। पैठि पताल जमकातर तोर्‌यो॥
आनि सजीवन प्रान उबार्‌यो। मही सबन कै भुजा उपार्‌यो॥
गाढ़ परे कपि सुमिरौं तोहीं। होहु दयाल देहु जस मोहीं॥
लंका कोट समुन्दर खाई। जात पवन सुत बार न लाई॥
लंक प्रजारि असुर सब मार्‌यो। राजा राम कै काज सवाँर्‌यो॥
घंटा ताल झालरी बाजै। जगमग जोति अवध पुर छाजै॥
जो हनुमान जी की आरती गावै। बसि बैकुंठ अमर पद पावै॥
लंक विधंस कियो रघुराई। रामानन्द आरती गाई॥
सुर नर मुनि सब करहिं आरती। जै जै जै हनुमान लाल की॥

इस पद को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डा० श्यामसुन्दर दास, सर ग्रियर्सन, डा० रामकुमार वर्मा आदि सभी विद्वान् रामानन्द कृत ही मानते हैं। पंच गंगा घाट, काशी में मैंने भी एक वृद्धा के मुख से यही पद कुछ हेर-फेर के साथ सुना था। अयोध्या में इस पद का प्रचार मुझे नहीं दिखाई पड़ा। अतः इसकी प्रामाणिकता नितान्त असंदिग्ध नहीं है।

आदि ग्रन्थ में प्राप्त पद

कहाँ जाइए हो घरि लागो रंग। मेरो चंचल मन भयो अपंग॥
जहाँ जाइए तहँ जल पषान। पूरि रहे हरि सब समान॥

वेद स्मृति सब मेल्हे. जोइ। जहाँ जाइए हरि इहाँ न होइ॥
एक बार मन भयो उमंग। घसि चोत्रा चन्दन चारि अंग॥
पूजत चाली छाइं छाइं। सो ब्रह्म बतायो गुरु आप मांइं॥
सतगुर मैं बलिहारी तोर। सकल विकल भ्रम जारे मोर॥
रामानन्द रमै एक ब्रह्म। गुर कै एक सबद कोटि कोटि क्रम्म॥

उपर्युक्त पद को मेकालिफ़[१] ने स्वामी रामानन्द कृत ही माना है और उनका अनुसरण करके ही उनके बाद के प्रायः सभी विद्वानों ने उस पद को स्वामी रामानन्द कृत मान लिया है। प्रो० रानडे ने हिन्दी रहस्यवाद पर अपने जो लेख इधर लीडर आदि समाचार-पत्रों के पत्रिका-अंग (मैगज़ीन सेक्शन) में छपवाये हैं, उनमें भी उन्होंने रामानन्द के नाम पर प्रचलित इस पद को उनकी प्रामाणिक रचना मान लिया है। इस मत के समर्थन में कहा यह जाता है कि 'आदि ग्रन्थ' में संग्रहीत होने से इस पद में प्रायः परिवर्तन कम ही हुए होंगे और फिर आदि ग्रंथ में इन पदों के संग्रहकर्ता ने किसी सामान्य व्यक्ति के पदों का संग्रह नहीं किया है। जिन भक्तों के पदों का इस ग्रन्थ में संकलन है, वे सभी उच्चकोटि के थे। अतः ये रामानन्द वैष्णव भक्त रामानन्द ही होंगे, दूसरे नहीं। इसी विश्वास पर मेकालिफ़ ने अपने 'दि सिख रिलीजन' में रामानन्द स्वामी का जीवन-चरित भी लिख दिया है, किन्तु जिस प्रकार सूरदास मदनमोहन और कृष्ण भक्त (बल्लभानुयायी) सूरदास में मेकालिफ़ ने कोई अन्तर नहीं किया, वैसे ही यह सम्भव है कि उन्होंने उपर्युक्त पद के लेखक को वैष्णव भक्त रामानन्द ही समझ लिया हो। कम-से-कम आचार्य शुक्ल का तो यह दृढ़ मत है, "इस उद्धरण से स्पष्ट है कि ग्रन्थ साहब से उद्धृत दोनों पद भी वैष्णव भक्त रामानन्द के नहीं हैं; और किसी रामानन्द के हों तो हो सकते हैं।"[२] शुक्ल जी के मत में अधिक सार प्रतीत होता है। रामानन्दी-सम्प्रदाय में वस्तुतः अधिकांश वर्ग रामानन्द को विशुद्ध वैष्णव भक्त मानता है, केवल तपसी-शाखा के भक्त उन्हें योग-मत के भी प्रवर्तक मानते हैं। किन्तु हम ऊपर देख चुके हैं कि इस शाखा में जो भी ग्रन्थ स्वामी रामानन्द जी के नाम से पाए गए हैं, वे स्वामी रामानन्द जी की प्रामाणिक कृतियाँ नहीं हैं। अतः यह बहुत सम्भव है कि ग्रन्थ साहब के निर्माण-काल तक रामानन्द के नाम पर ऐसे पद भी चल पड़े हों, जिनमें उन्हें 'घट के भीतर' ब्रह्म के दर्शन करने वाले के रूप में वर्णित

१—दि सिख रिलीजन-वा० ६, पृष्ठ १०५।
२—हिन्दी साहित्य का इतिहास-रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ११९-२०।

किया गया है। ग्रन्थ-साहब विशेष कर निर्गुण-भावना से पूर्ण पदों का ही संकलन है, अतः यह अनुमान और भी दृढ़ हो जाता है। मुझे आचार्य शुक्ल जी का मत अधिक समीचीन लगता है, क्योंकि जिस प्रकार रामानन्द-सम्प्रदायान्तर्गत 'रसिक' (शृंगारी) भक्त रामानन्द स्वामी को शृंगारी ही मानते हैं (जीवाराम कृत रसिक प्रकाश भक्तमाल), उसी प्रकार 'तपसी' शाखा वाले रामानन्दी साधु स्वामी जी को पूर्ण योगी के रूप में ही स्वीकार करते हैं। प्रचलित परम्परा एवं 'श्री वैष्णवमताब्जभास्कर' से स्पष्ट है कि रामानन्द जो न तो शृंगारी ही थे और न नाथपंथ से प्रभावित योगी। उनकी भक्ति विशुद्ध दास्यभाव की थी। फिर आधुनिक रामानन्दी-सम्प्रदाय में रामानन्द के नाम से इस पद का कोई नाम तक नहीं जानता, ऐसा मैं अयोध्या के रामानन्दी-सम्प्रदाय के निकट सम्पर्क में आकर ही कह रहा हूँ, बल्कि मै तो यहाँ तक अनुभव करता हूँ कि अवध में रामानन्द की केवल संस्कृत भाषा म लिखी गई रचनाएँ ही प्रचलित हैं, हिन्दी भाषा में उनके पदों का कोई संकलन सुनने तक को नहीं मिला।

रज्जब दास के सर्वांगी ग्रन्थ में प्राप्त पद[1]

हरिबिनु जन्म वृथा खोयो रे।
कहा भयो अति मान बड़ाई धन मद अंध मति सोयो रे॥
अति उत्तंग तरु देखि सुहायो सैवल कुसुम सूवा सेयो रे।
सोई फल पुत्र कलत्र विषै सुष अन्ति सीस धुनि-धुनि रोयो रे॥
सुमिरन भजन साध की संगति अंतरि मन बैल न धोयो रे।
रामानन्द रतन जम त्रासै श्री पति पद काहे न जोयो रे॥

डा० बर्थ्वाल ने इस पद को स्वामी रामानन्द जी कृत ही माना है। उनके अनुसार इस पद में गमानन्द जी ने 'निवृत्ति-मार्ग का पूर्ण उपदेश दिया है।'[2]

शिव-रामाष्टक[3]

शिव हरे शिवराज सखे प्रभो, त्रिविध ताप निवारण हे प्रभो।
अज महेश्वर यादव पाहि मां, शिव हरे विजयं कुरु मे वरम्॥ १॥
कमललोचन राम दयानिधे, हरगुरो गजरक्षक गोपते।
शिवतनोभव शंकर पाहिमां, शिव हरे विजयं कुरु मे वरम्॥ २॥

१—हि० का० नि० स०, पृ० ३९।
२—वही, पृ० ३९।
३—साहित्य पत्रिका, सं० १९७९, श्री बिन्दु ब्रह्मचारी द्वारा प्रकाशित पद।

स्वजन रन्जन मंगल मंदिरं, भजति ते पुरुषं परमं पदम्।
भवति तस्य सुखं परमाद्भुतं, शिव हरे.................वरम्॥ ३॥
जय युधिष्ठिरवल्लभभूपते, जय जयार्जित पुण्य पयोनिधे।
जय कृपामय कृष्ण नमोऽस्तुते, शिव हरे.................वरम्॥ ४॥
भव विमोचन माधव मापते, सुकवि मानस हंस शिवा रते।
जनकजारत राघव रक्ष मां, शिव हरे.................वरम्॥ ५॥
अवनि मण्डल मंगल मापते, जलद सुन्दर राम रमापते।
निगम कीर्ति गुणार्णव गोपते, शिव हरे...............वरम्॥ ६॥
पतित पावन नाममयी लता, तवयशो विमलं परिगीयते।
तदपि माधव माम् किमुपेक्षसे, शिव हरे...............वरम्॥ ७॥
अमरतापर देव रमापते, विजयस्तव नाम घनोपमा।
मयि कथं करुणार्णव जायते, शिव हरे...............वरम्॥ ८॥
हनुमतः प्रिय चाप करः प्रभो, सुरसरिधृतशेखर हे गुरो।
मम विभो किमु विस्मरणं कृतं, शिव हरे विजयं कुरु मे वरम्॥ ९॥
नरहरे रति रंजन सुन्दरं, पठति यः शिवराम कृत स्तवम्॥
विशति रामरमा चरणाम्बुजे, शिव हरे विजयं कुरु मे वरम्॥ १०॥

प्रातरुत्थाययोभक्त्यापठेतेकाममानसः।
विजयोजायते तस्य विष्णुमाराध्यमाप्नुयात्॥

श्री बिन्दु ब्रह्मचारी ने उपर्युक्त पद को स्वामी रामानन्द कृत माना है। रामानन्द जी की कोई दूसरी इस प्रकार की रचना उपलब्ध नहीं होती, जिसमें भगवान् शंकर की इतनी प्रशंसा की गई हो और उनको राम के समान कहा गया हो। अतः निश्चित् आधार के अभाव में इसे प्रामाणिक मान लेना ठीक नहीं।

अध्यात्म रामायण—पण्डित रघुवर मिट्ठूलाल शास्त्री, एम० ए०, एम० ओ० एल०, साहित्याचार्य, वेदान्ततीर्थ ने इस ग्रन्थ को पुष्कल तर्क से स्वामी रामानन्द कृत ही सिद्ध करने का प्रयास किया है।[१] शास्त्री जी के तर्कों का आधार 'भविष्य पुराण' के प्रतिसर्ग पर्व का वह उल्लेख है, जिसके अनुसार काशी के किसी शिवोपासक रामशर्मन् को शिवरात्रि के दिन प्रसन्न होकर शिव

१—दि आथरशिप आव् अध्यात्म रामायण-प्रो० रघुवर मिट्ठूलाल शास्त्री, गंगानाथ झा रिसर्च इन्स्टीट्यूट जर्नल, वा० १, पार्ट २, फरवरी १९४४।

भगवान् ने राम-लक्ष्मण का ध्यान और बलभद्र की पूजा वरदान स्वरूप दी। भक्त 'रामानन्द' हो गया और द्वादश वर्षीय कृष्ण चैतन्य के पास जाकर उनके आदेश से उसने 'अध्यात्म रामायण' की रचना की।[१] इससे शास्त्री जी अनुमान करते हैं कि शैव धर्म का परित्याग कर वैष्णव धर्म अपना लेने के पश्चात् तथा अपने रामानन्दीय वैष्णव सम्प्रदाय की स्थापना करने के पूर्व काशी के रामानन्द ने 'अध्यात्म रामायण' की रचना की थी। कृष्ण चैतन्य के सम्पर्क में उनके आने की कथा केवल प्रतिसर्ग पर्व के लेखक का आविष्कार है, क्योंकि इस सर्ग में स्थान-स्थान पर उसने कृष्ण चैतन्य के महत्व को बढ़ाने की चेष्टा की है। अपने इस अनुमान के सम्बन्ध में शास्त्री जी ने निम्नलिखित तर्क दिए हैं—(१) 'अध्यात्म रामायण' सामान्यतया ब्रह्माण्ड पुराण का एक अंग एवं परम्परा से व्यास की रचना माना जाता है। किन्तु न तो 'अध्यात्म रामायण' से युक्त इस पुराण की कोई हस्तलिखित प्रति ही प्राप्त हुई है और न तो इसकी प्रकाशित प्रति में ही 'अध्यात्म-रामायण' अंगस्वरूप प्राप्त होता है। नारदीय पुराण ने भी इस प्रकार का कोई संकेत नहीं किया है। पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र ने अध्यात्म-रामायण को उपपुराण एवं तुलनात्मक दृष्टि से नवीन रचना कहा है। डा० भण्डारकर ने भी मराठी सन्त एकनाथ के साक्ष्य पर इसे एक आधुनिक रचना (१४०० ई० से-१६०० ई० के बीच) माना है और लाला बैजनाथ ने भी इसे १४ वीं शताब्दी की रचना के रूप में स्वीकार किया है, जब कि तन्त्रों का पूरा प्रचार हो गया था।

२—'भविष्य पुराण' के प्रतिसर्ग पर्व के अनुसार इस ग्रन्थ के लेखक काशी के कोई रामशर्मन् थे, जो पहले शैव थे किन्तु बाद में वैष्णव हो गए। 'भविष्य पुराण' की यह सूचना विश्वसनीय है, क्योंकि उसने यह भी सूचना दी थी कि श्री कृष्ण जन्म-खंड (ब्रह्म वैवर्त्त पुराण का एक अंग) के लेखक रूप गोस्वामी हैं, न कि व्यास और आधुनिक अनुसंधानों ने उसकी इस सूचना का समर्थन भी किया है। शास्त्री जी के अनुसार 'भविष्य पुराण' द्वारा उल्लिखित रामशर्मन् प्रसिद्ध वैष्णव भक्त रामानन्द ही थे। कृष्ण चैतन्य के शिष्य रामानन्द (राय) उड़िया कृष्ण भक्त थे, काशी के रामानन्द नहीं। रामानन्द राय के अतिरिक्त ६ अन्य रामानन्द नाम के व्यक्तियों का उल्लेख टी० आफ्रेक्ट[२] ने किया है, किन्तु 'भविष्यपुराण' में रामशर्मन् के विषय में दिए गए अन्य उल्लेखों तथा प्रमुख

१—भविष्य पुराण, चतुर्थखण्ड, १६ अध्याय, श्लोक २१ से ३२ तक।
२—कैटालोगोरस कैटालोगोरम, पृ० ५२०-२१, टी० आफ्रेक्ट।

वैष्णव आचार्य रामानन्द के जीवन पर दृष्टि डालते हुए हमें अन्य रामानन्द को इस ग्रन्थ का प्रणेता नहीं स्वीकार करना चाहिए। अपनी प्रमुख विशेषताओं के कारण वैष्णव आचार्य रामानन्द स्वामी ही इस ग्रन्थ के प्रणेता हो सकते हैं, अन्य व्यक्ति नहीं। इस मत का समर्थन करने के लिये शास्त्री जी ने दो अनुमान प्रस्तुत किए हैं:—एक तो यह कि 'भविष्य पुराण' के उल्लेखों तथा अन्य विद्वानों के मत से प्रसिद्ध वैष्णव आचार्य रामानन्द का सम्बन्ध काशी से ही था और दूसरा यह कि रामानन्द ने अपनी रामोपासना में शांकर-अद्वैत और विशिष्टाद्वैत का पूर्ण व्यावहारिक सामंजस्य किया है। अपने इन अनुमानों के समर्थन में शास्त्री जी ने निम्नलिखित प्रमाण दिए हैं:—१ 'भविष्य पुराण' के प्रतिसर्ग पर्व के अनुसार सूर्य के अंश से काशी में रामानन्द का जन्म हुआ। उनके पिता कान्यकुब्ज ब्राह्मण देवल थे। रामानन्द बाल्यावस्था से ही ज्ञानी थे तथा राम की उपासना किया करते थे। अतः माता-पिता द्वारा परित्यक्त होकर वे राघव की शरण आए। फिर चतुर्दश कलायुक्त भगवान् राम ने सीता सहित उनके हृदय में अपना निवास-स्थान किया। यह रामानन्द वास्तव में वैष्णवाचार्य रामानन्द ही थे। इसी प्रतिसर्ग पर्व के अनुसार शंकराचार्य से पराजित होकर मानदास चमार का पुत्र रैदास रामानन्द के पास आकर उनका शिष्य हो गया; त्रिलोचन, नामदेव तथा नरसी मेहता का काशी आकर रामानन्द का शिष्य हो जाना भी इस पर्व में कहा गया है। इसी प्रकार रामानन्द को रंकन, सधना के गुरु कबीर, पीपा, तथा नानक का गुरु कहा गया है और साथ ही यह भी कहा गया है कि रामानन्द के एक शिष्य ने अयोध्या में बलात् म्लेच्छ बनाए गए हिन्दुओं को फिर से वैष्णव बनाने के लिए एक यन्त्र स्थापित किया था। ये वैष्णव संयोगी कहे गए। इसी प्रतिसर्ग पर्व में यह भी कहा गया है कि मुकुन्द ब्रह्मचारी के २० शिष्य अग्नि में जल जाने के बाद विभिन्न महापुरुषों के रूप में अवतरित हुए। इनमें श्रीधर, शम्भु, वरेण्य, मधुव्रतिन् और विमल क्रमशः तुलसी शर्मा, हरिप्रिया, अग्रभुक्, कीलक तथा दिवाकर के रूप में अवतरित होकर रामानन्द-सम्प्रदाय में दीक्षित हो गए।

इसी प्रतिसर्ग पर्व से यह भी ज्ञात होता है कि रामानन्द शांकर-दर्शन की ओर भी झुके थे। इस सम्बन्ध में दो उल्लेख महत्वपूर्ण हैं:—

कः—एक के अनुसार रामशर्मन् रामानुज के बड़े भाई और दाक्षिणात्य आचार्य शर्मन् के पुत्र थे। ये पतंजलि के अनुयायी थे। तीर्थयात्रा के सम्बन्ध में वे एक बार काशी आए और वहाँ उन्होंने शंकराचार्य से शास्त्रार्थ किया, किन्तु

पराजित एवं अपमानित होकर अपने घर लौट गए। फिर शास्त्रों में निष्णात रामानुज ने शंकराचार्य को पराजित कर भाई का बदला चुकाया। इस कथा से शास्त्री जी यह निष्कर्ष निकालते हैं कि यह मनगढ़न्त कथा केवल इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि कृष्णभक्ति ने उस शांकर अद्वैत पर भी विजय पा ली थी जिसके आगे प्रसिद्ध वैष्णव भक्त रामानन्द को भी, जिनकी गुरुपरम्परा उनके अनुयायियों द्वारा रामानुज की अपेक्षा अधिक प्राचीन कही जाती है और जिनके सभी आचार्य दाक्षिणात्य थे, झुक जाना पड़ा। ख—दूसरे उल्लेख के अनुसार मानदास के पुत्र रैदास ने काशी आकर रामभक्त कबीर को परास्त किया, किन्तु शंकराचार्य से वादविवाद में परास्त होकर वह रामानन्द का शिष्य हो गया। शास्त्री जी के अनुसार इस कथा से भी रामानन्द का शांकर अद्वैत से सम्बन्ध ज्ञात होता है।

२—'भविष्य पुराण' तथा आधुनिक विद्वानों में केवल मैकालिफ़ और फ़र्क़ुहर को छोड़ कर अन्य सभी विद्वान् अगस्त्य-संहिता के साक्ष्य पर रामानन्द का जन्म प्रयाग में ही मानते हैं। डा० बर्थ्वाल तथा 'प्रयाग-माहात्म्य' के लेखक श्री शालिग्राम श्रीवास्तव भी इसी मत का समर्थन करते हैं। शास्त्री जी ने अपने पक्ष के समर्थन में डा० बर्थ्वाल के उस मत को भी उद्धृत किया है, जिसके अनुसार रामानन्द ने योग और भक्ति, अद्वैत और विशिष्टाद्वैत का अपने मत में समन्वय किया था। इन साक्ष्यों के आधार पर शास्त्री जी का कथन है कि 'अध्यात्म-रामायण' के लेखक वैष्णवाचार्य रामानन्द ही थे जिन्हें तृतीय प्रतिसर्ग-पर्व में रामशर्मन् और रामानन्द दोनों ही नामों से अभिहित किया गया है तथा जिन्हें काशी निवासी कहने के साथ ही दाक्षिणात्य भी कहा गया है।

३—रामानन्द-सम्प्रदाय में रामतापन्युपनिषद् का पठन-पाठन अधिक होता रहा है। वेबर के अनुसार रामानन्द जी इस उपनिषद् से भी प्रभावित थे। रामतापनी और 'अध्यात्म रामायण' में बहुत अधिक निकट का सम्पर्क परिलक्षित होता है। कदाचित् ज्यों-ज्यों समय बीतता गया रामानन्दी सम्प्रदाय में 'अध्यात्म-रामायण' का पठन-पाठन उसके अधिक अद्वैतोन्मुख होने के कारण कम होता गया। इस प्रकार रामतापनी और 'अध्यात्म-रामायण' की पारस्परिक समानता भी 'अध्यात्म रामायण' को रामानन्द की कृति सिद्ध करती है।

४—'अध्यात्म रामायण' में अद्वैत मत के अतिरिक्त तान्त्रिक एवं यौगिक प्रभाव भी परिलक्षित होता है। गदाधर द्वारा लिखित हस्तलिखित ग्रन्थ 'संप्रदाय-प्रदीप' से हमें विदित होता है कि तान्त्रिक प्रणाली से विष्णु की उपासना करने

वाले रामानन्द से वल्लभाचार्य ने थाणेश्वर में भेंट की। रामानन्द ने तो कृष्ण-भक्ति नहीं अपनाई किन्तु उनके भाई शंकर और उनके शिष्य राणाव्यास वल्लभाचार्य के शिष्य हो गए। शास्त्री जी का अनुमान है कि यहाँ प्रसिद्ध वैष्णव भक्त रामानन्द का ही उल्लेख किया गया है और इससे यह सिद्ध हो जाता है कि रामानन्द पर तन्त्रों की प्रणाली का भी पूरा प्रभाव था।

५—आधुनिक रामानन्दी विद्वान् रामानुज की परम्परा से पृथक् जो अपनी (तथाकथित अग्रस्वामी कृत) गुरु-परम्परा देते हैं, उसमें कुछ नाम तो 'अध्यात्म रामायण' की दी हुई परम्परा से मिलते हैं और शेष में से ५ तो वही नाम हैं जो शंकराचार्य की गुरु-परम्परा में पाए जाते हैं। इनके आनन्दान्त नाम शंकर मत के आचार्यों की ही भाँति हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि रामानन्दी वैष्णव एक ओर तो शिव की पूजा करते तथा उनके प्रति उदार हैं और दूसरी ओर इससे यह भी सिद्ध होता है कि रामानन्दीय वैष्णवधर्म रामोपासना पर विशेष बल देने के लिये शांकरअद्वैत से उसी प्रकार उत्पन्न हुआ, जिस प्रकार कृष्णभक्ति पर बल देने के लिये श्रीधर, वोपदेव, हेमाद्रि, मधुसूदन सरस्वती आदि अद्वैत भक्तों की परम्परा चल पड़ी और यह भक्ति मोक्ष की ओर ले जाने वाले ज्ञान की सहायिका समझी गई। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये रामभक्तों के हितार्थ रामानन्द ने 'अध्यात्म रामायण' की रचना की थी। इसने रामभक्तों के लिये वही काम किया जो उपर्युक्त कृष्णभक्तों के लिए 'श्रीमद्भागवतमहापुराण' की रचना ने किया था। रामानन्द 'महाभागवत पुराण' से बहुत अधिक प्रभावित थे और उनके 'अध्यात्म रामायण' में ये प्रभाव पूर्णरूप से परिलक्षित होते हैं।

६—अन्तःसाक्ष्य के भी आधार पर, शास्त्री जी के मत से, 'अध्यात्म-रामायण' रामानन्द स्वामी की ही रचना प्रतीत होता है।

क—यद्यपि इस ग्रन्थ के वक्ता शिव और ब्रह्मा ने पार्वती और नारद को क्रमशः कैलाश और सत्यलोक में इसका उपदेश दिया था, किन्तु 'माहात्म्य सर्ग' में इस बात का संकेत किया गया है कि इस ग्रन्थ को वर्तमान रूप देने का श्रेय सुदूर भविष्य में किसी नर को ही होगा! इस मानव ने शिवपार्वती के सम्वाद के प्रारम्भ होने के पूर्व ही दो बार सीता पति राम को नमस्कार किया है। इसी ने प्रारम्भ के तीन श्लोकों में इस ग्रन्थ के महत्त्व का वर्णन किया है। इस मर्त्य लेखक ने ही छठें सर्ग के अन्त में शिव के मुख से कहलवाया है कि उन्होंने वेदों के सारअंश (अध्यात्म रामायण) का संक्षेप में पार्वती को श्रवण कराया है। पुनश्च इस लेखक ने अनेक स्थानों पर इस बात के भी उल्लेख

किए हैं कि इस ग्रन्थ के उपदेशों का एक विशेष अंश भगवान् राम और सीता के ही मुख से निःसृत हुआ है, जिससे पाठक इस ग्रन्थ को किसी मर्त्य की कृति न समझ लें, अथवा इन उपदेशों के पालन करने में संकोच न करें। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे स्पष्ट संकेत हैं, जिनसे यह विश्वास हो जाता है कि यह मर्त्य लेखक रामानन्द के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं था। तारक मंत्र (राम), शालिग्राम, अगस्त्यसंहिता, गुरु-भक्ति के उल्लेखों के साथ ही संकेत रूप में राघवानन्द और रामानन्द के भी नाम ले लिये गए हैं। एक स्थल पर कहा गया है कि महेश्वर ने राघव के आदेश से 'अध्यात्म रामायण' की रचना की। यहाँ राघव, राम और राघवानन्द स्वामी दोनों के अर्थ में आया है और महेश्वर काशी में राम मन्त्र प्रचारक, रामभक्त स्वयं रामानन्द के लिये आया है, 'रामानन्द' शब्द का अविभक्त रूप में एक बार, किन्तु विभक्त रूप में ८० बार इस ग्रन्थ में प्रयोग हुआ है। राम के साथ आनन्द का प्रयोग अन्य किसी भी रचना में नहीं मिलता। अतः यह रचना रामानन्द की ही है।

ख—रामानन्द-सम्प्रदाय के प्रभातकालीन नक्षत्र की भाँति महाकवि तुलसीदास ने 'अध्यात्म रामायण' का स्वच्छन्द उपयोग अपने रामचरितमानस महाकाव्य में किया है। रामानन्द ने सगुण-निर्गुण दोनों ही प्रकार की भक्ति का प्रचार किया था। तुलसीदास तथा आज के रामानन्दी साधु सगुण भक्ति के उपासक हैं और कबीर आदि निर्गुण भक्ति के उपासक थे। 'अध्यात्म रामायण' में इन दोनों ही प्रकार की उपासना-पद्धतियों पर बल दिया गया है।

ग—'अध्यात्म रामायण' में प्रयुक्त 'दीनार' शब्द के कारण लोग इस ग्रन्थ को बहुत प्राचीन काल की रचना कहते हैं, किन्तु इस शब्द का प्रयोग तो १२ वीं शताब्दी के क्षेमेन्द्र और कल्हण ने भी किया है। यही नहीं इस शब्द का प्रयोग १६-१७ वीं शताब्दी की रचना लोकप्रकाश (शास्त्री जी इसे क्षेमेन्द्र कृत नहीं मानते) में भी हुआ है। अतः अध्यात्म रामायण के १४ वीं शताब्दी के लेखक ने यदि दीनार शब्द का प्रयोग किया तो कोई आश्चर्य नहीं।

घ—देश-विदेश के पुस्तकालयों में सुरक्षित इस ग्रन्थ की जितनी भी हस्त-लिखित प्रतियाँ मिली हैं वे रामानन्द के समय से प्राचीन नहीं हैं, इसी प्रकार इसकी टीकाएँ भी इतनी प्राचीन नहीं मिलती, जिनके बल पर यह सिद्ध किया जा सके कि यह रचना १४ वीं शताब्दी की कृति है। रामवर्मन् की 'सेतु' नाम्नी टीका कदाचित् नागेश भट्ट के सहयोग से १८ वीं शताब्दी में लिखी गई थी।

शास्त्री जी का निष्कर्ष—संक्षेप में रामानन्द (प्रारम्भ में रामदत्त या

रामशर्मन्) कान्यकुब्ज ब्राह्मण देवल के पुत्र रूप में सन् १२९९ ई० में प्रयाग में उत्पन्न हुए थे। १२ वर्ष की आयु में वे काशी आकर अद्वैत वेदान्त तथा शैव मत और रामभक्ति के कर्मकाण्डों का अध्ययन करने लगे और अपने सम्प्रदाय की स्थापना करने के पूर्व उन्होंने अपनी समन्वय-भावना के अनुरूप 'अध्यात्म रामायण' की रचना की, जिसमें उन्होंने धर्म और दर्शन का समन्वय किया। इसी ग्रन्थ से प्रेरणा पाकर उनके सम्प्रदाय में सगुण और निर्गुण भक्ति की प्रणाली चल पड़ी।

शास्त्री जी के मत की आलोचना कः—शास्त्री जी ने 'भविष्य-पुराण' के तृतीय प्रतिसर्ग पर्व में वर्णित रामशर्मन् एवं प्रसिद्ध वैष्णव आचार्य रामानन्द को एक व्यक्ति मान कर ही अपने तर्क की दीवाल खड़ी की है और इस कार्य की सिद्धि के लिये उन्हें बड़ी खींचा-तानी भी करनी पड़ी है। वस्तुतः यदि 'प्रतिसर्ग पर्व' का ध्यान पूर्वक अवलोकन किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि रामशर्मन् और रामानन्द वस्तुतः दो भिन्न व्यक्ति थे। रामशर्मन् के विषय में इस पर्व में जो उल्लेख हुआ है, उसके आधार पर उनके जीवन के सम्बन्ध में हमें निम्नलिखित सूचना मिलती है :—

१—रामशर्मन् काशी के एक शिवोपासक भक्त थे। शिवरात्रि को शिव ने प्रसन्न होकर उन्हें राम लक्ष्मण का ध्यान और बलभद्र की पूजा वरदान स्वरूप दी थी। रामानन्द होकर वे कृष्णचैतन्य के पास आए और उनके आदेशों से उन्होंने 'अध्यात्म-रामायण' की रचना की। २—रामशर्मन् दाक्षिणात्य आचार्य शर्मन् के पुत्र और रामानुज के बड़े भाई थे। वे पतंजलि (योगी) के अनुयायी थे। काशी में उन्हें शंकराचार्य ने वाद-विवाद में परास्त किया था। लज्जित होकर जब वे अपने घर गए, तब उनके छोटे भाई (रामानुज) ने उत्तर आकर काशी में शंकराचार्य को प्रत्येक शास्त्र में परास्त किया।

दूसरी ओर रामानन्द के विषय में 'भविष्यपुराण' के इसी प्रतिसर्गपर्व में कहा गया है :—

१—वे सूर्य के अंश से काशी में कान्यकुब्ज ब्राह्मण देवल के पुत्र-रूप में उत्पन्न हुए थे। वे प्रारम्भ से ही ज्ञानी तथा रामभक्त थे। माता-पिता से त्यक्त होकर जब वे राघव की शरण गए, तब भगवान् राम ने अपनी चौदह कलाओं सहित सीता के साथ उनके हृदय में अपना निवास-स्थान बनाया।

२—इन्हीं रामानन्द के शिष्य रैदास, कबीर, नामदेव, त्रिलोचन, नरसी

मेहता आदि कहे गए हैं और इन्हीं के एक शिष्य ने अयोध्या में म्लेच्छ हो गए हिन्दुओं को फिर वैष्णव बनाया था।

३—इन्हीं रामानन्द जी के सम्प्रदाय में मुकुन्द ब्रह्मचारी के ५ शिष्य अपने दूसरे जन्म में तुलसीशर्मा, हरिप्रिया, अग्रभुक्, कीलक तथा दिवाकर नाम से दीक्षित हुए थे।

ऊपर के इस विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट है कि रामशर्मन् रामानन्द से एक भिन्न व्यक्ति थे। अतः 'अध्यात्म-रामायण' रामानन्द की रचना नहीं सिद्ध होती। फिर यह भी विचारणीय है कि द्वैतवादी चैतन्य ने अद्वैती 'अध्यात्म रामायण' की रचना ही करने का क्यों आदेश दिया?

खः—'भविष्य-पुराण' का उल्लेख ऐतिहासिकता की पूरी अवहेलना करता है, अतः वह अप्रामाणिक है, इसे हम पिछले द्वितीय अध्याय में सिद्ध कर चुके हैं।

ग—शास्त्री जी के अनुसार रामानन्द ने शांकर अद्वैत और विशिष्टाद्वैत का अपने में समन्वय किया था और वे तन्त्रों से भी प्रभावित थे। इस सम्बन्ध में शास्त्री जी ने जो तर्क दिए हैं वे बहुत अधिक प्रबल नहीं हैं:—(१) शंकराचार्य से पराजित आचार्य शर्मन् के पुत्र तथा रामानुज के बड़े भाई योगी रामशर्मन् को रामानन्द मानकर यह अनुमान करना कि वे शांकर अद्वैत के सामने झुक गए थे, नितान्त ही अप्रामाणिक है। न तो रामानन्द रामानुज के बड़े भाई ही थे और न शंकराचार्य के समकालीन। किसी भी उल्लेख का इस प्रकार खींच-तान कर अपने मत की पुष्टि के लिये मनमाना अर्थ लगा लेना प्रमाण-कोटि में नहीं हो आ सकता। 'भक्तमाल', 'अगस्त्यसंहिता' तथा रामानन्द-सम्प्रदाय की मान्यताओं के आधार पर तो यही निष्कर्ष निकलता है कि रामानन्द विशुद्ध वैष्णव भक्त थे, योग का प्रवेश तो उनके सम्प्रदाय में बहुत बाद को हुआ।

२—रामानन्द को अद्वैत से प्रभावित सिद्ध करने के लिये शास्त्री जी ने 'भविष्यपुराण' का एक दूसरा प्रमाण यह दिया है कि मानदास चमार के पुत्र रैदास ने काशी में रामभक्त कबीर को परास्त कर शंकराचार्य से शास्त्रार्थ किया और अन्त में उनसे पराजित होकर रामानन्द का वह शिष्य हो गया। इस उल्लेख की इतिहास-ज्ञान शून्यता पर यदि कोई विचार न भी किया जाय तो भी यह निष्कर्ष कैसे निकाला जाय कि रामानन्द शंकर के अद्वैत से प्रभावित थे? रामभक्त कबीर को परास्त करने तथा अद्वैत से पराजित होने वाले रैदास ने क्या रामभक्ति और अद्वैत का समन्वय रामानन्द में पाया था? यह अधिक सम्भव

है कि निर्गुण भक्त कबीर और अद्वैती शंकराचार्य से विभिन्न ही मार्ग रामानन्द का रहा हो। कम-से-कम परम्परा (रामानन्दी) तो इसी पक्ष में है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि रैदास पर कबीर का प्रभाव अधिक था। रामानन्द से तो उन्होंने रामभक्ति ही पाई थी। रामानन्द की सबसे बड़ी देन शंकर और रामानुज में समन्वय स्थापित करना नहीं थी, उनकी सबसे बड़ी देन तो इस बात में थी कि उन्होंने भक्ति का द्वार सभी जातियों एवं वर्णों के लिये उन्मुक्त कर दिया था। उनका 'श्री वैष्णवमताब्जभास्कर' ग्रंथ इसका सबसे बड़ा प्रमाण है।

३—रामानन्द पर तांत्रिक प्रभाव सिद्ध करने के लिये शास्त्री जी ने गदाधर द्वारा लिखित हस्तलिखित ग्रंथ 'सम्प्रदायप्रदीप' का प्रमाण प्रस्तुत किया है, जिसके अनुसार थाणेश्वर में तांत्रिक प्रणाली पर विष्णु के उपासक शंकर के भाई रामानन्द से बल्लभाचार्य जी की भेंट हुई थी। शास्त्री जी ने यहाँ भी एक संकेतमात्र को प्रमाण कोटि में रख लिया है। उपलब्ध सामग्री के आधार पर यह एक सिद्ध सत्य है कि रामानन्द का स्थायी निवास स्थान पंच गंगा घाट ही था। अपनी दिग्विजय-यात्रा के संबंध में अवश्य ही वे भारत-भ्रमण को निकले थे। फिर इस भ्रमण का एक तो पूरा उल्लेख नहीं मिलता और यदि वैरागी-परम्परा को कोई महत्व दिया जाय तो सत्य यही है कि किसी भी वैरागी विद्वान् द्वारा लिखित स्वामी रामानन्द के जीवन-चरित में स्वामी जी के बल्लभाचार्य जी के सम्पर्क में आने का कोई उल्लेख नहीं मिलता। वल्लभ का जन्म-संवत् १५३६ वि० में हुआ था, जबकि रामानन्द जी संवत् १४६७ वि० में ही साकेतवासी हो चुके थे। अतः यदि 'सम्प्रदायप्रदीप' एक प्रामाणिक ग्रन्थ हो, तो ये रामानन्द निश्चय ही वैष्णवाचार्य रामानन्द स्वामी से भिन्न रहे होंगे। स्वयं 'भक्तमाल' में एक ब्रजवासी रामानन्द भक्त का[१] उल्लेख किया गया है। रामानन्द के शिष्यों में कोई राणाव्यास भी था, ऐसा उल्लेख रामानन्द के सम्बन्ध में प्रामाणिक वृत्त उपस्थित करने वाले ग्रन्थों—'अगस्त्य-संहिता' तथा 'भक्तमाल'-में नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त शास्त्री जी ने डा० बर्थ्वाल के मत को इसी पक्ष को सबल बनाने के लिए उद्धृत किया है। डा० बर्थ्वाल जी ने एक ओर अपने मत की पुष्टि में 'सिद्धान्त पटल' का सहारा लिया है, जो रामानन्द स्वामी जी की कृति नहीं है, और दूसरी ओर उन्होंने राघवानन्द जी के योग द्वारा ही रामानन्द के प्राण बचाने का भी उल्लेख किया है। इस जनश्रुति का कोई प्रामाणिक आधार नहीं मिलता। यदि यह सत्य

१—भक्तमाल-रूपकला-छप्पय ५१७, पृ० ६५५।

हो तो भी यह कहना कि रामानन्द भी तन्त्र से प्रभावित थे, केवल अनुमान कोटि में ही आ सकता है। रामानन्द जी के सम्प्रदाय में योग का प्रवेश पयहारी-कृष्णदास जी के समय से हुआ है। रामानन्द-सम्प्रदाय का अधिकांश रामानन्द को विशुद्ध वैष्णव मानता है और स्वयं स्वामी जी के ग्रन्थों से भी यही बात प्रमाणित होती है।

४—रामानन्द को अद्वैत से प्रभावित सिद्ध करने के लिये शास्त्री जी ने आधुनिक रामानन्दी-सम्प्रदाय में मान्य गुरुपरम्परा का उल्लेख किया है, जिसके अनेक आचार्यों के नाम प्रायः वही हैं, जो 'अध्यात्म-रामायण' की परम्परा में पाए जाते हैं। आनन्दान्त नाम तो इस बात के प्रमाण हैं ही, किन्तु, आधुनिक रामानन्द-सम्प्रदाय में प्रचलित गुरुपरम्परा स्वयं एक विवादग्रस्त विषय है। जिन महात्मा अग्रदास के नाम से यह चलाई गई है, उनके किसी प्रकाशित ग्रन्थ में इसका उल्लेख नहीं है। रामानन्दी विद्वान् इस पक्ष के प्रमाण में उनके द्वारा लिखित कोई हस्तलिखित ग्रन्थ प्रस्तुत नहीं करते, जिसकी परीक्षा विद्वान् कर सकें। कुछ रामानन्दीयों का तो यह अनुमान है कि यह परम्परा आधुनिक युग के ही किसी विद्वान् ने गढ़ ली है। जो हो, इस बात को तो कोई रामानन्दी स्वीकार नहीं करता कि उसका रामावत सम्प्रदाय शंकर-सम्प्रदाय से किसी भी प्रकार सम्बद्ध है। अतः शास्त्री जी का यह अनुमान प्रामाणिक आधार के अभाव में हलका हो जाता है।

शास्त्री जी ने 'अध्यात्म रामायण' को रामानन्द स्वामी की कृति सिद्ध करने के लिये कुछ और प्रमाणों का उल्लेख किया है। संक्षेप में उन पर भी विचार करना ठीक होगा।

(१) 'रामतापन्युपनिषद्' और 'अध्यात्म रामायण' में पारस्परिक समानता अनेक स्थलों पर पाई जाती है, यह सत्य भी हो तो इसके आधार पर यह कह देना कि 'अध्यात्म रामायण' स्वामी रामानन्द जी की कृति है, तर्क संगत नहीं प्रतीत होता। रामानन्द-सम्प्रदाय में इस उपनिषद् का विशिष्टाद्वैत सम्मत ही अर्थ किया जाता रहा है। इस सम्बन्ध में हरिदास जी द्वारा लिखित 'रामतापन्युपनिषद्-भाष्य' प्रमाण के लिये रखा जा सकता है। फिर यह कैसे सम्भव हो सकता है कि सम्प्रदाय के संस्थापक स्वयं स्वामी रामानन्द की कृति को उन्हीं का सम्प्रदाय भूल जाय? रामानन्द-सम्प्रदाय में तो 'अध्यात्म-रामायण' के पठन-पाठन की भी कोई परम्परा नहीं मिलती। रामानन्दीयों के अनुसार यह ग्रन्थ उनके सम्प्रदाय का मान्य ग्रन्थ नहीं है।

(२) शास्त्री जी ने 'अध्यात्म-रामायण' में तारकमंत्र, शालिग्राम, 'अगस्त्य-संहिता', राघव, राम-आनन्द के साथ-साथ प्रयोग तथा एक बार अविभक्त रूप में 'रामानन्द' शब्द के प्रयोग आदि के आधार पर इस ग्रन्थ को स्वामी रामानन्द जी कृत सिद्ध किया है, किन्तु इसके लिये उन्हें बहुत खींचा-तानी करनी पड़ी है। 'रामानन्द' तथा 'राघव' वहाँ 'भगवत् प्राप्ति का आनन्द' और 'रामचन्द्र' के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं।

(३) तुलसीदास के 'अध्यात्म-रामायण' से प्रभावित होने से यह नहीं कहा जा सकता कि घोर साम्प्रदायिक होने के नाते ही उन्होंने रामानन्द की कृति से प्रभाव ग्रहण किया होगा। सत्य तो यह है कि उदार बुद्धि तुलसी की साधना समन्वय की साधना थी। उन्हें जहाँ-कहीं भी जो अच्छा लगा, उसको उन्होंने अपना लिया है। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि तुलसी ने जो कुछ किया उसके मूल प्रेरणा स्रोत रामानन्द जी ही थे। वस्तुतः रामानन्द जी के ग्रन्थो के ढूँढने का कम लोगों ने प्रयास किया है, और इसके कारण ही उन्हें स्वामी जी के विषय में अनेक अनुमान लगाने पड़े हैं।

(४) 'दीनार' शब्द का प्रयोग १६-१७ वीं० शताब्दी तक लोग करते रहे हैं, केवल इसी के आधार पर 'अध्यात्म-रामायण' रामानन्द की कृति नहीं हो जाता।

(५) इसी प्रकार 'अध्यात्म-रामायण' की हस्तलिखित प्रतियां तथा इसकी टीकाओं के १४ वीं शताब्दी से अधिक प्राचीन न होने के कारण भी उसे रामानन्द द्वारा लिखित मान लेना तर्क संगत प्रतीत नहीं होता। वस्तुतः सत्य तो यह प्रतीत होता है कि 'अध्यात्म-रामायण' के लेखक कोई रामशर्मा नाम के अद्वैती रामभक्त ही थे, जो रामानन्द से भिन्न थे। शंकर मतानुयायी अनेक विद्वान् अद्वैत में विश्वास करते हुए भी भक्त थे। मधुसूदन सरस्वती इसी प्रकार के विद्वान् थे।

निष्कर्ष—'अध्यात्म-रामायण' स्वामी रामानन्द की रचना के रूप में किसी भी रामानन्दी विद्वान् द्वारा मान्य नहीं है और न तो इस प्रकार का कोई प्रमाण ही मिलता है जिसके आधार पर यह सिद्ध किया जा सके कि वैष्णव मत में दीक्षित होने के पूर्व रामानन्द अद्वैत मत के अनुयायी थे। जिन लेखकों ने इस प्रकार की जनश्रुति का उल्लेख किया है, उन्होंने भी अपने मत की पुष्टि में कोई प्रमाण नहीं दिया है। इस अनुमान का कारण कुछ पाश्चात्य विद्वानों का यह कथन है कि रामानन्द दाक्षिणात्य थे। डा० फ़र्कुहर ने इसी के आधार पर

पहले रामानन्द को दक्षिण के किसी राम-सम्प्रदाय से सम्बद्ध और उत्तर भारत में अपने साथ 'अगस्त्य संहिता', 'अध्यात्म रामायण', 'रामतापन्युपनिषद्' आदि लाकर प्रचार करने वाला कहा था और यह भी कहा था कि उत्तर भारत में आने पर वैष्णवभक्त राघवानन्द ने रामानन्द को अपने सम्प्रदाय में मिला लिया था, किन्तु प्रमाणाभाव में डा० फ़र्कुहर को इस अनुमान को छोड़ना पड़ा, और फिर वे राघवानन्द जी को ही दाक्षिणात्य मानने लगे थे। शास्त्री जी ने बहुत दूर तक डा० फ़र्कुहर के पूर्व अनुमान का ही सहारा लिया है। 'अगस्त्य-संहिता' तथा 'भक्तमाल' एवं रामानन्द सम्प्रदाय की सारी परम्पराओं के अनुसार रामानन्द राघवानन्द के शिष्य थे और उन्हीं के सम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे। केवल कुछ जनश्रुतियों के आधार पर ही यह कहा जा सकता है कि राघवानन्द जी के यहाँ आने के पूर्व रामानन्द जी किसी अद्वैती गुरु के शिष्य थे। वैष्णव-धर्म-रत्नाकर' के लेखक गोपालदास तथा 'रसिक-प्रकाश-भक्तमाल' के टीकाकार ने इस जनश्रुति का उल्लेख भी किया है, किन्तु इसका कोई निश्चित् आधार अब तक मुझे नहीं मिल सका। यदि इस जनश्रुति को कभी सत्य भी सिद्ध किया जाय तो यह कह देना कि रामानन्द ने ही 'अध्यात्म-रामायण' की रचना की, शास्त्री जी द्वारा दिए गए तर्कों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट एवं सबल प्रमाण की अपेक्षा करेगा। जब तक ये स्पष्ट प्रमाण सम्मुख नहीं आते तब तक हम 'अध्यात्म-रामायण' को स्वामी रामानन्द जी की रचना के रूप में स्वीकार नहीं कर सकते।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर रामानन्द स्वामी के नाम पर प्रचलित ग्रन्थों को निम्नलिखित श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है :—

१—रामानन्द स्वामी के प्रामाणिक मुख्य-ग्रन्थ :—

(क) श्री वैष्णव-मताब्ज-भास्कर। (ख) श्री रामार्चन पद्धति।

२—रामानन्द स्वामी के नाम पर प्रचलित ग्रन्थ :—

(क) आनन्दभाष्य। (ख) १—सिद्धान्तपटल २—रामरक्षा स्तोत्र ३—योग-चिन्तामणि।

३—रामानन्द स्वामी द्वारा लिखित कही जाने वाली ऐसी रचनाएँ जो अब तक प्रकाश में नहीं आ सकी हैं।

(क) गीताभाष्य (ख) उपनिषद्भाष्य (ग) श्रीरामाराधनम् (घ) रामानन्द आदेश। (ङ) वेदान्त विचार।

उपर्युक्त ग्रन्थों में 'गीताभाष्य' और 'उपनिषद्भाष्य' की सूचना मात्र मिली है। न तो इनकी हस्तलिखित प्रतियों का ही कोई पता है और न ही इनके कहीं से प्रकाशित होने की ही सूचना मिली है। अन्तिम दो पुस्तकें अयोध्या के लक्ष्मणकिला में वर्तमान कही जाती हैं, किन्तु इस समय वे वहाँ भी उपलब्ध नहीं हैं। 'वेदान्तविचार' भी किले के पुस्तकालय में वर्तमान कहा जाता है।

(च)—राम मन्त्र जोग ग्रंथ, राम अष्टक, ज्ञान लीला-इनकी हस्तलिखित प्रतियाँ नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशी के पुस्तकालय में सुरक्षित हैं।

४—रामानन्द स्वामी की अप्रामाणिक रचनाएँ :—

(क)—श्री गुरु रामानन्द कबीर जी का ज्ञानतिलक।

(ख)—अध्यात्म-रामायण।

५—रामानन्द स्वामी के पद

(क)—आरती कीजै हनुमान लला की।

(ख)—आदि ग्रन्थ में प्राप्त पद।

(ग)—सर्वांगी में प्राप्त पद।

(घ)—शिव-रामाष्टक।

इन पदों में पहले दो पदों को अधिकांश विद्वान् प्रामाणिक मानते हैं, किन्तु रामानन्द-सम्प्रदाय में इनका कोई प्रचार नहीं दिखलाई पड़ता। अतः अपने प्रस्तुत अध्ययन में हमने उनका कोई उपयोग नहीं किया है। अन्तिम दो पदों की प्रामाणिकता नितान्त ही संदिग्ध है।

निष्कर्ष—प्रस्तुत अध्ययन में 'श्री वैष्णवमताब्जभास्कर', 'श्री रामार्चन पद्धति' तथा 'आनंद-भाष्य' का ही उपयोग हुआ है। यद्यपि 'आनन्दभाष्य' स्वामी जी कृत नहीं है, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है, फिर भी आधुनिक रामानन्द-सम्प्रदाय का वह एक प्रतिनिधि 'भाष्य' है, इस दृष्टि से उसकी विचारधारा को समझ लेना अत्यन्त आवश्यक था।

चतुर्थ अध्याय

सम्प्रदाय का इतिहास तथा सम्बद्ध शाखाएँ

रामानन्द-सम्प्रदाय की उत्पत्ति—रामानन्द-सम्प्रदाय की उत्पत्ति के संबंध में कोई निश्चित् सामग्री हमें नहीं मिलती। नाभादास ने अपने 'भक्तमाल' में 'श्री रामानुज पद्धति प्रताप अवनि अमृत है अनुसर्‍यो।' शीर्षक पंक्ति वाले छप्पय में रामानन्द को राघवानन्द का शिष्य एवं रामानुज-सम्प्रदायान्तर्गत एक आचार्य के रूप में स्वीकार किया है। 'भक्तमाल' के अनुसार[1] रामानन्द एवं रामानुज के बीच में तीन प्रमुख आचार्य हो चुके थे। रामानुज के उपरान्त देवाचार्य, हर्यानन्द, राघवानन्द और तब रामानन्द जी हुए। नाभाजी के इस साक्ष्य के आधार पर आधुनिक काल के पाश्चात्य एवं पौर्वात्य सभी विद्वान् रामानन्द-सम्प्रदाय को रामानुज-सम्प्रदाय की एक शाखा विशेष के रूप में स्वीकार करते चले आ रहे हैं। अवश्य ही अधिकांश विद्वानों ने रामानुज-परम्परा में रामानन्द को पाँचवें आचार्य के रूप में स्वीकार नहीं किया है। उनके अनुसार नाभा जी ने केवल मुख्य-मुख्य आचार्यों के ही नामों का उल्लेख किया है, बीच के अन्य आचार्यों को या तो वे नहीं जानते थे अथवा अनावश्यक एवं महत्त्वहीन समझ कर उन्होंने उन्हें छोड़ ही दिया हो। स्वयं 'रामार्चन पद्धति'[2] नामक अपनी कृति में रामानन्द जी ने अपनी जो गुरु-परम्परा दी है, उससे भी यह सिद्ध हो जाता है कि वे रामानुज-सम्प्रदाय से ही पहले सम्बद्ध थे। यह परम्परा इस प्रकार है :—रामानन्द से ऊपर गुरुओं के क्रमानुसार नाम इस प्रकार हैं :—रामानन्द—राघवानन्द—हर्यानन्द—श्रियानन्द—देवानन्द—द्वारानन्द—रामेश्वर—सदाचार्य-गंगाधर—पुरुषोत्तम—देवाधिप—माधवाचार्य—वोपदेव—कूरेश—रामानुज-पूर्ण—यामुन—राममिश्र—

१—नाभादास, भक्तमाल, सं० एवं टीकाकार रूपकला, छप्पय ६९२।

२—'श्री रामार्चनपद्धति' सं० पं० रामटहलदास, पृ० ३४-३५।

में पुरुषोत्तम का नाम नहीं पाया जाता। इसी प्रकार रेवासा[1] गादी की गुरु-परम्परा में भी पुरुषोत्तम का नाम नहीं है। कूबाजी[2] की द्वारा-गादी की गुरु-परम्परा बालानन्द जी के स्थान की परम्परा से पूर्णतया मिलती है। अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सं० १८८० वि० के लगभग तक रामानन्द-सम्प्रदाय के प्रसिद्ध स्थानों (बाला जी का स्थान, गलता, रेवासा, कूबा जी का गादी-स्थान) में उपर्युक्त गुरु-परम्परा ही मानी जाती रही है। यहाँ 'श्री रामार्चन-पद्धति' की गुरु-परम्परा की तुलना इस परम्परा से की जा सकती है :—इनमें पहली (पद्धति की) परम्परा के राम-सीता के स्थान पर दूसरी में नारायण और लक्ष्मी के नाम पाए जाते हैं। साथ ही पहली परम्परा के कूरेश, वोपदेव, माधवाचार्य, देवाधिप, गंगाधर, सदाचार्य, रामेश्वर, द्वारानन्द, श्रियानन्द आदि नाम दूसरी परम्परा में नहीं पाए जाते और दूसरी ओर गोविन्द, भट्टार्क, वेदान्ति जी, कलि-जित्, कृष्णाचार्य, लोकाचार्य, शैलेश, बरबर आदि दूसरी परम्परा के नाम पहली परम्परा में नहीं पाए जाते। फिर पहली परम्परा के देवानन्द के स्थान पर दूसरी परम्परा में देवाचार्य नाम पाया जाता है। अतः यह कहना कि इन दोनों ही परम्पराओं में कौन अधिक प्रामाणिक है, सम्भव नहीं है। यदि 'रामार्चन-पद्धति' की प्राचीन एवं प्रामाणिक हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हो जाँय, तब अवश्य इस सम्बन्ध में कुछ दृढ़ता से कहा जा सकता है। फिर भी इन प्रमाणों से यह सिद्ध हो ही जाता है कि रामानुज-सम्प्रदाय से ही रामानन्द स्वामी का पूर्व-सम्बन्ध था। विद्वानों का अनुमान है[3] कि बहुत अधिक तीर्थाटन करने के उपरान्त रामानन्द जी जब अपने गुरुमठ आये तब उनके गुरुभाइयों ने उनके साथ भोजन करने में आपत्ति की। उनका अनुमान था कि अपनी तीर्थयात्रा में रामानन्द ने अवश्य ही खान-पान सम्बन्धी छुआछूत का कोई विचार नहीं किया होगा। अपने शिष्यों के इस आग्रह को देख कर राघवानन्द ने रामानन्द को एक नूतन सम्प्रदाय चलाने की अनुमति दे दी। फलतः रामानन्द-सम्प्रदाय का जन्म हुआ। खेद है, इस किंवदन्ती का कोई प्रामाणिक सूत्र अभी तक उपलब्ध नहीं हो सका है।

रामानन्द-सम्प्रदाय के प्रसिद्ध विद्वान् पंडित रामटहलदास के भी अनुसार रामानन्द-सम्प्रदाय रामानुज-सम्प्रदाय की एक शाखा विशेष है। अपने मत के

१—वही, पृष्ठ १११।

२—वही, पृष्ठ ११७-१८।

३—'भक्तमाल-रूपकला', पृ० २९०।

समर्थन में स्वसंपादित 'श्री वैष्णव-मताब्ज-भास्कर ग्रन्थ' के अन्त में परिशिष्ट में उन्होंने जो तर्क उपस्थित किए हैं[1], उनमें से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं :—

पण्डित रामटहल दास के तर्क

(१) लगभग ५०० वर्ष से रामानन्दीय-सन्त समाज अपने को श्री रामानुजान्तर्गत मानता एवं उनका अनुयायी कहता चला आया है।

(२) रामानन्द जी के दादा गुरु हर्यांचार्य ने 'रामस्तवराज-भाष्य' में अपने को रामानुज सिद्धांतानुयायी मान कर विशिष्टाद्वैत का ही प्रतिपादन किया है।

(३) 'रसिक-प्रकाश-भक्तमाल' में हर्यानन्द जी के विषय में लिखा है कि उन्होंने, 'लक्ष्मी-सम्प्रदाय में प्रसिद्ध मन्त्र तारक जो पारक है सोई करी शिष्यन को शासना'।

(४) अनन्तानन्द ने अपने ग्रन्थ 'हरिभक्ति सिन्धु वेला' में राघवानन्द को "रामानुज कुलोद्भव' कहा है।

(५) अयोध्या, बड़ी जगह के महन्थ श्री रघुनाथ प्रसाद ने 'निज गुरु' नामक ग्रन्थ में तथा श्री राममनोहर प्रसाद ने 'सम्प्रदाय-दिग्दर्शन' ग्रन्थ में श्री रामानन्द स्वामी जी को रामानुज स्वामी की ही शिष्य-परम्परा का एक आचार्य माना है। इसी प्रकार मथुरादास के नाम से छपी गुरुपरम्परा के विरुद्ध एक वक्तव्य में भी श्रीराममनोहर प्रसाद ने रामानन्द स्वामी का सम्बन्ध रामानुज-सम्प्रदाय से ही जोड़ा है।

(६) पण्डित रघुवरशरण ने 'श्री वै[illegible]' की 'अर्थ-प्रकाशिका टीका' में राघवानन्द स्वामी को श्री रामानुज-सम्प्रदायनिष्ठ ही लिखा है। इसी प्रकार देव मुरारी स्वामी के शिष्य श्री मलूक जी ने 'श्री गुरु-प्रणाली-निष्ठा' ग्रन्थ में राघवानन्द जी को रामानुज जी के ही अन्वय का माना है। 'श्री वैष्णव-धर्म-रत्नाकर' ग्रन्थ में डाकोर के पण्डित गोपालदास ने भी राघवानन्द जी को रामानुजान्वय समुद्भूत कहा है। खोजी जी की द्वारा गादी पालड़ी स्थान की गुरु-परम्परा में भी राघवानन्द जी को 'रामानुजवंशोद्भूत' लिखा गया है।

(७) स्वयं स्वामी रामानन्द जी ने अपने ग्रंथ 'श्री वैष्णव-मताब्ज-भास्कर' में 'प्राचार्याचार्यवर्यान् यतिपतिसहितान्प्रोक्तवांस्तत्प्रणम्य । श्रीमांस्तस्मै-रमेशंशरणमुपगतस्तद्द्विजिज्ञासु मुख्यैः' कह कर रामानुजादि पूर्वाचार्यों का स्मरण

१—'श्री वैष्णव-मताब्ज-भास्कर', पृ० ५२-१२६।

किया है। इसी प्रकार 'श्री रामार्चन पद्धति' ग्रन्थ में तो अपनी गुरु-परम्परा भी उन्होंने लिख दी है। यहाँ रामानुज से वे स्पष्ट ही अपना पूर्व सम्बन्ध मानते हैं। 'सिद्धान्त पटल' में भी स्वामी जी ने रंगधाम के रामानुजाचार्य को ही मुख्याचार्य गुरु माना है।

(८) रामकबीर की 'पंचमात्रा' में गोरखनाथ के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कबीर ने कहा है कि :—

आदि नरायन मूल हमारा, रामानुज की शाखा।
ररंकार में रमता जोगी श्री गुरु रामानन्द जी भाखा ॥

इसी प्रकार 'बोध सागर' में 'प्रथम श्री सम्प्रदाय बखानों। रामानुज आचारज मानों।' कह कर सत्य कबीर जी ने अपनी गुरु-परम्परा दी है, जिसमें उन्होंने नारायण, लक्ष्मी, विष्वक्सेन, पुण्डरीकाक्ष, राममिश्र, यामुनाचार्य, पूर्णाचार्य, रामानुज, देवाचार्य, हर्यानन्द, राघवानन्द, रामानन्द आदि को गुरु-शिष्य के क्रम में रक्खा है।

(९) अग्रदास ने स्वसंगृहीत 'आनन्दतत्व दीपिका' में रामानुज को आदि गुरु लिखा है।

(१०) 'भक्तमाल' में नाभादास ने जो अपनी गुरु-परम्परा दी है, उसमें उन्होंने लक्ष्मी, विष्वक्सेन, शठकोप, वोपदेव, श्रीनाथ, पुण्डरीकाक्ष, राममिश्र, यामुन, देवाचार्य, हर्यानन्द, राघवानन्द, रामानन्द आदि का उल्लेख करते हुए रामानन्द को 'रामानुज की पद्धति' का ही प्रचारक कहा है। इसी प्रकार रीवा नरेश रघुराज सिंह ने भी उपर्युक्त मत को स्वीकार किया है। संस्कृत भक्तमाल में भी रामानन्द के शिष्यों को 'रामानुज-कुलोद्भवाः' ही कहा गया है। भक्तमाल के अन्य टीकाकारों-रूपकला जी, बैजनाथ प्रसाद, श्रीरसरंगमणि आदि—ने रामानंद को 'रामानुज कुलोद्भव' ही कहा है।

(११) रामानुज-सम्प्रदाय के अनेक संत-भक्तों ने रामानुज स्वामी की वन्दना रामानन्द जी के साथ की है। रसरंगमणि (भक्तमाल टीका), अग्रस्वामी (श्री रघुनाथ लीलामृत तथा रामसारसंग्रह), पं० रामनारायण दास (श्रीरामानन्द जन्मोत्सव) आदि ने रामानन्द के साथ ही रामानुज स्वामी की भी वंदना की है।

(१२) 'स्वामी-नारायणी' मत के सन्त अपना सम्बन्ध श्री रामानुज एवं रामानन्द से जोड़ते हैं।

(१३) 'रसिक-प्रकाश-भक्तमाल' के टीकाकार श्री जानकी रसिक शरण जी, लक्ष्मणकिला के जानकीवर शरण जी, रेवासा के बालअली जी (सिद्धान्त-दीपिका), 'श्री सम्प्रदाय भास्कर' ग्रन्थ में श्री रामरंगीलेशरण जी, 'तुलसी तत्व भास्कर' ग्रन्थ में काशी-कमच्छा स्थानाधिपति महन्थ हरिप्रसाद जी आदि लगभग सभी प्रसिद्ध स्थानों के महन्थों ने रामानन्द-सम्प्रदाय को रामानुज-सम्प्रदायान्तर्गत ही माना है।

(१४) अनेक रामानन्दी विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में रामानुज स्वामी की वन्दना की है। इसी प्रकार अनेक निम्बार्क-सम्प्रदाय के विद्वानों ने भी रामानुज स्वामी से ही रामानन्द स्वामी का सम्बन्ध स्थिर किया है।

(१५) गलता, रेवासा, श्री बालानन्द जी का स्थान, भींथड़ा, पिंडोरी, खोजी जी की पालड़ी, टीला जी की द्वारा गादियों की प्राचीन गुरुपरम्पराएँ रामानुज-सम्प्रदाय से ही रामानन्द का सम्बन्ध जोड़ती हैं। इसी प्रकार रामानुज सम्प्रदाय के वृद्ध महात्मा तोताद्रि को मूलगादी तथा 'श्री भाष्य' को साम्प्रदायिक भाष्य मानते आए हैं।

(१६) जब-जब रामानुजाचार्यों पर आपत्ति पड़ी है, रामानन्दीय अखाड़ों ने सैनिक रीति से उनकी सहायता की है। शास्त्रार्थ में उन्हें जिताया है तथा कांची के प्रतिवादि भयंकर जी पर जब-जब नाथपंथियों ने आक्रमण किया, तब-तब धीरमदास जी ने नागा अतीतों द्वारा उनकी सहायता एवं रक्षा की। अनेक बार रामानन्दी साधुओं ने रंगाचार्य जी के शिष्य रामप्रपन्न स्वामी जी की पालकी भी उठाई है।

इन उपर्युक्त तर्कों के आधार पर पं० रामटहलदास जी ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि रामानन्द स्वामी रामानुज-सम्प्रदाय के ही एक विद्वान् थे और रामानन्द-सम्प्रदाय रामानुज सम्प्रदाय की ही एक शाखा है।

उपर्युक्त मत के विरोधी एक अन्य मत के प्रवर्त्तक हैं पं० रघुवरदास जी वेदान्ती और पोषक हैं श्री भगवदाचार्य जी। इस मत के अनुसार[१] रामानन्द स्वामी रामानुज-सम्प्रदाय के न तो आचार्य थे और न उक्त सम्प्रदाय से उनका कोई सम्बन्ध ही था। आदि-काल में एक ही 'श्री सम्प्रदाय' था। कालान्तर में मन्त्र, उपास्य, उपासनादि आचारों की भिन्नता के कारण इस 'श्री सम्प्रदाय' की दो शाखाएँ हो गईं। एक के परमाचार्य थे श्री राम और दूसरी शाखा अष्टा-

---

१—'आनन्दभाष्य' की भूमिका—पं० रघुवरदास वेदान्ती, पृष्ठ ६-१०

क्षर मन्त्र के प्रवर्त्तक नारायण को अपना प्रथम आचार्य मानती थी। कालान्तर में राम-सम्प्रदाय में कुछ शैथिल्य आ गया। अतः रामोपासकों में कुछ ने तो इस सम्प्रदाय का परित्याग ही कर दिया, कुछ किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गए और कुछ सम्प्रदायान्तरों में चले गए। श्री नारायण मन्त्र के उपदेष्टा आचार्यों ने ऐसे उच्छृंखलों को अपनी ज्ञानगरिमा से प्रभावित कर अपने में समेट लिया। इसी समय इस शाखावालों ने 'श्रीसम्प्रदाय' के समस्त मूल ग्रन्थों को भी हस्तगत कर लिया। ग्रन्थाभाव में 'श्री सम्प्रदाय' में (रामसम्प्रदाय) और भी शिथिलता आ गई। इस सम्प्रदाय के आचार्यों द्वारा प्राणपण से सुरक्षित किए गए भी ग्रन्थ प्रचाराभाव में लुप्तप्राय हो गए। अतः शास्त्रबल सम्पन्न 'श्री नारायण सम्प्रदाय' से कुछ दिनों में इस सम्प्रदाय वालों ने क्षीर-नीरवत अभिन्नता स्थापित कर ली। लोगों ने श्री राममन्त्र और श्री नारायण मन्त्र में सामान्याधिकरण स्थापित कर लिया। परिणाम-स्वरूप श्री रामसम्प्रदाय के अनेक ग्रन्थ दूसरी शाखा द्वारा विनष्ट कर दिए गए। पूर्वाचार्यों द्वारा प्रणीत ग्रन्थ भी अज्ञान के गह्वर गर्त्त में फेंक दिये गए। अपने सम्प्रदाय की इस दुरवस्था को देख कर रामानन्द स्वामी के मन में इसके उद्धार की भावना उठी। अतः जो कुछ भी अल्प सामग्री सम्प्रदाय में अवशिष्ट थी उसी के आधार पर उन्होंने हनुमान्, ब्रह्मा, वसिष्ठ, पराशर, व्यास, शुक, पुरुषोत्तम, गंगाधर आदि प्रमुख आचार्यों के हृदयावेदक 'आनन्दभाष्य' की रचना की। विशिष्टाद्वैत मत प्रतिपादक यह ग्रन्थ श्री वैष्णवों का सर्वस्व है।

इस मत का समर्थन करते हुए भगवदाचार्य जी[१] ने निम्नलिखित तर्क दिए हैं—

१—हमारे सम्प्रदाय के प्रमुख विद्वान् अग्रस्वामी ने हमारी गुरु-परम्परा इस प्रकार दी है :—राम—सीता—हनुमान्—ब्रह्मा—वसिष्ठ—पराशर—व्यास—शुकदेव—पुरुषोत्तमाचार्य—गंगाधराचार्य—सदाचार्य—रामेश्वराचार्य—द्वारानन्द—देवानन्द—श्यामानन्द श्रुतानन्द—चिदानन्द—पूर्णानन्द—श्रियानन्द—हर्यानन्द—राघवानन्द—रामानन्द। कुछ काल से ही लोग यह मानने लग गए थे कि भगवान् रामानन्द रामानुज स्वामी की परम्परा में हैं। अब सभी 'भेख' ने अग्रस्वामी की परम्परा स्वीकार कर ली है।

२—मन्त्रभेद सम्प्रदाय-भेद में मूल कारण है। श्री रामानुज-सम्प्रदाय में 'नारायण मंत्र' ही मोक्षप्रद माना गया है। श्री रामानन्द सम्प्रदाय में 'राममंत्रराज' मोक्षप्रद माना जाता है।

१—'परम्परा-परित्राण'-भगवदाचार्य-श्री रामानन्द साहित्य प्रचार मण्डल द्वारा प्रकाशित।

(१३) 'रसिक-प्रकाश-भक्तमाल' के टीकाकार श्री जानकी रसिक शरण जी, लक्ष्मणकिला के जानकीवर शरण जी, रेवासा के बालअली जी (सिद्धान्त-दीपिका), 'श्री सम्प्रदाय भास्कर' ग्रन्थ में श्री रामरंगीलेशरण जी, 'तुलसी तत्व भास्कर' ग्रन्थ में काशी-कमच्छा स्थानाधिपति महन्थ हरिप्रसाद जी आदि लगभग सभी प्रसिद्ध स्थानों के महन्थों ने रामानन्द-सम्प्रदाय को रामानुज-सम्प्रदायान्तर्गत ही माना है।

(१४) अनेक रामानन्दी विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में रामानुज स्वामी की वन्दना की है। इसी प्रकार अनेक निम्बार्क-सम्प्रदाय के विद्वानों ने भी रामानुज स्वामी से ही रामानन्द स्वामी का सम्बन्ध स्थिर किया है।

(१५) गलता, रेवासा, श्री बालानन्द जी का स्थान, भींथड़ा, पिंडोरी, खोजी जी की पालड़ी, टीला जी की द्वारा गादियों की प्राचीन गुरुपरम्पराएँ रामानुज-सम्प्रदाय से ही रामानन्द का सम्बन्ध जोड़ती हैं। इसी प्रकार रामानुज सम्प्रदाय के वृद्ध महात्मा तोताद्रि को मूलगादी तथा 'श्री भाष्य' को साम्प्रदायिक भाष्य मानते आए हैं।

(१६) जब-जब रामानुजाचार्यों पर आपत्ति पड़ी है, रामानन्दीय अखाड़ों ने सैनिक रीति से उनकी सहायता की है। शास्त्रार्थ में उन्हें जिताया है तथा कांची के प्रतिवादि भयंकर जी पर जब-जब नाथपंथियों ने आक्रमण किया, तब-तब घीरमदास जी ने नागा अतीतों द्वारा उनकी सहायता एवं रक्षा की। अनेक बार रामानन्दी साधुओं ने रंगाचार्य जी के शिष्य रामप्रपन्न स्वामी जी की पालकी भी उठाई है।

इन उपर्युक्त तर्कों के आधार पर पं० रामटहलदास जी ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि रामानन्द स्वामी रामानुज-सम्प्रदाय के ही एक विद्वान् थे और रामानन्द-सम्प्रदाय रामानुज सम्प्रदाय की ही एक शाखा है।

उपर्युक्त मत के विरोधी एक अन्य मत के प्रवर्त्तक हैं पं० रघुवरदास जी वेदान्ती और पोषक हैं श्री भगवदाचार्य जी। इस मत के अनुसार[१] रामानन्द स्वामी रामानुज-सम्प्रदाय के न तो आचार्य थे और न उक्त सम्प्रदाय से उनका कोई सम्बन्ध ही था। आदि-काल में एक ही 'श्री सम्प्रदाय' था। कालान्तर में मन्त्र, उपास्य, उपासनादि आचारों की भिन्नता के कारण इस 'श्री सम्प्रदाय' की दो शाखाएँ हो गईं। एक के परमाचार्य थे श्री राम और दूसरी शाखा अष्टा-

१—'आनन्दभाष्य' की भूमिका—पं० रघुवरदास वेदान्ती, पृष्ठ ९-१०

क्षर मन्त्र के प्रवर्त्तक नारायण को अपना प्रथम आचार्य मानती थी। कालान्तर में राम-सम्प्रदाय में कुछ शैथिल्य आ गया। अतः रामोपासकों में कुछ ने तो इस सम्प्रदाय का परित्याग ही कर दिया, कुछ किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गए और कुछ सम्प्रदायान्तरों में चले गए। श्री नारायण मन्त्र के उपदेष्टा आचार्यों ने ऐसे उच्छृंखलों को अपनी ज्ञानगरिमा से प्रभावित कर अपने में समेट लिया। इसी समय इस शाखावालों ने 'श्रीसम्प्रदाय' के समस्त मूल ग्रन्थों को भी हस्तगत कर लिया। ग्रन्थाभाव में 'श्री सम्प्रदाय' में (रामसम्प्रदाय) और भी शिथिलता आ गई। इस सम्प्रदाय के आचार्यों द्वारा प्राणपण से सुरक्षित किए गए भी ग्रन्थ प्रचाराभाव में लुप्तप्राय हो गए। अतः शास्त्रबल सम्पन्न 'श्री नारायण सम्प्रदाय' से कुछ दिनों में इस सम्प्रदाय वालों ने क्षीर-नीरवत अभिन्नता स्थापित कर ली। लोगों ने श्री राममन्त्र और श्री नारायण मन्त्र में सामान्याधिकरण स्थापित कर लिया। परिणाम-स्वरूप श्री रामसम्प्रदाय के अनेक ग्रन्थ दूसरी शाखा द्वारा विनष्ट कर दिए गए। पूर्वाचार्यों द्वारा प्रणीत ग्रन्थ भी अज्ञान के गह्वर गर्त्त में फेंक दिये गए। अपने सम्प्रदाय की इस दुरवस्था को देख कर रामानन्द स्वामी के मन में इसके उद्धार की भावना उठी। अतः जो कुछ भी अल्प सामग्री सम्प्रदाय में अवशिष्ट थी उसी के आधार पर उन्होंने हनुमान्, ब्रह्मा, वसिष्ठ, पराशर, व्यास, शुक, पुरुषोत्तम, गंगाधर आदि प्रमुख आचार्यों के हृदयावेदक 'आनन्दभाष्य' की रचना की। विशिष्टाद्वैत मत प्रतिपादक यह ग्रन्थ श्री वैष्णवों का सर्वस्व है।

इस मत का समर्थन करते हुए भगवदाचार्य जी[1] ने निम्नलिखित तर्क दिए हैं—

१—हमारे सम्प्रदाय के प्रमुख विद्वान् अग्रस्वामी ने हमारी गुरु-परम्परा इस प्रकार दी है :—राम—सीता—हनुमान्—ब्रह्मा—वसिष्ठ—पराशर—व्यास—शुकदेव—पुरुषोत्तमाचार्य—गंगाधराचार्य—सदाचार्य—रामेश्वराचार्य—द्वारानन्द—देवानन्द—श्यामानन्द श्रुतानन्द—चिदानन्द—पूर्णानन्द—श्रियानन्द—हर्यानन्द—राघवानन्द—रामानन्द। कुछ काल से ही लोग यह मानने लग गए थे कि भगवान् रामानन्द रामानुज स्वामी की परम्परा में हैं। अब सभी 'भेख' ने अग्रस्वामी की परम्परा स्वीकार कर ली है।

२—मन्त्रभेद सम्प्रदाय-भेद में मूल कारण है। श्री रामानुज-सम्प्रदाय में 'नारायण मंत्र' ही मोक्षप्रद माना गया है। श्री रामानन्द सम्प्रदाय में 'राममंत्र-राज' मोक्षप्रद माना जाता है।

१—'परम्परा-परित्राण'-भगवदाचार्य-श्री रामानन्द साहित्य प्रचार मण्डल द्वारा प्रकाशित।

३—श्री रामानुज-सम्प्रदाय में चतुर्भुज नारायण उपास्यदेव हैं, हमारे यहाँ द्विभुज भगवान् उपास्य देव हैं। उनके यहाँ श्री नारायण अवतारी हैं, हमारे यहाँ श्री राम जी अवतारी हैं। अतः मंत्र भेद तथा उपास्य भेद से इन दोनों सम्प्रदायों में स्वाभाविक भेद है और वह सदा रहेगा।

४—रामानन्द स्वामी को रामानुज स्वामी के शिष्य-प्रशिष्यों में स्वीकार करने से श्री रामानन्द जी गुरुद्रोही एवं पातकी सिद्ध होते हैं और श्री रामानन्दी वैष्णव 'पन्थाई'।

५—हर्याचार्य ने जिस 'श्री भाष्यकार' की बंदना की है वे 'श्री गुरुभाष्य' के लेखक पुरुषोत्तमाचार्य जी हैं।

६—'रसिक प्रकाश भक्तमाल' में प्रयुक्त 'लक्ष्मीसम्प्रदाय' शब्द 'श्री सम्प्रदाय' (रामानन्दी सम्प्रदाय) के अर्थ में आया है। फिर वहाँ हर्याचार्य को रामोपासक कहा भी तो गया है।

७—'हरि भक्ति सिन्धु वेला' में 'रामानुज कुलोद्भवम्' के स्थान पर वास्तव में 'रामानूक-कुलोद्भवम्' होना चाहिये। यदि राघवानन्द रामानुज-परम्परा में होते तो 'नारायण मंत्र' का प्रचार न कर राममंत्र का प्रचार क्यों करते ?

८—इसी प्रकार जिन-जिन लोगों ने राघवानन्द को 'रामानुजान्वयेजातः' लिखा है उन्होंने 'रामानूक' के स्थान पर भूल से 'रामानुज' शब्द का प्रयोग किया है।

९—जो महात्मागण अपने रामानन्द-सम्प्रदाय का सम्बन्ध रामानुज स्वामी से मानते हैं वे वास्तव में बहकाए गए हैं।

१०—'श्री वैष्णवमताब्जभास्कर' में रामानन्द ने स्पष्टतया न तो रामानुज का ही नाम लिया है और न शठकोप का ही। 'श्री रामार्चनपद्धति' में भी 'यतिराज' शब्द राघवानन्द स्वामी जी के लिये आया है, रामानुज के लिये नहीं। फिर 'रामार्चनपद्धति' की परम्परा वास्तव में नवीन कल्पित परम्परा है।

११—'सिद्धान्त पटल' वास्तव में अप्रामाणिक ग्रन्थ है, अतः उसके उल्लेखों को आधार मान कर रामानन्द का सम्बन्ध रामानुज स्वामी से नहीं जोड़ा जा सकता।

१२—राम कबीर जी की 'पंचमात्रा' अथवा अग्रस्वामी कृत 'आनन्दतत्व-दीपिका' आदि जिस किसी ग्रन्थ में रामानुज शब्द आया है, वहाँ 'रामानूक' ही होना चाहिए।

१३—नाभादास के 'भक्तमाल' में दी हुई गुरु-शिष्य परम्परा 'श्री रामार्चन पद्धति' में दी हुई गुरु परम्परा से नहीं मिलती। अतः एक-न-एक को अप्रामाणिक मानना ही होगा। पहली परम्परा नारायण से प्रारम्भ होती है, दूसरी श्रीराम से। 'श्री रामानुज पद्धति प्रताप अवनि अमृत ह्वै अनुसर्यो' का तात्पर्य है कि रामानन्द ने शास्त्रार्थ आदि करके रामानुज की ही भाँति विशिष्टाद्वैत मत का प्रवर्त्तन किया।

१४—संस्कृत 'भक्तमाल' अप्रामाणिक रचना है, श्री रामरसरंगमणि ने रामानुज के साथ रामानन्द का नाम भी एक भक्त के नाते ही गिनाया है, जो क्षम्य है।

१५—श्री रामानन्द जन्मोत्सव, सिद्धान्ततत्व दीपिका, श्री सम्प्रदायभास्कर आदि ग्रन्थों में रामानुज स्वामी से भ्रमवश ही रामानन्द का सम्बन्ध जोड़ा गया है। उसका कोई प्रामाणिक आधार नहीं है।

१६—इसी प्रकार जिन महान्तों (पं० हरिहरप्रसाद–'तुलसी तत्वभास्कर'; मुंगेर के पंडित सन्तदास–'परमसाकेत धाम'; नरखोघी स्थानाधिपति महात्मा राम लोचनशरण–'वैष्णवाश्रम सिद्धान्त विवेक' आदि) ने आधुनिक काल में प्रकाशित अपने ग्रन्थों में रामानन्द का सम्बन्ध रामानुज स्वामी से जोड़ा है, उन्होने किसी प्रामाणिक आधार पर ऐसा नहीं किया है। केवल जनश्रुति का ही अवलम्बन किया है।

भगवदाचार्य जी का निष्कर्ष—वस्तुतः अग्रस्वामी जी द्वारा दी गई रामानन्द-सम्प्रदाय की प्रामाणिक गुरु-परम्परा इस प्रकार है :—श्रीराम–सीता–हनुमान–ब्रह्मा–वसिष्ठ–पराशर–व्यास–शुक–पुरुषोत्तमाचार्य–गंगाधराचार्य–सदाचार्य-रामेश्वराचार्य–द्वारानन्दाचार्य – देवानन्दाचार्य – श्यामानन्दाचार्य – श्रुतानन्दाचार्य–चिदानन्दाचार्य–पूर्णानन्दाचार्य–श्रियानंदाचार्य–हर्यानंदाचार्य–राघवानंद–रामानंद।

उपर्युक्त मतों की समीक्षा—द्वितीय मत के अनुयायियों ने अपने पक्ष के समर्थन में केवल एक सबल प्रमाण दिया है :—वह है रामानन्द-सम्प्रदाय और रामानुज-सम्प्रदाय में मंत्र, उपास्य, उपासनापद्धति आदि की दृष्टि से कुछ मौलिक भेद। इन दृष्टियों से रामानन्द-सम्प्रदाय और रामानुज-सम्प्रदाय में भेद है अवश्य, किन्तु दार्शनिक सिद्धान्त की दृष्टि से दोनों ही सम्प्रदाय विशिष्टाद्वैत मत के अनुवर्ती हैं। फिर यह क्या सम्भव नहीं कि रामानन्द ने रामानुज-सम्प्रदाय को स्वसमयानुकूल मोड़ने की दृष्टि से मंत्र, उपास्य एवं उपासना पद्धति को अधिक उदार बना कर मूल दार्शनिक सिद्धान्त वही रहने दिया हो? कम-से-कम

३—श्री रामानुज-सम्प्रदाय में चतुर्भुज नारायण उपास्यदेव हैं, हमारे यहाँ द्विभुज भगवान उपास्य देव हैं। उनके यहाँ श्री नारायण अवतारी हैं, हमारे यहाँ श्री राम जी अवतारी हैं। अतः मंत्र भेद तथा उपास्य भेद से इन दोनों सम्प्रदायों में स्वाभाविक भेद है और वह सदा रहेगा।

४—रामानन्द स्वामी को रामानुज स्वामी के शिष्य-प्रशिष्यों में स्वीकार करने से श्री रामानन्द जी गुरुद्रोही एवं पातकी सिद्ध होते हैं और श्री रामानन्दी वैष्णव 'पन्थाई'।

५—हर्याचार्य ने जिस 'श्री भाष्यकार' की बंदना की है वे 'श्री गुरुभाष्य' के लेखक पुरुषोत्तमाचार्य जी हैं।

६—'रसिक प्रकाश भक्तमाल' में प्रयुक्त 'लक्ष्मीसम्प्रदाय' शब्द 'श्री सम्प्रदाय' (रामानन्दी सम्प्रदाय) के अर्थ में आया है। फिर वहाँ हर्याचार्य को रामोपासक कहा भी तो गया है।

७—'हरि भक्ति सिन्धु वेला' में 'रामानुज कुलोद्भवम्' के स्थान पर वास्तव में 'रामानूक-कुलोद्भवम्' होना चाहिये। यदि राघवानन्द रामानुज-परम्परा में होते तो 'नारायण मंत्र' का प्रचार न कर राममंत्र का प्रचार क्यों करते?

८—इसी प्रकार जिन-जिन लोगों ने राघवानन्द को 'रामानुजान्वयेजातः' लिखा है उन्होंने 'रामानूक' के स्थान पर भूल से 'रामानुज' शब्द का प्रयोग किया है।

९—जो महात्मागण अपने रामानन्द-सम्प्रदाय का सम्बन्ध रामानुज स्वामी से मानते हैं वे वास्तव में बहकाए गए हैं।

१०—'श्री वैष्णवमताब्जभास्कर' में रामानन्द ने स्पष्टतया न तो रामानुज का ही नाम लिया है और न शठकोप का ही। 'श्री रामार्चनपद्धति' में भी 'यतिराज' शब्द राघवानन्द स्वामी जी के लिये आया है, रामानुज के लिये नहीं। फिर 'रामार्चनपद्धति' की परम्परा वास्तव में नवीन कल्पित परम्परा है।

११—'सिद्धान्त पटल' वास्तव में अप्रामाणिक ग्रन्थ है, अतः उसके उल्लेखों को आधार मान कर रामानन्द का सम्बन्ध रामानुज स्वामी से नहीं जोड़ा जा सकता।

१२—राम कबीर जी की 'पंचमात्रा' अथवा अग्रस्वामी कृत 'आनन्दतत्व-दीपिका' आदि जिस किसी ग्रन्थ में रामानुज शब्द आया है, वहाँ 'रामानूक' ही होना चाहिए।

१३—नाभादास के 'भक्तमाल' में दी हुई गुरु-शिष्य परम्परा 'श्री रामार्चन पद्धति' में दी हुई गुरु परम्परा से नहीं मिलती। अतः एक-न-एक को अप्रामाणिक मानना ही होगा। पहली परम्परा नारायण से प्रारम्भ होती है, दूसरी श्रीराम से। 'श्री रामानुज पद्धति प्रताप अवनि अमृत ह्वै अनुसर्यो' का तात्पर्य है कि रामानन्द ने शास्त्रार्थ आदि करके रामानुज की ही भाँति विशिष्टाद्वैत मत का प्रवर्त्तन किया।

१४—संस्कृत 'भक्तमाल' अप्रामाणिक रचना है, श्री रामरसरंगमणि ने रामानुज के साथ रामानन्द का नाम भी एक भक्त के नाते ही गिनाया है, जो क्षम्य है।

१५—श्री रामानन्द जन्मोत्सव, सिद्धान्ततत्व दीपिका, श्री सम्प्रदायभास्कर आदि ग्रन्थों में रामानुज स्वामी से भ्रमवश ही रामानन्द का सम्बन्ध जोड़ा गया है। उसका कोई प्रामाणिक आधार नहीं है।

१६—इसी प्रकार जिन महान्तों (पं० हरिहरप्रसाद–'तुलसी तत्वभास्कर'; मुंगेर के पंडित सन्तदास–'परमसाकेत धाम'; नरघोघी स्थानाधिपति महात्मा राम लोचनशरण–'वैष्णवाश्रम सिद्धान्त विवेक' आदि) ने आधुनिक काल में प्रकाशित अपने ग्रन्थों में रामानन्द का सम्बन्ध रामानुज स्वामी से जोड़ा है, उन्होंने किसी प्रामाणिक आधार पर ऐसा नहीं किया है। केवल जनश्रुति का ही अवलम्बन किया है।

भगवदाचार्य जी का निष्कर्ष—वस्तुतः अग्रस्वामी जी द्वारा दी गई रामानन्द-सम्प्रदाय की प्रामाणिक गुरु-परम्परा इस प्रकार है :—श्रीराम–सीता–हनुमान–ब्रह्मा–वसिष्ठ–पराशर–व्यास–शुक–पुरुषोत्तमाचार्य–गंगाधराचार्य–सदाचार्य–रामेश्वराचार्य–द्वारानन्दाचार्य–देवानन्दाचार्य–श्यामानन्दाचार्य–श्रुतानन्दाचार्य–चिदानन्दाचार्य–पूर्णानन्दाचार्य–श्रियानंदाचार्य–हर्यानंदाचार्य–राघवानंद–रामानंद।

उपर्युक्त मतों की समीक्षा—द्वितीय मत के अनुयायियों ने अपने पक्ष के समर्थन में केवल एक सबल प्रमाण दिया है :—वह है रामानन्द-सम्प्रदाय और रामानुज-सम्प्रदाय में मंत्र, उपास्य, उपासनापद्धति आदि की दृष्टि से कुछ मौलिक भेद। इन दृष्टियों से रामानन्द-सम्प्रदाय और रामानुज-सम्प्रदाय में भेद है अवश्य, किन्तु दार्शनिक सिद्धान्त की दृष्टि से दोनों ही सम्प्रदाय विशिष्टाद्वैत मत के अनुवर्ती हैं। फिर यह क्या सम्भव नहीं कि रामानन्द ने रामानुज-सम्प्रदाय को स्वसमयानुकूल मोड़ने की दृष्टि से मंत्र, उपास्य एवं उपासना पद्धति को अधिक उदार बना कर मूल दार्शनिक सिद्धान्त वही रहने दिया हो ? कम-से-कम

रामानन्द के सम्बन्ध में प्रचलित जनश्रुतियाँ तो इसी का समर्थन करती हैं। नाभाजी के 'भक्तमाल', 'श्री वैष्णवमताब्जभास्कर' एवं 'श्री रामार्चन पद्धति' के उल्लेख एवं रामानन्द-सम्प्रदाय की समस्त प्राचीन परम्पराएँ इस बात का संकेत करती हैं कि श्री रामानन्द-सम्प्रदाय का श्री रामानुज-सम्प्रदाय से पूर्व सम्बन्ध अवश्य ही चला आ रहा है। यदि अग्रस्वामी ने किसी गुरु-परम्परा का निर्माण किया होता तो निश्चय ही नाभादास जी द्वारा उसका पालन किया गया होता। फिर अग्रस्वामी के नाम पर जिस परम्परा का प्रचार किया गया है, उसकी आधार-स्वरूप प्राचीन हस्तलिखित पोथी न तो कहीं प्राप्य ही है और न उनका किसी अन्य पूर्वाचार्य ने उल्लेख ही किया है। अग्रदास के शिष्य स्वयं नाभा जी अपने गुरु के आदेश से जिस 'भक्तमाल' की रचना करते उसी में वे अपने पूर्वाचार्यों को विस्मृत कर जाते, यह एक आश्चर्य जनक बात है। अतः जब तक अग्रदास कृत गुरु-परम्परा की प्रामाणिक एवं प्राचीन हस्तलिखित पोथी नहीं मिल जाती तब तक इस परम्परा को नितान्त ही सन्देह की दृष्टि से देखा जाना चाहिये। परम्परा के विरोधी सत्य की प्रतिष्ठा जिन प्रबल तर्कों एवं प्रमाणों के आधार पर की जानी चाहिए, उसका भगवदाचार्य जी में नितान्त ही अभाव है। वस्तुतः जब से रामानन्द-सम्प्रदाय को रामानुज-सम्प्रदाय से पृथक् सिद्ध करने का प्रश्न उठा है, तभी से इस परम्परा का प्रचार किया गया है और साथ ही अनेक नवीन कल्पित ग्रन्थ स्वामी रामानन्द के नाम पर चलाए गए हैं। शुक्ल जी[1] ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में ठीक ही कहा था कि ऐसे ग्रन्थों के विषय में सतर्क रहने की आवश्यकता है। प्राचीन ग्रन्थों में इच्छानुसार पाठान्तर कर देना (रामानुज के स्थान पर रामानूक रख देना) निष्पक्ष एवं वैज्ञानिक पथ नहीं कहा जा सकता।

दूसरी ओर पंडित रामटहल दास के तर्क अधिक प्रामाणिक एवं विचार संगत हैं। अपने मत के समर्थन में उन्होंने प्राचीन एवं नवीन सभी प्रकार की परम्पराओं एवं पुस्तकों से प्रमाण उद्धृत किए हैं। अतः परम्परा एवं प्राचीन उल्लेखों की दृष्टि से पंडित रामटहलदास का ही मत समीचीन जान पड़ता है।

डा० फ़र्कुहर[2] ने जिस प्राचीन रामावत्-सम्प्रदाय की कल्पना की है, उसके सम्बन्ध में वे स्वयं कोई प्रमाण उपस्थित न कर सके। इसी कारण बाद में चल कर उनको अपना पूर्वपथ छोड़ कर यह कल्पना करनी पड़ी कि वास्तव में राघवा-

१—हि० सा० इ०—पंडित रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ११६।

२—जे० आर० ए० एस०—दि हिस्टारिकल पोजीशन अव् रामानन्द।

नन्द ही इस रामावत-सम्प्रदाय के आचार्य थे और उत्तर-भारत में आकर उन्होंने रामानन्द को अपने प्रभाव में लाकर एक नए आन्दोलन को जन्म दिया। क्रमशः रामानन्द रामानुज-सम्प्रदाय के भी सम्पर्क में आते गए। उनके शिष्य-प्रशिष्य तो इस सम्प्रदाय के इतने निकट सम्पर्क में आ गए कि दोनों में अभिन्नता सी हो गई। नाभाजी के पूर्व ही यह कार्य सम्पन्न हो चुका था।[१]

खेद है, डा० फ़र्कुहर का अनुमान प्रमाणाभाव में हमें मान्य नहीं हो सकता। अतः उपलब्ध सभी प्रामाणिक सामग्री के आधार पर यह कहा जा सकता है कि रामानन्द स्वामी का पूर्व सम्बन्ध रामानुज-सम्प्रदाय ही से था।

रामानुज-सम्प्रदाय से रामानन्द के पृथक् होने का कारण एवं उनके द्वारा वैरागी-सम्प्रदाय की स्थापना—इस सम्बन्ध में सीताराम शरण भगवान प्रसाद रूपकला[२] ने एक किंवदन्ती का उल्लेख किया है जिसके अनुसार रामानन्द को खानपान-सम्बन्धी नियमों में अधिक उदासीन देख कर उनके गुरुभाइयों ने अपने साथ बैठ कर भोजन कराने में आपत्ति की। अतः गुरु राघवानन्द को विवश होकर अपने प्रतिभाशील शिष्य रामानन्द को नवीन सम्प्रदाय चलाने की आज्ञा देनी पड़ी। रामानन्द द्वारा प्रचारित उदार भक्ति-मार्ग को देखते हुए यह कल्पना असंगत नहीं जान पड़ती। फिर भी इसके पक्ष में कोई प्रामाणिक सामग्री नहीं उपलब्ध होती। रामानन्द के शिष्यों में जुलाहा, चमार, जाट, क्षत्रिय एवं स्त्रियाँ आदि सभी थे। भक्ति का द्वार उन्होंने सभी के लिये मुक्त कर दिया था।

रामानन्द-सम्प्रदाय और रामानुज-सम्प्रदाय में अन्तर

रामानन्द-सम्प्रदाय

१—यहाँ द्विभुज श्रीराम परमोपास्य हैं।

२—साम्प्रदायिक मंत्र है 'ओउमूरामाय नम.'।

३—इस सम्प्रदाय का नाम 'श्री सम्प्रदाय' या 'रामानन्द-सम्प्रदाय' या 'वैरागी-सम्प्रदाय' है।

४—इस सम्प्रदाय में आचार पर अधिक बल नहीं दिया जाता। कर्मकाण्ड का महत्व यहाँ बहुत कम है।

५—इस सम्प्रदाय में शुक्ल श्री, विन्दु श्री, रक्त श्री, लस्करी आदि अनेक प्रकार के तिलक प्रचलित हैं।

१—वही, सन् १६२२ ई०।

२—रूपकला-भक्तमाल।

रामानुज-सम्प्रदाय

१—चतुर्भुज नारायण—परमोपास्य हैं।
२—साम्प्रदायिक मंत्र—ओंउम् नारायणायनमः है।
३—सम्प्रदाय का नाम—'लक्ष्मी-सम्प्रदाय' या श्री-सम्प्रदाय' है।
४—आचार पर बहुत अधिक बल दिया गया है।
५—इस संप्रदाय का प्रधान तिलक है-किनारे-किनारे शुक्ल वर्ण, बीच में रक्त श्री।

दोनों सम्प्रदायों में समानता—दोनों सम्प्रदायों में प्रमुख समानता यह है कि दोनों ही विशिष्टाद्वैत मत को स्वीकार करते हैं। दोनों ही ब्रह्म को चिदचिद्-विशिष्ट मानते हैं तथा दोनों ही के मत से मोक्ष का उपाय परमोपास्य की 'प्रपत्ति' है।

रामानन्द सम्प्रदाय का विकास—रामानन्द-सम्प्रदाय या वैरागी-सम्प्रदाय की स्थापना—गुरु राघवानन्द की अनुमति पाकर रामानन्द जी ने साधुओं का एक विशाल दल सुसंगठित किया जिसे उन्होंने 'वैरागी' नाम से संबोधित किया। विल्सन के मत से इन साधुओं को उन्होंने 'अवधूत' के नाम से भी अभिहित किया। तभी से रामानन्द सम्प्रदाय का नाम वैरागी-सम्प्रदाय या अवधूत मार्ग हो गया।[१] किन्तु, सत्य यह है कि रामानन्द-सम्प्रदाय की तपसी शाखा के साधु ही अपने को अवधूत-मार्गी कहते हैं, शेष वैरागी ही।

रामानन्द स्वामी के शिष्य—क-'भक्तमाल' के अनुसार रामानन्द के शिष्यों में प्रमुख निम्नलिखित थे।[२] अनन्तानन्द, कबीर, सुखानन्द, सुरसुरानन्द, पद्मावती, नरहर्यानन्द, पीपा, भावानन्द, रैदास, धना, सेन और सुरसुरी।

ख—अग्रस्वामी कृत 'रहस्यत्रय' की संस्कृत टीका[३] में गालवानन्द और योगानन्द को भी रामानन्द स्वामी का शिष्य स्वीकार कर लिया गया है। रूपकला जी[४] ने भी गालवानन्द जी को स्वामी रामानन्द जी का शिष्य स्वीकार किया है। योगानन्द को 'नाभादास' जी ने अनन्तानन्द जी का शिष्य कहा है[५]। नाभा जी का मत अधिक प्रामाणिक है, क्योंकि एक तो वे स्वयं रामानन्द-

---

१—एच्० एच्० विल्सन-रिलीजस सेक्ट्स अव् हिन्दूज़, पृ० ५६।
२—रूपकला, भक्तमाल, पृ० २८२, छप्पय ६६१।
३—वही, पृ० २८४-८५।
४—वही, पृ० २८४।
५—वही, पृ० २६८।

सम्प्रदाय के ही एक विद्वान् भक्त थे, दूसरे योगानन्द उनसे तीसरी पीढ़ी ऊपर के ही भक्त थे।

ग—'अगस्त्यसंहिता'[१] में स्वामी जी के इन शिष्यों को द्वादश महाभागवतों का अवतार भी मान लिया गया है। अनन्तानन्द जी को ब्रह्मा जी का, सुरसुरानन्द को नारद का, सुखानन्द को शम्भु का, नरहर्यानन्द को सनत्कुमार का, योगानन्द को कपिल का, पीपा को मनु का, कबीर को प्रह्लाद का, भावानन्द को जनक का, सेन को भीष्म का, धना को बलि का, गालवानन्द को शुकदेव का तथा रैदास को यमराज का अवतार इस ग्रन्थ में कहा गया है। पद्मावती जी को दूसरी लक्ष्मी के समान कहा गया है।

इन उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त रामानन्द-सम्प्रदाय के प्रायः सभी ग्रन्थों में 'भक्तमाल' के ही मत को स्वीकार किया गया है।[२] रामानन्द-सम्प्रदाय में प्रचलित प्रायः सभी परम्पराएँ एवं जनश्रुतियाँ भी 'भक्तमाल' के मत का ही समर्थन करती हैं। हिन्दी साहित्य के प्राय: सभी इतिहासकारों ने 'भक्तमाल' के मत को ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर लिया है किन्तु, संत-साहित्य के विशेषज्ञ कुछ ऐसे भी विद्वान् हैं जिन्होंने अनेक प्रकार की सामग्री की पूर्ण परीक्षा करके यह निर्णय किया है कि 'आनन्दान्त' नाम वाले शिष्यों को स्वामी रामानन्द जी का शिष्य मान लिया जा सकता है, किन्तु कबीर, सेन, धना, पीपा और रैदास के विषय में यही बात दृढ़ता के साथ नहीं कही जा सकती। पं० परशुराम चतुर्वेदी[३] इस श्रेणी से विद्वानों में सर्वप्रमुख हैं। इस सम्बन्ध में उनका निष्कर्ष यह है[४]:—'अतएव उक्त सभी पर बातों विचार करते हुए यही अनुमान लगाया जा सकता है कि उक्त पाँच व्यक्तियों में से कदाचित् किसी ने भी स्पष्ट शब्दों में स्वामी रामानन्द को अपना गुरु स्वीकार नहीं किया है और उनमें से सभी ने उनका नाम तक नहीं लिया है। कम-से-कम पीपा जी ने अपने को कबीर साहब द्वारा तथा धन्ना ने नामदेव, कबीर साहब, रैदास, तथा सेन नाई की कथाओं द्वारा प्रभावित होना स्वीकार किया है। सम्भव है उक्त सभी सन्त एक ही समय और एक ही साथ ऐसी स्थिति में वर्तमान भी न रहे होंगे जिससे उनका स्वामी रामानन्द का शिष्य और आपस में गुरु-भाई होना किसी प्रकार सिद्ध किया जा

१—रामानन्द जन्मोत्सव, रणछर पुस्तकालय, डाकौर; पं० रामनारायणदास, पृ० २०।

२—देखिये इस ग्रन्थ का 'अध्ययन की सामग्री' नामक अध्याय।

३—परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० २२३-२७।

४—वही, पृष्ठ २२७।

सके।' चतुर्वेदी जी ने इन शिष्यों के जीवन एवं उनकी रचनाओं से सम्बन्धित सभी प्रकार की सामग्री की पूरी छानबीन कर ली है, अतः उनका निष्कर्ष महत्त्वपूर्ण अवश्य हो जाता है, किन्तु जो कुछ भी सामग्री उन्हें उपलब्ध हुई है उसकी प्रामाणिकता की पूरी जाँच उन्होंने करने का प्रयास नहीं किया है। इन भक्तों के पदों का जब तक कोई प्रामाणिक संस्करण नहीं प्रकाशित हो जाता, अथवा अन्य कोई प्रामाणिक सामग्री-जो चतुर्वेदी जी के मतों का समर्थन कर सके—नहीं प्राप्त हो जाती तब तक 'भक्तमाल' में उल्लिखित एवं अन्य समस्त उपलब्ध परम्पराओं तथा जनश्रुतियों से समर्थित मत को सहज ही में अप्रामाणिक कह कर टाला नहीं जा सकता। वस्तुतः इस सम्बन्ध में इतनी स्वल्प सामग्री उपलब्ध हुई है कि 'भक्तमाल' या 'अगस्त्यसंहिता' के मत को स्वीकार कर लेने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग भी नहीं है। नाभादास स्वयं रामानन्दीय वैष्णव थे और रामानन्द की चौथी पीढ़ी के भक्त-कवि थे। परम्परा एवं सत्संग से जो ज्ञान उन्हें मिला उसका संकलन उन्होंने अपने ग्रन्थ 'भक्तमाल' में किया है।

कबीरादि उपर्युक्त ५ भक्तों को पंडित परशुराम चतुर्वेदी ने इस प्रकार रखा है[१]:—स्वामी रामानन्द, सेननाई, कबीर साहब, पीपा, रैदास, और धन्ना। 'उत्तरी-भारत की सन्त-परम्परा' से उनके इस मत का विस्तृत ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। यहाँ स्वामी जी के शिष्यों के जीवन एवं उनकी रचनाओं पर नवीन शोधों के आधार पर प्रकाश डालने की चेष्टा की जा रही है।

अनन्तानन्द—अनन्तानन्द को नाभा जी ने रामानन्द स्वामी का सर्वप्रमुख शिष्य कहा है। इनका प्रताप इतना प्रखर था कि इनके चरणों का स्पर्श कर योगानन्द, गयेश, कर्मचन्द, अल्ह, पयहारी, सारी रामदास, श्री रंग तथा नरहरि दास आदि भक्त लोकपालों के सदृश हो गए थे।[२] इन्हीं अनन्तानन्द जी ने 'हरिभक्ति-सिन्धु-वेला' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। महात्मा जीवाराम जी[३] ने अनन्तानन्द को रामानन्द जी के द्वादश शिष्यों में सबसे ज्येष्ठ्य कहा है। उनके अनुसार ये बहुत बड़े शृंगारी भक्त थे। 'जनकलली' के बड़े ही कृपा पात्र

१—वही, पृष्ठ ७२८।

२—योगानन्द गयेश कर्मचन्द अल्ह पैहारी। सारीरामदास श्री रंग अवधि गुणमहिमाभारी॥ तिन्हके नरहरि उदित मुदित मेहा मंगलतन। रघुवर यदुवर गाइ विमल कीरति संच्योधन। हरिभक्ति सिंधुवेलारचे पानिपद्मजासिर दए। अनन्तानन्द पद परसिकै लोकपाल से ते भए॥ ३७॥ १७७, रूपकला संपादित, भक्तमाल, पृष्ठ २९८।

३—रसिक प्रकाश भक्तमाल-जीवाराम, छप्पय ११।

थे तथा रास-रस में डूबे रहते थे। कहा गया है 'समाधि' की अवस्था में उनके नेत्रों से विरही की भाँति आँसू चला करते थे :—

रसिक समाधी प्रबल कृपा उर दाह लहे हैं।
जनक लली के कृपा रासरस पूरि रहे हैं।
आंसू चलत समाधि में अद्भुत गतिविरही लहे।
शिष्य किये यहु विरतिरति तिनके गुनगन को कहे।

छप्पय ११

'रसिक प्रकाश भक्तमाल' के टीकाकार श्री जानकी रसिकशरण जी के अनुसार जिस रामभक्ति का प्रचार शठकोप-रामानुज आदि ने किया था वह भक्ति-लता बीच ही में सूख गई थी। रामानन्द ने उसे पल्लवित किया और अनन्तानन्द तो रामानन्द के चरणों के सबसे अधिक अनुरागी थे ही। टीकाकार ने इन्हें चारु-शीला जी के रूप का उपासक भी कहा है।

रूपकला जी[1] ने इनके सम्बन्ध में एक चमत्कारपूर्ण घटना का भी उल्लेख किया है। कभी सांभर देश के मालियों ने आपके साथ के योगियों को विही का फूल नहीं लेने दिया। फल स्वरूप दूसरे दिन उस देश भर में विही नहीं पाया गया। राजा यह सुन कर अनन्तानन्द की शरण आया और तत्पश्चात् वह देश भगवद्भक्त हो गया।

अनन्तानन्द जी का शेष जीवन-वृत्त अज्ञात है। 'महाभागवतचरित' में क्षितीशतनय सखा नाम से विनायक जी ने जो जीवन चरित 'अनन्तानन्द' जी का दिया है, वह नितान्त ही कल्पना प्रसूत है। हमारे अध्ययन को उससे कोई गति नहीं मिलती।

कबीर—कबीर के सम्बन्ध में सन्त-साहित्य एवं कबीर के विशेषज्ञों ने बहुत कुछ कहा है। अतः उसकी पुनरावृत्ति यहाँ अनावश्यक ही होगी। उनके जीवन-वृत्त से सम्बन्धित मुख्य समस्याओं पर ही यहाँ प्रकाश डाला जा सकेगा। प्रायः सभी उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर कबीर दास स्वामी रामानन्द के ही शिष्य ठहरते हैं, किन्तु वे रामानन्द से पूर्णतया प्रभावित ही थे, ऐसा सिद्ध करने का प्रयास रीवां नरेश विश्वनाथ सिंह को छोड़कर अभी तक किसी ने भी नहीं किया है। कदाचित् इसी कारण प्रसिद्ध रामानन्दी विद्वान् भगवदाचार्य जी ने कहा है कि रामानन्द के शिष्य कबीर प्रसिद्ध सन्त कबीर नहीं थे, बल्कि राम कबीर थे

१—रूपकला, भक्तमाल, पृष्ठ २६६।

सके।' चतुर्वेदी जी ने इन शिष्यों के जीवन एवं उनकी रचनाओं से सम्बन्धित सभी प्रकार की सामग्री की पूरी छानबीन कर ली है, अतः उनका निष्कर्ष महत्त्वपूर्ण अवश्य हो जाता है, किन्तु जो कुछ भी सामग्री उन्हें उपलब्ध हुई है उसकी प्रामाणिकता की पूरी जाँच उन्होंने करने का प्रयास नहीं किया है। इन भक्तों के पदों का जब तक कोई प्रामाणिक संस्करण नहीं प्रकाशित हो जाता, अथवा अन्य कोई प्रामाणिक सामग्री-जो चतुर्वेदी जी के मतों का समर्थन कर सके—नहीं प्राप्त हो जाती तब तक 'भक्तमाल' में उल्लिखित एवं अन्य समस्त उपलब्ध परम्पराओं तथा जनश्रुतियों से समर्थित मत को सहज ही में अप्रामाणिक कह कर टाला नहीं जा सकता। वस्तुतः इस सम्बन्ध में इतनी स्वल्प सामग्री उपलब्ध हुई है कि 'भक्तमाल' या 'अगस्त्यसंहिता' के मत को स्वीकार कर लेने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग भी नहीं है। नाभादास स्वयं रामानन्दीय वैष्णव थे और रामानन्द की चौथी पीढ़ी के भक्त-कवि थे। परम्परा एवं सत्संग से जो ज्ञान उन्हें मिला उसका संकलन उन्होंने अपने ग्रन्थ 'भक्तमाल' में किया है।

कबीरादि उपर्युक्त ५ भक्तों को पंडित परशुराम चतुर्वेदी ने इस प्रकार रखा है[१]:—स्वामी रामानन्द, सेननाई, कबीर साहब, पीपा, रैदास, और धन्ना। 'उत्तरी-भारत की सन्त-परम्परा' से उनके इस मत का विस्तृत ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। यहाँ स्वामी जी के शिष्यों के जीवन एवं उनकी रचनाओं पर नवीन शोधों के आधार पर प्रकाश डालने की चेष्टा की जा रही है।

अनन्तानन्द—अनन्तानन्द को नाभा जी ने रामानन्द स्वामी का सर्वप्रमुख शिष्य कहा है। इनका प्रताप इतना प्रखर था कि इनके चरणों का स्पर्श कर योगानन्द, गयेश, कर्मचन्द, अल्ह, पयहारी, सारी रामदास, श्री रंग तथा नरहरि दास आदि भक्त लोकपालों के सदृश हो गए थे।[२] इन्हीं अनन्तानन्द जी ने 'हरिभक्ति-सिन्धु-वेला' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। महात्मा जीवाराम जी[३] ने अनन्तानन्द को रामानन्द जी के द्वादश शिष्यों में सबसे ज्येष्ठ्य कहा है। उनके अनुसार ये बहुत बड़े शृंगारी भक्त थे। 'जनकलली' के बड़े ही कृपा पात्र

१—वही, पृष्ठ ७२८।

२—योगानन्द गयेश कर्मचन्द अल्ह पैहारी। सारीरामदास श्री रंग अवधि गुणमहिमाभारी।। तिन्हके नरहरि उदित मुदित मेहा मंगलतन। रघुवर यदुवर गाइ विमल कीरति संच्योधन। हरिभक्ति सिंधुवेलारचे पानिपद्मजासिर दए। अनन्तानन्द पद परसिकै लोकपाल से ते भए।। ३७।। १७७, रूपकला संपादित, भक्तमाल, पृष्ठ २९८।

३—रसिक प्रकाश भक्तमाल-जीवाराम, छप्पय ११।

थे तथा रास-रस में डूबे रहते थे। कहा गया है 'समाधि' की अवस्था में उनके नेत्रों से विरही की भाँति आँसू चला करते थे :—

रसिक समाधी प्रबल कृपा उर दाह लहे हैं।
जनक लली के कृपा रासरस पूरि रहे हैं।
आंसू चलत समाधि में अद्भुत गतिविरही लहे।
शिष्य किये यहु विरतिरति तिनके गुनगन को कहे।

छप्पय ११

'रसिक प्रकाश भक्तमाल' के टीकाकार श्री जानकी रसिकशरण जी के अनुसार जिस रामभक्ति का प्रचार शठकोप-रामानुज आदि ने किया था वह भक्ति-लता बीच ही में सूख गई थी। रामानन्द ने उसे पल्लवित किया और अनन्तानन्द तो रामानन्द के चरणों के सबसे अधिक अनुरागी थे ही। टीकाकार ने इन्हें चारु-शीला जी के रूप का उपासक भी कहा है।

रूपकला जी[1] ने इनके सम्बन्ध में एक चमत्कारपूर्ण घटना का भी उल्लेख किया है। कभी सांभर देश के मालियों ने आपके साथ के योगियों को विही का फूल नहीं लेने दिया। फल स्वरूप दूसरे दिन उस देश भर में विही नहीं पाया गया। राजा यह सुन कर अनन्तानन्द की शरण आया और तत्पश्चात् वह देश भगवद्भक्त हो गया।

अनन्तानन्द जी का शेष जीवन-वृत्त अज्ञात है। 'महाभागवतचरित' में क्षितीशतनय सखा नाम से विनायक जी ने जो जीवन चरित 'अनन्तानन्द' जी का दिया है, वह नितान्त ही कल्पना प्रसूत है। हमारे अध्ययन को उससे कोई गति नहीं मिलती।

कबीर—कबीर के सम्बन्ध में सन्त-साहित्य एवं कबीर के विशेषज्ञों ने बहुत कुछ कहा है। अतः उसकी पुनरावृत्ति यहाँ अनावश्यक ही होगी। उनके जीवन-वृत्त से सम्बन्धित मुख्य समस्याओं पर ही यहाँ प्रकाश डाला जा सकेगा। प्रायः सभी उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर कबीर दास स्वामी रामानन्द के ही शिष्य ठहरते हैं, किन्तु वे रामानन्द से पूर्णतया प्रभावित ही थे, ऐसा सिद्ध करने का प्रयास रीवां नरेश विश्वनाथ सिंह को छोड़कर अभी तक किसी ने भी नहीं किया है। कदाचित् इसी कारण प्रसिद्ध रामानन्दी विद्वान् भगवदाचार्य जी ने कहा है कि रामानन्द के शिष्य कबीर प्रसिद्ध सन्त कबीर नहीं थे, बल्कि राम कबीर थे जिन्हें

१—रूपकला, भक्तमाल, पृष्ठ २६६।

भ्रमवश सन्त कबीर समझ लिया गया है।[१] अयोध्या में एक 'रामकबीर-पन्थ' है, जिसका केन्द्र 'हनुमन्निवास' है। इस पन्थ के भक्त अपने को रामानन्दीय वैष्णव मानते हैं और रामकबीर जी को अपना प्रधानाचार्य। उनके अनुसार रामकबीर स्वामी रामानन्द जी के सगुणमार्गी शिष्य थे। इस पन्थ के भक्त राम को उसी दृष्टि से देखते हैं, जिस दृष्टि से अन्य रामानन्दीय भक्त। पं० परशुराम चतुर्वेदी[२] के अनुसार कबीर पन्थी लोगों का अनुमान है कि रामकबीर पन्थ के प्रचारक कोई 'पद्मनाभ' जी थे, परन्तु वे कबीर के शिष्य पद्मनाभ ही थे इस सम्बन्ध में वे प्रायः मौन रहते हैं। हनुमत् निवास के महन्थ से मिलने पर मुझे केवल इतना ही ज्ञात हो सका कि रामकबीर जी रामानन्द के एक प्रिय शिष्य थे, उनके जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में कोई सूचना नहीं मिल सकी। यह सम्भव है कि रामकबीर जी के अनुयायियो ने ही बाद में चल कर उनको प्रसिद्ध निर्गुण सन्त कबीर से एक कर दिया हो, साथ ही उनकी रामोपासना में अपनी आस्था पूर्ववत् रखी हो। जो हो, इस सम्बन्ध में जब तक पुष्ट प्रमाण न मिल जायं तब तक प्रसिद्ध सन्त कबीर को ही रामानन्द का शिष्य मानना उचित है। 'भक्तमाल' तथा 'अगस्त्य-संहिता' में उन्हीं का उल्लेख है। कबीर का समय पंडित परशुराम चतुर्वेदी ने सं० १४२५-१५०५ वि०[३] तक माना है, रामकबीर का नहीं। इस सम्बन्ध में कोई निश्चित् एवं प्रामाणिक सामग्री अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकी है, अतः जो कुछ भी कहा गया है वह तर्क एवं अनुमान पर ही अधिक आश्रित है। चतुर्वेदी जी के मत से कबीरदास जुलाहे ही थे, मूलतः हिन्दू कोरी या विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न नहीं। डॉ० हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के मत से कबीरदास कुछ ही पहले धर्मान्तर ग्रहण करने वाले बौद्ध मतानुयायी जोगी कुल में उत्पन्न हुए थे, किन्तु चतुर्वेदी जी का मत है कि उन्हें जुलाहा मान कर भी उनके जीवन एवं संस्कारों से सम्बन्धित समस्यायें सुलझाई जा सकती हैं।

चतुर्वेदी जी का निश्चित् मत है, 'कबीर के जन्म स्थान के लिए काशी से बढ़कर अभी कोई दूसरा स्थान सिद्ध नहीं हो सका और हम समझते हैं कि उसे मगहर, बेलहरा (आजमगढ़) अथवा अन्यत्र कहीं भी ठहराने के लिए कुछ अधिक प्रमाण चाहिए।' परम्परा से भी कबीर का जन्म काशी में ही माना

१—"श्री राम कबीर को हमारा-सम्प्रदाय श्री स्वामी जी का शिष्य मानता है। संतकबीर कोई दूसरे हैं"-परम्परा परित्राण, पृ० ३३।

२—परशुराम चतुर्वेदी-उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० २६२।

३—वही, पृष्ठ ७३३।

जाता रहा है। कबीर के नाम पर एक उक्ति भी इस संबंध में प्रचलित है—
"काशी में हम प्रगट भए हैं रामानन्द चेताए।"

रामानन्द-सम्प्रदाय के इतिहास-ग्रन्थों से यह स्पष्ट है कि कबीरदास स्वामी रामानन्द जी की दिग्विजय (तीर्थ यात्राएँ ?) में उनके साथ-साथ रहे। उनकी रचनाओं से भी यह स्पष्ट है कि उन्होंने सत्संग के लिए विस्तृत भ्रमण एवं देशाटन किया था। पीताम्बर पीर के लिए वे कभी जौनपुर भी गए थे, शेखतक़ी के लिए कड़ामानिकपूर तथा झूंसी भी गए ही होंगे। पं० परशुराम चतुर्वेदी ने अनुमान के आधार पर उनके रतनपुर (अवध), जगन्नाथपुरी, भड़ौंच, बांधवगढ़ एवं मथुरा में भी जाने का उल्लेख किया है। किनकेड और पार्सनीस के मतों के आधार पर उन्होंने उनके पंढरपुर जाने की भी संभावना की है। फिर भी इस सम्बन्ध में 'भक्तमाल' एवं रामानन्द-संप्रदाय के ग्रन्थों के आधार पर केवल इतना ही कहा जा सकता है कि कबीरदास ने विस्तृत देशाटन कर ज्ञानार्जन किया था।

कबीरदास के पारिवारिक जीवन के सम्बन्ध में अनेक अनुमान लगाए गए हैं। यहाँ उनकी छानबीन करनी उद्दिष्ट नहीं है। 'कबीरदास' के विशेषज्ञ पं० परशुराम चतुर्वेदी के मत से कबीर के पिता कोई 'बड़ुगोसाईं' थे, मां को उनके कंठी-माला धारण करने का अपार शोक था। कबीर के एक पुत्र भी था, जिसका नाम था कमाल और जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि उन्होंने उसे प्रचार के लिए अहमदाबाद की ओर भेजा। परम्परा से उनकी स्त्री का नाम 'लोई' प्रसिद्ध है, कहीं-कहीं उनकी रचनाओं में उसे 'धनियाँ' भी कहा गया है, जिसे लोगों ने 'रामजनियाँ' भी कहना प्रारम्भ कर दिया था। कबीरदास का व्यवसाय कपड़ा बुनना था, किन्तु इस कार्य में भी वे प्रायः शिथिल ही रहा करते थे। फिर भी कबीर संतोषी थे, उनके यहाँ इस गरीबी में भी संतों की भीड़ लगी रहती थी।

कबीरदास के उपलब्ध चित्रों के आधार पर पं० परशुराम चतुर्वेदी का मत है कि उनके जीवन में सादगी ही दीख पड़ती है, आडंबर नहीं।

उपर्युक्त परिचय से स्पष्ट है कि कबीर का प्रामाणिक इतिवृत्त उपस्थित करना अभी भी शेष है। इस सम्बन्ध में यद्यपि डॉ० रामकुमार वर्मा, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा पं० परशुराम चतुर्वेदी जी के प्रयास स्तुत्य हैं, फिर भी कबीर के सम्बन्ध में सभी समस्याओं पर उपर्युक्त विद्वानों का एक मत न होना

भ्रमवश सन्त कबीर समझ लिया गया है।[१] अयोध्या में एक 'रामकबीर-पन्थ' है, जिसका केन्द्र 'हनुमन्निवास' है। इस पन्थ के भक्त अपने को रामानन्दीय वैष्णव मानते हैं और रामकबीर जी को अपना प्रधानाचार्य। उनके अनुसार रामकबीर स्वामी रामानन्द जी के सगुणमार्गी शिष्य थे। इस पन्थ के भक्त राम को उसी दृष्टि से देखते हैं, जिस दृष्टि से अन्य रामानन्दीय भक्त। पं० परशुराम चतुर्वेदी[२] के अनुसार कबीर पन्थी लोगों का अनुमान है कि रामकबीर पन्थ के प्रचारक कोई 'पद्मनाभ' जी थे, परन्तु वे कबीर के शिष्य पद्मनाभ ही थे इस सम्बन्ध में वे प्रायः मौन रहते हैं। हनुमत् निवास के महन्थ से मिलने पर मुझे केवल इतना ही ज्ञात हो सका कि रामकबीर जी रामानन्द के एक प्रिय शिष्य थे, उनके जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में कोई सूचना नहीं मिल सकी। यह सम्भव है कि रामकबीर जी के अनुयायियों ने ही बाद में चल कर उनको प्रसिद्ध निर्गुण सन्त कबीर से एक कर दिया हो, साथ ही उनकी रामोपासना में अपनी आस्था पूर्ववत् रखी हो। जो हो, इस सम्बन्ध में जब तक पुष्ट प्रमाण न मिल जायं तब तक प्रसिद्ध सन्त कबीर को ही रामानन्द का शिष्य मानना उचित है। 'भक्तमाल' तथा 'अगस्त्य-संहिता' में उन्हीं का उल्लेख है। कबीर का समय पंडित परशुराम चतुर्वेदी ने सं० १४२५-१५०५ वि०[३] तक माना है, रामकबीर का नहीं। इस सम्बन्ध में कोई निश्चित् एवं प्रामाणिक सामग्री अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकी है, अतः जो कुछ भी कहा गया है वह तर्क एवं अनुमान पर ही अधिक आश्रित है। चतुर्वेदी जी के मत से कबीरदास जुलाहे ही थे, मूलतः हिन्दू कोरी या विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न नहीं। डॉ० हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के मत से कबीरदास कुछ ही पहले धर्मान्तर ग्रहण करने वाले बौद्ध मतानुयायी जोगी कुल में उत्पन्न हुए थे, किन्तु चतुर्वेदी जी का मत है कि उन्हें जुलाहा मान कर भी उनके जीवन एवं संस्कारों से सम्बन्धित समस्यायें सुलझाई जा सकती हैं।

चतुर्वेदी जी का निश्चित् मत है, 'कबीर के जन्म स्थान के लिए काशी से बढ़कर अभी कोई दूसरा स्थान सिद्ध नहीं हो सका और हम समझते हैं कि उसे मगहर, बेलहरा (आजमगढ़) अथवा अन्यत्र कहीं भी ठहराने के लिए कुछ अधिक प्रमाण चाहिए।' परम्परा से भी कबीर का जन्म काशी में ही माना

१—"श्री राम कबीर को हमारा-सम्प्रदाय श्री स्वामी जी का शिष्य मानता है। संतकबीर कोई दूसरे हैं"-परम्परा परित्राण, पृ० ३३।

२—परशुराम चतुर्वेदी-उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० २६२।

३—वही, पृष्ठ ७३३।

सिद्ध करता है कि उनके मत तर्काश्रित अधिक हैं और उनका आधार नितांत अंतिम नहीं कहा जा सकता।

कबीरदास की रचनाओं का संग्रह 'कबीर-ग्रन्थावली', 'संत कबीर' या 'बीजक' में उपलब्ध होता है। इनके अतिरिक्त अनेक ग्रन्थों का पता चला है, जिनकी प्रामाणिकता की पूरी जाँच अभी नहीं हो पाई है। डॉ० वर्मा ने उन पर विस्तार से 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' में विचार किया है। कबीर के ग्रन्थों की प्रामाणिकता पर श्री पारसनाथ तिवारी ने इधर शोधकार्य किया है। कबीर-पंथी साहित्य पर डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी भी महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं।

सुखानन्द—नाभादास ने सुखानन्द के सम्बन्ध में निम्नलिखित छप्पय दिया है—

सुखसागर की छाप राग गौरी रुचि न्यारी।
पद रचना गुरुमंत्र मनौ आगम अनुहारी॥
निसिदिन प्रेम प्रवाह द्रवत भूधर ज्यों निर्झर।
हरिगुन कथा अगाध भाल राजत लीलाभर॥
संत-कंज पोषन विमल, अति पियूष सरसी सरस।
भक्तिदान भै हरन भुज, सुखानन्द पारसपरस॥[१]

श्री सुखानन्द जी अपने पदों में 'सुखसागर' की छाप दिया करते थे, गौरी राग में उनके अनेक पद नाभा जी के समय तक पाए जाते थे। गुरुमंत्र अथवा संहितातंत्र के समान ही उनके पद नियमित हैं, उनकी रुचि लोक से न्यारी ही थी। जिस प्रकार पहाड़ से झरना रात-दिन झरता रहता है, उसी प्रकार उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु झरा करता था। सुखानन्द दिन-रात भगवान् का ही गुण-गान किया करते थे। वे कथा-लीलारूपी विमल अमृत से युक्त संतजन-कमल के पोषक सरस सरोवर के ही समान थे। भगवान् की कथा-कहते समय उनका ललाट अत्यन्त प्रभा-युक्त हो जाता था। भगवान् की भुजाओं की भाँति ही वे भक्ति का दान करने तथा प्राणिमात्र के कष्ट को दूर करने में लगे रहते थे। जीवों के लिये तो वे पारसमणि की ही भाँति थे। खेद है, सुखानन्द जी के ये पद अब अप्राप्य हैं। उनके जीवन के सम्बन्ध में भी कोई अन्य सामग्री हमें नहीं मिलती। 'अगस्त्यसंहिता' से जो सामग्री मिलती है, वह नितांत ही अनुपयोगी है।

सुरसुरानन्द—सुरसुरानन्द जी के सम्बन्ध में 'भक्तमाल' में निम्नलिखित छप्पय[२] दिया गया है :—

१—भक्तमाल, पृ० ५२७।
२—वही, पृष्ठ ५२९।

एक समय अध्वाचलत बरावाक छल पाए।
देखा देखी शिष्य तिनहुँ पाछैं ते खाए॥
तिन पर स्वामी खिजे वमन करि बिन विस्वासी।
तिन तैसे परतच्छ भूमि पर कीन्ही रासी॥
सुरसुरी सुवर पुनि उद्गले पुहुप रेनु तुलसी हरी।
महिमा महा प्रसाद की सुरसुरानन्द सांची करी॥

इस छप्पय से स्पष्ट है कि स्वामी सुरसुरानन्द बड़े ही समर्थ भक्त थे। छल द्वारा दिए गए मांस-युक्त बड़े को उन्होंने खा तो लिया, किन्तु जब उन्हें इस छल का ज्ञान हुआ तो पुष्प-रेणु तथा तुलसी पत्ती के रूप में वमन कर दिया। इनके अन्य शिष्यों ने शुद्ध मांस ही वमन किया। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि एक ओर सुरसुरानन्द सभी भोज्य पदार्थ को परमेश्वर का प्रसाद समझ कर स्वीकार करते थे और दूसरी ओर वे खान-पान के सम्बन्ध में बड़े ही उदार दृष्टिकोण के भक्त थे। अवैष्णवों के हाथ का भी भोजन स्वीकार कर लेते थे। । गुरु रामानन्द के संदेश के वे एक सच्चे प्रचारक थे। धरणीदास जी सुरसुरानन्द जी की शिष्य-परम्परा में थे।

सुरसुरानन्द जी के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में और कुछ भी ज्ञात नहीं है।

नरहर्यानन्द—'नाभादास' जी ने अपने 'भक्तमाल'[१] में नरहर्यानन्द जी के सम्बन्ध में निम्नलिखित छप्पय दिया है :—

पतझर लकरी नाहिं शक्ति कौ सदन उदारैं।
शक्ति भक्त सौं बोलि दिनहिं प्रति बरही डारैं॥
लगी परोसी हौंस भवानीभ्वैंसो मारै।
बदले की बेगारि मूंड़ वाकै सिर डारै॥
भरत प्रसंग ज्यों कालिका लड्डू देखि तन मैं भई।
निपट नरहर्यानन्द कौ करदाता दुर्गा भई॥

वर्षा के कारण नरहर्यानन्द की कुटी में सन्तों के भोग के लिये लकड़ी न थी। विचार कर वे दुर्गा का मंदिर उजाड़ने लगे। देवी ने मंदिर उजड़ता देख कर एक बोझ लकड़ी नित्य देने की उनसे प्रतिज्ञा की। किसी पड़ोसी ने उनकी देखा देखी मंदिर उजाड़ना चाहा तो देवी उसका प्राण लेने पर तुल गईं। अन्त में उसने इस शर्त पर छोड़ा कि वह नरहर्यानन्द को एक बोझ लकड़ी

१—वही, पृष्ठ ५३१।

नित्य पहुँचाया करे। आगे नाभा जी ने नरहर्यानन्द को दिग्गजों के समान स्थानाधिपति, परमशूर, धीर एवं भक्त-पालक भी कहा है।[१] इनका शेष जीवन अज्ञात है।

सुरसुरी—नाभा जी के 'भक्तमाल' में सुरसुरी जी के सम्बन्ध में निम्न-लिखित छप्पय मिलता है[२] :—

अति उदार दम्पती त्यागिगृह बन को गवने।
अचरज भयो तहं एक सन्त सुन जिन हो विमने॥
बैठे हुते एकान्त आय असुरनि दुख दीयौ।
सुमिरे सारंगपानि रूप नरहरि कौ कीयौ॥
सुरसुरानन्द की घरनि कौं सत राख्यौ नर सिंह जह्यौं।
महासती सत ऊपमा त्यों सत्त सुरसुरी को रह्यौ॥

एक बार घर की सारी सम्पत्ति दान कर दम्पति (सुरसुरानन्द स्वामी तथा सुरसुरी जी) बन गए। वहाँ कुछ यवन आकर सुन्दरी सुरसुरी का सतीत्व नष्ट करना चाहते थे, पर उन दम्पती की प्रार्थना पर भगवान् ने नृसिंह रूप धारण कर यवनों का विनाश किया। फिर अपना मधुर रूप दिखा कर भक्त दम्पति को भगवान् ने कृतार्थ किया।

सुरसुरी जी का शेष वृत्त अज्ञात है।

सेन नाई—नाभादास जी ने सेन नाई के सम्बन्ध में निम्नलिखित छप्पय लिखा है[३] :—

प्रभु दास के काज रूप नापित कौ कीनौं।
छिप्र छुरहरी गही पानि दरपनतहँ लीनौं॥
तादृशह्वै तिहि काल भूप के तेल लगायौ।
उलटि राव भयो शिष्य प्रगट परचौ जब पायो॥
स्याम रहत सनमुख सदा ज्यों बच्छा हित धेन के।
विदित बात जग जानियै हरि भये सहायक सेन के॥

इस छप्पय से सेन के विषय में केवल इतना ही ज्ञात होता है कि वे भगवान् के बड़े ही कृपा पात्र थे। जिस प्रकार गाय बछड़े की रक्षा करती है, उसी प्रकार

१—वही, पृ० ६४८।

२—वही, पृ० ५३०।

३—वही, पृ० ५२५।

भगवान् सेन की रक्षा किया करते थे, यह बात संसार भर को विदित थी। सेन के लिये उन्होंने नाई का रूप धारण कर हाथ में छुरहरी और दर्पण ले लिया और सेन के समान रूप धर कर राजा को तेल लगाया। जब राजा को यह रहस्य ज्ञात हुआ तब वह सेन का शिष्य हो गया। स्पष्ट है, सेन जाति के नाई थे। परन्तु यह कौन राजा था, नाभा जी ने इसे स्पष्ट नहीं किया।

'भक्तमाल' के प्रसिद्ध टीकाकार श्री प्रियादास जी[1] ने उपर्युक्त छप्पय की टीका करते हुए सेन के सम्बन्ध में कुछ विशेष सूचनाएँ दी है। उनके अनुसार सेन बाँधवगढ़ के राजा के नाई थे। कहीं राजा को तेल लगाने जा रहे थे तभी मार्ग में कुछ हरिभक्त मिल गए। सेन घर लौट आए और बड़े आदर सत्कार से उन्होंने साधुओं की सेवा की फिर वे राजा के समीप गए और उनसे देर से आने का कारण बताया। राजा सारे रहस्य को जान गया। उसने कहा कि सेन ने तो उसकी सेवा अपने समय पर ही आकर की थी। सेन को यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ। राजा ने सेन के विलम्ब से पुनः आने की जब कथा सुनी तो वह दौड़ कर सेन के पैरों पड़ गया और उनका शिष्य हो गया। प्रियादास के समय तक सेन के परिवार के लोग भक्त होते आ रहे थे।

किन्तु प्रियादास ने भी इस राजा का नाम नहीं बताया है। इस सम्बन्ध में महाराज रघुराज सिंह जी ने कुछ संकेत किए हैं[2] :—

बांधवगढ़ पूरब जो गायो। सेन नाम नापित तंह जायो॥
ताकी रहे सदा यह रीती। करत रहे साधुन सों प्रीती॥
तंह को राजा रामबघेला। बरन्यौ जेहि कबीर को चेला॥
करै सदा तिन की सेवकाई। मुकुर दिखावै तेल लगाई॥

सेन के लिये भगवान् ने जब नापित का रूप धारण कर लिया तब :—

अस गुनि सेनहिं मिले महीपा। सिंहासन बैठाइ समीपा॥
गुरू सरिस पूजन कियो अतिसय आनन्द दाइ।
साधुन सब सेवै नगर दिन डौंड़ी पिटवाइ॥
राजाराम साधु सेवकाई। करन लगे रोजै चितलाई॥

इन राजाराम को रीवां नरेश ने कबीर का शिष्य कहा है। रघुराज सिंह ने अपनी वंश-परम्परा भी दी है। उसमें वे स्वयं राजा राम बघेल के वंश में बारहवें

१—भक्तमाल, रूपकला, पृ० ५२६-२७।

२—भक्तमाल राम रसिकावली, रघुराजसिंह, पृ० १०११।

राजा ठहरते हैं। राजा राम का समय[1] सं० १६११-१६४८ वि० तक माना जाता है। रघुराज सिंह जी ने भी इन्हें अकबर का समकालीन बतलाया है। रघुराज सिंह के अनुसार सेन को स्वामी रामानन्द जी पहले शिष्य नहीं बना रहे थे। बाद में उसे सन्त जान कर स्वीकार कर लिया।

रघुराज सिंह के साक्ष्य को स्वीकार कर लेने से अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं :—

१—सेन को राजा राम बघेल (सं० १६११-१६४८ वि०) का समकालीन मान लेने में रामानन्द स्वामी को कम से कम १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा १७ वीं के पूर्वार्द्ध में भी वर्तमान रहना स्वीकार करना होगा। पीछे हम देख चुके हैं कि रामानन्द की मृत्यु १४६७ वि० में ही मानी जाती है।

२—राजाराम कबीर के शिष्य माने गए हैं, किन्तु 'भक्तमाल' या प्रियादास की टीका में जिस राजा का उल्लेख हुआ है, वह सेन से प्रभावित होकर उनका शिष्य हो गया था। पं० परशुराम चतुर्वेदी[2] जैसे संत साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् कबीर का समय सं० १४२५ वि० से १५०५ वि० तक मानने लगे हैं। ऐसी परिस्थिति में सं० १६११ वि०-१६४८ वि० तक वर्तमान रहने वाले राजा 'राम' कबीर के शिष्य नहीं हो सकते।

इन्हीं दृष्टियों से पं० रूपनारायण पाण्डेय[3] ने रीवां वाले सेन का समय सं० १४५७ वि० के लगभग माना है। शिवसिंह सरोज में एक और सेन कवि का उल्लेख हुआ है, जो सं० १५६० वि० में उपस्थित थे। अतः जान पड़ता है रीवां नरेश रघुराज सिंह ने भ्रमवश सेन के समकालीन बांधवगढ़ नरेश को राजाराम ही मान लिया है। सेन कदाचित् अवध राजा दशरथ के सुत 'राजाराम' के उपासक या दास थे।[4]

सेन निश्चित् रूप से रामानन्द के समकालीन थे। गुरुग्रन्थ साहब[5] में उन्होंने अपने एक पद में लिखा है—

१—हिन्दी साहित्य का इतिहास—पं० रामचन्द्रशुक्ल, पृ० ११७।

२—उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० ७३३।

३—शिवसिंह सरोज, परिशिष्ठ, पृ० ६।

४—धूपदीप घृत साजि आरती। वारने जाऊँ कमलापती। मंगला हरिमंगला नित मंगल राजाराम राय को। गुरुग्रंथ साहब, लेखक-सेन।

५—गुरुग्रन्थ साहब।

उत्तम दियरा निरमल बाती। तुम्हीं निरंजन कमला पाती॥
रामभगति रामानन्दु जानै। पूरन परमानन्द बखानै॥
मदनमूरति मय तमी गुविन्दै। सैन भणय भजु परमानन्दै॥

इससे स्पष्ट है, सेन रामानन्द के समकालीन ही थे। ऐसे महापुरुष के वे शिष्य भी हो गए होंगे, इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता।

कुछ लोगों ने सेन को बीदर नरेश की सेवा में नियुक्त 'ज्ञानेश्वर' के समकालीन तथा उनकी शिष्य-मण्डली में सम्मिलित भी कहा है। पंढरपुर के भगवान् विट्ठलदास की स्तुति में लिखे इनके कुछ मराठी 'अभंग' भी पाए गए हैं। एक 'अभंग' में उन्होंने अपने को नाइन के उदर से उत्पन्न भी कहा है। इनके दिये दर्पण में भगवान् की चतुर्भुजी मूर्ति देख कर तथा तेल की कटोरी में भी उन्हीं भगवान् का दर्शन कर राजा इनका शिष्य हो गया। प्रो० रानडे ने इनका समय सं० १५०५ वि० माना है। पं० परशुराम चतुर्वेदी ने[१] श्री बी० एस० पण्डित का मत 'उत्तरी भारत की संत परम्परा' में उद्धृत किया है, जिसके अनुसार बांधवगढ़ के सेन ने ही मराठी के अभंगों की भी रचना की है। प्रमाणाभाव में इनका मत चतुर्वेदी जी को मान्य नहीं है; किन्तु भक्तमाल की कथा तथा महाराष्ट्र में प्रचलित कथा दोनों में ही सेन से राजा का प्रभावित होना कहा गया है। एक में स्वयं भगवान् भक्त का रूप धर कर आये थे, दूसरे में भगवान् भक्त के हाथों की आरसी तथा तेल में अपने चतुर्भुजी विग्रह से प्रकट हुए थे। अतः यह अनुमान कर लेना कि दोनों सेन एक ही हैं, कल्पना को दूर तक खींचना नहीं कहा जा सकता।

इतना अवश्य ही अनुमान किया जा सकता है कि कदाचित् सेन पहले बारकरी सम्प्रदाय से प्रभावित थे और बाद में चल कर स्वामी रामानन्द के शिष्य हो गए। संभव है मराठी 'अभंग' सेन के नाम पर चला दिये गए हों। चतुर्वेदी जी का यह अनुमान कि स्वामी रामानन्द के समकालीन होने के नाते सेन ज्ञानेश्वर के शिष्य नहीं कहे जा सकते, उचित ही प्रतीत होता है। अगस्त्यसंहिता, भक्तमाल तथा समस्त रामानन्द-सम्प्रदाय की परम्पराएँ सेन को स्वामी रामानन्द का शिष्य ही मानती आई हैं। सेन का शेष जीवन-वृत्त अज्ञात है।

सेन के नाम पर सेन-पंथ का उल्लेख डॉ० ग्रियर्सन ने किया है, परन्तु

१—उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० २३१-३२।

इस समय यह प्रचलित नहीं जान पड़ता। अन्यत्र इसका कोई भी उल्लेख नहीं मिलता है।

धना जी—'भक्तमाल' में धना जी के सम्बन्ध में निम्नलिखित छप्पय मिलता है—

घर आए हरिदास तिनहिं गोधूम खवाये।
तात मात डर खेत थोथ लांगूल चलाये॥
आसपास कृषिकार खेत की करत बड़ाई।
भक्तभजे की रीति प्रगट परतीति जु पाई॥
अचरज मानत जगत में कहुँ निपज्यौ कहुँ वै बयो।
धन्य धना के भजन को बिनहिं बीज अंकुर भयो॥
'भक्तमाल', पृष्ठ ५२१

इस पद से केवल इतना ही ज्ञात होता है कि धना जी एक बहुत बड़े भक्त थे। अपनी खेती बारी की भी चिन्ता न करके वे अपना सारा समय भक्तों की परिचर्या में लगा देते थे। भक्तों के लिये उन्होंने बोने के लिये रखे गेहूँ को भी व्यय कर दिया, पास के किसान उनके खेत में केवल बैल मात्र घुमाने पर हँसते थे, किन्तु भक्ति के प्रभाव से धना के खेत में सबसे अच्छा गेहूँ हुआ।

'भक्तमाल' के प्रसिद्ध टीकाकार श्री प्रियादास ने बतलाया है कि धना जी ने कभी एक ब्राह्मण को भोग लगाते देख कर उनसे शालग्राम की मूर्ति मांगी, किन्तु पण्डित जी ने एक पत्थर का टुकड़ा देकर कहा कि इसकी भली भांति पूजा करना। धना जी ने ब्राह्मण देवता की ही भाँति भगवान् के सामने भोग रख दिया। मूर्ति ने भोग नहीं लगाया। धना ने भी भोजन छोड़ दिया। कुछ दिन बीतने पर भगवान् ने उनकी श्रद्धा देख कर उन्हें दर्शन दिया और स्वयं भोग लगाया। बाद में भगवान् धना जी के गऊ भी चराने लगे। एक वर्ष बाद जब ब्राह्मण देवता आए तो धना ने उन्हें भी भगवान् के दर्शन कराए। कुछ समय के उपरान्त भगवान् के आदेश से धना जी काशी आए और स्वामी रामानन्द जी के शिष्य हो गए।

श्री गुरु-ग्रन्थ साहब[१] में उद्धृत धना जी के एक पद से ज्ञात होता है कि नामदेव, कबीर, रैदास, एवं सेन नाई की ख्याति से प्रभावित हो कर धना भी भक्ति की ओर आए और अन्त में उन्हें भी ईश्वर-साक्षात्कार हो गया। पं०

१—गुरु ग्रन्थ साहब-तरण-तारण संस्करण, रागु आसा, पद २, पृ० ४८७-८८।

परशुराम चतुर्वेदी का मत है[1] कि धना जी ने अपने किसी पद में रामानन्द के शिष्य होने का उल्लेख नहीं किया है। साथ ही उनके स्वामी रामानन्द के शिष्य होने का प्रत्यक्ष प्रमाण भी नहीं मिलता। 'ग्रन्थ-साहब' में उद्धृत पद से तो यही अनुमान किया जा सकता है कि वे नामदेव, कबीर रैदास, और सेन से छोटे भी थे। चतुर्वेदी जी ने इनका समय विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के प्रथम अथवा द्वितीय चरण में माना है। अपने पक्ष के समर्थन में उन्होंने मीरांबाई का वह पद उद्धृत किया है, जिसमें उन्होंने धना का उल्लेख किया है। मैकालिफ़ ने इनका समय १४१५ ई० (१४७२ वि०) माना है। रामानन्द और धना के गुरु-शिष्य होने के सम्बन्ध में सारी परम्पराएँ एक मत हैं। नाभादास कृत भक्तमाल, अगस्त्य-संहिता, अग्रस्वामी कृत रहस्यत्रय की टीका तथा रामानन्दी सम्प्रदाय के अन्य ग्रन्थों में धना को स्वामी रामानन्द का शिष्य ही कहा गया है। जब तक अधिक निश्चित् एवं प्रामाणिक सामग्री न मिल जाय, तब तक इस परम्परा के विरुद्ध मत देना सन्देह से शून्य नहीं हो सकता। इस दृष्टि से मैकालिफ़ की दी हुई तिथि परम्परा के अधिक समीप पहुँचती होने से सत्य के अधिक निकट जान पड़ती है।

धना ने ग्रन्थ साहब के एक पद में अपने को जाट कहा है। मैकालिफ़ के अनुसार[2] ये राजस्थान के टांक इलाके के अन्तर्गत धुअन या धुआन ग्राम के निवासी थे। यह स्थान देवली छावनी से २० मील दूर है। गुरुग्रन्थ साहब में धना के चार पद प्राप्त होते हैं, जिनसे स्पष्ट है कि उनकी भक्ति बड़ी ही निष्काम थी। पं० परशुराम चतुर्वेदी ने उनके आधार पर धना जी के विचारो पर भी प्रकाश डाला है।

रीवांनरेश रघुराज सिंह ने धना को वरुणदिशा का रहनेवाला बताया है। धना के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में अन्य सूचनाएँ अप्राप्य हैं।

पीपा—'भक्तमाल' में नाभादास जी ने पीपा के सम्बन्ध में निम्नलिखित छप्पय दिया है[3]—

प्रथम भवानी भक्त मुक्ति मांगन कौ धायो।
सत्य कह्यो तिहि शक्ति सुदृढ़ हरिशरणबतायो॥
श्री रामानंद पद पाइ भयो अति भक्ति की सीवाँ।
गुण असंख्य निर्मोल संत धरि राखत ग्रीवां॥

१—उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० २५१।

२—दि सिख रिलीजन, वा० ६, पृ० १०६-६।

३—भक्तमाल, टीकाकार रूपकला जी, पृ० ४९२

परसि प्रणाली सरस भई सकल विश्व मंगल कियो।
पीपा प्रताप जग वासना नाहर कौं उपदेश दियो॥

पीपा ने वासना-नाहर (बहुत दूर से मनुष्य आदि की गन्ध को जानने वाला) को भी उपदेश दिया था। पीपा पहले शक्ति के उपासक थे। एक बार देवी से इन्होंने मुक्ति की याचना की, तब देवी ने इन्हें रामानन्द जी की शरण में जाने को कहा। स्वामी जी की कृपा से पीपा भक्ति की सीमा हो गए–असंख्य गुणों के आकर हो गए। पीपा सन्तों की सेवा बड़े ही प्रेम से करते थे। पीपा जी की प्रणाली सरस निकली और विश्व मंगल का कारण बनी। हिंस्र सिंह भी पीपा जी के प्रभाव से ज्ञानी हो गया।

इस छप्पय की टीका करते हुए प्रियादास जी ने लिखा है कि वे गांगरौन गढ़ के राजा थे। देवी के आदेश से ये स्वामी रामानन्द जी के शिष्य होने के लिये काशी आए, किन्तु स्वामी जी ने एक 'राजा' से मिलना अस्वीकार कर दिया। फलतः पीपा ने अपनी सारी सम्पत्ति दीनों को बाँट दी। फिर स्वामी जी के आदेश से ये कुएँ में भी कूद पड़े। शिष्यों ने स्वामी जी में इनकी अद्भुत श्रद्धा देख इन्हें कुएँ से बाहर किया। स्वामी जी ने पीपा को स्वीकार कर लिया। उन्हें अपना शिष्य बना कर स्वामी जी ने अपनी राजधानी लौट जाने को कहा। गुरु के आदेश से पीपा अपनी राजधानी आकर सन्त सेवा करने लगे। एक वर्ष बाद उनका निमन्त्रण पाकर अपने चालीस शिष्यों के साथ स्वामी जी गांगरौन गढ़ गए। स्वामी जी के साथ कबीर और रैदास आदि शिष्य थे। पीपा ने पालकी पर सभी को बैठाया और राजधानी ले जाकर उनकी बड़ी सेवा की।

जब स्वामी जी चलने को हुए तब पीपा भी उनके साथ हो गए। उनकी रानी सीता भी साथ लग गईं। अन्य रानियों ने पीपा को रोकने के लिये एक ब्राह्मण को धन का लोभ देकर विष खा लेने को कहा। विष खाकर ब्राह्मण जब मर गया तब स्वामी जी ने उसे जीवन-दान देकर लौट जाने को कहा। शेष समाज द्वारावती की ओर चल पड़ा। वहाँ रह कर कुछ दिनोपरान्त सभी लोग काशी की ओर लौट पड़े। गुरु की आज्ञा लेकर पीपा द्वारावती में कृष्ण से मिलने के लिये सीता सहित समुद्र में कूद पड़े। फिर तो, कहा गया है, श्री कृष्ण ने वहाँ उनका अपूर्व स्वागत किया। भगवान् ने अपनी छाप देकर समुद्र तट तक स्वयं आकर पीपा को बाहर पहुँचाया।

बाहर पीपा का लोगों ने अपूर्व स्वागत किया। दर्शनार्थियों की भीड़

लग गई। पीपा यह देख कर बन की ओर चले गए। कहा गया है कि छठें मिलान पर पठानों ने इन्हें लूट लिया और सीता को लेकर वे भग गए। भगवान् की कृपा से सीता फिर इन्हें मिल गईं। पीपा ने सीता को घर लौट जाने को कहा, किन्तु वे साथ लगी ही रहीं। अन्त में दूसरे मार्ग से पीपा जी ने एक गाँव में आकर शेषशायी नामक देवता के दर्शन किए। पथ में मिले किसी सिंह को उपदेश भी दिया।

अपनी यात्रा में पीपा जी ने लाठियों को हरे बाँस में परिवर्तित कर दिया, किसी चीधर भक्त की दरिद्रता देख सीता स्वयं वारमुखी बन कर बाज़ार में बैठ गईं। जब लोगों को पता चला कि ये भक्त पीपा जी की स्त्री हैं तो उनके सामने नाज, सोना आदि का ढेर लग गया। फिर चीधर से विदा ले पीपा टोड़े ग्राम आए। वहाँ, कहा जाता है, पीपा के घर ७०० स्वर्ण मुद्राएँ बरस पड़ीं। चोरों ने बिच्छू समझ कर उन्हें गिराया था। पीपा ने उन मुद्राओं से तीन रात-दिन साधुओं का अपूर्व स्वागत किया। वहाँ के राजा सूर्य सेन मल को पीपा जी ने अपना शिष्य भी बनाया।

सन्तों के स्वागतार्थ सीतासहचरी ने रात उसके पास जाने की प्रतिज्ञा करके एक बनिये से कुछ अन्नादि लिए। रात वर्षा होने लगी। पीपा ने स्वयं सीता को उस बनिये के पास पहुँचाया। बनिया यह देख सीता के पैरों गिर पड़ा और उसने उनसे क्षमा माँगी। पीपा की शरण आकर वह निष्काम भक्त बन बैठा।

पीपा जी ने ठाकुर जी को दही देने के उपलक्ष्य में एक गूजरी को अपार धनराशि दे दी। एक देवी उपासक ब्राह्मण को सीताराम का भक्त बना दिया। इसी प्रकार के अनेक चमत्कार पीपा जी के नाम पर दिये गए हैं। पीपा का समस्त जीवन सन्त-सेवा एवं आर्त्तों की सहायता में ही बीता।

पीपा का जन्म काल मैकालिफ़ तथा डॉ० फ़र्क़ुहर ने सं० १४८२ वि० माना है। गांगरौन राज्य की वंशावली को दृष्टि में रख कर जेनरल कनिंघम ने इनका समय सं० १४१७ से १४४२ के बीच माना है। पं० परशुराम चतुर्वेदी[१] ने उनका समय सं० १४६५ से १४७५ के लगभग माना है। अपने मत के समर्थन में उन्होंने राजस्थान के इतिहास का हवाला देते हुए बतलाया है

१—उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृष्ठ २२३।

कि पीपा के बड़े भाई अचलदास खीची के साथ राणा कुम्भा (सं० १४७५-१५२५ वि०) की बहन लाला का ब्याह हुआ था और ये उनकी प्रथम रानी थीं।

डॉ० फ़र्क़ुहर के मत को मान लेने पर पीपा स्वामी रामानन्द के शिष्य सिद्ध नहीं होते। फिर फ़र्क़ुहर साहब ने अपने मत का आधार भी स्पष्ट नहीं किया है। इस मत को स्वीकार कर लेने पर वे कबीर के भी समकालीन नहीं ठहरते, जब कि प्रियादास ने स्पष्ट ही यह उल्लेख किया है कि स्वामी रामानन्द के साथ कबीर और रैदास भी गांगरौन गए थे। चतुर्वेदी जी के भी मत को मान लेने पर पीपा स्वामी रामानन्द के शिष्य नहीं ठहरते, क्योंकि स्वयं चतुर्वेदी जी ने ही स्वामी जी की मृत्यु-तिथि सं० १४६७ वि० मानी है। फिर राजस्थान के इतिहास की तिथियों की प्रामाणिकता के विषय में भी सभी विद्वान् एकमत नहीं है। स्वयं जनरल कनिंघम ने गांगरौन राज्य की वंशावली की छानबीन करके ही पीपा जी का समय स्थिर किया था और उनके द्वारा स्थिर किया हुआ समय स्वामी रामानन्द जी तथा कबीरदास के जीवन काल से पूरा मेल खाता है। इसी कारण डॉ० बर्थ्वाल ने उसे स्वीकार भी कर लिया है। जो हो, इतना तो निश्चित् ही है कि पीपा स्वामी रामानन्द के प्रिय शिष्य और कबीर के समकालीन थे। भक्तमाल, अगस्त्यसंहिता तथा आधुनिक रामानन्दी-सम्प्रदाय के ग्रन्थ इसी मत का समर्थन करते हैं। वैरागी-परम्परा में पीपा का रामानन्द के द्वादश शिष्यों में प्रमुख स्थान है।

श्री रूपकला जी ने 'पीपा जी की बानी' नामक एक ग्रन्थ पर्याप्त समय हुए छपवाया था, पर अब वह अप्राप्य है। 'आदि ग्रन्थ' में इनका एक पद पाया जाता है, जिसमें उन्होंने 'पिण्ड' और 'ब्रह्माण्ड' दोनों में वर्तमान रहने वाले सत्य को एक ही बतलाया है और कहा है कि खोजने पर वह मिल भी जाता है।

रैदास—रैदास जी के सम्बन्ध में नाभा जी ने निम्नलिखित छप्पय[१] लिखा है :—

सदाचार श्रुति शास्त्र बचन अविरुद्ध उचार्यो।
नीर खीर बिवरन परम हंसनि उर धार्यो॥
भगवत् कृपा प्रसाद परम गति इहि तन पाई।
राज सिंहासन बैठि ज्ञाति परतीति दिखाई॥

१—भक्तमाल, पृष्ठ ४७०।

वर्णाश्रम अभिमान तजि पदरज बन्दहिं जासु की ।
सन्देह ग्रन्थि खण्डन निपुन, बानि विमल रैदास की ।

इस छप्पय से रैदास जी के सम्बन्ध में निम्नलिखित सूचनाएँ मिलती हैं :—रैदास की विमल वाणी, संदेह ग्रन्थि का खण्डन करने में निपुण थी। उन्होंने जो कुछ भी कहा वह सदाचार, श्रुति और शास्त्र वचन सम्मत था। सत्यासत्य का उनमें बड़ा सुन्दर विवेक था। भगवान् की कृपा उन्हें यहीं इसी शरीर में प्राप्त हो गई थी। वर्णाश्रम का अभिमान छोड़ कर लोग उनकी पद वंदना करते थे। उन्होंने कभी राजसिंहासन पर बैठ कर अपने उत्तम कुल का व्यक्ति होने का विश्वास लोगों को कराया था।

इसकी टीका करते हुए प्रियादास ने लिखा है कि रैदास जी पूर्व जन्म में स्वामी रामानन्द की सेवा में रत एक ब्रह्मचारी थे। एक दिन आलस्य वश ब्रह्मचारी उस बनिये के यहाँ से भीख माँग लाया जो चमड़े का व्यापार करता था। भोग के समय ध्यान में अपने इष्ट को न पाकर स्वामी जी ने ब्रह्मचारी से भिक्षा-प्राप्ति के स्थान के सम्बन्ध में पूछ-ताछ की और यह जान कर कि यह भीख चमड़े के रोज़गार करने वाले व्यापारी के यहाँ की है, ब्रह्मचारी को चमार हो जाने का शाप दिया। यही ब्रह्मचारी रैदास होकर उत्पन्न हुआ।

जन्म लेने पर रैदास मां का दूध नहीं पीते थे, पर स्वामी जी के आदेश से उन्होंने माता का स्तनपान किया। इनकी भक्ति देख माता-पिता ने इन्हें घर के पीछे कुटी बना कर रहने का आदेश दिया। माता-पिता से कोई सहायता न पाकर रैदास मोल के चमड़े की पनही बना कर व्यापार करने लगे। कभी उनके सत्कार से प्रसन्न होकर साधु वेष-धारी भगवान् ने उन्हें पारस पत्थर दे दिया। किन्तु रैदास ने उसका कोई उपयोग नहीं किया। इसी प्रकार उन्हें ठाकुर जी का आसन झाड़ते समय रोज ५ स्वर्ण मुद्राएँ मिलने लगीं। रैदास को पूजा से भी भय हुआ। कहते हैं भगवान् ने स्वप्न में साक्षात् उपस्थित होकर उन्हें उन मुद्राओं के उपयोग करने की आज्ञा दे दी। इस द्रव्य से रैदास ने एक मंदिर, संत निवास, तथा स्वयं रहने के लिए एक घर बनवा कर चंदवा, ध्वजा, पताका से उसे सजा दिया। उनके बढ़ते हुए यश से साधु समीप आने लगे, किन्तु ब्राह्मणों को मत्सर हुआ। बादशाह ने रैदास को बुलाया, किन्तु उनकी भक्ति का प्रताप देख कर ठाकुरजी की सेवा-पूजा उन्हें सौंप दी। रैदास का यश चारों ओर फैल गया।

चित्तौड़ की झाली रानी उनसे गुरुमंत्र पाकर उनकी शिष्या हो गई। ब्राह्मणों

ने शूद्र को मंत्र देने का अनधिकारी कह कर राजा से रैदास की निन्दा की। शास्त्रार्थ में रैदास ने उन्हें परास्त किया और सिंहासन पर रखी हुई शालग्राम की मूर्ति को 'पतित पावन नाम कीजिये प्रगट आजु' पद गाकर अपने समीप बुला लिया, जबकि ब्राह्मणों द्वारा वेदशास्त्र आदि सुन कर भी वह मूर्ति नहीं हिली थी।

झाली रानी ने रैदास को कभी अपनी राजधानी में बुलाया। वहाँ ब्राह्मणों की पंक्ति में भोजन करते समय दो-दो ब्राह्मणों के बीच रैदास जी दिखाई पड़ने लगे। इससे ब्राह्मण बड़े आतंकित हुए। इसी प्रकार रैदास ने अपने शरीर की त्वचा न्यारी कर स्वर्ण यज्ञोपवीत लोगों को दिखलाया था। यह भी कहा जाता है कि कभी गंगा जी कठौते में उनके घर आ गई और जड़ाऊ कंकण दे गई।

स्वयं रैदास ने[१] अपने को चमार जाति का कहा है और यह भी बतलाया है कि भक्ति के प्रताप से पण्डित लोग भी इनको प्रणाम करने लगे थे। अनन्तदास ने भी इन्हें चमार ही कहा है। धन्ना भगत ने भी उन्हें ढोरों का व्यवसायी होते हुए भी माया का परित्याग करने वाला कहा है।[२]

सामान्यतया रैदास जी भी स्वामी रामानन्द जी के द्वादश शिष्यों में प्रमुख माने जाते रहे हैं। 'अगस्त्य संहिता' 'भक्तमाल', 'प्रियादास की टीका', रीवां नरेश रघुराज सिंह का ग्रन्थ 'भक्तमाल रामरसिकावली', आदि इसी मत का समर्थन करते हैं। फिर भी विद्वानों को अभी इस पक्ष में निर्भ्रान्त प्रमाण नहीं मिल सके हैं। परशुराम चतुर्वेदी जी प्रसिद्ध भक्त रैदास को मीराँबाई का गुरु नहीं स्वीकार करते। इनके अनुसार मीरां के गुरु रैदास पंथ के कोई रैदास भक्त रहे होंगे।

इसी प्रकार झाली की रानी को राणा सांगा (सं० १५३९-१५८४ वि०) की बहिन मान कर चतुर्वेदी जी[३] ने रैदास का समय विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के प्रायः अन्त तक माना है, जिसे स्वीकार कर लेने पर रैदास को स्वामी रामानन्द की मृत्यु के उपरान्त प्रायः १०० वर्ष बाद तक जीवित रहते हुए मानना पड़ेगा। अतः जब तक कुछ और अधिक निश्चित् सूत्र न मिल जाँय तब तक रैदास को स्वामी रामानन्द का समकालीन ही मानना पड़ेगा। यह सम्भव है कि रैदास स्वामी जी की वृद्धावस्था में भी थोड़ी ही आयु के रहे हों।

१—ग्रन्थ साहब-रागु मलार-पद १।

२—ग्रन्थ साहब, रागुआसा, पद २।

३—परशुराम चतुर्वेदी-उत्तरीभारत की संतपरम्परा, पृ० २३६-३८।

रैदास जी के ग्रन्थ—'रैदास जी की बानी' का संकलन वेल्वेडियर प्रेस, प्रयाग ने किया है। 'गुरु ग्रन्थ साहब' में भी रैदास जी के कुछ पद संग्रहीत हैं। दोनों में समानता भी बहुत अधिक है।

रामानन्द स्वामी के शेष शिष्य—पद्मावती, भावानन्द, गालवानन्द आदि के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में हमें कोई भी सूचना नहीं प्राप्त होती। रीवां नरेश रघुराजसिंह ने 'रामरसिकावली' ग्रन्थ में भावानन्द के सम्बन्ध में इतनी ही सूचना दी है कि उन्होंने कभी रात में पैदल ही प्रयाग में जमुना पार की। उनके प्रभाव से जमुना का जल जानु तक ही हो गया।

मध्ययुग में रामानन्द-सम्प्रदाय का विस्तार

रामानन्द स्वामी के शिष्यों की शिष्य-परम्परा और मठादि स्थापन (संवत् १४६७-१७०० वि० तक)

अनन्तानन्द की शिष्य-परम्परा—रामानन्द स्वामी की मृत्यु के उपरान्त उनके मुख्य मठ पंचगंगा घाट के मठाधिपति हुए श्री अनन्तानन्द जी। अनन्तानन्द जी की शिष्य-परम्परा का मध्ययुग में सबसे अधिक विस्तार हुआ। कहना तो यह चाहिये कि मध्ययुग में रामानन्द-सम्प्रदाय को एक प्रबल सम्प्रदाय बनाने का श्रेय अनन्तानन्द जी एवं उनकी शिष्य-परम्परा को है। नाभादास ने अपने 'भक्तमाल' में अनन्तानन्द की शिष्य-परम्परा का वर्णन पूरे विस्तार से किया है। 'भक्तमाल'[1] के अनुसार अनन्तानन्द की शिष्य-परम्परा इस प्रकार है :—अनन्तानन्द के ८ प्रमुख शिष्य हुए—

योगानन्द, गयेश, कर्मचन्द, अल्ह, पयोहारी, सारीरामदास, श्री रंग और नरहरि।

योगानन्द—'अगस्त्यसंहिता' में योगानन्द जी को कपिल का अवतार कहा गया है। रूपकला का मत है कि ये योगी भी थे।[2] 'भक्तमाल'[3] के अनुसार श्री 'बावन' जी, जिनका साधुत्व वामन भगवान् की ही भाँति बढ़ा, योगानन्द के शिष्य थे।

१—भक्तमाल, पृ० २९८।

२—वही, पृ० ३०६।

३—वही, पृ० ७८३।

गयेश—एक प्रसिद्ध भक्त के रूप में ही प्रख्यात हैं।

कर्मचन्द—ये नामानुरागी साधुसेवी तथा गुरुनिष्ठ थे।[१]

श्रीरंग जी—ये द्यौसा के सरावगी बनिये थे। एक यमदूत की प्रेरणा से ये साधु हुए थे। इन्होंने अपने पुत्र को सताने वाले प्रेत को मुक्ति दी थी। पीपा जी भी इनके समक्ष एक बार गए थे।[२]

सारीरामदास—इन्होंने चित्रकूट के राजा को उसकी प्रजा सहित भक्त बना दिया।[३]

नरहरिदास—इन्हें कुछ लोग अनन्तानन्द का शिष्य और कुछ श्री रंग जी का शिष्य कहते हैं। कुछ लोगों का मत यह है कि ये तुलसीदास के गुरु थे।[४]

अल्ह जी—अल्ह जी के प्रभाव से अम्ब की डाल अपने आप झुक गई थी। मालियों से यह समाचार पाकर कोई राजा उनका शिष्य हो गया था।[५] नाभादास ने इन्हें हरिगायक कहा है और कहा है कि ये पद रचना में भी प्रवीण थे।[६] खेद है कि इनके पद अब नहीं मिलते। अल्ह जी के शिष्य रामरावल जी और रामरावल जी के शिष्य राघवदास जी हुए (भक्तमाल, छप्पय १८७ पृ० ७८२)।

पयोहारी श्री कृष्णदास—अनन्तानन्द जी के शिष्यों में पयोहारी श्री कृष्णदास सबसे अधिक प्रभावशाली भक्त थे। इनके सम्बन्ध में नाभा जी ने निम्नलिखित छप्पय लिखा है :—

जाके सिर कर धर्‌यो तासु कर तर नहिं अड्यो।
अर्‌प्यो पद निर्वान सोक निर्भय करि छड्यो॥
तेज पुंज बल भजन महामुनि ऊरध रेता।
सेवत चरण सरोज राय राना भुवि जेता॥
दाहिमा बंश दिनकर उदय, सन्त-कमल हिय सुख दियो।
निर्वेद अवधि कलि कृष्णदास अनपरिहरि पयपानकियो॥[७]

१—वही, पृ० ३०६।
२—वही, पृ० ३००-१।
३—वही, पृ० ३०६-७।
४—वही, पृ० ३०७-८।
५—वही, पृ० ४५८।
६—वही, पृ० ७९३।
७—भक्तमाल, पृ० ३०२।

कृष्णदास जी का नाम 'पयोहारी' इसलिये पड़ा कि उन्होंने अन्न का परित्याग कर केवल दूध का ही सेवन किया। कलि में वैराग्य की ये सीमा थे। जिसके सिर पर इन्होंने अपना कर रखा, उससे फिर कुछ याचना नहीं की। ये तेज के पुंज, श्रीरामभजन के महाबल से युक्त, महामुनि और ऊर्ध्वरेता थे। दाहिमा ब्राह्मणों के वंश में सूर्य के समान उदित होकर कमल रूपी समस्त संतों के हृदय को आपने अपूर्व आनन्द दिया।

'भक्तमाल' में एक कुण्डलिया भी इनके सम्बन्ध में नाभादास जी ने दी है[१] :—

गलतें गलित अमित गुण सदाचार सुठि नीति।
दधीचि पाछें दूसरि करी कृष्णदास कलि जीति॥
कृष्णदास कलि जीति न्यौति नाहर पल दीयौ।
अतिथि धर्म प्रति पालि प्रगट जस जग में लीयौ॥
उदासीनता अवधि कनक कामिनि नहिं रातो।
रामचरण मकरन्द रहत निशिदिन मद मातो॥
गलतें गलित अमित गुण सदाचार सुठि नीति।
दधीचि पाछें दूसरि करी कृष्णदास कलि जीति॥

कृष्णदास ने दधीचि की भाँति गुफाद्वार पर आए सिंह
जान अपना मांस दे दिया। वैराग्य की ये मर्यादा थे, कनक कामिनी से निर्लिप्त थे और केवल रामचरण कमल के अनुराग रूपी मकरन्द का पान कर तृप्त थे। सदाचार और नीति युक्त प्रणाली पर चल कर गलते में (आमेर) आपने अपनी गादी स्थापित की। प्रियादास का मत है कि पयोहारी जी जब सिंह को मांस दे रहे थे, तभी भगवान् ने साक्षात् प्रकट होकर उन्हें दर्शन देकर कृतार्थ किया था।

प्रियादास जी ने[२] 'पयोहारी' जी के सम्बन्ध में कुछ और सूचनाएँ दी हैं। इन्होंने कुल्हू के राजा के पुत्र को बचाया था और पर्वत की कन्दरा में दर्शन देकर अपना भक्त बना लिया। इसी प्रकार किसी गर्भिणी के बालक को हरिभक्त होने की भविष्य वाणी की और वह बालक हरिभक्त हुआ भी।

पयोहारी जी ने सबसे बड़ा काम जो किया वह था आमेर से नाथपंथी योगियों को हटा कर वहाँ रामानन्दी-सम्प्रदाय की दृढ़ स्थापना करा देनी। उत्तर

१—वही, पृ० ८९५।
२—वही, पृ० ३०३-४।

भारत में रामानन्दीयों की यह सर्वप्रथम गादी थी। आगे चल कर इस गादी को वही महत्व मिला जो रामानुजीयों के लिए 'तोताद्रि' का है। इसी से गलता को 'उत्तर तोताद्रि' कहा गया है। इस सम्बन्ध में एक कथा कही जाती है[1] :—

"एक समय पयोहारी जी केवल रात भर रहने के लिए आमेर में योगियों के मठ में गए, कनफटे योगियों द्वारा उठ जाने का आदेश पाकर इन्होंने अपनी अंगोछी में धूनी उठा कर दूसरे स्थान पर आसन जमाया। आग से कपड़े को न जलता देख कर योगियों का महन्थ बाघ बन कर इन्हें खाने दौड़ा। पयोहारी जी ने उसे गदहा बना दिया। साथ ही योगियों के कान की मुद्राएँ आपसे आप गिर कर पयोहारी जी के सामने एकत्रित हो गईं। फिर योगियों के कहने पर आमेर के राजा ने पयोहारी जी की बड़ी प्रार्थना की, महन्थ फिर मनुष्य हो गया और योगियों को उनकी मुद्राएँ फिर मिल गईं। महन्थ को वह स्थान छोड़ना पड़ा।" इस प्रकार गलता आपकी प्रसिद्ध गादी हुई।

पयोहारी जी को गऊ अपने आप दूध दे जाती थी। जीवाराम जी कृत 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' के अनुसार ये सीता जी के व्रत को धारण करने वाले रसरीति के उपासक थे। 'पुष्कर छाया भजन भूमि प्रगटी सिय प्यारी। पूर्व सूचिका धरी कथा प्रिय लेहु सुधारी'।[2] पयोहारी जी सांख्य, योग, भक्ति योग, भावना रहस्य आदि के ज्ञाता थे। इन्होंने १२ वर्ष का तपोनुष्ठान किया। छठवें वर्ष इन्हें 'सियावर' के दर्शन हुए। पहले ये पुष्करक्षेत्र में रहते थे। बाद को गालवाश्रम (गलता) जाकर इन्होंने अपनी प्रसिद्ध गद्दी स्थापित की। 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' के टीकाकार का मत है कि ये अष्टयाम सेवाभाव के ही प्रचारक थे। इनके दो प्रसिद्ध शिष्य थे कील्ह और अग्र। गद्दी तो इन्होंने कील्ह को दी, पर भावना रहस्य में अग्र को छका दिया।

कृष्णदास पयोहारी की शिष्य-परम्परा—'भक्तमाल' में[3] नाभा स्वामी ने पयोहारी श्री कृष्णदास के निम्नलिखित शिष्यों के नाम दिए हैं :—

कील्ह देव, अग्रदेव, केवलदास, चरणदास, व्रतहठीनारायण, सूर्यदास, पुरुषा जी (पुरुषोत्तमदास), पृथुदास, त्रिपुरदास, पद्मनाभ, गोपालदास, टेकाराय, गदाधारी, (गदाधरदास), देवा पण्डा, हेमदास, कल्याणदास, गंगाबाई, विष्णुदास, कान्हरदास, श्रीरंगाराम, श्रीचांदन जी, सबीरी और गोविन्ददास।

१—वही, पृ०३०५ तथा 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' की टीका, छप्पय १२।

२—रसिक प्रकाश भक्तमाल, छप्पय १२।

३—भक्तमाल, नाभादास छप्पय ६४८, पृ० ३०८।

नाभादास का कथन है कि ये सभी शिष्य श्री गुरु-प्रसाद से जीवों को संसार से पार उतारने वाले और सीताराम-भक्ति में परम परायण थे। पयोहारी जी के इन शिष्यों में ३ सर्व प्रमुख थे : कील्ह देव, अग्रदेव, टीला जी।

कील्ह देव तथा उनकी शिष्य-परम्परा—नाभा जी ने इनके विषय में कहा है —

रामचरण चिंतवनि रहति निशिदिन लौ लागी।
सर्वभूत शिर नमित सूर भजनानँद भागी॥
सांख्य योग मत सुदृढ़ कियो अनुभव हस्तामल।
ब्रह्मरन्ध्र करि गौन भये हरितन करनी बल॥
सुमेर देव सुत जग विदित भू विस्तार्‌यो विमल यश।
गांगेय मृत्यु गन्ज्यो नहीं, त्यों कील्ह करननहिं कालबश॥[1]

इससे स्पष्ट है कील्ह बहुत ही बड़े ध्यानी, विनम्र, माया-मोह से परे, भजनानन्दी, एवं योग-शास्त्र-प्रवीण थे। इन्होंने भीष्म की भाँति मृत्यु को वश में कर लिया था। इनके पिता का नाम सुमेरदेव था। तीन बार इन्हें सर्प ने काटा, फिर भी इन पर विष ने कोई प्रभाव नहीं डाला। अंत में इन्हें सारूप्य मुक्ति मिली।

इस छप्पय की टीका करते हुए प्रियादास ने बतलाया है कि एक बार कील्ह मथुरा के राजा मानसिंह के यहाँ बैठे थे, तभी आकाश की ओर देख कर इन्होंने कहा कि 'बहुत अच्छा, भले पधारिये'। राजा ने इस प्रकार उनके कह उठने का कारण पूछा। कील्ह ने कहा कि मेरे पिता आकाश मार्ग से परमधाम को जा रहे हैं। राजा ने गुजरात भेज कर दूतों से पता लगवाया तो सुमेरदेव की मृत्यु की घटना सही निकली। मृत्यु के समय कील्ह ने संतों को बुला कर उनके मध्य बैठे-बैठे ही दशमद्वार से प्राण परित्याग कर दिया। इस प्रकार कील्ह की सिद्धता और योग का प्रभाव मध्ययुग में छा गया था।

'रसिक प्रकाश भक्तमाल'[2] के अनुसार पयोहारी जी ने इनको ही अपनी गद्दी दी थी। इनका मन योग की ओर अधिक झुका था, फिर भी ये रास विहार में निरत रहते थे। मधुपुरी में एक बार ये जब समाधिस्थ हो गए, बादशाह ने इनके सिर में कील ठोंकी, पर इन्हें पता तक न चला। कील्ह की इस योग-परम्परा को इनके शिष्यों ने बहुत आगे बढ़ाया।

१—भक्तमाल, रूपकला, १६० छप्पय। (६८३) पृ०३०९

२—रसिक प्रकाश भक्तमाल-जीवाराम, छप्पय १२।

'रसिक प्रकाश भक्तमाल' के टीकाकार का कथन है कि कील्ह की शिष्य-परम्परा में शृंगार भी खूब फला फूला। इनके शिष्य लघुकृष्णदास, उनके विष्णुदास, और विष्णुदास के शिष्य 'रघुपति रहस्य प्रदीपिका' के लेखक नारायण दास थे। नारायणदास के शिष्य हृदयदेव थे और हृदयदेव के शिष्य रसिक शिरोमणि मधुराचार्य थे। इनके सम्बन्ध में आगे हम और अधिक प्रकाश डालेंगे।

कील्ह देव की शिष्य-परम्परा—नाभादास[1] के अनुसार कील्ह देव के निम्नलिखित शिष्य थे—

आसकरन (राजर्षि), रूपदास (ये गुरुभक्त थे), भगवानदास, चतुरदास (इन्हें अभय छाप मिला), छीतर स्वामी (ये बड़े चतुर थे), लाखा (ये बड़े अद्भुत थे), रायमल (ये मन बचन कर्म से क्षेमयुक्त थे), रसिक रायमल, गौरदास, देवादास, दामोदर आदि श्री हरि के रंग में रंगे थे। ये रामदासत्व में दृढ़, धर्म धुरन्धर एवं सीताराम भजन में परम सुभट थे।

इन शिष्यों में राजर्षि आसकरन[2] 'जानकी मोहन' और 'राधिका-मोहन' दोनों के ही उपासक थे। ये कछवाहे पृथ्वीराज के वंशज, भीमसिंह के पुत्र और नरवरगढ़ के राजा थे। ये धर्मशील, गुणों की सीमा, महाभागवत, शूर, धीर, उदार, विनययुक्त, सदाचारी एवं हरिभक्त-अनुरक्त थे। नियम से अपने इष्ट की पूजा किया करते थे। इनकी पूजा के समय मंदिर में कोई जा नहीं सकता था। कभी किसी बादशाह ने इन पर चढ़ाई करनी चाही, पर राजा पूजारत थे, अतः कोई पास न गया। तब उनके मंत्री के अनुनय पर स्वयं बादशाह मंदिर में गया। वहाँ पूजा कर ये देवता को साष्टांग प्रणाम कर रहे थे। बादशाह ने इनकी एंड़ी काट दी, पर इन्हें पता तक न चला। फिर पूजा समाप्त कर राजा ने बादशाह की आवभगत की। आसकरन जी की मृत्यु पर बादशाह ने उनके मंदिर में पुजारी नियुक्त कर दिया।

अग्रदेव तथा उनकी शिष्य-परम्परा—नाभादास ने अपने गुरुदेव अग्रदेव जी के विषय में निम्नलिखित छप्पय दिया है।[3]

सदाचार ज्यों सन्त प्राप्त जैसे करि आये।
सेवा सुमिरन सावधान चरण राघव चित लाये॥

१—भक्तमाल, नामादास-७४१ छप्पय, पृ० ८४८-४९।
२—भक्तमाल, ७७४ छप्पय, पृ० ८७६-७८ तथा प्रियादास की टीका।
३—भक्तमाल, पृ० ३१२।

प्रसिध बाग सों प्रीति सुहथ कृत करत निरन्तर।
रसना निर्मल नाम मनहुँ बरसत धाराधर॥

कृष्णदास कृपा करि भक्ति दत्त, मन वच क्रम करि अटल दयो।
अग्रदास हरिभजन बिन काल वृथा नहिं बित्तयो॥

इस पद से अग्रदास की कुछ प्रमुख विशेषताएँ स्पष्ट हो जाती हैं। वे सीताराम के भजन के बिना किंचिन्मात्र भी समय व्यर्थ नहीं बिताते थे। सदाचार निरत थे, तथा भगवान् के चरणों की सेवा और उनका स्मरण बड़ी सावधानी से किया करते थे। अपने हाथ से लगाई पुष्पवाटिका को भगवान् का 'प्रमोदवन' मान कर उससे बड़ी प्रीति करते थे। रातदिन उनकी जिह्वा से सीताराम की ध्वनि निकलती थी। मानो आनन्द का मेघ मधुर शब्द करके बरसता हो। गुरु से उन्हें मनसा-वाचा-कर्मणा तीनों प्रकार की भक्ति मिली थी।

२—प्रियादास ने बतलाया है कि एक बार आमेर का राजा मानसिंह (महाराज मानसिंह अकबर के समकालीन एवं उसके प्रिय अधिकारी थे, अतः अग्रदास का सं० १६१३ में वर्तमान होना निश्चित् रूप से सिद्ध होता है।) स्वयं अग्रदास जी से मिलने गया, पर ये वाटिका के एक वृक्ष के नीचे बैठ कर ध्यानस्थ हो गए थे। नाभा जी जब उन्हें ढूंढने गए, तब वे गुरु की दशा देख स्वयं भी भाव-विह्वल हो उठे। राजा यह देख कर अवाक् रह गया।

'रसिक प्रकाश भक्तमाल' ने इनकी प्रशंसा में निम्नलिखित छप्पय दिया है[1] :—

अक्षर पद अनुप्रास मधुरता बालमीकि सम।
आशय गूढ़ उपाय प्रीति रसिकन के संगम॥
रैवासे जानकी बल्लभी रहसि उपासी।
ललित रसाश्रय रंगमहल कलकुंज खवासी॥ छप्पय १४॥
अग्रस्वामि श्री अग्रसहचरी जनकलली की।
पुष्पवाटिका मिलन हेतु प्रिय भाँति भली की॥
चन्द्रकला प्रिय नाम श्याम सिय वश की राखी।
प्रगट स्वामि पद लही ध्यान रस मन-मन चाखी॥
ग्रन्थकार 'शृंगार-रस-सागर' 'मन्जरि ध्यान' ही।
भेदी अनभेदी पढ़ै रसिक रास पथ जान ही॥ छप्पय १५॥

१—रसिकप्रकाश भक्तमाल, छप्पय १४-१५ तथा टीका।

इन छप्पयों में स्पष्ट ही अग्रस्वामी को सखी भावना का उपासक कहा गया है। इनकी रचनाओं में बाल्मीकि जैसी मधुरता थी, शृंगार में इनका नाम अग्रसहचरी था। ये चन्द्रकला सखी के उपासक थे। शृंगार रस सागर, ध्यान मंजरी इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं।

इन छप्पयों के टीकाकार का कथन है कि अग्रदास शील के आचार्य थे। रस-सम्प्रदाय वस्तुतः उन्ही से पल्लवित हुआ। ज्ञान को मिटा कर उन्होंने माधुर्य भाव की भक्ति चलाई। अपनी वाटिका में वे बारहों महीने रास किया करते थे। इन्होंने 'केलि कुंज बासिनी मनोजरति नासिनी के प्रथम समागम के स्वच्छ पद गाये हैं।' भक्ति, रसिकता, दम्पतिविलास, रस-सागर की ये नौका थे। इनके ललाट में ऊर्ध्वपुण्ड्, द्वादश तिलक, कण्ठ में दो मालाएँ, धनुर्वाण, भुजमूल पर मुद्रा, पीत उपवीत, कौपीन आदि सुशोभित थे। कील्ह की आज्ञा मानकर ये रैवासे आए थे, वहाँ एक झरना के पास उन्होंने लली-लाल का मंदिर बनवाया और नाभा जी को उनकी सेवा में नियोजित कर दिया। शयनकुंज, मज्जन-निकुंज, भूषण-बसन-निकुंज आदि की इन्होंने रचना की। भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य, पान-भोजन आदि की पाकशालाएँ भी इन्होंने 'लली-लाल' के लिए बनवाईं। रास योग्य मण्डलियों का भी इन्होंने संगठन किया।

अष्टयाम, कुण्डलिया, पदावली, ध्यानमंजरी आदि इनके प्रमुख ग्रन्थ हैं। रामानन्द-सम्प्रदाय में माधुर्यभक्ति शाखा के अग्रदास प्रथम आचार्य माने जाते हैं। नाभादास ने इनकी माधुर्य-भावना पर कुछ भी प्रकाश नहीं डाला है, केवल अपने हाथ से लगाई वाटिका में इनकी अनुरक्ति की ओर उन्होंने कुछ संकेत-मात्र कर दिया है। नाभादास के ये गुरु थे। अतः इनका समय १६ वीं शताब्दी के अन्त और सत्रहवीं शताब्दी वि० के प्रारम्भ तक माना जा सकता है। सं० १६१३ में इनका वर्तमान होना ऊपर कहा ही जा चुका है। भक्तमाल की रचना नाभा जी ने विक्रमीय सं१६४० और विक्रमीय सं१६८० के बीच की।

अग्रदेव की शिष्य-परम्परा—नाभा जी ने भक्तमाल में अग्रदास के निम्नलिखित शिष्य बतलाए हैं[1]—जंगी जी, प्रयागदास, विनोदी, पूरनदास बनवारीदास, नरसिंहदास, भगवानदास, दिवाकर, किशोर, जगतदास, जगन्नाथदास, सलूधौ, खेमदास, खीची, धर्मदास, लघुऊधो।

१—नाभादास-भक्तमाल-छप्पय ७२५, पृ० ८१५।

७—ये सभी शिष्य भागवत धर्म की ध्वजा के समान थे। जिन-जिन के सिर पर अग्र जी ने अपना हाथ रखा वे सभी अपने तथा शरणागत जीवों के तापत्रय मिटाने वाले हुए। इन शिष्यों में प्रयागदास जी अग्रदास के प्रिय शिष्य थे।

प्रयागदास—इनके विषय में नाभा जी ने लिखा है कि अग्रदेव की कृपा से प्रयागदास की भक्ति पूरी पड़ गई। मन-वचन-कर्म से ये भक्त और भगवान् दोनों की ही सेवा किया करते थे। रास में प्रभु की छवि का दर्शन कर ये संज्ञाहीन हो कर भगवान् में मिल गए। बलिया के 'आरा' और 'क्यारे' ग्राम के निमन्त्रण पाकर इन्होंने एक साथ ही दोनों स्थानों की प्रतिष्ठा रक्खी। ये दोनों ग्रामों के बीच बैठ गए। दोनों में एक कोस का अन्तर था। दोनों ओर पंगत बैठ गई, न तो सामान ही घटा और न किसी के यहाँ सामान नहीं पहुँच पाया। प्रयागदास ने दोनों ही स्थानों पर प्रसाद लिया।[१]

नाभादास—अग्रदास के दूसरे प्रमुख शिष्य थे स्वयं नाभा जी। ये अग्रदास के सबसे प्रिय शिष्य थे। इनकी सिद्धता से प्रसन्न होकर अग्रदास ने इन्हें 'भक्तमाल' की रचना करने का आदेश दिया था।[२] प्रियादास ने इनके जीवन पर विशेष रूप से प्रकाश डाला है।[३] उनके अनुसार नाभा जी का जन्म हनुमानवंश में हुआ था। ये बाल्यावस्था में दृगहीन थे। जब नाभा जी ५ वर्ष के हुए तब देश में बहुत भयंकर अकाल पड़ा। अतः इनकी माता ने उन्हें किसी बन में छोड़ दिया। कील्ह और अग्र इसी मार्ग से कहीं जा रहे थे। अनाथ समझ कर उन्होंने इस बालक को उठा लिया। उन्होंने उससे कुछ प्रश्न किए, और उसने उन्हें उत्तर भी दिया। सिद्ध महात्माओं में कील्ह जी ने अपने कमण्डल से उस पर जल के छींटे दिये, उसी क्षण उसकी आँख खुल गईं। जोड़ी को देख कर बालक धन्य हो गया।

१—हनुमान वंश के सम्बन्ध में मुंशी तुलसीराम और तपस्वी राम जी[४] ने यह मत दिया है कि इस वंश के प्रवर्त्तक हनुमान के अंशावतार समर्थ रामदास (कहा जाता है इनके एक छोटी सी पूंछ भी थी) थे, जो तैलंग में गोदावरी के समीप रामभद्राचल के निवासी थे। उनके वंश के लोग हनुमान वंशी कहे गए। वे गान-विद्या में निपुण होते हैं और राज-दरबार में ही प्रायः रहा करते हैं।

१—वही, पृ० ८६३।

२—भक्तमाल, रूपकला, पृ० ४०, दोहा तथा प्रियादास की टीका।

३—वही, पृ० ४३, कवित्त ८२०।

४—भक्तमाल, रूपकला, पृ० ४३ पर उद्धृत।

२—रीवाँ नरेश रघुराज सिंह ने 'सो शिशु लांगूली द्विज केरो' कह कर हनुमान वंश का 'लांगूली ब्राह्मण' अर्थ किया है। कुछ लोग इन्हें डोम वंश में उत्पन्न कहते हैं। रूपकला जी का मत है कि यह शब्द पश्चिम में भंगी के अर्थ में नहीं प्रयुक्त होता बल्कि वहाँ डोम, कलावन्त, ढाढ़ी, भाँट, कत्थक आदि गान-विद्या से जीवित रहने वाली जातियों के नाम हैं। स्वयं लाखा भक्त का परिचय देते हुए नाभा जी ने उन्हें (१०७ छप्पय) वानरवंशी लिखा है। और प्रियादास ने उसकी टीका करते हुए लिखा है 'लाखा नाम भक्त ताको बानरौ बखान कियो कहै जग डोम जासो मेरो सिर मौर है' (कवित्त ४२२)[१] । इनके यहाँ सन्तों को प्रसाद भी पाना लिखा गया है।

३—कुछ भावुक भक्तों ने नाभा जी को ब्रह्मा का अवतार भी कहा है। रूपकला जी ने नाभा नाम पड़ने का कारण देते हुए बतलाया है कि भक्ति की वृद्धि के लिए शंकर जी ने हनुमान जी का स्वेद नभ से गिराया। उसी से इनका नाम 'नभभूज' या नाभा जी हुआ।[२]

४—कील्ह की आज्ञा से अग्रदेव ने ही नाभा को मंत्र दिया था। गलता में इन्हें साधु-सेवा में नियोजित किया गया था। सन्तों के पद पखारते-पखारते इनकी भक्ति बड़ी ही प्रौढ़ा हो गई।[३]

५—नाभा जी के आदेश से ही प्रियादास ने सं० १७६६ में भक्तमाल की 'भक्तिरसबोधिनी' टीका सम्पूर्ण की थी।

६—प्रियादास ने बतलाया है कि 'नाभा' जी 'नाभाअली'[४] के भी नाम से पुकारे जाते थे। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और श्रृंगार के पंचरंगी पुष्पों की बैजयन्ती माला प्रियतम इष्टदेव के लिये इन्होंने बनाई थी। प्रियादास ने थोड़े ही शब्दों में भक्तों के अपार गुणों को वर्णित करने की नाभादास की अद्भुत शक्ति की बड़ी प्रशंसा की है।[५] वे कहते हैं : 'सुने हे अगर अब जाने मैं अगर सही, चोवा भये नाभा सो सुगंध भक्तमाल है।' नाभादास जी की दृष्टि देश-काल की सीमाओं से नहीं बंधी थी। वे दूर की वस्तु देख लेते थे और पिछले काल की बातों का भी साक्षात्कार कर लेते थे। अग्रदास को इसी कारण उन पर अपार प्रीति हो गई।

१—वही, पृ० ६६७-६८।
२—वही, पृ० ४५।
३—वही, पृ० ४६।
४—वही, पृ० ३१।
५—वही, पृ० ३३।

७—नाभा जी का प्रथम नाम नारायणदास था।[१] रूपकला[२] जी के अनुसार सं० १६५२ में कान्हरदास जी के भण्डारे के महोत्सव में सभी सन्तों ने मिल कर इन्हें 'गोस्वामी' पद से विभूषित किया था। 'भक्तमाल' की रचना सं० १६३१ के पश्चात् तथा सं० १६८० के पूर्व लगभग १६४६ वि० में मानी जाती है। रूपकला जी के अनुसार इनकी मृत्यु सं० १७१६ में हुई। रूपकला जी का यह भी कहना है कि प्रियादास को नाभा जी की जो आज्ञा हुई थी वह ५० वर्ष पीछे ध्यान के समय हुई थी।

८—'रसिक प्रकाश भक्तमाल' के अनुसार नाभादास विलक्षण रसिक थे। इन्होंने 'अष्टयाम' नामक एक ग्रंथ की भी रचना की थी। आज कल इसके दो रूप मिलते हैं। एक ब्रजभाषा गद्य में, दूसरा पद्य में। यह कह सकना कठिन है कि इनमें कौन अधिक प्रामाणिक है। 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' के टीकाकार का भी कहना है कि ये युगल उपासना के रहस्य को खूब जानते थे। 'भक्तमाल' तो आपका अपूर्व ग्रंथ है ही।

टीला जी की शिष्य-परम्परा—'भक्तमाल' के लेखक ने टीला जी को सुमेर पर्वत के शिखर के समान, ऊँची कोटि का भक्त कहा है।[३] इनके प्रमुख शिष्यों के नाम निम्नलिखित हैं—

१—लाहा, इनकी शिष्य-परम्परा में अनेक प्रकाशमान भक्त हुए।

२—इनके पुत्र परमानन्ददास—ये विश्वविख्यात योगी थे।

३—६ खरतरदास, खेमदास, ध्यानदास और केशवदास आदि भक्त बड़े ही उदार एवं हरिभक्तानुरागी थे।

७—त्योला—ये जाति के लोहार थे।

८—हरीदास—ये हनुमान जी के बड़े ही प्रिय भक्त थे।

ये सभी भक्त 'नवधा-भक्ति' के आगर थे, अच्युत कुल वैष्णवों की सेवा करते थे और इस प्रकार भगवान् की अनपायिनी दशधा भक्ति (प्रेमा-भक्ति) के अधिकारी हुए।

न तो टीला जी के जीवन के सम्बन्ध में और न उनके शिष्यों के ही सम्बन्ध में 'भक्तमाल' में सूचनाएँ मिलती हैं।

१—वही, पृ० ६३४।

२—वही, पृ० ६५३।

३—भक्तमाल, नाभा जी, पृष्ठ ८३६(६३ वां छप्पय)।

मध्ययुग तथा उसके अनन्तर

रामानन्द स्वामी के शिष्य-प्रशिष्यों द्वारा स्थापित द्वारा-गादियाँ तथा

रामानन्द-सम्प्रदाय का विस्तार

मध्ययुग में अनन्तानन्द के शिष्य-प्रशिष्यों ने उत्तर-भारत में अपनी गादियाँ स्थापित कीं और रामानन्द-सम्प्रदाय को सभी वैष्णव-सम्प्रदायों में प्रबलतम बना दिया। इसी कारण भक्तमाल के लेखक ने उनका वर्णन विशेष विस्तार से किया है। रामानन्द के अन्य शिष्यों की शिष्य-परम्परा के विषय में उसमें कोई उल्लेख नहीं है। अतः यहाँ हम रामानन्द स्वामी के शिष्य-प्रशिष्यों द्वारा स्थापित उन मुख्य गादियों का वर्णन प्रस्तुत करते हैं, जहाँ से गुरुमंत्र पाकर रामानन्दी साधु समस्त भारतवर्ष में फैल-फैल कर अपने कुल का विस्तार कर रहे हैं। यह सूचना पण्डित रामटहलदास द्वारा प्रकाशित 'रामानन्द-सम्प्रदाय की द्वारा गादियों का विवरण'[१], नामक ग्रन्थ के आधार पर ही दी जा रही है। स्वयं मैंने अयोध्या के प्रमुख सन्तों रामपटल आदि ग्रन्थों से इस विवरण की परीक्षा भी कर ली है।

१—**अनन्तानन्द की द्वारा गादी**—अनन्त गुफा (मोहल्ला अन्तापुरा), मथुरा में यह गादी वर्तमान है।

२—**सुरसुरानन्द की द्वारा गादी**—सौरूंजी घाट में (अब गंगा की बाढ़ से नष्ट) इनकी द्वारा गादी थी। इस समय आबू में सिद्ध बाबा का स्थान इनकी द्वारा गादी है।

३—**नरहर्यानन्द की द्वारा गादी**—गढ़खला (रियासत जंजीरा, राजपूताना)।

४—**सुखानन्द की द्वारा गादी**—१—धौरतया (जयपुर, सेखावटी)।
२—जामडोली स्थान।

५—**रामकबीर जी की द्वारा गादी**—कदमखण्डी (ब्रज, गोवर्द्धन के पास)। कहा जाता है नर्वदा तट पर भड़ौंच के पास शुक्लतीर्थ में रामानन्द जी ने एक दतवन गाड़ दी थी। उससे एक विशाल वटवृक्ष हो गया। वहीं रामयश ब्राह्मण का पंचसंस्कार कर स्वामी जी ने उसका नाम रामकबीर दास रख दिया। तभी से ये प्रसिद्ध हो गए। यह कथा

१—रामानन्द-सम्प्रदाय की द्वारा गादियों का विवरण-रामटहलदास (रणहर पुस्तकालय, डाकोर)।

नर्मदा के मालसा स्थान के किसी माधवदास ने पं० रामटहलदास को सुनाई थी।

६—भावानन्द की द्वारा गादी—१—जयपुर, सेखावटी, चूरू रायगढ़ के पास फतेहपुर में हैं।

२—गढ़ बिटनी स्थान, गुजरात। ये रामानन्द स्वामी के शिष्य थे।

७—पीपा जी की द्वारा गादी—१—रामड़ा, पीपा जी की कुटी, बेंटद्वारका।

२—गांगरौनगढ़, काठियावाड़।

मेवाड़, काठियावाड़ और गुजरात में इनके स्थान हैं।

८—योगानन्द जी की द्वारा गादी—१—रामकोट, जैसलमेर रियासत।

२—दरियाबाद, तिर्छी।

३—शुशनेरा (उज्जैन)। ये अनन्तानन्द केशिष्य थे।

९—अनभयानन्द की द्वारा गादी—१—जयपुर-चाँदपोल। श्री बालानन्द जी का स्थान सर्वप्रधान गादी है। द्वारा अखाड़ों के संबंध में चारो सम्प्रदाय की पूज्यगादी यही है। इन्होंने ही अखाड़ो की स्थापना की।

२—दक्षिण में हाथी राम जी का स्थान।

३—पानीपत करनाल में कराला स्थान।

अनभयानन्द की गुरुपरम्परा—रामानन्द—भावानन्द—रामधीरानन्द—अनभयानन्द।

१०—कील्ह द्वारा गादी—१—गलता-जयपुर।

२—मथुरा (गलता-कुंज), प्रयाग घाट। यहाँ कील्ह की गुफा भी है।

कील्ह की परम्परा—रामानन्द—अनन्तानन्द—पयोहारी—कील्ह।

११—अग्रदास की द्वारा गादी—रेवासा, जयपुर-सेखावटी।

ये कृष्णदास पयोहारी के शिष्य थे। इनकी शिष्य परम्परा में जंगी, त्यागी-तनतुलसीदास-देवमुरारी-मलूक-भगवन्नारायण, दिवाकर, पूर्ण, बरीठी, नाभा आदि थे। सम्पूर्ण भारत इनकी शिष्य-परम्परा में है।

१२—टीला जी की द्वारा गादी—१—खेलना, भोलास, आतेला (जयपुर)।

२—खाटुखण्डेला, करोली रियासत। ये कृष्णदास पयहारी के शिष्य थे। इनके शिष्य सम्पूर्ण भारत में फैले हुए हैं।

१३—भगवन्नारायण द्वारा गादी—पिण्डोरीधाम, पंजाब। ये अग्रस्वामी के शिष्य थे।

१४—केवल कूबा जी द्वारा गादी—झींथड़ा, जोधपुर (मारवाड़)। ये सुरसुरानन्द के शिष्य माधवानन्द के शिष्य गरीबानन्द के शिष्य लक्ष्मीदास के शिष्य गोपालघूघरिया के शिष्य नरहर्यानन्द के शिष्य थे। ये नाभादास के भक्तमाल के अनुसार[1] मधुकरी मांग कर भक्तों की सेवा करते थे। प्रियादास के अनुसार ये जाति के कुम्हार थे। कुंआ खोदने की प्रतिज्ञा कर किसी दिन एक वणिक से ये कुछ रूपये उधार ले आए। कहते हैं कुंआ खोदते समय ये नीचे दब गए, कुंआ बैठ गया। एक मास बाद कुंए से किसी ने रामध्वनि निकलती सुनी। खोदने पर ये निकल पड़े, कूबड़ अवश्य ही इनकी टूट गई थी। अतः ये कूबा जी कहे गए। द्वारका जाकर ये छाप लेना चाहते थे, पर प्रभु ने इन्हें घर पर ही शंख-चक्र की छाप दे दी। गोमती और समुद्र के बीच रेती पड़ गई, अतः तीर्थ-माहात्म्य घटता देख इन्होंने अपनी सुमिरनी भेज कर दोनों का संगम करा दिया। भक्त-सेवा इनका प्रधान गुण था। इनकी स्त्री ने अपने भाई के लिये खीर बनाई, पर उसे उन्होंने सन्तों को खिला दिया और जब स्त्री रूठ गई तो उसे घर से निकाल भी दिया। अकाल-ग्रस्त होकर वह स्त्री फिर झींथड़ा लौट आई। अयोध्या में लक्ष्मण किला तथा सारन, चिरांद के स्थान इन्हीं के द्वारा के हैं।

१५—दुन्दुराम जी की द्वारा गादी—(दामोदरदास) रामतीर्थ, पंजाब। ये अनभयानन्द के शिष्य थे।

१६—तनतुलसीदास की द्वारा गादी—मुड़िया रामपुर (बाराबंकी)। ये अग्रदास के शिष्य त्यागी जी के शिष्य थे। इनका दूसरा नाम चतुर्भुजी जी था।

१—भक्तमाल, पृ० ८२८-३०।

१७—**देवमुरारी जी की द्वारा गादी**—दारागंज, बड़ा स्थान, प्रयाग। ये तन-तुलसीदास के शिष्य थे। इनका नाम अभयमुरारी भी था। भजनपरायण एवं इष्ट सेवा में ये रत रहते थे।

१८—**मलूक जी की द्वारा गादी**—कड़ा, मानिकपुर, प्रयाग। ये देवमुरारी के शिष्य थे। 'रसिकप्रकाश भक्तमाल' के अनुसार ये बड़े ही भजनानन्दी एवं रामलीला प्रेमी थे।
ये आठोयाम भक्ति में निरत थे।

१९—**देव भड़ंगी की द्वारा गादी**—आगर, जिला इटावा। ये तन तुलसीदास के शिष्य थे।

२०—**हठीनारायण की द्वारा गादी**—आखूपुर निवाणग्राम, जयपुर सेखावटी। ये पयोहारी कृष्णदास के शिष्य थे।

२१—**दिवाकर की द्वारा गादी**—१—जामल स्थान, घौसा (जयपुर)
२—छालकटोठा, जोधपुर। ये कर्मचन्द के पुत्र तथा अग्र के शिष्य थे। नाभादास के भक्तमाल में ७८ वें छप्पय में इनका उल्लेख है।

२२—**खोजी की द्वारा गादी**—पलड़ी ग्राम, जयपुर सेखावटी लोहानगर से पश्चिम। ये अनन्तानन्द के शिष्य गणेश के शिष्य थे। इनके शिष्य भगवानदास थे। (भक्तमाल, छप्पय १८८)

२३—**पूरण बेराठी की द्वारा गादी**—ग्वालियर में गंगादास की बड़ी शाला पर सरफा स्थान। ये अग्रदास के शिष्य थे।

२४—**लालतुरंगी (बाबा लाल) की द्वारा गादी** १—हूरिया ग्राम, महदावल रियासत। पंजाब में इनकी सिद्धाई प्रसिद्ध है।
२—धानपुर ग्राम, जिला गुरुदासपुर में इनकी दूसरी गादी है। ये तन तुलसीदास के शिष्य थे।

२५—**रामथम्भन की द्वारा गादी**—१—दादुरखां का पिण्ड, पंजाब
२—रामथम्भन ग्राम में भी इनकी समाधि गादी रूप से पूजित है। ये पयोहारी श्रीकृष्णदास के शिष्य सूर्यदास के शिष्य थे।

२६—**रामरावल की द्वारा गादी**—खोड़ स्थान, जोधपुर। ये अल्ह के शिष्य थे।

२७—**राघवचेतन की द्वारा गादी**—भाण्डारेज स्थान, जोधपुर। ये रामरावल के शिष्य थे। साधुसेवा में प्रसिद्ध थे।

२८—ज्ञानी नाभा की द्वारा गादी—१—आनासागर तालाब पर पहाड़ के नीचे ज्ञानी जी का स्थान अजमेर जिला में है।
२—रेवासा के रेवालसर पहाड़पर नाभा जी की गढ़ी है। ३—पुष्कर राज्य हनुमानघाट ४—बराटा ग्राम, जिला सागर। ये अग्र जी के शिष्य थे।

२९—गोविन्ददास की द्वारा गादी—लोहानगर, जयपुर, सेखावटी में है। ये अग्र के शिष्य नाभा के शिष्य थे। रेवासा में भी इन्हीं की गादी है। सर्वप्रथम 'भक्तमाल' श्रोता यही थे।

३०—कर्मचन्द की द्वारा गादी—रेवासा ग्राम, जयपुर। ये अनन्तानन्द के शिष्य थे।

३१—कालूनयना की द्वारा गादी—मेड़मोमना ग्राम, जोधपुर (मारवाड़)। ये पूर्णबेराटी जी के शिष्य थे। 'दोहा-मालिका' इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है।

३२—लाहाराम की द्वारा गादी—खाटुखण्डेला ग्राम, करोली रियासत। ये टीला के शिष्य थे।

३३—हनुमान हठीले की द्वारा गादी—शेरगढ़ के पास अलवर राज्य में महदी स्थान में है। ये अग्र के शिष्य थे।

३४—त्यागी जंगी जी की द्वारा गादी—पटियाला, पंजाब में है। प्रयाग में झूँसी में त्यागी जी की गुफा है।

३५—अलखराम की द्वारा गादी—ब्रह्मा शहर, हनुमानगढ़ी। ये योगानन्द के शिष्य थे। कामरूपकामाक्षा स्थान में अलख गुफा उन्हीं की है।

३६—श्रीरामरमानी जी की द्वारा गादी—१—जोधपुर जिला में मेड़ता।
२—गुनोरा वत्स बन, ब्रज। ये अग्रदेव के शिष्य खेमदास के शिष्य थे। भक्तमाल ११९ छप्पय (पृष्ठ ७३३) में ये राजारामरयन जी के नाम से विख्यात हैं।

कुछ प्रसिद्ध द्वारा गादियों की गुरु-परम्परा[१]

गलतागादी की गुरु-परम्परा (सं० १९७७ तक)—१—रामानन्द

२—अनन्तानन्द ३—कृष्णदास ४—कील्ह जी ५—छोटेकृष्णदास ६—विष्णु-

१—श्री वैष्णवमताब्जभास्कर, सं० पं० रामटहलदास जी के परिशिष्टांग में उद्धृत।

दास ७—नारायणदास ८—हरिदेवाचार्य ९—रामप्रपन्नाचार्य १०—हरियाचार्य ११—श्रियाचार्य १२—जानकीदास १३—रामाचार्य १४—सीतारामाचार्य १५—हरिप्रसादाचार्य १६—हरिवल्लभाचार्य १७—हरिशरणाचार्य (सं० १९७७ वि० में वर्तमान)।

पं० रामटहलदास के अनुसार यह परम्परा सं० १६१८ में पयहारी जी से कील्ह को मिली, बाद में आचार्यों के नाम जुड़ते गए। यहाँ रामानन्द जी के पूर्व की परम्परा छोड़ दी गई है।

रेवासा गादी की गुरु परम्परा—१—रामानन्द २—अनन्तानन्द ३—कृष्णदास ४—अग्रदास ५—विनोदीस्वामी ६—ध्यानदास ७—रामचरणदास ८—बालकृष्णदास ९—सुखरामदास १०—रामसेवकदास ११—केशवदास १२—जानकीदास १३—सहजरामदास १४—भगीरथदास १५—रामानुजदास १६—चतुर्भुज-रामानुजदास १७—जगन्नाथाचार्य (सं० १९७७ कार्तिक कृष्ण १२ रविवार में वर्तमान)।

इस परम्परा को सर्वप्रथम सं० १७३५ में बालअली (बालकृष्णदास) ने लिखी। बाद के आचार्यों के नाम पीछे जोड़े गए—पं० रामटहलदास।

बालानन्द जी के स्थान की गुरु-परम्परा—सं० १८८० वि० की लिखी—१—रामानन्द २—सुरसुरानन्द ३—केवलानन्द ४—विमलानन्द ५—रामसुधीरानन्द ६—भावानन्द ७—अनभयानन्द ८—विचित्रानन्द ९—विमलानन्द १०—ब्रह्मानन्द ११—ब्रजानन्द १२—बालानन्द १३—गोविन्दानन्द १४—गँभीरा नन्द १५—सेवानन्द १६—रामानन्द १७—ज्ञानानन्द १८—माधवानन्द १९—रामकृष्णानन्द।

(वैष्णव शारंगदास द्वारा विरचित)

'लश्करी वंश' की मूल गादी यही है। इनकी शिष्य-परम्परा बड़ी ही व्यापक रही।

संक्षेप में ही इस परम्परा के विस्तार का कुछ आभासमात्र नीचे की तालिका में दिया जा रहा है।

अनभयानन्द के शिष्य—१—अखण्डी २—हाथीराम ३—दामोदरदास ४—तुहीराम ५—सिद्धबाबा ६—मौनीजी—जंगजीत ७—मोटेसिद्ध जी ८—गिरनारी ९—बाघम्बरी १०—श्यामानन्द ११—विचित्रानन्द।

हाथीराम की शिष्य-परम्परा—(वेंकटदेश, दक्षिण में मूल गादी) १—गिरिधरदास २—भक्तराम ३—लच्छीराम ४—हरिदास ५—गोवर्द्धनदास

६—तुलसीदास ७—आत्माराम ८—हरीराम ९—जानकीदास १०—गोवर्द्धनदास ११—सेवादास १२—धर्मदास १३—भगवानदास १४—महाबीरदास १५—राम किशोरदास १६—प्रयागदास।

अनभयानन्द की दूसरी शिष्य-परम्परा—अनभयानन्द—विश्वम्भरानन्द—रामलला।

रामलला की शिष्य-परम्परा—क (नरघोघी गादी) हरिकृष्णदास—बृजनन्दन दास—अलखराम—जयकरण दास—रघुनाथ दास—भगवान दास—रामप्रकाश—अगरदास—रामलोचनदास।

ख—तस्मैया बाबा मटियानी स्थान—भक्तराम—जयकृष्णदास—बनवारी—रामरक्षा दास—ललितदास—देवादास—लखननारायण दास।

ग—**मिरजापूर की गादी**—रामलला—लक्ष्मीराम दास—नन्दराम दास—भगवानदास रामप्रसाद दास—अयोध्या दास—लक्ष्मण दास—गोपाल दास—रामचरण दास—देवा दास—आनन्ददास।

घ—**रामपट्टी गादी**—रामलला—पूर्ण दास—रामचरण दास—दयाल दास—तिलक दास—जगन्नाथ दास—बलदेव दास—नरसिंह दास—टीकम दास—सत्यदेव दास—मनमोहन दास।

इसी प्रकार बसइया, बनवारी पट्टी, रायपुर, मुरदिया में रामलला जी के ही शिष्यों की गादियाँ हैं।

मटियानी से व्याही, बिड़रक, सिमरदेही, बिशनपूर, निपनियां और पुखरौनी आदि स्थानों में गद्दियाँ स्थापित हुईं। अवध, मिथिला, पंजाब, गुजरात आदि में भी इस वंश की गादियाँ स्थापित हैं। 'लश्करी-वंश परिचय' ग्रन्थ में पं० रामटहलदास ने इनका बड़े विस्तार से वर्णन किया है। अनावश्यक समझ कर यहाँ उन सबका उल्लेख नहीं किया जा रहा है।

डाकोर की गुरु-परम्परा—अग्रदेव—छोटेरामकिसन जी—आत्मप्रसन्नदास—रामप्रपन्न दास—हृदयराम जी—केशवदास—भगवान दास—बालक दास—मस्तराम—देवादास—जरूनी दास—सरयू दास—सियाराम दास—कौशल्या दास—बलदेव दास।

कूबा जी की द्वारा गादी—रामानन्द—सुरसुरानन्द—माधवानन्द—गरीबानन्द—लक्ष्मी दास—गोपाल गुगरिया—नरहर्यानन्द—केवल कूबा—दामोदर दास—हरीदास—हरिभक्तराम—प्रह्लाद दास—कनीराम दास—भागवत दास—नरसिंह दास।

टीला जी की गादी—(खेलना, भोलास, जयपुर)

कृष्ण दास—टीला—लाहाराम—अंगद परमानन्द—गोदावरी दास—भागीरथ दास—खेमदास—रामदास—छबीलेदास—गोबर्द्धन दास—जानकी दास—सहजराम—मंगलदास—भरतदास—मथुरादास—दामोदर दास—गोकुलदास नारायण दास।

रामानन्द-सम्प्रदाय में गलता, रेवासा, बालानन्द जी का स्थान, डाकोर, कूबा जी की द्वारा गादी तथा टीला जी की गादी आदि सर्वप्रमुख गादियाँ हैं। इन्हीं की शिष्य-परम्परा सारे भारत में फैली हुई है। इनमें से एक-एक का परिवार इतना विस्तृत है कि उसका पूर्ण क्या थोड़ा सा परिचय भी यहाँ नहीं दिया जा सकता। यह परिचय कोई विशेष महत्व भी नहीं रखता। नामावली की अपेक्षा सम्प्रदाय पर पड़े प्रभावों का यदि अध्ययन कर लिया जाय, तो व्यक्तियों के अध्ययन करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। इसलिए अब हम रामानन्द-सम्प्रदाय पर पड़े अन्य सम्प्रदायों के प्रभाव का ही अध्ययन करेंगे। इसी सम्बन्ध में इस सम्प्रदाय से संबद्ध-शाखाओं तथा सम्बद्ध पंथों का भी अध्ययन किया जा सकता है।

रामानन्द-सम्प्रदाय पर अन्य सम्प्रदायों का प्रभाव

रामानन्द-सम्प्रदाय और योग

तपसी शाखा—गत पृष्ठों में रामानन्द-सम्प्रदाय के विस्तार का इतिहास प्रस्तुत करते समय हमने देखा है कि योग ने इसे प्रारम्भ से ही प्रभावित करना आरम्भ कर दिया था। नाभाजी कृत 'भक्तमाल' तथा 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' दोनों ही ग्रन्थों से यह स्पष्ट हो जाता है कि गलता में रामानन्द-सम्प्रदाय की सर्वप्रथम गादी नाथपंथियों को यौगिक चमत्कारों से परास्त कर कृष्णदास पयहारी जी ने स्थापित की थी। अंगोछी में आग की धूनी उठा लेना, योगियों के महन्थ को गधा बना देना तथा योगियों की मुद्राओं का अपने आप निकल कर पयोहारी जी के समक्ष एकत्रित हो जाना आदि चमत्कार उनके योग-बल से ही संभव हुए होंगे। फिर यह प्रश्न उठ सकता है कि पयोहारी जी को यह योग मिला कहाँ से ? क्या अनन्तानन्द ने भी योगसाधना की थी और वही पयोहारी जी को गुरु-दीक्षा रूप में दी थी अथवा पयोहारी जी ने स्वयं ही नाथपंथियों के सम्पर्क में आकर उन्हें परास्त करने के लिए योग में भी सिद्धि प्राप्त कर ली ? जहाँ तक पता है अनन्तानन्द की भक्ति विशुद्ध वैष्णवी भक्ति थी। योग में उनकी रुचि

६—तुलसीदास ७—आत्माराम ८—हरीराम ९—जानकीदास १०—गोवर्द्धनदास ११—सेवादास १२—धर्मदास १३—भगवानदास १४—महाबीरदास १५—रामकिशोरदास १६—प्रयागदास।

अनभयानन्द की दूसरी शिष्य-परम्परा—अनभयानन्द—विश्वम्भरानन्द—रामलला।

रामलला की शिष्य-परम्परा—क (नरघोघी गादी) हरिकृष्णदास—बृजनन्दन दास—अलखराम—जयकरण दास—रघुनाथ दास—भगवान दास—रामप्रकाश—अगरदास—रामलोचनदास।

ख—तम्मैया बाबा मटियानी स्थान—भक्तराम—जयकृष्णदास—बनवारी—रामरक्षा दास—ललितदास—देवादास—लखननारायण दास।

ग—**मिरजापूर की गादी**—रामलला—लक्ष्मीराम दास—नन्दराम दास—भगवानदास रामप्रसाद दास—अयोध्या दास—लक्ष्मण दास—गोपाल दास—रामचरण दास—देवा दास—आनन्ददास।

घ—**रामपट्टी गादी**—रामलला—पूर्ण दास—रामचरण दास—दयाल दास—तिलक दास—जगन्नाथ दास—बलदेव दास—नरसिंह दास—टीकम दास—सत्यदेव दास—मनमोहन दास।

इसी प्रकार बसइया, बनवारी पट्टी, रायपुर, मुरदिया में रामलला जी के ही शिष्यों की गादियाँ हैं।

मटियानी से व्याही, बिड़रक, सिमरदेही, बिशनपूर, निपनियां और पुखरौनी आदि स्थानों में गद्दियाँ स्थापित हुईं। अवध, मिथिला, पंजाब, गुजरात आदि में भी इस वंश की गादियाँ स्थापित हैं। 'लश्करी-वंश परिचय' ग्रन्थ में पं० रामटहलदास ने इनका बड़े विस्तार से वर्णन किया है। अनावश्यक समझ कर यहाँ उन सबका उल्लेख नहीं किया जा रहा है।

डाकोर की गुरु-परम्परा—अग्रदेव—छोटेरामकिसन जी—आत्मप्रसन्नदास—रामप्रपन्न दास—हृदयराम जी—केशवदास—भगवान दास—बालक दास—मस्तराम—देवादास—जरूनी दास—सरयू दास—सियाराम दास—कौशल्या दास—बलदेव दास।

कूबा जी की द्वारा गादी—रामानन्द—सुरसुरानन्द—माधवानन्द—गरीबानन्द—लक्ष्मी दास—गोपाल गुगरिया—नरहर्यानन्द—केवल कूबा—दामोदर दास—हरीदास—हरिभक्तराम—प्रह्लाद दास—कनीराम दास—भागवत दास—नरसिंह दास।

टीला जी की गादी—(खेलना, भोलास, जयपुर)

कृष्ण दास—टीला—लाहाराम—अंगद परमानन्द—गोदावरी दास—भागीरथ दास—क्षेमदास—रामदास—छबीलेदास—गोबर्द्धन दास—जानकी दास—सहजराम—मंगलदास—भरतदास—मथुरादास—दामोदर दास—गोकुलदास नारायण दास।

रामानन्द-सम्प्रदाय में गलता, रेवासा, बालानन्द जी का स्थान, डाकोर, कूबा जी की द्वारा गादी तथा टीला जी की गादी आदि सर्वप्रमुख गादियाँ हैं। इन्हीं की शिष्य-परम्परा सारे भारत में फैली हुई है। इनमें से एक-एक का परिवार इतना विस्तृत है कि उसका पूर्ण क्या थोड़ा सा परिचय भी यहाँ नहीं दिया जा सकता। यह परिचय कोई विशेष महत्व भी नहीं रखता। नामावली की अपेक्षा सम्प्रदाय पर पड़े प्रभावों का यदि अध्ययन कर लिया जाय, तो व्यक्तियों के अध्ययन करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। इसलिए अब हम रामानन्द-सम्प्रदाय पर पड़े अन्य सम्प्रदायों के प्रभाव का ही अध्ययन करेंगे। इसी सम्बन्ध में इस सम्प्रदाय से संबद्ध-शाखाओं तथा सम्बद्ध पंथों का भी अध्ययन किया जा सकता है।

रामानन्द-सम्प्रदाय पर अन्य सम्प्रदायों का प्रभाव

रामानन्द-सम्प्रदाय और योग

तपसी शाखा—गत पृष्ठों में रामानन्द-सम्प्रदाय के विस्तार का इतिहास प्रस्तुत करते समय हमने देखा है कि योग ने इसे प्रारम्भ से ही प्रभावित करना आरम्भ कर दिया था। नाभाजी कृत 'भक्तमाल' तथा 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' दोनों ही ग्रन्थों से यह स्पष्ट हो जाता है कि गलता में रामानन्द-सम्प्रदाय की सर्वप्रथम गादी नाथपंथियों को यौगिक चमत्कारों से परास्त कर कृष्णदास पयहारी जी ने स्थापित की थी। अंगोछी में आग की धूनी उठा लेना, योगियों के महन्थ को गधा बना देना तथा योगियों की मुद्राओं का अपने आप निकल कर पयोहारी जी के समक्ष एकत्रित हो जाना आदि चमत्कार उनके योग-बल से ही संभव हुए होंगे। फिर यह प्रश्न उठ सकता है कि पयोहारी जी को यह योग मिला कहाँ से? क्या अनन्तानन्द ने भी योगसाधना की थी और वही पयोहारी जी को गुरु-दीक्षा रूप में दी थी अथवा पयोहारी जी ने स्वयं ही नाथपंथियों के सम्पर्क में आकर उन्हें परास्त करने के लिए योग में भी सिद्धि प्राप्त कर ली? जहाँ तक पता है अनन्तानन्द की भक्ति विशुद्ध वैष्णवी भक्ति थी। योग में उनकी रुचि

नहीं थी। 'हरिभक्तिसिन्धु बेला' ग्रन्थ, कहा गया है,[१] विशुद्ध वैष्णवी-भक्ति से परिपूर्ण है। हाँ, उनकी सिद्धि की चर्चा अवश्य ही आधुनिक रामानन्दी विद्वानों ने की है। अतः अनन्तानन्द से पयोहारी जी को योग न मिला होगा। पयोहारी जी, नाभादास के अनुसार, राजपूताने के दाहिमा (दाधीच्य) ब्राह्मण थे। राजपूताने में विक्रम की १५ वीं-१६ वीं शताब्दी तक कनफटे योगियों का पर्याप्त प्रभाव था। अतः वहाँ की जनता का उनसे प्रभावित हो जाना असम्भव नहीं। पयोहारी जी पर बाल्यावस्था में इन नाथपंथी साधनाओं आदि के स्पष्ट संस्कार भी पड़े ही होंगे। उन्होंने अनन्तानन्द से वैष्णव-धर्म में दीक्षा प्राप्त की थी अवश्य, पर संस्कारगत योग से वे मुक्त न हो सके होंगे। नाथपंथियों को हटा कर जब अपने सम्प्रदाय की गद्दी स्थापित करने का प्रश्न उठा होगा, तो उनका यह संस्कार और भी प्रबल हो उठा होगा।

इस संबंध में ध्यान देने की एक बात और है। पयोहारी जी ने अपने दो प्रमुख शिष्यों-कील्ह और अग्र-में कील्ह को ही गलता की गादी का अधिकारी बनाया, अग्र को नहीं। कील्ह की प्रवृत्ति योग की ओर अधिक थी। नाभादास के अनुसार[२] उन्होंने भीष्मपितामह की भाँति मृत्यु को स्ववश कर लिया था। इन्होंने सांख्य और योग दोनों शास्त्रों के सिद्धान्तों का सुदृढ़ अनुभव प्राप्त कर लिया था। प्रियादास ने इनके और-और यौगिक चमत्कारों का वर्णन भक्त-माल की टीका में किया है। इससे स्पष्ट है कि पयोहारी जी ने कील्ह की इन्हीं सिद्धियों से प्रभावित होकर अपनी गद्दी का उत्तराधिकारी इन्हें बनाया होगा। नाथपंथियों की दृष्टि गलता की ओर लगी ही रही होगी। वे उसे हस्तगत भी कर लेना चाहते होंगे। कील्ह ने वहाँ रह कर पयोहारी जी के उद्देश्य को पूरा भी किया। स्वयं योग-निष्णात तो वे थे ही, अपने शिष्यों को भी उन्होंने योग का भरपूर ज्ञान कराया। नरवर गढ़ के कछवाहा राजा आसकरन उनके शिष्य थे, मथुरा के राजा मानसिंह के यहाँ उन्हें सम्मान पूर्वक बुलाया ही जाता था। इससे स्पष्ट है कि राजस्थान के राजन्य वर्ग पर इनका बहुत ही प्रखर प्रभाव था। नाथपंथी योगी इनके विरोध में सिर उठा नहीं सकते थे।

कील्ह जी के शिष्य द्वारकादास ने कील्ह की परम्परा को और आगे बढ़ाया। अष्टांग योग में ये पूर्ण निष्णात थे। कूकस ग्राम में बहुत समय तक ये नदी के जल में डूब कर ध्यानस्थित रहे। घर-द्वार से इन्हें पूर्ण विराग था।

१—खेद है, अप्रकाशित होने के कारण यह ग्रंथ लेखक को मिल नहीं सका।

२—भक्तमाल, नाभादास, छप्पय ४०, पृ० ३०६।

कील्ह के ये बड़े कृपा पात्र थे, अतः उन्हीं की कृपा से इन्होंने माया का भी विनाश कर दिया। नाभा जी का कहना है कि 'अष्टांगयोग' तन त्यागियो द्वारिकादास जानै दुनी।' द्वारकादास ने अष्टांग योग के माध्यम से शरीर त्याग किया, यह सारा संसार जानता है।

इस प्रकार पयोहारी जी की शिष्य-परम्परा में भक्ति के साथ-साथ योगाभ्यास भी होने लगा। धीरे-धीरे रामानन्दी वैष्णवों की एक शाखा में योग-साधना का पूरा समावेश हो गया। यह शाखा 'तपसी शाखा' के नाम से विख्यात हुई और इस शाखा के साधु तपस्वी महात्मा के नाम से पुकारे जाने लगे। आज भी राजस्थान, पंजाब आदि में तपस्वी महात्माओं का बाहुल्य है। अखाड़ों के नागा प्रायः इसी शाखा के अन्तर्गत आते हैं। इन्हें कभी-कभी 'अवधूत' भी कहा जाता है और इस शाखा को अवधूत-मार्गी-शाखा।

तपसी शाखा के प्रमुख ग्रन्थ—तपसी-शाखा के मूल ग्रन्थ हैं :—सिद्धान्तपटल, रामरक्षा स्तोत्र और योगचिन्तामणि। ये सभी ग्रन्थ रामानन्द स्वामी द्वारा विरचित कहे जाते हैं। रामानन्द स्वामी के नाम पर प्रचलित ग्रन्थों की प्रामाणिकता की पूरी जाँच करके हमने पीछे यह सिद्ध किया है कि ये ग्रन्थ स्वामी रामानन्द जी कृत नहीं हैं, फिर भी 'तपसीशाखा' के मूल सिद्धान्त इनमें निहित हैं। इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इन ग्रन्थों में भक्ति और योग का समन्वय सर्वत्र ही दृष्टिगत होता है।

सिद्धान्त-पटल का विषय—सिद्धान्त पटल में निम्नलिखित विषयों का समावेश किया गया है।

१—रामानन्द स्वामी को पंचमात्रा—सेली, सिंगी, लंगोटा, झोली, झण्डा, चंवर, कुञ्जी, कड़ा, सुमिरनी, माला, शंख, तुम्बी, गूदरी, मोरचंग, कलंगी, आदि साधु-वेष के सम्बन्ध में; चक्कू, चकमक, गोपीचन्दन, फरसी, गुप्ती, खड़ाऊं कण्ठ का हीरा, कान की कुंजी आदि योगी की आवश्यकताओं के सम्बन्ध में, इस पंचमात्रा में चर्चा की गई है। २—आसनमंत्र ३—कण्ठी हीरामंत्र ४—कुंचीमंत्र ५—चीपियामंत्र ६—मृगछाला मंत्र ७—वैराग्यआभूषणमंत्र ८—श्रीधारण करने का मंत्र, ९—छुछीमंत्र, १०—अलफ़ीमंत्र, ११—सनकादिकमंत्र १२—कुंचीमंत्र १३—निरन्जनतारकमंत्र, १४—कायाधामक्षेत्र १५—सिन्दूर चढ़ावनमंत्र १६—वैराग्य बीजमंत्र, १७—अमर बीजमंत्र १८—ब्रह्मतारकमंत्र १९—यज्ञोपवीतमंत्र २०—जटामंत्र २१—कामधेनुमंत्र २२—परसुरियाकामधेनु मंत्र २३—चूलाचेतावनमंत्र २४—जानकीजुगलभण्डार मंत्र २५—लक्ष्मीमंत्र २६—भण्डारमंत्र

२७—तिलकमंत्र २८—प्रसादीमंत्र २९—भागवतीमंत्र ३०—कुरलामंत्र ३१—हीरामंत्र ३२—द्वितीय हीरामंत्र ३३—यज्ञोपवीत धारण मंत्र ३४—स्कन्द पुराण का यज्ञोपवीत लक्षण ३५—यज्ञोपवीत चढ़ावनमंत्र ३६—यज्ञोपवीत शुद्धि-मंत्र ३७—बाघम्बर चिन्तामर, मृगछाला मंत्र ३८—धूनीपानी मंत्र ३९—पंचधूनी-मंत्र ४०—सप्तधूनीमंत्र ४१—धूनीप्रज्वलितमंत्र ४२—द्वितीय पंच धूनीमंत्र। ४३—स्वाहामंत्र ४४—शंखबीजमंत्र ४५—द्वितीय चीपियामंत्र ४६—गुरुरामानन्द जी का वैरागबीजमत्र ४७—भस्मगायत्री ४८—भस्मगायत्री ४९—विभूति पलटनमंत्र ५०—लंगोटी आड़बंद मंत्र। ५१—कलंगी कपाली, अंचलाबीजमंत्र। ५२—झोलीमंत्र ५३—अन्नपूर्णाबीज मंत्र। ५४—सम्प्रदायमंत्र ५५—तुलसी-बीजमंत्र ५६—तुम्बाबीजमंत्र ५७—कठारीमंत्र ५८—गुरुबीजमंत्र ५९—राम-बीजमंत्र ६०—विष्णुवैराग्य बीजमंत्र ६१—मृत्तिकामंत्र। ६२—गुदाप्रक्षालनमंत्र ६३—गुदाशुद्धिमंत्र ६४—बनसज्यामंत्र।

इस ग्रन्थ से स्पष्ट है कि यह अवधूतमार्ग (इस ग्रन्थ के अन्त में लिखा भी है 'इति श्री गुरु रामानन्द जी कृत सिद्धान्तपटल अवधूतमार्ग सम्पूर्ण') का प्रमुख ग्रन्थ है। 'अवधूतमार्ग' की विचारधारा पर यह ग्रन्थ पर्याप्त प्रकाश भी डालता है। इसमें एक ओर उन सामग्रियों का वर्णन किया गया है, जो वस्त्राभूषणादि के रूप में नाथपंथी योगियों द्वारा धारण की जाती थीं जैसे-सेली, सिंगी, कुंजी, कड़ा आदि; और दूसरी ओर नाथपंथी पारिभाषिक शब्दावली-हंसा, शब्द, अगम, सोहम्, पिण्ड, अजरा, सतगुरु, निर्गुण, निरन्जन, विभूति, अलख, गगन, अजपाजाप, अष्टकमल, त्रिवेणी सेज, चन्द्र, सूर्य आदि के अतिरिक्त नवनाथ चौरासी सिद्धों आदि की भी चर्चा की गई है। साथ ही इस ग्रन्थ में माला सुमिरनी, तिलक, गायत्री, हनुमान की पूजा, शालग्राम, यज्ञोपवीत, रामलक्ष्मण, जानकीमाता, ब्रह्माविष्णुमहेश्वरादि देवता, प्रसादी, कंठी, शंख, सम्प्रदायमंत्र, आदि का भी पर्याप्त मात्रा में प्रयोग मिलता है। 'वैष्णवों को गुरु बीजमंत्र का जाप करना चाहिये, इससे यम का बन्धन कटेगा और भक्त को बैकुण्ठ मिलेगा।' ऐसा भी आदेश इस ग्रन्थ में दिया गया है। ठाकुर जी का टहलमाहात्म्य भी इस ग्रन्थ के अन्त में वर्णित है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि स्वामी रामानन्द जी की कृति न होने पर भी इस ग्रन्थ का एक अद्भुत एवं अद्वितीय महत्व है। इसमें निश्चित् रूप से योग (नाथपंथी) और वैष्णवीभक्ति का समन्वय किया गया है। इस प्रयास की अवहेलना नहीं की जा सकती।

योग चिन्तामणि—इस ग्रन्थ में योग की ही चर्चा विशेष की गई है

यह ग्रन्थ अप्राप्य है। इसका विशेष प्रचार भी नहीं दिखलाई देता। कम-से-कम अवध के श्री रामानन्दीय वैष्णवों में तो इसका प्रचार है ही नहीं, इतना मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव के बल पर कह सकता हूँ। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि इस ग्रन्थ में योग की चर्चा प्रधान है। पं० रामचन्द्रशुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास'[1] नामक ग्रन्थ में जो पद 'योगचिन्तामणि' से उद्धृत किया है, वह तो शत-प्रतिशत योग-सम्प्रदाय से ही प्रभावित है। काया, कटक, नाद-विन्दु, सतगुर, अष्टदल-कमल, हंसा, सरोवर, शब्द, सुरत, सयल, आत्मा का महल आदि अनेक शब्द नाथपंथियों के ही हैं।

श्री रामरक्षा स्तोत्र की एक प्रति मुझे अवध, लक्ष्मण किला से प्राप्त हुई है। उसमें योग का प्रभाव स्पष्ट ही देखा जा सकता है। सन्ध्या, निरंजन, नाद, सुषुम्ना, पंचमुद्रा, खेचरी-भूचरी, अगोचरी, उनमनी, चाचरी, पिंभ (पिण्ड), त्रिकुटी, अलख, अष्टदल कमल, विन्दु, सतगुरु आदि शब्द यहाँ प्रचुरमात्रा में मिल जाते हैं। लक्ष्मण, जानकी, हनुमान और राम का भी बीच-बीच में नाम आ गया है। भाषा वैसे सामान्यतया बड़ी ही निम्नकोटि की है। फिर भी बीच-बीच में संस्कृत का भी प्रयोग मिल जाता है। रचना वस्तुतः रामानन्द जी की नहीं है।

निष्कर्ष—इन तीनों ही ग्रन्थों में 'सिद्धान्त-पटल' अवधूत-मार्ग का सर्वप्रिय ग्रन्थ है। इसका प्रचार भी पर्याप्त है। अतः तपसी-शाखा के विचारों का इसमें पूर्ण प्रतिनिधित्व हुआ है। योग और प्रेम का इसमें बड़ा ही सुन्दर समन्वय हुआ है। रामानन्द का सिद्धान्त विशुद्ध प्रेम पर बल देता था और इस प्रेम को लेकर संसार-क्षेत्र में आने वाले यात्रियों ने वातावरण के अनुकूल उसे ढाला भी। नाथपंथ और रामानन्द की प्रेम-भावना को समेट कर आगे बढ़ने वाली 'तपसीशाखा' का प्रयास बहुत कुछ इसी प्रकार का था। बहुत संभव है ऐसा ही उदार दृष्टिकोण लेकर कबीर ने तपसी-शाखा के महात्माओं का भी मार्ग-प्रदर्शन किया हो। स्वयं रामानन्द में ही ये प्रवृत्तियाँ समवेत हो गई हों, इसके दृढ़ प्रमाण नहीं मिलते। जो कुछ भी सामग्री अब तक प्राप्त हो सकी है, उससे स्पष्ट ही वे विशिष्टाद्वैत मतानुयायी विशुद्ध वैष्णव प्रतीत होते हैं।

रामानन्द-सम्प्रदाय के अखाड़े इसी शाखा के अन्तर्गत आते हैं, किन्तु उनका वर्णन हम इसी अध्याय में आगे चल कर करेंगे।

१—रामचन्द्रशुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' पृ० १२२।

२—रामानन्द-सम्प्रदाय और माधुर्यभाव

रसिक-सम्प्रदाय या सखी-सम्प्रदाय

संक्षिप्त परिचय—रामानन्द-सम्प्रदाय में माधुर्यभाव का प्रवेश कब और किसके द्वारा हुआ, यह निश्चित् रूप से नहीं कहा जा सकता। नाभादास ने 'भक्तमाल' में किसी रामानन्दी भक्त को स्पष्ट रूप से माधुर्योपासक नहीं कहा है। रामानन्द के सभी शिष्य उनके अनुसार 'दशधा भक्ति' में निष्णात थे। कुछ लोगों का अनुमान है कि भक्ति की यह दशवीं प्रणाली कदाचित् प्रेमाभक्ति है। कबीरदास ने अपने को प्रियतम राम की 'बहुरिया' कहा भी है। तो क्या यह अनुमान कर लिया जाय कि कबीर माधुर्य-भाव के उपासक थे? किन्तु, कबीर ने तो अपने को 'राम की कुतिया' भी कहा है। फिर कबीर के श्रृंगार और सूरदास के श्रृंगार में अन्तर भी है। सूर का श्रृंगार उनके 'लीलावाद' का एक अंग था, किन्तु कबीर का श्रृंगार हृदय की प्रियतम भावनाओं में भगवान् को बाँध लेने के प्रयास-स्वरूप था। अतः उनका श्रृंगार सर्वत्र मर्यादित ही रहा। इसी प्रकार रामानन्द स्वामी के अन्य शिष्यों के सम्बन्ध में भी कहा जा सकता है। उनकी भक्ति में अनुभूति की तीव्रता अवश्य थी, पर यह तीव्रता मर्यादासंगत थी। तुलसीदास की रचना में गीतावली के उत्तरकाण्ड में सूरदास के अनुकरण पर कुछ श्रृंगार आ गया है, पर उसमें 'गोप्य-केलि' को कोई स्थान नहीं है। जहाँ तक पता है मध्ययुग में केवल मानदास ऐसे भक्त थे जिन्होंने रघुनाथ की गोप्यकेलि प्रकट की थी[१]। यद्यपि उन्होंने रामायण और हनुमन्नाटक की सभी रहस्योक्तियों का वर्णन भाषा में किया था, फिर भी कौशलेन्द्र के चरणों में उनका अनन्य दास्यभाव भी था। किन्तु इससे यह अनुमान तो किया ही जा सकता है कि मध्ययुग में ही राम भक्ति में श्रृंगार का भी प्रवेश हो चुका था और प्रियादास के साक्ष्य पर यह भी कहा जा सकता है कि स्वयं नाभादास जी के समय में सखी-भाव का भी प्रवेश

१—गोप्य केलि रघुनाथ की मानदास परगट करी ॥
करुणावीर सिंगार आदि उज्ज्वल रस गायो।
परउपकारक धीर कवित कविजन मन भायो ॥
कौसलेस पद-कमल अननि दासत ब्रत लीनौ।
जानकी जीवन सुजस रहत निसिदिन रंग भीनौ ॥
रामायन नाटक की रहसि उक्ति भाषा धरी।
गोप्यकेलि रघुनाथ की मानदास परगट करी ॥

—भक्तमाल, पृ० ७७५

रामानन्द-सम्प्रदाय में हो चुका था। नाभादास को प्रियादास ने 'नाभाअली' के नाम से भी अभिहित किया है।[१]

रामानन्द-सम्प्रदायान्तर्गत रसिक-सम्प्रदाय के प्रसिद्ध विद्वान् महन्थ जीवाराम (चिरांद, छपरा) ने अपने ग्रन्थ 'रसिक-प्रकाश भक्तमाल' में अपने सम्प्रदाय का विस्तृत इतिहास प्रस्तुत किया है। यह ग्रन्थ वि० की उन्नीसवीं शताब्दी के अंत और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ की कृति है। ये अयोध्या के प्रसिद्ध महन्थ तथा राम-भक्ति में शृंगार के प्रथम प्रचारक जानकीघाट, अयोध्या के महात्मा रामचरणदास के शिष्य थे।

'रसिक प्रकाश भक्तमाल' के अनुसार रामानन्द स्वामी के दादा गुरु हर्यानंद जी के 'सदाचार में रसिकता' वर्तमान थी।[2] राघवानन्द जी थे तो हर्यानन्द के शिष्य, पर शिव को उन्होंने अपना गुरु मान लिया था। उन्होंने हनुमान् जी (सीता जी की चारुशीला सखी के अवतार) से इनका सम्बन्ध कराया और रसिक-सम्प्रदाय चलाने की इन्हें आज्ञा दी।[3] शंकर की आज्ञा का राघवानन्द जी ने भलीभांति पालन भी किया। उन्होंने कराल काल को जीत कर रामानन्द को अपना शिष्य बनाया। फिर तो 'प्रगटी भक्ति अनादि अवध गोपुर स्वच्छन्दा'[४]। गुरु ने रामानंद को रसिक-रीति देकर सम्प्रदाय का कितना उपकार किया ?

रामानन्द जी के द्वादश शिष्यों में अनन्तानन्द जी बड़े ही शृंगारी थे। इनके सम्बन्ध में जीवाराम जी ने लिखा है:—

"रसिक समाधी प्रबल कृपा उरदाह लहे हैं।
जनक लली के कृपा-रास-रस पूरि रहे हैं।।
आंसू चलत समाधि में अद्भुत गति विरही लहे।"[५]

आगे अनन्तानन्द जी को 'मानसीछविसरसी का मराल' और चारुशीला का रूपोपासक कहा गया है। अनन्तानन्द जी के शिष्यों में कृष्णदास पयोहारी ने योग और शृगार दोनों का ही अपने में अद्भुत समन्वय किया था। १२ वर्ष तपस्या करके इन्होंने सीता जी के दर्शन प्राप्त किये थे। अष्टयामीय सेवाभाव के

१—भक्तमाल, रूपकला, पृ०३१, कवित्त ५।
२—रसिक प्रकाश भक्तमाल, छप्पय ६, पृ० १०।
३—वही, छप्पय १०, पृष्ठ १०।
४—रसिक प्रकाश भक्तमाल, छप्पय १०, पृ० १०।
५—वही, छप्पय ११।

ये प्रचारक भी कहे गए हैं। पयोहारी जी के दो प्रमुख शिष्य हुए : कील्ह और अग्र।

कील्ह दास मूलतः योगी थे। फिर भी वे 'रासविहार निरत' रहा करते थे। कील्ह की परम्परा में लघुकृष्णदास (साधुसेवी) के शिष्य विष्णुदास के शिष्य नारायणदास थे, जिन्होंने 'रघुपतिरहस्यप्रदीपिका' ग्रन्थ की रचना की थी। इन्हीं के शिष्य हृदयदेव के शिष्य 'रसिकशिरोमणि' मधुराचार्य जी थे। अग्रदेव के समान ही इन्हें रस-रीति के प्रचारक होने की ख्याति मिली थी। शृंगार रस की शास्त्रीय व्याख्या भी इन्होंने अपने ग्रन्थ 'सुन्दरमणि संदर्भ' में की है।

अग्रदेव को 'अग्रअली' या अग्रसहचरी भी कहा गया है। इनकी पद-रचना वाल्मीकि के समान ही होती थी। इन्होंने रैवासा में जानकी-बल्लभ की रहस्य-रीति की उपासना की थी और रंगमहल तथा अनेक कुंजों का निर्माण भी कराया था। इन्हें लेखक ने चन्द्रकला-सखी का उपासक बतलाया है। ये रस-सम्प्रदाय के प्रथम आचार्य माने गए हैं। 'रसिकप्रकाश भक्तमाल' के टीकाकार जानकीरसिकशरण का कथन है कि इन्होंने "केलि कुंज वासिनी मनोजरतिनासिनी के प्रथम समागम के स्वच्छ पद गाये हैं।" भक्ति, रसिकता, दम्पति-विलास और रस-सागर की ये नौका थे। अग्रदास के 'अष्टयाम', 'शृंगाररस-सागर', 'ध्यान मंजरी', 'पदावली', 'कुण्डलियाँ' आदि ग्रंथ प्रसिद्ध हैं।[१] सं० १६३२ वि० के लगभग इनका वर्तमान रहना माना जाता है।

इन्हीं अग्रदेव के शिष्य थे नाभादास जिन्हें 'नाभाअली' भी कहा गया है। इन्होंने 'अष्टयाम', 'भक्तमाल' आदि ग्रन्थों की रचना भी की थी। अग्र की परम्परा को नाभा जी ने और भी आगे बढ़ाया। कहा गया है ये 'युगल-उपासना' के रहस्य को भलीभाँति जानते थे। इनका आविर्भाव-काल सं० १६५७ वि० माना गया है। अग्रदास के चरण-चंचरीक कुछ और भक्त हो गए हैं, जिन्होंने शृंगार-रस की अनेक प्रकार से अभिवृद्धि की। इन भक्तों में बालअली, रूपअली, मधुराचार्य, हर्याचार्य, रामसखे, रामदास गूदर, रामप्रसाद, प्रेम सखी, चित्रसिन्धु तथा रघुरवशरण आदि प्रमुख हैं। यों तो 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' में शताधिक माधुर्योपासक भक्तों के नाम दिये गए हैं और उनकी व्यक्तिगत विशेषताओं का भी लेखक ने बड़ी ही सूक्ष्मता से विवेचन किया है, किन्तु यहाँ हम उनमें से कुछ प्रमुख भक्तों की ही विशेषताओं पर प्रकाश डाल सकेंगे। ये सारी सूचनाएँ 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' के आधार पर ही दी जा रही हैं।

१—वही, छप्पय १४-१५।

मलूकदास—ये अग्रस्वामी के शिष्य जंगी जी के शिष्य तनतुलसीदास के शिष्य देवमुरारि के शिष्य थे। रामकथा में इनका अनुराग बाल्यावस्था से ही था। कभी-कभी रामलीला का भी ये अनुकरण करते रहते थे। लेखक ने इनके विषय में कहा है, 'जानकी जीवन रघुनाथ रघुनन्दन हे राघो प्राण प्यारे यह बानी उरधारी है'। कहा जाता है एक बार भगवान् ने इनकी गठरी इनके घर पहुँचा दी थी। तभी से ये विरक्त होकर देवमुरारी के शिष्य हुए। भगवान् को इन्होंने पान के बीड़े का भी भोग लगाया था। ये अष्टयामीय उपासना में रात-दिन निरत थे। कहा गया है इन्होंने तीन दिन तक गंगा में डूब कर जगन्नाथ जी तक की यात्रा की और वहाँ जाकर उनके दर्शन किए।

केवल कूबा—द्वारागादियों का विवरण देते हुए इनके सम्बन्ध में कुछ विशेष सूचनाएँ दे दी गई हैं। इनके बारह शिष्य थे। उनके नाम के अन्त में इन्होंने 'कल्याण' शब्द रक्खा था, जैसे अधिकारी कल्याण, पुजारी कल्याण आदि। कहा जाता है—रसिक प्रकाश भक्तमाल के मत से—महाकवि तुलसीदास इन्हीं के गुरु भाई थे। यह परम्परा इस प्रकार दी जाती है—

सुरसुरानन्द-गोपालदास-रघुनाथदास-नरहरिदास-क-केवलकूबा -ख तुलसीदास। तुलसीदास के सम्बन्ध में यह परम्परा कहाँ तक सही है, यह नहीं कहा जा सकता। फिर भी इसे स्वीकार करने में अनेक आपत्तियाँ हैं। पहली तो यह कि तुलसीदास के सम्बन्ध में किसी अन्य सूत्र से यह प्रमाणित नहीं होता कि उनका बाल्यकाल राजस्थान में व्यतीत हुआ था, दूसरे यह कि जीवाराम जी ने भी तुलसीदास को केवलकूबा का गुरुभाई नहीं लिखा है। यह मत उनके ग्रन्थ के टीकाकार का है। संभव है तुलसीदास को भी श्रृंगारी सिद्ध करने के लिए यह मत गढ़ लिया गया हो। कोई प्राचीन उल्लेख इस मत का समर्थन नहीं करता है।

सूर किशोर—सूर किशोर जी की भक्ति वात्सल्य-भाव की थी। सियाजू इनकी कन्या के रूप में अवतरित हुई थीं। मिथिला में मणिभूमि में इन्होंने उपास्य स्थल प्रकट किया था। ये कील्ह स्वामी के पौत्र-शिष्य थे। रात-दिन ये लली-लाल को रिझाते और उन्हीं का गुणगान किया करते थे। इन्होंने अवध, कामदगिरि (चित्रकूट) तथा जनकपुर में बहुत समय तक निवास किया था। हनुमान् की कृपा स उन्हें 'लली' के दर्शन हुए थे। उन्होंने विदेहराज जनक की भाँति सीताराम का विवाह किया था। कमलानदी के तट पर राम का ये भजन किया करते थे, वहीं 'सुख मेघ' की इन पर वृष्टि हुई थी। अवध में ये अधिक नहीं रह सके थे। इन्हें 'लली' का संकोच असह्य था, अतः अन्त में ये मिथिला

में रहने लगे। इन्होंने अनेक सुन्दर-सुन्दर पदों की रचना की है। मिथिला-विलास की रचना सं० १८९५ वि० में इन्होंने की थी।

प्रयागदास (प्रागदास)—सूरकिशोर के शिष्य, किन्तु सख्यभाव के भक्त थे। ये चित्रकूट में रहा करते थे। राम को इन्होंने अपना बहनोई माना था। ये सभी को सखा कह कर पुकारते। किसी पण्डित से यह सुन कर कि राम बिना पनही पहने ही बन चले गए, इन्होंने पनही खरीदी और चित्रकूट जाकर 'लाल' को ढूंढ़ा। वहाँ उन्हें न पाकर ये पंचवटी गए और वह पनहीं अपने सखा 'राम' को पहनाई। अवध, प्रयाग, मिथिला, चित्रकूट इनके विहार-स्थल थे।

बालअली—इन्होंने स्वप्न में अग्रस्वामी से रसिक-रीति पाई थी, अतः सदाचार में इनका अधिक विश्वास नहीं था। इनका नाम 'जनककिशोरीशरण' पड़ गया। इन्होंने 'नेह-प्रकाश', 'ध्यानमंजरी' आदि ग्रन्थों की रचना की है। पहले कभी इन्होंने रामानुज-भाष्य का श्रवण कर अहोबल गद्दी का चिन्ह धारण किया था, अग्र के स्वप्न पर ये बदल गए। कुछ दिनो तक ये अवध, रामघाट पर भी रहे। अन्त में इन्होंने रैवासा को अपना प्रधान निवास-स्थान बनाया। यहीं शृंगार पर 'तत्वदीपिका' ग्रन्थ का निर्माण हुआ। बालअली के शिष्य '*रूपसखी*' जी ने सखीभाव को व्यापक बनाया था। इन्होंने ७०० सखियाँ, यूथ, यूथेश्वरियाँ, मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा आदि सखियों के भेद भी किए। बालअली जी सं० १७३५ वि० में वर्तमान माने जाते हैं (पं० रामटहलदास)।

मधुराचार्य--मधुराचार्य जी सरस शृंगार के उपासक थे। इन्होंने रंगमहल, केलिकुंज आदि की कल्पना की थी। ये निमिवंशोत्पन्न तथा पयहारी रसिकेन्द्र के कृपा पात्र थे। इन्होंने द्वादश वार्षिक रास किया था। अनेक ग्रन्थों की रचना करके इन्होंने रास-पद्धति को पुष्ट किया था। रामायण का एक बहुत सुन्दर तिलक भी इन्होंने लिखा था। इनके द्वारा आयोजित छठें रास में, कहा जाता है, पयोहारी जी अलिवेश में आये थे। गालवाश्रम छोड़ कर बहुत समय तक ये चित्रकूट रहे। वहीं मन्दाकिनी तट पर इन्होंने रामतत्वपरत्व सिद्ध करने वाला एक ग्रन्थ लिखा जो अब अप्राप्य है। इन्होंने सीतापुर नाम का नगर भी बसाया था। कहा जाता है, अंत में ये प्रयाग में रामघाट पर रहने लगे थे। इनके शिष्य हर्याचार्य बड़े ही रास-रस-रसिक थे। मधुराचार्य का ग्रन्थ 'सुन्दरमणि-संदर्भ' माधुर्यभक्ति का एक अपूर्व ग्रन्थ है। कील्ह के उपरान्त ये गलता गादी के ५ वें महन्थ थे, इनका समय वि० की १८ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में माना जा सकता है।

रामसखे—रामसखे जी के सम्बन्ध में 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' में निम्नलिखित छप्पय दिया गया है :—

सरस काव्य गुण ललित वलित दम्पति रस लीने।
पढ़त गुनत मन मोद प्रेम-पथ रसिक रँगीले॥
ब्रह्म सम्प्रदा मुनि अगस्ति परिणाम लहे हैं।
मत अभेद खण्डन समर्थ बहु ग्रंथ कहे हैं॥
गोलोक अवधि अवतार महि बन प्रमोद रस रास उर।
श्री रामरास पद्धति प्रचुर रामसखे बानी मधुर॥[१]

रामसखे दक्षिण में मैहर के रहने वाले थे। एक बार गुरु के साथ वे गलते गए तो वहाँ रास-रंग में डूब गए। इष्ट में उनका अटूट अनुराग देख कर स्वामी जी ने अली-भाव लेने को कहा। वहाँ से कामदवन (चित्रकूट) आकर इन्होंने राम-जानकी का दर्शन किया और केलि-कुंज, वन, तड़ाग, वाटिका बनाकर वहीं रहने लगे। पुनः शरभंग, अत्रि, अगस्त्यादि के आश्रमों का दर्शन करते हुये ये पंचवटी गए, मैहर में इन्होंने पुनः गुरु का दर्शन किया। पुनः चित्रकूट लौट कर वहाँ उन्होंने रास का प्रचार किया। तत्पश्चात् वे अवध आकर मिथिला की ओर चले गए। मिथिला में सोमवट के नीचे इन्होंने राम, लक्ष्मण-भरत और शत्रुघ्न के दर्शन किए तथा राम को सीता की सखियों (गोपकन्याओं) से दधि-दान लेते हुए भी देखा। राम की वंशी-ध्वनि भी उन्हें सुनाई पड़ी। रामसखे जी ने मानलीला, दानलीला आदि की रचना की और सखी-सखा दोनों ही भावों का गान किया। ये चारुशीला के उपासक थे। नाम, धाम, रूप और लीला को दृढ़ करने वाले इनके पदों का बहुत ही महत्व है। इन्होंने १२ वर्ष तक तप करके सीताराम का दर्शन करने की प्रतिज्ञा की थी पर बीच में ही इन्हें उस लोक के दर्शन हो गए जहाँ—

सम्पुट अकार मध्य रतन प्रकार शुभ्रकोटि शशि सूर ते प्रकाश अधिकाय कै।
बड़े बड़े चौक सप्त आवरण बीच एक मण्डप पुनीत कहि सकै कौन गाय कै॥
दंपति सहेली कोटि कोटि अलबेली जिन रूप के निहारे रहै इन्दिरालजाय कै।

१—रसिक प्रकाश भक्तमाल, महन्थ जीवाराम, छप्पय ३२, पृ० ३२।

महारासथली की अनेकन सुगंध गली जहां लली लाल नित्य रमत
लुभाय कै ॥

हीरों से जड़े द्वार, कल्पतरु, वेदिका, पुष्पवाटिका, तड़ाग आदि के इन्हें दर्शन हो गए। पुनः इन्होंने कामदगिरि की प्रदक्षिणा की, सभी आश्रमों को देखा और गुरु का दर्शन कर पुनः चित्रकूट आ गए। यहीं इन्होंने अपने दो प्रसिद्ध ग्रन्थों 'रामसखे पदावली' तथा 'नृत्यराघवमिलन' की रचना की। इनके शिष्यों में चित्रनिधि, प्रेमसिन्धु और शीलनिधि आदि प्रमुख थे। सं० १८०४ वि० में इनका वर्तमान रहना कहा गया है।

कृपानिवास—कृपानिवास जी ने रैवासे जाकर दीक्षा ली थी। ये सखी भाव के उपासक थे। अष्टयाम एवं मानसीपूजा में ये बड़े ही पटु थे। श्रियाचार्य से इन्होंने पूर्वरीति-प्रीति के सम्बन्ध में बहुत कुछ सुना था। तत्पश्चात् ये कुछ समय तक उज्जैन में रहे और कुछ समय तक सीतामढ़ी, मिथिला में। ये चारु-शीला सखी के उपासक थे, हनुमान् ने स्वयं प्रकट होकर अपने को चारुशीला बता कर उनमें इनके अनुराग को दृढ़ किया। पुनः ये अवध, चित्रकूट और उज्जैन की ओर गए। इस बीच इनके भावों में पर्याप्त परिवर्तन हो चुका था। इन्होंने *तत्सुख विधान* किया। महादेव सिंधिया उज्जैन में इनके पास आकर इनका शिष्य हो गया था। इन्होंने 'अनन्य चिन्तामणि', 'समयप्रबन्ध', वर्षोत्सव 'पदावली', 'लगन पचीसी' तथा 'रामरसामृत सिन्धु' आदि ग्रन्थों की रचना की थी। माधुर्य-भक्ति के ये प्रमुख आचार्य माने जाते हैं। इन्होंने अपने लिए सीता के साथ आये हुए बालकों का भी भाव रखा। ये अग्रपंथानुयायी थे। सभा की खोज-रिपोर्ट के आधार पर ये अयोध्या के महन्थ थे तथा सं० १९०० वि० के पूर्व वर्तमान थे। इनके गुरु हनुमान प्रसाद थे।

रामप्रसाद—स्वामी रामप्रसाद जी ने अग्रस्वामी के पथ को और भी दृढ़ किया। इनका मुख्य निवास स्थल अवध था। रंगमहल में ये अपने हाथ से ही झाड़ू लगाया करते थे। इन्होंने सीता जी की बिन्दी के अनुकरण पर बिन्दु-श्री का प्रचार किया। इनकी जन्मभूमि मलीहाबाद थी। बहुत समय तक इन्होंने नैमिषारण्य में रह कर भक्ति की थी। कनकभवन में नित्य ही ये लली-लाल के दर्शनार्थ जाते थे। भक्तों से सब दिन नृत्य करते एवं कराते थे। सीता जी को इन्होंने साक्षात् सामने देख कर झुक कर प्रणाम किया। सीता जी ने इनके मस्तक पर हाथ रखा। अतः इन्होंने उनसे बिन्दी ले ली। राजा द्वारा कण्ठी-माला पहना कर भेजे गए गदहे की भी इन्होंने प्रदक्षिणा की थी और कहा जाता

है मुसलमानों तक को अपनी पंक्ति में बैठाया। लोगों ने शंका करने पर उन्हें शिखायुक्त पाया। शृंगार-रस के ये परमउपासक एवं दशधा भक्ति के आगर थे। भगवान् ने स्वयं इनकी ओर से मोदी के रूपये चुकाए थे। इनका प्रसिद्ध ग्रंथ है 'जानकीभाष्य'। रामानन्द सम्प्रदाय का यह एक प्रामाणिक ग्रन्थ है। इनके शिष्यों—राम, भगवान्, लच्छीराम, मस्तराम, परमेश, नन्दलाल और हरिदास—में हरिदास सबसे अधिक विद्वान् एवं भक्त थे। हरिदास जी ने 'रामतापनीभाष्य', 'रामस्तवराजभाष्य', 'रहस्यत्रयभाष्य', 'दशनामापराध व्याख्या', 'प्रपत्तिरहस्य,' 'उपनिषद्भाष्य,' 'गीताभाष्य' आदि भाष्यों की रचना की है। ये बहरे, किन्तु अध्ययन शील थे। रामप्रसाद जी का समय सं० १८०८ वि० माना गया है।

रामचरणदास—बाबा रामचरणदास अयोध्या के जानकीघाट के महन्थ थे। ये दीनबन्धु (रामप्रसादजी) के शिष्य रघुनाथप्रसाद के शिष्य थे। लोग इन्हें गोस्वामी जी का अवतार मानते थे। उन्होंने तुलसीदास के गुप्त शृंगार को प्रकट किया था। बाल्यावस्था से ही ये सीताचरणानुरागी थे। गुरु से इन्हें 'युगल उपासना' का मंत्र मिला था, किन्तु इन्होंने मिथिला, अवध, चित्रकूट आदि की यात्रा करते हुए रैवासे जाकर मानसी-रहस्य-पथ-पोषक ग्रन्थों को चुना और उन्हें अवध लाकर अष्टयामीय भक्ति का प्रचार किया। सं० १८८८ माघ शुक्ल नवमी को रैवासे से ये अपने गुरु के पास आए थे। इनके बनाए ग्रन्थों में 'सीतारामनवरत्न-संग्रह', 'अष्टयाम', 'रसमालिका' आदि प्रसिद्ध हैं। आधुनिक काल में रामभक्ति में शृंगार के सर्वप्रथम प्रचारक बाबा रामचरणदास ही कहे जाते हैं। इन्होंने अपनी इस माधुर्य-भक्ति-शाखा का नाम 'स्वसुखी' शाखा रखा। इन्हीं के शिष्य छपरा के महन्थ जीवाराम थे, जिन्होंने 'रसिकप्रकाश-भक्तमाल' ग्रन्थ की रचना की है। इनका समय वि० १८४४ से वि० १८६० तक माना जा सकता है।

जनकराजकिशोरीशरण—ये रामचन्द्र के रूप, लीला, धाम और गुण के उपासक थे। ये रहनेवाले तो थे सुदामापुरी के, परन्तु किसी सन्त के साथ अवध आ गए। 'करुणासिन्धु' जी के शिष्य होकर ये 'रसिकअली' के नाम से विख्यात हुए थे। कनकभवन के निर्माण का प्रारम्भ इन्हीं की देखरेख में हुआ था। माधुर्य भक्ति के ये बहुत बड़े पोषक थे। अतः इन्होंने कारीगरों को घुंघरू पहनाकर मन्दिर बनाने का आदेश दिया। बीच-बीच में ये उन्हें भरपूर जलपान भी कराते थे। अतः धन का अपव्यय देख कर करुणासिन्धु जी ने महल का बनना रोक दिया। पुनः ये आवेश में आकर मिथिला चले गए। सावनहिंडोल, रास,

व्याह, होली, जन्म-दिन आदि उत्सवों में इनकी अपार प्रीति थी। इन्होंने उनसे सम्बन्धित ग्रन्थों की भी रचना की है। 'सिद्धान्त-मुक्तावली' इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है। ये चारुशीला के उपासक कवि भक्त थे। ये वि० की १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में वर्तमान थे।

महन्थ जीवाराम—जीवाराम जी छपरा के श्री शंकरदास जी के पुत्र एवं शिष्य थे। शंकरदास जी दैवज्ञ शोभाराम की छोटी स्त्री के पुत्र थे। इन्होंने अवध, बदरीनाथ और उज्जैन आदि की विस्तृत तीर्थ-यात्राएँ की थीं। उज्जैन में किसी 'अवधूतिन' से इन्होंने व्याह भी कर लिया। जीवाराम इसी के चौथे पुत्र थे। अपने पिता-गुरु की आज्ञा मान कर जीवाराम जी अवध आए और इन्होंने बाबा रामचरणदास से माधुर्य भक्ति ली। 'करुणासिंधु' जी ने इन्हें उपदेश देते हुए ६४ प्रकार की भक्ति बतलाई थी। जीवाराम जी ने अपनी शाखा का नाम 'तत्सुखी' शाखा रक्खा। इनके अनुसार एक पत्नी व्रत-धारी भगवान् राम के साथ 'स्वसुख' संभव नहीं, केवल उनके विलास को तटस्थ होकर देखा भर जा सकता है। सं० १८६६ वि० में इन्होने 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' की रचना की थी। इसी कारण इन्हें 'द्वितीय नाभा' भी कहा जाता है। जीवाराम जी का चिरांद (छपरा) मुख्य स्थान था।

युगलानन्य शरण—जीवाराम जी के शिष्यों में सर्वप्रमुख थे युगलानन्य शरण। अयोध्या का लक्ष्मण किला इन्हीं का बनवाया हुआ है। पहले ये गुप्तारघाट, फ़ैज़ाबाद में रहा करते थे। सन् १८५७ ई० के गदर के उपरान्त अंग्रेजों ने यहाँ अपनी फ़ौजी छावनियाँ बनाईं। तब ये अवध चले गए। ये बड़े ही सिद्ध सन्त थे। दिन-रात भगवान् के ध्यान एवं नाम-स्मरण में निरत रहा करते थे। इन्होंने चित्रकूट में अनेक वर्ष रह कर घोर तप भी किया था। इन्हीं के आदेश पर रीवांनरेश रघुराजसिंह ने चित्रकूट में प्रमोदवन तथा अनेक क्रीड़ा कुन्जों का निर्माण करवाया। युगलानन्यशरण जी सखी-भाव के बहुत बड़े प्रचारक थे। लक्ष्मण किला, गोलाघाट, ऋणमोचन घाट तथा हनुमन्निवास आदि स्थानों के शृंगारीभक्त इन्हीं की शिष्य-परम्परा में आते हैं। कहा जाता है कि इन्होंने ८४ ग्रन्थों की रचना की थी। इनमें से अधिकांश हस्तलिखित रूप में लक्ष्मणकिला में सुरक्षित हैं। 'उज्ज्वल उत्कण्ठा विलास', 'अवधविहार', 'चतुष्टगुटिका', 'उत्सवविलासिका', 'जानकीसनेह हुलास', 'सीतारामनामप्रताप प्रकाश', 'प्रेमपरत्व प्रभा दोहावली', 'मधुरमंजुमाला (इश्कखण्ड)', 'अर्थपंचक', 'नामकांति' आदि ग्रन्थ ही अभी तक प्रकाश में आ सके हैं।

संक्षेप में ईसा की १६ वीं शताब्दी के अन्त अथवा बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ के कुछ वर्षों तक के 'रसिकसम्प्रदाय' का यही इतिहास है।

नीचे अवध एवं मिथिला के आधुनिक माधुर्योपासक भक्तों की परम्परा दी जा रही है। रसिकों का मत है कि श्रृंगार का मूल प्रवर्तन अग्रदास ने किया था, अतः आधुनिक श्रृंगारी भक्त अपनी परम्परा का प्रारम्भ *अग्रदास* से ही मानते हैं। अग्रदास के साहित्य से महन्थ *रामचरणदास करुणासिंधु जी* ने आधुनिक युग में सर्वप्रथम माधुर्यभाव की प्रेरणा पाई थी। उनके तीन शिष्य थे—*जीवाराम (युगल प्रिया)*, हरिदास और जनकराजकिशोरीशरण। जानकी घाट पर इनकी एक स्वतंत्र शिष्य परम्परा चली।

जीवाराम जी के सर्वप्रमुख शिष्य थे *युगलानन्य शरण*। ये लक्ष्मणकिला, अवध के संस्थापक थे। युगलानन्य शरण जी के स्वामी जानकीवरशरण और जानकी-जीवनशरण दो प्रमुख शिष्य हुए। *जानकीवरशरण* की शिष्य-परम्परा बहुत ही पल्लवित हुई। इनकी शिष्य-परम्परा में रामबल्लभाशरण (गोलाघाट), राम-जीवनशरण (सद्गुरुभवन, ऋणमोचनघाट—अयोध्या), ललित किशोरी शरण-अहिल्यास्थान—मिथिला, गोमतीदास (साधकशिष्य) आदि प्रमुख भक्त हुए। इन भक्तों में भी रामबल्लभाशरण और गोमतीदास ने बहुत ही यश अर्जित किया। रामबल्लभाशरण के श्री कान्तशरण—गोलाघाट (ये अभी वर्तमान हैं), सियालाल शरण (मिथिला—सीतामढ़ी) दो प्रख्यात शिष्य हुए। गोमतीदास के मठ के वर्तमान उत्तराधिकारी हैं, रघुनन्दन शरण जी।

जानकीजीवनशरण की परम्परा में कोई प्रसिद्ध भक्त नहीं हुआ।

जानकीघाट की गुरुपरम्परा इस प्रकार है:—१—रामानन्द २—अनन्तानंद ३—कृष्णदास ४—अग्रस्वामी ५—रामभगवान ६—लक्ष्मणदास ७—मस्तराम ८—लक्ष्मीराम ९—नन्दलाल १०—चरणदास ११—हरिदास १२—रामप्रसाद १३—रघुनाथप्रसाद १४—*रामचरणदास* १५—सीतारामसेवक १६—जानकीवरशरण १७—श्री लक्ष्मणशरण १८—मैथिलीरमणशरण—ये यहाँ के वर्तमान महन्थ हैं।

जनकराजकिशोरीशरण—(रसिकअली)—इनसे दो शाखाएँ चलीं। अवध की शाखा में फकीरेराम नाम के प्रसिद्ध भक्त हुए, मिथिला की शाखा में विहार कुण्ड के जानकीकान्तशरण और रामसुन्दरशरण इनके दो प्रसिद्ध शिष्य हुए। आज भी उनकी शिष्य-परम्परा जीवित है।[१]

१—यह परम्परा मुझे गोलाघाट, अवध, के महात्मा श्री श्रीकान्तशरणजी से प्राप्त हुई है।

रामानन्द-सम्प्रदाय (रसिक शाखा) के वर्तमानकाल के कुछ प्रसिद्ध भक्त

अवध के भक्तः—१—पं० रामबल्लभाशरण—महान्त, जानकीघाट। इन्होंने अनेक प्राचीन साम्प्रदायिक ग्रन्थों का प्रकाशन कराया था तथा सम्प्रदाय को सुसंगठित करने का पूरा प्रयास किया है। अभी कुछ ही दिन हुए इनका साकेतवास हुआ है। २—पण्डित रामबल्लभाशरण—(गोलाघाट)। ये प्रसिद्ध श्रृंगारी भक्त थे। श्रीकान्तशरण जी इन्हीं के शिष्य हैं। ३—पं० रामपदार्थदास वेदान्ती—पं० रामबल्लभाशरण, जानकीघाट, के शिष्य एवं सम्प्रदाय के एक मान्य विद्वान् हैं। अपने गुरु के यहो वर्तमान उत्तराधिकारी हैं। ४—सीतारामशरण भगवानप्रसाद रूपकला—अभी कुछ ही दिन हुए 'रूपकला' जी का साकेतवास हुआ है। अयोध्या में स्वर्गद्वार में इनका प्रमुख निवास स्थान था। ये पहले विहार में जिला विद्यालय निरीक्षक थे। भक्त हो जाने के उपरान्त इन्होने अवध को ही अपना प्रमुख निवास स्थान बनाया। नाभा जी के 'भक्तमाल' पर इनकी टीका सबसे सुन्दर टीका मानी जाती है। ५—महात्मा अन्जनीनन्दन-शरण—ऋणमोचनघाट, अयोध्या। ये रूपकला जी के शिष्य हैं। मानस पर 'मानस-पीयूष' नाम की इनकी टीका बहुत ही विद्वत्तापूर्ण एवं प्राचीन समस्त प्रमुख टीकाओं के भावों का समन्वय करके लिखी गई है। ६—पं० रामकुमार दास, रामायणी—मणिपर्वत। आप रामचरितमानस के बड़े ही सुन्दर व्याख्याता हैं। तुलसी संबंधी साहित्य का बहुत ही सुन्दर संकलन आपके यहाँ है। ७—महान्त रामशोभादास—मणिराम की छावनी। ये रामानन्द-सम्प्रदाय के सही माने में सुसंगठनकर्ता हैं। इन्होंने आर्थिक सहायता देकर अनेक साम्प्रदायिक ग्रन्थों का प्रकाशन कराया है। इनके अतिरिक्त अयोध्या में अन्य अनेक भक्त एवं महात्मा हैं, जिन्होंने भक्ति-साहित्य की पर्याप्त अभिवृद्धि की है, स्थानाभाव से उनके नाम नहीं गिनाए जा रहे हैं।

अवध के बाहर के भक्त— १—पं० रघुवरदास वेदान्ती जी सिंगड़ा के महान्त थे। इन्होंने सम्प्रदाय को दृढ़ता प्रदान करने का अथक प्रयास किया था। 'आनन्दभाष्य' का सम्पादन इन्होंने ही किया था। अभी कुछ ही दिन हुए इनका साकेतवास हो गया है। २—भगवदाचार्य—अहमदाबाद—रामानन्द-सम्प्रदाय की दार्शनिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को सबसे अधिक प्रकाश में लाने का प्रयास आपने ही किया है। सम्प्रदाय की विचारधारा को समझने के लिए भगवदाचार्य जी के ग्रन्थों का अवलोकन नितान्त आवश्यक है। आप रामानन्द-सम्प्रदाय को रामानुज-सम्प्रदाय से भिन्न और स्वतन्त्र मानते हैं। इस संबंध में कुछ अत्यन्त

महत्वपूर्ण सामग्री का आपने उद्घाटन भी किया है। वेदान्त पर आप का 'भाष्य' भी प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त आपने 'आनन्द भाष्य' के चतुर्थ अध्याय की हिन्दी टीका भी प्रकाशित की है।

अन्य विद्वान् भक्तः—१—पं० अवधकिशोरदास—मिथिला। आपने रामानन्द जी के जीवन से संबंधित रामानन्द-नाटक की रचना की है। २—पं० देवदास (आबू)—आपने 'जगद्गुरुरामानन्दाचार्य' नामक एक सुन्दर ग्रन्थ लिखा है। ३—स्वामी जयराम देव—अवधी भाषा में 'श्रीरामानन्दायन' ग्रन्थ आपने ही लिखा है। ४—श्रीकान्तशरण-मानस पर 'सिद्धान्ततिलक' इनकी प्रसिद्ध टीका है। ५—महात्मा गोमतीदास-हनुमन्निवास, अयोध्या के आप एक प्रख्यात सिद्ध भक्त थे।

सम्प्रदाय के अन्य भक्त, जिनके नाम ऊपर नहीं गिनाए गए, किसी भी दृष्टि से महत्त्वहीन नहीं कहे जा सकते, उन्होंने अपनी साधना से सम्प्रदाय को सुदृढ़ बनाया है, इसमें सन्देह नहीं। केवल स्थानाभाव के ही नाते उनके नाम यहाँ नहीं गिनाये जा रहे हैं।

सखी भावना के मूलतत्त्व

अग्रदास के[1] अनुसार साधक को दो प्रकार की सेवाएँ करनी चाहिये—मानसी-सेवा और वाह्य-सेवा।

मानसी-सेवा—ब्राह्म मुहूर्त्त में उठ कर साधक को सर्वप्रथम अपने गुरु का स्मरण करना चाहिए। तत्पश्चात् [illegible] सहित भगवान् राम का स्मरण करना चाहिए। पुनः भगवान् के पार्षदों-हनुमान्, अंगद, विभीषण, भरत, शत्रुघ्न, ऋषि वाल्मीकि आदि का उसे स्मरण करना चाहिए। इसके अनन्तर उसे राम के सखाओं—सुलोचनमणि, सुभद्रमणि, सुचन्द्रमणि, जयसेनमणि, वरिष्ठमणि, शुभशीलमणि, अनंगमणि, रसकेतुमणि आदि आठ सखाओं का भी ध्यान करना चाहिए। तत्पश्चात् उसे सखाभाव से (सखा-सखी) दम्पति की सेवा करने वाली आठ सखियों, लक्ष्मणा, श्यामला, हंसी, सुगमा, बंशध्वजा, तेजोरूपा, चित्ररेखा और इन्दिरावती तथा पुरुष-रूप से दम्पति की सेवा करने वाली आठ दासियों (निगमा, सुरसा, वाग्मी, शास्त्रज्ञा, बहुमंगला, भोगज्ञा, धर्मशीला, विचित्रा आदि) की चिन्तना करनी चाहिए। तदनन्तर स्नान, तिलक, मुद्रांकण आदि नित्य कर्म करके मंदिर में जाकर विधि पूर्वक मानसी तथा वाह्य-सेवा करनी चाहिए। मानसी ध्यान में उसे इक्कीस योजन व्यापी[2]

१—अग्रदास, अष्टयाम, पृ० ५, श्लोक ७।

२—अग्रदास, ध्यानमंजरी।

'साकेत' नगर की चिन्ता करनी चाहिए, जिसके मध्य में अशोक बन में ललित-कुण्डस्थित एक रत्न मंदिर में रत्न की वेदी है। रत्नवेदिका के मध्य में एक अष्टदलकमल है, जिस पर धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अवैराग्य, अज्ञान, अनैश्वर्य के पायों से युक्त एक सिंहासन सुशोभित है, नील इन्दीवर की कान्ति-वाले परम सौन्दर्यमय भगवान् राम और उनके वाम पार्श्व में विविध आभूषणों से अलंकृत परमरूपवती सीता जी उसी सिंहासन पर सुशोभित हैं। लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न और हनुमान् उनकी परिचर्या में निरत हैं। आठों सखियाँ चमर, छत्र, व्यजन, ताम्बूल, पुष्पमाल इत्यादि से उनकी सेवा कर रही हैं। ईशानकोण में लक्ष्मणा, पूर्व में श्यामला, अग्निकोण में हंसी, दक्षिण में सुगमा, नैऋर्त्य में वंशध्वजा, पश्चिम में चित्ररेखा, वायव्य में तेजोरूपा और उत्तर में इंदिरावती हैं। ललितकुंड के उत्तर लक्ष्मणा जी का कुंज है। पूर्व श्यामला का, दक्षिण हंसी का, पश्चिम सुगमा का, वायव्य वंशध्वजा का, उत्तरपूर्व चित्ररेखा का, पूर्वदक्षिण तेजोरूपा का और दक्षिण-पश्चिम इन्दिरावती का कुंज है। साधक को इन सखियों के नाम व स्थान की चिन्तना करनी चाहिए। इसके उपरान्त उसे आठ सखाओं के कुंजों का भी स्मरण करना चाहिए। माधवी कुंड के उत्तर सुलोचन जी का कुंज है, ईशान में सुभद्र का, पूर्व में सुचंद्र का, अग्निकोण में जयसेन का, दक्षिण में वरिष्ठ का, नैऋर्त्य में जयशील का, पश्चिम में अनंगजित का और वायव्य में रसकेतु का कुंज है।[1]

आगे चल कर महात्मा बालअली के शिष्य 'रूपसखी' जी ने ७०० सखियों की कल्पना की है और साथ ही साथ उनके भिन्न-भिन्न यूथों, यूथेश्वरियों की भी कल्पना की। उन्होंने मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा आदि भेद भी किए। ये हनुमान् जी के उपासक थे। महन्थ रामचरणदास ने गान, मज्जन, दन्तधावन, मुखप्रक्षालन, लेपन, वसन, भूषन, धूप, दीप, स्वाद, पानसुगन्ध, आरती, बाद्य फूलमाल, चमर, व्यजन आदि से भगवान् की सेवा करने वाली सखियों की भी कल्पना कर ली। इनमें ललिता और राधा सखी के भी नाम आ गए हैं।[2]

१—अग्रदास-अष्टयाम, पृष्ठ १-२५।

२—रामचरणदास द्वारा दिए गए नाम इस प्रकार हैं :—१—शारदा, सुभद्रा, भद्रावती, सुधामुखी, प्रभावती, रागा २—निर्मला, सुगंधा, प्रेमशीला, ३—चारुस्मृता, धरास्मृता, धीरा, ४—उज्ज्वला, प्रहंसी, हंसी, चन्द्रा, चन्द्रकला, विद्युल्लता ५—[illegible], माधवी, कुंकुमांगी, प्रीतिदा, ६—चित्रा, कांचनी, चित्ररेखा, चन्द्रावती, विमला ७—चार्वंगी, हेमा, रमणीया, कुशला, चारुरूपा, ८—रामा, कमला, चित्रगंधा, लाली, ललिता ९—तियरत्ति, क्षितिनी १०—माधुजी, शान्ता, सन्तोषा, सुखदा, मधुशालिनी ११—प्रेमदा, आनंदा,

आगे चल कर भगवान् और सखियों के भावना-सम्बन्ध को लेकर दो शाखाएँ 'रसिक-सम्प्रदाय' में हो गई हैं :—स्वसुखी शाखा, तत्सुखी शाखा।

स्वसुखी शाखा—इस शाखा के प्रवर्त्तक थे महन्थ रामचरणदास और उनके सबसे बड़े अनुयायी थे रसिकअली जी। इनके अनुसार भगवान् और सखियों का सम्बन्ध पति-पत्नी भाव पर आधारित है। सखियाँ राम की भोग्याएँ हैं। आधुनिक काल में इस शाखा के भक्त स्त्री-वेष धारण करके अपने प्राणपति भगवान् 'लाल' से मिलने के लिए सोलहों शृंगार करते हैं। सीता की भावना सपत्नी रूप में की जाती है। सीता जी की सभी सखियों में चारुशीला जी को इस शाखा के विद्वान् प्रमुख सखी मानते हैं। चारुशीला जी हनुमद्-भिन्न हैं–हनुमान जी की अपरमूर्ति हैं। कहा गया है कि सीता जी ने सर्वप्रथम इन्हीं को मंत्र का उपदेश दिया था। अतः शृंगाररस-सम्प्रदाय की आद्याचार्या चारुशीला जी ही हुईं। इनसे बढ़ कर सीताराम रसज्ञ और कोई नहीं है। कहा जाता है कि सीता जी सभी इष्ट को देने वाली, सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वेश्वरी हैं, किन्तु उन्होंने अपनी भगिनी चारुशीला जी को अपनी 'सर्वेश्वरी' पदवी दे दी है, तब से चारुशीला जी के अपरविग्रह श्री हनुमान् जी की उपासना रसिक-सम्प्रदाय करता चला आ रहा है। अपने पक्ष का समर्थन करने के लिए रामचरणदास ने हनुमत्संहिता, अमररामायण, भुसुण्डीरामायण, महारामायण, कौशलखण्ड, रामनवरत्न, महारासोत्सव, लोमश संहिता आदि ग्रन्थों को प्राचीन बता कर उनका प्रचार भी किया था। आजकल बाल्मीकि संहिता, सदाशिवसंहिता, रामरहस्योपनिषद्, मंत्र रामायण, आनन्दरामायण, शाण्डिल्यसंहिता आदि ग्रन्थ भी इस मत के समर्थन में उपस्थित किए जाते हैं।[1] इनकी प्राचीनता नितान्त ही संदिग्ध है। आचार्य पं० रामचन्द्रशुक्ल ने कौशलखण्ड का परिचय देते हुए कहा है[2] :—"कौशलखण्ड में राम की रासलीला, विहारादि के अनेक अश्लील वृत्त कल्पित किए गए हैं और कहा गया है कि रासलीला तो वास्तव में राम ने की थी। रामावतार में ९९ रास वे कर चुके थे। एक ही शेष था जिसके

क्षेमा, कामदा १२—शुभगा, पावनी, मोहनी, मान्या, राधा १३—अनुगा, भावा, महोरहा, चपला, वरारोहा, १४—अमला, कमलाक्षी, पुष्पांगी, विशदाक्षि, सुदंशका १५—कमलिनी, अनता, कल्याणी, रक्तांगी, कृपावती १६—सलिला, ऊर्वशी, मानदा, रसोत्सवा, प्रेमा, करुणावती–अष्टयाम, पृष्ठ ४ व ५।

१—सर्वेश्वरी मीमांसा—महान्त मैथिलीरमणशरण।

२—रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १५२—५३।

लिये उन्हें फिर कृष्ण रूप में अवतार लेना पड़ा। इस प्रकार विलास क्रीड़ा में कृष्ण से कहीं अधिक राम को उठाने की होड़ लगाई गई। गोलोक में जो नित्य रास लीला होती है उससे कहीं बढ़ कर साकेत में होती है। यहाँ भी नर्तकियों की नामावली में रम्भा, उर्वशी आदि के साथ साथ राधा और चन्द्रावली भी गिना दी गई हैं।'' 'कौशलखण्ड' ग्रन्थ प्रकाशित तो हो गया है, किन्तु उसका प्रचार साम्प्रदायिकों में अभी नहीं पाया जाता। ग्रन्थ के प्रकाशक श्री रामकिशोरशरण ने इसका वितरण सीमित ही रक्खा है। विद्वानों के सूचनार्थ इस ग्रन्थ के विभिन्न प्रकरणों की सूची यहाँ दे दी जा रही है। पूर्वार्द्ध अध्याय १—सखा रास प्रकरण। अध्याय २—गोपिका रास प्रकरण। अध्याय ३—दधिदान प्रकरण। ४—गोपसुतापाणिग्रहण प्रकरण। ५—देव-कन्या रास प्रकरण। अध्याय ४—राजकन्या रास प्रकरण। अ० ५—देवकन्यादि परिहासोपलम्भन रास प्रकरण। अ० ६—मैथिली जी के पूर्वराग विप्रलम्भ प्रकरण। अध्याय ७—विवाह रहस्य प्रकरण। अ० ८—विवाहोत्तर रहस्य प्रकरण, विवाहोत्तर गोपकन्या रास प्रकरण।

उत्तरार्द्ध अध्याय ९—१—विवाहोत्तर देव कन्या रास प्रकरण। २—श्री प्रियजू के अन्तर्धान प्रकरण। अध्याय १०—१—श्री रामाराधन प्रकरण २—श्री प्रियस्याविर्भाव प्रकरण ३—दोलाप्रकरण। ४—प्रियामान प्रकरण। ५—प्रिया-प्रीतम संयोग प्रकरण। ११—गन्धर्व कन्या रास प्रकरण। अध्याय १२—१—मिथुनार्के किन्नरसुता रास प्रकरण २—विद्याधर रास प्रकरण। ३—सिंहार्के सिद्धकुमारी रास प्रकरण। ४—कन्यार्के राज कन्यारास प्रकरण। अ० १३—१—तुलार्के राज कन्या रास प्रकरण। २—वृश्चिकार्के साध्य सुता रास प्रकरण। अ० १४—१—धनुष्यार्के गुह्यकदेव-कन्या रास प्रकरण २—मकरार्के यक्ष-कन्या रास-प्रकरण ३—बसन्तोत्सव लीला प्रकरण। अध्याय १५—१—कुम्भार्के नागकन्या रास प्रकरण २—होलिकोत्सव रास प्रकरण।

इस प्रकार स्वसुखी शाखा में चारुशीला जी सीता जी के आभ्यन्तर परिकरों में प्रधान हैं, तथा वाह्य परिकरों में चारुशीलापरविग्रह हनुमान् जी सर्वप्रधान हैं। अयोध्या, जानकीघाट में बाबा रामचरण दास की गादी आज भी वर्तमान है। श्री मैथिलीरमणशरण आजकल यहाँ के महन्थ हैं। यह स्थान चारुशीला के उपासकों का प्रधान केन्द्र है।

तत्सुखी शाखा—'रसिक प्रकाश भक्तमाल' में श्री कृपानिवास जी को तत्सुख-विधान करने वाला कहा गया है, किन्तु इस शाखा के प्रवर्त्तक जीवाराम

जी ही माने जाते हैं, जो बाबा रामचरण दास के शिष्य थे। इन्होंने पति-पत्नी भाव के स्थान पर सखी-भाव का प्रचार किया है। इनके अनुसार सीता जी की ये प्रमुख सखियाँ हैं[1] :—कमला, विशदा, विमला, चन्द्रकला, चारुशीला, चन्द्रवती, चन्द्रा, शीला, पद्मा, पद्मिनी और चम्पकली। इन सखियों में चन्द्रकला सखी को प्रमुख सखी माना गया है। कहा जाता है कि दम्पति में मान होने पर ये जानकी जी के साथ रहती हैं। इन सखियों का शृंगार निरपेक्ष शृंगार है। ये दम्पत्ति के क्रीड़ा-विलास को अनासक्त होकर देखती हैं और उनके सुख में ही सुख मानती हैं। आजकल इस शाखा के भक्त अपने को ११॥ वर्ष से कम वय की कन्या के रूप में मानते हैं।

जीवाराम जी की विचार-परम्परा को लक्ष्मण किला, अयोध्या के प्रसिद्ध महन्थ श्री युगलानन्यशरण जी ने और आगे बढ़ाया और अवध, चित्रकूट आदि में इस मत का विशेष प्रचार किया। इन्होंने[2] सीता जी की सखियों को ५ कोटि में विभक्त किया है। 'सखी' उसे कहते हैं जो 'प्रिया-प्रीतम' के ऐकान्तिक विहार में अत्यन्त संकोच करती हो, 'मंजरी' को 'विहारिणी-विहारी जू' के विलासानन्द में संकोच होता है। 'आली''लली-लाल'जू की परम परकेलि में धृष्टता करती है, 'सहचरी' श्री 'युगलसरकार' में बेरोक-टोक आती-जाती एवं सम्भाषण करती है तथा 'किंकरी' श्री 'जानकी-रघुनन्दन' जी के रास-विलास में डरडर कर कैंकर्य करने वाली होती है। आजकल अयोध्या जी में चन्द्रकला-सखी का आचार्यत्व स्वीकार करने वाले स्थानों में लक्ष्मण किला, हनुमन्निवास तथा सद्गुरु-सदन प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार रसिक-सम्प्रदाय की उपर्युक्त दो प्रमुख शाखाएँ हो गई हैं।

इस शाखा के प्रमुख ग्रन्थों में 'कृपानिवास' के ग्रन्थ, युगलानन्यशरण जी के ग्रन्थ, मधुराचार्य जी का 'सुन्दरमणिसंदर्भ' तथा महन्थ रामचरणदास जी द्वारा प्रचारित ग्रन्थ हैं।

बाबा रामचरणदास की शिष्य-परम्परा में सियानागरीदास ही एक ऐसे भक्त हो गए हैं जिन्होंने *तत्सुख में स्वसुख* पाया था, अन्यथा रामचरणदास के सियाराम शरण जैसे भक्त-शिष्य राम को ही अपना पति मानते थे और उन्होंने बृन्दाबन

१—रसिक प्रकाश भक्तमाल, जीवाराम, छप्पय ८।

२—युगलानन्यशरण महाराज जू के जीवनचरित, पृ० ७२—७३।

की कृष्णभक्ति धारा के ग्रन्थों का पूर्ण अध्ययन कर रसिकभाव का सर्वांगीण प्रचार भी किया था।

सखी-भाव के विस्तार के साथ-साथ रसिक-सम्प्रदाय की भक्ति-पद्धति में भी विस्तार होता गया। स्वयं रामानन्द जी ने 'श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर' ग्रन्थ में ब्रह्म-जीव में ६ प्रकार के सम्बन्ध माने हैं—पिता-पुत्र सम्बन्ध, रक्ष्य-रक्षक सम्बन्ध, शेष-शेषित्व सम्बन्ध, स्व-स्वामी सम्बन्ध, भार्या-भर्तृत्व सम्बन्ध, आधार-आधेय सम्बन्ध, सेव्य-सेवक सम्बन्ध, आत्मा-आत्मीय सम्बन्ध और भोयभोक्तृत्व सम्बन्ध। अतः इन विभिन्न सम्बन्धों को अधार मान कर विभिन्न प्रकार की भक्ति पद्धतियों का चल पड़ना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। रसिक-सम्प्रदाय में तीन भावों से प्रधानतया भक्ति की जाती है। सखा या सखी भाव, दास्य भाव और वात्सल्य भाव।

सखाभाव के प्रमुख भक्त थे रामसखे। कहा जाता है इन्होंने अग्रदेव से मानसी-दीक्षा प्राप्त की थी। माधवाचार्य के द्वैत-सम्प्रदाय का इन पर बहुत प्रभाव पड़ा था। इन्होंने दधिलीला, मानलीला, रासलीला आदि लीलाओं का भी प्रचार किया। दानलीला के संबध में इन्होंने गोपकन्याओं की भी कल्पना की थी। राम के सखाओ में नर्म, प्रिय, सुहृद्, मधुर, मध्य, उत्तमादि भेद भी इन्होंने किए। अग्रस्वामी द्वारा बतलाए गए राम के आठ सखाओं के अतिरिक्त इन्होंने विजय, सुकण्ठ, सुवीर, विद्याधर, शुभ आदि सखाओ की कल्पना की। इन सखाओं में कुछ तो राम के श्याले थे और कुछ राम के भाई। रामसखे जी के दो ग्रन्थ प्राप्य हैं : रामसखे पदावली, नृत्यराघव मिलन। कील्ह के पौत्र शिष्य सूरकिशोर जी के साधक शिष्य 'प्रयागदास' अपने को राम का श्याला मान कर भक्ति करते थे।

सखा-सखीभाव के प्रमुख उपासक थे रामसखे के शिष्य शीलनिधि। इस भाव की भक्ति में साधक अपनी कल्पना उन सखियो के रूप में करता है, जो सखा-वेश में दम्पति की सेवा करती हैं।

शृंगारान्तर्गत दास्य भावना—सीता जी ने पुरुष रूप धारण करनेवाली निगमा, सुरसा, वाग्मी आदि दासियाँ तथा देवयक्षादि की कन्याओं को दास्य-भाव की भक्ति दी थी। मिथिला से सीता जी के साथ जो छोटे-छोटे बालक आए थे उनकी भी भक्ति दास्य-भाव की थी। शृंगारान्तर्गत दास्य भाव के उपासक अपनी कल्पना उन्हीं सखियों अथवा बालकों के रूप में करते हैं। अयोध्या में जानकीघाट के दो एक मठों में इसी भाव की भक्ति-पद्धति प्रचलित है।

शृंगारान्तर्गत वात्सल्य-भाव—राम और सीता के प्रति वात्सल्य-भाव जनक, उनके भाई सीरध्वज, यशध्वज, वीरध्वज, केकीध्वज तथा रानियाँ सुनयना, शुभचित्रा, सुष्ठुदर्शना, सुखवर्द्धिनी, चन्द्रकान्ति आदि और राजा दशरथ तथा उनकी कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी आदि रानियाँ और उनके भाई वीरसिंह, शूरसिंह, विजयसिंह, जयशील, चन्द्रशेखर, महाबाहु, धर्मशील, रत्नभानु और उनकी रानियाँ क्रमशः रत्नप्रभा, रूपवती, मतवती, भ्रमरकेशि, मदशिला, सुचित्रा, चन्द्रवती आदि का था। बुन्देलखंड के महात्मा रामहजूरी मरा को अपना पुत्र मानते थे। मिथिला के महात्मा सूरकिशोर सीता को अपनी पुत्री मानते थे और वहीं के जगन्नाथदास राम को अपना दामाद मानते थे। अतः ये भक्त अवध कम आते थे, क्योंकि इन्हें देख कर 'लली' को संकोच होता था।

वात्सल्य-सख्य दोनों के उपासक—मध्व-मतानुयायी ताताचारी जब रामानन्द-सम्प्रदाय में आए तब उन्होंने वात्सल्य और सख्य दोनों ही भावों से सीताराम की भक्ति की।

इन प्रमुख भावों के अतिरिक्त राम को 'पुरुष' मानते थे रामसखे के शिष्य चित्रनिधि; राम को 'दूलह' मानते थे परमहंस रामप्रसाद तथा रामगुलेला, 'लली' के उपासक थे वृन्दावन के रूपलाल, रसिकलाल, प्रियालाल आदि 'लाल छाप' वाले भक्त; रामानन्दी-शृंगार का सन्यास से समन्वय किया काष्ठजिह्वा स्वामी तथा राम गिरि, संततगिरि, मणिगिरि आदि सन्यासियों ने; योग से कृष्णदास पयोहारी, कील्ह के शिष्य भिक्षुकराम, बोधराम, बखरी के हरिनामदास और 'लश्करी सम्प्रदाय' के परशुराम ने; कृष्णभक्ति से हितहरिवंशी बिहारिणीदास (तत्सुखी शाखा के भक्त) और गौड़ीय गोपालदास ने तथा निरन्जन मत से बृन्दावन के सन्तदास ने। मलूक के कुल के हरेराम के शिष्य रामजीवनराम राम और कृष्ण दोनों के ही उपासक थे। भक्त मोहनलाल ने 'मोहिनी-मोहन' की सीताराम रूप में अवतारणा की। इस प्रकार रामानन्द-सम्प्रदायान्तर्गत रसिकों की शाखा ने भक्ति के अन्य सभी सम्प्रदायों के लोगों को अपने मेंखींच कर आत्म-विस्तार किया है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उत्तर भारत के भक्ति-सम्प्रदायों में रामानन्द-सम्प्रदाय कितना सुदृढ़ एवं विशाल है।

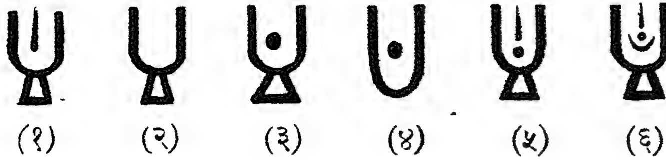
वाह्य-सेवा—वाह्य-सेवा के अन्तर्गत अग्रदेव ने अष्टयामीय उपासना का

समावेश किया है। इन आठ यामों में भगवान् की जो क्रियाएँ हैं, उन्हीं के अनुसार भक्त को उनके विग्रह की परिचर्या करनी पड़ती है। 'निशान्त' में भगवान् राम स्नान एवं शृंगार करते हैं, 'प्रभात' में चतुरंगिणी सेना के साथ मृगयालीला करते हैं। 'पूर्वान्ह' में भोजन होता है और 'मध्यान्ह' में विश्राम कर सभा में जाकर नृत्य, वाद्य, गीतादि देखते-सुनते हैं। इसके पश्चात् सरयू में जलक्रीड़ा भी होती है। 'अपराह्ण' में स्वयं अस्त्रशस्त्रादि की शिक्षा ग्रहण करते हैं और अपने भाइयों को शिक्षा प्रदान भी करते हैं। 'सायंकाल' द्यूतक्रीड़ा तथा आनन्दप्रदायिनी लीलाएँ करते हैं। 'प्रदोष' में पुनः रामचन्द्र जी स्नान-शृंगार करके भोजन करते हैं तथा 'रात्रि' में प्रियाजू के प्रेम परायण होकर पर्यंक पर विश्राम करते हैं।

अग्रस्वामी के उपरान्त नाभादास, पंडित रामचरणदास, जीवाराम आदि महात्माओं ने 'अष्टयाम' सेवा से सम्बन्धित ग्रन्थों की रचना की है। इधर श्री श्रीकान्त शरण जी ने 'मन्जुरसाष्टयाम' नामक ग्रन्थ में 'विविधछंदों एवं समयोचित रागरागिनियों में 'श्री सीता-राम जी की मानसिक पूजा-विधि' का वर्णन किया है। इस सम्बन्ध में आगे चल कर हम विशेष विस्तार से विचार करेंगे। अतः यहाँ इतना ही पर्याप्त है।

रामानन्द-सम्प्रदाय में तिलक—इस सम्प्रदाय में ज्यों-ज्यों मानसी पूजा में परिवर्तन होता गया, त्यों-त्यों तिलक में भी परिवर्तन होता गया है। रक्तश्री, लश्करी तिलक, चतुर्भुजी तिलक, विन्दुश्री आदि इस सम्प्रदाय के कुछ प्रधान तिलक हैं। सम्प्रदाय का प्रधान तिलक रक्तश्री था—बीच में रक्तवर्ण की श्री का चिह्न था और नीचे एक चौकी (१)। बालानन्द ने इसमें थोड़ा सा परिवर्तन किया उन्होंने बीच की रक्तश्री को शुक्ल वर्ण का कर दिया। चतुर्भुजी तिलक में बीच की श्री ही लुप्त हो गई। इसे लुप्तश्री तिलक कहते हैं (२)। माधुर्यभाव के प्रतीक स्वरूप मणिराम छावनी के महन्थ रामप्रसाद जी ने तिलक के बीच में विन्दु का प्रयोग किया और किनारे का रंग शुक्लवर्ण के स्थान पर गोपीचन्दन-पीलापन लिये शुक्ल वर्ण—का कर दिया। इसे विन्दु श्री कहते हैं (३)। इनकी शिष्य-परंपरा में प्रसिद्ध शृंगारीमहन्थ रामचरणदास जी ने बीच की बिन्दी को पीला कर दिया और नीचे की चौकी हटा दी (४)। लक्ष्मण किला के श्री युगलानन्यशरण जी ने तिलक में फिर नीचे चौकी लगाई। उनके तिलक में किनारे-किनारे पीला रंग ही रहा। बीच में पीतश्री के नीचे पीतविन्दु भी लगा (५)। रसिक अली जी ने सीता जी के भाल का अनुकरण करते हुए अर्द्ध-चन्द्र

युक्त विन्दु श्री का प्रयोग किया। किनारे शुक्ल वर्ण, बीच में लाल श्री और लालवर्ण का अर्द्धचन्द्र (६)।



(१) (२) (३) (४) (५) (६)

रामानन्द-सम्प्रदाय में अखाड़े

संक्षिप्त इतिहास[१]—श्री बालानन्द जी ने उपद्रवी गोसाइयों से रामानन्दीय वैष्णवो की रक्षा के लिये इन अखाड़ों की स्थापना की थी। कहा जाता है किसी लक्ष्मीगिरि गोसाईं ने पाँच वैष्णवों का नित्य बध करके भोजन करने की प्रतिज्ञा कर ली थी। ऐसे ही गोसाइयों में भैरवगिरि भी थे। उधर मुसलमानों का भी हिन्दुओं पर दिनोंदिन अत्याचार बढ़ रहा था। हिन्दुओं के मंदिर तथा उनकी मूर्तियाँ आए दिन विनष्ट की जा रही थीं, उनके धार्मिक स्थानों की अवहेलना की जा रही थी। उनका धर्म संकट में था। ऐसी परिस्थिति में, कहा जाता है, बालानन्द जी ने जयपुर महाराज की समस्त सेना को साधुमंत्र देकर इन उपद्रवियों के विरुद्ध युद्ध करने के लिये भेजा। इन्हीं के अनुकरण पर विरक्त वैष्णवों ने भी अपने-अपने दल सजाए। पं० रामनारायण दास के मत से 'अखाड़ा' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है :—

> अखंडसंज्ञासंकेतः कृतोधर्मविवर्द्धये।
> बालानंदप्रभृतिभिः संप्रदायानुसारिभिः॥
> नाहमादि खंडो यत्र स अखंड उदाहृतः।
> चतुर्णां संप्रदायिनामखंडाः सप्त वै मता॥[२]

नीचे अयोध्या के अखाड़ों का संक्षिप्त इतिहास देने का प्रयास किया जा रहा है :—

१—'श्रीरामानन्द सम्प्रदाय और उनके अखाड़े'—भगवान दास खाकी, भगवान रामानन्दाचार्य, पृ० ६४ तथा डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, फैजाबाद, एच० आर० नेविल, सन् १९०५।

२—पं० रामनारायण दास, 'भजनरत्नावली, पृ ३०४,
प्र० वैष्णव रामदास जी गुरु गोकुलदासजी,
रणछंर पुस्तकालय, डाकोर।

१–**दिगम्बर अखाड़ा**—दिगम्बर अखाड़े के साधु प्रायः नंगे ही रहते हैं। अयोध्या में इस अखाड़े की स्थापना आज से २५० वर्ष पहले किसी बलरामदास ने की थी, जिसने यहाँ आकर एक मन्दिर का निर्माण किया था। १६०५ ई० में यहाँ का महन्थ अपनी परम्परा में ११ वां था। अयोध्या में इस अखाड़े के साधुओं की संख्या बहुत कम है। पं० रामनारायण दास के मत से—

केवलं स्वेष्टदेवस्य स्मरणे वर्त्तते सदा।
दिशोम्बराणियस्य स्यात्संमतस्सदिगम्बरः॥

भजनरत्नावली, पं० रामनारायणदास, पृ० ३०५।

२–**निर्वाणी अखाड़ा**—इनका प्रमुख केन्द्र हनुमानगढ़ी है। अयोध्या में इस अखाड़े के साधुओं की संख्या सर्वाधिक है। निर्वाणी साधुओं के चार थोक या पट्टियाँ हैं जिनके नाम हरद्वारी, बसन्तिया, उज्जैनी तथा सागरिया हैं। इनमें से प्रत्येक के महन्थों का चुनाव होता है। उसकी गद्दी बरामदे में है। ये बड़े धनी साधु हैं। फ़ैज़ाबाद, गोण्डा, बस्ती, प्रतापगढ़ में इनकी माफ़ी जमीनें काफ़ी हैं। फ़ैज़ाबाद में कुछ गाँव भी इनके अधीन थे। पं० रामनारायण दास ने इस नाम का अर्थ इस प्रकार किया है:—

विषय रूप सूखाफल जिससे निकल गया हो—

वानं विषयरूपं यच्छुष्कं फलमुदाहृतम्।
यस्मात्तुनिर्गतं वानं सनिर्वाणस्समीरितः॥

वही, पृ० ३०५।

३–**निर्मोही**—इस अखाड़े की स्थापना जयपुर के गोविन्ददास ने की थी। जन्मस्थान में रामकोट मन्दिर इन्हीं का था। मुसलमानों द्वारा इस मन्दिर के विध्वंश किये जाने पर ये रामघाट चले गए। कुछ दिनों बाद गद्दी सम्बन्धी विवाद के कारण इनमें दो वर्ग हो गए। एक रामघाट पर रहने लगा, दूसरा गुप्तारघाट पर। गुप्तारघाट के निर्मोहियों के पास बस्ती, मानकपुर, खुर्दाबाद में माफ़ी जमीन है। इस नाम का अर्थ है 'मोह रहित'। पं० रामनारायण दास ने कहा भी है।

स्वस्य[illegible] पुत्रवित्तगृहादिषु।
मोहो हि निर्गतो यस्मात्स निर्मोह उदाहृतः॥

वही, पृ० ३०५।

४–**खाकी**—शुजाउद्दीन के समय में चित्रकूट के दयाराम नामक व्यक्ति ने इस अखाड़े की स्थापना की थी। उसने अयोध्या में चार बीघे जमीन प्राप्त की

और एक मन्दिर का निर्माण किया। खाकी अपने शरीर पर भस्म रमाते हैं। बस्ती में इनकी जमीने भी हैं। इनके वर्तमान महन्थ श्री भगवानदास खाकी हैं। इस नाम की व्याख्या पं० रामनारायणदास के मत से निम्नलिखित है :—

खंब्रह्मण्यास्मरणे च कं सुखे च प्रकीर्तितम्।
ब्रह्मस्मरणेयस्यसुखं खाकी मतो बुधैः ॥

खं का अर्थ है ब्रह्म का स्मरण और कं का सुख अर्थात् ब्रह्म के स्मरण में जिसे सुख हो वह खाकी है।

वही, पृ० ३०५।

५–निरावलम्बी—निरावलम्बी का अर्थ है आलम्बन हीन। कोटा के बीरमल दास ने इस अखाड़े की स्थापना शुजाउद्दौला के समय में ही की थी। उसने अयोध्या में एक मन्दिर बनवाया, जो बाद में छोड़ दिया गया। फिर नरसिंहदास ने दर्शनसिंह के पास ही एक नया मन्दिर बनवाया। इनकी सम्पत्ति थोड़ी सी ही है। पं० रामनारायणदास के मत से जो देवान्तरों में अल्प मात्र अवलम्ब नहीं करता वह निरावलम्बी है :—

देवान्तरेष्ववलंबोयश्चाल्प सुखसाधनः।
सनिश्शेषगतो यस्मान्निरालम्बो मतो हि सः ॥

वही, पृ० ३०६।

६–सन्तोषी—इनकी संख्या कम है, ये दरिद्र भी हैं। सफदरजंग के समय में जयपुर के रतिराम ने इस अखाड़े की स्थापना की थी। इन्होंने एक मन्दिर भी अयोध्या में बनवाया, पर बाद में उसे छोड़ दिया गया। वाजिदअलीशाह के समय में निद्धि सिंह नाम के एक कलवार ने दूसरा मन्दिर बनवाया। इसके बाद खुशहाल दास नामक एक संतोषी साधु अयोध्या आए और उनके उत्तराधिकारी रामकृष्ण दास ने नया मन्दिर बनवाया। १६०० ई० में जब महन्थ की मृत्यु हुई तब बहुत दिनों तक यह अखाड़ा बीरान पड़ा रहा, कोई नया महन्थ नियुक्त नहीं हुआ। पं० रामनारायण दास ने संतोषी का अर्थ इस प्रकार दिया है—

स्वारब्धस्यतु संयोगात्स्वल्पे लब्धेपिवस्तुनि।
संतोषो विद्यतेयस्य ससंतोषी सदा मतः ॥

प्रारब्ध–प्राप्त अल्पवस्तु में भी जो सन्तुष्ट हो वह संतोषी है।

वही, पृ० ३०६।

७—महानिर्वाणी—इन साधुओं का ध्येय भगवान् की निर्हेतुक उपासना करना है। उनसे ये कुछ भी याचना नहीं करते। इस अखाड़े की स्थापना शुजाउद्दौला के समय में कोटा बूंदी के साधु पुरुषोत्तमदास ने अयोध्या में आकर की थी। इन्होंने एक मन्दिर की भी स्थापना की। इनमें २५ पट्टियाँ हैं, जिनमें अधिकांश भ्रमण-शील याचक का जीवन व्यतीत करती हैं। रामनारायण दास जी के मत से—

निर्वाणं निवृत्तौनाशे मोक्षे चैव प्रकीर्तितम्।
महन्मोक्ष सुखं यस्य स महानिर्वाणो मतः॥

वही, पृ० ३०६।

इन अखाड़ों के साधु अखाड़-मल्ल, नागा, अतीत आदि नामों से विख्यात हैं। यों तो ये समस्त भारतवर्ष में भ्रमण करते पाए जाते हैं, परन्तु इनका प्रमुख केन्द्र हनुमानगढ़ी, अयोध्या, है

अखाड़ों के मुख्य कर्तव्य—इन अखाड़ों के मुख्य कर्तव्य विपत्तियों से हिन्दू धर्म एवं हिन्दुओं के मन्दिरों की रक्षा करना, वैष्णव धर्म के विद्रोहियों का दमन करना, कुम्भ पर्व के अवसर पर अपने सम्प्रदाय की मर्यादा बचाना आदि हैं। इसी कारण इन साधुओं का अधिकांश समय सैनिक शिक्षा प्राप्त करने में ही व्यतीत होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन अखाड़ों ने गत ३०० वर्षों से हिन्दू-धर्म और हिन्दू जाति की अपूर्व सेवा की है।

अखाड़ों का संगठन—इन अखाड़ों की ३ अनियाँ होती हैं—

पहली अनी —निर्वाणी अनी—इस अनी में निर्वाणी, खाकी तथा निरावलम्बी, ये तीन अखाड़े सम्मिलित रहते हैं। निर्वाणी अखाड़े में रामानन्दी निर्वाणी के साथ ही हरिव्यासी निर्वाणी, मध्व सम्प्रदायी, बलभद्री निर्वाणी आदि भी सम्मिलित रहते हैं। खाकी अखाड़े में रामानन्दी खाकी अखाड़े के साथ ही हरिव्यासी खाकी अखाड़े भी सम्मिलित हो गए हैं। इसी प्रकार निरावलम्बी अखाड़े में हरिव्यासी टाटम्बरी अखाड़ा भी मिल गया है। इन अखाड़ों में सर्व प्रमुख है निर्वाणी अखाड़ा।

दूसरी अनी—दिगम्बर अनी—इस अनी में रामानन्दी दिगम्बर अखाड़े में श्याम जी दिगम्बर या हरिव्यासी दिगम्बर तथा धूरिया दिगम्बर अखाड़े भी मिल गए हैं।

तीसरी अनी—निर्मोही अनी—इस अनी में निर्मोही, महानिर्वाणी और सन्तोषी अखाड़े सम्मिलित हैं। निर्मोही अखाड़े में रामानन्दी निर्मोही, हरिव्यासी

निर्मोही या मालाधारी, विष्णुस्वामी मतावलम्बी निर्मोही अथवा झाड़िया निर्मोही, राधावल्लभी निर्मोही आदि सम्मिलित रहते हैं। महानिर्वाणी अखाड़े में रामानन्दी साधुओं के साथ ही हरिव्यासी महानिर्वाणी भी मिले रहते हैं। इसी प्रकार सन्तोषी अखाड़े में हरिव्यासी सन्तोषी भी सम्मिलित हो जाते हैं। इनमें निर्मोही प्रधान हैं।

इस प्रकार *रामानन्द सम्प्रदाय में* निर्वाणी, खाकी, निरावलम्बी, दिगम्बर, निर्मोही, महानिर्वाणी और सन्तोषी आदि सात अखाड़े हैं। अन्य सम्प्रदायों के अखाड़ों के मिल जाने से कुल ९ कुलों का निर्माण हो गया है। *सनक (निम्बार्क)* सम्प्रदाय में श्याम जी दिगम्बर, हरिव्यासी निर्मोही, हरिव्यासी निर्वाणी, हरिव्यासी महानिर्वाणी, झाड़िया, हरिव्यासी सन्तोषी, निरावलम्बी ये सात अखाड़े मुख्य हैं। मालाधारी नामक एक और अखाड़ा इसी सम्प्रदाय का है। *ब्रह्मसम्प्रदाय* में बलभद्री और राधाबल्लभी दो अखाड़े हैं। रुद्र सम्प्रदाय में विष्णुस्वामी नामक एक ही अखाड़ा है। ऊखल अखाड़ा इन सब का सम्मिलित पंचायती अखाड़ा है। (सन्त, श्रीरामानन्दांक, वर्ष ४, अंक ७-८-९।) इन अखाड़ों में कृष्णोपासक अखाड़ों के साधु कृष्ण की ही उपासना करते हैं।

ध्वज

क—पंचरंग—दिगम्बर अखाड़े का ध्वज पांच रंगों का होता है।

ख—एकरंग—अन्य दोनों अनियों में श्वेत रंग का ही ध्वज होता है।

ध्वज पर चिन्ह—रामानन्दी अखाड़ों में बाहर की ओर ध्वज पर हनुमान् जी का और भीतर की ओर सूर्यनारायण का चिन्ह बना होता है, किन्तु अन्य सम्प्रदायों के अखाड़ों के ध्वजों पर बाहर तो हनुमान् जी ही रहते हैं, भीतर गरुड़जी का चिन्ह बना रहता है।

कुम्भ पर इन अखाड़ों के मिलने का क्रम

कुम्भ में प्रथम टाटम्बरी, बलभद्री और हरिव्यासी निर्वाणी एक साथ मिलते हैं, फिर खाकी निरावलम्बी और हरिव्यासी खाकी आदि एक साथ मिलते हैं। तत्पश्चात् दोनों समूह मिल कर निर्वाणी अनी बनाते हैं। दिगम्बर अखाड़ा अलग ही रहता है। *जुलूस में* आगे निर्मोही अनी, मध्य में दिगम्बर अनी और अन्त में निर्वाणी अनी होती है। युद्ध के *समय* पहले दाहिनी ओर निर्वाणी, मध्य में दिगम्बर और बाएं पार्श्व में निर्मोही रहा करते थे। इनके भिन्न-भिन्न निशान भी हैं।

कुम्भ प्रयाग, हरद्वार, नासिक और उज्जैन में प्रति बारह वर्ष के उपरांत होता रहता है। वहाँ ये अखाड़े विशेष रूप से जुटते हैं।

खालसा—सिक्खों के अनुकरण पर इस सम्प्रदाय में *खालसों* का भी संगठन किया गया है, जिन्हें 'चतुः सम्प्रदाय खालसा' कहते हैं। श्री वैष्णवों के पाँच खालसे हैं—

क—डाकोर खालसा—यह खालसा टीला जी द्वारा गादी के महन्थ श्री मंगलदास जी के परिवार का है। इसके अन्तर्गत डाकोर खालसा तथा रतलाम खालसा नामक दो और खालसे हैं। सं० २००० वि० में श्री रामनारायणदास जी इस खालसे के महन्थ थे।

ख—डांडिया खालसा—श्री धीरमदास ने इस खालसे की स्थापना की; श्री जगन्नाथदास ने इस १२ भाई डांडिया खालसे की श्री बृद्धि की। सं० २००० में रामरत्नदास जी इसके महन्थ थे।

ग—नन्दरामदास खालसा—इस खालसे की स्थापना धीरमदास जी के शिष्य श्री नन्दराम दास ने की थी। सं० २००० में श्री बालकदास जी इस खालसे के महन्थ थे।

घ—त्यागी खालसा—श्री सियारामदास ने इस खालसे की स्थापना की थी। इस १३ भाई खालसे के सं० २००० में श्री अर्जुनदास महन्थ थे।

ङ—महात्यागी खालसा—श्री बलदेवदास ने इस खालसे की स्थापना की थी। इस १४ भाई खालसे के सं० २००० में श्री रामजीवनदास महन्थ थे।

अखाड़ों के साधुओं की श्रेणियाँ—अपने गुरु-स्थान को छोड़ कर चतुः सम्प्रदाय की सेवा करने की भावना वाला साधु इन अखाड़ों में सम्मिलित होकर 'अखाड़मल्ल' के नाम से पुकारा जाता है। वह निम्नश्रेणियों को पार कर 'नागा' पद को प्राप्त होता है। जिस नागा की सेवा में वह नियोजित होता है, उसका वह 'सादिक' कहलाता है। इन साधुओं की निम्नलिखित श्रेणियाँ हैं—

क—यात्री—ये साधु अपने नागा अतीत के लिए दातून आदि का प्रबन्ध करते हैं तथा इधर-उधर भ्रमण किया करते हैं।

ख—छोरा—ये नागा अतीतों को स्नानादि कराते तथा उनके पीने का पानी लाते हैं।

ग—बन्दगीदार—चौका, झाड़ू लगाना, भोजन तैयार करना तथा शस्त्रास्त्र की शिक्षा प्राप्त करना ही इनका काम है।

घ—मुरीठिया—भगवान् की पूजा, उपासना करना एवं शस्त्रास्त्र विद्या में पूर्णतया निपुण हो जाना इनका मुख्य कार्य है।

ङ—नागा—सेवकों को चेतावनी देना, भगवान् एवं भागवतों की पूजा का प्रबन्ध करना, सम्प्रदाय के मठों-मन्दिरों एवं अनुयायियों की रक्षा करना, कुम्भ का प्रबन्ध करना तथा कुम्भ के अवसर पर अन्य साधुओं को नागा बनाना आदि इनके प्रमुख कर्तव्य हैं। इसी प्रकार सम्प्रदाय की प्रमुख समस्याओं पर विचार करना एवं उनका सुझाव प्रस्तुत करना आदि भी इन्हीं नागा-अतीतों का काम है। ये नागा चारसेली के होते हैं—बसंतिया, हरद्वारी, सागरिया और उज्जैनी।

च—अतीत—सिद्ध नागाओं को नागा अतीत के नाम से अभिहित किया जाता है।

अखाड़ों की शासन-व्यवस्था—यहाँ निर्मोही अखाड़ा, श्री अयोध्या जी, के अनुसार इन अखाड़ों की सामान्य शासनव्यवस्था पर प्रकाश डाला जा रहा है। निर्मोही अखाड़ा, रामघाट, अयोध्या जी के महान्त रघुनाथदास द्वारा प्रकाशित 'श्री पंचरामानन्दीय निर्मोही अखाड़ा श्री अयोध्या जी का रजिस्टर्ड विधान' के अनुसार ही निम्नलिखित सूचनाएँ दी जा रही हैं।

महन्थ—महन्थ का चुनाव प्रत्येक अखाड़े के सदस्य नागा अतीत करते हैं। इनके द्वारा निर्वाचित महन्थ को चुनाव के समय प्रस्तुत रहना पड़ता है। अखाड़ों की व्यवस्था महन्थ, पंच तथा सरपंच आदि की एक कार्यकारिणी समिति द्वारा की जाती है। महन्थ को इस समिति की आज्ञा माननी पड़ती है, अन्यथा उसे सामान्य सभा पदच्युत कर देती है। महन्थ, सरपंच या पंच आदि त्यागपत्र न दें तो आजीवन अपने पद पर बने रह सकते हैं। इनमें से यदि किसी की मृत्यु हो जाय या कोई त्यागपत्र दे दे तो रिक्त स्थान की पूर्ति अखाड़े के नागा अतीतों की एक विशेष आयोजित सभा द्वारा की जाती है।

अखाड़े की सम्पत्ति की देखभाल व्यवस्थापिका समिति के कुछ पंचों द्वारा होती है। वर्ष में कार्यकारिणी-समिति की बैठक एक बार अवश्य होती है। उसमें प्रत्येक साधु व महन्थादि के कर्तव्याकर्तव्य पर विचार किया जाता है।

महन्थ अखाड़े की सम्पत्ति का स्वामी होता है। उसे अखाड़े के मन्दिर आदि की पूजा-व्यवस्था करनी पड़ती है। परम्परा की रक्षा करना भी उसी का काम है। साम्प्रदायिक वेषभूषा, आचार-व्यवहार का उसे पूरा पालन करना पड़ता है। न तो उसे उत्तराधिकारी चुनने का अधिकार होता है और न परम्परा के विरुद्ध आचरण करने का। साधुओं को नागा बनाने का कार्य महन्थ ही करता है।

उसी को शिष्य बनाने का भी अधिकार होता है। महन्थ आय-व्यय का पूरा लेखा पंचों को देता रहता है और महन्थी से हट जाने पर सामान्य सदस्य मात्र रह जाता है।

गोलकी—अखाड़े की सम्पति के आय-व्यय का लेखा गोलकी रखता है। इसका निर्वाचन ३ वर्ष के लिये किया जाता है। सामान्य व्यय के लिए यह १०० रू० तक अपने पास रख सकता है। गोलकी के सामने ही एक पुजारी दूसरे पुजारी को कार्यभार सौंपता है। बदचलनी पर गोलकी बीच में ही पदच्युत हो जाता है।

साधुओं के सामान्य कर्तव्य—अखाड़े के नियमों का पालन करना, परम्परा की रक्षा करना, कार्यकारिणी की आज्ञा का अनुगमन करना आदि इन अखाड़ों के साधुओं के कर्तव्य हैं। अयोध्या में निर्मोही अखाड़े के मन्दिर हैं—जन्मभूमि, रामकोट तथा विजयराघव मन्दिर।

विशेष—रामानन्द-सम्प्रदाय के प्रायः सभी मठों की व्यवस्था उपर्युक्त प्रणाली से होती है। इन मठों में दोपहर एवं रात्रि में सैकड़ों साधु नित्य ही भोजन करते हैं। उनके रहने की व्यवस्था भी वहीं की जाती है। प्रत्येक मठ के साथ-साथ एक मंदिर भी होता है, जिसमें साम्प्रदायिक पूजा-पद्धति के अनुसार पुजारी भगवान् की सेवा करता है।

रामानन्द-सम्प्रदाय से कुछ दूरी से सम्बद्ध पंथ—रामानन्द स्वामी द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय के इतिहास का वर्णन करने के पश्चात् यहाँ यह आवश्यक सा जान पड़ता है कि उन पंथों का भी संक्षेप से ही एक विवरण उपस्थित किया जाय, जो रामानन्द जी के शिष्यों द्वारा प्रवर्तित किए गए, किन्तु परिस्थिति तथा वातावरण विशेष के कारण जिन्होंने स्वामी जी द्वारा प्रवर्तित मत से थोड़े भिन्न मत की प्रतिष्ठा की थी। इनमें से प्रायः सभी पंथों ने रामानन्द जी द्वारा प्रवर्तित भक्ति-पद्धति के मूल सिद्धान्तों—प्रपत्ति, न्यास, क्रियाकलापादि का परित्याग, जातिपांति के भेद को न मानना, दासभावना आदि—को स्वीकार कर लिया है, किन्तु स्वामी जी के दार्शनिक सिद्धान्तों में उनकी विशेष आस्था नहीं दिखलाई पड़ती। 'उत्तरी भारत की संत परम्परा' में पं० परशुराम चतुर्वेदी ने इन पंथों की उत्पत्ति और विकास पर विस्तार से प्रकाश डाला है। अतः विशेष विवरण वहीं देखना उपयुक्त होगा। यहाँ केवल संक्षेप में ही उनका परिचय मात्र दिया जा रहा है।

कबीर पंथ—कबीर साहब की मृत्यु के उपरान्त इस पंथ की स्थापना उनके शिष्यों ने की थी। इस पन्थ के तीन प्रमुख केन्द्र हैं—काशी, छत्तीसगढ़ और धनौती (विहार)। काशी वाली शाखा के संस्थापक सुरतगोपाल कहे जाते हैं, जिन्हें कबीर का शिष्य कहा जाता है। कबीर चौरा मठ के अन्तर्गत मध्यप्रदेश का बुरहानपुर वाला मठ, पुरी की कबीर-समाधि, द्वारका का कबीर मठ आदि आते हैं।। छत्तीसगढ़ी शाखा के प्रवर्त्तक धर्मदास जी कहे जाते हैं। वस्तुतः कबीरपंथ को सुदृढ़भित्ति प्रदान करने का कार्य धर्मदास ने ही किया था। बांधवगढ़, कूडरमल, धामखेड़ा, हाटकेसर, बमनी आदि स्थानों पर छत्तीसगढ़ी शाखा के स्थापित किए गए मठ हैं। धनौती शाखा के प्रवर्त्तक भगवान् गोसाईं थे, जो कुछ लोगों के अनुसार जाति के अहीर थे और मूलतः पिशौराबाद (बुंदेलखंड) के निवासी थे।

कबीर पंथ की अन्य शाखाओं में कटक में प्रचलित 'साहबदासी पंथ', काठियावाड़ का 'मूल निरन्जन पंथ', बड़ौदा के 'टकसारी पंथ', भड़ौच के 'जीवापंथ' आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। सत्य कबीर, नामकबीर, दानकबीर, मंगल कबीर, हंसकबीर और उदासी कबीर तथा अन्य छोटे-छोटे अनेक उपपंथ कबीर पंथ से सम्बद्ध बतलाए गए हैं, परन्तु उनका कोई भी व्यवस्थित इतिहास प्राप्त नहीं है।

कबीर-पंथ रामानन्दी दार्शनिक विचारधारा से बहुत दूर तक प्रभावित है, अन्य सम्प्रदायों का भी इस पर प्रभाव पड़ा है। जहाँ तक कबीर की विचारधारा का सम्बन्ध है, हमने इस ग्रन्थ में रामानन्द-सम्प्रदाय के संदर्भ में उसका अध्ययन विस्तृत रूप से किया है। प्रत्यक्षतः यह पंथ रामानन्द-सम्प्रदाय से स्वतन्त्र एवं भिन्न सत्ता रखता है।

सेन पंथ—डा० ग्रियर्सन ने 'इन्साइक्लोपीडिया अव् रिलीजन ऐण्ड एथिक्स' (भाग २, पृष्ठ ३८४) में लिखा है कि सेन के नाम से एक पंथ भी प्रचलित पाया गया है। उनका अनुमान है कि यह पंथ इसलिये चल पड़ा, क्योंकि सेन के वंशजों का बहुत दिनों तक बाँधवगढ़ के नरेशों पर प्रभाव बना रहा। खेद है, इस पन्थ के अनुयायियों का न तो कोई परिचय मिलता है और न उनके सम्बन्ध में कहीं कोई संकेत ही मिलता है। पीछे देखा जा चुका है कि सेन स्वामी रामानन्द के एक प्रमुख शिष्य माने गये हैं, फिर भी उनका झुकाव कबीर की ओर अधिक था। हाँ, भक्ति-पद्धति की दृष्टि से अवश्य ही ये रामानन्दजी के एक पक्के अनुयायी थे।

रैदास पंथ—रैदास के नाम से एक पंथ की सत्ता का परिचय अनेक विद्वानों ने दिया है, पर इसके इतिहास, संगठन, विचारधारा आदि पर कोई प्रकाश नहीं डाला गया है। प्रायः उत्तर भारत की चमार जाति के लोग अपने को रैदासी ही कहते हैं। आजकल इस रैदासी पंथ के लोगों ने अपना संगठन भी कर लिया है और प्रयाग आदि में रविदास जयन्ती बड़े धूमधाम से मनाई जाती है।

विचारधारा की दृष्टि से रैदास जी भी कबीर से ही अधिक प्रभावित थे। हाँ, रामानन्दी भक्तिपद्धति का उन पर विशेष प्रभाव पाया जाता है।

संक्षेप में रामानन्द-सम्प्रदाय का यही इतिहास है।

पंचम अध्याय

दार्शनिक-सिद्धान्त

दार्शनिक-विचारधारा

रामानन्द-सम्प्रदाय और विशिष्टाद्वैत मत—रामानन्द-सम्प्रदाय को 'श्री सम्प्रदाय' के नाम से अभिहित किया जाता है। आज से ३२ वर्ष पूर्व तक यह सम्प्रदाय रामानुज-सम्प्रदाय से सम्बद्ध उसकी उपशाखा के रूप में माना जाता था, किन्तु इधर जब से इसे रामानुज-सम्प्रदाय से भिन्न एवं स्वतन्त्र सम्प्रदाय सिद्ध करने का आन्दोलन चला है, तब से 'श्री' शब्द से लक्ष्मी का अर्थ न लेकर 'सीता' अर्थ लिया जाने लगा है। फिर भी इस सम्प्रदाय का दार्शनिक मत विशिष्टाद्वैत ही माना जाता है। स्वयं रामानन्द स्वामी ने 'श्री [illegible]' ग्रन्थ में इस मत का विस्तृत एवं शास्त्रीय विवेचन नहीं प्रस्तुत किया है और न ही अपने मत को उन्होंने विशिष्टाद्वैत के नाम से अभिहित किया है। 'श्री वैष्णव-मताब्ज-भास्कर' में अपने प्रिय शिष्य सुरसुरानंद के दश प्रश्नों का उत्तर देते समय स्वामी जी ने 'तत्व क्या है?' नामक प्रश्न के उत्तर में ईश्वर, जीव एवं प्रकृति का भी विवेचन किया है। किन्तु, वह भी बहुत अधिक क्रमबद्ध एवं शास्त्रीय ढंग का विवेचन नहीं है। 'आनन्दभाष्य' में अवश्य ही रामानन्द-सम्प्रदाय के विशिष्टाद्वैत मत का शास्त्रीय ढंग पर विस्तृत विवेचन किया गया है, किन्तु उसे रामानन्द स्वामी कृत मानने में अनेक कठिनाइयाँ हैं, जिनका उल्लेख हम 'रामानन्द स्वामी के ग्रन्थ तथा उनकी प्रामाणिकता' नामक अध्याय में कर चुके हैं। अतः 'आनन्दभाष्य' के मत को रामानन्द-सम्प्रदाय के मूल सिद्धान्त मान लेने में आपत्ति हो सकती है। फिर भी उसमें प्रतिपादित मत की अवहेलना नहीं की जा सकती, क्योंकि आधुनिक रामानन्दी-सम्प्रदाय का वह एकमात्र प्रमुख प्रतिनिधि 'भाष्य' है।

'आनन्दभाष्य' के अनुसार 'ब्रह्म मीमांसा शास्त्र' का प्रतिपाद्य विशिष्टाद्वैत ही है, केवलाद्वैत नहीं—'[illegible]च विशिष्टाद्वैतमेवास्य ब्रह्ममीमासाशास्त्रस्य विषयो नतु केवलाद्वैतम् ।'[१] विशिष्टाद्वैत शब्द का अर्थ इस प्रकार किया गया है: 'विशिष्टं च विशिष्टं च विशिष्टे, विशिष्टयोरद्वैते विशिष्टाद्वैतम्' अर्थात् सूक्ष्म चिदचिद् विशिष्ट अथवा कारण ब्रह्म और स्थूल चिदचिद् विशिष्ट अथवा कार्य ब्रह्म में अभेद स्थापित करना ही विशिष्टाद्वैत मत का लक्ष्य है। इस मत में ब्रह्म को स्वगत भेद से चिदचिद् विशिष्ट माना गया है। यह ब्रह्म अनेक शुभ गुणों से युक्त है। वेदान्त में-उपनिषदों में-जहाँ उसे 'निर्गुण' कहा गया है, वहाँ ब्रह्म में प्राकृत गुणों के अभाव से ही उसका तात्पर्य है। रामानुज-सम्प्रदाय में इस ब्रह्म को 'नारायण' कहा गया है, किन्तु रामानन्द-सम्प्रदाय में राम को ही ब्रह्म माना गया है—'ब्रह्मशब्दश्च महापुरुषादिपदवे[illegible]वन्तंश्रीराममेवाह[२] ।'

इस प्रकार रामानुज-सम्प्रदाय की ही भाँति रामानन्द-सम्प्रदाय को भी 'श्री सम्प्रदाय' तथा उसके दार्शनिक मत को 'विशिष्टाद्वैत' कहा जाता है। दोनों में अन्तर केवल इतना ही है कि रामानुज-सम्प्रदाय में 'लक्ष्मी-नारायण' परमाराध्य हैं, किन्तु रामानन्द-सम्प्रदाय में 'सीता-राम'। रामानुज-सम्प्रदाय में कर्म-काण्ड को अधिक महत्त्व दिया गया है, किन्तु रामानन्द-सम्प्रदाय में बहुत कम। आगे हम रामानन्द के दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन 'श्री वैष्णव-मताब्ज-भास्कर' के आधार पर प्रमुख रूप से और 'श्रीरामार्चनपद्धति' के आधार पर गौण रूप से प्रस्तुत करेंगे।

रामानन्दोत्तर साम्प्रदायिक ग्रन्थों का मत—रामानन्द-सम्प्रदाय में ब्रह्म-सूत्र पर लिखे गए ३ भाष्य प्रमुख एवं प्रसिद्ध हैं १—जानकीभाष्य २—आनन्द भाष्य ३—वेदभाष्य। प्रथम की रचना आज से लगभग १५० वर्ष पूर्व मणिराम की छावनी के महंथ श्री रामप्रसाद जी ने की थी। द्वितीय की रचना संदिग्ध है। पीछे रामानन्द जी के ग्रन्थों की प्रामाणिकता का विवेचन करते हुए यह देखा जा चुका है कि इस ग्रन्थ को रामानन्द जी कृत मान लेने के पक्ष में कोई दृढ़ प्रमाण नहीं मिलता, प्रत्युत अनेक अकाट्य प्रमाणों के आधार पर उसे आधुनिक कृति के रूप में ही स्वीकार करना पड़ता है। तीसरा ग्रन्थ रामानन्द-

---

१—आनन्द भाष्य—१।१।१ पृष्ठ १४-१५, सं० रघुवरदास वेदान्ती।

२—वही, पृ० ४।

सम्प्रदाय के आधुनिक विद्वान् श्री भगवदाचार्य जी द्वारा प्रणीत है। फिर भी आधुनिक रामानन्द-सम्प्रदाय में 'आनन्दभाष्य' को ही साम्प्रदायिक भाष्य होने का गौरव प्राप्त है। उसी का पठन-पाठन इस समय विशेष हो रहा है और उसके मत को साम्प्रदायिक मत स्वीकार कर लिया गया है। इस ग्रन्थ में विशिष्टाद्वैत मत का प्रतिपादन किया गया है। 'जानकीभाष्य' में भी विशिष्टाद्वैत मत का प्रतिपादन किया गया है। पीछे यह भी देखा जा चुका है कि 'आनन्दभाष्य' और 'जानकीभाष्य' में न केवल विचार-भावसाम्य है, अपितु दोनों में बहुत दूर तक भाषा और शब्दसाम्य भी है। अनेक कारणों से इस ग्रन्थ को उतनी मान्यता नहीं मिल सकी है, जितनी 'आनन्दभाष्य' को। श्री भगवदाचार्य के 'भाष्य' का अपना एक अलग स्थान है। उनकी विचारधारा रामानन्द जी की धारणाओं के अधिक निकट है, फिर भी साम्प्रदायिक विद्वानों में अधिकांश उनके मत से सहमत होते नहीं प्रतीत होते। भगवदाचार्य के मत से शूद्रों को भी वेदाध्ययन का अधिकार होना चाहिए, किन्तु उपर्युक्त दोनों ही 'भाष्यों' में शूद्रों को वेदाध्ययन का अधिकार नहीं दिया गया है। इन सब कारणों से 'आनन्दभाष्य' को ही रामानन्द-सम्प्रदाय का प्रामाणिक 'भाष्य' माना जा सकता है। आगे उसी के आधार पर उत्तर-रामानन्दी विचारधारा का विवेचन किया जायगा।

रामानन्द-सम्प्रदाय के अन्य प्रमुख ग्रन्थों में 'अगस्त्य संहिता', 'रामस्तवराज', तथा 'जानकीस्तवराज', '[illegible]', अग्रदास कृत 'रहस्यत्रय' तथा हरिदास कृत 'रहस्यत्रय', 'रामतापिन्युपनिषद् भाष्य', 'रामस्तवराजभाष्य', भगवदाचार्य कृत 'त्रिरत्नी' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त अनेक छोटे-मोटे ग्रन्थ यत्र-तत्र मिल जाते हैं और सम्भव है कि इस सम्प्रदाय के प्रमुख मठों की हस्तलिखित पुस्तकों की विस्तृत छानबीन करने पर और भी अनेक प्रामाणिक ग्रन्थ उपलब्ध हों, किन्तु वर्तमान रामानन्दी-सम्प्रदाय में इनमें से भी कुछ ही ग्रन्थों का पठन-पाठन होता है। 'रामतापिन्युपनिषद्' का पूरा उपयोग 'आनन्दभाष्य' में कर लिया गया है। शेष ग्रन्थों में विशिष्टाद्वैत मत का बहुत संक्षिप्त विवेचन मिलता है। रहस्यत्रय के विवेचन में अग्रदेव जी तथा हरिदास जी ने 'श्री वैष्णव-मताब्ज-भास्कर' का विशेष सहारा लिया है। यह भी संभव है कि उपर्युक्त दोनों ही ग्रन्थ रामानुज-संप्रदाय में प्रचलित 'रहस्यत्रय' ग्रन्थों के आधार पर लिखे गए हों। जो हो, साम्प्रदायिक तत्व-ज्ञान का थोड़ा सा ही परिचय इनमें मिलता है। इसी कारण रामानन्दोत्तर दार्शनिक विचारधारा का अध्ययन 'आनन्दभाष्य' के आधार पर ही प्रमुख रूप से किया जा सकता है। यहाँ इस ग्रन्थ की विचार-धारा का संक्षिप्त विवेचन मात्र प्रस्तुत किया जायगा।

[] रामानन्द स्वामी का मत

ब्रह्म-राम—१—जिससे विश्वमात्र की उत्पत्ति हुई है, जो इसकी रक्षा करता है और जिसमें इसका लय भी हो जाता है, जिसके प्रकाश से सूर्य और चन्द्रमा इस जगत् को निरन्तर प्रकाशित करते रहते हैं, वायु जिसके भय से प्रवहमान है, और पृथ्वी नीचे पाताल में नहीं चली जाती, वही ज्ञानस्वरूप, (विश्वमात्र की क्रियाओं का) साक्षी, कूटस्थ (विश्वमात्र को आक्रान्त करके अयोघन की भाँति स्थित), अनेक शुभगुणों से युक्त, अविनाशी एवं विश्वभर्त्ता ईश्वर ही ब्रह्म पद से अभिहित होता है।[1] यह ब्रह्म नित्य है, ब्रह्मादि का भी विधायक है, वेदों का उपदेष्टा है, स्वयं सर्वज्ञ है, सद्‌योगियों की रक्षा करता है, तपस्यादि से भी दुर्लभ है, चेतन को भी चेतनता प्रदान करता है, संसार का पालक है, ध्येय है, स्वतन्त्र है, बन्धन से रहित है तथा सत्संगपरायण, सज्जन-गुरु प्राप्त मुमुक्षुवों का प्राप्य है।[2] प्रातः मध्यान्ह एवं सायं तीनों कालों में सततचिन्तनयोग्य इस परमार्थ को जान लेने के उपरान्त जिज्ञासुओं को जानने के लिए कुछ भी शेष नहीं रहता।[3]

२—यह ब्रह्म श्रीमान्, दिव्यगुणों का समुद्र, उपनिषदों का प्रतिपाद्य, सब का शरणदाता, समस्तजगत् का कारण, आद्यन्त हीन, इन्द्रादि देवों का स्वामी, ब्रह्मादि देवताओं द्वारा अर्चित, तारा-सूर्य-चन्द्रमा-अग्नि-विद्युदादि का प्रकाशक, वीर शत्रुओं के शस्त्र-समूहों से भी अजेय, विजयी, एवं विश्वमात्र का स्वामी है।[4]

१—विश्वजातयताऽद्धा यदवतमखिलं लीनमप्यस्तियस्मिन्।
सूर्यो यत्तेजसेन्दुः सकलमविरतं भासयत्येतदेषः।
यद्‌भीत्यावातिवातोऽवनिरपि सुतलंयाति नैवेश्वरो ज्ञः
साक्षीकूटस्थ एको बहुशुभगुणवानव्ययो विश्वभर्त्ता॥
　　　　श्री वै० म० भा०, सं० पं० रामटहलदास, पृ० २

२—नित्यो ब्रह्मविधायकश्च पुरुषस्तद्वेदबोधो बुधो,
नित्यानां शरणं तपः प्रभृतिभिः सद्‌योगिनां दुर्लभः।
एकश्चेतनचेतनो भृतजगद्धेयः स्वतन्त्रो वशी
स प्राप्योऽस्ति मुमुक्षुभिः सुगुरुभिः सत्संगिभिस्तत्परैः॥
　　　　वही—सं० भगवदाचार्य, पृ० २०१

३—सदानुमन्थेयमिमं त्रिकालंमुमुक्षुभिस्तं परमार्थमित्थम्।
ज्ञात्वा न चैवास्ति सुवेदनीयं जिज्ञासुभिस्तैरवशिष्यमाणम्॥ वही, पृ० २०६

४—श्रीमान् दिव्यगुणाम्बुधिरुपनिषद्वेद्यो हेतुः शरण्यः प्रभु—
र्देवेशो जगतामनादिनिधनो ब्रह्मादि देवार्चितः।

३—इस ब्रह्म पद से भगवान् नारायण अथवा श्रीरामचन्द्र का ही बोध होता है। वे श्रीमान् हैं, अर्च्य हैं, शरणागतों को रक्षा करते हैं, विधि-शंकरादि देवता उनके चरण-कमल की उपासना करते हैं, योगिजन उनके ही चरण-कमलों को प्राप्त होते हैं, वे क्लेशादि से अस्पृश्य हैं, सत्पुरुष उन्हीं के यश का वर्णन करते हैं, वे विद्वानों द्वारा मान्य हैं, समस्तवेद उन्हीं के यश-माहात्म्य का वर्णन करते हैं, वे अमर हैं, सर्वशक्तिमान् हैं, निष्पाप, अजर, मन-वाणी से अगोचर एवं नित्य हैं।[१] रामानन्द उन्हीं भगवान् राम के सस्मित मुख-कमलों का स्मरण करते हैं, जो वेदों के भी जानने योग्य, अद्भुतगुणों के समूहों के रत्नाकर, प्रेय, लज्जायुत जानकी जी के कटाक्षों से अवलोकित, भक्तों के मनोवांछित चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) को देने के लिए कल्पतरु के समान एवं परम शुचि महानीलमणि के सदृश कांतियुक्त हैं।[२]

४—सीतापति भगवान् राम समस्त गुणों के एकमात्र आकर, जगत् के हेतु एवं सबके संरक्षक, शेषी तथा उपास्य हैं।[३] वे सबके बन्धु, सबके प्राप्य, सर्वदोष रहित एवं कल्याण-गुणाकर हैं।[४] यही भगवान् राम सत्यस्वरूप, आनन्दस्वरूप तथा चित्स्वरूप हैं और निखिल विभूति के स्वामी हैं।[५]

तारार्कानलचन्द्रमोबहुमहः सौदामर्ना भासकोऽ
जय्यो वीर सपत्नशस्त्रानचयैर्जेता च तेषां मुहुः ॥ वही, पृ० २०१

१—श्रीमानर्च्यः शरण्यो विधिभवप्रमुखैर्योगिगम्यांघ्रिपद्मोऽस्पृश्यः क्लेशादिभिः सत्सुमुदितसुयशाः सूरिमान्योवदान्यः। शश्वन्नारायणोऽजः सुमहितमहिमासाधुवेदैरशेषैर्निर्मृत्युः सर्वशक्तिर्विकलुषविजरोगीर्मनोभ्यामगम्यः ॥

श्री वै० म० भा०, रा० ट० दास, पृष्ठ २

२—[illegible] रत्नाकरं प्रेयः स्वेक्षण संसुलज्जितमहीजाताक्षिकोणेक्षितम्।

भक्ताशेषमनोभिवांच्छतचतुर्वर्गप्रदस्वद्रुमं रामंस्मेरमुखांबुजंशुचिमहानीलाश्मकांतिभजे। वही, सं० रामटहलदास, पृ० १।

३—तत्राद्येनपदेनरेण भगवान् सीतापतिः प्रोच्यते श्रीरामोजगतां गुणैकनिलयोहेतुश्चसंरक्षकः। तच्छेषा पदतोऽप्यतो भगवतोऽनन्यार्ह शेषत्वक व्यावृत्तस्तुसुरांतरादिगतसत्तच्छेषताया मुहुः ॥ श्री वै० म० भा०, रा० ट० दास, पृ० ३-४

४—ससर्वविधबन्धुत्वं सर्वप्राप्यत्वमेव च। सर्वप्रापकतातेनतथाचोभयलिंगता ॥

वही, पृ० ४-५

५—पदेनैवोच्यते सत्यानंदचिद्रूपता तथा। यान्विभूतिनेतृत्वं रामपादाब्ज सन्नते।

५—स्वयं विष्णु ही राम के रूप में अवतीर्ण हुए थे।[१] ये राम ही राजा दशरथ के पुत्र थे, जानकी जी उनकी पत्नी थीं, पिता की आज्ञा मान कर उन्होंने चित्रकूट को अपना निवासस्थान बनाया था और कानन में १४ वर्ष बिता दिए थे। इन्होंने भक्तों के भय को दूर किया था, सुग्रीव को राज्य दिया और रावण को मारकर सबको सुखी बना दिया था।[२]

६—राम अद्‌भुत रूप-लावण्ययुक्त हैं। विकसित कमल के समान उनके नेत्र विशाल हैं, उनका सौंदर्य ब्रह्मा और शिव के भी मन को हर लेने वाला है, वे नित्य सस्मित रहते हैं, सीता जी कटाक्षों से उनका अवलोकन करती हैं, उनके कमलसदृश चरण मुनिजनों के मनभ्रमर से विचुम्बित होते हैं, वे लोकोत्तरबलशाली, अद्‌भुत दिव्य धनुष और बाणों से पूजित तथा आजानुबाहु हैं। वे बहुमूल्य हार, अंगद, नूपुर, कमल के पराग के सदृश पीत वस्त्र आदि से युक्त हैं। उनका शरीर नूतन मेघ के सदृश है। वे प्रसन्न-विकसित लावण्यपूर्ण कमल के सदृश मुखवाले हैं। संसार के शरणदाता, परमपुरुषोत्तम, महोत्सवस्वरूप, दशरथ के पुत्र राम सीता और लक्ष्मण के साथ नित्य ही सुशोभित रहते हैं।[३]

७—राम अद्‌भुत शक्ति सम्पन्न हैं। उन्होंने शंकर के धनुष को खण्डित कर परशुराम को परास्त कर दिया था। शत्रुराक्षसों के लिये तो वे अनल के ही समान हैं।[४] उनके शस्त्रास्त्र-संघ अत्यन्त बलवाले, शक्तिशाली, दुष्करकार्यों के करने में

१—मासेमधौ यानवमी सुयुक्ता-शुक्लाऽदितीशेनशुभेनभेन। कर्के महापुण्यतमासुलग्ने-जातोऽथरामः स्वयमेव विष्णुः। वही, पृ० १३ ।श्लोक ७८ ॥

२—हे श्री दाशरथे मुनीशामरवयश्रीजानकीवल्लभ, ताताज्ञापरिपालकप्रभुवर श्रीचित्रकूटालय। हे श्रीकाननवासि, भक्तभयभित्सुग्रीवराज्यप्रद पौलस्त्यंविनिहत्यसर्वंसुखकृच्छ्रीराममामुद्धर। श्री रामार्चनपद्धति, सं० रामनारायणदास, पृ० २।

३—विकचपद्मदलायित वीक्षणं विधिभवादि मनोहर सुस्मितं। जनकजादृगपांगसमीक्षितंप्रणतसत्समनुग्रह कारिणम् ॥ मुनिमनसुमधुव्रतचुम्बितः स्फुटलसन्मकरंदपदांबुजम्। बलवदद्‌भुतदिव्यधनुः [illegible] ॥...परार्ध्यहारांगदचारुनूपुरं सुपद्मकिंजल्क पिशंगवाससम्। [illegible] कृपार्णवं सद्धृदयाम्बुजासनम् ॥ प्रसन्नलावण्य सुभृन्मुखाम्बुजं, जगच्छरण्यं पुरुषोत्तमं परम्। सहानुजंदाशरथिं महोत्सवं स्मरामिरामं सह सीतया सदा ॥ श्री वैष्णव-मताब्जभास्कर; पं० रामटहलदास, पृष्ठ ८-९।

४—श्रीमन्तंदलितेन्द्रनीलमाणभं भग्नेश कोदंडकम्। रामंनिर्जितभार्गवं जनकजापांगेक्षितं राघवं ॥ शश्वत्पैत्र्यनिदेशपालनपरं रक्षोरिकक्षानलम्। [illegible] वितनुते स्मृत्वायतिक्ष्मापतिम् ॥ श्री रामार्चन पद्धति, पं० रामटहलदास, पृ० ३४।

सक्षम, श्रेय एवं प्रतापयुक्त, मुनिजनों द्वारावंदित, भयंकर शत्रुओं के भी मान को विगलित करने वाले, राक्षस एवं दैत्यों के विनाशकारी, जलनिधि को भी क्षुब्ध कर देने वाले, लोकों के विजेता, सर्वमान्य, विघ्ननाशक एवं कल्याणकारी हैं।[१]

८—राम अनेक कल्याण गुणों के आकर हैं। प्रपन्नों के अभीष्ट को वे निश्चित् रूप से पूरा करते हैं। शरणागतों की रक्षा करने में वे बड़े ही निपुण हैं। उनके इस माहात्म्य को शिव एवं शेष भी नहीं जानते।[२] परमसिद्धि की कामना से अकिंचन व्यक्ति भी उनकी शरण में जाकर उनकी दया का भागी बन सकता है। उन्हें जाति-पांति क्रिया-कलापादिक की अपेक्षा नहीं है।[३]

९—जगत् के स्वामी श्रीश, जगन्निवास, जगत्कारण एवं प्रभु होते हुए भी राम बड़े ही उदार हैं।[४] वस्तुतः श्रेष्ठ विद्वानों ने कृपा-सिन्धु, कीर्ति-संपन्न, अचिन्त्य-अखिलवैभव वाले भगवान् राम की अन्यों के कष्टों से प्रति असहन-शीलता को ही दया कहा है।[५] करुणानिधान भगवान् राम के प्रातःकाल उठते ही संसार में मंगल का सूत्रपात हो जाता है। भक्त का यह विश्वास है कि नरशार्दूल भगवान् राम के प्रातः निद्रात्याग करने मात्र से सारा संसार जाग्रत हो उठेगा।[६]

१०—राम बड़े ही भक्त-वत्सल[७] हैं। नित्य सदाचार परायण विद्वज्जन वात्सल्य-महार्णव भगवान् राम का दोष-भोगिता-रूप अर्थात् स्वजनों के अपराधों

१—प्रत्यूहव्यूहभंगं विदधदुरुबलं शक्तिमान्सर्वकारी। भूरिश्रेयः प्रतापी मुनिवर निकरैः स्तूयमानोऽविमानः। रक्षोदैत्यादिनाशी क्षुभितजलनिधिर्लोकजिल्लोकमान्यो, धन्योनो मंगलौघं सपदि स कुरुताद्रामशस्त्रास्त्रसंघः। श्री वै० म० भा०, सं० रा० ट० दास, पृ० १२।

२—प्रपन्नाभीष्टसंदोहश्रीरामकरुणानिधे, शिवशेषाद्यविज्ञेयाशेषमाहात्म्यराघव। श्री रामार्चनपद्धति, सं० रामटहलदास, पृ० १३-१४।

३—प्राप्तुं परां सिद्धिमकिंचनोजनोद्विजातिरिच्छन्शरणं हरिंव्रजेत्। परंदयालुं स्वगुणान-पेक्षितक्रियाकलापादिकजातिबन्धनम्॥ श्री वै०म०भा०, सं०भगवदाचार्य, पृ० १७३।

४—जगत्पते श्रीश जगन्निवास प्रभोजगत्कारणरामचन्द्र। नमोनमःकारुणिकायतुभ्यं पदाब्ज युग्मे तवभक्तिरस्तु॥ श्री वै०म०भा०, भगवदाचार्य,-पृ० १६९।

५—दयान्यदुःखस्यनिगद्यते बुधैरपाकृतैस्तैरमहिष्णुतास्तुता। कृपामहाब्धेः समुदारकीर्ते-र्विष्णोरचिन्त्याखिलवैभवस्य। श्री वै०म०भा०, रामटहलदास, पृ० १७।

६—उत्तिष्ठनरशार्दूल कर्त्तव्यं दैवतान्हिकम्॥... त्वदीयोत्थानमात्रेण ह्युत्थितंभुवनत्रयं। उत्तिष्ठोत्तिष्ठ श्रीराम भद्रं ते करुणानिधे।उत्तिष्ठजानकीकांत त्रैलोक्यं मंगलं कुरु॥ श्री रामार्चन पद्धति, रामनारायणदास, पृ० ८।

की ओर दृष्टिपात न करना रूप ही वात्सल्य—इष्ट निरूपित करते हैं।[१] इसीलिए तो विरंचि और शम्भु भी भगवान्राम के पदारविन्द की सेवा करते हैं। भक्तों को तो ऐसे भगवान् के चरणकमल का चंचरीक होना ही चाहिए।[२]

११—राम संसार के कारण हैं। उनमें और संसार में पिता-पुत्र, रक्ष्य-रक्षक शेष-शेषित्व, भार्या-भर्तृत्व, स्व-स्वामि, आधार-आधेय, सेव्य-सेवक, आत्मा-आत्मीयत्व, भोग्य-भोक्तृत्व आदि अनेक सम्बन्ध हैं।[३]

१२—भगवान् और जीवों में भी उपर्युक्त सम्बन्ध रामानन्द जी ने माने हैं। उनके अनुसार भगवान् ही जीवों के स्वामी हैं, एकमात्र वही शेषी हैं। जीव उनका शेष है। भगवान् का कैंकर्य करना ही एकमात्र मुख्य फल है।[४] भगवान् राम ही जीवों के परमप्राप्य[५] हैं, वही एकमात्र उपाय[६] भी हैं। इसीलिए जीवों को चाहिए कि वे ईर्ष्या-द्वेषादि से पृथक् रह कर, सावधान होकर, अंगों सहित, पार्षदों सहित, लक्ष्मण-सीता सहित वेदवेद्य भगवान् श्री राम जी का कैंकर्य कर के कालयापन करें।[७]

१—विभोश्चवात्सल्यमहार्णवस्यवात्सल्यमिष्टं खलु दोषभोगिता।
समुच्यतेतैर्नृभिरस्वतन्त्रैः सदासदाचारपरायणैर्वरैः। श्री वै०म० भा०, रामटहलदास, पृ० १६।

२—समुच्यतेसंप्रतिचारुलक्षणं महात्मनांसद्गुणवैष्णवानाम्।
विरंचिशम्भुश्रितरामचन्द्रपदारविंदस्थितभृंग चेतसाम्॥ वही, पृ० २३

३—पितापुत्र सम्बन्धो जगत्कारणवाचिना। रक्ष्यरक्षकभावश्चरेणरक्षक वाचिना॥
शेषशेषित्वसम्बन्धश्चतुर्थ्यालुप्तयोच्यते। भार्याभर्तृत्वसबंधोऽप्यनन्यार्हत्ववाचिना॥
अकारेणापिविज्ञेयोमध्यस्थेन महामते। स्वस्वामिभावसबंधो मकारेणाथ कथ्यते॥
आधाराधेयभावोपि ज्ञेयो रामपदेन तु। सेव्यसेवकभावस्तु चतुर्थ्याविनिगद्यते॥
नमःपदेनाखण्डेन त्वात्मात्मीयत्वमुच्यते। षष्ठ्यन्तेन मकारेण भोग्यभोक्तृत्वमप्युत।
वही, पृ० ४।

४—पदेन षष्ठेनमइत्यनेन स्वस्वाम्यनन्यार्हकशेषतापि।
समुच्यतेचैतनवाचिनातु तत्किंकरत्वैकप्रयोजनत्वम्॥ वही, पृ० ५
मवाच्योऽहं र वाच्याय शेषभूतोऽस्मिसर्वदा॥...वही, पृ० ४

५—प्राप्यंमिथुनमेवेति श्रीमतेपदतोमतम्। रामचन्द्रेतिपदतः स्वामित्वंप्रतिपाद्यते॥
वही, पृ० ६।

६—उपायार्थपरेणात्र त्वखण्डनमसोच्यते। उपायोहिमवाच्यस्यरवाच्योरामएवसः॥
वही, पृ० ५।

७—रामाय सांगायसपार्षदायसीतासमेताय सहानुजाय।
आम्नायवेद्यायविधाय शश्वत् कैंकर्यमीर्ष्या रहितः समाहितः॥ वही, पृष्ठ २६

१३—भगवान् राम के पार्षदों में लक्ष्मण राम कैंकर्य परायण, सीतेशनिदेश पालक, शरच्चन्द्र के सदृश कीर्तिवाले एवं अप्रमेय हैं।[१] इसीलिये वे राम को परम प्रिय हैं। राम के दूसरे पार्षद हनुमान् हैं। वे अत्यन्त बलयुक्त, बहुत ही बुद्धिमान्, लाल-लाल नेत्रोंवाले, श्री राम के चरण कमलों में मन से संलग्न एवं शत्रुओं के लिए मृत्युवत् हैं।[२] भगवान् राम के शस्त्रास्त्र भी उनके पार्षद माने गए हैं।

१४—स्वामी जी ने भगवान् के अर्चावतार अथवा प्रतिमावतार का भी विवेचन किया है। उनके अनुसार देश-काल के प्रकर्ष से हीन, आश्रिताभिमत, सहिष्णु, अप्राकृत दिव्यदेहयुक्त, अपने समस्त कृत्यों में अर्चक के अधीन मूर्तिविशेष को अर्चावतार कहते हैं।[३] अर्चावतार के चार भेद हैं। स्वयंव्यक्त, दैव, सैद्ध और मानुष[४]। सुधियों को चाहिए कि आह्वान, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, प्रदक्षिणा और विसर्जन आदि षोडशोपचार से अर्चावतार की पूजा करें।[५] भगवद् विग्रह ही जीवों का एकमात्र उपाय है।[६]

१—श्रीरामकैंकर्यपरायणं मुहुर्मुहुश्च सीतेशनिदेशकारिणम्।
तमेकवारं शरदिन्दुकीर्तिन्नमाम्यहं लक्ष्मणमप्रमेयम्॥ श्रीरामार्चन पद्धति, रा० ट० दास, पृष्ठ २४।

२—महाबलं वायुसुतंमहामतिं प्रतप्तचार्माकरचारु लोचनम्।
श्रीरामपादाब्जनिविष्टमानसं द्विषन्तकं श्रीहनुमंतमीडे॥ श्री रा० प०, पं० रा० ना० दास, पृ० २४

३—अर्चावतारोऽपिचदेशकालप्रकर्षहीनः श्रितसम्भवश्च।
सहिष्णुरप्राकृतदेहयुक्तःपूर्णोऽर्चकाधीन समाप्तकृत्यः॥ श्री वै०म० भा०, भगवदाचार्य पृ० १६८।

४—स्वयंव्यक्तश्चदैवश्च सैद्धोमानुषएवच देशादौहिप्रशस्ते स वर्तमानश्चतुर्विधः॥ वही, पृ० १६८।

५—आह्वानासनाभ्यां च पाद्यार्घ्याचमनैस्तथा,
स्नानवस्त्रोपवीतैश्च गन्धपुष्पसुधूपकैः।
दीपनैवे[illegible]दक्षिणा[illegible]ः।
षोडशोपचारैस्तमेतैरर्चेत् सदा सुधी॥ वही, पृष्ठ १६८

६—शरणेतिपदेनैवोपायस्तद्विग्रहो बुधैः।
उप[illegible] प्रपद्य इति वर्ण्यते॥......। श्री वै० म० भा०, रामटहलदास, पृ० ६।

आनन्दभाष्य का मत

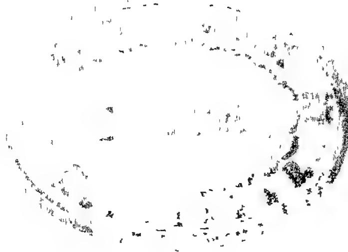
ब्रह्म—ब्रह्म शब्द से भगवान् राम का ही बोध होता है। उन्हीं से विश्व की सृष्टि, स्थिति और लय सम्भव है। वे करुणा-सिन्धु, [illegible], तीनो लोक में परम-प्राप्य हैं। वेदान्त के वे ही प्रतिपाद्य हैं और भक्तगण उनका ही ध्यान करते हैं।[१] 'ब्रह्मशब्दश्चमहापुरुषादिपदवेदनीयंनिरस्ताखिलदोष-[illegible] भगवन्तं श्रीराममेवाह।'[२] श्रुतियों में सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार, ज्ञान-आनन्द-बल-ऐश्वर्य-तेज-वीर्यादि अनन्तगुण-युक्त दिव्य मंगलविग्रह, स्वप्रकाश, चिज्ज्योतिःस्वरूप, स्वचिन्तनैक प्राप्य; जगज्जन्मादि हेतुभूत ब्रह्म का ही प्रतिपादन किया गया है, जो विद्वानों-भक्तों का जिज्ञास्य, ज्ञेय, ध्येय तथा प्राप्य है।[३] 'आनन्दभाष्य' का निश्चित् मत है कि त्रैपादिक ग्रन्थों द्वारा अखिलहेयप्रत्यनीक (समस्तदोषों का प्रतिद्वन्दी) जगज्जन्मादिकारण, प्रधानादि अचिद्वस्तु तथा बद्ध-मुक्तादिरूपचेतन पदार्थों से विलक्षण, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिसम्पन्न, सत्यसंकल्प, समस्त [illegible], सर्वान्तरात्मभूत, निरंकुशैश्वर्य, चिन्त्य, दिव्याद्भुत-नित्य-निरवद्य, निरतिशय, औज्वल्य, सौंदर्य, सौगंध्य, सौकुमार्य, लावण्य, यौर्दनादि गुणनिधि, दिव्यरूप, पुण्डरीक-दलामलायतेक्षण, पुंस्त्रीक्लीवलक्षणयुक्त जड़चेतन के चित्त को मुग्ध करने वाले, परमपुरुषोत्तम श्रीरामाख्य ब्रह्म का ही प्रतिपादन किया गया है।[४]

कुछ लोगों का मत है कि वेदान्त का प्रतिपाद्य अद्वैत है।[५] यह प्रपंचात्मक जगत् ब्रह्म में अनिवर्चनीयरूपा अविद्या द्वारा परिकल्पित है।[६] ब्रह्म अखण्ड, आनन्दमय एवं चिन्मात्र है।[७] किन्तु निर्विशेष ब्रह्म का ही ज्ञान कैसे हुआ? यदि किन्हीं प्रमाणों द्वारा, तब तो वह सविशेष हो ही गया, और यदि प्रमाणातिरिक्तरीति से उसका ज्ञान हुआ तो प्रामाणिकों द्वारा यह अमान्य ही

१—आनन्दभाष्यम्, सं० रघुवरदास वेदान्ती, प्रका० श्रीरामानन्दीयवैष्णवमहामन्डल, सं० १९८६, पृ० ४।
२—वही, १-१-१, पृ० ४।
३—वही, १-१-१६, पृ० ७६।
४—वही, १-४, पृ० १७०।
५—वही, १-१-१, पृ० ६।
६—१-१-१, पृ० ७।
७—१-१-१, पृ० ८।

होगा। षड्विध लिंगों द्वारा भी वेदान्त का तात्पर्य अद्वैत नहीं है। 'नेह नानास्ति किंचन' का केवल यही अर्थ है कि द्रष्टव्य ब्रह्म में नानात्व भेदलेश भी नहीं है और 'बहुस्यां प्रजायेय' को लेकर ब्रह्म के नानात्व को सिद्ध करना बालक्रीड़ामात्र होगी।[१] अतः निखिलशक्तिविशिष्ट ब्रह्म ही सृष्टि के प्राक्काल में अविभक्त नाम-रूप से सूक्ष्म चिदचिच्छरीर से स्थित था, अद्वितीय पद ब्रह्म के सजातीय—विजातीय-स्वगतभेद शून्यत्व की प्रतिष्ठा नहीं करता।[२] मायापद अद्भुत रचना-क्षमत्व का ही द्योतक है, अनिवर्चनीय अज्ञान का नहीं।[३] भावरूप अज्ञान श्रुति-प्रतिपादित नहीं है, प्रत्यक्षानुमान से भी इसे नहीं सिद्ध किया जा सकता।[४] यदि यह अविद्या कार्यरूपा है, तो इसका कारण क्या है? अविद्यांतर इसका कारण नहीं हो सकता स्वयं अविद्या ही अपना कारण नहीं हो सकती आत्माश्रय-दोष-प्रसंगवश। ब्रह्म भी इसका कारण नहीं हो सकता, विकल्पासहत्व से। फिर उपाधि-विशिष्ट ब्रह्म उसका कारण नहीं हो सकता, क्योंकि अविद्या के पूर्व उपाधि का अभाव रहता है, निरुपाधि ब्रह्म किसी भी कार्य का कारण नहीं हो सकता।[५] अतः समस्त [illegible] के सामन्जस्य से तथा उपपत्तिबल से भी ब्रह्ममीमांसाशास्त्र का विषय विशिष्टाद्वैत ही ठहरता है, केवलाद्वैत नहीं।[६] गुणेश कह कर श्रुति उसके सत्यकामत्व, सत्यसंकल्पत्वादि नित्यगुणों का वर्णन करती है।[७] 'ईक्षतेर्नाशब्द' से स्पष्ट है कि जगत् का कारण 'प्रधान' नहीं, किन्तु सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म है; और इस प्रकार सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म तथा स्थूल चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म में अभेद स्थापित किया गया है। 'सदेव [illegible]दमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयम्' से अभेद शब्द का भी चिदचिद्विशिष्ट-परत्व ही तात्पर्य है।[८] इस प्रकार सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म स्थूल चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म का उपादान सिद्ध हो जाता है।[९] इस प्रकार श्रुतियों में ब्रह्म को जहां निर्गुण कहा गया है, वहाँ उसका तात्पर्य निकृष्टगुणराहित्य से

१—१-१-१, पृ० ६।
२—वही, पृ० ११।
३—वही, पृ० १२।
४—वही, पृ० १३।
५—वही, पृ० १३-१४।
६—वही, पृ० १४-१५।
७—वही, पृ० १५।
८—वही, पृ० १६।
९—वही, पृ० १७।



ही है—निर्गताः निकृष्टाः सत्त्वादयः प्राकृताः गुणा यस्मात्तन्निर्गुणमिति व्युत्पत्तेर्निकृष्टगुणराहित्यमेव निर्गुणत्वम् ।[१]

३—इस प्रकार प्राकृत गुण रहित ब्रह्म 'निर्गुण' शब्द द्वारा और दिव्यगुण युक्त ब्रह्म 'सगुण' शब्द द्वारा अभिहित किया गया है । निर्गुण का प्रतिपादन करने वाली श्रुतियाँ वस्तुतः अभाव द्वारा ब्रह्म के कल्याण गुणों की ही प्रतिष्ठा करती हैं । ब्रह्म को जहाँ अद्रेश्य, अग्राह्य आदि कहा गया है वहाँ उसका तात्पर्य निम्नलिखित है ।[२] *अद्रेश्य* का तात्पर्य यह है कि ब्रह्म स्थूल बुद्धि द्वारा दृष्टिगत नहीं हो सकता, अतः वह लौकिक प्रत्यक्ष का अविषय है । *अग्राह्य* का तात्पर्य यह है कि ब्रह्म आकाशादि की भाँति अत्यंत सूक्ष्म तथा ग्राह्य है । *अगोत्र* का तात्पर्य यह है कि ब्रह्म न तो अपने समान द्वितीय ब्रह्म का जनक है और न पुत्रपौत्रादिरूप उसकी कोई लौकिक परम्परा ही चलती है । *अवर्ण* का तात्पर्य यह है कि ब्रह्म ब्राह्मणादि अथवा नीलपीतादि वर्ण रहित है, उसमें रूप का अत्यन्ताभाव नहीं है । प्रत्युत् वह दिव्यरूप सम्पन्न है । *अचक्षुश्रोत्रम्* का तात्पर्य यह है कि वह साधारण चक्षु-श्रोत्र से दृष्टिगत नहीं हो सकता । [illegible] का अर्थ यह है कि वह पाणिपाद से अपरतन्त्र गति वाला है । *अव्यय* से विविध विकार रहित तात्पर्य है । *भूतयोनि* से तात्पर्य यह है कि वह आकाशादि भूतों का कारण है । 'मनोमयः प्राणशरीरोभारूपः सत्यसंकल्प आकाशात्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसस्सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यानादरः' (छा० ३-१४-२) की व्याख्या 'आनन्दभाष्य' में सगुणत्व प्रतिपादक रीति से की गई है ।[४] ब्रह्म सभी के प्राण का धारक होने से प्राणशरीर है, अप्राकृत दिव्यमंगलविग्रहवान् होने से निरतिशय दीप्तियुक्त है, अप्रतिहत संकल्पवाला होने से सत्यसंकल्प है, आकाश से भी सूक्ष्म होने से आकाशात्मा है, संपूर्ण जगत् का कर्त्ता होने से सर्वकर्मा है, उसके भोग्यभोगोपकरणादि दिव्य हैं, अतः वह सर्वकाम है, अप्राकृत दिव्यगंधयुक्त होने से सर्वगंध है; स्वभोगभूत निरवद्यनिरतिशयकल्याणरूपा सभी विद्याएँ उसके गन्धरस होने से वह सर्वरस है; प्राकृत शब्दस्पर्शगन्ध से रहित होने से वह 'अशब्दमस्पर्शमगन्धवत्' कहा गया है, उक्ति-रहित होने से वह अवाकी है, सम्पूर्ण कामों को प्राप्त कर उनके प्रति आदर के भाव से रहित होने से वह अनादर

१—वही, पृ० ३० ।

२—वही, १-१-२, पृ० ३५ ।

३—१-१-२, पृ० ३५ ।

४—१-२-२, पृ० ६७ ।

है; परिपूर्णैश्वर्य होने से ब्रह्मादि स्तम्बपर्यन्त सभी वस्तुओं को तृणीकृत्य वह मौन है, अतः उसे अजल्पाक कहा गया।

ब्रह्म सर्वज्ञ है, सर्वशक्तिमान् है।[१] श्रीरामाख्यपरब्रह्म ही सत्य-ज्ञान-आनन्द-मय हैं।[२] जीव आनन्दमय नहीं हो सकता।[३] अन्तर्यामी शब्द से ब्रह्म ही अभिहित किया जाता है।[४] स्वामी भगवदाचार्य के मत से ईश्वर अखिलहेय-प्रत्यनीक, अनन्त (देशानवच्छिन्न, कालानवच्छिन्न, वस्त्वनवच्छिन्न), सर्वान्तर्यामी, आनन्दज्ञानस्वरूप, ज्ञान-शक्ति-बल-ऐश्वर्य-वीर्य-तेज-वात्सल्य-शौर्य आदि कल्याण-गुणयुक्त, आश्रित जीवों के लिए वात्सल्य, सौशील्य, सौलभ्य, मार्दव और आर्जव आदि गुण तथा शौर्य-पराक्रमादि विरोधि-दमन गुणों से युक्त है।[५]

ब्रह्म ही जगत् का कारण है। 'सदेव सोम्य इदमग्र आसीत्' वाक्य में सत्पद से सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म ही वाच्य है, जो स्थूल चिदचिद्विशिष्ट का कारण है। दूसरों के मत से केवल निर्विशेष ब्रह्म जगत् का कारण नहीं हो सकता, क्योंकि सुख-दुःखादि भोक्तृत्व विकार तथा वैषम्य-नैर्घृण्य-अज्ञत्व आदि अनेक दोषों से उसे दूषित भी होना पड़ेगा। किन्तु, जिस प्रकार रज्जु में सर्प के भ्रम से उत्पन्न दुःख का लेश भी नहीं होता, अपितु रज्जु-सर्प से भिन्न द्रष्टा को ही दुःखादि होते हैं, उसी प्रकार कल्पित जगत् की ब्रह्म में जगद्भ्रांति तथा तद्धेतुक संसरण नहीं उपपन्न होता, वरन् उससे भिन्न द्रष्टा में ही। इस प्रकार श्रुति-स्मृति के प्रमाणों से सुख-दुःख के भोक्ता जगत् का कल्पितत्व अनुपपन्न होता है। केवल ब्रह्म जगत् का कारण भी सिद्ध नहीं होता, अतः अद्वैतवाद ठीक नहीं।[६] प्रतिबिम्बवाद भी मान्य नहीं, सावयव पदार्थ का ही प्रतिबिंब सम्भव है, आकाशा-दिवत् निरवयव पदार्थ का नहीं।[७] 'सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेय' इत्यादि सहस्रों श्रुतियों द्वारा यह स्पष्ट है कि ब्रह्म ने स्वकामना से ही जगत् की सृष्टि की।[८] वही इस जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है। परम पुरुष के अधीन

१—१-१-३; पृ० ४५।
२—१-१-४, पृ०४८-५०।
३—१-१-१३, पृ० ६८।
४—१-१-१३, पृ० ६६।
५—त्रिरत्न-भगवदाचार्य, रामानन्द साहित्य प्रचारक मन्डल, पृ० ३१-३४।
६—१-१-२, पृ० ३६।
७—१-१-२, पृ० ३७।
८—१-१-१६, पृ० ७६।

होने से अव्यक्तादि का जगत्कारणत्व कोई भी अर्थ नहीं रखता।[१] 'अस्मान्मायी-सृजते विश्वमेतत्तस्मिंश्चान्यो मायया सन्निरुद्धः।' 'मायान्तुप्रकृतिंविद्यान्मायिनन्तु-महेश्वरम्' आदि श्रुत्युक्तियों से स्पष्टतया ब्रह्म को मायाधीश कहा गया है। जगन्निर्माण में सत्त्वरजस्तमोगुणमयी यह मायाशक्ति परमात्मा के अधीन स्वरूप-स्थिति-प्रवृत्तिवती होकर उनकी सहायता करती है।[२] जिस प्रकार जलान्तर्गत सूर्यादि का प्रतिबिम्ब जलगत वृद्धि-ह्रास, शैत्यादि से असम्बद्ध होता है, उसी प्रकार पृथ्वी-चक्षुरादि में अन्तर्यामी रूप से स्थित ब्रह्म का पृथ्वी चक्षुरादि के वृद्धि-ह्रास तथा तद्गत दोषों से कदापि सम्बन्ध नहीं रहता।[३] 'आनन्दभाष्य' में प्रकृति का विवेचन करते हुए सृष्टि के सम्बन्ध में अन्य दार्शनिक मतों का बड़े विस्तार से परीक्षण किया गया है। सृष्टि-प्रकरण में हमें उसका उल्लेख करना है, अतः यहाँ विस्तार में नहीं पड़ा गया। यहाँ इतना ही पर्याप्त है कि इस ग्रन्थ में प्रकृति और मुक्तजीवों[४] (ब्रह्मारुद्रादि) को भी जगत् कारण नहीं माना गया है। स्वामी भगवदाचार्य के मत से "जगत् का तीनों ही कारण ईश्वर है। सूक्ष्म चित् और सूक्ष्म अचित् विशिष्ट होकर तो वह उपादान कारण होता है। 'बहुस्यां-प्रजायेय' इस संकल्प से विशिष्ट होकर वह निमित्त कारण होता है। ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य आदि से विशिष्ट होकर सहकारी कारण होता है।" (त्रिरत्नी, पृष्ठ ३६) 'आनन्दभाष्य' में विभिन्न सूत्रों का विवेचन करते समय इसी मत का प्रतिपादन किया गया है।[५] ब्रह्म के अचिदंश से यह समस्त प्रपंच उत्पन्न होता है, किन्तु ब्रह्म तज्जन्य विकारादि दोष से सर्वथा मुक्त रहता है, क्योंकि 'साक्षात् ब्रह्म का परिणाम नहीं होता किन्तु अचिद्रूप विशेषण द्वारा होता है। विशेषण द्वारा परिणाम होने से ब्रह्म परिणामी वा विकारी नहीं हो सकता।........चिदचिद्विशिष्ट रूप से ब्रह्म को विकारी कहना हो तो उसमें कोई क्षति नहीं है।[६] स्वामी भगवदाचार्य ने सृष्टि-संकल्प-विशिष्ट ब्रह्म को ब्रह्मा, सृष्टि की स्थिति के संकल्पविशिष्ट ब्रह्म को विष्णु तथा सृष्टि के संहार के संकल्प से विशिष्ट ब्रह्म को रुद्र कहा है।[७]

१—१-४-३, पृ० १७५।
२—१-४-६, पृ० १८०-८१।
३—३-२-२०, पृ० ३१६।
४—१-१-१५, पृ० ७४।
५—१-१-४, पृ० ४८
६—त्रिरत्नी, भगवदाचार्य, पृ० ३८।
७—वही, पृ० ३९।

'आनन्दभाष्य' के मत से आकाश,[१] प्राण,[२] ज्योति,[३] भूतयोनि-अक्षर,[४] वैश्वानर,[५] द्युभ्वाद्यायतन,[६] भूमा,[७] पुरुष,[८] दहराकाश,[९] अंगुष्ठमात्र[१०] आदि शब्दों से उपनिषदों में ब्रह्म का ही ज्ञान कराया गया है।

'आनन्दभाष्य' के अनेक प्रकरणों में यह स्पष्ट कहा गया है कि जीव कभी आनन्दमय नहीं हो सकता, केवल परमात्मा ही 'आनन्दमय' है।[११] इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि मुक्त जीवों को भी जगत्सृष्ट्यादि कर्मों में कोई अधिकार नहीं है।[१२] प्राकृत शरीर के सम्बन्ध से जीव कर्मवश है, किन्तु अप्राकृत दिव्यशरीरयुक्त होने के कारण ब्रह्म कर्मानधीन है, अतः शरीरकृत सुख-दुःख आदि का अनुभव जीव को ही होता है, ईश्वर को नहीं।[१३] 'अंतः प्रविष्टाशास्ताजनानां' आदि उक्तियों से यह स्पष्ट है कि ईश्वर शरीरी और जीव उसका शरीर है, ईश्वर नियन्ता है और जीव नियम्य, स्वरूपस्थितिप्रवृत्तितया जीव ब्रह्म के अधीन, किन्तु-ब्रह्म से अभिन्न है; सर्वव्यापक ईश्वर अन्तर्वहिर्व्याप्त है। जिस प्रकार शरीर-शरीरी अभिन्न हैं तथा एक शब्द वाच्य हैं, उसी प्रकार 'अहं ब्रह्मास्मि' आदि ब्रह्मविद्या से यही प्रतीति उपपन्न होती है।[१४] ईश्वर स्वतन्त्र है, जीव परतंत्र; ईश्वर ज्ञानाश्रय है, जीव अज्ञानी; अतः 'तयोरन्यः पिप्पलंस्वाद्वत्ति-अनश्नन्नन्योऽभिचाकसीति' श्रुति द्वारा यह स्पष्ट है कि जीव पुण्य-पाप रूप कर्म से परवश हो कर सुख-दुःख का उपभोग करता है, अपहतपाप्मा परमात्मा

१—आ० भा० १-१-२३, पृ० ८६।
२—१-१-२४, पृ० ८७।
३—१-१-२७, पृ० ८९।
४—१-२-२४, पृ० ११६।
५—१-२-२६, पृ० ११८।
६—१-३-१, पृ० १२४-२५।
७—१-३-८, पृ० १२८।
८—१-३-१३, पृ० १३३।
९—१-३-१८, पृ० १४१।
१०—१-३-२४, पृ० १४८।
११—१-१-१३; पृ० ६७-७३; १-१-१५, पृ० ७४।
१२—१-१-१५, पृ० ७४।
१३—१-१-१९, पृ० ८४।
१४—१-१-३१, पृ० ९२।

में उसकी निवृत्ति ही मानी गई है।[१] ईश्वर गन्तव्य है और जीव गन्ता;[२] जिस प्रकार सर्वगतवन्हिविद्युदादिरूप से मेघादि में उपलब्ध होती है, उसी प्रकार सर्वव्यापी भगवान् अपनी असाधारण शक्ति एवं महत्ता से उपासकों की भावनाओं को पूर्ण करने के लिए दृग्गोचर भी हो जाता है—भावना-प्रकर्ष से वह भक्तों के लिये दृश्यमान भी हो जाता है।[३] अतः यह सिद्ध हो गया कि श्री रामाख्यपर-ब्रह्मसर्वनियन्ता, सर्व स्वामी, एवं सर्वशेषी हैं, उनसे भिन्न पदार्थ उनके शेषत्व को ही उपपन्न होते हैं।[४] 'अन्तर्यामी' परमात्मा ही है, जीव नहीं।[५] 'भूतयोनि' परमात्मा ही हैं, अन्य नहीं। 'वैश्वानर' परमात्मा ही है, अन्य नहीं। 'पुरुषोत्तम' श्रीराम ही हैं, अन्य नहीं। 'द्युम्वाद्यायतन' परमात्मा ही है, जीव नहीं। 'भूमा' परमात्मा ही है, प्राणादि विशिष्ट जीवात्मा नहीं। 'अक्षर' परमात्मा ही है, प्रकृति नहीं। 'पुरुष' परमात्मा ही है, जीव नहीं। 'दहराकाश' परमात्मा ही है, जीव नहीं। मुक्त जीव भी दहराकाश नहीं, क्योंकि परमात्मा के ज्ञान एवं उनकी उपासना से ही जीव को उनका साधर्म्य प्राप्त होता है, जीव सभी अवस्थाओं में परमात्मा के ही अधीन है। 'अंगुष्ठमात्र' पुरुष परमात्मा ही है; प्रपन्न जनों के मनोरथ को पूर्ण करने के लिए परंब्रह्म स्वेच्छया चतुर्व्यूह रूप से जगत् की रक्षा करता है, अतः संकर्षणादि रूपों में उसका अवतार होता ही है।[६]

जीवों द्वारा जागरिताद्यवस्थाओं में किए गए दोष 'अन्तर्यामी' होने पर भी ब्रह्म को सम्भव नहीं होते।

त्रिरत्नी में[७] भगवदाचार्य ने ईश्वर तत्व का कुछ और विस्तार से विवेचन किया है। उनके मत से ईश्वर के ५ रूप हैं—पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी और अर्चावतार। द्विभुज भगवान् श्रीराम जी पर हैं, अवतारी हैं। वासुदेव-संकर्षण-प्रद्युम्न और अनिरुद्ध उनके व्यूह रूप हैं; वासुदेव में ज्ञान-बल-ऐश्वर्य-वीर्य-शक्ति आदि छहों गुण रहते हैं, संकर्षण में ज्ञान और बल, प्रद्युम्न में ऐश्वर्य और वीर्य तथा अनिरुद्ध में शक्ति और तेजादि गुण रहते हैं।

१—१-२-८, पृ० १०२।

२—१-२-१२, पृ० १०६।

३—१-२-१४, पृ० १०७।

४—१-२-१६, पृ० ११२।

५—१-२-२१, पृ० ११३।

६—२-२-४४, पृ० २४६-५०।

७—त्रिरत्नी, भगवदाचार्य, पृ० ४२-४४।

इन चार व्यूहों के अतिरिक्त केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ और दामोदर आदि द्वादश व्यूह भी माने गए हैं। केशव, नारायण और माधव वासुदेव से उत्पन्न होते हैं; गोविन्द, विष्णु और मधुसूदन संकर्षण से प्रकट होते हैं; त्रिविक्रम, वामन और श्रीधर प्रद्युम्न से तथा हृषीकेश, पद्मनाभ और दामोदर अनिरुद्ध से प्रकट होते हैं।

केशव का सुवर्ण समान रूप है और उनके चार चक्र हैं। नारायण श्याम-रूप हैं और उनके चार शंख हैं। माधव का इन्द्रनीलमणि के समान रूप है और उनके चार गदाएँ हैं। गोविन्द का चन्द्रसमान रूप है और उनके चार धनुष हैं। विष्णु का कमलकिंजल्क के समान पीतरूप है और उनके चार हल हैं। मधुसूदन का कमल समान रूप है और उनके चार मुशल हैं। त्रिविक्रम का अग्नि समान रूप है और उनके चार खड्ग हैं। वामन का बालसूर्य के समान रूप है और उनके चार वज्र हैं। श्रीधर का श्वेत कमल समान रूप है और उनके चार पटिश हैं। हृषीकेश का विद्युत् समान रूप है और उनके चार मुद्गर हैं। पद्मनाभ का सूर्य समान रूप है और वे पंचायुध-शंख, चक्र, गदा, पद्म, धनुर्बाण युक्त हैं। दामोदर का इन्द्रगोप के समान रूप है और उनके चार पाश हैं।[१]

विभव (अवतार) के दो रूप हैं। साक्षात् अवतार मुख्य और आवेशावतार गौण माना जाता है। आवेश के स्वरूपावेश और शक्त्यावेश दो भेद हैं:—परशुराम-भगवान् के आवेशावतार हैं; ब्रह्मा शिवादि शक्त्यावेश। आवेशावतार स्वरूपतः गौण नहीं है, किन्तु भगवदिच्छा से गौण है। भगवान् श्रीराम मुख्यतम विभव है, नृसिंहावतार मुख्यतर विभव है और वामन-श्रीकृष्णादि मुख्य विभव हैं।

अवतार दश हैं-मत्स्य, कूर्म, बराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, बल-भद्र, श्रीकृष्ण और कल्कि। अन्य अवतारों-ब्रह्मा, शिव, अग्नि, व्यास, परशुराम, अर्जुन, कुबेर आदि-की उपासना वैष्णवों को नहीं करनी चाहिए, क्योंकि ये सब अहंकार जीवों के अधिष्ठाता हैं। भगवान् का अन्तर्यामी रूप सर्वत्र व्याप्त रूप ही है। अर्चावतार (प्रतिमावतार) में षड्गुणसम्पन्न भगवान् का स्नान, भोजन, आसन, शयन आदि अर्चकाधीन रहता है। यह स्वयं-व्यक्त, दैव, सैद्ध, मानुष आदि चार प्रकार का होता है।

१—वही, पृ० ४२।

पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी और अर्चावतार आदि पांच दशाओं में श्रीराम का सीता जी से कभी वियोग नहीं होता।

सीता—रामानन्द जी के विचार—

दिक्पालों के अद्भुत भोग-ऐश्वर्य तथा सम्पूर्ण चित्रमय जगत् जिनके कटाक्षों पर आश्रित है, जो शुभ गुण सम्पन्ना हैं, वात्सल्य की जो सीमा हैं, अनंत-विद्युत् के समान सुषमा वाली, असीम क्षमा वाली, पद्माक्षी सीता जी ही भगवान् राम की प्रिया हैं।[१] नवप्रफुल्लित कमल के समान उनके नेत्र हैं, प्रणत जनों के लिए कामधेनु के सदृश उनके चरणकमल हैं, वे अशरणों को भी शरण देती हैं[२]। चेतन और अचेतन समस्त जगत् के जनक नन्दिनी ही रमण के आश्रय हैं।[३] समस्त प्रपंच के निर्माता ब्रह्मा के भी हेतु श्रीराम जी के चरणकमलों में मनसा संलग्न, निर्भरता-परायण, विद्वानों ने अणुत्वेन ही श्री व्याप्ति कही है।[४]

श्री सीता जी के द्वारा ही रामचन्द्र जी की प्राप्ति होती है।[५] महारानी सीता जी 'पुरुषकारभूता' हैं और वही उपाय भी हैं[६]। बिना सीताजी के कृपाकटाक्ष के रामचन्द्र की प्राप्ति जीवों को नहीं हो सकती। रामप्रिया सीता अत्यन्त ही उदार हैं।[७]

१—ऐश्वर्यं यदपांगसंश्रयमिदं भोग्यंदिगीशैर्जगच्चित्रंचाखिलमद्भुतं शुभगुणावात्सल्यसीमाचया। विद्युत्पुंजसमानकांतिरमितक्षांतिःसुपद्मेक्षणा दत्तान्नोऽखिलसम्पदोजनकजा रामप्रिया सानिशम्॥
श्री वै० म० भा०, रा० ट० दास, पृ० १।

२—[illegible], प्रणतकाम दुघांघ्रिसरोरुहाम्।
अशरणः शरणं जनकात्मजे, [illegible]॥ श्रीरा० प०, रा० ना० दास, पृ० २३।

३—रामायेतिचतुर्थेन श्रियादेव्यास्तु सर्वदा। चेतनाचेतनानांच रमणाश्रयतेर्यते।
श्री वै० म० भा०, रा० ट० दास, पृ० ४।

४—अथोच्यते निर्भरतापरैस्तैः [illegible]रणुत्वतः। प्रपंचनिर्मातृविरंचिहेतुश्रीराम पादाब्ज निविष्टमानसैः॥ वही, पृ० १७।

५—सीतापुरुषकारार्था श्रीत्यनेनपदेन तु...वही, पृ०६।

६—पुरुषकारपराविनिगद्यते सकमलाकमलाकमलप्रिया इयमसौकुशलैस्तदुपायतानृभिरुपाय-सुशून्यपरैः परैः॥ वही, पृ० १७।

७—अन[illegible] रामसुप्रिये। सुप्रभातानिशासीते [illegible]॥
श्रीरा० प०, रा० ट० दास, पृ० ३६

आधुनिक रामानन्द-सम्प्रदायान्तर्गत 'रसिक-सम्प्रदाय' में सीता को बहुत अधिक प्रमुखता दी गई है। उनकी चन्द्रकला और चारुशीला दो प्रमुख सखियों की भी कल्पना की गई है और उन्हीं के आधार पर सखी-भावना का पूरा विस्तार किया गया है। इस सम्बन्ध में पीछे पर्याप्त कहा जा चुका है।

जीव

रामानन्द स्वामी का मत—अपने प्रिय शिष्य सुरसुरानन्द के 'तत्वं किम्?' प्रश्न का उत्तर देते हुए रामानन्द स्वामी ने जीव की सामान्य परिभाषा इस प्रकार दी है—जो सदैव एक स्वरूप में स्थित है, जो ईश्वर की अपेक्षा अज्ञ है, चेतन है, अज है, सर्वदापराधीन (भगवदधीन) है, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है, बद्धादि भेदों से भिन्न-भिन्न शरीरों में भिन्न-भिन्न प्रकार का होकर भिन्न है, भगवान् से परिव्याप्त शरीर में जो रहता है, स्वकर्मानुसार फल भोगनेवाला है, भगवान् ही जिसके सर्वदा-सहायक हैं, अपने को कर्ता-भोक्ता-समझने का जिसे अभिमान है, तत्व के जिज्ञासुओं द्वारा जो जानने योग्य है, श्रेष्ठ विद्वान् उसी को जीव कहते हैं।[1] यह जीव-ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप तथा ज्ञान और सुख आदि गुणोंवाला, अणुपरिमाण-वाला, देहेन्द्रियादि से भी अपूर्व, परमात्मा का प्रिय, नित्य एवं स्वप्रकाश है।[2]

भगवान् शेषी और जीव उनका शेष है।[3] भगवान् ही जीवों के स्वामी हैं, एकमात्र वही शेषी हैं, जीवों का एकमात्र मुख्य प्रयोजन भगवान् का कैंकर्य करना है।[4] जीव स्वतन्त्र नहीं है, वह सर्वदा राम के परतन्त्र है।[5] भगवान् ही जीवों

१—नित्योऽज्ञश्चेतनोऽजःसततपरवशः सूक्ष्मनोऽत्यन्तसूक्ष्मो, भिन्नोबद्धादिभेदैःप्रतिकुणप-मसौनैकधासूरिवर्यैः।। श्रीशाक्रान्तालयस्थो निजकृतिफलभुक्तत्सहायोऽभिमानी, जीवः संप्रोच्यते श्रीहरिपद सुमते तत्वजिज्ञासुवेद्यः ॥श्री वै० म० भा०, सं० रामटहलदास, पृ० २।

२—ज्ञानानंदस्वरूपोऽवगतिसुखगुणोमेनवेद्योऽणुमानो, देहादेरन्यपूर्वोविदिदितविविधस्त त्प्रियस्तत्सहायः ॥नित्योजीवस्तृतीयेन तु खलु पदतः प्रोच्यते स्वप्रकाशो, जिज्ञासूनां-सदेत्थं [illegible] ॥ वही, पृ० ४ ॥

३—मवाच्योऽहं स्वाच्याचशेषभूतोऽस्मि सर्वदा,......वही, पृ० ४।

४—पदेन षष्ठेन मइत्यनेनस्वस्वाम्यनन्यार्हकशेषतापि, समुच्यतेचेतनवाचिनातु तत्किंकर-त्वैक प्रयोजनत्वम्।। वही, पृ० ५

५—पदेननेनात्र तु पंचमेनसंप्रकथ्यते वै तदनन्यशेषता। प्रहेयमन्यार्थमथोस्वतंत्रतानिवर्त्य-तेऽतः सततं स्वकीया।

वही, पृ० ५

के एकमात्र उपाय हैं।[१] अतः भगवान् की बिना निर्हेतुक कृपा के जीव को मोक्ष नहीं मिल सकता। इसीलिये प्रपत्ति आवश्यक है।[२] यह कृपा उसे प्राप्त होती भी है। फिर भी अनन्तगुणागार श्रीपति भगवान् के प्रपन्न मुमुक्षु जनों के द्वारा आश्रय की गई सुन्दर प्रपत्ति के—विष्णु कृपा से प्राप्तव्य मोक्ष रूप—फल में तारतम्य नहीं ही है।[३]

भगवान् और जीव में अनेक सम्बन्ध हैं। स्वामी रामानन्द जी ने दोनों में पिता-पुत्र सम्बन्ध, रक्ष्य-रक्षक सम्बन्ध, सेव्य-सेवक सम्बन्ध, आत्मा-आत्मीयत्वसंबंध तथा भोग्य-भोक्तृत्व सम्बन्धादि ६ प्रकार के सम्बन्धों को स्वीकार किया है।[४]

जीवों के मुख्यतया दो भेद हैं। बद्ध और मुक्त।[५]

बद्ध-जीव—अनादि कर्मों के समूह से नानाप्रकार के देह का अभिमानी जीव बद्ध माना गया है।[६] बद्धजीव के भी दो भेद हैं। मुमुक्षु और बुभुक्षु।[७] भगवान् की निर्हेतुक कृपादृष्टि से अविद्यादि दुष्टकर्मों की वासना की रुचि की प्रवृत्ति के सम्बन्ध से छूटने का प्रयास करने वाला जीव मुमुक्षु कहा जाता है।[८] इसके विपरीत सांसारिक भोग की कामनावाले जीवों को बुभुक्षु कहते हैं।[९]

मुमुक्षु जीव भी दो प्रकार के माने गए हैं—शुद्धभक्त तथा चेतनांतरसाधन। अकाम अर्थात् ज्ञानादि साधन हीन, स्मृति-भक्ति में निष्ठित, वेदोक्त वर्णाश्रम कर्म के करनेवाले तथा उपासना-निरत भक्त शुद्ध भक्त कहे जाते हैं,[१०] और

१—उपायार्थपरेणात्र त्वखण्डनमसोच्यते। उपायो हि मवाच्यस्यरवाच्यो रामएव च॥ वही, पृ० ५।

२—कर्मप्रवाहेण तु चेतनस्य मग्नस्यसंसारमहार्णवेचिरम्। उपर्यहोसंसरतोऽवशस्य सा कृपोद्भवत्येव हरेरहेतुका॥ वही, पृ० १५-१६॥

३—मोक्षेमुमुक्षोर्नहितारतम्यं फले प्रपन्नस्यतुसत्प्रपत्तेः। अस्त्येव तद्विष्णुकृपोपलभ्ये पति-श्रियोऽनन्तगुणार्णवं तम्॥ वही, पृ० १६।

४—वही, पृ० ७०-७१

५—बद्धमुक्तप्रभेदेन चेतनोऽमन्यत्द्विधा। श्री वै० म० भा०, भगवदाचार्य, पृ० १७४

६—अनादिकर्मोत्करजातनानादेहाभिम नो सुमनोथबद्धः॥ वही, पृ० १७४

७—बद्धामुमुक्षुरित्येव बुभुक्षुरिति च द्विधा॥ वही, पृ० १७४

८—सत्याच्युता हेतुकृपाकटाक्षादविद्येतराख्याभरुचिप्रवृत्तेः॥ विमोक्तुमिच्छुस्तु मुमुक्षुरुक्तः संबंधतःप्राज्ञसुसंमतोऽयम्॥ वही०, १७४

९—तथैवसांसारिकभोगमिच्छुर्बुभुक्षुरन्यः खलु कथ्यते ज्ञैः॥ वही, पृ० १७४।

१०— मुमुक्षवोऽपद्वि विधामहर्षिभिःप्रोक्ता अकामा स्मृतिमक्तिनिष्ठता। वेदोक्तवर्णा-श्रम कर्मकारिण उपासनानिरता निवेदिता:॥ वही, पृ० १७५

स्व-अनुष्ठित कर्म विज्ञानादि समूह को ही प्रधान साधन स्वीकार करके किसी उत्तम सम्बन्ध विशेष को प्राप्त होकर सदा मोक्ष में निश्चयवाले जीव दूसरे प्रकार के अथवा चेतनांतरसाधन कहे गए हैं।[१]

मोक्ष परायण जीवों के भी दो भेद हैं—प्रपन्न और पुरुषकारनिष्ठ। अन्य सभी को छोड़ कर परम कृपालु, समर्थ, अविनाशी श्रीराम को ही प्राप्य और उनको ही उपाय समझ कर जो जीव सस्थित हैं, उन्हें प्रपन्न कहते हैं।[२] पुरुषकारनिष्ठा वाले जन श्रीराम जी की स्वतन्त्रता का विचार करके कुछ संकुचित होकर, परमकृपालु आचार्य को ही उपाय मान कर स्थित रहते हैं।[३]

प्रपन्न जीव दो प्रकार के होते हैं:—दृप्त तथा आर्त्त।[४] दृप्त जीव उन्हें कहते हैं जो शरीर-स्थिति पर्यन्त स्वकर्मानुसार प्राप्त दुःखादि का भोग करते हुए शरीर के अन्त में मोक्ष सिद्धि का निश्चय करके महाबोध एवं अत्यन्त विश्वासयुक्त रहते हैं।[५] आर्त्तजीव वे हैं जो संसृति को तत्क्षण न सहन करते हुए भगवत्प्राप्ति में अत्यन्त शीघ्रता चाहने वाले हैं।[६]

पुरुषकार-निष्ठ जीवों के भी स्वामी जी ने दो भेद किए हैं—

आचार्य कृपा-मात्र-प्रपन्न और महापुरुष-सेवातिरेक-प्रपन्न।[७]

बद्ध जीवों का विवेचन समाप्त करते हुए रामानन्द जी ने स्पष्ट कहा है कि शुद्ध भक्त वही हैं जो भगवान् के यश के श्रवण-कीर्तनादि में ही निष्ठा रखते

१—स्वकर्म वज्ञानचयाधिसाधनं तथोररीकृत्य हि वत्स कंचन। संप्राप्यसंबंधविशेषमुत्तमं सदाभवन्त्येव च मोक्षनिश्चयाः॥ वही, पृ० १७५

२—विहाय चान्यत् परमं कृपानिधिं प्राप्यंसमर्थं निरपायमीश्वरम्। उपायमेतेऽध्यवसीय सुस्थिताः ज्ञेयाः प्रपन्नाः सततं हरिप्रियाः॥ वही, पृ० १७५-७६

३—पुरुषकारैकनिष्ठास्तु हरिस्वातंत्र्यमेदय च। [illegible]॥ वही, पृ० १७७

४—प्रपन्नश्चापिदृप्तः स तथा चार्त्त इति द्विधा—वही, पृ० १७७

५—शरीरस्थितिपर्यन्तमाद्योऽत्रैव यथोचितं॥ प्राप्तदुःखादिभुजानः शरीरांतेऽवसीय च। महाबोधोऽतिविश्वासो मोक्षसिद्धिमदस्थितः॥ वही, पृ० १७७-७८

६—अथान्योऽसहमानस्तत्क्षणमेवतु संसृतिम्। तथैवभगवत्प्राप्तौसत्वरस्त्वांतउच्यते॥ वही, पृ० १७८

७—ते चाचार्यकृपामात्रप्रपन्ना द्विविधा मताः। तथासेवातिरेकप्रपन्नाश्चेतिसदासताम्। वही, पृ० १७७

हैं। यहाँ अन्य मुमुक्षुवों के जो भेद नहीं कहे गए हैं, उन्हें पूर्वोक्त में ही अन्तर्भूत समझना चाहिये।[1]

मुक्त जीव

मुक्त जीवों के भी दो भेद आचार्य रामानन्द ने स्वीकृत किए हैं: नित्य और कादाचित्क।[2]

जो गर्भजन्मादि दुःख का अनुभव करके सदा स्थित रहते हैं, ऐसे निरन्तर सीताराम के परमप्रिय हनुमदादि सिद्ध श्रेष्ठ पुरुष नित्यजीव कहे जाते हैं।[3] नित्य जीवों के दो भेद हैं: परिजन और परिच्छद। हनुमदादि परिजन कहे जाते हैं और किरीटादि परिच्छद।[4]

कादाचित्क जीव भी दो प्रकार के होते हैं: भागवत और केवल।[5]

भगवत्परायण जीवों को भागवत कहते हैं।[6] भागवत जीव भी दो प्रकार के माने गए हैं: एक तो वे जो भगवत्भोग्य-ऐश्वर्यादि के साक्षात्कार से उत्पन्न सुख के आश्रय हैं तथा नित्य भगवत्परायण होकर उनका ही ध्यान किया करते हैं।[7] दूसरे वे जो भगवत्गुणानुसंधानपरायण होते हुए कैंकर्यपरायण होते हैं।[8]

केवल जीव भी दो प्रकार के होते हैं: दुःखभावनैक परायण, और अनुभूति परायण।[9]

१—[illegible] प्रकीर्तिताः। अन्तर्भाव्यास्तत्रतत्रतथानुक्तामुमुक्षवः॥ वही, पृ० १७८।

२—नित्यकादाचित्क भेदान्मुक्त द्वैविध्यमुच्यते।...वही, पृ० १७९

३—नित्याः कदाचित्तत्रापिसिद्धाः सुपुरुषाःनराः॥ गर्भजन्मादिदुःखं मेऽननुभूय स्थिताः सदा। सीतारामप्रियाः शश्वत्ते हनूमन्मुखा मताः॥ वही, पृ० १७९

४—परिजना परिच्छदाः नित्यमुक्ता अपि द्विधा। मारुत्याद्या किरीटाद्या क्रमात्ते च-प्रकीर्तिताः॥ वही, पृ० १७९।

५—भागवता केवलाश्च कादाचित्का अपि द्विधा।...वही, पृ० १८०।

६—तत्र भागवतावोध्या येतु ते भगवत्पराः।...वही, पृ० १८०।

७—[illegible]।
श्रीराममानसा नित्यं तदनुध्यान तत्पराः॥ वही, पृ० १८०।

८—[illegible]पराः।
इत्थं महर्षिभिः प्रोक्ता द्विविधा भगवत्पराः॥ वही, पृ० १८०।

९—द्विविधाः केवला वोध्या दुःखभावैकतत्पराः।
आत्मानुभूतिपरमा इति प्रोक्ता महर्षिभिः॥ वही, पृ० १८१।

जीव

आनन्दभाष्य का मत—जीव नित्य और अनादि है। वह अपने कर्म का भागी होता है। अतः शुभाशुभ कर्म के अनुसार उसे बन्धप्राप्ति भी होती है।[१] इसीलिये जीवों के बद्ध, मुक्त और नित्य तीन भेद होते हैं।[२] कर्म परवश होने से जीव ही शरीर कृत दुःखादि का अनुभव करता है, ईश्वर नहीं। ईश्वर स्वतन्त्र है, जीवपरतन्त्र। ईश्वर ज्ञानाश्रय है, जीव अज्ञानाश्रय।[३] जीव ईश्वर में गंतृ-गन्तव्य तथा मंतृ-मंतव्य सम्बन्ध है।[४] ईश्वर शेषी है, जीव उसका शेष। मुक्त जीव भी परमात्मा के अधीन है।[५] 'प्राण' और 'ज्योति' शब्द से ईश्वर का ही बोध होता है, जीव का नहीं। 'आकाश' भी परमात्मा ही है।

जीव-ईश्वर में वास्तविक भेद मानने से ही लौकिक-वैदिक व्यवहार, कर्म, ज्ञान-भक्ति-योग-प्रतिपादक श्रुतियों, अर्थपंचक बोधक समस्त वेदान्त, स्मृतीतिहास-पुराण आदि सभी की सार्थकता उपपन्न होती है। जीवरूप को काल्पनिक स्वीकार करने से यह सब असंगत सिद्ध होंगे।[६] जिस प्रकार पृथ्वी में अश्म, वज्र, वैदूर्य, इन्द्रनील, पद्मराग, आदि अनेक मणियों के रहते हुए भी पृथ्वी का ऐक्य बना ही रहता है, उसी प्रकार 'अयमात्मा ब्रह्म', 'तत्वमसि' आदि श्रुतियों द्वारा ब्रह्म-जीव मे अभिन्नता भी स्थापित की गई है।[७] किन्तु आकाशादि की भाँति जीव की उत्पत्ति नहीं होती, वह अविनाशी है, अनादि है। कुछ लोगों के मत से जीव कादाचित्क चैतन्य गुण वाला है, कपिलादि के मत से चिन्मात्र है, एक अन्यमत से ज्ञातृत्व मात्र ही उसका स्वरूप है। पहले मत के समर्थकों का कथन है कि नित्य चैतन्य में सुषुप्ति-मूर्च्छादि में भी उसकी उपलब्धि अविकल होनी चाहिये, अतः कादाचित्क चैतन्य ही आत्मा का गुण है। किन्तु, आत्मा वास्तव में सर्वगत नहीं है, अणु ही है।[८] जिस प्रकार शरीर के एक भाग में लगा हुआ चन्दन्

१—आनन्दभाष्य १-१-२, पृ०२६।
२—वही, पृ०७२।
३—१-२-२८, पृ०१०२।
४—१-२-१२, पृ०१०६।
५—१-२-२८, पृ० १४२।
६—२-१-२२, पृ० २१९।
७—२-१-२३, पृ० २१९।
८—१-२-२१, पृ० २६४।

समस्त देह में सुख उत्पन्न करता है, उसी प्रकार अणुजीव देहव्यापी सुखादिक का अनुभव करता है।[१]

हृत्स्थ होकर भी अणु जीवात्मा समस्त देह को व्याप्त करके स्थित रहता है। जिस प्रकार दीपक एक देश में स्थित होकर भी समस्त गृह को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार आत्मा ज्ञान से समस्त देहव्यापी होकर उसकी वेदना आदि को जानता है।[२]

'एष हि द्रष्टा श्रोता मंता बोद्धा कर्त्ता विज्ञानात्मा पुरुषः' आदि श्रुतियों से जीवात्मा का कर्तृत्व ही सिद्ध होता है। जीव अपनी बुद्धि से शुभाशुभ कर्म करता है और अन्तर्यामी परमात्मा उनके अनुरूप ही स्वकीया अनुमति प्रदान कर जीवों को कार्य में संयोजित करता है। इससे परमात्मा में वैषम्य-नैर्घृण्यादि दोष नहीं आ जाते।[३]

यह जीव ब्रह्मांश है, जीव और ईश्वर दोनों ही नित्य हैं, दोनों में शरीर-शरीरी, उपास्य-उपासक, नियम्य-नियामक, भृत्य-स्वामी, सृज्य-स्रष्टा, रक्ष्य-रक्षक आदि विभिन्न सम्बन्ध भी हैं। साथ ही ईश्वर को निर्दोष मानने वाली श्रुतियों की सम्यक् समाधान-व्याख्या भी इसी सिद्धान्त को स्वीकार कर लेने से की जा सकती है। श्रुतियों में ईश्वर को जगत्कारण माना गया है—चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म ही जगत्कारण है। ऐसा मान लेने पर विकारादि दोषों का अचिदंश में और सुख-दुःख भोक्तृत्वादि का चिदंश में पर्यवसान होने से ब्रह्म का निर्दोषत्व ही सिद्ध होता है। साथ ही सृष्टि की व्यर्थता भी सिद्ध नहीं होती। जीव की भुक्ति-मुक्ति के अर्थ में ही उसकी सार्थकता है। इस प्रकार जीव ब्रह्म में व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध स्थिर हो जाता है। स्वरूप और स्वभाव से दोनों में भेद भी सिद्ध होता है और साथ ही दोनों की अपृथकता भी सिद्ध होती है। अतः स्पष्ट है कि जीव ब्रह्मांश ही है। प्रकृति जीव और ईश्वर में श्रुतियों ने उपर्युक्त सम्बन्ध स्थापित कर परमात्मा में सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तिमत्त्व, निरवद्यत्व, नित्यत्व ही प्रतिपादित किया है। यह चिदचिद्वस्तु शरीरवाला ब्रह्म सूक्ष्म रूप से प्रलय में कारणावस्था में स्थित रहता है। सृष्टिकाल में विभक्त नाम-रूप वाला होकर स्थूल चिदाचिच्छरीर धारण कर कार्यावस्था में परिणत हो जाता है। उभयावस्थाओं में ब्रह्म समान ही रहता है।

१—२-३-२५, पृ० २६५।
२—२-३-२७, पृ० २६६।
३—श्रा० भा० २-३-४२, पृ० २७३।

सृष्टि के पूर्व एकत्व और विभागानन्तर नानात्व सुना जाता है। यह सूक्ष्म चिदचिद्वस्तु शरीर वाला कारण ब्रह्म तथा स्थूल-चिदचिद्वस्तु शरीर वाला कार्य ब्रह्म सदैव ही ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यतेजवीर्यसत्यकामत्वसत्यसंल्पत्वकारुण्यादि अनन्त-गुणयुक्त एवं अशेष दोषों से मुक्त स्थित रहता है। विकारादि दोष, जैसा पहले कहा जा चुका है, अचिदंश में और सुख दुःख भोक्तृत्वादि दोष उसके चिदंश में पर्यवसित हो जाते हैं।[१]

ब्रह्म के अंश होने से ब्राह्मण-शूद्र में कोई अन्तर नहीं होना चाहिए, किन्तु ब्राह्मण को वेद में अनुज्ञा और शूद्रादि को आज्ञा नहीं दी गई। 'आनन्दभाष्य' का मत है कि जिस प्रकार एक ही अग्नि श्मशान के संसर्ग से परित्याज्य और यज्ञ के संसर्ग से ग्राह्य होती है, उसी प्रकार ब्राह्मण-शूद्र का वेद में अनुज्ञा-परिहार पुण्य-पाप देह सम्बन्ध हेतुक ही है।[२]

परम पुरुष स्वकृपा से कर्म-परवश जीवों की भुक्ति-मुक्ति-सिद्धि के अर्थ तत्तत्पूर्वतनपुण्य-पाप कर्मानुसार नाम-रूपात्मिका देव-मनुष्यादिरूपा सृष्टि का निर्माण कर स्वयं उनका नियन्ता एवं स्वतन्त्र रहता है तथा स्वप्रकाश चित्स्वरूप रह कर जीवों को कर्मानुगुण प्रवर्तित करता हुआ अन्तर्यामी रूप से स्थित रहता है। जीव कर्मपरवश, ईश्वर स्वतन्त्र है।[३]

स्वामी भगवदाचार्य ने त्रिरत्नी में चित्तत्व निरूपण करते हुए जीव को ज्ञानाश्रय, अजड़, अणु, ईश्वर का धार्य, ईश्वर का नियाम्य, ईश्वर का शेष, अचिन्त्य, सुखरूप, निरवयव, निर्विकार, कर्ता और भोक्ता, नित्य, अव्यक्त आदि विशेषणों से युक्त माना है।[४] उन्होंने जीवों के भेद का जो वर्णन किया है, वह बहुत कुछ स्वामी रामानन्द के ग्रन्थ 'श्री वैष्णव-मताब्ज-भास्कर' से मिलता-जुलता है। फिर भी यत्र-तत्र कुछ विस्तार-संकोच मिल जाता है। यहाँ संक्षेप में मैं उसका परिचय मात्र दे रहा हूँ।[५]

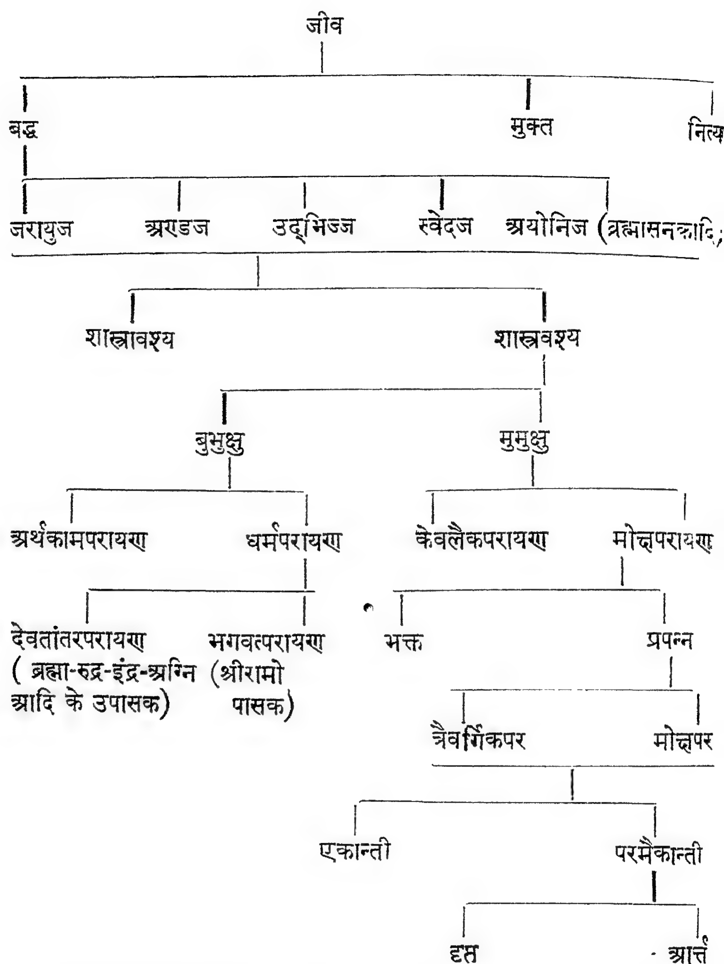
१—२-३-४३ पृ० २७५-७८।

२—२-३-४६, पृ० २८०।

३—३-२-१४, पृ० ३१७।

४—त्रिरत्नी, भगवदाचार्य, पृ० ३-१४।

५—वही, पृ० १४-२०।



स्वामी भगवदाचार्य के मत से जिस प्रकार आत्मा का स्वरूप नित्य, द्रव्य, अजड़ और आनन्दमय है, उसी प्रकार उसका ज्ञान भी नित्य, अजड़ और आनन्दरूप है।

प्रकृति

रामानन्द जी का मत—तत्वविद् विकार रहित, सकल विश्व का कारण, एक होकर भी अनेक प्रकार से शोभित, शुक्लादि भेद से अनेक वर्णों

वाली, सत्व, रज, तम आदि गुणों का आश्रय, अव्यक्त प्रधान आदि शब्दों से अभिहित, स्वतन्त्र व्यापार हीन, परार्था अर्थात् ईश्वराधीन रहने वाली तथा महत्तत्व और अहंकार आदि को उत्पन्न करने वाली सत्ता को ही प्रकृति कहते हैं ।[१] इस प्रकार प्रकृति की चतुर्दश विशेषताओं का उल्लेख करते हुए रामानन्द जी ने संक्षेप में ही अपने प्रिय शिष्य सुरसुरानन्द के 'तत्वं किं ?' प्रश्न का उत्तर दे दिया है। उन्होंने न तो इन विशेषताओं का विस्तार से कोई विवेचन ही प्रस्तुत किया है और न प्रकृति संबंधी अपनी धारणाओं को अन्यत्र ही कहीं व्यक्त किया है। फिर भी प्रकृति की उपर्युक्त परिभाषा से इतना तो स्पष्ट ही है कि उनकी धारणा इस संम्बन्ध में लगभग वही है जो सांख्य में वर्णित है।

सांख्य में प्रकृति को जगत् का आदि कारण कहा गया है, क्योंकि पुरुष या आत्मन् जगत् का कारण नहीं हो सकता, वह न तो किसी पदार्थ का कारण है और न किसी कारण का कार्य। अणु भी जगत् के कारण नहीं हो सकते क्योंकि मनस्, बुद्धि और जीव तत्व जैसे सूक्ष्म पदार्थ स्थूल अणुओं से उत्पन्न नहीं हो सकते। सांख्य की प्रकृति अचेतन, अज्ञ, अज, एवं सूक्ष्म होने के कारण सर्वव्याप्त एवं कारण रहित है। अतः संसार की रचना उसी से संभव है। यह प्रकृति सत्, रजस्, तमस् आदि तीन गुणों से युक्त है, और इन गुणों के ही कारण प्रकृति इस जगत् की सृष्टि करती है। अव्यक्त और प्रधान इसी प्रकृति के ही नाम हैं। पुरुष के सान्निध्य में आने पर ही प्रकृति महत्, अहंकार, मनस्, पंचज्ञानेन्द्रियां, पंच कर्मेन्द्रियाँ, पंच तन्मात्राएं तथा पंच महाभूत आदि के क्रम से इस जगत् की सृष्टि करती है।[२]

यह प्रकृति ही माया के नाम से अभिहित की जाती है। माया से ही इस जगत् की सृष्टि होती है। यह माया त्रिगुणात्मिका है। यह अचेतन, अज्ञा, नित्या, अजा, अविकृत, विश्वयोनि, शुभा, एका, नानावर्णात्मका, त्रिगुणसुनिलया, अव्यक्त शब्दाभिधेया, निर्व्यापारा, परार्था, महदहमितिसू आदि चतुर्दश विशेषणों से युक्त है। रामानन्द जी ने इन विशेषणों का संकेतमात्र दिया है,

---

१—पृष्टानामेकमाद्यं त्रिकमपि श्रृणु तद्‌भेदतोनामभेदैर्नित्याऽज्ञाऽचेतना सा प्रकृतिरविकृतिर्विश्वयोनिःशुभैका।
नानावर्णात्मकाऽजा त्रिगुणसुनिलयाऽव्यक्त शब्दाभिधेया, निर्व्यापारा परार्था
महदहमितिसूरुच्यते तत्त्वविद्भिः ॥ श्री वै०म०भा०,—रा०ट०दास, पृ० २

२—An Introduction to Indian Philosophy—S. Chatterjee and Dhirendra Mohan Datta, पृ० २६६-३१५।

विवेचन नहीं। उन्होंने कहीं भी प्रकृति को माया के नाम से अभिहित नहीं किया है। फिर भी सांख्य में जहाँ प्रकृति और पुरुष को दो स्वतन्त्र सत्ता मान कर उन्हें एक दूसरे से भी स्वतन्त्र कहा गया है, वहाँ रामानन्द जी ने इसे परार्था कह कर ईश्वर तत्व के अधीन ही स्वीकार किया है। इस प्रकार वे दूसरे शब्दों में रामानुज के ही सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं।

आनन्दभाष्य का मत—आनन्दभाष्य के मत से यह प्रपंच सत्य है।[१] मायावाद में इस ग्रन्थ का रंचमात्र भी विश्वास नहीं है। 'जिज्ञासाधिकरण' तथा 'शास्त्रयोनित्वात्' आदि सूत्रों की व्याख्या करते समय अद्वैत मत का बड़े विस्तार से इस ग्रन्थ में खंडन किया गया है। इस ग्रन्थ के अनुसार आगम से अज्ञान को भाव रूप नहीं सिद्ध किया जा सकता।[२] अध्यास-वाद के स्वीकार कर लेने पर वेदशास्त्रों का भी ब्रह्म में अध्यास स्वीकार करना पड़ेगा, अतः अद्वैत वाद की भी सिद्धि नहीं हो सकेगी, क्योंकि वेदान्त वाक्यों के मिथ्या हो जाने पर 'तत्वमसि' आदि श्रुतियों से साधित ब्रह्म का अद्वैत भी मिथ्या हो जाता है, साथ ही ब्रह्म की सत्ता भी मिथ्या हो जाती है। अतः यह 'अध्यास' अनादरणीय ही है।[3]

तत्तज्जीवानुगुण कर्म के अनुसार सत्य संकल्प भगवान् भोग्य-भोग-स्थान भोगोपकरण शरीरेन्द्रिय समूह की रचना करता है।[४] इस जगत् के कारण सगुण-निर्गुण पद से प्रसिद्ध श्रीराम ही हैं। 'तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय' आदि श्रुतियां स्पष्टतया ब्रह्म को ही जगत्कारण सिद्ध करती हैं, प्रकृति को नहीं। क्योंकि चेतन होने से ब्रह्म में ईक्षण सम्भव है, प्रकृति के अचेतन होने से उसमें यह सम्भव नहीं। प्रकृति ब्रह्म के अधीन होकर ही [illegible] हो सकती है। 'सदेवसोम्येदमग्रआसीत', 'अस्मान्मायीसृजते विश्वमेतत्' आदि श्रुतियों में सत्पद-वाच्य ब्रह्म प्रधान के द्वारा ही लोक की रचना करता है। इस प्रकार विकारादि दोषों का पर्यवसान प्रधान में ही हो जाता है, और ब्रह्म की निर्विकारता स्वतः सिद्ध हो जाती है।[५]

समस्त वेदान्त में ब्रह्म को ही जगत्कारण कहा गया है, प्रधानादि को नहीं।

१—आनन्दभाष्य, १-१-१, पृ० ११।
२—१-१-१, पृ० १२।
३—१-१-२, पृ० २२।
४—१-१-२, पृ० २७।
५—१-१-५, पृ० ५६-५७

वेदान्त में परमपुरुषाधिष्ठिता प्रकृति की दो अवस्थाएँ कही गई हैं—कार्यावस्था तथा कारणावस्था। अपनी अविभक्त नाम-रूपा कारणावस्था से मायी परमेश्वर विश्व का उत्पादन करता है। श्रुतियों में श्री रामाख्यब्रह्म को ही जगत्कारण कहा गया है।[१] अतः आनन्दभाष्य का यह स्पष्ट मत है कि सृष्टि के पूर्व सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म कारणावस्था में रहता है, सृष्टिकाल में वही स्थूल चिदचिद्विशिष्ट होकर उपादानत्व को प्राप्त करता है।[२] प्रलयावस्था में भी यह ब्रह्म सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्टावस्था में रहता है। ब्रह्म जगत् का उपादान और निमित्त दोनों ही कारण है। परिणाम विशेषणांश में उत्पन्न होता है, विशेष्य निर्विकार ही रहता है।[३]

'आनन्दभाष्य' यह पुनः पुनः उद्घोषित करता है कि सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, अनवधिकातिशयानन्तकल्याणगुणगणविशिष्ट श्री रामाख्य ब्रह्म ही जगत् के उत्पादक एवं रक्षक हैं।[४] जिस प्रकार घटादि नाम विकार केवल वाचारम्भण हैं, मिट्टी ही सत्य है, उसी प्रकार जगदाकारविकार केवल वागालम्बन मात्र है। वस्तुतः चिदचिच्छरीर वाला ब्रह्म ही सत्य है। अतः वेदान्त में असत्कार्यवाद का प्रसार नहीं, किन्तु सत्कार्यवाद का ही प्रतिपादन है।[५]

जिस प्रकार विभिन्न देव अपने संकल्प मात्र से वस्तुओं की सृष्टि अपने-अपने लोकों में करते हैं, उसी प्रकार परमात्मा भी अपने संकल्प से संसार का उत्पादन करता है।[६] जिस प्रकार लोक में केवल क्रीड़ार्थ ही राजादि कंदुक-क्रीड़ा करते हैं, उसी प्रकार अवाप्तसमस्तकाम ब्रह्म जगत्सृष्टि केवल लीलामात्र के लिए करता है।[७] परमेश्वर जीवकृत पूर्व शुभाशुभ कर्म के अनुसार ही देवमनुष्यादि की विषम सृष्टि करता है, तथा उसका संहार भी करता है। अतः विषमता और संहार का हेतु कर्म ही है, परमेश्वर नहीं। जीव की सत्ता होने पर भी पर्जन्य के बिना जिस प्रकार अंकुर की उत्पत्ति नहीं होती, उसी प्रकार कर्म के रहते हुए भी देव मनुष्याद्याकार वाली सृष्टि परमेश्वर के बिना उत्पन्न नहीं

१—१-४-१४, पृ० १८७-८८।
२—१-४-२३, पृ० १९६।
३—१-४-२७, पृ० १९८।
४—१-४-२९, पृ० १९९।
५—२-१-७, पृ० २०६-७।
६—२-१-२५, पृ० २२४।
७—२-१-३३, पृ० २२४।

हो सकती ।[१] प्रधान जगत् का कारण नहीं हो सकती । क्योंकि गौ आदि द्वारा चरे गए तृण का दूध में परिणाम परमेश्वर की प्रेरणा से ही होता है, प्रकृति द्वारा यह सम्भव नहीं, अन्यथा बली बर्दादि द्वारा चरे तृण से भी दूध निकल सकता था ।[२] फिर प्रकृति पुरुष के सान्निध्य में ही आकर सृष्टि रचना कर सकती है—अतः वह स्वतन्त्र नहीं । फिर निर्विकार निस्संग पुरुष का भोग तथा उसका मोक्ष भी संभव नहीं है । अतः सांख्य का मत असमीचीन है ।[३]

परमाणुवाद भी सृष्टि की रचना का कोई तर्कपूर्ण सिद्धान्त प्रस्तुत नहीं करता । एक तो परमाणुवाद अत्यमूलक है, दूसरे जड़परमाणु चेतनकार्य के उत्पादक नहीं हो सकते ।[४] वैशेषिक दर्शन परमाणुवों को अणु, नित्य, रूपस्पर्शादिमत् स्वीकार करता है, ये दोनों ही गुण परस्पर विरोधी हैं, क्योंकि लोक में जो-जो पदार्थ रूपयुक्त हैं, वे-वे स्थूल एवं अनित्य हैं, रूपादियुक्त पटादि स्थूल भी हैं और अनित्य भी हैं ।[५]

सौगत मत के अनुसार यह संसार समुदाय द्वयात्मक है । वाह्य समुदाय भूत-भौतिक रूपी है और आन्तर चित्त-चैत्तिकरूप । वाह्य समुदायों के परमाणु कारण होते हैं । उन्हीं के पुंजीभूत होने पर वाह्य जगत् उत्पन्न होता है, आन्तर समुदाय के रूप, विज्ञान, वेदना, संज्ञा, संस्कार, आदि स्कंधपंचक कारण हैं । किन्तु यहाँ समुदायद्वय कारणवाद असंगत है, क्योंकि कार्योत्पत्ति के पूर्व इनकी स्थिति क्षणिक स्वीकार कर लेने से कार्य की ही हानि हो जाती है । असत् एवं अभाव से भाव की उत्पत्ति स्वीकार कर लेने पर लौकिक-वैदिक व्यापारों से उदासीन बैठे हुए व्यक्ति को भी ऐहिकामुष्मिक सर्वार्थसिद्धि होगी, अतः वाह्यार्थ को क्षणिक स्वीकार कर लेने से *वैभाषिक एवं सौत्रान्तिक* मत भ्रम मूलक सिद्ध होते हैं । *योगाचार* मत से भी सभी पदार्थ क्षणिक हैं । अतः यह कहना कि प्रथम वासना से ही सभी कुछ उत्पन्न हो जाता है, असंगत है । आलय-विज्ञान भी उनके मत से क्षणिक है, अतः कारणीभूत ज्ञान के क्षणिक मान लेने पर कार्य की उत्पत्ति असम्भव हो जायगी । *माध्यमिक* मतानुसार सब कुछ शून्य ही है, किन्तु सभी प्रकार से सब कुछ शून्य एवं तुच्छ है, यह नहीं सिद्ध किया जा

१—२-१-३४, पृ० २२५ ।
२—२-२-५, पृ० २३० ।
३—२-२-१०, पृ० २३३ ।
४—२-२-११, पृ० २३४ ।
५—२-२-१५, पृ० २३५ ।

सकता। क्योंकि उन्हीं के मतानुसार सभी प्रमाण तुच्छ एवं शून्य सिद्ध होंगे। अतः वस्तु व्यवस्थापना भी तो नहीं हो पायेगी। जगत् की स्थिति भी शून्य नहीं कही जा सकती। अतः यह मत मान्य नहीं[१]।

जैन मतानुसार एक ही पदार्थ अवस्था-देशादि भेद से सत्त्व और असत्व दोनों ही है, किन्तु यह अनेकान्त वाद ठीक नहीं। एक ही वस्तु में नित्यत्वानित्यत्व, सत्वासत्व, वक्तव्यावक्तव्य आदि परस्पर विरोधी धर्मों की सम्भावना उचित नहीं। नित्य पदार्थों का प्रकारद्वय से भी अनेकांत सिद्ध नहीं होता। आत्मा में संकोच-विकासादि धर्मों की सत्ता स्वीकार कर लेने से बन्ध-मोक्ष की समस्या का सुलझाना भी कठिन हो जायगा।[२]

कापालिक एवं पाशुपत, नकुलीश, कालामुख आदि शैवमत में परमेश्वर को जगत् का अधिष्ठाता स्वीकार किया गया है। किन्तु इस मत को मान लेने पर ईश्वर को निमित्त कारण बतलाने वाली श्रुतियों में सामन्जस्य नहीं स्थापित किया जा सकता। यह मत वेद-विरुद्ध है। कुलालादि का उदाहरण देकर परमेश्वर को सृष्टि का अधिष्ठाता भी सिद्ध नहीं किया जा सकता, क्योंकि ईश्वर अशरीरी है, अदृष्ट है, कुलाल शरीरी प्राणी है। शैवागमों में भगादि के ध्यान से संबंधित अनेक वेद-विरुद्ध चर्चाएं की गई हैं। अतः यह धर्म उचित नहीं।[3]

पांचरात्र की 'परमकारणात्परब्रह्मभूताद्वासुदेवात्संकर्षणो नाम जीवो जायते संकर्षणात्प्रद्युम्न संज्ञंमनो जायते तस्मादनिरुद्धं संज्ञोऽहंकारो जायते।' उक्ति का केवल इतना ही तात्पर्य है कि प्रपन्न जनों के रक्षार्थ पर ब्रह्म ही चतुर्व्यूह रूप से अवतार लेता है। जीव अनादि है, अतः यहाँ जीवोत्पत्ति से तात्पर्य नहीं है।[४]

ईश्वर ने आकाश, वायु, तेज, आप, पृथिवी, अन्न आदि की सृष्टि की है।[५] उत्पत्ति में जो क्रम रहता है, प्रलय में ठीक उसका उलटा होता है। लोक में भी प्रवेशानुरूप निष्क्रमण नहीं होता, अपितु विपर्यय से ही होता

१—२-२-१८ से ३१, पृ० २३५-४२।
२—२-२-३३ से ४५, पृष्ठ ४४३-४५।
३—२-२-३७ से ४१, पृ० २४७-४८।
४—२-२-४२ से ४५, पृ० २४९-५२।
५—२-३-१२ से १३, पृ० २५७।

है। 'पृथिव्यप्सु प्रलीयते आपस्तेजसि' इत्यादि श्रुतियाँ इसी मत का समर्थन करती हैं।[१]

भगवदाचार्य[२] के अनुसार अचित्तत्व तीन प्रकार का है—शुद्धसत्व, मिश्रसत्व, सत्वशून्य। शुद्धसत्व रजस्-तमस् से रहित चन्दन, कुसुम, वस्त्र, भूषण आयुधादि पदार्थों को कहते हैं। ये शुद्ध सत्वमय नित्य एवं ज्ञानजनक हैं। मिश्रसत्व रजस् और तमस् के साथ मिल कर रहने वाले सत्व को कहते हैं। यह बद्धजीवों के ज्ञान और आनन्द का तिरोधान करने वाला है। इसे अशुद्ध सत्व भी कहते हैं। इसी को त्रिगुण तथा माया के नाम से भी अभिहित किया गया है। प्रकृति भी इसी को कहा जाता है। विद्याविरोधी होने से यह अविद्या भी कही जाती है। चौबीस तत्वों की सृष्टि इसी से होती है। प्रकृति प्रधान तत्व है। यह प्रधान, अव्यक्त नाम से भी प्रसिद्ध है। इसकी अविभक्ततम, विभक्ततम तथा अक्षर तीन अवस्थाएँ हैं। तम को सूक्ष्मावस्था के निवृत्त हो जाने पर पुरुष और अचित् में विभाग करना जब कठिन हो जाता है तब उसे अक्षर कहते हैं। प्रकृति में गुणवैषम्य आने पर महदादि विकार उत्पन्न होते हैं। प्रकृत्यवस्था में प्रकृति के रजस्, तमस्, सत्वादि गुण अनुद्भूत रहते हैं, विकारदशा में उद्भूत।

विकार उत्पन्न होने पर प्रथम महत्तत्व (सात्विक, तामस, राजस), फिर अहंकार (वैकारिक, तैजस, भूतादि) आदि उत्पन्न होता है। अहंकार से ही एकादश इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं। प्राणों के साथ ही सभी इन्द्रियाँ बाहर निकल जाती हैं। इसी कारण इन्द्रियों को भी अणु माना गया है।

भूतादि-तामस अहंकार से (राजसाहंकार सह कृत भूतादि संज्ञक तामस-अहंकार) पंचतन्मात्राएँ और पंचभूत उत्पन्न होते हैं। कुछ लोगों के मत से सृष्टि की प्रक्रिया सप्तीकरण के ढंग की है। भगवदाचार्य के मत से वेद में त्रिवृत्करण का उल्लेख है। तेज, जल, पृथ्वी इन्हीं तीन से सृष्टि उत्पन्न मानी जाती है।

मोक्ष

रामानन्द जी का मत—भगवान् के अनुग्रह से सांसारिक बन्धनों से छूट कर साकेतलोक को प्राप्त करके सायुज्य को प्राप्त हो जाना ही रामानन्द

१—२-३-१६, पृ० २५८।
२—त्रिरत्नी, भगवदाचार्य पृ० २४-३१।

जी के मत से मोक्ष कहलाता है। उन्होंने स्पष्ट ही कहा है—मुमुक्षु और आत्मवान् पुरुष सत्संग के प्रभाव से सांसारिक सभी पदार्थों से निस्पृह होकर, सद्गुरु के आश्रय से भगवान् श्रीराम जी की प्रपत्ति—शरणागति—स्वीकार करके, समस्त प्रारब्ध कर्मों का उपभोग करके, प्रपत्ति से अतिरिक्त अन्य कर्मों का नाश करके, सन्यास के द्वारा सर्वकर्मस्वतन्त्र भगवान् की परम अनुकम्पा से विनष्ट-मात्र होकर (वह दैशिक) भगवान् के हार्द और उत्तम अनुग्रह के द्वारा प्राप्त सुन्दर सुषुम्ना नाड़ी के द्वार से निकल कर वहाँ से अर्चि-मार्ग को प्राप्त होता है। अर्चि-मार्ग से अहर्मार्ग को और अहर्मार्ग से देवपूजित होकर अनेक दिवसों से पूर्यमाण पक्ष को प्राप्त होता है। वहाँ से अनेक उत्तमोत्तम सुखों की स्पृहा से पृथक् होकर पक्ष से ६ मास वाले उत्तरायण को प्राप्त होता है। वहाँ से संवत्सर को, संवत्सर से सूर्य को, सूर्य से चन्द्र को, चन्द्र से विद्युत् को प्राप्त होता है। उन-उन लोकों में देवों से पूजित होकर वह अमानव-मानव-भाव-शरीर से रहित पुरुष उस अर्चिरादि ब्रह्ममार्ग से भगवान् के सनातन सर्वोत्कृष्ट साकेत लोक को प्राप्त करके सायुज्य को प्राप्त होकर भगवान् के साथ वहाँ सर्वथा आनन्द में विहार करता है।[1]

अन्यत्र भी स्वामी जी ने कहा है, 'जितेन्द्रिय होकर, आत्मरति को प्राप्त करके जो विद्वान् उस भगवान् श्रीराम जी की शरणागति का अवलम्बन करते हुए इस मत का अनुष्ठान करेंगे, वे परम-स्थान नित्य-दिव्य साकेत-लोक को प्राप्त होंगे।'[2]

१—सत्संगतः सन् हि गतस्पृहो मुहुः श्रीशं प्रपद्याथ गुरोमुखादसौ।
कर्माखिल संपरिभुज्यचात्मवान् प्रारब्धमेवं प्रहतान्यकर्मकः॥
[illegible] एव दैशिकः।
हार्दोत्तमानुग्रहलब्धमध्यसन्नाड्याशुभद्वारवहिर्विनिर्गतः।
मार्गं ततः सोर्चिरुपैत्यमुक्तकस्तथार्चिषोऽह्नो दिनतःसुरार्चितः।
आपूर्यमाणं विविधैस्तुवासरैः पक्षे प्रभूतोत्तमशर्म विज्वरः॥
पश्चादुदङ् मासमथोषडात्मकंतस्माच्चसंवत्सरमब्दतोऽरविम्।
चन्द्रं ततश्चन्द्रमसोऽथविद्युतं स तत्रतत्राखिल देव पूजितः॥
परं पदं सैवमुपेत्य नित्यममानवो ब्रह्मपथेनतेन।
सायुज्यमेव प्रतिलभ्यतत्र प्राप्यस्य सन्नंदति तेन साकम्॥ श्री वै० म० भा०, भगवदाचार्य, पृ० २०७-६।

२—जितेन्द्रियःप्रपन्नस्तं बुध आत्मरतिर्हरिम्। आप्नुयात्परमं स्थानंयोऽनुतिष्ठेदिदंमतम्॥ वही, पृ० २१०।

आत्माराम तथा उपाय के स्वरूप को जानने वाले सम्प्रदाय-रहस्याभिज्ञ विद्वान् विरजा के पार कैवल्य है, ऐसा मानते हैं।[१] और भगवान् को प्राप्त होकर संसार के ताप को हरण करने वाले अत्यन्त शीतल, अमृतसिन्धु में स्नान करके वह धन्य पुरुष भगवन् के कृपाकटाक्ष से कटाक्षित होकर आनन्द महासिन्धु में सम्मिलित एवं निमग्न होकर पुनः कभी भी वहाँ से नहीं लौटता है।[२]

रामानन्द-सम्प्रदाय में भक्त को सायुज्यमुक्ति ही मिलती है, ऐसा विश्वास किया जाता है। 'श्रीरामार्चनपद्धति' में स्वामी रामानन्द जी ने कहा भी है कि श्री बैकुण्ठ में जाकर परब्रह्म से सायुज्य प्राप्त कर भक्त उनके ही साथ नित्य क्रीड़ा करता है।[३]

साकेत

रामानन्द जी का मत—भगवान् राम का दिव्यलोक साकेत के नाम से प्रख्यात है। सुषुम्ना, अर्चिमार्ग, अहर्मार्ग, उत्तरायण, संवत्सर, सूर्य, चन्द्र और विद्युत् आदि मार्गों से होता हुआ जीव यहीं पहुँच कर विश्राम पाता है। यहीं उसे सायुज्य मुक्ति मिलती है।

यह साकेत लोक अनेक सुरतरुओं से परिवृत्त एवं रत्नादि से सुसज्जित है। यहाँ करोड़ों सूर्य के प्रकाश से युक्त हेम का सिंहासन है, जिस पर अपने दिव्य परिकरों के साथ भगवान् श्रीराम सुशोभित होते हैं।[४]

उस परम लोक को प्राप्त कर भक्त फिर इस संसार में नहीं लौटता—नहीं ही लौट कर आता है।[५]

१—आत्मारामैस्तथोपाय स्वरूपज्ञानिभिश्चतैः। मतश्च विरजापारं कैवल्यमिति मन्यते॥
श्री वै० म० भा०, रामटहलदास, पृ० १८।

२—शीतान्तासिन्ध्वाप्लुत एव धन्यो गतापरब्रह्मसुवीक्षितोऽथ। प्राप्यं महानन्दमहाब्धि-मग्नो नावर्ततेजातु ततः पुनः सः॥ श्री वै० म० भा०, भगवदाचार्य, पृ० २०१।

३—श्री बैकुण्ठमुपेत्यनित्यमजडं तस्मिन्परब्रह्मणः।
सायुज्यसमवाप्य नन्दति समं तेनैव धन्यः पुमान्॥ 'श्रीरामार्चन पद्धति,' रामनारायण दास, पृ० ४।

४—साकेतं दिव्य लोकंसुरतरुमतुलं तत्ररत्नालिगर्भम्। हैमंसिंहासनं तच्छुभरुचिनिचयं-भानुकोटिप्रकाशम्॥ वामं पादं प्रसार्याश्रित कलुषहरं दक्षिणंकुंचयित्वा।
जानुन्याधार्यादिव्ये रिपुदलदमने बाणचापेदधत्सः॥ रामः पाणिद्वयेन प्रतिभटभयदः पद्म गर्भारुणाक्षो। देवीभूषादिजुष्टो वितरतुजगतो शर्म साकेतनाथः॥
श्री वै० म० भा०, रा० ट० दास, पृ० ४१।

५—श्री वै० म० भा०, भगवदाचार्य, पृ० २०१।

कहा गया है इस साकेत लोक के चतुर्दिक् विरजा नदी बहती रहती है, यह अत्यन्त निर्मल जल की नदी है।

अष्टयामीय पूजा पद्धति के प्रवर्त्तक अग्रदासादि ने दिव्य साकेत लोक की जो कल्पना की है उसमें कनकभवन, सरयू, दिव्यकुंज, क्रीड़ास्थल, उपवन, रत्नपीठ, हाट आदि अनेक वस्तुओं का समावेश किया गया है। अष्टयामीय पूजा-पद्धति में मानसी ध्यान का वर्णन करते हुए इस विषय पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। आधुनिक युग में अयोध्या जी में कनकभवन, प्रमोदवन आदि स्थल एवं मंदिर-विशेष के नामों से यह अनुमान किया जा सकता है कि शृंगारी रामभक्ति के अनुयायी कदाचित् अयोध्या जी को शाश्वत साकेत लोक का अवतरित रूप ही मानते हैं, जिस प्रकार कृष्णभक्ति-शाखा के कवि व्रज को व्रजलोक का अवतरित रूप मानते हैं। इस सम्बन्ध में कोई लिखित साहित्य उपलब्ध नहीं होता, फिर भी जिस ढंग से नये-नये स्थानों, मंदिरों, उपवनों का भावनानुरूप निर्माण होता जा रहा है, उससे यह अनुमान करना असंगत नहीं कि साकेतलोक के अनुरूप ही श्री अयोध्या जी को सजाना रसिक-सम्प्रदाय के भक्तों का उद्देश्य है।

मोक्ष तथा साकेत धाम

आनन्दभाष्य का मत—आनन्दभाष्य में मोक्ष को परमपुरुषानुभव रूप ही माना गया है।[१] 'ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति' से मोक्षावस्था का ही प्रतिपादन किया जाता है। परम ज्योति परमात्मा को प्राप्त करके स्वआनन्द रूप से स्थित रहने को ही कुछ विद्वानों ने मोक्ष माना है, दूसरी श्रुति का यह अर्थ है कि विज्ञान-घनजीव पाँचभौतिक शरीर का परित्याग करके परमात्मा में नष्ट—लीन—हो जाता है—देवादि नाम-रूप का परित्याग कर देता है। किन्तु 'निरन्जनः साम्यमुपैति' में भेद घटित साम्य—न केवल साम्य अपितु परमसाम्य—ही मोक्षावस्था कहा गया है। नदी-समुद्र दृष्टान्त में भी भेदभाव मात्र विवक्षित है। अतः यह कहना कि श्रुति अभेद के पक्ष में ही मत रखती है, सिद्ध नहीं होता।[२] भगवान् के अनन्य भक्त को तो देहावसान के उपरान्त भगवान् की ही प्राप्ति होती है, ऐसा स्पष्ट ही गीतादि में कहा गया है।[३]

१—आ० भा०, १-१-१, पृ० ४।

२—१-१-१, पृ० १८।

३—१-१-२, पृ० २६।

सर्वकामविनिर्मुक्तजीव शताधिक सुषुम्ना नाड़ी मार्ग से शरीर से निकल कर ब्रह्म लोक को गमन करता है, अतः यह सिद्ध है कि ब्रह्मविदों की सद्यः मुक्ति नहीं होती, अपितु देवयानादि क्रम से ही होती है। कुछ लोगों के मतानुसार 'अथमर्त्योऽमृतोभवत्यत्र ब्रह्मसमश्नुते' से यह तात्पर्य है कि जिस प्रकार घट के भिन्न हो जाने पर उससे अवच्छिन्न आकाश महाकाश से मिलकर एकाकार हो जाता है, उसी प्रकार अज्ञान एवं तज्जन्यकर्मबन्ध के समाप्त होने पर विमुक्त-आत्मा जिस किसी देश में भोग समाप्ति करता है, उसी देश में ब्रह्मैक्य को प्राप्त करता है, अर्चिरादि से उसकी गति नहीं होती, अतः सद्यः मुक्ति ही सिद्ध होती है।[१] किन्तु उपनिषदों में प्राणविशिष्ट जीवात्मा की देवयान से ही गति कही गई है। जीवब्रह्म में भेद श्रुति स्पष्ट ही मानती है। अतः यह स्पष्ट है कि उपासनादि द्वारा ब्रह्म-प्रसाद-प्राप्त जीव कर्मबन्ध से विनिर्मुक्त होकर ब्रह्मलोक को जाता है और वहाँ अपने स्वाभाविक अनन्तज्ञानशक्त्यादिगुणविशिष्टसच्चिदानन्द रूप से ब्रह्म के समीप रहता है।[२] 'जक्षन् क्रीड़न्' आदि श्रुतियों से स्पष्ट है कि जीव भगवान् के ही समान भोगवान् हो जाता है। इस प्रकार श्रुति परमात्मा को शेषी और जीव को उसका शेष स्वीकार करती है।[३]

इस कर्मभूमि में जो लोग रमणीय पुण्य कर्म करते हैं, वे चन्द्रमण्डल से अवरोहण करते हुए ब्राह्मणादि-योनि को प्राप्त करते हैं, जो कुत्सित पाप कर्म करते हैं वे शूकरादि कुत्सित योनि को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार श्रुति मे यह स्पष्ट ही प्रतिपादित किया गया है कि प्राक्तन कर्म-योग से पुण्य-पापरूप जन्मों की प्राप्ति जीव को होती है।[४] इस सम्बन्ध में सप्तनरकों की भी चर्चा की गई है। चित्रगुप्तादि यम के व्यवस्थापकों का भी प्रसंगवश श्रुतियों में वर्णन पाया जाता है। अतः यह सिद्ध हो जाता है कि दुष्कृत शाली चन्द्रलोक गमन नहीं करते।[५]

'आनन्दभाष्य' में सुषुप्त्यादि अवस्थाओं पर भी प्रकाश डाला गया है। इस ग्रन्थ के अनुसार परमात्मा ही जीव का साक्षात् सुषुप्ति-स्थान है। अतः इस परमात्मा से ही जीव का आगमन होता है। जो सोता है, वही उठता भी है।

१—१-१-२, पृ० ३२-३३।

२—१-३-१८, पृ० १४१।

३—१-३-१८, पृ० १४२।

४—३-१-८, पृ० २९९।

५—२-१-१३ से २१, पृ० ३०२-५।

मूर्च्छित में ज्ञान का अभाव होता है, अतः मूर्च्छा जागरित-स्वप्नावस्था से भिन्न है। मूर्च्छा मरण भी नहीं है। मरण के उपरान्त अर्चिरादि मार्ग द्वारा ज्ञानी जीव ब्रह्म को प्राप्त करता है। उसे सुख-दुःख का भी अनुभव नहीं होता। लोक व्यवस्था के हेतु वसिष्ठादि जिन व्यक्तियों को ब्रह्मा नियुक्त करते हैं, उन्हें सुख-दुःख का भी अनुभव होता है। प्रारब्ध कर्म-वश अधिकार के सम्पन्न हो जाने पर वे भी ज्ञानोदयोपरान्त अर्चिरादि मार्ग से ब्रह्म को प्राप्त करते हैं।[१]

विद्या से ब्रह्म-प्राप्ति होती है, अतः विद्योत्पत्ति के लिए दिनोंदिन अग्नि-होत्रादि कर्मानुष्ठान करना चाहिए, अन्यथा कल्मषमानस से विद्योत्पत्ति सम्भव नहीं।[२] यदि भोक्तव्य पुण्य-पाप एक शरीर भोग्यफलक मात्र हो, तो शरीरान्त में ही ब्रह्म-प्राप्ति हो जाती है, किन्तु यदि बहुशरीर भोगफलक हो तो बहुशरीरान्त में ही ब्रह्म-प्राप्ति होती है।[३]

प्रथम वाणी का मन से संयोग होता है, लय नहीं,[४] क्योंकि मन आहंकारिक है, प्राण आकाश का कार्य है और प्राण शब्द की जल में लक्षणा करने में गौरव है।[५] प्राण जीव से संयुक्त होकर उसके साथ तेज में सम्पन्न हो जाता है।[६] जीव के सहित प्राण तेज के सहित सर्वभूतों में संयुक्त होता है।[७] नाड़ी-प्रवेश के पूर्व अब्रह्मज्ञानी की भाँति ब्रह्मज्ञानी का भी उत्क्रमण होता है। अन्तर इतना ही है कि ब्रह्मज्ञानी सुषुम्ना नाड़ी से होकर मस्तक में से निकलता है और अब्रह्मज्ञानी नेत्रादि मार्ग से।[८] जब तक देश विशेष में जाकर भगवत्प्राप्ति नहीं होती है, तब तक देह-सम्बन्ध-रूप संसार बना ही रहता है—शरीर के छूटने के पूर्व ब्रह्मानुभव का नाम अमृतत्व है।[९] ब्रह्मविद् का भी क्रम मुक्ति में सूक्ष्म शरीर के साथ सम्बन्ध रहता है। अर्चिरादि से गमन करते समय आत्मा

१—३-३-३१, पृ० ३४४।
२—४-१-१६, पृ० ३९७।
३—४-१-१९, पृ० ३९८।
४—४-२-१, पृ० ३९९।
५—४-२-३, पृ० ४००।
६—४-२-४, पृ० ४०१।
७—४-२-५, पृ० ४०२।
८—४-२-७, पृ० ४०३-४।
९—४-२-८, पृ० ४०४।

सर्वकामविनिर्मुक्तजीव शताधिक सुषुम्ना नाड़ी मार्ग से शरीर से निकल कर ब्रह्म लोक को गमन करता है, अतः यह सिद्ध है कि ब्रह्मविदों की सद्यः मुक्ति नहीं होती, अपितु देवयानादि क्रम से ही होती है। कुछ लोगों के मतानुसार 'अथमर्त्योऽमृतोभवत्यत्र ब्रह्मसमश्नुते' से यह तात्पर्य है कि जिस प्रकार घट के भिन्न हो जाने पर उससे अवच्छिन्न आकाश महाकाश से मिलकर एकाकार हो जाता है, उसी प्रकार अज्ञान एवं तज्जन्यकर्मबन्ध के समाप्त होने पर विमुक्त-आत्मा जिस किसी देश में भोग समाप्ति करता है, उसी देश में ब्रह्मैक्य को प्राप्त करता है, अर्चिरादि से उसकी गति नहीं होती, अतः सद्यः मुक्ति ही सिद्ध होती है।[1] किन्तु उपनिषदों में प्राणविशिष्ट जीवात्मा की देवयान से ही गति कही गई है। जीवब्रह्म में भेद श्रुति स्पष्ट ही मानती है। अतः यह स्पष्ट है कि उपासनादि द्वारा ब्रह्म-प्रसाद-प्राप्त जीव कर्मबन्ध से विनिर्मुक्त होकर ब्रह्मलोक को जाता है और वहाँ अपने स्वाभाविक [illegible] रूप से ब्रह्म के समीप रहता है।[2] 'जक्षन् क्रीड़न्' आदि श्रुतियों से स्पष्ट है कि जीव भगवान् के ही समान भोगवान् हो जाता है। इस प्रकार श्रुति परमात्मा को शेषी और जीव को उसका शेष स्वीकार करती है।[3]

इस कर्मभूमि में जो लोग रमणीय पुण्य कर्म करते हैं, वे चन्द्रमण्डल से अवरोहण करते हुए ब्राह्मणादि-योनि को प्राप्त करते हैं, जो कुत्सित पाप कर्म करते हैं वे शूकरादि कुत्सित योनि को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार श्रुति मे यह स्पष्ट ही प्रतिपादित किया गया है कि प्राक्तन कर्म-योग से पुण्य-पापरूप जन्मों की प्राप्ति जीव को होती है।[4] इस सम्बन्ध में सप्तनरकों की भी चर्चा की गई है। चित्रगुप्तादि यम के व्यवस्थापकों का भी प्रसंगवश श्रुतियों में वर्णन पाया जाता है। अतः यह सिद्ध हो जाता है कि दुष्कृत शाली चन्द्रलोक गमन नहीं करते।[5]

'आनन्दभाष्य' में सुषुप्त्यादि अवस्थाओं पर भी प्रकाश डाला गया है। इस ग्रन्थ के अनुसार परमात्मा ही जीव का साक्षात् सुषुप्ति-स्थान है। अतः इस परमात्मा से ही जीव का आगमन होता है। जो सोता है, वही उठता भी है।

१—१-१-२, पृ० ३२-३३।

२—१-३-१८, पृ० १४१।

३—१-३-१८, पृ० १४२।

४—३-१-८, पृ० २९९।

५—३-१-१३ से २१, पृ० ३०२-५।

मूर्च्छित में ज्ञान का अभाव होता है, अतः मूर्च्छा जागरित-स्वप्नावस्था से भिन्न है। मूर्च्छा मरण भी नहीं है। मरण के उपरान्त अर्चिरादि मार्ग द्वारा ज्ञानी जीव ब्रह्म को प्राप्त करता है। उसे सुख-दुःख का भी अनुभव नहीं होता। लोक व्यवस्था के हेतु वसिष्ठादि जिन व्यक्तियों को ब्रह्मा नियुक्त करते हैं, उन्हें सुख-दुःख का भी अनुभव होता है। प्रारब्ध कर्म-वश अधिकार के सम्पन्न हो जाने पर वे भी ज्ञानोदयोपरान्त अर्चिरादि मार्ग से ब्रह्म को प्राप्त करते हैं।[1]

विद्या से ब्रह्म-प्राप्ति होती है, अतः विद्योत्पत्ति के लिए दिनोंदिन अग्निहोत्रादि कर्मानुष्ठान करना चाहिए, अन्यथा कल्मषमानस से विद्योत्पत्ति सम्भव नहीं।[2] यदि भोक्तव्य पुण्य-पाप एक शरीर भोग्यफलक मात्र हो, तो शरीरान्त में ही ब्रह्म-प्राप्ति हो जाती है, किन्तु यदि बहुशरीर भोगफलक हो तो बहुशरीरान्त में ही ब्रह्म-प्राप्ति होती है।[3]

प्रथम वाणी का मन से संयोग होता है, लय नहीं,[4] क्योंकि मन आहंकारिक है, प्राण आकाश का कार्य है और प्राण शब्द की जल में लक्षणा करने में गौरव है।[5] प्राण जीव से संयुक्त होकर उसके साथ तेज में सम्पन्न हो जाता है।[6] जीव के सहित प्राण तेज के सहित सर्वभूतों में संयुक्त होता है।[7] नाड़ी-प्रवेश के पूर्व अब्रह्मज्ञानी की भाँति ब्रह्मज्ञानी का भी उत्क्रमण होता है। अन्तर इतना ही है कि ब्रह्मज्ञानी सुषुम्ना नाड़ी से होकर मस्तक में से निकलता है और अब्रह्मज्ञानी नेत्रादि मार्ग से।[8] जब तक देश विशेष में जाकर भगवत्प्राप्ति नहीं होती है, तब तक देह-सम्बन्ध-रूप संसार बना ही रहता है—शरीर के छूटने के पूर्व ब्रह्मानुभव का नाम अमृतत्व है।[9] ब्रह्मविद् का भी क्रम मुक्ति में सूक्ष्म शरीर के साथ सम्बन्ध रहता है। अर्चिरादि से गमन करते समय आत्मा

१—३-२-२१, पृ० ३४४।
२—४-१-१६, पृ० ३९७।
३—४-१-१९, पृ० ३९८।
४—४-२-१, पृ० ३९९।
५—४-२-३, पृ० ४००।
६—४-२-४, पृ० ४०१।
७—४-२-५, पृ० ४०२।
८—४-२-७, पृ० ४०३-४।
९—४-२-८, पृ० ४०४।

चन्द्रमा के साथ वार्तालाप करता है।[१] ब्रह्मविद् की उत्क्रान्ति सूक्ष्म शरीर से कही गई है। मृत्यु के समय शरीर के किसी भाग में जो ऊष्णता रहती है, वह सूक्ष्म देह का ही धर्म है।[२] विद्वान् को शरीर-त्याग के समय में भी ब्रह्म-प्राप्ति हो जाती है। 'तस्यतावदेवचिरं यावन्नविमोक्ष्ये' इस श्रुति से यह स्पष्ट है। इसके पश्चात् प्राण-वियोग भी सम्भव है। प्राणरहित का अर्चिरादि मार्ग से गमन और ब्रह्म-प्राप्ति दोनों नहीं हो सकते। अतः ब्रह्मप्राप्ति के पूर्व ब्रह्मज्ञानी के प्राण नहीं निकल सकते हैं।[३]

ब्रह्मज्ञानी का उत्क्रमण मूर्धन्य नाड़ी से होता है, उसका सूर्य-रश्मि के द्वारा गमन होता है और प्रकारान्तर (रात्रि में भी) से भी।[४] दक्षिणायन में भी मरने वाले ब्रह्मज्ञानी को ब्रह्म-प्राप्ति हो जाती है। क्रम यों है—नाड़ी रश्मि प्रवेशोपरान्त जीव अर्चि, अहः, आपूर्यमाणपक्ष, मास, संवत्सर, वायु, आदित्य, चन्द्रमा, वैद्युत, वरुण, ऐन्द्रलोक, धातृलोक, विरजा आदि को पार कर श्री साकेत लोक-द्वार पर पहुँचता है।[५] यह अर्चिरादि परमात्मा द्वारा नियुक्त देवताविशेष हैं और ब्रह्मविदों के अतिवहन कर्त्ता हैं।[६]

वादरि आचार्य का मत है कि हिरण्यगर्भ के उपासकों को अर्चिरादि हिरण्यगर्भ तक ले जाते हैं, क्योंकि हिरण्यगर्भ परिच्छिन्न है, देश विशेष में रहता है। उसी की प्राप्ति के लिये गमन उपयुक्त है, सर्वव्यापक परब्रह्म के लिये गमन नहीं होता।[७] हिरण्यगर्भ ब्रह्मलोक का अधिकारी है। इस लोक में गया हुआ जीव वहाँ ही विद्या प्राप्त करता है। जब महाप्रलय में ब्रह्मलोक का नाश हो जाता है तब उसी अधिकारी हिरण्यगर्भ के साथ विद्वान् जीव भी हिरण्य गर्भ लोक से ब्रह्म को प्राप्त करता है।[८] *बादरायण* के मत से अर्चिरादि प्रतीकोपासना न करने वालों को ब्रह्मप्राप्ति कराते हैं। जो जिसका उपासक है, उसको ही वह पाता है।[९]

१—४-२-६, पृ० ४०४।
२—४-२-११, पृ० ४०४।
३—४-२-१२, पृ० ४०५।
४—४-२-१७, पृ० ४०६।
५—४-३-३, पृ० ४१४।
६—४-३-४, पृ० ४१५।
७—४-३-६, पृ० ४१६।
८—४-३-६, पृ० ४१७।
९—४-३-१४, पृ० ४१८।

मुक्त जीवों के ऐश्वर्य—यह प्रत्यगात्मा इस शरीर से निकल कर परज्योति को प्राप्त कर अविद्या के आवरण से रहित स्वाभाविक स्वरूप के आविर्भाव रूप विद्याफल को प्राप्त करता है, कोई अपूर्व आकार की उत्पत्तिरूपफल नहीं पाता।[१] परज्योति को प्राप्त कर स्वरूप से निष्पन्न होने का तात्पर्य कर्म संबंध के सततराहित्य रूप मुक्ति से है। यही जीवात्मा का स्वाभाविक स्वरूपाविर्भाव है।[२] यह आत्मा स्वरूप से अपहतपाप्मत्वादि गुणवाला है, कर्मसंज्ञावाली अविद्या से उसका स्वरूप तिरोहित हो जाता है, वह संसारी कहा जाता है। ब्रह्मविद्या के प्रभाव से इस शरीर के ऊपर उठ कर अर्चिरादि मार्ग द्वारा परज्योति को प्राप्त कर अविद्या के तिरोधान से स्वरूप को प्राप्त कर वह मुक्त हो जाता है।[३] मुक्तात्मा अपने को ब्रह्म से अविभक्त रूप में अनुभव करता है, क्योंकि परज्योति को उपसंपन्न होकर उसका अविद्यारूप आवरण नष्ट हो जाता है और तब याथातथ्य रूप से वह अपने स्वरूप को जान लेता है।[४] *जैमिनि आचार्य* के मत से प्रत्यगात्मा का स्वरूप और गुण से अपहतपाप्मत्वादिक ही स्वरूप सिद्ध होता है, विज्ञानमात्र रूपता अथवा उभयरूपता सिद्ध नहीं होती।[५]

औडुलोमि के मत से आत्मा चैतन्यमात्र रूप से आविर्भूत होता है।[६] *बादरायण* के मत से आत्मा को विज्ञानमात्र स्वरूप मान लेने पर भी उसमें अपहतपाप्मत्वादि प्रकरणगत गुणों का अविरोध ही रहता है।[७] *बादरि आचार्य* के मत से मुक्त जीव को शरीरेन्द्रियों का अभाव रहता है।[८] *जैमिनि* शरीरेन्द्रियों का भाव स्वीकार करते हैं।[९] *भगवान् बादरायण* दोनों ही मतों—शरीरेन्द्रियों के सहित तथा उनसे रहित स्वरूप—को स्वीकार करते हैं।[१०] मुक्त जीव स्वप्नभोग से विलक्षण *लीलारस* का अनुभव करता है।

१—४-४-१, पृ० ४१६।
२—४-४-२, पृ० ४२१।
३—४-४-३, पृ० ४२१।
४—४-४-४, पृ० ४२२।
५—४-४-५, पृ० ४२३।
६—४-४-६, पृ० ४२३।
७—४-४-७, पृ० ४२३।
८—४-४-१०, पृ० ४२५।
९—४-४-११, पृ० ४२५।
१०—४-४-१२, पृ० ४२६।

परमात्मा की उपासना से मुक्त पुरुष कर्मबन्धन से मुक्त हो जाता है और देहान्तर में भी उसके ज्ञान की व्याप्ति रहती है। बद्ध जीवों को यह अधिकार प्राप्त नहीं होता।[१]

जगत् की उत्पत्ति, स्थिति [illegible] चेतनाचेतन के स्वरूप, स्थिति, प्रवृत्ति, भेद आदि को नियमित रखना आदि जो जगत् के व्यापार हैं, उन्हें छोड़ कर, अविद्या के आवरण से छूट कर परमेश्वर का अनुभव करना ही मुक्त का ऐश्वर्य है। जगदीश्वरता तो परमपुरुष भगवान् श्रीराम जी का असाधारण कर्म है।[२] समस्त श्रुति-स्मृतियाँ जगत् की सृष्टि, स्थिति, लय आदि समस्त जगद् व्यापार ब्रह्म के ही बतलाती हैं। मुक्त पुरुषों का ब्रह्म के साथ भोग-मात्र का साम्य है, सत्यसंकल्प द्वारा मुक्त पुरुष का समस्त लोकों में कामचारत्व होता है।[३]

ध्यानोपासनवेदनादि शब्दों द्वारा वाच्य परमपुरुष के सतत चिन्तन से युक्त भक्ति द्वारा भगवान् की प्रसन्नता प्राप्त कर अर्चिरादिमार्गों से ब्रह्मलोक को प्राप्त मुक्त जीव की आवृत्ति नहीं होती है, वह पुनः यहाँ लौट कर नहीं आता। गीताचार्य ने भी अपने अनन्य भक्त की अनावृत्ति कही है। सम्यक् रीति से भगवान् के चरणों की उपासना करके जिसने सभी कामों को पा लिया है, वह पुनरावर्त्तन-जन्म-मरण-के क्लेश से विमुक्त हो जाता है। परमकारुणिकभगवान् श्री रामचन्द्र अपने लोक में लाकर फिर जीव को कभी नहीं लौटाते। अपने आश्रित जनों की रक्षा के लिये तो उनकी प्रतिज्ञा ही है 'अप्यहंजीवितं जह्याम्'। अतः परमपुरुष को उपसन्न जीव का पुनरावर्त्तन नहीं होता, यह सिद्धान्त है।[४]

भगवदाचार्य के मत से[५] सायुज्य का ही नाम मोक्ष है, क्योंकि सायुज्य को छोड़ कर शेष तीन स्वर्गादि के समान फलान्तर हैं। अन्यथा मुक्ति में तारतम्य प्राप्त होगा, जो सर्वथा अमान्य है। सायुज्य भोगसाम्य का नाम है। इसी को मोक्ष अथवा मुक्ति अथवा साकेत-प्राप्ति अथवा परमधाम-प्राप्ति अथवा भगवत्प्राप्ति

१—४-४-१५, पृ० ४२६-२७।
२—४-४-१७, पृ० ४२८।
३—४-४-२०, पृ० ४३०।
४—४-४-२२, पृ० ४३०-३२।
५—त्रिरत्नी, लेखक भगवदाचार्य, पृ० १७-१८।

कहते हैं। जब सभी कर्मों की निवृत्ति हो चुकी है, ब्रह्म साक्षात्कार हो चुका है, तो पुनः तारतम्य की सम्भावना कैसे हो सकती है? अतः सालोक्यादि में जहाँ कहीं मुक्तिपद का प्रयोग है, वह गौण और भ्रान्त है। सिद्धान्त में ब्रह्म साम्यापत्ति अर्थात् सर्वांश में ब्रह्म के साथ समता तो प्राप्त हो ही नहीं सकती, क्योंकि मुक्त जीवों को भी जगद्व्यापार और लक्ष्मी-विलास अत्यन्त असम्भव है। जब तक समस्त धर्मों की समता न हो तब तक ब्रह्म साम्यापत्ति नहीं कही जा सकती। अतः 'साम्यमुपैति' 'साधर्म्यमागताः' का अर्थ भोग-साम्य ही करना उचित है।

षष्ठ अध्याय

भक्ति-पद्धति

भक्ति

रामानन्द स्वामी का मत

मोक्ष के साधन के रूप में भक्ति—रामानन्द-सम्प्रदाय में भक्ति मोक्ष के प्रमुख साधन के रूप में स्वीकार की गई है। भक्ति के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति सर्वप्रथम पंचसंस्कारों से संस्कृत होकर महाभागवत बन जाय और पुनः सीता-लक्ष्मण सहित भगवान् राम के प्रति रागमय हो उठे।[1] पंच संस्कारों के अन्तर्गत मुद्रांकण, ऊर्ध्वपुंड्र धारण करना, नामकरण, मंत्रजाप एवं तुलसी की कण्ठी पहनना आदि आते हैं।[2] एक वर्ष तक शिष्य की परीक्षा करके गुरु को चाहिए कि वह नियमतः अग्नि-पूजा करके तप्तचक्रादि (शर-चाप भी) से उसकी भुजाओं को अंकित कर दे।[3] इसी प्रकार गुरु शिष्य को ऊर्ध्वपुंड्र धारण की विधि से परिचित करावे, उसका दासान्त नाम रक्खे, उसे राममन्त्र प्रदान करे तथा गले में तुलसी की कण्ठी की माला धारण करने का आदेश दे।[4] इस

१—एवं महाभागवतःसुसंस्कृतो श्री रामभक्तिंविदधात्वहर्निशम्।
महेन्द्रनीलाश्मरुचेः कृपानिधेः श्रीजानकीलक्ष्मणसंयुतस्य ॥ श्री वै० म० भा०, रा० ट० दास, पृ० १०।

२—तप्तेन मूले भुजयोःसमंकनं शरेणचापेन [illegible]।
श्रुतिश्रुतं नाम च मंत्रमाले संस्कार भेदाः परमार्थहेतवः ॥ वही, भगवदाचार्य, पृष्ठ ११७।

३—परीक्ष्यशिष्यंसमुपासकं गुरुर्वर्षं समभ्यर्च्य च देवमग्निम्।
चक्रादिभिः हैतिवरैः सुतप्तैर्दिने सुपुण्ये नियतः समंकयेत् ॥ वही, रा० ट० दास, पृ० ९।

४—तथोर्ध्वपुंड्रं सुमृदाविधाय रामादिदास्यान्तमथो समुच्चरेत्।
मन्त्रं तथैवोपदिशेद्विधानतः मालांबरांताम् तुलसी समुद्भवाम् ॥ वही, पृ० १०

प्रकार पंचसंस्कारों से संस्कृत हो कर भक्त को भगवान् के मंगलप्रद दिव्य जन्म, दिव्यकर्म और नामों का उच्चारण करना चाहिए।[1]

भक्ति की व्याख्या—भक्ति की इन आवश्यक भूमिकाओं का उल्लेख करके रामानन्द जी ने भक्ति की विशेषताओं का भी उल्लेख किया है। उनके अनुसार विद्वद्वर्य परमभक्ति-रस-रसिक महर्षियों ने अनन्यभाव से तत्परता के साथ सर्वदा पुनः-पुनः छल, कपट, प्रपंच आदि से रहित परमात्मा (श्रीराम जी) की सेवा को ही भक्ति कहा है।[2] अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वामी जी ने उसी भक्ति मार्ग का अवलम्बन किया है जिसका प्रतिपादन महाभारत, नारदभक्ति सूत्र, भागवत आदि ग्रन्थों में उनके पूर्व किया जा चुका था। नारद पाँच-रात्र में सर्वोपाधिविनिर्मुक्त भगवान्हृषीकेश की सेवा को ही भक्ति कहा गया है।[3] शांडिल्य सूत्र में भी भक्ति को ईश्वर में 'परानुरक्ति' कहा गया है।[4]

आगे चल कर स्वामी जी ने भक्ति की और भी स्पष्ट व्याख्या की है। वे कहते हैं—विवेक आदि से जिसकी उत्पत्ति होती है, यमादि जिसके आठ अंग हैं, तैलधारा के समान निरन्तर स्मृति-संतान-रूपा भगवान् में जो अनुराग है, वही पराभक्ति है।[5] नारद भक्ति सूत्र में इसी मत का पोषण किया गया है। भक्ति को प्रेमस्वरूपा कहने के साथ ही लेखक ने उसे अमृतस्वरूपा भी कहा है, जिसे पाकर मनुष्य सिद्ध हो जाता है, अमर हो जाता है, जिसकी प्राप्ति से व्यक्ति के मन में और कोई कामना शेष नहीं रहती, न उसे किसी प्रकार का शोक ही रहता है, वह न किसी से द्वेष करता है और न किसी से अनुराग। वह तो भक्ति

१—धृतोर्ध्वपुण्ड्रस्तुलसीसमुद्भवां दधच्चमालाममलो हि कंठतः।
सज्जन्मकर्माणि हरेरुदाहरेद् गुणांश्च नामानि शुभप्रदानि।
वही, भगवदाचार्य, पृ० १०२।

२—उपाधिनिर्मुक्तमनेकभेदा भक्तिः समुक्ता परमात्मसेवनम्। अनन्यभावेन मुहुर्मुहुः सदा महर्षिभिस्तैः खलु तत्परत्वतः ॥ ६३ ॥ श्री वै० म० भा०, सं० पं० रामटहलदास, पृ० १०।

३—सर्वोपाधिविनिर्मुक्त तत्परत्वेन निर्मलम्। हृषीकेश हृषीकेशसेवनम् भक्तिरुच्यते ॥
नारदपांचरात्र

४—शाण्डिल्य सूत्र—'सा परानुरक्तिरीश्वरे।'

५—सा तैलधारासम संस्मृति-संतानरूपेशिपरानुरक्तिः। भक्तिर्विवेकादिक सप्तजन्या तथायमाद्यष्ट सुबोधकांगा ॥ श्री वै० म० भा०, रा० ट० दास, पृ० १०।

को पाकर उन्मत्त हो जाता है, स्तब्ध हो जाता है, आत्माराम हो जाता है। यह भक्ति कामनायुक्त नहीं है, क्योंकि वह निरोधस्वरूपा है।[१]

इस प्रकार रामानन्द जी ने भक्ति की जो व्याख्या की है, उससे उसकी निम्नलिखित विशेषताएँ ज्ञात होती हैं :—

क—भक्ति परमात्मा के प्रति अनुराग को कहते हैं।

ख—इस अनुराग में अनन्यता आवश्यक है।

ग—भगवान् की सेवा करना ही वस्तुतः उनकी भक्ति करना है।

घ—तैलधारा के समान ही भगवान् का प्रतिक्षण स्मरण करना भक्ति की सबसे बड़ी विशेषता है।

विवेक से यह भक्ति उत्पन्न होती है और यमादि इसके आठ अंग हैं। वस्तुतः प्रपन्न जन यदि उत्तम रीति से कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग में किसी एक का भी अनुष्ठान करें तो उन्हें मोक्ष मिल सकता है।[२] इस प्रकार अन्य मार्गों से भक्ति का कोई विरोध स्वामी जी को मान्य नहीं है। कर्म मार्ग, ज्ञान-मार्ग और भक्तिमार्ग वस्तुतः एक ही सत्य को पाने के तीन भिन्न-भिन्न पथ मात्र हैं।

भक्ति के प्रकार—भक्ति के सामान्यतया दो भेद किए गए हैं : गौणी और परा। गौणी के भी वैधी और रागानुगा दो भेद किए गए हैं। कभी-कभी वैधी भक्ति मर्यादा भक्ति के नाम से अभिहित की जाती है। विद्वानों ने गौणी को साधन भक्ति और परा को साध्यभक्ति भी कहा है। श्रीमद्भागवत् में भक्ति के ९ प्रमुख भेद बतलाए गए हैं। श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य तथा आत्मनिवेदन।[३]

१—अथातोभक्तिं व्याख्यास्यामः। १। सात्वस्मिन् परमप्रेमस्वरूपा। २। अमृतस्वरूपा च ॥३॥ यल्लब्ध्वापुमान् सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति ॥४॥ यत्प्राप्य न किंचिद्वांछति, न शोचति, न द्वेष्टि, न रमते, नोत्साही भवति।५। यज्ज्ञात्वामत्तो भवति स्तब्धोभवति आत्मारामो भवति। सा न कामयमाना निरोधरूपत्वात् ॥
नारदभक्तिसूत्र।

२—भवन्त्युपायान्तरएव सर्वे स्वातन्त्र्यतो मुक्तिपदप्रदास्ते। सुकर्म संवेदनभक्तियोगाःप्रपत्ति निष्ठैः समनुष्ठितासु ॥ श्री वै० म० भा०, भगवदाचार्य, पृ० १५५।

३—श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनंवंदनंदास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥
भागवत, सप्तम स्कंध, अध्याय ५, श्लोक २३।

रामानन्द स्वामी ने भागवत द्वारा निर्धारित भक्ति-पथ का ही अवलम्बन किया है। उन्होंने स्पष्ट ही कहा है : उदारकीर्तिभगवान् के श्रवण, कीर्त्तन, संस्मरण, पदश्रिति, समर्चन, बन्दन, दास्य, सख्य और आत्मार्पण को ही नवधाभक्ति कहा गया है।[१] आगे चल कर उनके द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय में प्रेमाभक्ति पर भी बल दिया जाने लगा और नाभा जी के समय में तो भक्तगण 'भक्ति दशधा के आगर' भी होने लगे थे। कहा गया है कि नाभा जी के समय से ही रामानन्द-सम्प्रदाय में शृंगार का भी प्रवेश हो गया था। फलस्वरूप आज इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत माधुर्य-भक्ति के उपासकों का एक स्वतन्त्र रसिकसम्प्रदाय ही बन गया है।

रामानन्द जी ने नवधाभक्ति के एक-एक अंग का आगे चल कर विवेचन भी प्रस्तुत किया है। अतः यहाँ हम रामानन्द-सम्प्रदाय की भक्ति के अन्य आवश्यक अंगों का विवेचन करने के उपरान्त ही नवधा भक्ति का भी विवेचन प्रस्तुत करेंगे।

रामानन्द स्वामी जी के मत से भक्ति के दो प्रमुख एवं आवश्यक अंग हैं: प्रपत्ति और न्यास। भगवान् की निर्हेतुक कृपा को प्रपत्ति और स्वप्रवृत्ति की निवृत्ति को न्यास कहा गया है।

भक्ति के दो प्रमुख अंग—प्रपत्ति और न्यास

प्रपत्ति—रामानन्द स्वामी के मत से मुमुक्षुवों का भगवान् की शरण में चले जाना ही श्रेयस्कर है, क्योंकि वे परमदयालु एवं उदार हैं तथा उन्हें किसी भी प्रकार के क्रियाकलाप की आवश्यकता नहीं है।[२] जीव असहाय है, अतः बिना भगवान् की कृपा के वह संसार-सागर से पार नहीं हो सकता, अनन्त कर्म-प्रवाह के द्वारा इस संसार महासागर में चिरकाल से डूबते हुए अस्वतन्त्र चेतन जीव के ऊपर प्रभु की निर्हेतुक कृपा अवश्य उत्पन्न होती है।[३]

१—उदारकीर्त्तेः श्रवणं च कीर्त्तनं हरेर्मुदासंस्मरणं पदश्रितिः।
समर्चनं वन्दनदास्यसख्यमात्मार्पणं सा नवधेतिगीयते॥ श्री वै० म० भा०, रा० ट० दास, पृ० १०।

२—प्राप्तुं परांसिद्धिमकिंचनोजनो द्विजातिरिच्छञ्छरणं हरिं व्रजेत्। परं दयालुंस्वगुणा-नपेक्षितक्रियाकलापादिकजातिबन्धनम्॥ श्री वै०म०भा०, भगवदाचार्य, पृ० १७३।

३—कर्मप्रवाहेणतु चेतनस्यमग्नस्य संसारमहार्णवेचिरम्। उपर्यहोसंसरतोऽवशस्य सा कृपोद्भवत्येव हरेरहेतुका॥ श्री वै०म०भा०, रा०ट० दास, पृ० १५-१६

प्रपत्ति क्या है ?

श्रेष्ठ विद्वानों ने कृपासिन्धु, परमकीर्ति सम्पन्न, अचिन्त्य वैभववाले भगवान् श्रीराम (विष्णु) की अन्य के कष्ट के प्रति असहनशीलता को ही दया कहा है।[१] भगवान् का जीवों पर पुत्रवत् स्नेह है। वस्तुतः भगवान् अपने स्वजनों के तो पातकों पर दृष्टिपात तक नहीं करते और आचार्यों के मत से यही उनका वात्सल्य है।[२] इसीलिए मुक्ति की कामना वाले तथा अपने पापों से निवृत्त हो जाने की इच्छावाले पुरुषों को चाहिए कि वे अपने सभी शुभकर्मों को भगवदर्पण कर दें तथा नैवेद्य आदि को भगवान् को अर्पित करके ही भोजन करें। इससे वे संसार-भय से मुक्त हो जायँगे।[३] भगवान् की इस निर्हेतुक कृपा के सभी अधिकारी हैं :—ऊंच-नीच, धनी-निर्धन आदि। वहाँ कुल-बल, काल और दिखावट की कोई आवश्यकता नहीं।[४]

प्रपत्ति के भेद—प्रपत्ति के सामान्यतया ६ भेद किए गए हैं। अनुकूलता का संकल्प, प्रतिकूलता का त्याग, रक्षणविषयक विश्वास, गोप्तृत्ववरण, आत्मनिक्षेप और कार्पण्य।[५] यह प्रपत्ति पुनः कायिकी, वाचिकी और मानसी आदि भेदों में विभक्त की गई है, और इनमें से प्रत्येक के गुणों के अनुसार ३-३ भेद किये जाते हैं।[६] साष्टांग प्रणाम करना और शरीर पर भगवदायुधों का धारण

१—दयान्यदुःखस्यनिगद्यते [illegible] । कृपामहाब्धेः समुदारकीर्तेः विष्णोरचिन्त्याखिलवैभवस्य ॥ वही, पृ० १७

२—इष्टं वात्सल्यसिंधोश्चवात्सल्यं दोषभोगिता। नित्यं समुच्यते तज्ज्ञैः सदाचारपरायणैः॥

अथवा

विभोश्चवात्सल्यमहार्णवस्य, वात्सल्यमिष्टं खलुदोषभोगिता। समुच्यतेतैर्नृभिरस्वतंत्रैः सदासदाचारपरायणैर्नरैः ॥ श्री वै०म०भा०, रा० ट० दास, पृ० १६।

३—शुभानिकर्माणि समर्पयेत्सदा रामाय भक्ष्यं च निवेद्यभक्षयेत्। अहर्दिवं वीतभयः समुत्तमं विमुक्तिधीः स्वाघनिवृत्तिकामनः ॥ श्री वै० म० भा०, भगवदाचार्य, पृ० १६१।

४—सर्वेप्रपत्तेरधिकारिणोमताः शक्ता अशक्ता अपि नित्यरंगिणः। नापेक्ष्यतेतत्रकुलं बलं च नो न चापिकालो नहि शुद्धितापिवा। श्री वै० म० भा०, रा० ट० दास, पृ० १७।

५—आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्यवर्जनम्। रक्षयिष्यतीतिविश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा॥ आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधाशरणागतिः ॥ पांचरात्र, लक्ष्मीतन्त्र संहिता।

६—एषा च त्रिविधाज्ञेया कारणत्रय भेदतः। गुणत्रय विभेदादप्येकैका त्रिविधा पुनः।
—: नारदपांचरात्रे, भारद्वाजसंहिता।

करना कायिकी प्रपत्ति है, मन्त्रार्थ एवं तत्व को न जानते हुए भी गुरु के अधीन रह कर मन्त्रादि का उच्चारण करना वाचिकी प्रपत्ति है, और शारीरिक प्रपत्ति तथा वाचिकी प्रपत्ति से युक्त होकर एवं मन्त्रार्थ को भी जान कर मन्त्रार्थ के अनुसंधान तथा आनुकूल्य-संकल्पादि से युक्त होकर की जाने वाली प्रपत्ति मानसी प्रपत्ति कही जाती है।[1] इस प्रकार कायिकी प्रपत्ति सात्विकी, तामसी और राजसी आदि तीन प्रकार की हुई, वाचिकी भी सात्विकी, राजसी और तामसी आदि तीन प्रकार की हुई और मानसी प्रपत्ति के भी सात्विकी, राजसी तथा तामसी आदि तीन भेद हुए। वैष्णव आचार्यों ने प्रपत्ति पर अधिक बल दिया है और इसी कारण इसका शास्त्रीय विवेचन भी प्रस्तुत किया गया है।

रामानन्द जी ने प्रपत्ति के भेदों का विस्तृत विवेचन नहीं किया है, किन्तु उन्होंने उसकी समस्त विशेषताओं का उल्लेख कर दिया है। बड़े ही दृढ़ शब्दों में उन्होंने एकमात्र भगवान् की भक्ति के प्रति अपने दृढ़ संकल्प को व्यक्त किया है और कहा है कि 'हे भगवान् मुझे प्रत्येक जन्म में अपने चरणों में अचल अनुराग और अपने जनों का संग देने की कृपा करें'।[2] प्रपत्ति के विरोधियों के परित्याग करने का भी आदेश स्वामी जी ने दिया है। उपायान्तर को ही प्रपत्ति-का विरोधी कहा गया है।[3] केवल लोकसंग्रह की ही दृष्टि से महाजन लोग श्रुति विहित कर्मों का अनुष्ठान करते हैं।[4] वैसे चाहिये तो यही कि कर्मों के सम्पूर्ण स्वरूप का त्याग कर दिया जाय। विद्वानों ने इसी को धर्मत्याग भी कहा है।[5]

१—प्रमाणांकनमुख्येनन्यासलिंगेन केवलम्। गुर्वधीना हि भवति प्रपत्ति: कायिकी क्वचित्।
अविज्ञातार्थ तत्वस्य मंत्रमीरयत: परम्। गुर्वधीनस्य कस्यापि प्रपत्तिर्वाचिकी भवेत्॥
न्यासलिंगवतांगेनधियार्थज्ञस्य मंत्रत:। उपासितगुरो: सम्यक् प्रपत्तिर्मानसी भवेत्।

२—त्वच्चरणाचलांभक्ति त्वज्जनानां च संगम:।
देहि राम कृपासिन्धो मह्यम् जन्मनि जन्मनि॥
श्री रामार्चन पद्धति, सं० पं० रामनारायण दास, पृष्ठ २५।

३—अथोपायान्तराण्येव प्रवदन्तिमनीषिण:। विरोधीनिप्रपत्ते: संबंधज्ञानरूपिण:॥
—श्री वै० म० भा०, रा० ट० दास, पृ० १७

४—लोकसंग्रहणार्थं तु श्रुतिचोदितकर्मणां। शेषभूतैरनुष्ठानंतत्कैंकर्य परायणै:॥
वहीं,—पृ० १७

५—धर्मत्यागोऽपि परमैकांतिकैरुच्यतेवरै:। इत्थं हि कर्मणां त्याग:स्वरूपस्याखिलस्य च॥
—: वहीं, पृ० १७।

प्रपत्ति के प्रतिकूल पदार्थों से मन को खींच लेने को ही स्वामी जी ने न्यास कहा है। इसका विवेचन हम आगे चल कर करेंगे। प्रपत्ति की तीसरी अनिवार्यता 'भगवान् मेरी अवश्य ही रक्षा करेंगे' यह विश्वास है। स्वामी जी ने स्पष्ट ही कहा है "अनन्तकर्म-प्रवाह के द्वारा इस संसार महासागर में डूबते हुए अस्वतन्त्र चेतन जीव के ऊपर प्रभु की निर्हेतुक कृपा अवश्य ही उत्पन्न होती है।'[1] संसार-सागर से पार कर देने के लिए भगवान् से प्रार्थना करना प्रपत्ति का चौथा अंग है, जिसे 'गोप्तृत्ववरण' कहते हैं। 'आत्मनिक्षेप' अथवा 'आत्मसमर्पण' प्रपत्ति का पांचवां अंग है और अहंकार का नाश तथा दीनता छठवां। स्वामी जी ने न्यास[2] और कार्पण्य[3] पर अधिक बल दिया है।

फिर भी स्वामी रामानन्द जी भक्ति को किसी सीमित घेरे में बांधना नहीं चाहते। ऐसा प्रतीत होता है कि वे शास्त्र की मर्यादा को उतनी ही सीमा तक स्वीकार करना चाहते थे, जितना कर लेने से व्यक्ति के पूर्ण विकास को किसी भी प्रकार की बाधा न पहुँचे। कदाचित् इसीलिए उनके विचारों में कहीं भी दूरारूढ़ शास्त्रीयता नहीं मिलती है। प्रपत्ति के सम्बन्ध में भी उन्होंने स्पष्ट ही कहा है कि यदि इस प्रपत्ति के आनुकूल्यादि अंगों में से किसी अंग की हानि भी हो जाय तो भी महात्मा जन प्रपत्ति की न्यूनता नहीं मानते।[4] प्रपत्ति मार्ग में सबसे महत्वपूर्ण बात रामानन्द जी की दृष्टि में यह है कि ब्राह्मणादि उत्कृष्ट वर्णों को भी भागवतजनों की सेवा करनी चाहिए और की गई प्रपत्ति का स्मरण करना चाहिए। क्योंकि मुमुक्षुजन उसी को प्रायश्चित्त कहते हैं।[5]

१—वही पृ० १५–१६।

२—रामप्रसादहेतुर्हि न्यासोऽयं विनिगद्यते। नित्यशूरैः सदाचारैर्हरिपादाब्जमानसैः॥
श्री वै० म० भा०, भगवदाचार्य, पृ० १६१

३—[illegible]। अल्पशक्तिमचैतन्यमनर्हं भृत्यकर्मणि॥
दोषागारंदुरात्मानं मामेवंपरिचिन्तयन्। मत्समर्पितमित्येतन्नत्वमर्हस्युपेक्षितुम्॥
श्रीरामार्चनपद्धति, रा० ना० दास, पृ० २२

४ [illegible] महात्मभिः। [illegible]।
—श्री वै० म० भा०, स० रा० ट० दास, पृ० १७

५—उत्कृष्टवर्णैरपि वैष्णवैर्जनैः निकृष्टवर्णाःस तदीय सेवने। तथानुसर्तव्य इतीष्यतेबुधैः शास्त्रैर्विधेये विधिगोचरैः परैः।। कृतप्रपत्तिस्मरणंप्रायश्चित्तमथोच्यते। परमाप्तैश्च तन्निष्ठैः कोविदैस्तैर्मुमुक्षुभिः। श्री वै० म० भा०, सं० भगवदाचार्य, पृ० १६१

स्वामी रामानन्द जी ने प्रपन्न जनों के दो भेद किए हैं : दृप्त और आर्त्त। दृप्त प्रपन्न वे हैं जो स्वकर्मानुसार प्राप्त दुःखादि को शरीरस्थिति-पर्यन्त यहाँ ही भोगते हुए शरीर के अन्त में मोक्ष-सिद्धि का निश्चय करके महाज्ञानवान् और अत्यन्त विश्वासयुक्त होकर रहते हैं[1]। आर्त्त प्रपन्न वे है जो संसार रूप बड़वानल को तत्क्षण ही न सहन करते हुए भगवत्प्राप्ति में अत्यन्त शीघ्रता चाहते हैं।[2]

प्रपत्ति में पुरुषकारत्व—वैष्णव मत में लक्ष्मी जी को पुरुषकाररूपा कहा गया है। वे भगवान् द्वारा जीवों को क्षमा करवाती हैं और उनका उनसे दृढ़ सम्बन्ध स्थापित कराती हैं। रामानन्द-सम्प्रदाय में सीता जी को ही पुरुषकाररूपा कहा गया है। स्वयं रामानन्द जी ने ही लिखा है : श्री पद से सर्वाधीशेश्वर की प्राप्ति में पुरुषकाररूपा श्री का बोध होता है।[3] अन्यत्र उन्होंने इसे और भी स्पष्ट कर दिया है। वे कहते हैं, संसारकर्त्ता ब्रह्मा जी के ही कारणभूत श्रीराम जी के चरणकमलों में चित्त लगाने वाले निर्भरतापरायण श्रेष्ठ पुरुषों ने अणुत्व रूप से श्री व्याप्ति कही है, और जिन्हें कोई भी उपाय नहीं हैं, ऐसे भी विज्ञजन पुरुषकारभूता और अविनाशिनी श्री को ही उपाय कहते हैं। श्री ही पुरुषकार-भूता और वही उपाय भी हैं।[4]

सीता जी को संतुष्ट करने के लिए भक्त को किसी विशेष उपाय की आवश्यकता नहीं है। (प्रपन्नजनों द्वारा कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्ति योग में से किसी एक का भी अनु[illegible] ी है।[5]) फिर भी उपासकों

१—वही, श्री वै० म० भा०, भगवदाचार्य, पृष्ठ १७७-७८।

२—अथान्त्योऽसहमानस्तत्क्षणमेवतुसंश्रितिम्। तथैवभगवत्प्राप्तौसत्वर स्वांत उच्यते॥ वही, पृ० १७८।

३—सर्वा[illegible]। लक्ष्मीपुरुषकारार्था श्रीत्यनेन पदेन तु॥ वही—रा० ट० दास, पृ० ६

४—अणुत्वतो निर्भरतापरैस्तैः श्रीव्याप्तिरार्यैरभिधीयते हि। प्रपंचनिर्मातृविरंचिहेतु-श्रीरामपादाब्जनिविष्टचित्तैः॥ नित्यं सा पुरुषकारभूता श्रीरनपायिनी। अनुपायान्तरैर्विज्ञैरुच्यते तदुपायता॥ वही, भगवदाचार्य, पृ० १५६-५७

अथवा :—पुरुषकारपराविनिगद्यते स कमलाकमलाकमलप्रिया। इयमसौ कुशलैस्तदुपायता-नृभिरुपायसुशून्य परैःपरैः॥ श्री वै० म० भा०, रा० ट० दास, पृ० १६

५—वही, पृ० १६।

के लिए भगवत्प्रपत्ति ही परमोपाय है।[१] इस प्रपत्ति के फलदाता भगवान् श्रीराम हैं।[२]

प्रपत्ति : सर्वसाध्य—पुण्य-अपुण्य, सभी देशों में, सभी कालों में, सभी (शूद्रादि भी) व्यक्ति प्रपत्ति के अधिकारी माने गए हैं। स्वामी जी ने स्पष्ट ही घोषित किया है : प्रपत्ति के सभी अधिकारी हैं, ऊँच-नीच, धनी-गरीब आदि का वहाँ कोई भेद नहीं है और न तो कुल-बल, काल और बनावटी पवित्रता की ही अपेक्षा है।[३] स्वामी जी ने तो यहाँ तक कह दिया है कि परासिद्धि के पाने की कामनावाला अकिंचन व्यक्ति भी भगवान् की शरण में जा सकता है, वे परमदयालु हैं तथा दूसरों के क्रियाकलापादि की उन्हें अपेक्षा नहीं है। वे जाति-पाँति के बन्धनों को भी स्वीकार नहीं करते।[४] इस प्रकार प्रपत्ति में देश-काल, अधिकारी अथवा फल सम्बन्धी किसी भी प्रकार के बन्धन को स्वामी जी ने स्वीकार नहीं किया है।

कृपा-भेद निरूपण—यद्यपि प्रपत्ति का द्वार सभी के लिए उन्मुक्त है, फिर भी स्वामी जी ने इस बात को स्वीकार किया है कि प्रपत्ति-द्वारा प्राप्त मोक्ष में तारतम्य नहीं ही रहता है। वे कहते हैं : अनन्तगुणसागर श्रीपति भगवान् के प्रपन्नमुमुक्षुजनों द्वारा आचरण की हुई प्रपत्ति—विष्णु-कृपा से प्राप्तव्य मोक्षरूप-फल—में तारतम्य नहीं ही है।[५]

प्रपत्ति में विषय-नियुक्ति—रामानुज-सम्प्रदाय में भगवान् के अन्तर्यामी, पर, व्यूह, विभव और अर्चावतार आदि पाँच रूप माने जाते हैं। अतः प्रश्न यह उठता है कि इनमें से किस रूप के प्रति प्रपत्ति की जा सकती है? भगवान् के अन्तर्यामी रूप को पा लेना अत्यंत ही तपसाध्य है। भगवान् का पर रूप ब्रह्माण्डों से परे, लीलाविभूति से परे, विरजापार में स्थित है। विरजा के जल के समान ही इसका पाना कठिन है। व्यूहरूप (प्रद्युम्न, संकर्षण, अनिरुद्ध) को

१—अत्रोपायान्तरस्यार्थोनिवृत्तिः प्रतिपाद्यते। सकृदित्येवकारेण तूपायनिरपेक्षता॥ वही, पृ० ७॥

२—प्रपन्नायेति पदस्तूपायस्थानमुच्यते। उपायत्वं भगवतस्तवेति पदतस्तथा॥ वही, पृ० ७॥

३—वही, पृ० १७॥

४—वही, भगवदाचार्य, पृ० १७३॥

५—मोक्षेमुमुक्षोर्नहितारतंम्यं फले प्रपन्नस्यतुसत्प्रपत्तेः। अस्त्येवतद्विष्णुकृपोपलभ्येपति-श्रियोऽनंतगुणार्णवेतन्॥ वही, रा० ट० दास, पृ० १६॥

प्राप्त करना क्षीरसागर के जल के पाने के सदृश है। भगवान् के विभव रूप से उनके समकालीन ही तृप्त हो पाते हैं, उनके पश्चात्वर्ती उससे कोई लाभ नहीं उठा पाते। भगवान् के अर्चा रूप से उन सभी की तृप्ति हो जाती है, जो उसके समीप रहते हैं। रामानन्द जी ने अर्चावतार की बड़ी ही प्रशंसा की है। वे कहते हैं: अर्चावतार देशकाल के प्रकर्ष से हीन, सहिष्णु, अप्राकृत दिव्यदेह-युक्त एवं अपने समस्त कृत्यों में अर्चक के अधीन होता है।[1] यह स्वयं व्यक्त, दैव, सैद्ध और मानुष आदि चार प्रकार का होता है।[2] षोडशोपचार से भगवद्विग्रह की पूजा की जानी चाहिए।[3] यही जीवों का एक मात्र उपाय है।[4] मुमुक्षु भगवान् के अर्चा, विभव, व्यूह, पर और अन्तर्यामी रूप को क्रमशः प्राप्त करता है।

न्यास—न्यास प्रपत्ति का दूसरा प्रमुख अंग है, क्योंकि बिना न्यास के आराध्य की कृपा प्राप्त ही नहीं की जा सकती। रामानन्द जी ने कहा भी है, 'सदाचारपरायण, हरिचरणकमलानुरागी, नित्यशूरमहात्माजन न्यास को परमात्मा श्री राम जी की कृपा का कारण कहते हैं।'[5] यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि न्यास है क्या वस्तु? स्वामी रामानन्द जी ने इस प्रश्न का बड़ा ही सुन्दर उत्तर दिया है। वे कहते हैं: तत्वविचार में निपुण, भगवन्निष्ठ, परमआस्तिक, परमनिपुण, ऐकान्ती विद्वानों ने स्वप्रवृत्ति की निवृत्ति को न्यास इष्ट कहा है।[6] यह न्यास कुल, बल, काल, और वाह्य पवित्रता की अपेक्षा नहीं रखता, बल्कि प्रपत्ति के लिए कर्मों के सम्पूर्ण स्वरूप के त्याग को ही अभीष्ट कहा गया है। इसी को धर्म-त्याग भी कहते हैं।[7]

१—वही, भगवदाचार्य, पृष्ठ १६८॥

२—वही, पृ० १६८।

३—वही, पृष्ठ १६८॥

४—शरणेति पदेनैवोपायस्तद्विग्रहो बुधैः। उपायाध्यवसायस्तु प्रपद्यइति वर्ण्यते॥ वही, रा० ट० दास, पृ० ६

५—रामप्रसादहेतुर्हि न्यासोऽयंविनिगद्यते। नित्यशूरैःसदाचारैर्हरिपादाब्जमानसैः॥ श्री वै० म० भा०, भगवदाचार्य पृ० १६१

६—स्वीयप्रवृत्तेस्तु निवृत्तिरिष्टोन्यासोऽथवेद्योऽपि बुधैः सदैव। ऐकान्तिकैस्तत्व-विचारदक्षैः परमात्मनिष्ठैः परमास्तिकैस्तैः॥ वही, पृष्ठ १५८

७—वही, पृ० १५६।

इस न्यास से ही भगवान् की कृपा प्राप्त होती है। इसी से मनुष्य को मोक्ष-प्राप्ति सम्भव हो जाती है।[१] महर्षियों ने कैवल्य को विरजा के पार ही माना है, इसलिये भक्त सदैव ही भगवन्नामस्मरण करता रहे और वैदिक प्रणाली पर अपने जीवन को चलाता रहे।[२] इस प्रकार इष्टप्राप्ति के लिए न्यास की बड़ी ही आवश्यकता है। प्रपत्ति-मार्ग में इसीलिए न्यास पर इतना अधिक बल दिया गया है। न्यास के लिए सबसे अधिक आवश्यक वस्तु है ध्यान। स्वामी जी ने उसका भी निरूपण किया है।

ध्यान—रामानन्द जी के अनुसार भगवान् में निरतिशय अनुरागी, प्राणायामपरायण और जितेन्द्रिय विद्वान् द्वारा भगवान् के निरन्तर तैलधारावत् अविच्छिन्न चिन्तन को ध्यान कहते हैं।[३] इस प्रकार ध्यान के माध्यम से भक्त अपने आराध्य से अपना तादात्म्य शीघ्र ही स्थापित कर लेता है।

ध्येय भगवान्—प्रपन्नभक्तों के ध्येय हैं भगवान् रामचन्द्र। रामानन्द उन्हीं भगवान् राम का स्मरण करते हैं जिनके नेत्र विकसित कमल के समान हैं, जो ब्रह्मा और शिव के भी मन को हरण करने वाले हैं, श्री जानकी जी जिन्हें अपने कटाक्षों से देख कर स्मितयुक्त कर देती हैं, जिनका स्वभाव ही प्रणत सत्पुरुषों पर अनुग्रह करने का है;[४] जिनके चरणकमलो के मकरंद का पान मुनिजनों के मन रूपी भ्रमर करते हैं, जो लोकोत्तर बलसम्पन्न हैं, जिनके धनुर्बाण दिव्य हैं, जिनकी भुजाएँ जानुपर्यन्त लम्बी हैं, उन भगवान् राम को रामानन्द जी पुनः-पुनः प्रणाम करते हैं।[५] भक्तों के आराध्य भगवान् का शरीर अनेक प्रकार के आभूषणों से सुशोभित है। अमूल्य हार, अंगद और

१—न्यासादेवनिरंकुशेश्वरदयानलूनमायान्वयः । [illegible]-
निर्गतः ॥ श्री रामार्चनपद्धति, रा० ना० दास, पृ० ३

२—आत्मारामैस्तथोपायस्वरूपज्ञानिभिश्चतैः । मतज्ञैर्विरजापारंकैवल्यमितिमन्यते ॥
जितेन्द्रियश्चात्मरतोबुधोऽसक्तत् सुनिश्चितंनामहरेरनुत्तमम् । अपारसंसार निवारणक्षमं समुच्चरेद्वैदिकमाचरन्सदा ॥ श्री वै० म० भा०, रा० ट० दास, पृ० १८ ॥

३—अथोच्यतेमहाप्राज्ञ ध्यानंध्येयस्यचिन्तनम् । ध्यानमेवविधातव्यं सदारामपरायणैः ॥
वही, पृ० ८

४—विकचपद्मदलायितवीक्षणं [illegible] ।
जनकजादृगपांग समीक्षितं, [illegible] ॥ श्री वै० म० भा०, रा० ट० दास, पृ० ८

५—मुनिमनसुब्रधुव्रतचुम्बितस्फुटलसन्मकरंदपदाम्बुजम् ।
बलवदद्भुत दिव्य धनुः शरामहित जानुविलंबि महाभुजम् ॥ वही, पृ० ८

सुन्दर नूपुर, कमल के पराग के सदृश पीतवस्त्र उनके नूतन मेघ के सदृश सुन्दर शरीर के सौंदर्य को द्विगुणित कर रहे हैं, वे अनन्तमंगल गुणों के आगार हैं, कृपा के समुद्र हैं, भगवद्भक्तों के हृदयकमल में सतत निवास करते हैं तथा सीतासहित नित्य शोभा प्राप्त करते रहते हैं।[1] भगवान् राम सदैव ही जानकी जी तथा लक्ष्मण जी से परिवृत रहते हैं, वे सभी जनों के शरण्य हैं, पुरुषोत्तम हैं, महोत्सवस्वरूप हैं, चक्रवर्ती राजा दशरथ के कुमार हैं और फिर भी साक्षात् सनातन परब्रह्म हैं। रामानन्द इन्हीं भगवान् राम का मुहुर्मुहुः स्मरण करते हैं।[2] इस प्रकार रामानन्द जी के आराध्य सीता-लक्ष्मण से परिवृत दाशरथि राम हैं, जो श्यामवर्ण वाले हैं, जिनके शरीर पर अद्भुत आभूषण सुशोभित हो रहे हैं, जिनका सौंदर्य अपूर्व है—मुनिजनों द्वारा जो सेवित हैं, ब्रह्मा शिव के भी मन को जो हर लेते हैं, जो बड़े ही उदार, कृपालु, शरण्य, अद्भुतशक्तिसंपन्न एवं पुरुषोत्तम हैं। दूसरे शब्दों में पुरुषोत्तम राम ही रामानन्द स्वामी के आराध्य हैं।

भगवत्कृपा-प्राप्ति के साधन—ऊपर कहा जा चुका है कि स्वामी रामानन्द जी ने उदारकीर्ति भगवान् राम के कथा-श्रवण, नाम कीर्तन, संस्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन को नवधाभक्ति के नाम से अभिहित किया है। इन्हीं साधनों का अवलम्बन कर भक्त भगवान् का स्नेह भाजन बन जाता है। इन साधनों में कुछ के सम्बन्ध में आचार्य जी ने विस्तार से अपने विचार व्यक्त किये हैं। नीचे उनके इन विचारों पर प्रकाश डाल देना ही अभीष्ट है :—

कथाश्रवण—रामानन्द जी के अनुसार वैष्णवों को धनुर्धारी भगवान् की सुन्दरयशवाली कथा का नित्य श्रवण करना चाहिए।[3] यह कथा भक्त को तब तक सुननी चाहिये जब तक शरीर की स्थिति है, क्योंकि इससे संसार की बाधाएँ

१—परार्घ्यहारांगदचारुनूपुरम् सुपद्म किंजल्कपिशंगवाससम्॥
लसद्घनश्याम तनुंगुणाकरम्, कृपार्णवंसद्धृदयाम्बुजासनम्॥ वही, पृ० ८

२—प्रसन्नलावण्य सुभ्रून्मुखाम्बुजम् जगच्छरण्यंपुरुषोत्तमं परम्।
सहानुजं दाशरथिं महोत्सवं स्मरामि रामं सहसीतया सदा॥ वही, पृ० ८

३—धनुर्धरस्याशृणुयान्निरन्तरं कथां च गायेत्सुयशोऽङ्कितांमुहुः। रूपं तदीयं सुचराचरात्मकम् पश्यन्सतां संगमुदारधीश्चरेत्॥ श्री वै० म० भा०, भगवदाचार्य, पृ० १८३।

मिटती हैं ।[१] भक्त को चाहिए कि वह भाष्य, रामायण, और महाभारत आदि के माध्यम से इस कथा को सुने और तदनुसार अपने समय को व्यतीत करे ।[२] अथवा यदि वह अशक्त हो तो उसे किसी अन्य व्यक्ति से ही उन ग्रन्थों को सुन कर तृप्त हो जाना चाहिए ।[३]

गुणकथन या नामकीर्तन—रामानन्द जी ने भगवान् के यश-कीर्तन पर पर्याप्त बल दिया है। उनका कथन है कि ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण कर, तुलसी की माला पहन कर भक्त को चाहिए कि वह भगवान् के कल्याणप्रद दिव्यजन्म, दिव्यकर्म और नाम का उच्चारण करता रहे ।[४] अन्यत्र भी वे कहते हैं कि संसार को सीताराममय देखते हुए भक्त को निरन्तर ही भगवान् की कथा सुननी चाहिए, तथा उनके सुयश का गान करना चाहिए ।[५] भक्तों द्वारा भगवान् का यशःकीर्तन किए जाने के कारण ही भक्ति में संगीत का प्रवेश हो गया है। कृष्णभक्ति पर संगीत का प्रभाव विशेष रूप से देखा जा सकता है। रामभक्तिशाखा में भी संगीत का महत्वपूर्ण प्रभाव पाया जाता है, किन्तु कृष्णभक्ति की तुलना में यह प्रभाव अधिक प्रबल नहीं है। जयदेव, चैतन्यमहाप्रभु आदि जैसे कृष्णभक्त तो बड़े ही गायक कीर्तनियाँ थे।

स्मरण—भगवान् के नाम, गुण, माहात्म्य, महत्व आदि में तल्लीन रहना स्मरण भक्ति है। फिर भी इस भक्ति में भगवान् के नाम के स्मरण का ही महत्व अधिक है। रामानन्द जी ने स्पष्ट ही कहा है : वैष्णवों को भगवान् के दिव्य जन्म, दिव्यकर्म और नामों का उच्चारण करना चाहिए ।[६] फिर भी उनका कथन है कि भक्त चाहे कहीं भी निवास करे, पर गुरु के दिये हुए मन्त्र का अवश्य जप करे। इससे वह ममकारशून्य हो जायगा ।[७] भगवान् के नाम का स्मरण सभी साधनों में श्रेष्ठ है। इसी पर अधिक बल देते हुए स्वामी जी कहते हैं : जितेन्द्रिय भगवच्चरणानुरागी विद्वान् सदा वैदिक कर्मों का आचरण करता

१—यावच्छरीरान्तमहर्दिवं तत्कथामुदारां शृणुयाद्भवघ्नीम् ॥ वही, पृ० १९७

२—भाष्येणरामायणतोहिकालक्षेपोविधेयोऽपि च भारतेन। वही, पृ० १९५

३—स्याच्चेदशक्तः शृणुयात्कुतश्चिद् ग्रन्थानमूञ्छुद्धतमाद्विशुद्धः ॥ वही, पृ० १९६

४—धृतोर्ध्वपुण्ड्रस्तुलसीसमुद्भवां दधच्चमालाममलो हि कण्ठतः।
सज्जन्मकर्माणि हरेरुदाहरेद्गुणांश्चनामानि शुभप्रदानि ॥ वही, पृ० १८२

५—वही, पृष्ठ १८३ ॥

६—श्री वै० म० भा०, भगवदाचार्य, पृ० १८३।

७—अन्यत्र वासंच गुरूपदिष्टान्मन्त्रान्जपन्तो ममकारशून्याः ॥ वही, पृ० १९४ ॥

हुआ परमनिश्चित् तथा अपार ससार के जन्म-मरणादि दुःखों को दूर करनेवाले भगवान् के सर्वोत्तम सभी साधनों में श्रेष्ठ नाम को सदा मुहुर्मुहुः स्मरण करता रहे।[१]

इसी नामस्मरण के अन्तर्गत राममन्त्र-राज का जाप भी आ जाता है। इसीलिए स्वामी जी ने भक्तों को रामायणादि सुन कर श्रीराम जी के उत्तम नाम का कीर्तन और द्वयमन्त्र का अनुसंधान करने का आदेश दिया है।[२] रामानन्द जी ने बड़े विस्तार से राममन्त्र का विवेचन किया है। उन्होंने राममन्त्र के तीन रूप माने हैं :—रामषडक्षर मन्त्र, रामद्वयमन्त्र, रामचरममन्त्र। नीचे इन मन्त्रों के संकेतार्थ का संक्षेप में विवेचन प्रस्तुत किया जाता है।

राम षडक्षर मन्त्र—स्वामी जी के अनुसार सभी मोक्षाभिलाषियों को रामषडक्षर मन्त्र (श्रीरामाय नमः) का जाप करना चाहिए। सुकृतियों को २५ अक्षरों वाले तथा रामद्वयमन्त्र का भी जाप करना चाहिए।[३] श्रीराममन्त्र अव्यापक भगवन्मन्त्रों से श्रेष्ठ तो है ही, परन्तु व्यापक मन्त्रों की अपेक्षा भी श्रेष्ठ है। यह श्रुति मुनि-जन आहृत है, शिष्ट-पुरुष-गृहीत है, व्यापक है, हनुमदादि नित्य जीवों का आश्रय है, परम-कल्याणप्रद है, प्रधान है, प्राप्य है, गुण-ज्ञान-शक्ति का प्रदाता है।[४] समस्त वेदार्थ जिसके अन्तर्गत हैं, प्रणव ओंकार जिसमें सन्निहित हैं, समस्त जगत् का जो आधारभूत है, विन्दुसहित जो विद्यमान है, जो अत्यन्त व्यक्त है, अधिकतम महती शक्ति जिसमें है, जो विश्व का सर्वोत्कृष्ट-मूल कारण है, नाना प्रकार के प्रपंच जिसमें भासमान हैं, ऐसा परमप्रसिद्ध श्रीराम मन्त्र का बीज 'रां' शब्द है।[५]

१—जितेन्द्रियश्चात्मरतो बुधोऽसकृत्सुनिश्चितंनाम हरेरनुत्तमम्। अपारसंसारानवारणक्षमं समुच्चरेद्वैदिकमाचरन् सदा। वही, पृ० १६३

२—श्रीरामसन्नाम सुकीर्तनं च [illegible]। वही, पृ० १६६

३—[illegible], रामोङे. प्रत्ययान्तोरसमितशुभदस्वक्षरः स्यान्नमोन्तः। मन्त्रंरामद्वयाख्यं सकृदितिचरमप्रान्वितं गुह्यगुह्यंभूताद्युत्संख्यवर्णं सुकृतिभिरनिश मोक्षकामैर्निषेव्यम्॥ श्री वै० म० भा०, रा० ट० दास, पृ० ३

४—मन्त्राणां व्यापकानांभगवत इह चा व्यापकानां तु मध्येऽतिश्रेष्ठो व्यापकः सश्रुतिमुनि सुमतः शिष्ठमुख्यैर्गृहीतः। नित्यानामाश्रयोऽयं [illegible], प्राप्यश्च प्रापकोऽपि प्रचुरतरगुणज्ञानशक्त्यादिकानाम्॥ वही, पृ० ३

५—यावद्वेदार्थगर्भं प्रणादिजगदाधारभूतं सविन्दुं [illegible] षड्व्याप्ति-न्दम्॥ रेफारूढत्रिमूर्तिप्रचुरतरमहाशक्तिविश्वोन्निदानं। शश्वत् संराजतेयद्विविधं सकलसंभासमानप्रपंचम्॥ वही, पृ० ३

इसके उपरान्त स्वामी जी ने एक-एक पद का तात्पर्यार्थ भी समझाया है। 'रां' पद से सीतापति भगवान्, सभी गुणों के समुद्र, जगत् के कारण, संरक्षक कहे जाते हैं।[१] इस 'राम' शब्द में ही भगवान् के स्वरूप, जीव का स्वरूप, ब्रह्म और जगत् का सम्बन्ध आदि अर्थ रूपेण सन्निहित हैं। भगवान् और जीव अथवा जगत् में पिता-पुत्र सम्बन्ध, रक्ष्य-रक्षक भाव, शेष-शेषित्व सम्बन्ध, भार्या-भर्तृत्व सम्बन्ध, स्वस्वामि सम्बन्ध, आधाराधेयभाव, सेव्य-सेवक भाव, आत्मा-आत्मीयत्व भाव, भोग्य-भोक्तृत्व भाव आदि नव प्रकार के सम्बन्ध स्वामी जी ने माने हैं। 'र', 'अ', 'म्', 'आय' पदों से भगवान् और जीव-जगत् के बीच उपर्युक्त सम्बन्धों का ज्ञान होता है।[२] तृतीय पद 'म' कार से नित्य जीव का ज्ञान होता है।[३] 'म' वाच्य मैं जीव 'र' वाच्य सर्वशेषी भगवान् श्रीराम के लिए सर्वदा शेषभूत हूँ, ऐसा समझना चाहिये।[४] 'रामाय' पद से चेतनाचेतन जगत् की श्रीपद वाच्य श्री जनकनन्दिनी ही सर्वदा रमण के आश्रय हैं, यह कहा जाता है। रामाय पद से भगवान् के गुणों-वात्सल्य आदि-का ज्ञान होता है और जीव के पुत्रादि में मोह का नाश होता है।[५] इसी मन्त्र से यह भी ज्ञात होता है कि जीव अस्वतन्त्र और भगवान् स्वतन्त्र हैं। जीव को भगवान् के अतिरिक्त किसी और से कोई प्रयोजन नहीं।

बीज 'राम' से जीव का स्वरूप, 'रामाय' से भगवत्स्वरूप और चतुर्थी विभक्ति से उसके फल के स्वरूप का प्रतिपादन किया जाता है।

१—तत्राद्येनपदेन रेणभगवान् सीतापतिः प्रोच्यते। श्रीरामोजगतां गुणैकनिलयो हेतुश्च संरक्षकः। तच्छेषीपदतोऽप्यतो भगवतोऽनन्यार्हशेषत्वकम्। व्यावृत्तिस्तु सुरांतरादि गतसत्त्वाच्छेषतायामुहुः॥ वही, पृ० ३—४

२—वही, पृ० ४ श्लोक १४ से लेकर १८ तक।

३—वही, पृ० ४।

४—वही, पृ० ४।

५—रामायेतिचतुर्थेन श्रियादेव्यास्तुसर्वदा। चेतनाचेतनानां च रमणाश्रयतेर्यते॥ वही, पृष्ठ ४।

६—सरुर्वविधवन्धुत्वं सर्वप्राप्यत्वमेव च। सर्वप्रापकतातेनतथाचोभयलिंगता॥ वही, पृ० ५ अथवा: रागादिकारणेवन्धौतैनैवविनिवर्त्यते। बन्धुत्वप्रतिपत्तिश्चभासमानाऽविचारतः॥ वही, पृ० ५

७—तच्चतुर्थ्यास्वानुरूपकैकर्यप्रार्थनोच्यते। विषयान्तरसेवापिप्राप्तासा विनिवर्त्यते॥ पदेननेनात्र तु पंचमेन प्रकथ्यतेऽथोवदनन्यशेषता। हेयं तदन्यार्थ्यमपिस्वतन्त्रता

अखण्ड नमः शब्द से उपाय का स्वरूप कहा जाता है और सखण्डपक्ष में षष्ठ्यंत मकार से विरोधी का स्वरूप प्रतिपादित होता है।[१] इस प्रकार मूल-मन्त्र के माध्यम से जीव, परमात्मा, उपाय, फल, विरोधिरूप, अर्थपंचक का वर्णन कर दिया गया।

समस्त वेदादि शास्त्रों की रुचि का आश्रयण करना तारकमन्त्रराज का तात्पर्यार्थ है। भगवान् श्रीराम जी के स्वरूप का निरूपण करना वाक्यार्थ है, जीव स्वरूप का निरूपण करना प्रधानार्थ है, और जीव तथा ईश्वर के अनेक-विध सम्बन्धों का अनुभव करना अनुसंधानार्थ है।[२]

रामद्वय मन्त्र—'श्रीमद्रामचन्द्रचरणौशरणं प्रपद्ये' तथा 'श्रीरामचन्द्राय नमः' को रामद्वय मन्त्र कहते हैं। यह रामद्वय मन्त्र २५ अक्षर, ६ पद, दो वाक्य, दस अर्थ और अत्यन्त आश्चर्यप्रद तथा मोक्ष का परम प्रापक कहा गया है। इसका पूर्ववाक्य १५ अक्षरों तथा तीन पदों से युक्त है और उत्तर वाक्य १० वर्णों से युक्त है।[३]

'श्री' शब्द युगल पदार्थ के स्वामी भगवान् श्री रामचन्द्र जी की प्राप्ति के हेतु भूत पुरुषकार प्रयोजनवाली महारानी सीता जी का प्रतीक है।[४] 'मते' शब्द से भगवान् का सीता से नित्य संबन्ध सूचित होता है।[५] 'रामचन्द्र' पद से भगवान् के वात्सल्यादि गुणों का बोध होता है।[६] 'चरणौ' पद से वात्सल्यादि

निवर्त्यतेऽतः सततं स्वकीया ॥ पदेनषष्ठेनमइत्यनेनस्वस्वाम्यनन्यार्हकशेषतापि। समुच्यते चेतनजीववाचिना तत्किंकरत्वैकप्रयोजनत्वम् ॥ वही, श्लोक २४-२६ पृ० ५

१—उपायस्यत्वखण्डेन नमःशब्देनचोच्यते। सखण्डेतु मकारेण षष्ठ्यन्तेन विरोधिनः॥ वही, पृ० ५

२—तात्पर्यार्थोऽशेषवेदशास्त्राभिरुचिसंश्रयः। वाक्यार्थः प्राप्यसंबन्धिस्वरूपाभिनिरूपणम् ॥ तारकस्य प्रधानार्थः स्वस्वरूप निरूपणम्। [illegible]। वहो, पृ० ५

३—श्रीरामद्वयमंत्रमद्भुततमं वाक्यद्वयं षड्पदं वाणाक्षिप्रमिताक्षरं तु खलु विद्धित्वंद-शार्थान्वितम्। युक्तंतं त्रिपदेन तत्रसुमते पूर्वं शुभस्यास्पदम्। वाक्यं पंचदशाक्षरं [illegible] ॥ वही, पृ० ६, श्लोक ३३।

४—[illegible]र्थो श्रीत्यनेन पदेन तु ॥ वही, पृष्ठ ६, श्लोक ३४

५—६—मतापुरुषकारस्य नित्यसम्बन्ध उच्यते। रामचन्द्रेतिपदतो वात्सल्यादि गुणस्य च ॥ वही, पृ० ६, श्लोक ३५

दिव्य गुणों का तथा दिव्य विलक्षण आश्रय का नित्य सम्बन्ध वर्णित होता है।[1] 'शरण' पद से भगवद्विग्रह रूप उपाय का वर्णन किया जाता है और 'प्रपद्ये' पद से उपाय विषयक निश्चय प्रतिपादित होता है।[2]

'श्रीमते' पद से सीताराम ही प्राप्य हैं, यह कहा जाता है और 'रामचन्द्र' पद से स्वामित्व प्रतिपादित किया जाता है।[3] 'आय' विभक्ति से जीवों के आचरण का वर्णन होता है। 'नमः' शब्द से काम-क्रोधादि का निरास किया जाता है।[4]

स्वामी जी के मत से आचार्य की रुचि के अनुकूल व्यवहार करना, उनकी आज्ञा मानना इस मन्त्र का तात्पर्यार्थ है। प्राप्य श्रीराम, प्रापक जीव दोनों के सम्बन्ध का निर्णय वाक्यार्थ निर्णीत किया गया है। राम-चन्द्र तथा सीता के कैंकर्य की प्रधानता इस मन्त्र का प्रधानार्थ है। अपने दोषों का अनुसंधान अनुसंधानार्थ है। भगवत्कैंकर्यलाभरूप मोक्षकाम पुरुषों को सर्वदा ऐसा ही अनुसंधान करना चाहिए।[5]

चरम मंत्र—'सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो-ददामि एतन्ममव्रतम्' को ही चरम मंत्र कहा गया है। इसमें 'सकृत्' पद से भगवदतिरिक्त अन्य यागादि की निवृत्ति, 'एव' पद से ब्रह्मादि उपासना रूप अन्य उपाय में राहित्य प्रकट होता है। भगवत्प्रपत्ति परमोपाय इससे व्यंग्य है। 'प्रपन्नाय' पद का तात्पर्य यह है कि उपासक के लिए षड्विधप्रपत्ति रूप परमोपाय का ही आश्रय करना चाहिए। 'तव' से तात्पर्य है कि प्रपत्तिफलदाता भगवान् को ही उपाय कहा जाता है। 'अस्मि' का तात्पर्य है कि भगवत्प्रपत्तिरूप उपाय को ही

१—चरणावित्यनेनैववात्सल्यादिक सीतयोः। विलक्षणस्यदिव्यस्य विग्रहस्याश्रयस्य च
वही, पृ० ६, श्लोक ३६ तथा श्लोक ३५

२—शरणेतिपदेनैवोपायस्तद्विग्रहो बुधैः। उपायाध्यवसायस्तु प्रपद्य इति वर्ण्यते॥ वही, पृ० ६, श्लोक ३७।

३—प्राप्यंमिथुनमेवेति श्रीमते पदतोमतम्। रामचन्द्रेतिपदतः स्वामित्व प्रतिपाद्यते॥ वही, पृ० ६, श्लोक ३८

४—विभक्त्यायेतिपदतः शेषवृत्तिर्महात्मभिः। विरोधिनोनिरासस्तु नमः शब्देनवर्ण्यते॥ वही, पृ० ६, श्लोक ३९

५—तात्पर्यार्थोऽस्यविज्ञेयआचार्यरुचि संश्रयः। वाक्यार्थस्तुमताभिज्ञैरेषनिर्णीयते बुधैः॥
प्राप्य प्रापकसंबन्धिस्वरूपाभिनिरूपणम्। [illegible]॥
स्वदोषानुसंधानमनुसंध्यर्थउच्यते। एवमेवानुसंधेयंमोक्षकामैरहर्दिवम्॥ पृ० ६-७, श्लोक ४०-४२।

अंगीकार किया जाय। 'इति' से यह अर्थ है कि प्रपत्ति के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है, अतः उपाय में अनन्यता होनी चाहिए। 'च' पद से अन्य उपाय कहा जाता है। 'याचते' से उपाय के सेवन करने वाले अधिकारी का लक्षण कहा गया है। 'अभयं' पद से संशयरूप प्रतिबन्धक का कारण कहा जाता है। 'सर्वभूतेभ्यः' से प्राप्य श्री रघुनाथ जी के प्रतिबन्धक का स्वरूप निरूपण होता है। 'ददामि' से प्रपत्ति के फलदाता भगवान् श्रीराम में सर्वशक्तिमत्ता का निरूपण किया जाता है। 'एतत् पद' से संशयाभाव प्रतिपादन किया जाता है। 'मम' पद से प्रभु हमारी रक्षा करेंगे, इसका चिंतन किया जाता है और 'व्रतम्' पद से विषय में दृढ़ता का प्रतिपादन होता है।[१]

इस मंत्र का तात्पर्यार्थ है भगवान् की प्रसन्नता का संश्रय करना, वाक्यार्थ है स्वस्वरूप का निरूपण करना, प्रधानार्थ है भगवान् के स्वरूप का निरूपण करना और अनुसंधानार्थ है 'निर्भरता का अनुसंधान करना।'[२]

भगवत्कैंकर्य—रामानन्द जी ने भगवत्कैंकर्य पर बहुत अधिक बल दिया है। उन्होंने यह स्पष्ट ही कहा है कि भगवद्भक्त को सदैव ही कैंकर्य परायण होना चाहिए।[३] मुमुक्षु जीव को भगवत्कैंकर्य के अतिरिक्त अन्य किसी देव का भी कैंकर्य नहीं करना चाहिए।[४] क्योंकि भगवान् ही जीव के स्वामी हैं, एकमात्र

वही शेषी हैं। उनका कैंकर्य करना ही एकमात्र मुख्यफल है।[1] इसलिए भगवद्भक्तों को चाहिए कि वे ईर्ष्या-द्वेषादि से पृथक् रह कर सावधान चित्त होकर अंगों सहित, पार्षदोंसहित लक्ष्मण और सीता जी के सहित वेदवेद्य भगवान् श्रीराम जी का कैंकर्य करके कालक्षेप करें।[2] साथ ही भक्त को आत्मदोष का भी अनुसंधान करते रहना चाहिए।[3]

स्वामी जी ने कैंकर्य के व्यावहारिक पक्ष पर भी प्रकाश डाला है। उन्होंने भगवद्भक्तों को यह आदेश दिया है कि वे भगवान् की पूजा की सामग्री जुटाने के साथ ही उनके मन्दिर में झाड़ू भी लगाया करें।[4]

'श्रीरामार्चन पद्धति' में तो भक्त का यह कैंकर्य आत्मदैन्य की ओर बढ़ गया है। स्वामी रामानन्द जी के अनुसार भगवान् को भोजन अर्पित करते समय भक्त को इस आशय की प्रार्थना करनी चाहिए—हे भगवान् मैं असत्यप्रिय हूँ, अपवित्र हूँ, नीच, अपराधपात्र, अल्पशक्ति, अचेतन, भृत्यकर्म के अयोग्य, दोषागार और दुरात्मा हूँ, अतः आप मेरे द्वारा समर्पित भोजन को उपेक्षित न करें। हे भगवान् आपने जिस प्रकार कौशल्या, सीता, लक्ष्मण, शबरी, भारद्वाज या विदुरादि द्वारा दिए गए भोजन को स्वीकार किया वैसे ही मेरे द्वारा अर्पित भोजन को भी स्वीकार करें।[5] भक्त का यह आत्मदैन्य बड़ा ही उज्ज्वल एवं पवित्र है।

१—पदेनषष्ठेनमइत्यनेनस्वस्वाम्यनन्यार्हकशेषतापि । समुच्यतेचेतनजीववाचिनातत्किंकरत्वैकप्रयोजनत्वम्। वही, पृ० ५

२—रामायसांगायसपार्षदाय सीतासमेतायसहानुजाय आम्नायवेद्यायविधायशश्वत् कैंकर्यमीर्ष्यारहितः समाहितः।। वही, पृ० २६।

३—प्राप्यप्रापकसंबंधि स्वरूपाभिनिरूपणम्। प्रधानार्थस्तुतद्युग्मकैंकर्यस्य प्रधानता। [illegible] उच्यते। एवमेवानुसंधेयं मोक्षकामैरहर्दिवम्॥ वही, पृ० ७।

४—[illegible] । तदीयनामाभ्यसनेनतन्मना क्षिपेत्सकालंनितरां निरालसः॥ वही, भगवदाचार्य, पृ० १६८।

५—[illegible] । अल्पशक्तिमचैतन्यमनर्हंभृत्यकर्मणि । दोषागारंदुरात्मानंमामेवंपरिचिन्तयन्। [illegible]। कौशल्याजनकात्मजावरगुणश्रीलक्ष्मणेनार्पितम् । [illegible]दुकम्॥ भारद्वाजसमर्पितं च सरसंक्षीरंव्रजेयत्स्वयं। तद्वैयगवमर्जितंसहवृतंयद्यज्ञपान्यर्पितम्। अन्यैर्भक्तजनैःकुचैलविदुराद्यैरर्पित त्वत्प्रियः । पथ्यंपाकविशेषसंयुतमथोदृष्टिप्रिय राघव। रुच्यंदोषविवर्जितं सह यथाऽशेषैःप्रभो भोक्तृभिः। स्वीकर्तुं च तथार्हसित्वमधुना भक्त्यार्पितंते मया॥ श्रीरामार्चनपद्धति—सं० पं० रामनारायणदास, पृ० २२।

इसी प्रकार अर्चावतार की पूजा के सम्बन्ध में अर्चन एवं वन्दन की महत्ता का भी स्वामी जी ने उल्लेख किया है, किन्तु कहीं भी उनका विस्तार से वर्णन नहीं किया है। षोडशोपचार से अर्चावतार का शृंगार करने का आदेश भी उन्होंने उसी प्रसंग में दिया है।

भक्ति के अन्य आवश्यक अंग

निरभिमानिता—भक्ति का एक आवश्यक अंग है निरभिमानिता। भगवत्कैंकर्य का वर्णन करते हुए स्वामी जी ने भक्त को निरभिमानी होने का आदेश दिया है, यह हम पहले ही देख चुके हैं। इस निरभिमानिता को उन्होंने और भी स्पष्ट शब्दों में व्यक्त कर दिया है। वे कहते हैं:—यदि शिष्य असमर्थ हो तो उसे चाहिए कि वह एक छोटी सी कुटिया बना कर निरहंकार होकर गुरू-पदिष्ट मन्त्र का जाप करे।[1] यही नहीं, वह निरालस्य मुमुक्षु वैष्णव भक्तियुक्त निरभिमान होकर अपने गुरु की आज्ञा का पालनरूप इस चरम उपाय का निरन्तर सेवन करता रहे।[2] इस प्रकार स्वामी जी ने अनहंकार को भक्ति का चरम उपाय कहा है।

विश्व भर में भगवान् का रूपदर्शन—भगवान् के सेवक की एक बहुत बड़ी साधना यह है कि वह भगवान् के चराचरात्मक रूप का दर्शन करे। भक्त की साधना कम-से-कम कुछ इसी प्रकार की होनी चाहिए कि वह भगवान् के इस विश्वव्यापी रूप का दर्शन करता हुआ रह सके। स्वामी जी ने कहा है भक्त को धनुर्धारी भगवान् की कथा का श्रवण करना चाहिए, उनके यश का पुनः पुनः गायन करना चाहिए। उनके चराचरात्मक रूप का दर्शन करना चाहिए और सदैव ही सज्जनों के साथ निवास करना चाहिए।[3]

गुरु का महत्व—गुरु के द्वारा ही भगवान् राम की प्रपत्ति मिलती है,

---

१—तथाप्यशक्तास्तुकुटीरमात्रं [illegible]।
अन्यत्रवासं च गुरूपदिष्टान्मन्त्राञ्जपन्तोऽहंकारशून्याः ॥ श्री वै० म० भा०, रा० ट० दास, पृ० २८

२—भक्त्यादियुक्तस्य तथानहंकृतेर्महात्मनस्तस्यनिदेशपालनम्।
उपायमेतच्चरमं निरंतरम् सुवैष्णवोऽयम्विदधात्वतंद्रितः ॥ वही, पृ० २८

३—धनुर्धरस्याशृणुयान्निरंतरं कथां च गायेत्सुयशोऽङ्कितां मुहुः।
रूपंतदीयंतुचराचरात्मकं पश्यन्सतांसंगमुदारधीश्चरेत् ॥ वही, भगवदाचार्य, पृष्ठ १८३।

इसलिए रामानन्द जी ने मुमुक्षु वैष्णवों को आदेश दिया है कि वे भगवान् को जानने के लिए समस्त संशयों को छेदन करने वाले, सर्वदा सदाचार निरत, श्रेष्ठ गुरु का आश्रय करें।[1] उन्हें गुरुमन्त्र का सदैव जप करना चाहिए और आलस्यहीन होकर, भक्ति आदि से युक्त तथा निरहंकार होकर उन महात्मा की आज्ञा का पालनरूप चरम उपाय का निरन्तर सेवन करते रहना चाहिए।[2] रामानन्द जी ने तो यहाँ तक कह दिया है कि राममन्त्र का तात्पर्यार्थ ही गुरु की रुचि के अनुकूल व्यवहार करना, उनकी आज्ञा का अनुसरण करना आदि है।[3]

सत्संग—रामानन्द जी के मत से भगवान् के पंचायुधों से युक्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री आदि भगवान् स्वरूप ही हैं और जगत् को पवित्र करने वाले हैं।[4] अतः मुमुक्षु वैष्णवों को चाहिए कि वे पंचायुधों से चिह्नित अथवा पवित्र वैष्णवों को देखकर प्रसन्न होकर उनमें भक्ति परायण होकर उनकी पूजा भी करें।[5]

समस्त तीर्थमय देहधारण करने वाले ये महाभागवत जिस देश में निवास करते हैं, वह देश उनके दर्शन करने से तथा उनके वहाँ रहने से पवित्र और सभी पापों से शून्य हो जाता है।[6] अतः उन महाभागवतों के पूजन से, उनके चरणामृत का पान करने से, उनका संग करने से, उन्हें भोजन करा कर पश्चात् भोजन करने से करोड़ों जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं।[7]

१—तथाविधंप्राप्यमथोसुवैष्णवः [illegible]।
सदासदाचाररतंगुरुं वरं ज्ञातुं भजेताखिल संशयच्छिदम् ॥ वही, पृ० २०८

२—भक्त्यादियुक्तस्यतयानहंकृतेर्महात्मनस्तस्यनिदेशपालनम् ।
उपायमेतं चरमं निरन्तरंसुवैष्णवोऽयम् विदधात्वतंद्रितः ॥ वही, पृ० १६८ ॥

३—तात्पर्यार्थोऽस्यविज्ञेय आचार्यरुचिसंश्रयः । वाक्यार्थ[illegible]रेषनिर्णीयतेबुधैः ॥
वही, रा० ट० दास, पृ० ७ ।

४—पंचायुधांकाभुविवैष्णवा ये मुखाग्रजक्षत्रियवैश्यशूद्राः ।
स्त्रियस्तथान्येऽपिचविष्णुरूपाजगत्पवित्रप्रपवित्रिणस्ते ॥ वही, भगवदाचार्य, पृ० १८३ ।

५—चक्रादिपंचायुधचिन्हितांगकः समीक्ष्यदृष्टश्चहरिप्रियानसौ ।
तथाविधान्भक्तिपरः समर्पयेत्सुवैष्णवाज्जन्मफलादिसंस्तुवन् ॥ वही, पृ० १८३ ।

६—तेसर्वतीर्थाश्रयभूतदेहा देशेमहाभागवतावसंति । यत्रैवतद्दर्शनतत्स्थितिभ्याजातः
सुपुण्योनिखिलाघशून्यः ॥ वही, पृ० १८५ ।

७—तदर्चनात्तत्पदनीरपानात्तत्संगतेस्तत्प्रणतेर्विधानात् । तद्भोजनान्तरभोजनाच्चस्यात्कोटिजन्मार्जितपापनाशः ॥ वही, पृ० १८५ ।

इसीलिये भगवान के चराचरात्मक रूप का दर्शन करता हुआ वैष्णव भी सत्पुरुषों का संग करे।[1] दिव्य देशों में भगवत्कैंकर्यानुरागी बन कर ही सत्संग करना श्रेयस्कर है।[2]

'श्री रामार्चन पद्धति' में भी सत्संग को निस्पृह बना देने का साधन कहा गया है।[3]

काम-क्रोधादि भक्ति-विरोधियों का परित्याग—भक्त को भक्ति के विरोधी आचरण अथवा मनोभावों का परित्याग करना अत्यावश्यक है। संसार के सभी बन्धन भक्ति के विरोधी ही तो हैं, उनसे रागादि उत्पन्न होकर मनुष्य की साधना में व्यवधान उत्पन्न करते हैं। अतः स्वामी रामानन्द जी ने बार-बार कहा है कि मनुष्य को रागादि के कारणभूत माया, पुत्र, कलत्रादि में अविचार से ही बन्धुत्व ज्ञान उत्पन्न हो जाता है, राममंत्र का जप करने से इसकी निवृत्ति हो जाती है।[4]

अहिंसा—प्रायः सभी वैष्णव आचार्यों ने अहिंसा पर पर्याप्त बल दिया है। इसे भक्ति के एक आवश्यक अंग के रूप में स्वीकार किया गया है।

स्वामी रामानन्द जी ने स्पष्ट ही लिखा है—अहिंसा के समान दान, तप, तीर्थनिवास और जप आदि कोई भी शुभ कर्म नहीं है। अतः सुन्दर जन्म में निष्ठा रखने वाले जन दृढ़ धर्म की वृद्धि के लिए उस हिंसा को छोड़ दें।[5] जिस प्रकार वक्र चलने वाली भी नदियां समुद्र को प्राप्त होती हैं उसी प्रकार हिंसा से पृथक् रहने वाले व्यक्ति को सर्व धर्म आश्रयण करते हैं। जिस प्रकार अग्नि काठ को जला देती है, उसी प्रकार हिंसक मनुष्य चर-अचर में व्याप्त प्रभु का घातक है।[6] उदार तथा दयालु वैष्णव जनों को चाहिए कि वे अधो-गति के कारणभूत जल और थल में उत्पन्न होने वाले शरीरियों की हिंसा से

१—वही, पृ० १८३।

२—[illegible] वै। वही, पृ० १६७।

३—[illegible]—श्रीरामर्चनपद्धति, सं० रा० ना० दास, पृ० ३।

४—रागादिकारणेबन्धौतेनैव विनिवर्त्यते। बन्धुत्वप्रत्तिपत्तिश्चभासमानाऽविचारतः॥ वही, श्री वै० म० भा०, भगवदाचार्य, पृ० ७४।

५—दानं तपस्तीर्थं निषेवनजपौ न चारस्त्यहिंसा सदृशं सुपुण्यम्। हिंसामतस्तांपरिवर्जये-ज्जनः सुधर्मनिष्ठोदृढ़धर्मवृद्धये। श्री वै० म० भा०, रा० ट० दास, पृ० १८।

६—अयन्तुधर्मास्तुतयाविहीनान्। सुवक्रगाः सिंधुमिवापिनयः। काष्ठस्थवन्हेरिवघातको-हरेश्चरस्थस्य च जन्तु हिंसकः। वही, पृ० १८।

महाप्रयास के द्वारा प्राप्तव्य मांस को संसार की भीति की निवृत्ति के लिए छोड़ दें।[१] वस्तुतः मुक्तिकामी और पापों की निवृत्ति चाहने वाले व्यक्ति को सम्पूर्ण शुभ कर्मों को भगवान् को अर्पित कर देना चाहिए और भोजनादि भी उन्हें ही निवेदित करके स्वीकार करना चाहिए। इससे वह संसार-भय से मुक्त हो जायगा।[२]

इस प्रकार रामानन्द जी ने अहिंसा को सभी शुभ आचरणों से श्रेष्ठ एवं महत्त्वपूर्ण माना है। भक्त के लिए तो यह परमावश्यक है ही।

भक्ति के आवश्यक अंग के रूप में महाव्रत—स्वामी रामानन्द जी ने एकादशी, रामनवमी, जानकीनवमी, हनुमज्जन्मव्रतोत्सव, नृसिंहजयन्ती, कृष्णाष्टमी, वामनद्वादशी तथा रथयात्रादि व्रतों एवं उत्सवों में सम्मिलित होने का आदेश श्री वैष्णवों को दिया है।

एकादशी के संबंध में उनका मत है कि वैष्णवों को वेधरहित एकादशी का व्रत रखना चाहिये। यदि अरुणोदय काल में एकादशी दशमी से विद्धा हो तो उसे छोड़ कर द्वादशी का व्रत करना चाहिए।[३] एकादशी शुद्धा और विद्धा दो प्रकार की होती है।[४] वेध चार प्रकार का होता है। सूर्योदय से पूर्व साढ़े तीन घड़ी का काल अरुणोदय-वेध है, दो घड़ी वाला काल अति-वेध है, सूर्य के आधे उदय हो जाने पर महावेध-काल है और सूर्योदय में तुरीय-योग होता है।[५]

सूर्योदय काल से पूर्व दो मुहूर्त संयुक्त एकादशी शुद्ध है,[६] शेष सभी विद्धा हैं। शुद्धा एकादशी के भी तीन भेद हैं। एक वह जिसमें केवल द्वादशी अधिक

१—जलस्थलोत्पन्नशरीरिहिंसया विवर्जयेन्मांसमुदारधीः सदा। [illegible] चिरायलभ्यंभवभीनिवृत्तये। वही, पृ० १६।

२—समर्प्यकर्माणि शुभानिवैष्णवो रामाय भक्ष्यं च निवेद्य भक्षयेत्। अहर्दिवंवीतभयः समुत्तमं विमुक्तिधीः स्वाघनिवृत्तिकामनः। वही, पृ० १६।

३—एकादशीत्यादिमहाव्रतानि च कुर्याद्विवेधानिहरिप्रियाणि। विद्धा दशम्यायदि सारुणोदयेसद्वादशी तूपवसेद्विहायताम्॥ श्री वै० म० भा०, रा० ट० दास, पृ० १२।

४—[illegible] सा द्विविधा च बोध्या। वेधोऽपिवोध्योद्विविधोरुणोदये सूर्योदयेवादशमीप्रवेशात्॥ वही, पृ० ११।

५—घटीत्रयंसार्द्धमथारुणोदयेवेधोऽतिवेधो द्विघटिस्तुदर्शनात्। रवि प्रभासस्यतथोदितेऽर्द्धेसूर्येमहावेध इतीर्यते बुधैः॥ वही, पृ० ११। तथा योगस्तुरीयस्तु दिवाकरोदये॥ वही, पृ० १२

६—पूर्णातुसूर्योदयकालतः सा याप्राङ् मुहूर्त्तद्वयसंयुता च॥ वही, पृ० १२।

हैं, दूसरी जिसमें दोनों अधिक हैं, तीसरी जिसमें दोनो ही अधिक न हों।[1] इनमें से वैष्णवों को प्रथम एकादशी अर्थात् द्वादशी मात्र अधिक का ग्रहण करना चाहिए, यदि परे द्वादशी की वृद्धि हो तो शुद्ध एकादशी भी छोड़ देनी चाहिए।[2] विद्वानों को एकादशी के संबंध से रहित साठ दण्डात्मक शुद्ध द्वादशी में उपवास करके उपवास के दूसरे दिन की अवशिष्ट द्वादशी में ही पारण भी कर लेना चाहिए। दोनो की अधिकता में पर का उपवास करना चाहिए। इनमें उन्मीलिनी, वञ्जुलिनी, सत्रिस्पृशा, पक्षवर्द्धिनी, जया, विजया, जयन्ती, पापनाशिनी आदि आठ द्वादशियाँ अत्यन्त पवित्र हैं।[3]

यदि द्वादशी आषाढ़, भाद्र और कार्तिक मास शुक्ल पक्ष में अनुराधा, श्रवण, रेवती के आदिचरण, द्वितीय चरण और तृतीय चरण के साथ संयुक्त हो तो उसमें विद्वान् पारण न करे, क्योंकि वह समस्त व्रतो का नाशक है।

रामनवमी—स्वामी जी के मत से पुनर्वसु नक्षत्र, चैत्र शुक्ल नवमी, कर्क नक्षत्र, शुभ लग्न में रामावतार हुआ था। अतः अष्टमी की वेधयुक्त नवमी को छोड़कर नक्षत्र युक्त अविद्धा नवमी में वैष्णवों को व्रत करना चाहिए। पुनर्वसु से रहित नवमी अनन्त सूर्यग्रहण से भी अधिक फलदायिनी होती है।[4] इस श्रीराम नवमी में व्रतोत्सव, श्रीरामार्चन, रात्रि में जागरण, भगवत्कीर्ति का श्रवण और कीर्त्तन आदि करने चाहिए।[5]

१—एकातुद्वादशी मात्राधिकाज्ञेयोभयाधिका। द्वितीया च [illegible] ॥ वही, पृ० १२।

२—तत्राद्यापरैवास्ति ग्राह्याविष्णुपरायणैः। शुद्धाप्येकादशीहेया परतोद्वादशीयदि ॥ वही, पृ० १२।

३—उन्मीलिनी बन्जुलिनी सुपुण्याः सत्रिस्पृशाथोखलु पक्षवर्द्धिनी। जया तथाष्टौ-विजयाजयन्ती द्वादश्यएताइतिपापनाशनी ॥ वही, पृ० १२।

४—आषाढभाद्रोर्जसितेषुसंगतामैत्रश्रवोऽन्त्यादिगताङ्घ्रिपान्तैः। चेद्द्वादशी तत्र न पारणं बुधः पादैः प्रकुर्याद्व्रतवृन्दहारिणी ॥ वही, पृ० १३।

५—मासेमधौयानवमी सुयुक्ता शुक्लाऽदितीशेन शुभेनभेन। कर्केमहापुण्यतयासुलग्ने जातोऽत्ररामः स्वयमेव विष्णुः ॥ वही, पृ० १३।

६—तामष्टमीवेधयुतां विहायव्रतोत्सवंतत्रतुवैष्णवश्चरेत्। असंख्यसूर्यग्रहतोधिकासदाया केवलासा नवमी ह्युपोष्या ॥ वही, पृ० १३।

७—अत्रप्रकुर्वीत मुदाव्रतोत्सवं रामार्चनंजागरणं महाफलम्। अनेकजन्मार्जित पापनाशनं रामस्यकीर्तेः श्रवणं च कीर्तनम् ॥ श्री वै० म० मा०, भगवदाचार्य, पृ० १८३ ॥

जानकी नवमी—बैसाख मास, शुक्लपक्ष, नवमीतिथि, पुष्य नक्षत्र, मंगल के दिन जानकी जी का जन्म हुआ था, अतः उस दिन वैष्णवों को व्रत रखना चाहिए।[१]

हनुमज्जन्मव्रतोत्सव—कार्तिक मास, कृष्णपक्ष, चतुर्दशी, मंगलवार, स्वाती नक्षत्र, मेष राशि में अन्जना-गर्भ से हनुमान् का जन्म हुआ था। उस दिन वैष्णवों को व्रत रखना चाहिए।[२]

नृसिंह जयन्ती—स्वाती नक्षत्र युक्त बैसाख मास की शुक्ल चतुर्दशी, सोमवार, सायंकाल श्री नृसिंह का अवतार हुआ था।[३] यदि चतुर्दशी त्रयोदशी से अरुणोदय में विद्धा हो जावे तो वह धन और संतान का नाश करने वाली होती है। अतः विष्णुभक्त महात्माओं को उस दिन उपवास नहीं करना चाहिए।[४]

कृष्णाष्टमी—भाद्रपद मास, कृष्णपक्ष, सिंहराशि के सूर्य और अष्टमी तिथि में चन्द्रोदय होने पर श्री कृष्ण का जन्म हुआ था।[५] रोहिणी नक्षत्र से हीन और सप्तमीविद्धा-अष्टमी त्याज्य है। कृतिका नक्षत्र से विद्धा रोहिणी भी त्याज्य हैं।[६] इस तिथि को कृष्ण की उपासना करनी चाहिए, कृष्ण की कीर्ति का गान, श्रवण तथा कीर्तन करना चाहिए और रात को जागरण करना चाहिए।[७]

१—पुष्यान्वितायां तु कुजेनवम्यां श्रीमाधवेमासिसितेहलाग्रतः। भुवोर्च्चायत्वाजनकेन कर्षणे सीताविरासीद्व्रतमत्र कुर्यात्। वही, रा० ट० दास, पृ० १३॥

२—स्वात्यांकुजेशैवतिथौ तु कार्तिके कृष्णेऽजनागर्भत एव साक्षात्। मेषेकपीराट्प्रादुरभाच्छ्व स्वयं व्रतादिना तत्र तदुत्सवंचरेत्। वही, पृ० १३॥

३—बैशाखमासीय चतुर्दशीसिता निशानुखेयाऽनिलभेन संयुता। सोमेऽवतारोनृहरेर-भूदथो व्रतोत्सवं तत्रमुदासमाचरेत॥ वही, पृ० १४॥

४—स्मरेण विद्धा तु चतुर्दशी यदा भवेद्धनापत्यविनाशिनी तदा। तत्रोपवासो न जनैर्विधेयो महात्मभिर्विष्णु परायणैरपि॥ वही, पृ० १४॥

५—पक्षे निशीथे खलुमासि भाद्रे कृष्णेऽथकृष्णोऽजनिदेवकीतः। सिंहंगतेऽर्के विधिभेनयुक्ता तत्राष्टमी यातु विधूदये बुधे॥ वही, पृष्ठ १४।

६—त्याज्याष्टमी चेदथ वाजि बिद्धा तथाग्नि विद्धा विधिभंच हेयम्। चेदष्टमीनोविधि-भेनयुक्ता महात्मभिर्विष्णु परायणैस्तैः॥ वही, पृ० १४-१५॥

७—जन्माष्टमीसात्र मुदाव्रतोत्सवं कृष्णार्जनं जागरणं महाफलम्। अनेकजन्मार्जित पापनाशनं कृष्णस्य कीर्तेः श्रवण च कीर्तनम्॥ वही, पृ० १४

वामन द्वादशी—भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष के श्रवण नक्षत्र से युक्त द्वादशी के दिन अभिजित् नक्षत्र में मध्यान्ह में परम समर्थ सम्पूर्ण पाप नाशक भगवान् विष्णु वामन रूप से अवतरित हुए थे। उस दिन व्रत करना चाहिए।[१] यदि द्वादशी श्रवण नक्षत्र का स्पर्श करती हो अथवा एकादशी का स्पर्श करती हो तो उस समय विष्णु-शृंखल नामक योग होता है, उस समय उपवास करने से परमफल मिलता है।

रथयात्रादि अन्य उत्सव—रामानन्द जी ने रथयात्रादि अन्य उत्सवों के मनाने का भी आदेश दिया है। शास्त्रसम्मत उत्सवों को मानना वैष्णव जनोचित ही है।[२]

भक्त और भगवान् के विविध संबंध

तथा

विविध भावों की भक्ति

भक्त और भगवान् में सामान्यतया चार प्रमुख संबंध माने गए हैं—

१—पिता-पुत्र संबंध—परमेश्वर को पिता, माता या स्वामी मानना और अपने को उनका पुत्र अथवा सेवक समझना।

२—सखा-सम्बन्ध—एकमात्र भगवान् को ही अपना सखा, मित्र अथवा बन्धु मानना।

३—पुत्र-पिता सम्बन्ध—परमेश्वर को पुत्र और अपने को उनका पिता, माता, धात्री आदि समझना।

४—पति-पत्नी सम्बन्ध—परमेश्वर भगवान् को अपना पति और अपने को उनकी पत्नी अथवा प्रेमिका समझना।

इन उपर्युक्त सम्बन्धों को लेकर भक्ति के चार प्रमुख भेद हो गए हैं:—दास्य भक्ति, सख्य भक्ति, वात्सल्य भक्ति और माधुर्य भक्ति। इनके अतिरिक्त भक्ति का एक और प्रमुख भेद किया गया है, जिसे शान्ता भक्ति कहते हैं। तत्वज्ञान अधिगत कर संसार के बन्धनों के प्रति उदासीन होकर, स्थिरचित्त से

१—भाद्रेऽथ शुक्लेऽभिजिति प्रभुर्हरिर्याद्वादशी वैष्णवभेनसंयुता। तत्रादिताविरभूच्च वामनो व्रतोत्सवं तत्र मुदासमाचरेत्॥ वही, पृ० १५।

२—तथायथाकालमतंद्रितैस्तैरथाधिरोपादिकमुत्सवादिकम्। सदा विधेयंहरितोषणं परं शुभप्रदं तद्बहुशास्त्रसम्मतम्॥ वही, पृ० १५।

जानकी नवमी—बैसाख मास, शुक्लपक्ष, नवमीतिथि, पुष्य नक्षत्र, मंगल के दिन जानकी जी का जन्म हुआ था, अतः उस दिन वैष्णवों को व्रत रखना चाहिए।[१]

हनुमज्जन्मव्रतोत्सव—कार्तिक मास, कृष्णपक्ष, चतुर्दशी, मंगलवार, स्वाती नक्षत्र, मेष राशि में अन्जना-गर्भ से हनुमान् का जन्म हुआ था। उस दिन वैष्णवों को व्रत रखना चाहिए।[२]

नृसिंह जयन्ती—स्वाती नक्षत्र युक्त बैसाख मास की शुक्ल चतुर्दशी, सोमवार, सायंकाल श्री नृसिंह का अवतार हुआ था।[३] यदि चतुर्दशी त्रयोदशी से अरुणोदय में विद्धा हो जावे तो वह धन और संतान का नाश करने वाली होती है। अतः विष्णुभक्त महात्माओं को उस दिन उपवास नहीं करना चाहिए।[४]

कृष्णाष्टमी—भाद्रपद मास, कृष्णपक्ष, सिंहराशि के सूर्य और अष्टमी तिथि में चन्द्रोदय होने पर श्री कृष्ण का जन्म हुआ था।[५] रोहिणी नक्षत्र से हीन और सप्तमीविद्धा-अष्टमी त्याज्य है। कृतिका नक्षत्र से विद्धा रोहिणी भी त्याज्य हैं।[६] इस तिथि को कृष्ण की उपासना करनी चाहिए, कृष्ण की कीर्ति का गान, श्रवण तथा कीर्तन करना चाहिए और रात को जागरण करना चाहिए।[७]

१—पुण्यान्वितायां तु कुजेनवम्यां श्रीमाधवेमासिसितेहलाग्रतः। भुवोर्च्चायत्वाजनकेन कर्षणे सीताविरासीद्व्रतमत्र कुर्यात्। वही, रा० ट० दास, पृ० १३॥

२ [illegible] साक्षात्। मेषेकपीराट्प्रादुरभूच्छिव स्वयं व्रतादिना तत्र तदुत्सवंचरेत्। वही, पृ० १३॥

३—वैशाखमासीय चतुर्दशीसिता निशामुखेयाऽनिलभेन संयुता। सोमेऽवतारोनृहरेर-भूदथो व्रतोत्सवं तत्रमुदासमाचरेत॥ वही, पृ० १४॥

४—स्मरेण विद्धा तु चतुर्दशी यदा भवेद्धनापत्यविनाशिनी तदा। तत्रोपवासो न जनैर्विधेयो [illegible]॥ वही, पृ० १४॥

५—पक्षे निशीथे खलुमासि भाद्रे कृष्णेऽथकृष्णोऽजनिदेवकीतः। सिंहंगतेऽर्के विधिभेनयुक्ता तत्राष्टमी यातु विधूदये बुधे॥ वही, पृष्ठ १४।

६—त्याज्याष्टमी चेदथ वाजि बिद्धा तथाग्नि विद्धा विधिमच हेयम्। चेदष्टमीनोविधि-भेनयुक्ता महात्मभिर्विष्णु परायणैस्तैः॥ वही, पृ० १४-१५॥

७—जन्माष्टमीसात्र मुदाव्रतोत्सवं कृष्णार्जनं जागरणं महाफलम्। अनेकजन्मार्जित पापनाशनं कृष्णस्य कीर्तेः श्रवणं च कीर्तनम्॥ वही, पृ० १४

जो भक्त भगवान् की निष्काम भक्ति करते हैं उनकी भक्ति शान्ताभक्ति कही जाती है।

इन विविध भावों की भक्ति का प्रचार वस्तुतः रामानुजाचार्य के कई पीढ़ियों पूर्व आलवार भक्तों में चला आ रहा था, किन्तु रामानुज के उपरांत तो यह आन्दोलन इतना अधिक व्यापक एंव अनुभूतिमय हो गया कि भक्ति को केवल देव-विषयक-रति कह कर ही नहीं टाला जा सकता था। साहित्य के शास्त्रियों ने यद्यपि भक्ति को किसी रस की संज्ञा नहीं दी थी और ऐसा करने के लिए उनके पास कुछ महत्वपूर्ण तर्क भी थे (एक तो किसी भी आचार्य ने भक्ति को रस नहीं माना था, अतः बाद के आचार्य इस प्रकार की परम्परा के विरुद्ध नहीं जा सकते थे; दूसरे भक्ति रस की अनुभूति कुछ व्यक्तियों तक ही सीमित मानी जाती थी, यह लोकानुभूति के रूप में कभी भी स्वीकृत न हुई।) किन्तु मध्ययुग में भक्ति व्यक्तिमात्र के हृदय का स्पंदन बन गई, जीवन की सामान्य अनुभूतियों के स्तर पर भक्तों ने उसे उतार दिया। अतः कुछ आचार्यों के मन में भक्ति को रस मान कर उसका शास्त्रीय विवेचन भी करने की भावना उठी। ऐसे आचार्यों में वृन्दावन के गौड़ीय सम्प्रदाय के प्रसिद्ध भक्त रूपगोस्वामी तथा जीव गोस्वामी के नाम लिए जा सकते हैं। 'हरिभक्ति-रसामृत-सिन्धु' में उन्होंने भक्ति रस का बड़ा ही सुन्दर विवेचन किया है। डाक्टर दीनदयालु गुप्त[1] ने बतलाया है कि रूपगोस्वामी के अनुसार मुख्य भक्ति रस के अन्तर्गत पाँच रस— शान्त, प्रीति, प्रेम, वत्सल तथा मधुर और गौण-भक्ति-रस के अन्तर्गत हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, भयानक, वीभत्स आदि सात रस आते हैं। इस प्रकार भक्तिको रस मानकर इन आचार्यों ने शान्ता-भक्ति, माधुर्य-भक्ति, वात्सल्य-भक्ति, दास्य-भक्ति, सख्य-भक्ति आदि का विस्तृत विवेचन किया है जिनके सम्बन्ध में विशेष ज्ञान डा० दीनदयालु जी के 'अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय' ग्रन्थ से प्राप्त किया जा सकता है।

जब भक्ति को रस स्वीकार कर लिया गया तब विभिन्न भावों (शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, माधुर्य) की भक्ति का भी विस्तृत प्रचार हो गया और भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों में एक या अनेक भावों की भक्ति-पद्धति को भी स्थान मिल गया। प्रायः यही देखा गया है कि भक्ति के भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों ने लगभग सभी प्रकार के भक्ति-भावों को क्रमशः अपना लिया है। आधुनिक

१—डॉ० दीनदयालु गुप्त—अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ५९४-९५।

रामानन्द-सम्प्रदाय में इन पाँचों ही भावों की भक्ति-पद्धति का प्रचार एवं महत्त्व पाया जाता है।

स्वयं रामानन्द जी ने भक्त और भगवान् (जीव और ईश्वर) में नव प्रकार के सम्बन्ध स्वीकार किए हैं :—पिता-पुत्र सम्बन्ध, रक्ष्य-रक्षक सम्बन्ध, शेष-शेषित्व सम्बन्ध, भार्या-भर्तृत्व सम्बन्ध, स्व-स्वामी सम्बन्ध, आधार-आधेय सम्बन्ध, सेव्य-सेवक सम्बन्ध, आत्मा-आत्मीयत्व सम्बन्ध तथा भोग्य-भोक्तृत्व सम्बन्ध।[१] यदि इन सम्बन्ध-भावों का वर्गीकरण किया जाय तो भार्या-भर्तृत्व सम्बन्ध, आत्मा-आत्मीयत्व सम्बन्ध तथा भोग्य-भोक्तृत्व सम्बन्ध को माधुर्य भक्ति के मूल आधार के रूप में स्वीकार किया जा सकता है; पिता-पुत्र सम्बन्ध, स्व-स्वामी सम्बन्ध, रक्ष्य-रक्षक सम्बन्ध, शेष-शेषित्व सम्बन्ध, आधार-आधेय सम्बन्ध तथा सेव्य-सेवक सम्बन्ध को दास्य-भक्ति का मूल आधार माना जा सकता है और शान्ता भक्ति को भी इससे ही सम्बद्ध किया जा सकता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि स्वामी रामानन्द जी ने केवल तीन प्रकार की ही भक्ति-पद्धतियों—माधुर्य, शान्त और दास्य—को मान्यता प्रदान की थी, किन्तु दास्य-भक्ति पर उन्होंने विशेष बल दिया है। दास्य-भक्ति ही रामानन्द सम्प्रदाय की मुख्य भक्ति-पद्धति है। नीचे हम इन विभिन्न प्रकार की भक्ति-पद्धतियों का कुछ विस्तार से विवेचन प्रस्तुत करेंगे। आधुनिक रामानन्द-सम्प्रदाय में इन सभी प्रकार की भक्ति-पद्धतियों का प्रचलन है। अतः यह विवेचन आवश्यक था।

दास्य-भक्ति—रामानन्द जी ने दास्य भक्ति पर पर्याप्त बल दिया है। उनके अनुसार भगवत्कैंकर्य ही भक्तों का प्रधान गुण है।[२] अपने अनुयायियों को तो उन्होंने यह भी आदेश दिया है कि वे ईर्ष्या-द्वेषादि का परित्याग करके, सावधान चित्त होकर, सांग-सपार्षद लक्ष्मण-सीता सहित वेदवेद्य भगवान् राम का नित्य कैंकर्य करके कालयापन करें।[३] भगवान् ही जीवों के स्वामी हैं, एक-मात्र वही शेषी हैं।[४] अतः मुमुक्षु जीव को भगवत्कैंकर्य के अतिरिक्त अन्य किसी देव का भी कैंकर्य नहीं करना चाहिए।[५]

१—श्री वैष्णव मताब्ज भास्कर—सं० पं० रामटहलदास, पृष्ठ ७०-७१।

२—श्री वै० म० भा०, भगवदाचार्य, पृ० १९७।

३—वही, पृ० २००।

४—श्री वै० म० भा०, पं० रा० ट० दास, पृ० ५।

५—वही, पं० रा० ट० दास, पृ० ७५।

जो भक्त भगवान् की निष्काम भक्ति करते हैं उनकी भक्ति शान्ताभक्ति कही जाती है।

इन विविध भावों की भक्ति का प्रचार वस्तुतः रामानुजाचार्य के कई पीढ़ियों पूर्व आलवार भक्तों में चला आ रहा था, किन्तु रामानुज के उपरांत तो यह आन्दोलन इतना अधिक व्यापक एंव अनुभूतिमय हो गया कि भक्ति को केवल देव-विषयक-रति कह कर ही नहीं टाला जा सकता था। साहित्य के शास्त्रियों ने यद्यपि भक्ति को किसी रस की संज्ञा नहीं दी थी और ऐसा करने के लिए उनके पास कुछ महत्वपूर्ण तर्क भी थे (एक तो किसी भी आचार्य ने भक्ति को रस नहीं माना था, अतः बाद के आचार्य इस प्रकार की परम्परा के विरुद्ध नहीं जा सकते थे; दूसरे भक्ति रस की अनुभूति कुछ व्यक्तियों तक ही सीमित मानी जाती थी, यह लोकानुभूति के रूप में कभी भी स्वीकृत न हुई।) किन्तु मध्ययुग में भक्ति व्यक्तिमात्र के हृदय का स्पंदन बन गई, जीवन की सामान्य अनुभूतियों के स्तर पर भक्तों ने उसे उतार दिया। अतः कुछ आचार्यों के मन में भक्ति को रस मान कर उसका शास्त्रीय विवेचन भी करने की भावना उठी। ऐसे आचार्यों में वृन्दावन के गौड़ीय सम्प्रदाय के प्रसिद्ध भक्त रूपगोस्वामी तथा जीव गोस्वामी के नाम लिए जा सकते हैं। 'हरिभक्ति-रसामृत-सिन्धु' में उन्होंने भक्ति रस का बड़ा ही सुन्दर विवेचन किया है। डाक्टर दीनदयालु गुप्त[१] ने बतलाया है कि रूपगोस्वामी के अनुसार मुख्य भक्ति रस के अन्तर्गत पाँच रस—शान्त, प्रीति, प्रेम, वत्सल तथा मधुर और गौण-भक्ति-रस के अन्तर्गत हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, भयानक, वीभत्स आदि सात रस आते हैं। इस प्रकार भक्तिको रस मानकर इन आचार्यों ने शान्ता-भक्ति, माधुर्य-भक्ति, वात्सल्य-भक्ति, दास्य-भक्ति, सख्य-भक्ति आदि का विस्तृत विवेचन किया है जिनके सम्बन्ध में विशेष ज्ञान डा० दीनदयालु जी के 'अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय' ग्रन्थ से प्राप्त किया जा सकता है।

जब भक्ति को रस स्वीकार कर लिया गया तब विभिन्न भावों (शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, माधुर्य) की भक्ति का भी विस्तृत प्रचार हो गया और भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों में एक या अनेक भावों की भक्ति-पद्धति को भी स्थान मिल गया। प्रायः यही देखा गया है कि भक्ति के भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों ने लगभग सभी प्रकार के भक्ति-भावों को क्रमशः अपना लिया है। आधुनिक

१—डॉ० दीनदयालु गुप्त—अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ५६४-६५।

रामानन्द-सम्प्रदाय में इन पाँचों ही भावों की भक्ति-पद्धति का प्रचार एवं महत्त्व पाया जाता है।

स्वयं रामानन्द जी ने भक्त और भगवान् (जीव और ईश्वर) में नव प्रकार के सम्बन्ध स्वीकार किए हैं :—पिता-पुत्र सम्बन्ध, रक्ष्य-रक्षक सम्बन्ध, शेष-शेषित्व सम्बन्ध, भार्या-भर्तृत्व सम्बन्ध, स्व-स्वामी सम्बन्ध, आधार-आधेय सम्बन्ध, सेव्य-सेवक सम्बन्ध, आत्मा-आत्मीयत्व सम्बन्ध तथा भोग्य-भोक्तृत्व सम्बन्ध।[१] यदि इन सम्बन्ध-भावों का वर्गीकरण किया जाय तो भार्या-भर्तृत्व सम्बन्ध, आत्मा-आत्मीयत्व सम्बन्ध तथा भोग्य-भोक्तृत्व सम्बन्ध को माधुर्य भक्ति के मूल आधार के रूप में स्वीकार किया जा सकता है; पिता-पुत्र सम्बन्ध, स्व-स्वामी सम्बन्ध, रक्ष्य-रक्षक सम्बन्ध, शेष-शेषित्व सम्बन्ध, आधार-आधेय सम्बन्ध तथा सेव्य-सेवक सम्बन्ध को दास्य-भक्ति का मूल आधार माना जा सकता है और शान्ता भक्ति को भी इससे ही सम्बद्ध किया जा सकता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि स्वामी रामानन्द जी ने केवल तीन प्रकार की ही भक्ति-पद्धतियों—माधुर्य, शान्त और दास्य—को मान्यता प्रदान की थी, किन्तु दास्य-भक्ति पर उन्होंने विशेष बल दिया है। दास्य-भक्ति ही रामानन्द सम्प्रदाय की मुख्य भक्ति-पद्धति है। नीचे हम इन विभिन्न प्रकार की भक्ति-पद्धतियों का कुछ विस्तार से विवेचन प्रस्तुत करेंगे। आधुनिक रामानन्द-सम्प्रदाय में इन सभी प्रकार की भक्ति-पद्धतियों का प्रचलन है। अतः यह विवेचन आवश्यक था।

दास्य-भक्ति—रामानन्द जी ने दास्य भक्ति पर पर्याप्त बल दिया है। उनके अनुसार भगवत्कैंकर्य ही भक्तों का प्रधान गुण है।[२] अपने अनुयायियों को तो उन्होंने यह भी आदेश दिया है कि वे ईर्ष्या-द्वेषादि का परित्याग करके, सावधान चित्त होकर, सांग-सपार्षद लक्ष्मण-सीता सहित वेदवेद्य भगवान् राम का नित्य कैंकर्य करके कालयापन करें।[३] भगवान् ही जीवों के स्वामी हैं, एक-मात्र वही शेषी हैं।[४] अतः मुमुक्षु जीव को भगवत्कैंकर्य के अतिरिक्त अन्य किसी देव का भी कैंकर्य नहीं करना चाहिए।[५]

१—श्री वैष्णव मताब्ज भास्कर—सं० पं० रामटहलदास, पृष्ठ ७०-७१।

२—श्री वै० म० भा०, भगवदाचार्य, पृ० १९७।

३—वही, पृ० २००।

४—श्री वै० म० भा०, पं० रा० ट० दास, पृ० ५।

५—वही, पं० रा० ट० दास, पृ० ७५।

इस कैंकर्य के दो व्यावहारिक रूप हैं :—एक तो भगवान् के अर्चावतार की विशेष रूप से सेवा करना, उनके मंदिर में झाड़ू लगाना, मूर्ति को स्नान कराना, उसका शृंगार करना, उसे भोग लगाना आदि और दूसरे अपने मन से समस्त अहंकार का निरास करके अपने को असत्य, अशौच, नीचता आदि का भाजन समझना तथा अपने को अल्पशक्ति, अचेतन, भृत्यकर्म के अयोग्य, दोषागम, दुरात्मा आदि समझ कर भगवान् से अपने दोषों की उपेक्षा करने की प्रार्थना करना। रामानन्द जी ने प्रथम पक्ष पर बल देते हुए लिखा है कि भक्त को भगवान् की पूजा सामग्री जुटा कर उनके मंदिर में झाड़ू भी लगाना चाहिए।[1] भक्त की मानस-साधना के सम्बन्ध में वे कहते हैं कि भगवान् को नैवेद्य समर्पित करते समय भक्त को उनसे यह प्रार्थना करनी चाहिए कि "हे भगवन्! मैं असत्य, अशौच, नीचता आदि का भाजन हूं, मै अल्पशक्ति, भृत्यकर्म के अयोग्य, दोषागार, दुरात्मा हूँ, अतः आप मेरे द्वारा समर्पित नैवेद्य की उपेक्षा न करें। क्योंकि आपको कौशल्या, जनकात्मजा अथवा लक्ष्मण के द्वारा परोसे हुए पक्वान्न से कहीं अधिक प्रिय पंपा में शबरी द्वारा दिए गए बेर लगे थे, आपने भारद्वाज, विदुर आदि द्वारा दिए गए भोज्य पदार्थों को सहर्ष स्वीकार कर लिया था—अतः भक्ति-विवश आप मेरे दिए पदार्थों की भी अवहेलना न करें।[2]

इस प्रकार रामानन्द जी ने दास्य भक्ति के सम्बन्ध में दो बातों पर अधिक बल दिया है : [illegible] के सम्बन्ध को भली भाँति समझ लेना और सीता राम का कैंकर्य करना, तथा आत्मदोषों का नित्यप्रति अनुसंधान करना। "श्री वैष्णव-मताब्ज-भास्कर' में उन्होंने स्पष्ट ही कहा है कि जीवों को सीता-राम के स्वरूप तथा उनसे अपने सम्बन्ध को उचित रीति से समझना चाहिए तथा आत्म-दोषानुसंधान करते हुए भगवत्कैंकर्य करना चाहिए।[3]

माधुर्य भक्ति—रामानन्द जी ने स्वयं माधुर्य भक्ति का कोई भी विवेचन प्रस्तुत नहीं किया है और न इस प्रकार के संकेत ही दिए हैं जिनसे यह अनुमान किया जा सके कि उनका झुकाव इस प्रकार की भक्ति-पद्धति की ओर भी था। फिर भी उन्होंने भक्त और भगवान् के बीच भार्या-भर्तृत्वसंबन्ध, आत्मा-आत्मीयत्व सम्बन्ध, भोग्य-भोक्तृत्व सम्बन्ध आदि सम्बन्धों को स्वीकार करके

१—वही, भगवदाचार्य, पृ० १६८।

२—श्रीरामार्चनपद्धति—रामनारायणदास, पृ० २२।

३—श्री वै० म० भा०, रा० ट० दास, पृ० ७।

इस भक्ति-पद्धति में अष्टयामीय उपासना का विशेष महत्वपूर्ण स्थान है। इधर कुछ वर्षों से रसिक-सम्प्रदाय में रास का भी महत्व अधिक बढ़ता जा रहा है। 'वृहत् कौशल खण्ड'[1] ग्रन्थ में राम-रास का बहुत ही विस्तार से वर्णन किया गया है। पीछे उसके विभिन्न प्रकरणों पर प्रकाश डाला जा चुका है। इन प्रकरणों पर एक विहंगम दृष्टि डालने से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि रामानन्द-सम्प्रदाय की श्रृंगारी शाखा पर कृष्णभक्ति-सम्प्रदायों का प्रभाव बढ़ता ही जा रहा है और कहीं-कहीं तो यह शिष्टता की सीमा का भी अतिक्रमण कर गया है। राम का एक पत्नीव्रत प्रसिद्ध है ही, साथ ही राम के प्रति दास्य-भावना की भक्ति भी उतनी ही प्रसिद्ध है। तुलसी ने इस मर्यादा का पूरा निर्वाह किया है। आगे चल कर राम की अनेक प्रेमिकाओं की भी कल्पना की जाने लगी और उन्हें रसिक-राज के रूप में चित्रित किया जाने लगा। परिणाम-स्वरूप रामानन्द-सम्प्रदाय में गुह्य और रहस्य का प्रवेश हो गया, राम कृष्ण की भाँति प्रेमी नायक बन गए और भक्तों के मस्तक पर ऊर्ध्व पुण्ड्र के स्थान पर सीता जी की विन्दी लग गई। वैसे संयत श्रृंगार तक बढ़ जाने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती, किन्तु कहीं-कहीं तो यह श्रृंगार मर्यादा का भी उल्लंघन कर गया है, जैसे कृपानिवास के ग्रंथों में। अवश्य ही राम के उपासकों को इस प्रकार की अश्लीलता से रामभक्ति को मुक्त ही रखना चाहिए।

सख्य भक्ति—रामानन्द स्वामी ने सख्य-भाव की भक्ति-पद्धति को कोई मान्यता नहीं दी थी, किन्तु कालान्तर में अन्य भक्ति-सम्प्रदायों के प्रभाव से उनके सम्प्रदाय में इस भाव की भक्ति-पद्धति का भी प्रवेश हो गया। राम सखे इस भक्ति प्रणाली के एक प्रमुख उपासक थे। श्री रूपकला जी ने सख्यरस का परिचय इस प्रकार दिया है:[2] विषयालम्बन—मित्र सुखद, द्विभुज वेष, चतुर शिरोमणि, सत्यसंकल्प, सुखसिन्धु, श्रीरामभद्र, रघुनाथ, अवधविहारी श्रीरामचन्द्र। आश्रयालम्बन—लाल लाड़ले, लखन जी, शिव, सुग्रीव, विभीषण, वीरमणि राजकुमारादि। उद्दीपन—भूषण, धनुष, शर, मधुर बचन। अनुभाव—साथ-साथ भोजन, खेल, मृगया, विचित्र परिहास। सात्विक भाव—रोमांच, स्तम्भ, प्रलय, स्वेद, विवर्ण, कम्प, अश्रु, स्वरभंग। व्यभिचारी—लगभग सभी संचारी; स्थायी-भाव निरंतर मित्र भाव।

१—वृहत्कौशल खण्ड, भाग २ प्रकाशक रामकिशोर शरण, हनुमत निवास, अयोध्या।

२—भक्तमाल, भक्तिसुधास्वाद तिलक, पृ० १३।

रूपकला[१] जी के अनुसार इस प्रकार की भक्ति-पद्धति में भगवान् को सखा, भाई अथवा बहनोई (बहिन का पति) आदि माना जाता है।

सिद्धान्त मुक्तावली[२] के अनुसार सखा चार प्रकार के होते हैं: सुहृद्, सखा, प्रिय और नर्म। सुहृदों के विषय में मुक्तावली में लिखा है: 'सुहृद सखा से अधिक वय वत्सलताकरियुक्त।' सखा की परिभाषा इस प्रकार दी गई है:—'कछुक न्यून वय सो सखा दास्य धर्म करि उक्त।' प्रिय सखा और नर्म सखाओं का परिचय इन पंक्तियों में दिया गया है—'तुल्य वय सो प्रिय सखा नर्म सखा लखु सोइ। रमनि रूपधरि रमनि की जिय लालसासो होइ।'

'रामसखे' ने अपने ग्रन्थ 'रामसखे पदावली' तथा 'नृत्य-राघव-मिलन' में इस रस की अनेक सुन्दर-सुन्दर रचनाएँ की हैं। उनके उपरान्त उनकी शिष्य-परम्परा में चित्रनिधि, प्रेमसिन्धु, शीलसिन्धु, सुशीला जी, चित्रसिन्धु, रसरंग-मणि आदि प्रसिद्ध भक्त हुए। इन्होंने भगवान् राम की सखाभाव की भक्ति को बहुत ही विस्तृत कर दिया है। आज तो अनेक साधु उनकी परम्परा में सर्वत्र ही देखे जा सकते हैं। चित्रनिधि के शिष्य रामानुजदास ने राम को तुष्ट करने के लिए विदूषकों की भी रीति चलाई थी।

'रसिक प्रकाश भक्तमाल' में राम के विजय, सुकण्ठ, सुवीरमणि, विद्याधर, शुभ, विद्युद्वर्ण, कलावर्द्धन, रसमंदिर, मालाधर, चन्द्रवर्ण, पुष्पमाल, प्रभासिन्धु, श्री निधि, लक्ष्मी निधि और चित्रशील आदि प्रमुख सखा बतलाए गए हैं। इनमें कुछ तो राम के चचेरे भाई, कुछ मिथिला के श्याले आदि और कुछ अवध के साथी थे।

इस प्रकार की भक्ति-पद्धति में भी 'अष्टयाम' और रास को महत्व दिया गया है।

वात्सल्य भक्ति—सिद्धान्त मुक्तावली[३] में वात्सल्य रस की व्याख्या करते हुए रसिक अली ने लिखा है: अत्यन्त सुकुमार सुलक्षणों से युक्त, विनयी, शीलवान् भगवान् श्री रामचन्द्र जी इसके आलम्बन हैं, रघुनाथ की मृदु हँसी, तोतली बोली और उनका बाल स्वभाव उद्दीपन है। अंग पोंछना तथा अंग में लेकर उनका मस्तकाघ्राण करना, उनका लालन-पालन आदि तथा स्थायी भाव

१—भक्ति सुधा स्वाद तिलक-भक्तमाल, पृ० २२।

२—सिद्धान्त मुक्तावली, पृष्ठ ४२-४३।

३—वही।

वत्सलता है। रूपकला जी ने भक्तमाल की टीका में इस रस का वर्णन और भी विस्तार से किया है। उनके अनुसार दाशरथि, श्री कौशल्यानन्द-वर्द्धक, बालक रामलला जी, सियावर, सीतापति, महाराजकुमार, लालजी, श्रीराम जी इस रस के विषयालम्बन हैं, आश्रयालम्बन हैं अम्बा श्री कौशल्या महारानी जी, श्री दशरथ जी, अम्बा श्री सुनयना जी महारानी, सुमित्रा आदि; उद्दीपन हैं मीठे तोतले वचन, बुलाक, घुंघरू, कालाविन्दु, बाललीला, भोलापन, सरलता; अनुभाव है खिलाना, लाड़-दुलार, खिलौने देना, जन्मोत्सव आदि; इसके अन्तर्गत रोमांच, स्तम्भ प्रलय, स्वेद, विवर्ण, कम्प, अश्रु, स्वरभंग आदि सात्विक भाव आते हैं; व्यभिचारी भावों में अंगताप, कृशता, जागरण, आलम्बनशून्यता, अधृति, उन्माद, मूर्च्छा, प्रहर्ष और मृत्यु प्रमुख हैं। रूपकला जी के अनुसार इसका स्थायी भाव है 'सुतविषयक रति'।

'रसिक प्रकाश भक्तमाल' के अनुसार मिथिला में जनक जी तथा उनके भाई सीरध्वज, कुशकेतु, यशध्वज, वीरध्वज, केकीध्वज और रानियाँ सुनयना, शुभचित्रा, सुष्ठुदर्शना, सुखवर्द्धिनी, चन्द्रकान्ता आदि; अवध में कोशलनरेश दशरथ, उनके वीरसिंह, शूरसिंह, विजयसिंह, जयशील, चन्द्रशेखर, महाबाहु, धर्मशील, रत्नभानु आदि भाई और इन भाइयों की क्रमशः रत्नकला, रत्नप्रभा, रूपवती, मदवती, भ्रमरकेशि, मदशिला, सुचित्रा, चन्द्रवती आदि रानियाँ तथा स्वयं राजा दशरथ की कैकेयी, सुमित्रा और कौशल्या आदि रानियों की भक्ति वात्सल्य भाव ही की थी।

पीछे रामानन्द स्वामी की भक्ति-पद्धति का विवेचन प्रस्तुत करते समय यह देखा जा चुका है कि स्वामी जी की भक्ति प्रमुखतया दास्यभाव की थी, किन्तु नवधा भक्ति-पद्धति में उनकी पूरी आस्था थी। साथ ही ब्रह्म और जीव के अनेक संबन्धों में उन्होंने पिता-पुत्र संबन्ध को भी स्वीकार किया था, जीव पुत्रवत् और ब्रह्म उसका पिता माना गया। इसी कारण रामानन्द जी की शिष्य-परम्परा में दास्य-भाव की ही भक्ति प्रधान रही, अन्य भक्ति-विधाओं का सम्यक् विकास न हो सका। तुलसी ने दास्यभाव की भक्ति के साथ-साथ माधुर्य एवं वात्सल्य भाव की भी भक्ति का निरूपण किया था। उनके उपरांत तो रामानन्द सम्प्रदाय में शृंगार का पूरा-पूरा समावेश हो ही गया, साथ ही भक्ति की अन्य विधाओं का भी पूरा प्रचार हुआ। वात्सल्य-रस के सबसे बड़े भक्त थे सूरकिशोर जी, सिया जू जिनकी कन्या के रूप में अवतरित हुई थीं। इन्होंने मिथिला में मणिभूमि नामक स्थान में उपास्य स्थल प्रकट किया था। राम को

ये अपना यामाता मानते थे। कील्ह स्वामी के ये पौत्र शिष्य थे। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है 'अन्दोल रहस्य दीपिका' जिसमें इन्होंने हिण्डोला आदि का सुन्दर वर्णन किया है।

सूरकिशोर की परम्परा का आज भी लोप नहीं हो गया है। यह अवश्य है कि उनके जैसे वात्सल्य-रस-निष्णात भक्त क्वचित्-कदाचित् ही मिल पाते हैं।

शान्ता भक्ति—रामानन्द जी ने शान्ता भक्ति का स्वतन्त्र रूप से विवेचन नहीं किया है और न इस प्रकार की भक्ति में उनकी कोई आस्था ही प्रतीत होती है। उनको तो दास्य भाव ही अभीष्ट था, वे भगवान् के सबसे प्रिय किंकर होना चाहते थे। वे तो भगवान् के मंदिर में झाड़ू लगाकर भी कृतकृत्य होना चाहते थे। किन्तु उनके द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय में शान्ता भक्ति का भी प्रवेश अन्य भक्ति-पद्धतियों के साथ हो ही गया। यह अवश्य है कि इस प्रकार के उपासक क्वचित्-कदाचित् ही दृष्टिगत होते हैं। 'सिद्धान्त मुक्तावली' में रसिक अली जी ने रामानन्द-सम्प्रदायान्तर्गत शान्ता भक्ति का भी विवेचन प्रस्तुत किया है। रूपकला जी ने तो इस भक्ति-पद्धति पर विशेष रूप से प्रकाश डाला ही है।[१] उनके अनुसार इष्ट श्रीरामचन्द्र, हरि, परब्रह्म, सच्चिदानन्द, जगदेक-कर्ता, भगवान्, विश्वम्भर, व्यापक, सर्वज्ञ, शाङ्‌र्गधर, श्री सीतापति, परमात्मा, अद्वैत, परमानन्दात्मा, सचराचर रूप ही शान्ता भक्ति के विषयालम्बन हैं, आश्रयालम्बन हैं ब्रह्मा, शिव, सनकादि, नारद, बसिष्ट, अगस्त्य आदि भक्त; इस भक्ति रस के उद्दीपन हैं उपनिषद्विचार तथा तीव्र वैराग्य। अनुभावों में नासाग्र पर दृष्टि, अवधूत चेष्टा, परम वैराग्य, निर्वैर तथा निर्ममता आदि प्रमुख हैं। इसके सात्विक भाव हैं : स्तम्भ, रोमांच, स्वेद, विवर्ण, कम्प, अश्रु, स्वरभंग, प्रलय; व्यभिचारी भावों में स्मृति, निर्वेद, आवेग, धृति, उत्सुकता, विषाद, वितर्क इत्यादि प्रमुख हैं : स्थाई भाव है प्रशान्त, मग्न, निर्द्वन्द्व, समदर्शी, विरक्तपर, तन्मय, एकाग्र एवं निस्पृह अवस्था। इस रस में भगवान् और जीव के अनेक संबन्ध माने गए हैं : भगवान् व्यापक अन्तर्यामी, शेषी, अंशी, परमात्मा, एवं ब्रह्म परात्पर हैं। तथा जीव शेष एवं अंश है। भगवान् परम स्वतन्त्र अन्तर्यामी, व्यापक, नृप, समर्थ एवं प्रेरक सूत्रधार हैं। जीव परवश पराधीन प्रजा एवं परतंत्र है। भगवान् नाथ हैं, पति हैं तथा जीव उनका सेवक। भगवान् आधार हैं जीव आधेय, भगवान् रक्षक, शरण्य एवं शरणागत-वत्सल हैं तथा जीव रक्ष्य, रक्षित,

१—रूपकला, भक्ति सुधा स्वाद तिलक, भक्तमाल, पृ० १८।

अनन्यशरणागत, भगवद्भक्त एवं प्रपन्न है; भगवान् वेद-विद्य, ज्ञेय, जगदीश हैं तथा जीव ज्ञाता, यश-श्रोता, स्तुतिकर्ता, मार्मिक, रसिक, विशेषज्ञ एवं ज्ञानी; भगवान् गुरु, शिक्षक, पतित-पावन, दया-क्षमा-मंदिर तथा जीव शिष्य, पापात्मा, पतित-दोष-भाजन, उपासक एवं समाश्रित। भगवान् परमार्थ, सर्वस्व, ध्येय एवं उपेय हैं तथा जीव त्यागी, विरक्त, वैरागी, सन्यासी, ध्यानी, योगी, आत्मनिवेदक, निर्द्वन्द्व, समदर्शी, व्रतनिष्ठ एवं शान्त; भगवान् दयालु, दाता एवं त्राता हैं, भक्त दीन, भिक्षुक, पानेवाला, पालित, आर्त्त अनाथ एवं दुखिया है; भगवान् जीव के सब कुछ हैं, जीव भगवान् के ही लिए है।

कहना न होगा कि रामानन्द-सम्प्रदाय की मुख्य भक्ति-पद्धति दास्य-भाव की है। आधुनिक रामानन्द-सम्प्रदाय में शृंगार, सख्य, वात्सल्य एवं शान्ता आदि भावों की भी भक्ति का पर्याप्त प्रचार हो गया है, फिर भी प्रत्येक प्रकार की भक्ति के मूल में दास्य भाव प्रधान रहता है। शृंगारी भक्त भगवान् के प्रति रतिभाव रखते हुये भी दास्य भाव को छोड़ते नहीं हैं। रामानन्द जी ने वस्तुतः निरहंकार दास्य-भाव का ही प्रचार किया था।

आनन्द भाष्य का मत—'आनन्द भाष्य' के मतानुसार भगवदितर वस्तुओं में वितृष्णा पूर्वक परम प्रिय भगवान् में अनुराग रूप ज्ञान ही भक्ति है। संसार की अनित्यता का विचार कर आचार्य के समीप जा कर वर्णाश्रमाचार सेवन-जनित पुण्य-क्षालित कषाय युक्त विवेक-वैराग्याभ्यास आदि से नियमित जीवन वाले व्यक्ति के हृदय में इस भक्ति का उद्भव होता है।[१]

कर्म-ज्ञान और भक्ति में 'आनन्दभाष्य' ने भगवद्भक्ति को ही ब्रह्म-प्राप्ति का उचित साधन स्वीकार किया है। उसके मत से ज्ञानातिरेकयुक्त कर्म वेदान्त-विचार शास्त्रानारभ्यत्व प्रसंग के कारण उचित पथ नहीं है। उसी प्रकार कर्म रहित ज्ञान तो नैष्कर्म्य-वाद की ही सृष्टि करेगा। उपनिषदों में स्पष्ट ही कहा गया है कि केवल प्रवचन, मनन, ध्यान, श्रवण से आत्मस्वरूप का ज्ञान नहीं होता, अपितु अतिशय प्रेम युक्त जिस पुरुष को यह आत्मा वरण कर लेता है, उसी पुरुष विशेष द्वारा वह जाना (उपलब्ध) जाता है।[२] अतः भक्ति में भगवत् प्रसाद ही मुख्य है। इसका फल भी भगवत् साक्षात्कार ही है।

१— आनन्दभाष्य, १-१-१, पृ० ६।

२—१-१-१, पृ० ६।

भगवान् का सतत चिन्तन, स्मरण, मनन, निदिध्यासनादि भक्ति के ही अपर नाम हैं। ध्रुवानुस्मृति, पराभक्ति आदि पदों से भक्ति का ही बोध कराया जाता है। मुमुक्षुओं को उपायान्तरों को छोड़ कर केवल भक्ति की ही शरण जाना चाहिए। 'मामेकं शरणं व्रज' में भगवान् श्रीकृष्ण ने अनन्य शरणागति को ही प्रधान माना है। ज्ञान की पराकाष्ठा भी भक्ति ही है, यह पहले कहा जा चुका है। निर्गुण ब्रह्म में भी भक्ति सम्भव है, क्योंकि ब्रह्म को निर्गुण कह कर उसमें प्राकृत गुणों-निकृष्ट सत्वादि प्राकृत गुण — का अभावमात्र व्यंजित किया जाता है।[१] निदिध्यासनादि साधनों से निर्मलीकृत मानस द्वारा यह मनोमय भगवान् प्राप्य हैं। सम्यगाराधन से ही उनका साक्षात्कार हो सकता है।

भक्त को नित्य ही वास्तविक तत्व का अनुसंधान करना चाहिए। 'मामेकं शरणं व्रज' में गीताचार्य ने ब्रह्म को ही ज्ञेय एवं उपास्य माना है।[२] यह ध्यान तैलधारावत अविच्छिन्न होना चाहिए। सतत इसकी आवृत्ति भी होनी चाहिए। उपास्य विषयक स्मृति ही उपासना-वेदनादि पदों से अभिहित की जाती है। ब्रह्म को अपने आत्मा का भी आत्मा मान कर उपासना करनी चाहिए।[३]

मन आदि प्रतीकों में आत्मबुद्धि नहीं करनी चाहिए, क्योंकि मन रूप प्रतीक उपासक का आत्मा नहीं है। 'मनोब्रह्म' में जो सामान्याधिकरण दीख पड़ता है वह तो मन आदि में ब्रह्म दृष्टि करने के लिए है, न कि मन को ही ब्रह्म मान लेने के लिए। प्रतीकोपासना में प्रतीक की ही उपासना होती है, ब्रह्म की नहीं। अब्रह्म में ब्रह्म बुद्धि रखना ही प्रतीक है।[४] नासाग्र पर दृष्टि करके आसीन होकर ही ब्रह्म की उपासना करनी चाहिए। न तो खड़े होकर उपासना ठीक हो सकती है—चित्त विक्षेप के कारण, और न चलते हुए—अनेक वस्तुओं के दर्शन से चित्त के चंचल होने के कारण, और न सोते हुए—निद्रा-प्रसंग के कारण।[५] ब्रह्म का सतत चिन्तन आसीन होने पर ही सम्भव होता है, ध्यान में निरत होने वाले व्यक्ति के लिए अचलता आवश्यक है, यह अचलता आसीन होने पर ही संभव हो सकती है।[६]

१—१-१-२, पृ० २७-३० ।

२—३-३-१६, पृ० ३७० ।

३—४-१-३, पृ० ३८८-९० ।

४—४-१-४, पृ० ३९०।

५—४-१-७, पृ० ३९२ ।

६—४-१-८-११, पृ० ३९२-९५ ।

'आनन्दभाष्य' में विभिन्न भक्ति-पद्धतियों एवं भिन्न-भिन्न साधनों पर कोई प्रकाश नहीं डाला गया है। भक्ति की मूलभूत भावना, उपासना-पद्धति आदि पर ही इस ग्रन्थ में ध्यान दिया गया है। उनकी पुनरावृत्ति अनावश्यक है।

भक्ति के अधिकारी—रामानन्द स्वामी ने भक्ति का द्वार ऊँच-नीच, शक्त-अशक्त, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सभी के लिए उन्मुक्त कर दिया है। उनके भगवान् परम दयालु हैं, वे जाति-पाँति का भेदभाव नहीं करते, क्रिया-कलापादि की उन्हें अपेक्षा नहीं है।[१] चाहे शक्त हो चाहे अशक्त, मनुष्य भगवान् की शरण में चला जाय, दयालु भगवान् राम उसके कुल, बल, काल, शुद्धता आदि का बिना विचार किए ही उसे अपना लेंगे।[२] यही नहीं, भगवान् के पंचायुधों से युक्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री, चाण्डाल, पशु-पक्षी आदि भी विष्णु रूप होकर परम पवित्र तीर्थों को भी पवित्र करने वाले बन जाते हैं।[३] सर्वतीर्थाश्रयभूत देह युक्त ये महाभागवत जिस देश में निवास करते हैं, वह उनके वहाँ रहने से पवित्र एवं पापशून्य हो जाता है।[४] उन महाभागवतों की पूजा करने, चरणामृत पान करने, उनको प्रणाम करने, उनके साथ रहने तथा उनको भोजन करा कर पश्चात् भोजन करने से करोड़ों जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं।[५]

रामानन्द जी ने इन वैष्णव जनों को सर्व पूज्य माना है, और उन्हें यहाँ तक महत्व दिया है कि शास्त्रसम्मत आचरण करने वाले ब्राह्मणों से भी ऊँचा उठा दिया है। उनका कहना है कि जिस प्रकार क्षत्रिय आदि इन भागवतों की सेवा करते हैं, उसी प्रकार शास्त्रवित् ब्राह्मणों को भी चाहिए कि वे इनकी सेवा परिचर्या करें।[६]

इसी प्रकार रामानन्द जी ने यह स्पष्ट कर दिया है कि भक्ति किसी जाति या वर्ण विशेष की सम्पत्ति नहीं है। उसके अधिकारी प्राणिमात्र हैं। भगवान् की उदारता जाति-पाँति क्रियाकलापादि के भेद नहीं करती। भक्ति भवानी का

१—श्री वै० म० भा०, भगवदाचार्य पृ० १७२।

२—वही, पृ० १५६।

३—वही, पृ० १८३।

४—श्री वै० म० भा, रा० ट० दास, पृ० २४।

५—वही, पृ० २४।

६—वही, पृ० १८।

द्वार सभी के लिए उन्मुक्त है। हाँ, इस मन्दिर में प्रवेश करने के पूर्व अपने अन्तर में आस्था और विश्वास की ज्योति अवश्य ही जला लेनी होगी और जिसके अन्तर में आत्म-विश्वास तथा भगवत्प्रेम की ज्योति जल गई, वह देशकाल के बन्धनों से बहुत ही ऊँचा उठ गया। कबीर के हृदय में रामानन्द जी ने वही ज्योति जला दी थी। जुलाहा कबीर स्वामी जी की ही उदारता का बूंद पाकर सन्त कबीर हो गया, अमर हो गया। सेन, धना, रैदास आदि ऐसे ही उनके कृपापात्र थे। आज भी असंख्य नरनारी इस भक्तिसरिता का जलपान करके अपने को तृप्त कर रहे हैं।

खेद है, 'आनन्दभाष्य' में शूद्रों को वेदाध्ययन का अधिकार न देकर रामानन्द के इस उदार दृष्टिकोण की अवहेलना कर दी गई है।

सप्तम अध्याय

पूजा-सिद्धान्त तथा कर्म-काण्ड का महत्त्व और स्थान

भूमिका—रामानन्द स्वामी ने अपने ग्रन्थ 'श्रीरामार्चन पद्धति' में भगवान् की सेवा प्रणाली का बड़े विस्तार से विवेचन प्रस्तुत किया है। 'श्रीवैष्णव-मताब्ज-भास्कर' ग्रन्थ में 'श्री वैष्णव धर्म मूल तत्व' प्रकरण में उन्होंने भगवान् के अर्चावतार की सम्यक् रीति से आराधना करने का आदेश वैष्णवों को दिया था, अतः यह आवश्यक था कि वे भगवत्पूजनक्रम का भी कुछ विवेचन प्रस्तुत करें। वैष्णवों के कर्मपक्ष का कुछ विवेचन प्रसंगवश 'श्री वैष्णवमताब्जभास्कर' में ही स्वामी जी ने कर दिया था, 'श्रीरामार्चनपद्धति' ग्रन्थ में अर्चावतार की षोडशोपचार से पूजा करने का आदेश दिया गया है। आधुनिक रामानन्द सम्प्रदाय में 'श्री राम पटल' नामक ग्रन्थ का विशेष प्रचार पाया जाता है। इसमें वैष्णवों की दिनचर्या तथा भगवत्पूजन प्रणाली पर बड़े विस्तार से प्रकाश डाला गया है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त रसिक-सम्प्रदाय तथा सख्यभाव की भक्ति करने वालों में 'अष्टयामीय-उपासना' पद्धति का भी प्रचार है। समय-समय पर विभिन्न विद्वानों द्वारा लिखे गए अष्टयामीय पूजा-प्रणाली पर अनेक ग्रन्थ मिले हैं, जिनका उल्लेख इसी अध्याय में आगे किया गया है। साथ ही अष्टयामीय पूजा-प्रणाली पर भी प्रकाश डालने की चेष्टा की गई है।

श्री वैष्णवों का कर्म पक्ष—रामानन्द जी के अनुसार श्री वैष्णवों को ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करना तथा तुलसी की माला पहननी चाहिए और भगवान् के दिव्यजन्म, दिव्यकर्म तथा दिव्यनाम का सदैव स्मरण करना चाहिए।[१] उन्हें

१—श्री वै० म० भा०, भगवदाचार्य, पृ० १८२।

पंच संस्कारों से युक्त होकर भगवान् की आराधना करनी चाहिए। भुजाओं में तप्त शंख-चक्र का चिन्ह अंकित कराना चाहिए, ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना चाहिए, वैष्णव रीति से अपना नामकरण कराना चाहिए तथा गले में तुलसी की माला धारण करके साम्प्रदायिक मंत्र का जाप करना चाहिए। इन्हीं को पंचसंस्कार भी कहा गया है।[१] गुरु को चाहिए कि एक वर्ष तक वह शिष्य की परीक्षा करे, किसी शुभ दिन को अग्नि प्रज्वलित कर तप्तचक्रादि से शिष्य को समंकित कर दे। सुन्दर स्थल 'तीर्थस्थान' की मिट्टी से उसके मस्तक पर ऊर्ध्वपुण्ड् का विधान कर उसका दासान्त नामकरण करे और विधान-पूर्वक मन्त्र का उपदेश कर शिष्य को तुलसी की माला धारण करने का आदेश दे।[२]

पंचसंस्कारों से सुसज्जित वैष्णव जन को चाहिए कि वह सुन्दर कपास के सात धागों से बने हुए उत्तमकटिसूत्र, कोपीन, ऊर्ध्व वस्त्र आदि को भी धारण करे।[३] पंचायुधों से अंकित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री आदि विष्णु रूप, अतः जगत् को पवित्र करने वाले हैं।[४]

वैष्णवों के निवास स्थल—वैष्णवों के पंच संस्कार का वर्णन करने के साथ ही स्वामी जी ने उन्हें भारत के विभिन्न तीर्थों में रह कर वहाँ-वहाँ के आराध्य देव की उपासना करने का भी आदेश दिया है। उनके अनुसार वैष्णवों को बैकुण्ठ, सत्यलोक, सूर्यमण्डल, क्षीरसागर, श्वेतद्वीप, बदरिकाश्रम, नैमिषारण्य, हरिक्षेत्र, अयोध्या, काशी, अवन्ती, द्वारका, ब्रज, वृन्दावन, कालीय-कुण्ड, गोवर्द्धन, भवघ्न, गोमत पर्वत, हरिद्वार, प्रयाग, गया, गंगासागर, चित्र-कूट, नन्दीग्राम, प्रभास क्षेत्र, कूर्माचल, नीलगिरि, तुलसीवन, कृतशौच, पाण्डुरंग, बेंकटाचल, यादवाद्रि, वारणाचल, कांची, तोताद्रि आदि स्थानों में निवास कर तत्तत्स्थानों में आविर्भूत हरि की उपासना करनी चाहिए।[५]

वैष्णवों का काल-क्षेप—श्री वैष्णवों को सायंकाल एवं मध्याह्न शौचादि से निवृत्त होकर भगवान् राम की अभ्यर्चना करनी चाहिए। इसके पश्चात् उसे रामायण, महाभारत श्रीभाष्य, द्रविडमुनि के उत्कृष्ट 'प्रबन्ध' आदि का

१—वही, रा० ट० दास, पृ० ६।
२—वही, पृ० ६-१०।
३—वही, भगवदाचार्य, पृ० १८६।
४—वही, पृ० १८३।
५—वही, रा० ट० दास, पृ० २४-३७।

यथाशक्ति अध्ययन भी करना चाहिए और यदि वह अशक्त हो तो उसे चाहिए कि किसी दूसरे से पढ़वा कर 'श्री भाष्यादि' का श्रवण करे और भगवान् के नाम का स्मरण एवं उसके अर्थ का अनुसंधान करे।[१]

वैष्णवों का नित्य कर्म[२]—श्री वैष्णवों को चाहिए कि वे ब्रह्म-मुहूर्त में दाहिने अंग से उठ कर, हाथ पैर धोकर पूर्वाभिमुख होकर तीन बार 'सीताराम' शब्द का उच्चारण करें। तत्पश्चात् गुरु-परम्परा के श्लोकों का पाठ कर अपने आचार्य का ध्यान करें। पुनः बाहर आकर दाहिने कान पर जनेऊ चढ़ा कर उत्तर की ओर मुख करके मलमूत्रादि के उत्सर्ग करने का मन्त्र पढ़ कर तीन बार ताली बजा कर उनका त्याग करें।

पुनः गुदा-हस्त-पाद-प्रक्षालन करके वे पात्र शुद्ध करें। फिर दातून के उपरान्त स्नानादि द्वारा शरीर की शुद्धि करके गुरु-परम्परा की पुनरावृत्ति करता हुआ वैष्णवजन ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण कर, आचार्य का ध्यान करे और अपनी गुरु-परम्परा का अनुसंधान करता हुआ संध्यादि नित्यकर्म को नियमित रूप से करके अपने को दीन सा अनुभव करे।

तदनन्तर भक्त अस्त्रसहित एवं सीताल्लक्ष्मणादि से परिवृत्त दिव्य मंगल शरीर भगवान् राम के सर्वांग का स्मरण करे। उनके शरीर के लावण्य का चिन्तन ध्यान करके उसे चाहिए कि वह षोडशोपचार से उनकी अभ्यर्चना करे।

माध्यान्हिक अनुष्ठान के समय भी भक्त को चाहिए कि वह भगवान् और गुरु के चरणों का स्मरण कर स्नानादि से पवित्र हो जाय और फिर भगवान् की विभूति, उनके शरीर, देवर्षि, पितृ आदि का ध्यान कर उन्हें तर्पण दे। पुनः धवलवस्त्र धारण का आचमन करे और ऊर्ध्वपुण्ड्र लगा कर भगवान् की आराधना करते हुए माध्यान्हिक अनुष्ठान करे।

भगवत् पूजन-क्रम—संध्या वन्दनादि करके मुमुक्षु, भगवान् के मन्दिर में जाकर गुरु-परम्परा का अनुसंधान करता हुआ दण्डवत् प्रणाम करके तीन ताल बजा कर मन्दिर के किवाड़ खोले। तत्पश्चात् वह मन्दिर में प्रवेश कर दीपक जलावे और फिर घण्टानाद करता हुआ भगवान् को जगावे। पुनः पर्दा गिरा कर देव के दक्षिण भाग में बैठ कर पूर्व दिन के समर्पित गन्ध्यमाल्य, तुलसी

१—वही, पृ० २८-२९।

२—श्रीरामार्चनपद्धति के आधार पर।

आदि को पीठिका पर हटा कर पूजा पात्रों को शुद्ध करना चाहिए। फिर थाली में अग्निकोण से प्रारम्भ करके चारों कोनों में चार कटोरियाँ धर का एक कटोरी बीच में धरनी चाहिए। अपने वाम पार्श्व में एक घड़ा जल से भर कर रखना चाहिए, दाहिने पार्श्व में पूजा की अन्य सामग्रियों को रख कर आचार्य का अर्घ्यादि से पूजन कर प्रभु से पूजा स्वीकार करने की प्रार्थना करनी चाहिए। पुनः तीन बार प्राणायाम कर अपने अंगों में षडक्षरन्यास कर 'कौशल्यासुप्रजा-राम' इत्यादि श्लोकों को पढ़ कर प्रभु को जगाना चाहिए। इसके पश्चात् प्रभु के अंगों में पंचोपनिषन्न्यास, षडक्षरन्यास आदि करना चाहिए।

पूर्ण कुम्भ पूजा—पूर्ण कुम्भ में तुलसीदल छोड़ कर 'सुं सुरभ्यै नमः' मन्त्र पढ़ कर उस जल को सुरभि-मुद्रा दिखानी चाहिए। तत्पश्चात् मूल मन्त्र से उसे अभिमन्त्रित करना चाहिए।

पंचपात्र पूजा—पूर्ण-कुम्भ के जल से पाँचो कटोरियों को भर कर आचमनी से कटोरियों में से थोड़ा-थोड़ा जल लेकर पूर्ण कुम्भ में छोड़ना चाहिए। इन कटोरियों में निम्नलिखित औषधियाँ छोड़नी चाहिए: पाद्यपात्र में दूब, विष्णु-पर्णी, कमल और श्यामाक,: अर्घ्य पात्र में सरसों, अक्षत, कुश, तिल, यव, गन्ध, जायफल, पुष्प; आचमन पात्र में इलायची, लवंग, कंकोल, जायफल, जातीपुष्प, तथा स्नानपात्र में कूट, मजीठ, हलदी, मोथा, शिलाजीत, चम्पा, वच, कपूर, खसखस, चन्दन, जटामासी आदि छोड़नी चाहिए और इनके अभाव में इनका नाम लेकर तुलसी दल छोड़ना चाहिए। इन कटोरियों को भी मूलमंत्र से अभिमन्त्रित कर सुरभिमुद्रा दिखानी चाहिए।

विरजा जलाह्वान क्रम—आचमनी से अर्घ्य जल लेकर नासाग्र तक उठाना चाहिए और 'ॐ विरजायै नमः' मन्त्र से विरजाजल का आह्वान करना चाहिए। फिर उस जल से पूजा-सामग्री, याग भूमि और अपना प्रोक्षण कर शेष जल अन्यत्र छोड़ देना चाहिए। आचमनी को शुद्ध जल-पात्र में छोड़ कर उसे धोना चाहिए और फिर अर्घ्यपात्र में रख देना चाहिए।

पुष्पांजलि क्रम—तुलसीदल लेकर 'आधाराख्यामित्यादि' श्लोकों को पढ़ कर नारायण, नागराज, वैकुण्ठ, भूमि, साकेत, विमान, रत्नमण्डप, धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अर्थ, अज्ञान, अवैराग्य, अनैश्वर्य, वेद, सूर्य, चन्द्रमा, केतु, चामर-हस्तवाली सखियों आदि का स्मरण कर सीता लक्ष्मण सहित भगवान् के चरणों में छोड़ देना चाहिए,। इसके अनन्तर हाथ में पुष्प लेकर 'प्रपन्नाभीष्ट सन्दोह' इत्यादि श्लोक पढ़ कर श्री सीता-लक्ष्मण सहित श्रीराम का आह्वान करना चहिए

और आसनमन्त्र पढ़ कर उन्हें सिंहासन पर विराजमान करना चाहिये। पुनः आचमनी से अर्घ्य जल लेकर 'ॐ श्रीमते रामचन्द्राय नमः' मन्त्र पढ़ कर प्रभु के हस्तकमल धुलाने की भावना करके स्वतः पतन-पात्र में छोड़ देना चाहिए। फिर आचमनी को धोकर अर्घ्यपात्र में रख देना चाहिए और इसके अनन्तर भगवान् के हस्त-मुख आदि का प्रक्षालन कर दूसरे वस्त्र से उनके पदकमलों को पोंछना चाहिए। एतदनन्तर हाथ में तुलसी लेकर उत्तरवाक्य उच्चारण पूर्वक 'षोडशोपचारान् समर्पयामि' कह कर भगवच्चरणारविंद में छोड़ देना चाहिए। इसके पश्चात् आचमनी से पूर्ण कुम्भ से जल लेकर क्षीर-फल-गुड़-पूर्ण ध्यान कर उत्तरवाक्य उच्चारणपूर्वक 'मधुपर्कं समर्पयामि' कह कर भगवान् को निवेदन कर पतनपात्र में छोड़ देना चाहिए। फिर अर्घ्यादि देकर मुख-पाँव अंगोछना चाहिए और इसके बाद मंगला आरती करनी चाहिए।

दन्त धावन क्रम—हाथ में तुलसी लेकर उत्तर वाक्य उच्चारणपूर्वक 'स्नानार्थं पादुके समर्पयामि' कह कर चरणारविन्द में छोड़ देना चाहिए। फिर अर्घ्यादि देकर मनसा वा प्रत्यक्ष स्नानवस्त्र पहिनाकर तुलसी काष्ठ से उत्तरवाक्य उच्चारणपूर्वक दन्तधावन करानी चाहिए। तत्पश्चात् अपना हाथ धोकर शुद्ध जल-पात्र से ६ बार कुल्ला करा कर फिर उसी जल से उत्तरवाक्य उच्चारण पूर्वक मुख-शोधन करा कर पाद्य-आचमन देकर ताम्बूल देना चाहिए।

अंग-स्नान क्रम—पात्रस्थ गंध, तेल अथवा घी को लेकर उत्तरवाक्य उच्चारणपूर्वक 'अभ्यंगं समर्पयामि' कह कर स्वहस्त से भगवद्विग्रह को अर्पित करना चाहिए। इसी प्रकार मनसा वा प्रत्यक्ष उबटनादि से भगवद्विग्रह का मर्दन कर हस्त प्रक्षालन करना चाहिए। तत्पश्चात् पूर्ण कुम्भ के जल से उत्तर वाक्य उच्चारण पूर्वक अर्चावतार को स्नान कराना चाहिए। पात्रावशिष्ट जल से सीता लक्ष्मणादि को अर्घ्य देकर भगवान् के आभूषण, आयुध, हनुमान्, गरुड़, विष्वक्सेन, द्वारपाल आदि को अर्घ्य देकर परांकुशादि यतिवर तथा स्व-आचार्य को भी सतत मंत्रों से अर्घ्यादि देकर पूजन करना चाहिए। पात्रों को धोकर कुम्भ को पुनः भर लेना चाहिए।

अलंकार क्रम—पंचपात्रों को शुद्ध कर पूर्ण कुम्भ के जल से भर मूलमंत्र से अभिमंत्रितकर तुलसी लेकर उत्तरवाक्य उच्चारण कर 'अलंकारासनार्थम् पादुके समर्पयामि' कह कर भगवान् के चरणारविन्द में छोड़ देना चाहिए। इसके पश्चात् पूर्ववत् उत्तरवाक्य उच्चारण पूर्वक वस्त्र, उत्तरीय, उपवीत, ऊर्ध्वपुण्ड्र, चन्दन, तुलसी, पुष्प, नैवेद्यादि समर्पित करना चाहिए।

सेवाकाल क्रम—बाहर आकर पुनः दिव्य प्रबन्ध गीता, 'श्रीवाल्मीकि रामायण' का पाठ करना चाहिए।

आराधन-क्रम—महानैवेद्य समय मन्दिर में जाकर पूर्ण कुम्भ और पाँचों पात्रों को नवीन जल से धोकर अभिमंत्रित करना चाहिए। तुलसी लेकर उत्तर-वाक्य उच्चारण पूर्वक 'भोज्याशनार्थम् पादुके समर्पयामि' कह कर भगवच्चरणों में छोड़ कर उत्तर वाक्य से अर्घ्यादि देकर वस्त्र से हाथ-मुँह पोछना चाहिए। पुनः उत्तर वाक्य से धूपदीप देकर पूर्ववत् मुधपर्क समर्पित कर आचमन देकर वस्त्र से मुख प्रक्षालन करना चाहिए।

नैवेद्य समर्पण क्रम—श्री भागवत के आगे चौका लगाकर यथाशक्ति सम्पादित शुभ नैवेद्य को रखकर 'असत्यमशुचिं' इत्यादि श्लोक पढ़ कर तुलसी सहित अर्घ्य जल से नैवेद्य को प्रोक्षण कर तुलसी को नैवेद्य में छोड़ मूलमंत्र से अभिमंत्रित कर सुरभि मुद्रा दिखा कर गुरु-परम्परा को पढ़ना चाहिए और फिर उत्तरवाक्य उच्चारण पूर्वक 'नैवेद्यं समर्पयामि' कह कर नैवेद्य को अर्पित करना चाहिए।

इसके पश्चात् उत्तरवाक्य उच्चारण पूर्वक जलपान निवेदित करना चाहिए। फिर शुद्ध उदक से हाथ से मुँह धुला कर ६ बार कुल्ला करा कर पाद्याचमन देकर वस्त्र से हाथ मुँह पोंछ कर उत्तरवाक्य उच्चारण पूर्वक ताम्बूल समर्पित कर आरती करनी चाहिए। इसके अनन्तर उत्तरवाक्य उच्चारण पूर्वक पुष्पांजलि एवं दक्षिणा देकर स्तुति-पाठ करना चाहिए।

'सुरासुरेन्द्रादिमनोमधुव्रतैः' इत्यादि श्लोकों से भगवत्स्तुति करके अपने अपराधों को उनसे क्षमा कराना चाहिए। प्रदक्षिणा करते समय भी भगवान् से अपने पापों को क्षमा कर देने की प्रार्थना करनी चाहिए। फिर भगवान् को नमस्कार भी करना चाहिए।

इसके उपरान्त सीतासहित भगवान् श्रीराम को उत्तम पर्यंक में शयन कराकर श्री लक्ष्मण को अन्य पर्यंक पर सुलाना चाहिए। तत्पश्चात् भगवत्प्रसाद को मनसा चार भागों में विभाजित परिकल्पित कर पहला भाग हनुमान, विष्वक्सेन, गरुड़, सुदर्शनादि को निवेदित कर दूसरा परांकुशादि को तीसरा स्वाचार्य को समर्पित कर शेष भाग को भागवतों के साथ स्वयं खाना चाहिए।

पुनः तृतीय पहर अर्चक पुरुष को स्नानादि कर दण्डवत् प्रणाम कर मन्दिर में प्रवेश करना चाहिए और घण्टानाद पूर्वक भगवत्प्रबोधन कराना

अष्टयामीय उपासना-पद्धति—रामानन्द-स्वामी के समय में रामानन्द-सम्प्रदाय में दास्यभाव की भक्ति पर ही विशेष बल दिया गया था, किन्तु धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों समय बीतता गया यह सम्प्रदाय भारत के अन्य वैष्णव सम्प्रदायों के सम्पर्क में आता गया और यथासम्भव उनसे प्रभाव भी ग्रहण करता गया। अग्रदास के समय में यह सम्प्रदाय कृष्णभक्ति सम्प्रदाय के सम्पर्क में विशेष रूप से आया। अतः कृष्ण भक्ति के अनुकरण पर यहाँ भी अष्टयामीय पूजा-पद्धति का प्रचार हुआ। रामानन्द-सम्प्रदाय में शृंगार के प्रवेश का संक्षिप्त इतिहास पीछे दिया जा चुका है, अतः यहाँ उसमें प्रचलित उपासनापद्धति पर ही कुछ प्रकाश डाला जा सकेगा।

अष्टयामीय पूजापद्धति के सर्वप्रथम प्रचारक अग्रदास जी माने जाते हैं। उनके उपरान्त नाभा जी ने 'रामाष्टयाम' ग्रन्थ में इस पद्धति की और विस्तृत व्याख्या की, किन्तु उनके उपरान्त रसिकों में यह उपासना-पद्धति अपना प्रसार मौन ही करती रही। आधुनिक युग में जानकीघाट, अयोध्या (अवध) के महन्थ श्री रामचरण दास ने इस उपासना-पद्धति का पुनः बड़ी धूमधाम से प्रचार किया और स्वयं 'अष्टयाम' नामक एक ग्रन्थ की रचना भी की। उनकी परम्परा को छपरा के महन्थ जीवाराम जी ने और भी आगे बढ़ाया। जीवाराम जी के उपरान्त अयोध्या, लक्ष्मण-किला के युगलानन्यशरण जी ने इस उपासना पद्धति का बहुत ही अधिक विस्तार किया। उन्होंने चित्रकूट में रीवाँ नरेश विश्वनाथ सिंह जी द्वारा अनेक क्रीड़ाकुंजों का निर्माण कराया। आजकल अवध में इस उपासना पद्धति का पर्याप्त प्रचार हो गया है। अष्टयामीय पूजा पद्धति पर अनेक ग्रन्थों का निर्माण भी हो रहा है, जिनमें गोलाघाट के पंडित श्रीकान्त शरण जी का 'श्रीमन्जुरसाष्टयाम' एक सुन्दर ग्रन्थ है। नीचे अग्रदास जी के ग्रन्थ 'अष्टयाम' के आधार पर इस उपासना-पद्धति पर एक विवेचन प्रस्तुत किया जायगा। बाद के प्रायः सभी लेखकों ने इसी ग्रन्थ को अपना आधार बनाया है।

अष्टयाम—अग्रदास जी के अनुसार आठ याम इस प्रकार हैं :—निशान्त, प्रातः, पूर्वान्ह, मध्यान्ह, अपरान्ह, सायं, प्रदोष और रात्रि। निशान्त में भगवान् राम का स्नान व शृंगार होता है, प्रभात वेला में वे चतुरंगिणी सेना के साथ मृगया लीला करते हैं; पूर्वान्ह में मृगया से लौट कर भोजन करते हैं, मध्यान्ह में विश्राम कर सभा में जाकर नृत्य, वाद्य, गीत आदि देखते-सुनते हैं, कुछ दिन शेष रहने पर श्री सरयू में स्वर्णमंडित नाव पर अपने प्रियजनों को बिठा कर

चाहिए। पूर्ववत् अर्घ्यादि और मधुपर्क देकर अर्घ्यादि नैवेद्य, जल, फल, ताम्बूल आदि समर्पित करना चाहिए। तत्पश्चात् भगवान् के समीप श्री भगवच्चरित् का श्रवण या पाठ करके कालक्षेप करना चाहिए।

इसी प्रकार सायंकाल भी अर्घ्यादि समर्पित कर धूप-दीप नैवेद्यादि पूर्वक आरती करनी चाहिए।

शयन समय भी पूर्ववत् अर्घ्यादि देकर नैवेद्यादि समर्पित कर भगवान् को सुलाना चाहिए। तत्पश्चात् पूर्ववत् भगवत्प्रसादान्न श्री हनुमदादि को अर्पित कर भागवतों के साथ स्वयं भोजन करना चाहिए।

भगवत्पूजन का संक्षिप्त क्रम—'भगवत्पूजन पद्धति' ग्रन्थ में श्री स्वामी भगवदाचार्य जी ने भगवत्पूजन का संक्षिप्त-क्रम इस प्रकार दिया है: अपना नित्यनियम, स्नान, ऊर्ध्वपुंड्र और जप आदि। द्वार के बाहर भगवान् को प्रणाम, तीन बार ताली बजाना, द्वारोद्घाटन, दीपप्रज्वालन, मन्दिरमार्जन, घण्टानाद, भगवान् को जगाना, बासी पुष्पादि का उठाना, पार्षदशुद्धि, पंचपात्रस्थापन, [illegible], पूजा सामग्री-स्थापन, प्राणायाम, षडक्षरन्यास, पंचोपनिषन्न्यास, कुम्भपूजा, कुम्भ में विरजाह्वान, कुम्भ जल का अभिमन्त्रण, सुरभि मुद्रा प्रदर्शन, पंचपात्र में जल भरना, पंचपात्र के जल में औषधिनिक्षेप, पंचपात्र के जल का अभिमंत्रण, कुम्भ के जल से अथवा शुद्धोदक पात्र के जल से पूजासामग्री और भूमि का प्रोक्षण, आसन की कल्पना, २५ तत्वों का पूजन, हनुमदादि पार्षदों के आसन की कल्पना, उनका पूजन, गुरुपूजन, भगवान् को आसन पर स्थापित करना, आह्वान, आसनअर्पण करना, भगवान् को पाद्य, अर्घ्य-आचमन, भगवान् के हाथ और मुख का पोंछना, मधुपर्क, भगवान् का हस्त प्रक्षालन, आचमन, भगवान् के हाथ-मुख को पोंछना, मंगला आरती, पुष्पांजलि अर्पण, चरणपादुकाअर्पण, दन्तधावन अर्पण, गण्डूष जलार्पण, मुखशोधन, उबटन लगाना, पंचामृत स्नान, शुद्धस्नान, शरीर का पोंछना, अधोवस्त्र-यज्ञोपवीत समर्पण, ऊर्ध्वपुण्ड्र, आभूषण, उत्तरीय, गन्धचन्दन, तुलसी-समर्पण, अगपूजा, धूप दीप, अर्घ्य-आचमन, हाथ-मुंह पोछना, नैवेद्य, जल, घण्टानाद, मध्य में भगवान् को जलार्पण करना, पार्षदबुद्धि, नैवेद्य का अपसारण, आचमन, अर्घ्य गण्डूष, मुखशोधन करना, पाथ, मुख, हस्त, चरण का पोंछना, भूमि-शोधन, तुलसी आदि को प्रसाद का अर्पण करना, तुलसी आदि को जलादि का दिलाना, भगवान् को फलादि समर्पण, अर्घ्य, आचमन, हाथमुख का पोंछना, ताम्बूलादि, छत्रचंमर आदि समर्पण, दर्पण दिखाना, शृंगार-आरती पुष्पांजलि, दक्षिणा, स्तुति, प्रदक्षिणा और अन्त में प्रणाम।

अर्चावतार का महत्व—ऊपर अर्चावतार की पूजापद्धति पर प्रकाश डाला गया है। स्वामी रामानन्द जी ने अर्चावतार की विशेषताओं का इस प्रकार वर्णन किया है—देश-काल की उत्कृष्टता से रहित, आश्रिताभिमत, अर्चक के सम्पूर्ण अपराधों को क्षमा करने वाले, दिव्यदेह से युक्त, गृह, ग्राम, नगर, प्रशस्तदेश और पर्वतादि में वर्तमान तथा अपने समस्त कृत्यों में अर्चक की अधीनता स्वीकार करने वाले विग्रह विशेष (मूर्ति) को अर्चावतार कहते हैं।[१]

यह अर्चावतार चार प्रकार का होता है[२]—स्वयंव्यक्त, दैव, सैद्ध और मानुष। विद्वानों को चाहिए कि वे आह्वान, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, प्रदक्षिणा, विसर्जन आदि षोडशोपचार से उस अर्चावतार की पूजा करें।[३]

श्रद्धालु, कृती, बुद्धिमान् पुरुषों को चाहिए कि वे पक्ष, शिर, दृष्टि, मन, वचन, दोनों पाद, दोनों कर और जानु आदि अष्टांग से पृथ्वी के ऊपर दण्डवत् लेटकर उस अर्चावतार को प्रणाम करें।[४] क्योंकि जो व्यक्ति हाथ, पग फैलाकर, हाथ जोड़कर, स्तुतियों से भगवान् की स्तुति करता हुआ भगवान् को प्रणाम करता है वह विष्णुभक्त सैकड़ों यज्ञों से भी दुष्प्राप्य गति को पाता है।[५]

भगवद्भक्त को ईर्ष्याद्वेष से पृथक् होकर सावधानी से अंगोंसहित, पार्षदों सहित लक्ष्मण-सीता सहित वेदवेद्य भगवान् की स्तुति करनी चाहिए।[६] जीवों का एकमात्र उपाय भगवद्विग्रह ही है।[७] अतः रामानन्द स्वामी का आदेश है कि भक्तों को इस भगवद्विग्रह से ही अविरल-भक्ति की याचना करनी चाहिए। उनसे प्रार्थना करनी चाहिए, 'हे जगत् के स्वामी, श्रीश, जगदाधार, जगत्कारण प्रभु, परमकरुणामय, श्रीरामचन्द्र जी! आपको मेरा मुहुर्मुहुः नमस्कार स्वीकार हो। मेरी आपके चरणों में अविरल भक्ति हो। हे प्रभो, लक्ष्मीपूजित आपके चरणों में मेरा मन भ्रमर की भांति जन्म-जन्म रमण करे। दोनो श्रवणों को

१—श्री वै० म० भा०, भगवदाचार्य, पृ० १६८।

२—वही, पृ० १६८।

३—वही, पृ० १६८।

४—वही, पृ० १७२।

५—वही, पृ० १७२।

६—वही, पृ० २००।

७—वही, रा० द० दास, पृ० ६।

आप जलक्रीड़ा करते हैं। अपरान्ह में अस्त्र-शस्त्रादि की शिक्षा ग्रहण करते हैं, सायंकाल द्यूतक्रीड़ा, शतरंज आदि खेलते हैं—प्रेमोल्लास बढ़ाने वाली क्रीड़ाएं करते हैं और प्रदोष में स्नान, शृंगार तथा भोजन होता है। रात्रि में प्रिया जू के प्रेमपरायण होकर पर्यंक पर शयन करते हैं।

मानसी सेवा—ब्राह्ममुहूर्त में उठ कर साधक को अपने गुरु, भगवान् राम, सीता, लक्ष्मण, हनुमान्, सुग्रीव, अंगद, विभीषण, भरत, शत्रुघ्न तथा बाल्मीकि ऋषि का स्मरण करना चाहिये। फिर सुलोचन, सुभद्र, सुचन्द्र, जयसेन, वरिष्ठ, शुभशील, अनंग, रसकेतु आदि राम सेवा परायण मंत्रिपुत्रों का ध्यान करना चाहिए। इसके पश्चात् पुरुष रूप से दम्पति की सेवा करने वाली आठ सखियाँ—लक्ष्मणा, श्यामला, हंसी, सुगमा, वंशध्वजा, चित्ररेखा, तेजोरूपा, इन्दिरावती, तथा पुरुष रूप से दम्पति की सेवा करने वाली आठ दासियों—निगमा, सुरसा, वाग्मी, शास्त्रज्ञा, बहुमंगला, भोगज्ञा, धर्मशीला तथा विचित्रा आदि का स्मरण करना चाहिए। इसके उपरान्त किसी सरोवर के तट पर जाकर अयोध्या और सरयू का ध्यान कर स्नान करना चाहिए तथा प्राणायाम पूर्वक संध्या करनी चाहिए। फिर द्वादश तिलक आदि का विधान कर रामनामांकितमुद्रा-धनुर्बाण आदि धारण कर मंदिर में प्रवेश करके विधि पूर्वक पूजा करनी चाहिए।

इसके अनन्तर साधक को २१ योजन व्यापी साकेत का स्मरण करना चाहिए। साकेतवन के समीप ललितकुंड है, उसके मध्य में चार द्वारों से युक्त एक मंदिर है, इस मंदिर में रत्न का सिंहासन है जिसके मध्य में मणिमय अष्टदलकमल है। उसी कर्णिका पर सीताराम विराजमान हैं और चामर, छत्र, व्यजन, ताम्बूल, पुष्पमाल आदि से आठ सखियाँ—ईशान् में लक्ष्मणा, पूर्व में श्यामला, अग्नि कोण में हंसी, दक्षिण में सुगमा, नैऋ्र्त्य में वंशध्वजा, पश्चिम में चित्ररेखा, वायव्य में तेजोरूपा और उत्तर में इन्दिरावती सेवा करती हैं। ललितकुंड के उत्तर लक्ष्मणा का, पूर्व श्यामला का, दक्षिण हंसी का, पश्चिम सुगमा का, पश्चिमोत्तर वंशध्वजा का, उत्तरपूर्व चित्ररेखा का, पूर्व दक्षिण तेजोरूपा का, और दक्षिण पश्चिम इन्दिरावती का कुंज है। इसी प्रकार माधवी कुंड के उत्तर सुलोचन, ईशान् में सुभद्र, पूर्व सुचन्द्र, आग्नेय में जयसेन, दक्षिण वरिष्ठ, नैऋ्र्त्य में जयशील, पश्चिम में अनंगजित् और वायव्य में रसकेतु आदि सखाओं के कुंज हैं।

अयोध्या में सरयू तट स्थित सुरद्रुमलतादि से परिवृत्त अशोकवन के मध्य में

आप जलक्रीड़ा करते हैं। अपरान्ह में अस्त्र-शस्त्रादि की शिक्षा ग्रहण करते हैं, सायंकाल द्यूतक्रीड़ा, शतरंज आदि खेलते हैं—प्रेमोल्लास बढ़ाने वाली क्रीड़ाएं करते हैं और प्रदोष में स्नान, शृंगार तथा भोजन होता है। रात्रि में प्रिया जू के प्रेमपरायण होकर पर्यंक पर शयन करते हैं।

मानसी सेवा—ब्राह्ममुहूर्त में उठ कर साधक को अपने गुरु, भगवान् राम, सीता, लक्ष्मण, हनुमान्, सुग्रीव, अंगद, विभीषण, भरत, शत्रुघ्न तथा बाल्मीकि ऋषि का स्मरण करना चाहिये। फिर सुलोचन, सुभद्र, सुचन्द्र, जय-सेन, वरिष्ठ, शुभशील, अनंग, रसकेतु आदि राम सेवा परायण मंत्रिपुत्रों का ध्यान करना चाहिए। इसके पश्चात् पुरुष रूप से दम्पति की सेवा करने वाली आठ सखियाँ–लक्ष्मणा, श्यामला, हंसी, सुगमा, वंशध्वजा, चित्ररेखा, तेजोरूपा, इन्दिरावती, तथा पुरुष रूप से दम्पति की सेवा करने वाली आठ दासियों–निगमा, सुरसा, वाग्मी, शास्त्रज्ञा, बहुमंगला, भोगज्ञा, धर्मशीला तथा विचित्रा आदि का स्मरण करना चाहिए। इसके उपरान्त किसी सरोवर के तट पर जाकर अयोध्या और सरयू का ध्यान कर स्नान करना चाहिए तथा प्राणायाम पूर्वक संध्या करनी चाहिए। फिर द्वादश तिलक आदि का विधान कर [illegible] धनुर्बाण आदि धारण कर मंदिर में प्रवेश करके विधि पूर्वक पूजा करनी चाहिए।

इसके अनन्तर साधक को २१ योजन व्यापी साकेत का स्मरण करना चाहिए। साकेतवन के समीप ललितकुंड है, उसके मध्य में चार द्वारों से युक्त एक मंदिर है, इस मंदिर में रत्न का सिंहासन है जिसके मध्य में मणिमय अष्ट-दलकमल है। उसी कर्णिका पर सीताराम विराजमान हैं और चामर, छत्र, व्यजन, ताम्बूल, पुष्पमाल आदि से आठ सखियाँ–ईशान् में लक्ष्मणा, पूर्व में श्यामला, अग्नि कोण में हंसी, दक्षिण में सुगमा, नैऋर्त्य में वंशध्वजा, पश्चिम में चित्ररेखा, वायव्य में तेजोरूपा और उत्तर में इन्दिरावती सेवा करती हैं। ललितकुंड के उत्तर लक्ष्मण का, पूर्व श्यामला का, दक्षिण हंसी का, पश्चिम सुगमा का, पश्चिमोत्तर वंशध्वजा का, उत्तरपूर्व चित्ररेखा का, पूर्व दक्षिण तेजो-रूपा का, और दक्षिण पश्चिम इन्दिरावती का कुंज है। इसी प्रकार माधवी कुंड के उत्तर सुलोचन, ईशान् में सुभद्र, पूर्व सुचन्द्र, आग्नेय में जयसेन, दक्षिण वरिष्ठ, नैऋर्त्य में जयशील, पश्चिम में अनंगजित् और वायव्य में रसकेतु आदि सखाओं के कुंज हैं।

अयोध्या में सरयू तट स्थित सुरद्रुमलतादि से परिवृत्त अशोकवन के मध्य में

चिन्तामणिमय महापीठ तथा स्वर्णमयी भूमि है। अनेक प्रकार की मणियों से जटित प्राकारों के मध्य अयोध्या नाम की दिव्य नगरी है। इसके गोपुर रत्नमय हैं। पुरी के मध्य मणिमय प्राकार एवं सुन्दर तोरणों से युक्त रामजी का अन्तःपुर है। वहाँ महोत्सव स्वरूप दिव्यमन्डप है। उसके मध्य परम उदार कल्पवृत्त है। यह मनोवांछित फलप्रद हैं। इससे धर्म, अर्थ, काम मोक्षादि की प्राप्ति होती है। इसी कल्पवृत्त के निकट कमल कुलों से संकुल सरयू की चंचलधारा बहती है। यह वन अनेक अशोक, पारिजात आदि महावृत्तों, मालती जुहू, मंदारादि पुष्पों, भ्रमर-कोकिला आदि के मनोहर कल कूजनों से संकुल हो रहा है। वृत्तों से मधु चू रहा है। मयूर नृत्य कर रहे हैं। वैदेही जी सौरभ और मकरंद भरे कमल दलों की शैया पर विराजमान हैं। विद्युत् के सदृश उनकी कांति है, अधरस्मित युक्त हैं, दंतपंक्ति, चितवन, नासा, भ्रू, स्वर्णकुंडल, युगलकपोल, मृदु चरण सभी की शोभा अपूर्व है। अलंकार उनके सहज सौन्दर्य को द्विगुणित कर रहे हैं। रति लीला से समाकृष्ट होने से उनकी अलकें बिखरी हुई हैं। लक्ष्मणा, श्यामला, हंसी, सुगमा, निगमा, सुरसा, वाग्मी, श्यामला, बहुमंगला, भोगज्ञा, धर्मशीला, शास्त्रज्ञा आदि उनकी सेवा में निरत हैं। इन सखियों से परिवेष्ठित सीता जी का सम्यक् रीति से स्मरण कर साधक को अपने स्वरूप के अनुसार सेवा करनी चाहिए। साधक को जानकी-राम का नित्य ध्यान करना चाहिए।

वाह्य सेवा—शंख आदि का पूजन कर प्रभु का नामोच्चारण करते हुए जय शब्द बोल कर रात्रि में सुलाई गई श्री सीताराम जी की मूर्ति का उत्थापन करना चाहिए। उनका मुख प्रक्षालन कर उनको पादुका समर्पित करनी चाहिए, फिर कर्पूरादि से सुवासित जल आचमन करने के लिए देना चाहिए। क्षीर वृक्ष से तोड़ी हुई द्वादश अंगुल की दातून रत्नपीठस्थित सीता-राम को समर्पित करनी चाहिए। फिर वस्त्र से मुँह पोंछ कर सुगंधित तैल का अंगों में मर्दन करना चाहिए। तत्पश्चात् दधिआमलक मल कर सुवासित जल से उन्हें स्नान कराना चाहिए। स्नानोपरान्त अंग सम्मार्जन करके सुन्दर वस्त्र पहनाना चाहिए। आदर्श में मुखावलोकन तथा तिलकादि की कल्पना कर लेनी चाहिए। सुन्दर वस्त्र-आभूषण से उन्हें सुसज्जित कर मंगला आरती करनी चाहिए।

अग्रदास ने वाह्य-पूजा के साथ ही मानसी-पूजा का विधान सर्वत्र किया है। अतः इतनी वाह्य सेवा कर लेने के उपरान्त साधक के लिए पुनः मानसी-सेवा का विधान उन्होने किया है। साधक को चाहिए कि वह सुवर्ण भवन में प्रशस्त

शयन के ऊपर विराजमान प्रकाशमय आभूषणों से युक्त, मिथिला के वधूजनों से सेवित, परस्पर सुख देते हुए सीताराम के चन्द्रमुख का ध्यान करे । इसके पश्चात् उसे ध्यान करना चाहिए कि निशान्त में सखीगणों के साथ सीता जी स्नान करके विविध वेष धारण करती हैं । तदनन्तर वे अनेक बहुमूल्य आभूषणों से सुसज्जित होती हैं । साधक को उन सीता जी को प्रणाम करना चाहिए । निशान्त में प्रिय के साथ प्रणय केलि में जिनकी मालाएँ भग्न हो गई हैं, जो प्रिय सखियों से सुसेविता हैं, प्रभात में जो सुवर्ण के कलश में सरयू जल लेकर खड़ी सखियों द्वारा सेविता हैं, वस्त्र, व्यजन, चमर, तैलादि तथा उद्वर्तन से दासियां जिनकी परिचर्या करती हैं, जो सभी ओर से अपनी सखियों से घिर कर स्नानार्थ समीप के कुण्ड में जाती हैं, उन सीता जी का स्मरण करना चाहिए । स्नानकुंज में सुखपूर्वक स्नान कर विचित्र वस्त्र से अपने अंगों को सीता जी संमार्जित करवाती हैं फिर सखियाँ दिव्य सुगंधित तैलादि से उनके केश संवारती हैं । फिर सखियाँ उन्हें सुन्दर आभूषणों से सुसज्जित करतीं और मंजीर से उनके पद-पद्मों को अनुरंजित करती हैं । इसके पश्चात् सीता जी के ललाट में सिन्दूर लगाया जाता है और उनकी चोटी सुन्दर रीति से सजाई जाती है ।

इस प्रकार शृंगारादि से सुसज्जित होकर दम्पति देवार्चन करते हैं । तदनन्तर माता जी के भवन में प्रवेश करते हैं । वहाँ सभी भाइयों के साथ सुंदर पक्वान्न का वे भोग करते हैं । इसके पश्चात् चतुरंगिणी सेना तैयार हो जाती है और राजकुमार शस्त्रादि की शिक्षा ग्रहण करते हैं । यहीं आठो सखा छत्र, चमर, व्यजन, दर्पण, झारी, पान, खड्ग, धनुष आदि लेकर उनकी सेवा करते रहते हैं ।

फिर भ्राताओं के साथ राम मृगयार्थ जाते हैं, किन्तु मृगों की हिंसा वे नहीं करते जीवित हरिणादि को लाकर पिता के समक्ष रख देते हैं । उधर सीता जी दो प्रहर दिन बीतने पर स्वर्ण सिंहासन पर विराजती हैं । वहाँ माता (सासों) द्वारा लाए पक्वान्नों का कलेऊ करती हैं । फिर सखियाँ उन्हें ताम्बूल तथा दर्पण आदि देती हैं । फिर एक पहर के भीतर ही वे अनेक आभूषणों को धारण करती हैं तथा अपने केश संवारती हैं । वात्सल्यवश माता कौशल्या भी जनकात्मजा का शृंगार कर देती हैं । इसके पश्चात् पूर्वान्ह में सीता जी को स्वेदविन्दुओं से युक्त देख कर स्नानगृह में सखियाँ ले जाती हैं । तदनन्तर पाकशाला में प्रवेश कर सीता जी श्रीराम जी के लिए लेह्य, चोष्य, भक्ष्य, भोज्य, आदि भोजन ले आती हैं । श्रीरामचन्द्र जी जानकी जी द्वारा समर्पित विविध व्यंजनों को बड़े प्रेम से ग्रहण करते हैं ।

भोजनोपरान्त श्रीराम जी रथ पर चढ़ कर राजमार्ग पर निकलते हैं। अयोध्या के नर-नारी को तृप्त करके वे पुनः राजसभा में जाकर मन्त्रियों से विचार-विमर्श करते हैं, वहाँ वे आगत दूतों का सम्मान तथा ब्राह्मणों का स्वागत करते हैं। फिर द्विजों को दान देकर भोजनार्थ सीताभवन को चले जाते हैं।

सीता द्वारा लाए गए उत्तम भोजन को सिंहासनस्थ होकर राम सीता के साथ ही ग्रहण करते हैं। साधक को इसका ध्यान में ही विचार कर लेना चाहिए। उसे चाहिए कि भगवान् को सुगंधित जल से आचमन करा कर ताम्बूलादि अर्पित करे और फिर सुन्दर बिछौना पर शयन कराए। एक घटिका शयन करके श्रीराम पुनः उठ जाते हैं।

निद्रोपरान्त मुख प्रक्षालन कर सुन्दर आभूषणों से सुसज्जित होकर श्रीराम धनुर्बाणादि आयुधों को धारण कर सभा-मध्य में जाकर विराजते हैं। वहाँ न्याय से प्राप्त प्रजाकर को ग्रहण करते एवं उचित दण्डविधान करते हैं। फिर प्रियजनों से परिवेष्ठित होकर राजाओं से मिलते हैं, राम उनकी समस्याएँ समझते हैं और आवश्यकतावश कहीं-कहीं दूत भी भेजते हैं।

इसके उपरान्त अपने सखाओं एवं भाइयों के साथ सुन्दर नाव पर चढ़ कर वे सरयू में जलक्रीड़ा करते हैं। पुनः दूर-दूर देशों से आए गुणीजनों के नृत्य गान आदि देखकर प्रसन्न होते हैं। इसके पश्चात् सभामध्य में आकर राम रत्नमंडप के नीचे सुशोभित होते हैं।

उधर मध्यान्ह काल में सीता जी अपनी प्रिय सखियों के साथ अन्तःपुर के उद्यानादि में विनोद करके सरयू के तट पर ऊर्मिला आदि भगिनियों के साथ जलक्रीड़ार्थ जाती हैं। वहाँ जलक्रीड़ा का आनन्द विदेहजा जू लूटती हैं। तत्पश्चात् सखियाँ उनका शृंगार करती हैं। लक्ष्मणा ताम्बूल से, श्यामला गन्ध एवं मोदक से, हंसी चन्दनादि के लेपन से, सुगना-आभूषणों से, निगमा चामर से, सुरसा वस्त्रादि से, वाग्मी चरणकमलों की सेवा से, शास्त्रज्ञा सुरीले वाद्यों आदि से वैदेही की परिचर्या करती हैं, बहुमंगला आलापादि में निरत रहती है, धर्मशीला चरण सेवा में। इसी प्रकार सभी सखियाँ सीता जू की नित्य परिचर्या करती रहती हैं। जब वाटिका बिहार से श्रीराम जी लौटते हैं तब सीता जी गोपुर के गवाक्षों से उनका अवलोकन करती हैं।

अपरान्ह में वामदेव जी श्रीराम जी को शस्त्रास्त्र की शिक्षा देते हैं।

शिक्षा ग्रहण कर श्रीराम अश्वारोहण करते हैं, घोड़े की पीठ पर बैठे ही वे सरयू तट आकर बिहार करते हैं।

इस के अनन्तर पुर में प्रवेश करते हैं। सन्ध्यादि से निवृत्त होकर वे साधुओं के साथ पुराण श्रवण करते हैं। इसी बीच अपने कुंजों को सखागण जाकर नित्यक्रिया से निवृत्त होकर पुनः आ जाते हैं। रात्रि में भोगग्रहण कर सखाओं के साथ रामचन्द्र जी द्यूतादि क्रीड़ाएं करते हैं। फिर माताएँ उनका शृंगार करती हैं।

इसी प्रकार सखियाँ मिथिलेश नन्दिनी का भी शृंगार करती हैं, स्नानादि करके मैथिली जी नाना रंग के वस्त्राभूषणों को धारण करती हैं। भक्त को षोडश-शृंगार से आभूषित सीता जी का ध्यान करना चाहिए।

अर्धरात्रि के समय हास-विलास में कुशल रामचन्द्र रासक्रीड़ा करते हैं। रासस्थली में अनेक मनोहर वाद्यों की ध्वनि होती है। कोकिल-चक्रवाकादि मनोहर कलरव करते-रहते हैं। भ्रमर, शुक, सारिका, मयूर, कोकिल आदि अपनी मधुरवाणी से उस स्थल को भर देते हैं। नाना पुष्पों के विकास से वह स्थली परमसुगंधित हो उठती है। रासस्थली में सहस्रों स्तम्भों से सुशोभित मण्डप के नीचे पुष्प सज्जित पर्यंक पर दम्पति विराजते हैं। वहीं असंख्य नृत्य करती हुई सखियों के साथ भगवान् राम रास लीला करते हैं। पारस्परिक हास-विलास एवं नूपुर के नाद से वह स्थान परम आमोदमय हो उठता है। इस प्रकार सौंदर्य, सौगंध्य, सौकुमार्य एवं लावण्य से युक्त रामा-राम नित्य विहार करते हैं। चतुर्दश रसों के भोगी नागरशिरोमणि रामचन्द्र जी वन में विहार करते हैं। सरयू तट पर इस रास लीला को समाप्त कर नागर रामचन्द्र जी शयन के लिए लौटते हैं।

साधक को चाहिए कि शयन को जाते हुए रामचन्द्र को वह चरण-पादुका समर्पित करे। यह शयनागार दिव्यरत्नमय एवं दिव्यचंद्रिका से नित्य युक्त है। अगुरु एवं सुगंधित द्रव्यों से वह सुवासित है। वहीं दिव्य पर्यंक के ऊपर रामचन्द्र शयन करते हैं, ऐसा साधक को समझना चाहिए। सुन्दर उपधानादि, रत्नदीप, सुवासित जल, ताम्बूलादि, नारिकेल तथा नाना भक्ष्य पदार्थादि से यह शयनागार संयुक्त है। सीता जी के साथ शयनागार को जाते हुए राम की सेवा साधक को किंकरी की भाँति करनी चाहिए।

साधक को प्रभु के चरणों की सेवा का चिन्तन करना चाहिए। फिर प्रभु

की आज्ञा से उसे अपने कुंज में जाकर दास के समान शयन करना चाहिए। साधक को नित्य ही इस प्रकार की भावना करनी चाहिए।

निशान्त एवं प्रदोष में स्नान, अपरान्ह और प्रातःकाल सरयूतट पर क्रीड़ा, पूर्वान्ह एवं रात्रि में पाद सेवा, मध्यान्ह में दिव्य वस्त्रों का समर्पण, सायंकाल दीपावली का अवलोकन आदि त्रिकाल एवं पंचकाल की सेवा भक्तों को नित्य करनी चाहिए।

मंजु रसाष्टयाम के आधार पर संक्षेप में अष्टयामीय सेवा—

प्रथम याम—प्रिया प्रीतम को जगाना, दन्तधावनादि के उपरांत उनका श्रृंगार, भोग, आरती।

द्वितीय याम—मज्जन, संध्या, पूजा, श्रृगार, दक्षिण द्वार पर पुरवासियों के झगड़ों को निबटाना, कलेऊ, मृगया।

तृतीय याम—चौपड़ खेल, भोग, शयन।

चतुर्थ याम—प्रियाप्रीतम को जगाना, भोग, आरती, कुंजक्रीड़ा, झूला।

पंचम याम—प्रिय का पिता के समाज में आगमन, लौट कर बाटिका-विहार, चंगक्रीड़ा, सरयू तट पर स्नान।

षष्ठ याम—रास-भवन में प्रस्थान, रासलीला, आरती।

सप्तम याम—व्यालू, शयन।

अष्टम याम—सखियों का निज-निज कुंजों में शयन।

सख्य और दास्य भावना के अनुरूप सेवा-विधि—नीचे सख्य भक्ति के प्रसिद्ध महात्मा श्रीसीताराम शरण श्रीरसरंगमणि जी कृत 'श्रीसीताराम मानसी पूजा भावना अष्टयाम सेवा'—संपादक रामटहलदास, के आधार पर सेवा-विधि का संक्षेप में विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है। अग्रस्वामी के समय से ही सखाभाव की भक्ति का प्रचार रामानन्द सम्प्रदाय में हो गया था। श्रीरामसखे जी इस भाव की भक्ति के प्रथम प्रवर्त्तक थे। आज असंख्य रामानन्दी वैष्णव सखाभाव से ही भगवान् की उपासना करते हैं। उनकी उपासना-प्रणाली इस प्रकार है—

१—उत्थापन सेवा, मंगलभोग, मंगलआरती।

२—सर्वतोष सभा में भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, हनुमदादि सखाओं द्वारा राम की सेवा, भोग, आरती। तदनन्तर गान, नृत्य आदि का आयोजन

३—स्नान, संध्यादि, श्रृंगार, सखाओं एवं भाइयों के साथ भोजन।

४—पुनः सभा में आगमन, आरती आदि।

५—शयन।

६—उत्थापन सेवा, श्रृंगार, सखाओं के साथ सभा में वार्तालाप, आरती, पिता-माता से भेंट, उपवन-विहार। पितृव्यों के घर होते हुए सरयू तट पर राम का आगमन, कंदुककेलि आदि।

७—संध्या-आरती, पिता-माता द्वारा राजकुमारों का प्यार किया जाना। भोजन।

८—शयन। भक्ति जी के पर्यंक के नीचे भक्त को अपने भी शयन करना चाहिए।

रसरंगमणि जी के अनुसार इस उपासना-विधि में अन्तर भी लाया जा सकता है। ऋतुओं के अनुसार चैत्र में राम जन्मोत्सव, वैशाख में जानकी जन्मोत्सव, वर्षा में झूला, भाद्र में नौकाझूला, जलविहार, शरद में रासमंडल, मार्गशीर्ष में रामविवाह, द्विरागमन आदि, माघशुक्ल पंचमी से चैत्र कृष्ण रसरंग-पंचमी तक होलिका लीला आदि का चिन्तन करना चाहिए।

इस सेवाविधि पर स्पष्ट ही रसिक-सम्प्रदाय की अष्टयामीय पूजा-पद्धति का प्रभाव पड़ा जान पड़ता है। वस्तुतः यह उपासना-प्रणाली सख्य-भाव की भक्ति के अधिक अनुकूल है। दास्यभाव में तो अर्चावतार की निरहंकार होकर सेवा ही विधेय मानी गई है और यदि भक्त अशक्त हो तो उसे केवल भगवान् का नाम-स्मरण करना चाहिए। रामानन्द स्वामी ने दास्यभक्ति पर अधिक बल दिया है, अतः उसी के अनुरूप उन्होंने उपासना-पद्धति का विवेचन किया है। रसिक-सम्प्रदाय की पूजा-पद्धति पर कृष्णभक्ति का ही प्रभाव दृष्टि-गोचर होता है।

आनन्द-भाष्य का मत—'आनन्दभाष्य' के मत से नित्य-नैमित्तिक कर्म द्वारा कल्मषादि दूर होते हैं, अतः यह विद्याप्राप्ति के लिए आवश्यक है।[१] विद्याप्राप्ति के लिए कभी भी मुमुक्षुवों द्वारा कर्मत्याग नहीं किया जाना चाहिए। गीताचार्य ने भगवान् के अनन्य शरणागत भक्त के लिए अग्निहोत्रादि आश्रम-

---

१—आनन्दभाष्य, १-१-१ पृ० ४।

गत धर्मों के परित्याग को भी उचित ठहराया है। भगवद्भक्त परमपुरुष का सतत चिन्तन, मनन, ध्यान करता हुआ आश्रमधर्मों में अनासक्त होकर विरक्ताश्रम का अनुष्ठान कर सकता है।[१]

यह संशय हो सकता है कि ब्रह्मविद्या में ब्रह्म की प्राप्ति के लिए यज्ञादि कर्म की अपेक्षा है अथवा नहीं? 'आनन्दभाष्य' के मत से ब्रह्मविद्या स्वतन्त्र एवं अग्नीन्धनादि साध्य यज्ञादि कर्म की अपेक्षा से रहित है। वेदानुवचन से ब्रह्मचारी, यज्ञदान से गृहस्थ, तप से वानप्रस्थी, अनाशकेन चतुर्थाश्रमी आदि आश्रम कर्मों को भी विद्या-प्राप्ति में सहायक कहा गया है, क्योंकि इनसे अंतःकरण की मलीनता दूर होती है। किन्तु इस वर्तमान निर्देश के होते हुए भी यज्ञादि उसके बहिरंगमात्र हैं। इनके साथ ही शमादि अन्तरंग साधनों का अनुष्ठान भी आवश्यक है।[२]

आश्रमधर्मनिरत व्यक्तियों को ब्रह्मविद्या में अधिकार है ही, कभी-कभी अनाश्रमियों पर भी विद्यानुग्रह होता है। जो लोग स्वाश्रमभ्रष्ठ नैष्ठिक हैं, ब्रह्मविद्या में उन्हें कोई अधिकार नहीं प्राप्त है। बालक जिस प्रकार मानापमान से रहित भावशुद्धि पूर्वक रहता है, उसी प्रकार विद्वान् को रहना चाहिए।[३]

जिस देश काल में चित्त की एकाग्रता सम्भव हो, वहीं पर उपासना करनी चाहिए। प्राची आदि दिशा, नदी तीर, ब्रह्ममुहूर्त्तादि काल विशेष उपयुक्त हैं।[४] यह उपासना वृत्ति जीवनपर्यन्त कर्तव्य है।[५]

'आनन्दभाष्य' में उपासना-प्रणाली आदि पर कोई प्रकाश नहीं डाला गया है। अर्चावतार की सेवा पर भी कोई मत नहीं व्यक्त किया गया है। इस संबन्ध में पटल आदि ग्रन्थों में विशेष विस्तार से वर्णन मिलता है। 'श्रीरामार्चनपद्धति' में जो पूजा-प्रणाली बतलाई गई है, रामानन्द-सम्प्रदाय में वही सर्वत्र मान्य है।

कर्मकाण्ड का महत्व और स्थान—रामानन्द स्वामी ने पंच संस्कारों पर पर्याप्त बल दिया है, क्योंकि वैष्णव-सम्प्रदाय में दीक्षित होने के लिए वे नितान्त ही आवश्यक हैं। किन्तु कहीं भी उन्होंने इन संस्कारों को सब कुछ नहीं मान लिया है। भगवान् राम की भक्ति सबसे प्रधान वस्तु है। रातदिन भगवान्

१—३-४-१६, पृष्ठ ३७०।

२—३-४-२६-२७, पृ० ३७४-७५।

३—३-४-३६-४६, पृ० ३७८-३८५।

४—४-१-११, पृ० ३९३।

५—४-१-१२, पृ० ३९४।

का ध्यान करना और उनके नाम का स्मरण करना ही भक्त के जीवन का सब कुछ होना चाहिए। 'श्री वैष्णवमताब्जभास्कर' में उन्होंने स्पष्ट ही कहा है: इस प्रकार पंचसंस्कारों से सुसंस्कृत होकर श्रेष्ठ भागवत जनों को महाइन्द्रनीलमणि के समान श्यामकांति वाले कृपानिधि, जानकी-लक्ष्मणयुक्त श्रीराम की अहर्निशि भक्ति करनी चाहिए[१] अथवा पंचसंस्कारों से युक्त होकर व्यक्ति को भगवान् के दिव्यजन्म, दिव्यकर्म और नामों का निरन्तर उच्चारण करना चाहिए।[२]

रामानन्द-सम्प्रदाय में ऊँच-नीच, समर्थ-असमर्थ, सभी को भक्ति का उचित अवसर दिया जाता है। इसलिए स्वामी जी का दृष्टिकोण पर्याप्त उदार हो गया है। समर्थभक्तों के लिए नियमो एवं उपासना पद्धतियों का विधान करते हुए भी स्वामी जी असमर्थों एवं अक्षरज्ञान-हीन भक्तों को न भूल सके। पचसंस्कारों से युक्त समर्थ एवं विद्वान् भक्त रामायण-श्रीभाष्यादि का स्वतः अध्ययन कर अपने काल का यापन कर सकता है, किन्तु असमर्थ सेवक यादवाचल अथवा अन्यत्र किसी भी स्थल में अपनी छोटी सी कुटिया बना कर गुरुमन्त्र का निरहंकार होकर जाप कर सकता है।[३] वस्तुतः भगवान् को क्रियाकलापों की अपेक्षा भी नहीं है। परासिद्धि का इच्छुक चाहे अकिंचन व्यक्ति हो, चाहे द्विजाति, भगवान् की शरण में जाने मात्र से वह उनकी कृपा का अधिकारी हो जाता है[४] और भगवान् की यह कृपा जीवों पर होती ही है। शक्त-अशक्त, कुल-बल, काल, शुद्धता आदि की वहाँ अपेक्षा नहीं।[५]

क्रियाकलापादि को महत्व-हीन बतलाने के साथ ही रामानन्द ने तीर्थयात्रा को भी अधिक महत्व नहीं दिया है। भगवद्भक्तों की सेवामात्र से तीर्थयात्रा का फल मिल जाता है। वे सर्वतीर्थाश्रय हैं, उनके दर्शन करने से, उनके समीप रहने से व्यक्ति सभी पापों से मुक्त हो जाता है।[६]

रामानन्द जी ने अर्चावतार की उपासना पर पर्याप्त बल दिया है। राममन्त्र का तात्पर्यार्थ समझाते हुए उन्होंने स्पष्ट ही कहा है, जीवों का एकमात्र उपाय भगवद्विग्रह ही है।[७] अतः विद्वान् पुरुष को आह्वान, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आच-

१—श्री वै० म० भा०, भगवदाचार्य, पृ० १२१।
२—वही, पृ० १८२।
३—श्री वै० म० भा०, रा० ट० दास, पृ० २८।
४—वही, भगवदाचार्य, पृ० १७३।
५—वही, रा० ट० दास, पृ० १७
६—वही, पृ० १८।
७—श्री वै० म० भा०, रामटहल दास, पृ० ६।

मन, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, प्रदक्षिणा, विसर्जन आदि षोडशोपचार से अर्चावतार की पूजा करनी चाहिए। अर्चावतार का कैंकर्य भगवद्भक्तों का सर्वस्व है।[1] भगवद्विग्रह के लिये पुष्पचयन करना, उनके मन्दिर का मार्जन करना और निरालस्य होकर उनके नाम का अभ्यास करना चाहिए।[2] यह क्रियाकलाप इसलिए आवश्यक है, क्योंकि अर्चावतार अपने समस्त कृत्यों मे अर्चक के पूर्ण अधीन होता है।[3] किसी मन्दिर में रह कर जीवन-यापन करने के लिए इतने कृत्य तो आवश्यक ही होते हैं, किन्तु जो भक्त किसी मन्दिर में न रह कर स्वतन्त्र रूप से कालयापन करना चाहें उनके लिए यह सब बन्धन नहीं हैं। वे केवल गुरुमन्त्र का जाप करके ही अपना जीवनयापन कर सकते हैं। अतः स्पष्ट है, रामानन्द को क्रियाकलापादि से विशेष मोह नहीं था, उनके राम को आडम्बर की तनिक भी चिन्ता नहीं है।

'आनन्दभाष्य' में भी कर्मकाण्ड को अधिक महत्व नहीं दिया गया है।

१—श्री वै० म० भा०, भगवदाचार्य, पृ० १६२।

२—श्री वै० म० भा०, रामटहलदास, पृ० २६।

३—श्री वै० म० भा०, भगवदाचार्य, पृ० १६८।

रामानन्द-सम्प्रदाय के इतिहास का निर्माण करते समय स्वयं मेरे समक्ष जितनी भी प्रमुख गादियों की परम्पराएँ आईं उनमें कहीं भी गोस्वामी तुलसीदास का नाम नहीं था। केवल 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' के टीकाकार ने तुलसीदास से सम्बन्धित एक गुरुपरम्परा दी है, जो ग्रियर्सन साहब द्वारा उल्लिखित परम्परा के सदृश ही है। हाँ, यह अवश्य है कि इस परम्परा में तुलसीदास जी केवलकूबा जी के गुरु भाई कहे गए हैं। पं० श्रीकान्त शरण जी के अनुसार श्री कूबा जी का जन्म सं० १५४५ वि० में हुआ था। कहा गया है कि झींथरा की गद्दी के ठाकुर जी का नाम 'जानराय' है और तुलसीदास ने 'जागिये कृपानिधान जानराय रामचन्द्र......' कह कर उपर्युक्त 'जानराय' की ही स्तुति की है। भक्तमालकार ने इन 'जानराय' का परिचय भी दिया है 'धरयो जानराय नाम जानि लई ही की बात।' (भक्तमाल-टीका, क० १२४) श्रीकान्तशरण जी ने लिखा है कि केवल-कूबा जी के गुरुभाई श्री रघुनाथ दास जी ने भी गोस्वामी जी के सम्बन्ध में उपर्युक्त सूचना अपने एक ग्रन्थ में दी है, जो अप्रकाशित है और झींथरा स्थान से प्राप्त हो सकता है। मुझे झींथरा स्थान से इस सम्बन्ध में कोई सूचना नहीं मिली। वस्तुतः ये सारे प्रयास तुलसीदास को किसी-न-किसी ओर खींचने के ही हैं, इनमें सत्यांश बहुत ही कम है।

फिर भी, इतना तो स्पष्ट ही है कि तुलसीदास के आराध्य थे भगवान् रामचन्द्र और उनकी जीवनसाधना थी अपने भगवान् की अचलाभक्ति की प्राप्ति। वे रामानन्द-सम्प्रदाय की दार्शनिक तथा भक्ति-सम्बन्धी विचारधारा से बहुत दूर तक प्रभावित थे, इसमें कोई संदेह नहीं है। दूसरे भक्ति-संप्रदायों से उनका कोई विरोध नहीं था, उन्होंने उन सभी के प्रति अपनी सहानुभूति भी व्यक्त की है। उन्होंने कृष्ण को भी नमस्कार किया, शिव की भी उपासना की तथा अन्य देवी-देवताओं की भी स्तुति की है, किन्तु भगवान् राम को छोड़ कर उन्होंने किसी का भी आश्रय नहीं लिया। यदि कभी उन्होंने याचना की तो केवल अपने राम से।

यहाँ तुलसीदास की दार्शनिक-चिन्ताधारा का रामानन्द-सम्प्रदाय के प्रसंग में एक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है। इस प्रसंग में उद्धृत अंश डा० माताप्रसाद गुप्त द्वारा संपादित 'रामचरितमानस' से ही लिए गए हैं।

ब्रह्म राम—तुलसीदास रामानन्द-सम्प्रदाय से पर्याप्त प्रभावित थे। रामानन्द सम्प्रदाय में राम को ही ब्रह्म माना गया है। ब्रह्मराम जगत् के स्रष्टा, रक्षक तथा लयकर्ता हैं। तुलसीदास ने अनेक स्थलों पर राम को जगत्स्रष्टा कहा है।

सारा 'जड़-चेतन-गुण-दोष-मय' संसार केवल मात्र उसी कर्ता की कृति है। उन्हीं राम का बल पाकर माया लव-निमेष में ही समस्त भुवनों की सृष्टि कर डालती है। उन्हीं के बल से विरंचि, हरि और शंकर संसार का पालन, सृजन और संहार करते हैं। शेषनाग उन्हीं के बल पर इस समस्त धरती को अपने फणों पर धारण करते हैं। उन अगाध भगवान् राम को बड़े-बड़े मुनि तथा ज्ञानी ही जान सकते हैं। स्वयं भगवान् राम ने कहा है कि यह समस्त संसार मेरी मायावश चल रहा है। हनुमान् भी रावण से कहते हैं—

सुनु रावण ब्रह्माण्ड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया।
जाकें बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा॥
जाबल सीस धरत सहसानन। अण्डकोस समेत गिरि कानन।
धरइ जो बिबिध देह सुर त्राता। तुमसे सठन्ह सिखावन दाता॥
—मानस, सु० कां०, पृ० ३८२

मन्दोदरी ने भी रावण से कहा है—

तासु भजन कीजिअ तहँ भरता। जो करता पालक संहरता॥
—मानस, लं० का०, पृ० ४०६

स्वयं राम ने भी कहा है—

मम माया संभव संसारा। जीव चराचर बिबिध प्रकारा॥
—मानस, उ० का०, पृ० ५३६

राम के भृकुटि-विलासमात्र से विश्व का लय हो जाता है। लक्ष्मण गुह से कहते हैं—

भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई। सपनेहुँ संकट पाइ कि सोई॥
—मानस, अ० का०, पृ० ३४०

विनय के ५३, ५५ पद में भी राम को विश्व का कर्त्ता, पालक एवं संहर्त्ता कहा गया है।

तुलसीदास का यह ब्रह्म रामानन्द-सम्प्रदाय के ब्रह्म की ही भांति ज्ञान-स्वरूप, स्वप्रकाश, अविनाशी, नित्य, तपस्यादि से भी दुर्लभ एवं स्वतन्त्र है :—

ब्यापक एक ब्रह्म अबिनासी। सत चेतन घन आनँद रासी॥
—मानस, बा० का०, पृ० १५

यह ब्रह्म सर्वव्यापी है, किन्तु प्रेम से प्रकट भी हो जाता है—

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम ते प्रगट होहिं भगवाना॥

देसकाल दिसि विदिसहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं ॥
अग जग मय सब रहित विरागी। प्रेम ते प्रभु प्रगटै जिमि आगी ॥

—मानस, बा० का०, पृ० ६३

जिज्ञासु इसी ब्रह्म की प्राप्ति के लिए लालायित रहते हैं—

करहिं जोगु जोगी जेहि लागी। कोहु मोहु ममता मद त्यागी ॥
व्यापकु ब्रह्मु अलख अविनासी। चिंदानन्दु निरगुन गुन रासी ॥

—मानस, बा० का०, पृ० १६६

तुलसीदास ने अनेक स्थलों पर राम के ब्रह्मत्व का सचेष्ठ प्रतिपादन किया है। 'मानस' के बालकाण्ड में उन्होंने स्पष्ट ही लिखा है—

सोइ सच्चिदानन्द घन रामा। अज विज्ञान रूप गुन धामा ॥
व्यापक व्यापि अखण्ड अनन्ता। अखिल अमोघ सक्ति भगवंता ॥
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सबदरसी अनवद्य अजीता ॥
निर्मल निराकार निर्मोहा। नित्य निरन्जन सुख सन्दोहा ॥
प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी। ब्रह्म निरीह विरज अविनासी ॥
इहाँ मोह कर कारन नाहीं। रवि सन्मुख तम कबहुँकि जाहीं ॥

—मानस, पृ० ५२८-२६

इसी प्रसग में तुलसीदास ने राम के व्यापक और अनन्त रूप का भी परिचय कराया है। निगम, शेष और शिव भी उनका पार नहीं पा सकते। उनकी महिमा की थाह लगाना असम्भव है। उनका नाम ही असंख्य दुर्गा की भाँति शत्रु विनाशक है। उनका विलास सैकड़ों इंद्र की भाँति है, असंख्य आकाश की भाँति वे अवकाश वाले हैं, सैकड़ों पवन की भाँति उनका बल अतुल है, करोड़ों सूर्य की भाँति उनका प्रकाश है; सैकड़ों चन्द्रमा की भाँति वे शीतल हैं; असंख्य काल की भाँति वे दुस्तर एवं दुरंत हैं; सैकड़ों धूमकेतु की भाँति दुराधर्ष हैं, शतकोटि पाताल की भाँति वे अगाध हैं, सैकड़ों तीर्थ की भाँति पावन हैं, सैकड़ों हिमालय की भाँति अचल हैं, करोड़ों सिन्धु की भाँति गम्भीर हैं और सैकड़ों कामधेनु की भाँति कामदाता हैं।

—मानस, पृ० ५३८-३६

उपनिषदों ने भगवान् राम को ही अपना प्रतिपाद्य माना है—रामानन्द सम्प्रदाय में राम उपनिषत् प्रतिपाद्य माने गए हैं। अनेक स्थलों पर तुलसीदास ने अपने राम को उपनिषत् प्रतिपाद्य कहा है। मानस में वे लिखते हैं:—

आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा।
बिनु पद चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु करम करै विधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहै घ्रान बिनु बास असेषा॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाहि नहिं बरनी॥

जेहि इमि गावहिं वेद बुध, जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित, कोसलपति भगवान॥

—मानस, बा० का०, पृ० ६३

'नेति-नेति जेहि वेद निरूपा' 'निगम नेति सिव अन्त न पावा' आदि पंक्तियों में भी कवि ने इसी मत का प्रतिपादन किया है।

जिस प्रकार रामानन्द-सम्प्रदाय में ब्रह्म शब्द से भगवान् श्रीरामचन्द्र का ही बोध होता है, उसी प्रकार तुलसीदास ने भी ब्रह्म शब्द का प्रयोग श्रीरामचन्द्र ही के लिए किया है। राम के ब्रह्मत्व पर शंका करने वाले मानस में अनेक पात्र हैं, किन्तु तुलसीदास ने उनकी शंकाओं का समाधान बहुत ही स्पष्ट वाणी में कराया है। याज्ञवल्क्य-भरद्वाज संवाद का मूलाधार है 'राम कवन प्रभु पूछौं तोहीं।' सती को भी तो यही भ्रम था :—

ब्रह्म जो व्यापक विरज अज, अकल अनीह अभेद।
सोकि देह धरि होइ नर, जाहि न जानत वेद॥

—मानस, पृ० ३०

पार्वती ने भी शंकर से कुछ इसी प्रकार की शंका की थी :—

राम सो अवध नृपति सुत सोई। की अज अगुन अलख गति कोई॥
जौं नृप तनय तो ब्रह्म किमि, नारि विरह मति भोरि।
देखि चरित महिमा सुनत, भ्रमति बुद्धि अति मोरि॥

मानस, पृष्ठ ५६

गरुड़ की शंका भी इसी प्रकार की थी—

व्यापक ब्रह्म विरज बागीसा। माया मोह पार जगदीसा॥
सो अवतार सुनेउँ जग मांही। देखेउँ सो प्रभाव कछु नाहीं॥
भव बन्धन ते छूटहिं नर जपि जाकर नाम।
सर्व निसाचर बांधेउ नागपास सोइ राम॥

मानस, पृ० ५२०

तुलसीदास ने यथावसर इन सभी शंकाओं का जम कर समाधान कराया है। यदि उनका सारांश हम देना चाहें तो शंकर की इस उक्ति द्वारा दे सकते हैं—

मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत बिमल मन जेहि ध्यावहीं।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं॥
सोइ रामु व्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति माया धनी।
अवतरेउ अपने भगत हित निज तन्त्र नित रघुकुल मनी॥

मानस, बालकाण्ड, पृ० १३

इसी प्रसंग में शंकर ने बड़े विस्तार से राम के ब्रह्मत्व का प्रतिपादन किया है। बालकाण्ड में शंकर-पार्वती सम्वाद इसी प्रश्न का उत्तर उपस्थित करता है। विशेष विस्तार के लिए इस खण्ड का ही पारायण उचित है।

भगवान् रामचन्द्र अजर, अमर, निष्पाप, मन-वाणी से अगोचर, नित्य एवं सर्वशक्तिमान् माने गए हैं। तुलसीदास ने भी लिखा है—

बिधि हरिहरु ससि रवि दिसिपाला। माया जीव करम कुलि काला॥
अहिप महिप जहं लगि प्रभुताई। जोग सिद्धि निगमागम गाई॥
करि बिचार जिअँ देखहु नीकें। राम रजाइ सीस सबही के॥

मानस, अ० का०, पृ० २८८

इस प्रकार तुलसी के राम सर्वशक्तिमान् हैं। वे 'बिस्मय हरष रहित' हैं। मन, बुद्धि और वाणी से अतर्क्य हैं—'राम अतर्क्य बुद्धि मन वाणी।' मन, कर्म और वचन से अगोचर हैं—'मनक्रम वचन अगोचर सोई।' तुलसीदास कहते हैं :—

व्यापक ब्रह्म अलखु अबिनासी। चिदानन्दु निरगुन गुन रासी॥
मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकहिं सकल अनुमानी॥

मानस, पृ० १६६

वाल्मीकि ने भी कहा है—

राम स्वरूप तुम्हार वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कहि॥

मानस, अयोध्या काण्ड, पृष्ठ २३२

तुलसीदास के भी राम नीलवर्ण के हैं। 'नीलाम्बुजश्यामल कोमलांगं—कह कर तुलसीदास ने अपने श्याम वर्ण वाले आराध्यदेव की वन्दना की है।

अन्यत्र अनेक स्थलों पर उन्होंने भगवान् राम के सुन्दर श्यामल अंगों की स्तुति की है।

तुलसी के राम आनन्दस्वरूप हैं—

रामब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानन्द परेस पुराना॥
मानस, बालकाण्ड, पृ० ६२

तुलसीदास ने राम को विष्णु का अवतार मानते हुए भी उनके महाविष्णुत्व का प्रतिपादन किया है—

देखे सिव विधि विष्नु अनेका। अमित प्रभाउ एक तें एका॥
बन्दत चरन करतप्रभु सेवा। विविध वेष देखे सब देवा॥

यों तो 'कलप कलप प्रति प्रभु अवतरहीं। चारु चरित नाना विधि करहीं॥' कह कर गोस्वामी जी ने भगवान् के अवतारों की ओर संकेत किया है, फिर भी उनका निश्चित् मत है कि रामावतार अनेक विशेष कारणों से हुआ था। शंकर के गणों को नारद का शाप, कश्यप-अदिति की भगवान् को बालक-रूप में पाने की याचना, प्रतापभानु राजा का शाप-भ्रष्ट होना आदि कुछ प्रमुख कारण हैं, जिनका उल्लेख मानसकार ने इस प्रसंग में किया है। सती को विष्णु के इसी नररूप को देख कर मोह हुआ था—

विष्णु जो सुरहित नर तनु धारी। सोउ सर्वज्ञ जथा त्रिपुरारी॥
खोजै सो कि अज्ञ इव नारी। ज्ञान धाम श्रीपति असुरारी॥
मानस, बा० का०, पृ० ३०

रामानन्द-सम्प्रदाय में 'दाशरथि राम' को ही ब्रह्म कहा गया है। तुलसीदास ने भी कहा है—

आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा॥
बिनु पद चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु करम करै विधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहै घ्रान बिनु बास असेषा॥
असि सब भांति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥

जेहि इमि गावहिं वेद बुध। जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित। कोसल पति भगवान॥
मानस, बा० का०, पृ० ६३

अन्यत्र भी तुलसीदास ने लिखा है—

व्यापक ब्रह्म निरन्जन, निर्गुन विगत विनोद ।
सो अज प्रेम भगतिबस कौसल्या के गोंद ॥

—मानस, बालकाण्ड, पृ० १००

दाशरथि राम अद्भुत लावण्य-युक्त हैं। तुलसीदास ने उनकी सुन्दरता का वर्णन अनेक स्थलों पर किया है। यहाँ जनकपुर-प्रसंग से एक उद्धरण दिया जाता है—

निरखि सहज सुन्दर दोउ भाई। होहिं सुखी लोचन फल पाई।

... ...

कहहिं परस्पर बचन सप्रीती। सखि इन्ह कोटि कामछवि जीती ॥
सुरनर असुर नाग मुनि माहीं। सोभा असि कहुँ सुनिअति नाहीं ॥
विष्नु चारि भुज विधि मुख चारी। विकट भेष मुख पंच पुरारी ॥
अपर देउ अस कोउ न आही। येह छवि सखि पटतरिअ जाही ॥

वय किसोर सुखमा सदन स्याम गौर सुखधाम ।
अंगअंग पर बारिअहिं कोटि कोटि सतकाम ॥

—मानस, बा० का०, पृ० ११०

रामानन्द-सम्प्रदाय की ही भाँति तुलसीदास के भी राम विविध आभूषणों से युक्त हैं। अनेक स्थलों पर मानसकार ने राम के आभूषणों का वर्णन किया है। बालक राम का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं—

भाल विसाल तिलक झलकाहीं। कच विलोकि अलि अवलि लजाहीं।
पीत चौतनी सिरन्हि सुहाई। कुसुम कली बिच बीच बनाई ॥
रेखैं रुचिर कम्बु कल ग्रीवा। जनु त्रिभुवन सुखमा की सीवां ॥

कुंजर मनि कण्ठाकलित, उरन्हि तुलसिका माल ।
वृषभ कन्ध केहरिठवनि, बलनिधि बाहु बिसाल ॥

कटि तूनीर पीत पट काँधे। कर सर धनुष बाम बर बाँधे ॥
पीत जग्य उपवीत सुहाए। नख सिख मन्जु महा छवि छाए ॥

—मानस, बा० का०, पृ० १२१

इसी प्रकार उन्होंने विन्दुमाधव के आभूषणों का भी बड़ा ही विस्तृत वर्णन विनय पत्रिका में किया है।

अन्यत्र अनेक स्थलों पर उन्होंने भगवान् राम के सुन्दर श्यामल अंगों की स्तुति की है।

तुलसी के राम आनन्दस्वरूप हैं—

रामब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानन्द परेस पुराना॥
मानस, बालकाण्ड, पृ० ६२

तुलसीदास ने राम को विष्णु का अवतार मानते हुए भी उनके महाविष्णुत्व का प्रतिपादन किया है—

देखे सिव विधि विष्नु अनेका। अमित प्रभाउ एक तें एका॥
बन्दत चरन करतप्रभु सेवा। विविध वेष देखे सब देवा॥

यों तो 'कलप कलप प्रति प्रभु अवतरहीं। चारु चरित नाना विधि करहीं॥' कह कर गोस्वामी जी ने भगवान् के अवतारों की ओर संकेत किया है, फिर भी उनका निश्चित् मत है कि रामावतार अनेक विशेष कारणों से हुआ था। शंकर के गणों को नारद का शाप, कश्यप-अदिति की भगवान् को बालक-रूप में पाने की याचना, प्रतापभानु राजा का शाप-भ्रष्ट होना आदि कुछ प्रमुख कारण हैं, जिनका उल्लेख मानसकार ने इस प्रसंग में किया है। सती को विष्णु के इसी नररूप को देख कर मोह हुआ था—

विष्णु जो सुरहित नर तनु धारी। सोउ सर्वज्ञ जथा त्रिपुरारी॥
खोजै सो कि अज्ञ इव नारी। ज्ञान धाम श्रीपति असुरारी॥
मानस, बा० का०, पृ० ३०

रामानन्द-सम्प्रदाय में 'दाशरथि राम' को ही ब्रह्म कहा गया है। तुलसीदास ने भी कहा है—

आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा॥
बिनु पद चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु करम करै विधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहै घ्रान बिनु बास असेषा॥
असि सब भांति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥

जेहि इमि गावहिं वेद बुध। जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित। कोसल पति भगवान॥
मानस, बा० का०, पृ० ६३

अन्यत्र भी तुलसीदास ने लिखा है—

व्यापक ब्रह्म निरन्जन, निर्गुन विगत विनोद ।
सो अज प्रेम भगतिबस कौसल्या के गोंद ॥

—मानस, बालकाण्ड, पृ० १००

दाशरथि राम अद्भुत लावण्य-युक्त हैं। तुलसीदास ने उनकी सुन्दरता का वर्णन अनेक स्थलों पर किया है। यहाँ जनकपुर-प्रसंग से एक उद्धरण दिया जाता है—

निरखि सहज सुन्दर दोउ भाई। होहिं सुखी लोचन फल पाई।

... ...

कहहिं परस्पर बचन सप्रीती। सखि इन्ह कोटि कामछवि जीती॥
सुरनर असुर नाग मुनि माहीं। सोभा असि कहुँ सुनिअति नाहीं॥
विष्नु चारि भुज विधि मुख चारी। विकट भेष मुख पंच पुरारी॥
अपर देउ अस कोउ न आही। येह छवि सखि पटतरिअ जाही॥

वय किसोर सुखमा सदन स्याम गौर सुखधाम।
अंगअंग पर बारिअहिं कोटि कोटि सतकाम॥

—मानस, बा० का०, पृ० ११०

रामानन्द-सम्प्रदाय की ही भाँति तुलसीदास के भी राम विविध आभूषणों से युक्त हैं। अनेक स्थलों पर मानसकार ने राम के आभूषणों का वर्णन किया है। बालक राम का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं—

भाल विसाल तिलक झलकाहीं। कच विलोकि अलि अवलि लजाहीं।
पीत चौतनी सिरन्हि सुहाई। कुसुम कली बिच बीच बनाई॥
रेखैं रुचिर कम्बु कल ग्रीवा। जनु त्रिभुवन सुखमा की सीवां॥

कुंजर मनि कण्ठाकलित, उरन्हि तुलसिका माल।
वृषभ कन्ध केहरिठवनि, बलनिधि बाहु बिसाल॥

कटि तूनीर पीत पट काँधे। कर सर धनुष बाम बर बाँधे॥
पीत जग्य उपवीत सुहाए। नख सिख मन्जु महा छवि छाए॥

—मानस, बा० का०, पृ० १२१

इसी प्रकार उन्होंने विन्दुमाधव के आभूषणों का भी बड़ा ही विस्तृत वर्णन विनय पत्रिका में किया है।

राम अद्भुत शक्ति-सम्पन्न हैं। सारी रामकथा उनकी वीरता से ही भरी पड़ी है। शंकर भगवान् उनके वीर-चरितों को सोच कर कहते हैं—

राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करै अन्यथा अस नहिं कोई॥

—मानस, बा० का०, पृ० ६७

ताड़का-वध, मारीचि को सात योजन दूर फेंक देना, स्वयंवर में अनेक देश के राजाओं तथा परशुराम के गर्व को दूर कर देना, अनेक राक्षस-राजों का बध करना, खरदूषण और त्रिसिरा को पराजित करना और अन्त में अपने युग के सर्वाधिक पराक्रमी योद्धा रावण का बध करना आदि उनकी अद्भुत शक्ति-सम्पन्नता का ही प्रतिपादन करते हैं।

तुलसीदास के राम लोक-विजेता, विघ्ननाशक एवं कल्याणकारी हैं। वे असंख्य कल्याण-गुणों के आकर एवं शरणागत रक्षक हैं। भरत ने थोड़े ही में बहुत कुछ कह डाला है—

राम सुसाहिब सील निधानू। प्रणत पालु सर्वज्ञ सुजानू॥
समरथु सरनागत हितकारी। गुनगाहकु अवगुन अघहारी॥
स्वामि गुसाइहिं सरिसगुसाईं।... ... ...

—मानस, अ० का०, पृ० ३०६

स्वयं राम ने भी विभीषण से कहा है—

सखा नीति तुम्ह नीक विचारी। ममपन सरनागत भयहारी॥

... ...

कोटि विप्र बध लागहि जाहू। आए सरन तजौं नहिं ताहू॥

... ...

जो सभीत आवा सरनाई। रखिहौं ताहि प्रान की नाईं॥

... ...

जो नर होइ चराचर द्रोही। आवइ सभय सरन तकि मोही॥
तजि मद मोह कपट छल नाना। करउं सद्य तेहि साधु समाना॥

—मानस, सु० का०, पृ० ३६३-६५

राम को जाति-पाँति, क्रियाकलापादि की कोई चिन्ता नहीं है। वे केवल भक्ति का ही नाता मानते हैं। सबरी से वे स्वयं कहते हैं :—

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानौं एक भगति कर नाता।

जाति-पांति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई।
भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिय जैसा ॥
—मानस, अरण्य कांड, पृ० ३४५

फिर भी तुलसी के राम को ब्राह्मणों से विशेष मोह है, कवन्ध की मृत्यु पर राम कहते हैं—

सुनु गन्धर्व कहौं मैं तोहीं। मोहि न सुहाइ ब्रह्मकुल द्रोही ॥
मन क्रम वचन कपट तजि, जो कर भूसुर सेव।
मोहिं समेत विरंचि सिव, बस ताकें सब देव ॥
सापत ताड़त परुष कहन्ता। विप्र पूज्य अस गावहिं सन्ता ॥
पूजिय विप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुन गन ज्ञान प्रवीना ॥
—मानस, अरण्य० का०, पृ० ३४४-४५

राम बहुत ही उदार एवं भक्तवत्सल हैं। तुलसी ने कहा है—

कोमल चित अति दीन दयाला। कारन बिनु रघुनाथ कृपाला ॥
मानस, अ० का०, पृ० ३४४

अथवा

राम सरिस को दीन हितकारी। कीन्हें मुक्त निसाचर भारी ॥
मानस, लं० का०, पृ० ४७८

राम का तो जन्म ही भक्तों के लिए हुआ था—

राम भगत हित नर तनु धारी। सहि संकट किय साधु सुखारी ॥
मानस, बा० का०, पृ० १६

संभु विरंचि विष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंस ते नाना ॥
ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीला तनु गहई ॥
मानस, बा० का०, पृ० ७५

व्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना विधि करत चरित्र अनूप ॥
मानस, बा० का०, पृ० १०३

भक्तों को पीड़ा देने वाला व्यक्ति रामरोषाग्नि का भागी होता है। बृहस्पति देव राज इन्द्र को समझाते हैं—

जो अपराध भगत कर करई। रामरोष पावक सो जरई ॥
लोकहु वेद विदित इतिहासा। येह महिमा जानहिं दुरवासा ॥

सुनु सुरेस उपदेस हमारा। रामहिं सेवकु परम पियारा॥
मानत सुखु सेवक सेवकाईं। सेवक बैरु बैरु अधिकाई॥
जद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गनहिं न पाप पुन्नु गुन दोषू॥
करम प्रधान बिस्वकरि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥
तदपि करहिं सम विसम अहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा॥
अगुन अलेख अमान एक रस। रामसगुन भये भगत प्रेम बस॥
राम सदा सेवक रुचि राखी। वेद पुरान साधु सुर साखी॥

मानस, अ० का०, पृ० २७२-७३

नारद से स्वयं राम ने कहा है—

जन कहुं कछु अदेय नहिं मोरे। मानस, अरण्य काण्ड, पृ० ३४६।
सुनु मुनि तोहिं कहौं सह रोसा। भजहिं जे मोहिं तजि सकल भरोसा॥
करौं सदा तिन्हकै रखवारी। जिमि बालक राखै महतारी॥

वही, पृ० ३५०

राम भक्तों के अभिमान को कभी नहीं रखते—

सुनहु राम कर सहज सुभाऊ। जन अभिमान न राखहिं काऊ॥

मानस, उ० का०, पृ० ५२६

वस्तुतः समस्त सृष्टि मात्र में मनुष्य प्रिय है, मनुष्यों में द्विज, द्विजों में निगम धर्मानुसारी, उनमें भी विरक्त, विरक्तों में ज्ञानी और ज्ञानियों में विज्ञानी और विज्ञानियों में भी भक्त राम को अधिक प्रिय हैं। राम स्वयं कहते हैं—

तिन्ह महं प्रिय विरक्त पुनि ज्ञानी। ज्ञानिहुंतेअतिप्रिय विज्ञानी॥
तिन्हते पुनि मोहिं प्रिय निज दासा। जेहिगति मोर न दूसरि आसा॥
पुनि पुनि सत्य कहौं तोहि पाहीं। मोहिं सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं॥
भगतिवन्त अति नीचौ प्रानी। मोहिं प्रानप्रिय असि मम बानी॥
... ...

पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ।
सर्व भाव भज कपट तजि, मोहिं परमप्रिय सोइ॥

मानस, उ० कां०, पृ० ५३६

जिस प्रकार रामानन्द-सम्प्रदाय में राम को जगत् का कारण माना जाता है उसी प्रकार तुलसीदास ने भी अपने आराध्य को संसार का कारण माना है, यह पहले कहा जा चुका है। राम और जगत् में अनेक संबन्ध हैं। तुलसीदास

~~ने दोनों में विशेष रूप से पिता-पुत्र-संबंध~~ ही स्वीकार किया है—

येहि विधि राम जगत पितु माता। कोसलपुरवासिन्ह

मानस, बा० का०, पृ० १०१

अथवा, धनुष-यज्ञ के अवसर पर राजा गण कहते हैं—

जगत पिता रघुवरहिं विचारी। भरि लोचन छवि लेहु निहारी॥

मानस, बा० का०, पृ० १२२

राम को उन्होंने चराचर जगत् का नायक तथा भुवनेश्वर भी कहा है—

सुनहु तात तुम्ह कहुं मुनि कहहीं। रामुचराचर नायक अहहीं॥

(दशरथ), मानस, अयोध्याकांड, पृ० २१२

व्यापक ब्रह्म अखिल भुवनेश्वर। लक्ष्मण कहाँ बूझ करुनाकर॥

मानस, लं० का०, पृ० ४३५

अन्य संबंधों की ओर तुलसीदास ने स्पष्ट संकेत नहीं किए हैं। फिर भी उन्होंने निम्नलिखित पंक्तियों में ब्रह्म और जगत् के संबंध को और अधिक स्पष्ट किया है :—

जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीश ग्यान गुन धामू॥
जासु सत्यता तें जड़ माया। भास सत्य इव मोह निकाया॥
रजत सीपि महुँ भास जिमि, जथा भानुकर वारि।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ भ्रम न सकै कोउ टारि॥
एहि विधि जग हरि आस्रित रहई। जदपि असत्य देत दुख अहई॥
ज्यौं सपने सिर काटै कोई। बिनु जागे न दूरि दुख होई॥
जासु कृपा अस भ्रम मिटिजाई। गिरिजा सोइ कृपाल रघुराई॥ शंकर

—मानस, बा० का०, पृ० ६३

स्पष्ट ही यहाँ गोस्वामी जी मायावाद से विशेष प्रभावित जान पड़ते हैं। विशिष्टाद्वैत मत में जगत् को ब्रह्म का अचिदंश कहा गया है; यह सत्य है, असत्य नहीं। यह न तो मृगवारि है और न भ्रम। विनयपत्रिका में भी गोस्वामी जी ने—

कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ जुगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसीदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचानै॥

लिखकर विशिष्टाद्वैत मत में कोई आस्था नहीं व्यक्त की, केवल अपना मत दृढ़ता से व्यक्त कर दिया।

जीवों के तो राम सर्वस्व हैं ही। शंकर कहते हैं—

उमा राम सम हित जग माहीं। गुर पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं॥

—मानस, कि० का०, पृ० ३६०

यहाँ भगवान् राम और जीव में तुलसीदास ने पिता-पुत्र संबंध, सखा संबंध, स्व स्वामी संबंध आदि प्रमुख सम्बन्धों को स्वीकार कर लिया है। गुरु कह कर तो उन्होंने राम को जीव का सर्वस्व ही बना दिया। स्वयं उन्होंने अयोध्या-काण्ड में मानो अपना ही मन खोला हो—

जेहि जेहि जोनि करमवश भ्रमहीं। तहं तहं ईसुदेउ येह हमहीं॥
सेवक हम स्वामी सिय नाहू। होउ नात येहु ओर निबाहू॥

—: मानस, अ० का०, पृ० १८६

तुलसीदास ने भगवान् राम के पार्षदों-लक्ष्मण, हनुमान्, भरत आदि का भी स्मरण किया है। यत्र-तत्र वे उनकी प्रशंसा करते-रहते हैं। अर्चावतार की उपासना में भी उनकी आस्था प्रतीत होती है। 'विनय पत्रिका' के ६१-६३ पदों में उन्होंने विन्दुमाधव (भगवद्विग्रह विशेष) जी की बड़ी ही सच्ची वंदना की है। 'सकलसुख कन्द आनन्द वन पुण्य कृत विन्दु माधव द्वन्द्व विपति हारी,' 'इहै परमफल परम बड़ाई' तथा 'मन इतनोइ है या तनु को परम फलु' आदि पद विन्दुमाधव जी की प्रशंसा से ओतप्रोत हैं। फिर भी, तुलसीदास ने अर्चावतार की उपासना-पद्धति पर विस्तार से अपने विचार व्यक्त नहीं किए हैं।

अतः स्पष्ट है कि गोस्वामी तुलसीदास ने रामानन्द-सम्प्रदाय की राम सम्बन्धी प्रमुख धारणाओं को स्वीकार कर लिया है, फिर भी उन्होंने खुल कर विशिष्टाद्वैत मत में अपना पूरा विश्वास नहीं व्यक्त किया है। दार्शनिक दृष्टि से उनकी साधना समन्वय की साधना ही प्रतीत होती है। अद्वैत और विशिष्टाद्वैत का समन्वय करना ही उनका लक्ष्य प्रतीत होता है। एक ओर वे सगुण राम को ब्रह्म पद से अभिव्यक्त करते हैं और दूसरी ओर उनके निर्गुण एवं व्यापक रूप में भी अपनी आस्था प्रकट करते हैं। 'सरभंग' ने भगवान् राम की स्तुति करते हुए उनके इन्हीं दोनों रूपों का वर्णन किया है :—

निर्गुण-सगुण विषम सम रूपं। ज्ञान गिरा गोतीतमनूपं॥

... ...

जदपि विरज व्यापक अविनासी। सबके हृदय निरन्तर वासी॥
तदपि अनुज श्री सहित खरारी। बसतुमनसि मम कानन चारी॥

जो जानहिं ते जानहुं स्वामी। सगुन अगुन उर अन्तरजामी ॥
जो कोसलपति राजिव नयना। करहु सो राम हृदय ममअयना ॥

—अरण्ड का०. पृ० ३२७

गीधराज ने भी राम के सगुण-निर्गुण रूप की वन्दना की है :—

जय राम रूप अनूप निर्गुण सगुन गुन प्रेरक सही।

... ...

जेहि स्रुति निरञ्जन ब्रह्म व्यापक विरज अज कहि गावहीं।
करि ध्यान ज्ञान विराग जोग अनेक मुनि जेहि पावहीं ॥
सो प्रकट करुनाकंद सोभा वृन्द अग-जग मोहई।

... ...

जो अगम सुगम सुभाव निर्मल असम सम सीतल सदा।
पश्यन्ति जं जोगी जतनु करि करत मन गोबस सदा।
सो राम रमा निवास सन्तत दास बस त्रिभुवन धनी ॥

—मानस, अरण्ड काण्ड, पृ० ३४४

राम के निर्गुण-सगुण रूप का प्रतिपादन करने वाले अन्य अनेक उदाहरण 'मानस' से दिए जा सकते हैं। यहाँ कुछ उदाहरणमात्र दे देना पर्याप्त होगा—

राम सच्चिदानन्द दिनेसा। नहि तहं मोह निसा लवलेसा ॥
सहज प्रकास रूप भगवाना। नहिं तहं पुनि विज्ञान विहाना ॥
राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानन्द परेस पुराना ॥

—(शिव) मानस, बा० का०, पृ० ६३

उमा—

रामब्रह्म चिन्मय अविनासी। सर्वरहित सब उर पुर वासी ॥

—मानस, बा० का०, पृष्ठ ६४

जनक—

राम करौं केहि भाँति प्रसंसा। मुनि महेश मन मानस हंसा ॥
व्यापक ब्रह्म अलखु अविनासी। चिदानन्दु निर्गुन गुन रासी ॥
मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकहिं सकल अनुमानी ॥
महिमा निगम नेति कहि कहई। सो तिहुँकाल एक रस अहई ॥

—मानस, बा० का०, पृ० १६६

लक्ष्मण—

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अविगत अलख अनादि अनूपा ॥
सकल विकार रहित गतभेदा। कहिनितनेति निरूपहिं वेदा ॥

—मानस, अ० का०, पृ० २१८

देवतागण—

तुम्ह सम रूप ब्रह्म अविनासी। सदाएकरस सहज उदासी ॥
अकल, अगुन, अज, अनघ अनामय। अजित अमोघ सक्तिकरुनामय ॥

मानस, लं० कां०, पृ० ४७७

जाम्बवंत—

तात रामकहुँ नर जनि मानहु। निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु ॥

मानस, कि० कां०, पृ० ३६१

इसी प्रकार अनेक उदाहरण राम के निर्गुण, व्यापक स्वरूप के प्रतिपादनार्थ मानस से उद्धृत किए जा सकते हैं। वस्तुतः तुलसीदास निर्गुण-सगुण में कोई अन्तर मानते भी नहीं थे—

अगुनहि सगुनहिं नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा ॥
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई ॥

मानस, बा० कां०, पृ० ६३

जिस प्रकार काष्ठ में छिपी अग्नि और प्रज्वलित अग्नि में तत्वतः कोई अन्तर नहीं है, उसी प्रकार निर्गुण-सगुण में भी वस्तुतः कोई अन्तर नहीं है—

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म स्वरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा ॥
एकदारु गत देखिय एकू। पावक सम जुग ब्रह्म विवेकू ॥

मानस, बा० कां०, पृ० १५

फिर भी तुलसीदास की आस्था सगुण भगवान् राम में ही थी। एकमात्र वही भक्तों के आराध्य हैं—

निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर महि गोद्विज लागि।
सगुन उपासक जहं तहं रहहिं मोच्छ सुख त्यागि ॥

मानस, कि० कां०, पृ० ३६७

कोउ ब्रह्म निर्गुन ध्याव। अव्यक्त जेहि श्रुति गाव।
मोहिं भाव कोसलभूप। श्री राम सगुन सरूप ॥

लं० कां०, पृ० ४७६

जे ब्रह्म अज अद्वैत अनुभवगम्य मन पर ध्यावहीं।
ते कहहुँ जानहुं नाथ हम तव सगुन जसु नित गावहीं॥

मानस, पृ० ४६६-६७

वस्तुतः निर्गुण ब्रह्म ही तो भक्तों के प्रेम-वश सगुण हो गया था—

व्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप
भगत हेतु नाना विधि करत चरित्र अनूप॥

मानस, बाल० कां०, पृ० १०३

अथवा—

अगुन अलेख अमान एकरस। रामु सगुन भये भगत प्रेमवस॥

मानस, अ० कां०, पृ० २७३

'आनन्द भाष्य' के मत से निर्गुण और सगुण शब्द से एक ही ब्रह्म का निर्देश होता है। प्राकृत हेय गुणों से रहित होना निर्गुणत्व और असंख्य दिव्यकल्याणगुणगणों से युक्त होना ही सगुणत्व है। 'अगुन सगुन दुइ ब्रह्मस्वरूपा,' 'निर्गुन ब्रह्म सगुण भये जैसे' आदि उक्तियों द्वारा गोस्वामी जी ने इसी प्रकार के मत का समर्थन किया है, इसे आगे चल कर 'आनन्दभाष्य' में भी स्वीकार किया गया। विशिष्टाद्वैत वादियों के ब्रह्म ही की भाँति उनके राम अखिल हेय प्रत्यनीक हैं—'सकल विकार रहित गत भेदा'; वे दिव्य गुणों से युक्त हैं—'राम अमित गुन सागर, थाह कि पावइ कोइ'; वे अनन्त हैं, सर्वात्मा हैं, नित्य हैं और व्यापक हैं—'रामअनन्त अनन्त गुन', 'देस काल दिसि विदिसहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं'; राम सर्वान्तर्यामी हैं 'अन्तरजामी रामसिय'; वे सच्चिदानन्दस्वरूप हैं—'सत चेतन घन आनंद रासी', षडैश्वर्यपूर्ण हैं—'ज्ञान अखण्ड एक सीतावर,' 'मरुत कोटि सत विपुल बल', 'अखिल अमोघ शक्ति भगवन्ता', 'रोम रोम प्रति लागे, कोटि कोटि ब्रह्मण्ड'; ऐश्वर्य-पुरुष सिंह दोउ बीर, वीर्य-'रामतेजबल बुधि विपुलाई। शेष सहस सत सकहि न गाई'। वे धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष के प्रदाता हैं, वे ही जगत् के एकमात्र तीनों कारण हैं। विद्वानों ने तुलसीदास के ईश्वर तत्व में पर, व्यूह, विभव, अंतर्यामी और अर्चावतार आदि ब्रह्म के ५ रूपों को भी ढूंढ़ने की चेष्टा की है। उनके मत से 'बन्देऽहंतमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिं' कह कर तुलसीदास ने राम के पर स्वरूप का ही निर्देश किया है। इसी प्रकार करुणावश जब भगवान् राम जी सीता के साथ पृथ्वी पर अवतरित होते हैं तब यह उनका विभव रूप होता है; 'तू निज कर्म जाल जहँ घेरो। श्री हरिसंग तज्यो नहिं तेरो' या 'परिहरि हृदय-

कमल रघुनाथहि । बाहेर फिरत विकल भयो धायो' कह कर गोस्वामी जी ने राम के अन्तर्यामी रूप की ही ओर संकेत किया है। विन्दुमाधव की वन्दना करके तुलसीदास ने भगवान् के अर्चावतार में भी अपना विश्वास प्रकट किया है। राम ने अपने अंशों के साथ ही अवतार धारण किया था। लक्ष्मण शेष के अवतार कहे गए हैं, भरत को विश्व का भरण-पोषण करने वाला कहा गया है, शत्रुघ्न शत्रुसूदन हैं और वानरादि देवता हैं जो भगवान् के साथ ही पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए हैं। 'विनयपत्रिका' के ५२ वे पद में तुलसीदास ने भगवान् के दशावतारों का भी वर्णन किया है।

इस प्रकार स्पष्ट है तुलसीदास ने विशिष्टाद्वैत मत से बहुत दूर तक प्रभाव ग्रहण किया है। अन्तर इतना ही है कि उनकी दृष्टि कभी भी साम्प्रदायिक-संकीर्ण साम्प्रदायिक-नहीं हुई। उन्होंने शांकर अद्वैत का भी प्रभाव यत्र-तत्र ग्रहण किया है। 'रज्जौ यथाहेर्भ्रमः', 'ज्ञानमोक्षप्रद वेद बखाना', 'रजत सीप मंह भास जिमि, यथा भानुकर बारि', 'जो सपने सिरकाटे कोई' आदि लिख कर उन्होंने अद्वैत का ही समर्थन किया है। इस सम्बन्ध में विद्वानों का मत है कि उन पर 'अध्यात्मरामायण' का विशेष प्रभाव है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने 'अध्यात्म रामायण' और तुलसीदास के मत की विस्तृत तुलना करके ही निम्नलिखित मत दिया है—"अध्यात्म रामायण के मेरे अध्ययन से मुझे विश्वास हो गया है कि जो कुछ उन्हें 'अध्यात्म रामायण' में सिद्धान्त रूप में मिला, प्रायः उसी का उन्होंने एक तर्कसंगत विकास किया।" डा० गुप्त का यह मत ठीक भी है। अतः स्पष्ट है तुलसीदास का प्रयास अद्वैत और विशिष्टाद्वैत में समन्वय स्थापित करने की ओर ही अधिक रहा।

सीता—रामानन्द-सम्प्रदाय में सीता जी का एक विशिष्ट स्थान है। उन्हें दिग्पालों के सम्पूर्ण भोग-ऐश्वर्य एवं चित्रमय जगत् की आधारभूता कहा गया है, वे सर्वांग सुन्दरी हैं, अशरणों को भी शरण देती हैं। अणुत्वेन ही श्री व्याप्ति है, वे ही राम को प्राप्त कराने में समर्थ हैं। सीता जी बड़ी ही उदार हैं।

तुलसीदास ने भी सीता जी को सम्पूर्ण भोग-ऐश्वर्य की आधारभूता कहा है। गंगा जी सीता जी से कहती हैं :

सुनु रघुबीर प्रिया बैदेही। तव प्रभाउ जग विदित न केही॥
लोकप होहिं बिलोकत तोरे। तोहिं सेवहिं सब सिधि कर जोरे।

—मानस, अयो० का०, पृ० २२२

अथवा—

लोकप होहिं विलोकत जासू। तेहि कि मोहि सक विषय विलासू॥
सुमिरत रामहिंतजहिं जन, तृन सम विषय विलासु।
राम प्रिया जग जननिसिय, कछु न आचरजु तासु॥

—वही, पृ० २३२

तुलसी के मत से सीता जी ही समस्त चित्रमय जगत् की आधारभूता हैं। बाल्मीकि कहते हैं—

श्रुति सेतु पालक राम तुम जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जग पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की॥

—अ० का, पृ० २३२

अथवा—

उद्भव स्थितिसंहारकारिणीम् क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोहं रामवल्लभाम्॥

—बालकाण्ड

वामभाग सोभित अनुकूला। आदिसक्तिछविनिधि जगमूला॥
जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी।
भृकुटि विलास जासु जग होई। राम वाम दिसि सीता सोई॥

—मानस, बा० का०, पृ० ७६

धनुषयज्ञ के अवसर पर राजा गण भी कहते हैं—

सिख हमार सुनि परम पुनीता। जगदम्बा जानहु जिअँ सीता।

—मानस, बा० का०, पृ० १२९

सीता के अद्भुत लावण्य का मनोरम से मनोरम चित्र तुलसीदास ने खींचा है। जनक बाटिका में विचरण करती हुई सीता का चित्र कवि ने इन शब्दों में खींचा है—

जनु विरंचि सब निज निपुणाई। विरचि विस्व कहं प्रगट देखाई॥
सुन्दरता कहुँ सुन्दर करई। छविगृह दीप सिखा जनु बरई॥
सब उपमा कवि रहे जुठारी। केहि पटतरिअ विदेह कुमारी॥

—मानस, बा० का०, पृ० ११४

स्वयं राम भी कहते हैं—

जनम सिंधु पुनि बंधु विष, दिन मलीन सकलंकु।
सिय मुख समता पाव किमि चन्दु बापुरो रंकु ॥
—बा० का०, पृ० ११४

अथवा—

सिय सोभा नहिं जाइ बखानी। जगदम्बिका रूप गुन खानी ॥
जौं पटतरिअ तीअ सम सीया। जग असि जुवति कहां कमनीया ॥
गिरा मुखर तन अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी ॥
विष बारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिअ रमा सम किमि वैदेही ॥
जो छवि सुधा पयोनिधि होई। परम रूप मय कच्छप सोई ॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथै पानि पंकज निज मारू ॥

येहि विधि उपजै लच्छि जब सुन्दरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कवि कहहिं सीय सम तूल ॥
—मानस, बा० का०, पृ० ११८

अथवा

सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसी। छविगन मध्य महाछवि जैसी ॥
—वही, पृ० १३०

राम-भक्ति-सम्प्रदाय में सीता जी को पुरुषकारभूता कहा गया है। उनकी ही कृपा से जीव भगवान् राम को पाता है, वही उनके पक्ष को राम के समक्ष रखती हैं। तुलसीदास ने लिखा है कि देवता तक सीता जी के कृपा-कटाक्ष की कामना करते हैं—

उमा रमा ब्रह्मानि बंदिता। जगदम्बा सन्ततमनिन्दिता ॥

जासु कृपा कटाच्छ सुर चाहत चितव न सोइ।
राम पदारबिंद रति करति सुभावहिं खोइ।
—मानस, पृ० ५०३-४

विनयपत्रिका में वे लिखते हैं—

कबहुँक अम्ब औसर पाइ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी कछु करुन कथा चलाइ ॥
दीन सब अंग हीन खीन मलीन अघी अघाइ।
नाम लै भरै उदरु एक प्रभुदासि दासु कहाइ ॥

बूझिहैं 'सो है कौन' कहिबो नाम दसा जनाइ।
सुनत रामकृपालु कें मेरी बिगरियो बनि जाइ॥
जानकी जग जननि जन की कियें बचन सहाइ।
तरै तुलसीदास भव तव नाथ गुन गन गाइ॥ पद ४१॥

इस प्रकार तुलसीदास की सीता सम्बन्धी धारणा शतप्रतिशत रामानन्दी ही है। रामानन्द-सम्प्रदाय में बिना सीता की कृपा के प्रपत्ति सम्भव नहीं मानी जाती। राम कृपा के याचक तुलसीदास का निश्चित् विश्वास है कि कभी अवसर पाने पर सीता माता उनकी चर्चा भगवान् राम से कर देगीं और भगवान् के सुनते ही उनकी बिगड़ी बन जायगी। 'विनय' के अन्तिम पद से स्पष्ट है कि तुलसीदास पर भगवान् राम की कृपा हो ही गई थी।

जीव—रामानन्द-सम्प्रदाय में जीव ईश्वर की अपेक्षा अज्ञ, चेतन, अज, ईश्वराधीन, भिन्न-भिन्न देहों में भिन्न-भिन्न, स्वकर्मफल भोक्ता, ज्ञानस्वरूप, अणु-परिमाण वाला देह-इन्द्रियो से अपूर्व, नित्य एवं स्वप्रकाश माना गया है। जीव और भगवान् में शेष-शेषी सम्बन्ध भी इस सम्प्रदाय में माना जाता है। भगवान् शेषी हैं और जीव उनका शेष। भगवान् ही जीवों के एकमात्र उपाय हैं। प्रपत्ति द्वारा ही संसार के बन्धनों से जीव की मुक्ति संभव है। जीव और भगवान् में पिता-पुत्र, रक्ष्य-रक्षक, शेष-शेषित्व, भार्या-भर्तृत्व, स्व-स्वामी, आधार-आधेय, सेव्य-सेवक, आत्माआत्मीयत्व और भोग्य-भोक्तृत्व आदि ६ सम्बन्ध माने गए हैं।

तुलसीदास ने यह स्पष्ट ही स्वीकार किया है कि जीव ईश्वर की अपेक्षा अज्ञ है। वे कहते हैं—

ज्ञान अखण्ड एक सीता बर। मायावस्य जीव सचराचर॥
जौं सबके रह ज्ञान एकरस। ईश्वरजीवहिं भेद कहहु कस॥
—मानस, उ० का०, पृ० ५३:

जीव हृदय तम मोह विसेखी। ग्रंथि छूटि किमि परइ न देखी॥
—मानस, उ० का०, पृ० ५५७

वस्तुतः जीव कहते भी उसी को हैं, जो माया, ईश्वर और स्वयं अपने को भी न जाने—

हरष विषाद ज्ञान विज्ञाना। जीवधर्म अहमिति अभिमाना॥
रामब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानन्द परेस पुराना॥
—बा० का०, पृ० ६२

माया ईस न आपु कहँ जानि कहहि सो जीव ॥

—मानस, अ० का०, पृ० ३३०

माया के ही कारण यह जीव अपनी स्वाभाविक ज्ञान-शक्ति को खो बैठता है।

तुलसीदास के मत से जीव ईश्वर का अंश है, चेतन है, अमल है और सहज ही सुख की राशि है, किन्तु वह परवश है—ईश्वराधीन है। वे कहते हैं—

ईश्वर अंश जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी ॥

—मानस, उ० का०, पृ० ५५७

... ...

मायावस्य जीव अभिमानी। ईसवस्य माया गुन खानी ॥
परवस जीव स्ववस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकन्ता ॥
मुधाभेद जद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया ॥

—उ० का०, पृ० ५३१

जीवों को कर्म-फल देने वाला वस्तुतः ईश्वर ही है :—

सुभ अरु असुभ करम अनुहारी। ईसु देइ फलु हृदअँ विचारी ॥

—मानस, अ० का०, पृ० २१२

ईश्वर एक है, किन्तु जीव अनेक है। चौरासी लाख योनियाँ जीवों की ही हैं :—

परवस जीव स्वबस भगवन्ता। जीव अनेक एक श्रीकन्ता ॥

—उ० का०, पृ० ५३१

आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल थल नभ वासी ॥

—बा० का०, पृ० ६

जीवों को अपने किए हुए कर्मों का फल भी भोगना पड़ता है :—

जीव करम बस सुख-दुख भागी।...........

—अयोध्या कांड, पृ० १८४

करइ जो करम पाव फल सोई। निगम नीति असि कह सब कोई ॥

—दशरथ, अ० कां०, पृ० २१२

सिय रघुबीर कि कानन जोगू। करमु प्रधान सत्य कह लोगू॥
—वही, पृ० २१७

काहु न कोउ सुख-दुख कर दाता। निजकृत करम भोग सब ताता॥
—अ० का०, पृ० २१८

तुलसीदास ने भी जीव को ज्ञान-स्वरूप, आनन्द-स्वरूप आदि माना है। उनके मत से जीव चेतन है, अमल है और सुख की राशि है। वे कहते हैं :

ईश्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥

रामानन्द-सम्प्रदाय में जीव को अणु परिमाण वाला माना गया है, किन्तु उसे देहेन्द्रियों से अपूर्व कहा गया है। तुलसीदास ने कहीं भी जीव को स्पष्टरूप से अणु परिमाण वाला नहीं स्वीकार किया है। 'चेतन अमल सहज सुखरासी' की व्याख्या करते हुए रामानन्द-सम्प्रदाय के विद्वान् श्री श्रीकान्त शरण ने जीव को अणु परिमाण वाला सिद्ध किया है। उनके मत से जीव या तो विभु हो सकता है अथवा अणु। ईश्वर का अंश होने से जीव विभु नहीं हो सकता। अतः उसे अणु-परिमाण वाला कहना ही उचित है।

तुलसीदास ने जीव को नित्य माना है :

आकर चारि लाख चौरासी। जीव भ्रमत येहु जिव अविनासी॥
या--छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधमशरीरा॥
प्रगट सो तनु तव आगे रोवा। *जीव नित्य* केहि लगि तुम रोवा॥
(राम तारा से) मानस, कि० का०, पृ० ३६०

जीव को 'अमल' तथा 'चेतन' कह कर गोस्वामी जी ने उसे स्व-प्रकाशमय भी माना है।

रामानन्द-सम्प्रदाय में भगवान् को शेषी और जीव को उनका शेष स्वीकार किया गया है। तुलसीदास ने भी 'ईश्वर अंश जीव अविनासी' कह कर जीव को भगवान् का अंश स्वीकार किया है।

रामानन्द-सम्प्रदाय में भगवान् ही जीवों के एकमात्र उपाय माने गए हैं। जब तक जीव भगवान् राम की शरण नहीं जाता तब तक उसका निस्तार सम्भव नहीं। तुलसीदास भी कहते हैं—

तब लगि कुसल न जीव कहुँ, सपनेहुं मन विश्राम।
जब लगि भक्त न राम कहुं, सोकधाम तजि काम॥

... ...

तब लगि हृदय बसत खल नाना । लोभ मोह मच्छर मद माना ॥
जब लगि उर न बसत रघुनाथा । धरें चाप सायक कटि भाथा ।
ममता तरु न तमी अँधियारी । रागद्वेष उलूक सुखकारी ॥
तब लगि बसत जीव मन मांही । जब लगि प्रभु प्रताप रवि नाहीं ॥
तुम्ह कृपाल जापर अनुकूला । ताहि न व्याप त्रिविध भवसूला ॥

—मानस, अ० का०

अथवा—करम बचन मन छाड़ि छलु जब लगि जनु न तुम्हार ।
तब लगि सुखु सपनेहुं नहीं किएं कोटि उपचार ॥ भारद्वाज,

—मानस, अ० का०, पृ० २२४

इन सब कथनों से स्पष्ट है तुलसीदास जी भगवान् राम को ही परमोपाय मानते थे । 'विनयपत्रिका' में भी गोस्वामी जी ने लिखा है :

संजम जप तप नेम धरम ब्रत बहु भेषज समुदाई ।
तुलसिदास भवरोग रामपद प्रेमहीन नहिं जाई ॥

—विनय पत्रिका, पृ० ८१

जीवों को प्रपत्ति से ही मोक्ष सम्भव है । रामानन्द-सम्प्रदाय में प्रपत्ति पर बहुत अधिक बल दिया गया है, यह हम पीछे देख चुके हैं । तुलसीदास जी ने भी स्वीकार किया है कि प्रपत्ति से ही मोक्ष सम्भव है—

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई । जानत तुम्हहिं तुम्हहि होइ जाई ॥
तुम्हरी कृपा तुम्हहिं रघुनन्दन । जानहिं भगत भगत उर चन्दन ॥

—मानस, अ० का०, पृ० २३२

सचमुच भगवान् की जिन पर कृपादृष्टि हो जाय उन्हें संसार के तीनों ताप व्याप्त नहीं हो सकते—

तुम्ह कृपालजापर अनुकूला । ताहि न व्याप त्रिविध भवसूला ॥

—मानस, उ० का०, पृ० ३६४

रामानन्द-सम्प्रदाय में जीव और भगवान् में ६ प्रकार के सम्बन्ध स्वीकार किए गए हैं । 'तोहि मोहि नाते अनेक' कह कर तुलसीदास ने ब्रह्म-जीव के पारस्परिक अनेक सम्बन्धों की ओर इंगित किया है, किन्तु उनकी आस्था 'सेव्य-सेवक सम्बन्ध' में अधिक जान पड़ती है । 'सेवक-सेव्य भाव बिनु भव न

तरिश्र उरगारि' कह कर उन्होंने इसी पक्ष का समर्थन किया है। राम को सेवक हैं भी प्रिय, इसे तुलसीदास ने अनेक स्थलों पर व्यक्त किया है। स्वयं राम के मुख से उन्होंने कहलवाया है—

मम माया सम्भव परिवारा। जीव चराचर विविध प्रकारा॥
सब मम प्रिय सब मम उपजाए। सबते अधिक मनुज मोहिं भाए॥
तिन महं द्विज द्विज महं श्रुतिधारी। तिनमहुँ निगम धरम अनुसारी॥
तिन महं प्रिय विरक्त पुनि ज्ञानी। ज्ञानिहुँ ते अति प्रिय विज्ञानी॥
तिन्हते प्रियमोहिं पुनि निजदासा। जेहि गति मोर न दूसरि आसा।
पुनि पुनि सत्य कहौं तोहिं पाही। मोहिं सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं॥

—मानस, उ० का०, पृ० ५३६

इसी प्रकार 'ईश्वर अंश जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी' कह कर तुलसीदास ने जीव तथा ईश्वर में अंशांशी भाव भी स्वीकार किया है। 'विनयपत्रिका दीन की बापु आपुही वांचो' कह कर उन्होंने ईश्वर और जीव के पिता-पुत्र सम्बन्ध की ओर भी संकेत किया है।

तुलसीदास ने भगवान् और जीव में सखा-संबंध को भी स्वीकार है। वे कहते हैं—

राम प्रान प्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सब ही के॥

मानस, अ० का०, पृ० २१०

……………………………ब्रह्म जीव सम सहज संघाती॥

मानस, बालकाण्ड, पृ० १४

भगवान् और जीव के अन्य सम्बन्धों की ओर तुलसीदास ने कोई स्पष्ट संकेत नहीं किए हैं। उन्होंने कुछ पंक्तियाँ अवश्य ही इस प्रकार की लिखीं हैं जिनसे मनमाने ढंग का अर्थनिकालकर रामानन्द-सम्प्रदाय के विद्वानों ने तुलसी को पक्का विशिष्टाद्वैत-मतानुयायी सिद्ध करने का प्रयास किया है। वस्तुतः तुलसीदास ने अपनी दार्शनिक मान्यताओं को इतनी अधिक स्पष्टता से व्यक्त किया है कि उनकी उक्तियों को खींच-तान कर अन्यथा अर्थ निकालने का अवकाश ही शेष नहीं रहता। जहाँ इस प्रकार का प्रयास हुआ है, वहाँ निश्चय ही विषय-विवेचन दोषपूर्ण एवं एकांगी हो गया है।

तुलसीदास द्वारा जीव-भेद-निरूपण—रामानन्द-सम्प्रदाय में जीवों का जिस विस्तार से भेद-वर्णन किया गया है, उस प्रकार भेद-निरूपण करने का

कोई प्रयास तुलसीदास ने नहीं किया है। जीवों के भेद के सम्बन्ध में तुलसीदास ने केवल एक पंक्ति लिखी है—

विषयी साधक सिद्ध सयाने। त्रिविध जीव जग वेद बखाने॥

मानस, अ० का०, पृ० २६७

स्पष्ट है, विषयी, साधक और सिद्ध ये तीन प्रकार के ही जीव गोस्वामी जी को मान्य हैं। इनमें भी उन्होंने विषयी जीवों का विस्तार से वर्णन किया है। कुछ विद्वानों का मत है कि गोस्वामी जी ने जीवों के विभिन्न प्रकारों का भी वर्णन उसी प्रकार किया है, जिस प्रकार रामानन्द-सम्प्रदाय में किया गया है। ऐसे विद्वानों में 'मानस सिद्धान्त तिलक' के लेखक श्री श्रीकांतशरण जी प्रमुख हैं। उनके अनुसार गोस्वामी जी ने जीवों की विभिन्न कोटियों का इस प्रकार वर्णन किया है—

बद्ध—

आकर चारि लाख चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अविनासी॥

उ० का०, दोहा ४३

सो माया बस भयेउ गोसाईं। बंध्यो कीट मरकट की नाईं॥
जड़ चेतनहिं ग्रन्थि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई॥
तब ते जीव भयेउ संसारी। छूट न ग्रन्थि न होइ सुखारी॥

उ० का०, दोहा ११६

बुभुक्षु—

सिस्नोदर पर जमपुर त्रास न।... ... उ० का०, दोहा ३६

मुमुक्षु—

जहँ जहँ विपिन मुनीश्वर पावउं। आश्रम जाइ जाइ सिर नावउं॥
बूझउं तिन्हहिं राम गुन गाहा। कहहिं सुनहुं हरखित खगनाहा॥

... ...

छूटी त्रिविध ईषना गाढ़ी। एक लालसा उर अति बाढ़ी॥
रामचरन वारिज जब देखहुं। तब निज जन्म सुफल करिलेखउं॥

उ० का०, दोहा १०६

कैवल्यपरायण—सो कैवल्यपरमपद लहई। (उत्तरकाण्ड, ज्ञानदीपक प्रसंग, दोहा ११७-११८)

मोक्षपरायण—क भक्त—

राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरियाई॥

... ...

भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अविद्या नासा॥

उत्तरकाण्ड, दोहा ११८

ख—प्रपन्न (१) एकान्ती—

मोरदास कहाइ नर आसा। करइ त कहहु कहा बिस्वासा॥

उत्तर, दोहा, ४५

ये सेवक अनन्यगति, ज्यों चातकहिं एक गति घन की।

गीतावली, अ० का०, ७१

२—परमैकान्ती—

जाहि न चाहिय कबहुँ कछु, तुम्ह सन सहज सनेह।

अ० दोहा, १३१

या

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउं निर्वान।
जनम जनम रति रामपद यह बरदान न आन॥

अ० का०, दोहा २०४

परमैकान्ती के दो भेद: आर्त्त और दृप्त। आर्त्त (लक्ष्मण)—

राम बिलोकि बन्धु कर जोरे। देह-गेह सब सन तृन तोरे॥

अ० का०, दोहा ६६

कृपासिन्धु अवलोकि बन्धु तन, प्रान कृपान बीर सी छोरे।

गीतावली अ० ११

मुक्त जीव—'सगुन उपासक मोच्छ न लेहीं।' कह कर मोक्ष का निषेध तथा 'जनम जनम रति रामपद यह वरदान न आन' लिख कर गोस्वामी जी ने सायुज्य मुक्ति में ही अपना विश्वास प्रकट किया है। मुक्त का उदाहरण—

मुकुत कीन्हि असि मारि॥.........अरण्य काण्ड, दोहा ३६

जीवन्मुक्त—जीवन्मुक्त ब्रह्म पर चरित सुनहिं तजि ध्यान।
जेहि हरि कथा न करहिं रति, तिन्हके हिय पाषान॥

उ० का०, पृ० ५१२

ज्ञानवन्त कोटिक महं कोऊ। जीवन्मुक्त सकृत जग सोऊ॥

उ० का०, दोहा ५३

जीवन्मुक्त महामुनि जेऊ। हरिगुन सुनहिं निरन्तर तेऊ॥

उ० का०, दोहा ५२

सुक सनकादि मुक्त विचरत तेउ भजन करत अजहूँ।

विनयपत्रिका, पद ८६

नित्य—गोस्वामी जी ने 'सन्तत सगुन ब्रह्म अनुरागी' जीवों का भी वर्णन किया है। ये जीव मोक्ष सुख त्याग कर भगवान् के साथ अवतार लेते-रहते हैं—

निज इच्छा प्रभु अवतरइ, सुरमहि गो द्विज लागि।
सगुन उपासक संग तहं, रहहिं मोच्छ सब त्यागि॥

कि०, दोहा २६

महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा तथा डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र ने तुलसी के जीव-तत्व विवेचन पर अद्वैत की छाप अधिक पाई है। उनके अनुसार तुलसीदास ने जीव और ईश्वर में तत्वतः कोई भी अन्तर नहीं माना है। तुलसी के मत से जीव ईश्वरांश होने से चेतन, अमल, अविनाशी एवं सहज सुखराशि है; केवल मायाजन्य अभिमान के कारण वह अपने को माया का ईश नहीं समझता है। जिस क्षण उसे परमात्मा का ज्ञान हो जायगा, उसका जीवत्व तुरन्त ही मिट जायगा। डा० बलदेव प्रसाद मिश्र का कथन है: 'व्यक्तित्वाभिमान विध्वंस के लिए यों भी विशिष्टाद्वैत वाद की अपेक्षा अद्वैतवाद ही अधिक उपयुक्त है, क्योंकि विशिष्टाद्वैत वाद मत के अनुसार तो जीव का व्यक्तित्व नष्ट ही नहीं हो सकता।'—तुलसीदर्शन (पृ० २२०)। आगे वे पुनः लिखते हैं "उन्होंने पारमार्थिक और व्यावहारिक दोनों दृष्टिकोणों का यथास्थान उपयोग किया है......उनका यथार्थ दार्शनिक सिद्धान्त अद्वैत है, न कि विशिष्टाद्वैत।" तुलसीदर्शन (पृ० २१२)।

वस्तुतः तुलसीदास ने एक ओर 'सो तैं ताहि तोहि नहि भेदा', 'रज्जौ यथाऽहेर्भ्रमः' 'जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने' आदि लिख कर जीव और ईश्वर में अभिन्नता स्थापित की है और दूसरी ओर 'जीव अनेक एक श्रीकन्ता। परवश जीव स्ववश भगवन्ता॥' लिख कर जीव और ब्रह्म में अन्तर भी स्वीकार किया है। एक ओर वे 'ज्ञान मोच्छ प्रद वेद बखाना' कह कर ज्ञान की महत्ता स्वीकार करते हैं, दूसरी ओर 'मुकुति निरादरि भगति लोभा ने' कह कर उन्होंने भक्ति को अत्यन्त ही प्रेय बतलाया है। यहाँ स्पष्ट ही वे अद्वैतवाद और भक्ति-मार्ग में समन्वय स्थापित करने की चेष्टा करते से प्रतीत होते हैं। कुछ विद्वानों

का तो यहाँ तक कहना है कि वस्तुतः यह समन्वय शंकर और रामानुज के मतों में नहीं किया गया है, वरन् अद्वैत के पारमार्थिक एवं व्यावहारिक सत्यों में ही गोस्वामी जी ने अपनी आस्था व्यक्त की है। इस मत की पुष्टि गोस्वामी जी की इस उक्ति से की जाती है—

धरनि धाम धनु पुर परिवारू। सरगु नरकु जहँ लगि व्यवहारू॥
देखिय सुनिय गुनिय मन मांहीं। मोह मूल परमारथ नाहीं॥

ऊपर हमने देखा है कि गोस्वामी तुलसीदास जी 'श्री वैष्णव मताब्ज भास्कर' के मत से बहुत दूर तक प्रभावित जान पड़ते हैं, अतः यह स्पष्ट है कि रामानन्द स्वामी के मत में उनकी पर्याप्त आस्था थी। वे प्रतिभाशील कवि एवं भक्त थे, उनकी बुद्धि समन्वय-वादिनी थी, अतः उन्होंने अपने युग की प्रचलित विचार-धाराओं में भी समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की है। उनकी रचनाओं में अनेक उदाहरण ऐसे मिलते हैं, जिनसे उन पर अद्वैतवाद का प्रभाव सिद्ध किया जा सकता है—ऊपर कुछ ऐसे ही उदाहरण दिए जा चुके हैं। साथ ही विशि-ष्टाद्वैतियों ने सप्रमाण उन्हें विशिष्टाद्वैत-मतानुयायी भी सिद्ध किया है। ऊपर उनकी भी विचारधारा का परिचय कराया गया है। ऐसी परिस्थिति में किसी एक मत में ही तुलसीदास की आस्था थी, ऐसा कहना तर्क संगत नहीं प्रतीत होता। वस्तुतः वे एक भक्त थे, दार्शनिक नहीं। इस दृष्टि से शुक्ल जी का यह कथन "परमार्थ की दृष्टि से—शुद्धज्ञान की दृष्टि से—तो अद्वैत मत गोस्वामी जी को मान्य है, परन्तु भक्ति के व्यावहारिक सिद्धान्त के अनुसार भेद करके चलना वे अच्छा समझते हैं।" गोस्वामी जी की विचारधारा का सही मूल्यांकन उप-स्थित करता है। वस्तुतः उन्होंने अद्वैत और विशिष्टाद्वैत दोनों के ही गुणों को लेकर उनके दोषों को अस्वीकार किया है।

प्रकृति—रामानन्द-सम्प्रदाय में प्रकृति तत्व का निरूपण करते हुए कहा गया है कि यह नित्य, अज्ञ, अचेतन, विकाररहित, सम्पूर्ण विश्व का कारण, एक होकर भी अनेक वर्णों वाली, अजा, त्रिगुणात्मिका, अव्यक्तादि शब्दों द्वारा अभिहित, स्वतन्त्र व्यापारहीन, परार्थ और महदहंकारादि की सृष्टि करने वाली है। 'आनन्दभाष्य' में प्रकृति को भगवान् का अचिदंश कहा गया है, प्रकृति स्वयं अचेतन होने से जगत्कारण नहीं हो सकती, वह ब्रह्म के अधीन होकर ही जगत्सृष्टि करती है। सृष्टि के पूर्व सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म कारणावस्था में रहता है, सृष्टिकाल में वही स्थूल चिदचिद्विशिष्ट होकर उपादानत्व को प्राप्त

होता है। परिणाम विशेषणांश में ही होता है, विशेष्य निर्विकार रहता है। संसार की उत्पत्ति का कारण है परमात्मा का संकल्प। केवल लीला-मात्र के लिए ही ईश्वर जगत्सृष्टि करता है। ईश्वर ही आकाश वायु तेज, आप, पृथ्वी, अन्नादि की सृष्टि करता है। उत्पत्ति में जो क्रम रहता है, प्रलय में ठीक उसी का उलटा क्रम होता है।

भगवदाचार्य जी ने प्रकृति-तत्व की कुछ और विस्तृत व्याख्या की है। उनके अनुसार अचित्तत्व के तीन प्रकार होते हैं—शुद्ध सत्व—रजस्-तमस् से रहित चन्दनादि को कहते हैं, ये नित्य एवं ज्ञान-जनक हैं; मिश्रसत्व रजस्-तमस् से मिलकर रहने वाले सत्व का नाम है, यह बद्धजीवों के ज्ञानानन्द का तिरोधानकर्त्ता है, उसी को त्रिगुण तथा माया के नाम से अभिहित किया जाता है। इसे ही प्रकृति, प्रधान, अव्यक्त आदि नाम भी दिए गए हैं। इसी प्रकृति से महदादि २४ तत्वों की सृष्टि होती है।

तुलसीदास ने अचित्तत्व का निरूपण किया तो है, पर उसे 'माया' शब्द से ही अभिहित किया है, प्रकृति शब्द से नहीं। तुलसीदास के मत से यह समस्त प्रपंचात्मक जगत् माया ही है :

गो गोचर जहं लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥

—मानस, अर० का०, पृ० ३३०

यह माया स्वतन्त्र-व्यापार-हीन है। समस्त संसार को नचाने वाली माया भी भगवान् राम के अधीन है, उनके ही इंगित पर वह क्रियाशील होती है :—

जीव चराचर बस कै राखे। सो माया प्रभु सों भय भाखे॥
भृकुटि विलास नचावैताही। अस प्रभु छांड़ि भजिअकछु काही॥

—मानस, बा० का०, पृ० १०१

तुलसीदास ने इस माया को भगवान् राम की दासी भी कहा है, बिना राम की कृपा के इस माया से छूट जाना भी सम्भव नहीं है—

व्यापि रहेउ संसार महुं, माया कटक प्रचंड।
सेनापति कामादि भट, दम्भ कपट पाखण्ड॥
सो दासी रघुवीर कै, समुझे मिथ्या सोपि।
छूट न राम कृपा बिनु, नाथ कहौं पद रोपि॥

जो माया सब जगहिं नचावा । जासु चरित लखि काहु न पावा ।।
सोइ प्रभु भ्रू विलास खगराजा । नाच नटी इव सहित समाजा ।।
—मानस, उ० का०, पृ० ५२७

तुलसीदास ने यद्यपि स्पष्ट शब्दों में माया को कहीं भी नित्य एवं अजा नहीं कहा है, किन्तु उन्होंने कुछ ऐसे संकेत दिए हैं जिनसे स्पष्ट है कि वे माया की नित्यता में विश्वास करते हैं—नीचे कुछ ऐसे संकेत उद्धृत किए जा रहे हैं :–

अति प्रचण्ड रघुपति कै माया । *जेहि न मोह अस को जगजाया* ।।

—(नारद-मोह-प्रसंग)

सुरनर मुनि कोउ नाहिं, *जेहि न मोह माया प्रबल* ।

—(विष्णु नारद से)

तव विषम माया बस सुरासुर नागनर अग जग हरे ।
भवपंथ भ्रमत अमित दिवस निसि कालकर्म गुनन्हि भरे ।।
—(वेद, राम की प्रशंसा करते हुए)

हरि माया कर अमित प्रभावा । विपुलबार जेहि मोहि नचावा ।।
अग जग मय जग मम उपराजा ।... ... ...
—(ब्रह्मा गरुड़ से)

जासु प्रबल माया बस, सिव विरंचि बड़ छोट ।

निश्चय ही शिव, विरंचि; सुर-नर-मुनि-नाग आदि सभी को भ्रमाने वाली माया अनादि एवं नित्य है ।

रामानन्द-सम्प्रदाय में प्रकृति को अचेतन एवं अंश माना गया है । ब्रह्म के अचित्तत्व का यह प्रतीक है । तुलसीदास ने भी माया को जड़ कहा है । केवल ब्रह्म के आभासमात्र से इसमें सत्यता की प्रतीति होती है :—

जासु सत्यता ते जड़ माया । भास सत्य इव मोह निकाया ।।
—मानस, बा० का०, पृ० ६३

प्रकृति स्वयं तो विकारहीन है, किन्तु इसे सम्पूर्ण विश्व का कारण कहा गया है । वस्तुतः यह इसलिए सम्भव है कि प्रकृति को भगवान् राम का बल

प्राप्त है। इस शक्ति के कारण यह समस्त ब्रह्माण्ड भर की सृष्टि क्षणमात्र में कर देती है। तुलसीदास ने भी लिखा है :—

सुनु रावन ब्रह्माण्ड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया ॥

—हनुमान, मानस, पृ० ३८२

लव निमेष महुँ भुवन निकाया। रचै जासु अनुसासन माया ॥

—मानस, बा० का०, पृ० ११२

मम माया सम्भव संसारा। जीव चराचर बिबिध प्रकारा ॥

—मानस, उ० का०, पृ० ५३६

प्रकृति त्रिगुणात्मिका है और महदादि की सृष्टि इन्हीं गुणों की सहायता से करती है। तुलसीदास ने लिखा है—

एक रचै जग गुन बस जाकें। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें ॥

—मानस, अ० का०, पृ० ३३०

गगन समीरादि की सृष्टि इसी माया ने की है :—

गगन समीर अनल जल धरनी। इन्ह कइ नाथ सहज जड़ करनी ॥
तव प्रेरित माया उपजाए। सृष्टि हेतु सब ग्रन्थन्हि गाए ॥

—मानस, सु० का०, पृ० ४०१-२

'आनन्दभाष्य' के मत से प्रपंच सत्य है। सृष्टि के पूर्व ब्रह्म सूक्ष्म चिद-चिद्विशिष्टावस्था में रहता है, सृष्टिकाल में वही स्थूल चिदचिद्विशिष्ट हो जाता है। पहली कारणावस्था है, दूसरी कार्यावस्था। संसार को मिथ्या मान लेने से वेदान्त वाक्यों को भी मिथ्या मानना पड़ेगा। अतः 'आनन्दभाष्य' का यह निश्चित् मत है कि 'अध्यासवाद' को स्वीकार कर लेने पर अद्वैत की भी सिद्धि नहीं होती। अतः इस ग्रंथ में मायावाद का बड़ी कड़ी शैली में खंडन किया गया। तुलसीदास 'आनन्दभाष्य' के मत से सहमत होते से नहीं प्रतीत होते। वे लिखते हैं—

यत्सत्त्वादमृषैवभातिसकलं रज्जौ यथाऽहेर्भ्रमः।

मा०, बा० का०, श्लोक ६

जासु सत्यता तें जड़ *माया*। भास सत्य इव मोह निकाया ॥

—मानस, बा० का०, पृ० ६३

जोग वियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा ॥
जनमु मरनु जहं लगि जग जालू। सम्पति विपति करमु अरु कालू ॥
धरनि धामु धनु पुर परिवारू। सरगु नरकु जहं लगि व्यवहारू ॥
देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं। मोह मूल परमारथ नाहीं ॥

सपने होइ भिखारि नृप, रंक नाकपति होइ।
जागे लाभु न हानि कछु, तिमि प्रपंचु जिअं जोइ ॥

—मानस, अ० का०, पृ० २१८

जो माया सब जगहिं नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा ॥
सोइ प्रभु भ्रू विलास खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा ॥

—मानस, उ० का०, पृ० ५२७

इन पंक्तियों से स्पष्ट है तुलसीदास प्रपंचात्मक जगत् को मिथ्या मानते हैं, उसी प्रकार जिस प्रकार मायावादी इसे मानते आए हैं। जिस प्रकार मायावादियों ने पारमार्थिक सत्य को वास्तविक माना है, उसी प्रकार तुलसीदास ने भी 'मोह मूल परमारथ नाहीं' कह कर पारमार्थिक सत्य में अपना विश्वास प्रकट किया है। अन्यत्र अनेक स्थलों पर उन्होंने संसार को असत्य ही माना है। इस सम्बन्ध में उन्होंने उदाहरण भी वही लिए हैं, जिन्हें मायावादी प्रायः उद्धृत किया करते हैं। डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र ने उन्हें बड़े क्रमबद्ध ढंग से एकत्रित किया है। मैं ज्यों-का-त्यों उसे उद्धृत कर रहा हूँ—

उमा कहहुं मैं अनुभव अपना। सत हरि भजन *जगत् सब सपना* ॥
पृ० ३१२-१५ (ना० पृ० सभा संस्करण)

जथा अनेक भेष धरि नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ आपुन होइ न सोइ ॥
४७५-११,१२

झूठहु सत्य जाहि बिनु जाने। जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने
जेहि जाने जग जाइ हेराई। जागे जथा सपन भ्रम जाई
५७-१३,१४

रजत सीप महुँ भास जिमि, जथा भानु कर वारि।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ, भ्रम न सकइ कोउ टारि ॥

यहि विधि जग हरि आस्रित रहई । जदपि असत्य देत दुख अहई ॥
जौं सपने सिर काटइ कोई । बिनु जागे दुख दूरि न होई ॥
५६-२१ से २६

चितव जो लोचन अंगुलि लाए । प्रगट जुगल ससि तेहि के भाए ॥
५६-१७

नौकारूढ़ चलत जग देखा । अचल मोह बस आपुहि लेखा ॥
५७५-१७

सो तैं ताहि तोहि नहि भेदा । बारि बीचि इव गावहिं बेदा ॥
४६६-८

जदपि मृषा तिहुं काल सोइ, भ्रम न सकइ कोउ टारि ॥
४६-१४

निश्चय ही प्रकृति के सम्बन्ध में ये समस्त उक्तियाँ यह स्पष्ट कर दे रही हैं कि तुलसीदास का विशिष्टाद्वैत में उतना विश्वास नहीं था, जितना अद्वैतवाद में। माया-वाद की ही शैली में उन्होंने माया के दो भेद भी किए हैं—विद्या-माया, अविद्या माया। उनमें से एक बहुत ही दुष्टरूपा एवं दुख देने वाली है, जीव उसी के कारण भवकूप में पड़ा हुआ है। दूसरी त्रिगुणात्मिका है और प्रभु की प्रेरणा से समस्त विश्व की रचना करती है। वस्तुतः माया के कारण ही निर्गुण ब्रह्म का ज्ञान नहीं हो पाता। जैसे पुरइनि जल को घेर लेती है उसी प्रकार माया ने भी ब्रह्म को घेर रखा है—'पुरइनि सघन ओट जल, वेगि न पाइअ मर्म। [illegible] न देखिए जैसे निर्गुण ब्रह्म।' अ० का०, पृ० ३४८। इस माया के परिवार हैं लोभ, मोह, तृष्णा, क्रोध, श्रीमद, प्रभुता, मृगलोचनी, गुणी होने का गर्व, मानमद, यौवन, ममता, मत्सर, चिन्ता, शोक, सुत-वित-लोक की कामना, काम, दम्भ, कपट और पाखण्ड (मानस, उ० कां०, पृ० ५२७)।

'आनन्द भाष्य' के अनुसार प्रकृति (प्रधान) ब्रह्म के अधीन होकर ही जगत्कारण हो सकती है, अतः विकारादि दोषों का पर्यवसान प्रकृति में ही हो जाता है और ब्रह्म की निर्विकारता स्वतः सिद्ध हो जाती है। तुलसीदास के अनुसार माया राम की दासी है और उन्हीं के इंगित पर इस विश्व ब्रह्माण्ड की सृष्टि करती है, यह पहले कहा जा चुका है। अब यहाँ प्रश्न उठता है कि ब्रह्म इस जगत् की सृष्टि ही क्यों करता है ? 'आनन्दभाष्य' का उत्तर है कि जिस प्रकार केवल क्रीड़ार्थ ही राजादि कन्दुक क्रीड़ा करते हैं, उसी प्रकार अवाप्त समस्त काम ब्रह्म

जगत्सृष्टि केवल लीलामात्र के लिए करता है। विषमता और संहार का हेतु कर्म ही है, ईश्वर नहीं। तुलसीदास ने भी इस जगत् को भगवान् राम की लीला कहा है, उनकी यह लीला सुरों को सुख देने वाली तथा दुर्जनों को मुग्ध करने वाली है—

असि रघुपति लीला उरगारी। दनुज विमोहनि जन सुखकारी॥

मानस, उ० का०, पृ० ५२८

गिरिजा सुनहु राम कै लीला। सुरहित दनुज विमोहनसीला॥-शंकर

तुलसीदास ने भी संसार को काल, कर्म और गुणों के वश होकर दिन रात भ्रमित रहने वाला कहा है। वे कहते हैं—

तब विषममायावस सुरासुर नाग नर अग जग हरे।
भवपंथ भ्रमत अमित दिवस निसि काल कर्म गुनन्हि भरे॥

मानस, उ० का०, पृ ४६६

इस प्रकार स्पष्ट है कि तुलसीदास 'श्री वैष्णव-मताब्ज-भास्कर' ग्रन्थ की विचारधारा से बहुत दूर तक प्रभावित हैं, किन्तु 'आनन्दभाष्य' के मत से वे पूर्णतया सहमत नहीं। एक ओर 'श्री वैष्णव-मताब्ज-भास्कर' ही की भांति उन्होंने प्रकृति को नित्य, अज्ञ, अचेतन, सम्पूर्ण विश्व का कारण, स्वतन्त्र व्यापार हीन एवं महदहंकारादि की सृष्टि करने वाली माना है, दूसरी ओर 'आनन्दभाष्य' की भाँति ही उन्होंने प्रकृति को ईश्वराधीन होकर जगत्सृष्टि करने वाली, जगत् को भगवान् की लीला और विषमता तथा संहार का कारण कर्म को ही माना है। किन्तु 'आनन्दभाष्य' में जहाँ प्रकृति को भगवान् का अचिदंश तथा प्रपंच को सत्य माना गया है, वहीं तुलसीदास ने प्रपंच को असत्य एवं स्वप्नवत् माना है। यह समस्त संसार, उनके मत से, मोहमूल है, परमार्थ नहीं। 'मृगवारि', 'सीपी में रजत का आभास' तथा 'रज्जु में सर्प का भ्रम' आदि उदाहरणों से उन्होंने अपने मत का स्पष्टीकरण भी किया है। इस प्रकार समग्रतः रामानन्द के मत को स्वीकार करते हुए भी तुलसीदास अद्वैतवाद की ओर विशेष झुके थे और इसका एक बहुत बड़ा कारण उनका प्रकृति के स्थान पर 'माया' शब्द का प्रयोग करना था।

शंकराचार्य के दर्शन में 'माया' का एक विशेष स्थान है। आचार्य शंकर ने 'माया' को ब्रह्म की शक्ति विशेष माना है। अग्नि से जिस प्रकार उसकी जलाने वाली शक्ति अपृथक् है उसी प्रकार माया ब्रह्म से अपृथक् है।

जिस प्रकार अज्ञान आवरण और विक्षेप के द्वारा असत्य को भी सत्यवत् प्रतिभासित करता है अथवा जिस प्रकार नट इन्द्रजाल के प्रभाव से अज्ञानियों को असत्य में भी सत्य का आभास कराता है, उसी प्रकार माया अज्ञानियों में भ्रम की उत्पत्ति करती है। ईश्वर की दृष्टि से माया ब्रह्म की प्रपंचात्मक जगत् की सृष्टि करने की इच्छामात्र है, ब्रह्म न तो उससे प्रभावित होता है और न उसे वह धोखा ही दे सकती है। हम अज्ञानियों के लिए माया भ्रम उत्पादन करने वाली अविद्या या अज्ञान है। माया अनादि है, यह भावरूप अज्ञान है। रामानुज के मत से माया ब्रह्म की वास्तविक सृष्टि-शक्ति है, अथवा ब्रह्म के अन्तर्गत स्थित अचित्तत्व को ही वे माया मानते हैं, जो वस्तुतः संसार में परिणत हो जाता है। शंकराचार्य के मत से ईश्वर में (अचिदंश के रूप में भी) कोई वास्तविक परिवर्तन नहीं होता, परिवर्त्तन केवल वाह्य है, वास्तविक नहीं। इसीलिए शंकर के मत को विवर्तवाद कहा गया है। शंकर ने यह स्वीकार किया है कि माया को त्रिगुणात्मिका प्रकृति भी कहा गया है, पर उनके मत से इसे सांख्य की प्रकृति नहीं समझ लेना चाहिए, जो एक स्वतन्त्र सत्ता है। माया तो ब्रह्म की एक शक्तिमात्र है और पूर्णतया उसी पर निर्भर रहती है।

तुलसीदास ने भी प्रपंच को असत्य, भ्रम एवं मिथ्या कहा है, रामानुज की भाँति ब्रह्म के अचिदंश का वास्तविक परिणाम नहीं। इस प्रकार वे विवर्त्तवाद में अधिक विश्वास से करते प्रतीत होते हैं, परिणामवाद में या विशिष्टाद्वैत में कम। लगता है रामानन्द के समय तक रामानन्दी-सम्प्रदाय में विशिष्टाद्वैत के प्रति अधिक मोह नहीं था, इसीलिए तुलसी उनसे प्रभावित होकर भी 'आनन्दभाष्य' की विचार-पद्धति में विशेष विश्वास न कर सके। रामानन्द-सम्प्रदाय में दार्शनिक सिद्धान्त की दृष्टि से साम्प्रदायिकता का विकास धीरे-धीरे हुआ है और आज भी इस सम्प्रदाय में कुछ ऐसे व्यक्ति हैं जो विशिष्टाद्वैत में पूरा विश्वास नहीं रखते, वे भक्त कहलाने की अपेक्षा 'योगी' ही कहलाना अधिक पसन्द करते हैं।

मोक्ष तथा साकेत धाम—रामानन्द-सम्प्रदाय में सायुज्य मुक्ति में ही विश्वास किया जाता है। भक्त को केवल भगवान् की सेवा करने तथा उनके साथ विहार करने में ही आनन्द आता है। जिस पर भगवान् की कृपा हो जाती है, वह इस जीवन में ही मुक्त हो जाता है और कालान्तर में शरीर-त्याग कर अर्चिरादि मार्गों को पार करता हुआ साकेत-धाम पहुँच जाता है। तुलसीदास के भी मत से सगुणोपासक भक्त मोक्ष स्वीकार नहीं करते, वे तो केवल भक्ति-अविरल भक्ति—की कामना करते हैं—

सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं। तिन्हं कहुँ राम भगति निज देहीं॥

—: मानस, लं० का०, पृ० ४७६

अन्यत्र, रामेश्वर की स्थापना करते समय स्वयं भगवान् राम ने कहा है कि जो रामेश्वर को गंगाजल लाकर चढ़ाएगा उसे सायुज्य मुक्ति मिलेगी :—

जो गंगाजल आनि चढ़ाइहि। सो सायुज्य मुक्ति नर पाइहि॥

—: मानस, लं० का०, पृ० ४०४

भक्तों को राम सायुज्य मुक्ति ही देते हैं—

असकहि जोग अगिनि तनु जारा। राम कृपा बैकुण्ठ सिधारा॥
ताते मुनि हरिलीन न भयऊ। प्रथमहिं भेद भगति बर लयऊ॥

—: मानस, अ० का०, पृ० ३२५

या

रघुपति प्रथम प्रेम अनुमाना। चितइ पितहिं दीन्हेउ दृढ़ ज्ञाना॥
तातें उमा मोच्छ नहिं पावा। दसरथ भेद भगति मन लावा॥

—: मानस, लं० का०, पृ० ४४६

यही नहीं, तुलसीदास ने भक्ति को मोच्छ से अधिक महत्त्व भी दिया है। वे कहते हैं—

ज्ञानपंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहिं बारा॥
जौं निर्विघ्न पंथ निर्वहई। सो कैवल्य परम पद लहई॥
अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम वद॥
राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआईं॥
जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करइ उपाई॥
तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई। रहि न सकइ हरि भगति विहाई॥
अस विचारि हरि भगत सयाने। मुकुति निरादर भगति लुभाने॥

—: उ० का०, पृ० ५५६

मोच्छ के सम्बन्ध में तुलसीदास ने अर्चिरादि मार्ग की ओर कुछ भी संकेत नहीं किया है। कदाचित् इस मार्ग में उनका कोई विश्वास ही नहीं था।

मोच्छ का फल माना गया है—भगवल्लीला के सुख का अनुभव करना। तुलसीदास कहते हैं—

भुअन अनेक रोम प्रति जासू। येह प्रभुता कछु बहुत न तासू॥
सो महिमा समुझत प्रभु केरी। येह बरनत हीनता घनेरी॥

सोउ महिमा खगेस जिन्हजानी । फिरि येह चरित तिन्हहुं रतिमानी ॥
सोउ जाने करफल येह लीला । कहहिं महामुनिवर दमसीला ॥
—: मानस, उ० का०, पृ० ५०२

'आनन्दभाष्य' में सूक्ष्म शरीर की बड़ी लम्बी-चौड़ी चर्चा की गई है, तुलसीदास इस संबंध में मौन ही हैं ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि तुलसीदास का विश्वास सायुज्यमुक्ति में तो था, किन्तु अर्चिरादि मार्गों में उनकी विशेष आस्था नहीं थी । यहाँ भी वे विशिष्टाद्वैत मत को समग्रतः नहीं स्वीकार करते हैं ।

साकेत—तुलसीदास ने साकेत लोक का कोई चित्र उपस्थित नहीं किया है । साकेत के लिए वे 'बैकुण्ठ' शब्द का ही प्रयोग करते हैं—

अस कहि जोग अगिनि तनु जारा । राम कृपा बैकुण्ठ सिधारा ॥
ताते मुनि हरि लीन न भयऊ । प्रथमहिं भेद भगति वर लयऊ ॥
—: मानस, अ० का, पृ० ३२५

फिर भी तुलसी के राम को 'अवध' बैकुण्ठ से भी अधिक प्रिय है—

जद्यपि सब बैकुण्ठ बखाना । वेद पुरान विदित जगजाना ॥
अवध सरिस प्रिय मोहिं न सोऊ । येह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ ॥
जन्म भूमि मम पुरी सुहावनि । उत्तर दिसि सरजू बह पावनि ॥
जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा । मम समीप नर पावइ बासा ॥
अति प्रिय मोहिं इहां के वासी । मम धामदा पुरी सुखरासी ॥
—: मानस, उ० का०, पृ० ४६०

किन्तु साकेत को उन्होंने 'मम धामदा पुरी सुखरासी' ही कहा है । निश्चय ही राम का धाम 'अवध' से भिन्न है—

करेहु कलप भरि राज तुम्ह, मोहिं सुमिरेहु मन मांहि ।
पुनि मम 'धाम' सिधाइहहु, जहाँ संत सब जाहिं ॥

रामानन्द-सम्प्रदाय में भगवान् के इस धाम को 'साकेत' ही कहा गया है। रामानन्द-सम्प्रदायान्तर्गत रसिक-शाखा में इस 'साकेत' लोक का अग्र आदि ने बड़ा ही विस्तृत वर्णन किया है । तुलसीदास ने लौकिक अयोध्या का चित्र बहुत ही विस्तार से दिया है और साथ ही यह बतलाया है कि रामराज्य में यह पुरी किस प्रकार वैभव-सम्पन्न थी, किन्तु कहीं भी वे इसके माध्यम से 'साकेत' लोक की ओर संकेत करते नहीं प्रतीत होते । उनका विश्वास राम के धाम

विशेष में तो अवश्य था किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि उनके मत से इस धाम का नाम साकेत ही था।

ख. रामानन्द और कबीर

भूमिका

गुरु-शिष्य सम्बन्ध—'भक्तमाल' के लेखक नाभा जी ने कबीर को रामानन्द जी के शिष्यों में सर्व प्रमुख माना है। रामानन्द-सम्प्रदाय के प्रामाणिक ग्रन्थों—'अगस्त्य संहिता' आदि में भी कबीर को रामानन्द का शिष्य ही माना गया है। अन्य सभी परम्पराओं ने भी कबीरदास और रामानन्द के सम्बन्ध-विशेष को स्वीकार किया है। हिन्दी साहित्य के प्रमुख इतिहासकार[१] तथा निर्गुण-सम्प्रदाय और कबीर के विशेषज्ञों[२] में अधिकांश ने भी कबीर को रामानन्द स्वामी का शिष्य स्वीकार किया है, यद्यपि श्री परशुराम चतुर्वेदी जैसे कुशल आलोचकों ने इस सम्बन्ध में संदेह भी प्रकट किया है–'वास्तव में जब तक कोई पुष्ट ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता तब तक स्वामी रामानन्द, शेख तकी, पीताम्बरपीर वा किसी भी एक व्यक्ति को हमें कबीर साहब का गुरु वा पीर नहीं मान लेना चाहिए।'[3] फिर भी स्वयं उन्होंने ही एक भी ऐसा प्रमाण नहीं प्रस्तुत किया, जिससे लगभग ५०० वर्षों से चली आती हुई इस परम्परा को सहसा अस्वीकार किया जा सके। प्रायः किसी भी विद्वान् ने कबीर और रामानन्द के इस सम्बन्ध के विषय में कोई अन्त:साक्ष्य नहीं प्रस्तुत किया। कारण स्पष्ट है—रामानन्द जी के मत के सम्बन्ध में ही जानने का अभी तक कोई समुचित प्रयास नहीं किया गया। प्रायः अंग्रेज विद्वानों के मतों के ही आधार पर हिन्दी साहित्य के विद्वानों ने अपनी धारणाएँ बनाई हैं। रामानन्द सम्प्रदाय के निकट सम्बन्ध में आकर, स्वामी रामानन्द जी के ग्रन्थों का अध्ययन कर, उनके मतों की विस्तृत विवेचना करके कबीर पर उनके

१—हिन्दी साहित्य का इतिहास—पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ७५। हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमारवर्मा, पृ० ३५३। कबीर ग्रन्थावली-भूमिका—डा० श्याम सुन्दरदास, पृ० २५-२६।

२—हि० का० नि० सं०-डा० पी० द० वर्थ्वाल, पृ० ५४; कबीर, ह० प्र० द्विवेदी, पृ० ६५; सं० सं० कबीर-डा० रा० कु० वर्मा, पृ० २५।

३—उ० भा० सं० प०-पं० प० च०, पृ० १६१।

प्रभाव को देखने का कदाचित् यह सर्वप्रथम प्रयास है। आशा है, कबीर और रामानन्द जी के सम्बन्ध की अन्तः साक्ष्य के आधार पर पुष्टि अधिक स्थायी एवं मूल्यवान् होगी।

राम—कबीरदास ने रामानन्द स्वामी की ही भाँति राम को विश्व का स्रष्टा माना है।[१] यह ब्रह्म ज्योतिस्वरूप है,[२] दिव्य गुणों का समुद्र है।[३] इस राम का कोई मर्म नहीं जानता, वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में परिव्याप्त है, सबके अन्तर में भी वही है; शिव, सनकादि और नारद इसी ब्रह्म राम में निवास करते हैं, उसके पदपंकजों की सेवा करते हैं।[४] इस राम का प्रताप अद्भुत है। कोटि सूर्य जैसा उनका प्रकाश है, करोड़ों महादेव के कैलाश जैसा उनका निवास स्थान है; ब्रह्मा, दुर्गा, चन्द्रमा, तैंतीसों देवता, नवग्रह, धर्मराज, कोटि कुबेर, लक्ष्मी, इन्द्र, गन्धर्व आदि-आदि सभी दिन-रात उसकी सेवा करते हैं। जिस रावण का पनिहार समुद्र था, जिसकी शक्ति अपार थी, उसकी सेना का उन्हीं राम ने विनाश किया था, उन्हीं ने सहस्रबाहु का भी वध किया था। वही गोपाल अनन्त कलाओं वाला नटवर है, करोड़ों कन्दर्प उसी की बन्दना किया करते हैं। कबीरदास भी उसी सारंग-पाणि भगवान् से अभयपद की याचना करते हैं।[५] अपने अनेक पदों में कबीरदास ने राम के इसी विराट् व्यक्तित्व की उपासना-आराधना की है।[६] कबीर दास का यह राम अविनाशी है।[७] वह सर्वशक्तिमान् है।[८] मन और वाणी से परे है।[९]

१—कःआपुही कर्ताभयेकर्तारा। बहुविधि बासन गढ़े कुंभारा। बीजक, सं० प्रेमचन्द, पृ० ४० (ख) करता की गति अगम है। कबीरग्रंथावली, पृ० १८। ग-ब्रह्म कुलाल मेदिनी भरिया-संक्षिप्त संतकबीर, पृ० ६७।

२—पारब्रह्म के तेज का कैसा है उनमान। कहिबे कूं सोभा नही देख्या ही परवांन॥ कबीर ग्रंथावली, पृ० १२।

३—कबीर प्रीतड़ी तौ तुझ से बहु गुणियाले कन्त। जौ हंसि बोलौं और सूं तौ नील लगाऊँ दंत। क० ग्र०, पृ० १८ तथा पृ० ६३।

४—क० ग्र०, पृ० ६८।

५—वही, पृ० २०२-३।

६—वही, पृ० ६६, पृ० १६६, पृ० २०१, पृ०३०७ आदि।

७—कहै कबीर सारी दुनियां बिनसे रहल राम अविनासी हो। सं० सं० कबीर, पृ० ११५।

८—क० ग्रं० पृ०, १२६।

९—वही, पृ० १७, १८, ५६, ६२।

राम नित्य हैं—आदि मध्य अरु अंत लौं अविहड़ सदा अभंग[१]—चतुर्वर्ग फलों के दाता हैं।[२] कबीरदास के भी राम श्यामवर्ण के हैं।[३]

रामानन्द जी की भाँति कबीरदास जी के राम भी असंख्य कल्याण गुणों के आकर हैं। कबीरदास इन गुणों की गणना करने में असमर्थ हैं, सनक, सनन्दन, महेशादि भी उनकी गणना नहीं कर सकते।[४]

कबीरदास के एक मात्र उपास्य भगवान् राम ही हैं। एक 'जनम' के कारण वे क्यों असंख्य देवताओं की उपासना करें, क्यों न राम की ही पूजा करें जिनके भक्त शंकर जी भी हैं।[५]

पुरुषोत्तमराम आनन्दस्वरूप हैं।[६] वे सर्वत्र ही व्याप्त हैं।[७]

राम शरणागत रक्षक हैं। 'जिस दिन किसी की भी सहायता नहीं मिलती, उस दिन राम ही सहायक होते हैं। मुझे तन्त्र, मन्त्र का ज्ञान नहीं है, न मुझे वेद मालूम है, न भेद; राम ने पण्डितों की ओर पिछवारा (मंदिर का) कर दिया और मुख उधर जिधर नामदेव थे; राजा अम्बरीष के लिए भी चक्रसुदर्शन उन्होंने ही चलाया था; कबीर का ठाकुर भक्तों का हितकारी है।'[८] उसी ने नृसिंहावतार धारण कर 'हरिणकश्यप' का बध किया था।[९]

राम उदार तथा भक्तवत्सल हैं। उनकी उदारता जाति-पाँति का भी सीमातिक्रमण कर जाती है।[१०] प्रभु अपनी चिन्ता न करने वाले की भी चिन्ता करता है।[११] कबीरदास ने अपनी अनेक साखियों एवं पदों में भगवान् की दयालुता, भक्तों की पीर को दूर करने की उनकी बानि आदि का वर्णन किया है।[१२] यह

१—क० ग्रं०, पृ० ८६।
२—वही, पृ० ४६, १७२।
३—सं० सं० कबीर, पृ० १६।
४—क० ग्रं०, पृ० ३२६।
५—वही, पृ० १२६।
६—वही, पृ० १८७।
७—वही, पृ० १३६।
८—वही, पृ० १२७।
९—वही, पृ० १४।
१०—वही, पृ० १ दोहा १।
११—वही, पृ० ५८।
१२—वही, पृ० १८५।

हरिभजन का ही फल है कि नीच ऊँची पदवी को पा जाता है और उसके द्वार पर 'निसान' बजने लगता है, भजन के ही प्रभाव से पाषाण भी जल पर तैरने लगा था, अधम भील, गणिका आदि विमान पर चढ़ कर स्वर्ग चले गए। ६ लाख तारे, चाँद और सूर्य सभी चलते हैं, किन्तु भक्त का पद अटल होता है। कबीरदास उन्हीं भगवान् की शरण में प्रवेश करते हैं जिनके साक्षी वेद हैं, सन्त और सज्जन जिनका कथन-श्रवण करते हैं।[१] कबीरदास का दृढ़ मत है कि इसी भगवान् की सेवा करने से सब कुछ मिल जायगा, जिस प्रकार वृक्ष की जड़ सींचने से समस्त शाखाओं को भी जल मिल जाता है।[२] इस प्रकार के अनेक पद कबीर ग्रन्थावली में भरे पड़े हैं।[३]

कबीरदास ने ब्रह्म और जगत् के सम्बन्ध पर भी विचार किया है। उनका दृढ़ मत है कि समस्त ब्रह्माण्ड की रचना करने वाला ईश्वर-[illegible] में व्याप्त है। जिसने शशि-सूर्य की रचना की, जो पावक का स्रष्टा है, नेत्र-नासिका, दशन, ओष्ठ आदि की जिसने सृष्टि की वह भला कभी दूर कहा जा सकता है।[४] स्पष्ट है कबीरदास राम को जगत्स्रष्टा मानते हुए भी उन्हें कण-कण में व्याप्त मानते हैं। कबीरदास ने रामानन्द जी द्वारा ब्रह्म और जगत् में स्थित नव सम्बन्धों का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है, अतः इस सम्बन्ध में उनकी क्या धारणा थी, यह निश्चित् रूप से नहीं कहा जा सकता।

कबीरदास ने जीव और ब्रह्म के सम्बन्धों पर भी विचार किया है, किन्तु अत्यन्त ही अस्पष्ट रूप से। कबीरदास के मत से नरहरि ने ही जीवों की सृष्टि की है और वही उदर में उनका पालन भी करते हैं।[५] इस दृष्टि से कबीरदास ने ईश्वर और जीव के पिता-पुत्र संबंध को भी स्वीकार किया है। उन्होने भगवान् को कभी अपनी माँ[६] और कभी अपना पिता[७] माना है और उनके चरणों में आत्मसमर्पण कर दिया है। भार्या-भर्तृत्व सम्बन्ध की ओर भी कबीरदास ने अनेक स्थलों पर संकेत किया है। 'कबीर-ग्रन्थावली' में इस ढंग के अनेक पद

१—वही, पृ० १६०।
२—वही, पृ० १२४।
३—वही, पृ० २६६, ३०७, १२४, १५३, १७६।
४—वही, पृ० १७७।
५—क० ग्र०, पृ० ५७।
६—वही, पृ० १२३।
७—वही, पृ० २०६।

आते हैं वहाँ उन्होंने राम को अपना पति और अपने को उनकी 'बहुरिया' माना है। साथ ही राम के साथ 'एक मेक ह्वै सेज' सोने की भी कामना प्रकट की है।[१] उन्होंने तो यहाँ तक कहा है कि 'सभी लोग राम की नारी हैं, मुझसे और नहीं हुआ जाता'।[२] कबीरदास ने राम को अपना स्वामी और अपने को उनकी 'कुतिया' तक कहा है, इस प्रकार वे ब्रह्म-जीव के स्व-स्वामी संबंध को भी स्वीकार करते हैं।[3] इसी प्रकार उन्होंने सेव्य-सेवक सम्बन्ध में भी अनेक साखियाँ कहीं हैं। वे कहते हैं :—'कबीर राम का कूता है और मोतिया उसका नाम है। उसके गले में राम की रस्सी पड़ी है, वह जिधर खींचेगा कबीर उधर ही जायगा।'[४] 'मैं तो राम का गुलाम हूँ, मेरा तन मन धन राम को ही समर्पित है। स्वामी मुझे बेंच भी सकते हैं।'[५] आत्मा-आत्मीयत्व सम्बन्ध पर भी कबीरदास ने कुछ साखियाँ कहीं हैं—'अपिण्डी पिण्ड में ही रहता है, संतो, मुझे बड़ा अचम्भा लगता है।'[६] भोग्य–भोक्तृत्व सम्बन्ध पर भी कबीरदास ने साखियाँ कही हैं : 'मुझ में मेरा कुछ नहीं है, तुम्हारा तुम्हीं को देने से मेरा क्या लगता है।'[७] यह आत्मसमर्पण की प्रवृत्ति कबीरदास ने अपने गुरु से ही निश्चित् रूप से ली थी।

भगवान् के पार्षदों तथा अर्चावतार आदि में कबीरदास का कोई विश्वास नहीं है। मूर्तिपूजा की तो उन्होंने जी खोल कर निन्दा की है।

फिर भी कबीरदास के राम रामानन्द जी के राम से अभिन्न नहीं थे। अवतारी राम में—दाशरथि राम में—कबीरदास का विश्वास बहुत ही कम था। निर्गुण, निरन्जन राम में उनका अधिक विश्वास था। उन्होंने स्पष्ट ही कहा है: 'तीनों लोक राम को दशरथ का पुत्र कहता है, किन्तु राम नाम का मर्म ही दूसरा है। उनका अवतार दशरथ के घर नहीं हुआ था और न लंका के राजा ने उन्हें सताया ही था। हे संतो, जो आता-जाता है, वह तो माया है। प्रतिपाल न तो कहीं जाता है, न आता है, वह काल-विवश नहीं है। न तो वह

१—वही, पृ० १६२।
२—सं० सं० कबीर, पृ० ८७।
३—वही, पृ० २०।
४—वही, पृ० २०।
५—वही, पृ० १२४।
६—वही, पृ० ९८।
७—वही, पृ० १६।

कच्छ-मच्छ होता है और न उसने असुरों का संहार किया। वह दयालु है, उसका किसी से कोई द्रोह ही नहीं है, वह किसको मारेगा। कर्ता न तो बाराह कहा गया और न उसने धरती का कभी भार ही धारण किया; यह सब काम साहब का नहीं है, सारा संसार झूठ ही कहता है। जो खम्भे को फार कर बाहर होता है, संसार उसी का विश्वास करता है, जिसने 'हिरण्याक्ष' का बध किया था वह कर्ता नहीं हो सकता। वामन रूप होकर बलि से उसने याचना नहीं की, जो याचक था वह तो माया है। परशुराम होकर उसने क्षत्रियों का संहार नहीं किया, यह छल माया ने ही किया। सृजनहार ने सीता का व्याह नहीं किया, पाषाण से उसने जल को नहीं बाँधा। वह गोपियों का बड़ा ग्वाल होकर गोकुल नहीं आया और न उसने कंस को ही मारा। साहिब बड़ा 'मेहरबान' है, वह न तो कभी जीतता है और न कभी हारता है। कर्ता कभी न तो बौद्ध कहा गया और न उसने असुरों का संहार किया। कलंकी अवतार भी उसने नहीं लिया। यह सब ईश्वरी माया है। जिसने कर्त्ता की पूजा कर ली, वह कहीं जन्म नहीं लेता है।"[१] कबीरदास का यह राम अगम्य है, अगोचर है, अन्तःकरण में निवास करता है। वह न तो भारी है, न हलका; उसके स्वरूप का वर्णन नहीं किया जा सकता। वेद कुरान की तो वहाँ तक 'गमि' ही नहीं है। 'संतो, यह अपिण्डी पिण्ड में ही निवास करता है। पानी से पतला, धुआँ से क्षीण, पवन से भी जो तीव्र है,' कबीरदास ने उसी से दोस्ती की थी। 'उस तक न तो चींटी चढ़ सकती है, राई भी ठहर नहीं सकती; मन पवन की वहाँ पहुँच नहीं।' केवल कबीरदास वहाँ तक पहुँच सके थे। 'यह राम पावक-रूपी है और घट-घट में समाया हुआ है। 'चित्त चकमक' लगता नहीं, इसीलिए धुँआ हो-हो जाता है। इस अनुपम तत्व को न तो मुँह है, न माथा, न तो उसका कोई रूप है। पुष्पगंध से भी वह पतला है और फिर भी उसके गुण अनन्त हैं। सात समुद्र की मसि बना कर बनराजि को यदि लेखनी बनाई जाय और धरती को कागज बना कर उस पर लिखा जाय, तो भी राम के गुणों का अन्त नहीं हो सकता। सचमुच जो अवर्ण्य है, उसका वर्णन किया ही कैसे जा सकता है? सभी कह-कह कर थक गए।' ब्रह्मा, सनकादि जब उसका वर्णन नहीं कर सके, तब कबीरदास कैसे कर सकते थे? निरन्जन और अविनाशी ब्रह्म भला कभी नन्द का नंदन हो सकता है? जब धरती और आकाश नहीं था, तब यह नन्द कहाँ था? अविनाशी का जन्म नहीं होता, नन्द तो चौरासी लाख

१—बीजक-सं० प्रेमचन्द, पृ० ६३।

योनियों में दौड़ता-दौड़ता थक गया।[१] स्पष्ट है राम निर्गुण ही हैं। कबीरदास ने घट-घट में राम का दर्शन कर लिया था। त्रिभुवन भर में व्याप्त यह राम यहीं मिल जाता है, बैकुण्ठ की कल्पना करना व्यर्थ है। डा० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में "इसी त्रिगुणातीत, द्वैताद्वैत विलक्षण, भावाभावविनिर्मुक्त, अलख, अगोचर, अगम्य, प्रेम-पारावार भगवान् को कबीरदास ने निर्गुण राम कह कर सम्बोधित किया है। वह समस्त ज्ञान तत्वों से भिन्न है, फिर भी सर्वमय है। वह अनुभवैकगम्य है—केवल अनुभव से ही जाना जा सकता है, इसी भाव को बतलाने के लिए कबीरदास ने बार-बार गूंगे का गुड़ कह कर उसे याद किया है। वह किसी भी दार्शनिकवाद के मानदंड से परे है, तार्किक बहस के ऊपर है, पुस्तकी विद्या से अगम्य है, पर प्रेम से प्राप्य है, अनुभूति का विषय है, सहज भाव से भावित है, यही कबीर का निर्गुण राम है।"[२] स्पष्ट है, कबीरदास के राम रामानन्द के राम से बहुत अंशों में अभिन्न होते हुए भी हू-ब-हू वही नहीं हैं। उन्होंने निर्गुण राम की उपासना की है और उनका यह 'निर्गुण राम' निश्चित् रूप से रामानन्द के 'राम' से भिन्न तत्व है।

जीव—रामानन्द की ही भाँति, कबीरदास ने भी जीव और ईश्वर में अभिन्नता स्थापित की है, किन्तु जहाँ रामानन्द जीव और ईश्वर दोनों को ही अनादि तत्व मानते हुए जीव को ईश्वराधीन मात्र मानते हैं, वहीं कबीरदास ने उन दोनों ही तत्वों को अभिन्न बतलाया है। उन्होंने स्पष्ट कहा है: जिस प्रकार दर्पण में अपना ही प्रतिबिम्ब दिखलाई पड़ता है, उसी प्रकार ईश्वर ही कण-कण में दृश्यमान है।[३] 'एक ही सम्पूर्ण विश्व में समाया हुआ है और सब कुछ उसी एक में समाया हुआ है, कबीर उस बूंद में समा गया है जहाँ दूसरा है ही नहीं :'[४]। "हे सखी प्रियतम में यह जीव बसता है कि जीव में ही प्रियतम का निवास है, मुझे 'जीव-पीव' में कोई अन्तर नहीं दिखलाई पड़ता है—घट में जीव है कि पीव" ;[५] 'जितने पुरुष और स्त्रियाँ हैं सब में तुम्हारा ही रूप है',[६] 'हंसा और सोहं एक ही समान हैं, काया के ही गुण भिन्न-भिन्न हैं।'[७]

१—कबीर ग्रंथावली, पद ४८, पृ० १०४।
२—कबीर–डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० १२६-२७।
३—बीजक, प्रेमचन्द, पृ० १३०।
४—वही, पृ० १३०।
५—वही, पृष्ठ १३१।
६—क० ग्रं०, पृ० १७६।
७—वही, पृ० २६६।

जीव तो अज है ही—'जब हम रहलीं रहल न कोई। हमरे माहं रहल सब कोई।'[१] यह नित्य है—'मैं न मरौं मरिबो संसारा। मिल्यो है जियावन हारा।'[२] 'यह जीव अन्तर में निवास करता है तथा प्रकाश स्वरूप है।'[३] 'जीव पारस रूप है और सारा संसार लोहे के समान है।'[४]

जीव स्वकर्मफल भोक्ता है—'कबीर टघ-टघ चोंघता, पल-पल गई-विहाइ। जीव जंजाल न छाड़ई, जम दिया दमामा आइ।'[५]

कबीरदास ने कभी ईश्वर को जीवों का पिता कहा है,[६] कभी पति; उन्होंने बार-बार राम को अपने पति के रूप में स्मरण किया है।[७] कभी राम में और अपने में अभिन्नता भी स्थापित (आत्मा-आत्मीयत्व संबन्ध) की है।[८]

फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि कबीरदास ने जीव तत्व का विवेचन स्वामी रामानन्द जी के ही अनुसार किया है। विशिष्टाद्वैत मत में जीव-तत्व का अपना एक स्वतन्त्र महत्त्व है। जीव चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म की विशेषता है, उसका अंश है। कबीरदास का विवेचन बहुत कुछ अद्वैत से प्रभावित सा दिखलाई पड़ता है, फिर भी उन्होंने अद्वैत का स्पष्ट प्रतिपादन किया है, यह नहीं कहा जा सकता।

कबीरदास के शब्दों में जीव तत्व की कुछ इस प्रकार व्याख्या की जा सकती है—कुम्भ के भीतर और बाहर स्थित जल तत्वतः एक ही है, घड़े के फूट जाने पर दोनों एक दूसरे से मिल कर एक हो जाते हैं, इसी प्रकार जीव-ब्रह्म में केवल शरीरमात्र का अन्तर है, तत्वतः दोनों एक हैं।[९] यह जीव अजर-अमर है। कबीरदास का स्पष्ट मत है 'मिट्टी मिट्टी में मिल जाती है, पवन पवन में मिल जाता है, केवल रूपमात्र नष्ट होता रहता है।'[१०] हाँ, "यह जीव विषयासक्त

१—बीजक, प्रेमचंद पृ० ५।
२—वही, पृ० २६७।
३—वही, पृ० २।
४—वही, पृ० १२६।
५—क० ग्रं०, पृ० ७२।
६—वही, पृ० २०७।
७—वही, पृ० १२५।
८—वही, पृ० १०४।
९—वही, पृ० १०३।
१०—वही, पृ० १०३।

होकर माया मोह में अवश्य ही फँस जाता है। मैं-मेरी करके ही यह जन्म का भागी होता है, बहुत रूपों में फँसता है, जरामरण से हीनकाय हो जाता है। बार-बार इसका जन्म और नाश होता है, सुख का मूल इसे नहीं मिल पाता। अनेक कष्ट इसे सहने पड़ते हैं, वह तत्त्व इसे नहीं मिल पाता जिसके द्वारा इसकी जलन मिट सकती है। यह जिसे अपना हित समझता है वही इसका अहित हो जाता है। मृगतृष्णा के समान यह संसार है, जीव माया-मोह विवश होकर इसमें पड़ा रहता है। कबीरदास का कथन है कि मनुष्य जन्म बार-बार नहीं मिलता रहता है। इसी योनि में ज्ञान की उपलब्धि होती है। जो इस योनि को पाकर जन्म-जन्मान्तर के ताप को भूल जाता है, वह अभागा है। भवसागर दुस्तर अपार है। मानव-योनि पाकर उसके तिरने का उपाय करना चाहिए। जब जीव को ज्ञान हो जाता है, यह संसार उसे स्वप्नवत् प्रतिभासित् होता है। वस्तुतः जब अपने में ही समा जाने का अभ्यास हो जाता है, तब जो दूर है वह पास चला आता है। जिसने इस सत्य का 'परचा' पा लिया है, वह भाव-भक्ति को बोहित बना कर 'सतगुर' को 'खेवनहार' बना लेता है और उसके लिए यह अपार सागर 'गोपद खुर विस्तार' वाला बन जाता है।"[१] उस सत्य को कबीरदास ने और स्पष्ट किया है—[२]

हम तौ एक एक करि जाना।
दोइ कहैं तिनहीं को दोजग, जिन नाहिन पहिचाना॥

एकै पवन, एक ही पानी, एक जोति संसारा।
एक ही खाक घड़े सबभाँड़े, एक ही सिरजनहारा॥

जैसे बाढ़ी काष्ठ ही काटै, अगिनि न काटै कोई।
सब घट अंतरि तूही व्यापक घटैं सरूपै सोई॥

माया मोहे अर्थ देखि करि, काहे कूंगरबाना।
निरभै भया कछू नहिं व्यापै, कहै कबीर दिवानां॥

स्पष्ट है इस प्रकार कबीरदास द्वारा जीव-तत्त्व का निरूपण रामानन्द जी से सर्वथा भिन्न तो नहीं कहा जा सकता, पर कबीर ने दूसरों से भी बहुत कुछ लेने की चेष्टा की है। यह उनका अपना व्यक्तित्व था।

१—क० ग्रं०, पृ० २३३-३४।

२—वही, पृ० १०५।

प्रकृति

माया—कबीरदास ने प्रकृति-तत्व का कोई विवेचन प्रस्तुत नहीं किया है। लगता है इस सम्बन्ध में वे मायावाद से विशेष प्रभावित थे। इसीलिए 'माया' शब्द का प्रयोग उन्होंने लगभग उसी अर्थ में किया है, जिस अर्थ में वेदान्त में 'माया' शब्द का प्रयोग किया गया है। फिर भी कबीरदास के इस विवेचन पर रामानन्द जी का भी प्रभाव देखा जा सकता है।

कबीरदास ने रामानन्द जी की ही भाँति प्रकृति को विश्वमात्र की अधिष्ठात्री माना है। 'पुरुष एक है और नारी भी एक ही है, इसका विचार करना चाहिए। एक ही अण्ड चौरासी लाख योनियों में आत्माभिव्यक्ति करता है, संसार व्यर्थ ही भ्रम में पड़ा हुआ है; एक ही स्त्री ने सारा जाल फैला रक्खा है, खोजते-खोजते ब्रह्मा, विष्णु और महेश हार गए; पर उसका अन्त नहीं पा सके। वह नागफाँस लिए फिरती है और सारे संसार को खा डालती है।[१] 'माया से ही मन उत्पन्न होता है और मन से ही दस अवतार; ब्रह्मा-विष्णु भी धोखा में पड़ गए, संसार ही भ्रम में पड़ गया।[२]"

माया बड़ी मोहिनी है। वही अनेकधा शोभित है। कबीरदास कहते हैं: 'यह माया बड़ी मोहिनी है, सारे संसार को, इसने मुग्ध कर रक्खा है; हरिश्चन्द्र भी सत्य के कारण घर-घर बिका गए।'[३] 'माया ही आदर है, माया ही मान है, माया ही रस है, माया के ही कारण लोग प्राण तज देते हैं, माया ही जप-तप और योग है, माया ने ही सब को बाँध रक्खा है, माया जल, थल, आकाश चारों ओर व्याप्त है। माया ही माता और माया ही पिता है। यह समस्त जगत् माया का ही व्यवहार है।' कबीरदास को तो केवल राम ही का आधार है।'[४]

यह माया त्रिगुणात्मिका भी है। 'यह महाठगिनी माया त्रिगुण फाँस लिए डोलती है और मधुरवाणी बोलती है।'[५] उस ईश्वर ने सत-रज-तम से ही इस माया का निर्माण किया है।[६]

१—बीजक, प्रेमचन्द, पृ० ५६।

२—वही, पृ० १४२।

३—वही, पृ० ११।

४—कबीर ग्रं०, पृ० ११५।

५—बीजक, सं० प्रेमचन्द, पृ० ४५।

६—क० ग्रं०, पृ० २२६।

माया ईश्वराधीन है। उस ईश्वर ने ही "सत-रज-तम थैं कीन्हीं माया। आपण माझैं आप छिपाया ॥"[१] "वस्तुतः सच्चा सूत्रधार वही है, जिसने इस चित्र का निर्माण किया है ; हे प्राणी, झूठे संसार में भूल मत जाना, जो इसे चित्रवत् मान लेता है वही भला जन है।"[२]

माया ने ही महत् अहंकार आदि की सृष्टि की है।

माया और मन एक ही हैं। मन-माया की चोट से सारा संसार मारा जा रहा है। सुर-नर-मुनि सभी इसमें फँसे हैं। कनक और कामिनी माया के दो प्रबलकेन्द्र हैं। यह विषैली नागिनी विष लेकर रास्ते में बैठ गई है, सारे संसार को इसने अपने फंदे में फँसा रक्खा है, केवल इस फन्दे को कबीरदास काट सके।[३] माया चूहड़ी है और चुहड़े की जोय है; बाप, पुत्र दोनों को अरुझाती है, पर किसी के साथ नहीं रहती।[४]

माया बड़ी मीठी है, अतः छोड़ी नहीं जा सकती। अज्ञानी पुरुष को तो यह खा ही डालती है। कीरी-कुंजर सभी में समाई हुई है, तीनों लोक में कोई भी इसे जीत कर खा न सका; निर्गुण-सगुण की यह स्त्री है, संसार को प्यारी है, लक्ष्मण और गोरख ने इसका निवारण कर दिया था।[५]

'माया के ही कारण मेरा ज्ञान नष्ट हो गया। संसार है तो स्वप्नवत्, पर लोगों ने उसे सच ही माना है।'[६] माया बड़ी ही सुन्दर है, इसी से वह सब को मुग्ध कर लेती है। सुर, नर, मुनि, देवता, गोरख, दत्ता और व्यास, सनक तथा सनन्दन आदि सभी हार गए और कितनों की आशा की जाय! यह काजल की रेखा की भाँति है, बिना दाग़ का कोई जा नहीं सकता। कबीरदास का यह दृढ़ मत है कि जिसे मोह नहीं होता, वही इस माया से उबर सकता है।[७] माया संसार का अहेर खेलने निकली है, चतुर व्यक्तियों को इसने गिन-गिन कर मारा है, किसी को भी न्यारा नहीं रखा। मौनी, दिगम्बर, ध्यानी, योगी, जंगल के निवासी, भोगी, वेदपाठी, पूजा करने वाले स्वामी, शृंगीऋषि, ब्रह्मा आदि कोई भी इस

१—वही, पृ० ३२५।

२—वही, पृ० २४१।

३—बीजक, प्रेमचन्द, पृ० १३६।

४—वही, पृ० १४१।

५—क० ग्रं०, पृ० १६६।

६—वही, पृ० १७१।

७—बीजक, प्रे० ग्रं०, पृ० १०४-५।

माया से बचा नहीं है। शाक्तों के घर यही कर्ता-धरता है, किन्तु हरिभक्तों की चेरी है। कबीरदास तो इसको आते ही लौटा देते हैं।[१] "हे पण्डितो, बूझो वह कौन सी स्त्री है जिसे अभी तक किसी ने व्याहा नहीं है। जो अब भी कुमारी है। सब देवताओं ने मिल कर उसे हरि को दे दिया, उन्होंने भी चार युग तक उसको साथ-साथ रक्खा; पहले वह पद्मिनी रूप में आई, फिर साँपिनि बन कर संसार को दौड़ा कर खा गई।"[२]

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रकृति तत्व के विवेचन में कबीरदास रामानन्द की अपेक्षा मायावाद से अधिक प्रभावित हैं। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का यह कथन कि 'कबीरदास ने माया के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है वह वस्तुतः वेदान्त द्वारा निर्धारित अर्थ में ही।'[३] ठीक हो सकता है, परन्तु उनका यह कथन कि "खूब सम्भव है कि कबीरदास ने भक्ति सिद्धान्त के साथ ही माया सम्बन्धी उपदेश भी रामानन्दाचार्य से ही पाया था, इसीलिए वे बराबर भक्त को माया जाल से अतीत समझते हैं।"[४], अधिक प्रामाणिक नहीं जान पड़ता। रामानन्द-सम्प्रदाय में मायावाद का जितनी सबलता से विरोध होता रहा है, उसका कुछ आभास 'आनन्दभाष्य' के मत का विवेचन करते समय मिल चुका है। स्वयं रामानन्द जी ने कहीं भी माया शब्द का प्रयोग नहीं किया है। 'आनन्दभाष्य' में एक ओर मायावाद का खण्डन किया गया है, दूसरी ओर सांख्य के मत का भी। वहाँ प्रकृति का एक विशेष अर्थ में प्रयोग हुआ है और उसे स्वतन्त्र न मान कर ईश्वराधीन कहा गया है। विशेष विवरण के लिए 'आनन्द भाष्य' के मत का ही अध्ययन कर लेना अधिक उपयुक्त होगा।

मोक्ष—कबीरदास ने अर्चिरादि मार्ग की ओर कहीं भी संकेत नहीं किया है, साकेतधाम में भी उनकी कोई आस्था नहीं है। उन्होंने लिखा है—'हे राम मुझे तार कर कहाँ ले चलोगे? वह बैकुण्ठ कैसा है, क्या दया करके मुझे उसे दोगे? यदि मुझको अपने से अलग समझते हो, तो कृपा कर मुझे मुक्ति बतलाओ और यदि कण-कण में एक होकर तुम रम रहे हो, तो मुझे ही क्यों भ्रम में डालते हो? वस्तुतः तरना और तारना तभी तक है, जब तक तत्व का

१—वही, पृ० ११७।
२—वही, पृ० १२३।
३—कबीर, डॉ० ह० प्र० द्विवेदी, पृ० १०६।
४—वही, पृ० १०६।

ज्ञान नहीं हो जाता। मैंने तो सबमें एक ही राम को देखा है, मेरा मन अब मान गया है।'[1] कबीरदास ने अन्यत्र भी कहा है—

उहाँ न दोजग भिस्त मुकामा। इहाँ हि राम इहाँ रहिमांना।[2]

उनके मत से जब तक बैकुण्ठ की मन में आशा लगी हुई है, तब तक ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती। वस्तुत: साधु संगति ही बैकुंठ है।[3]

सायुज्य मुक्ति में भी कबीरदास का विश्वास नहीं है, वे सहज ही राम में लीन हो जाना चाहते हैं। वस्तुतः उनमें और राम में कोई अन्तर है ही नहीं। जिस प्रकार कुम्भ के फूट जाने पर बाहर भीतर का पानी मिल कर एक हो जाता है, उसी प्रकार जीव और ब्रह्म का मिलन होता है।[4] 'ब्रह्म को खोजते-खोजते मेरा सारा जन्म बीत गया, किन्तु वह मुझे घट के भीतर ही मिल गया।'[5] 'साधुओ, मुक्ति कैसी होती है, मुझे कृपा करके बतला दो। वस्तुत: एक ही अनेक होकर सब में व्याप्त है, भला अब कैसे भ्रम में रख सकते हो! हे राम, मुझे तार कर कहाँ ले जाओगे? वह मुक्ति कैसी है? कृपा करके मुझे बतला दो। जब तक तत्व का ज्ञान नहीं होता, तभी तक तारना और तरना है। अब तो घट के भीतर ही मिलन हो गया है, मेरा मन अब मान गया है।'[6] स्पष्ट है, कबीरदास सायुज्यमुक्ति में विश्वास नहीं रखते हैं।

कबीरदास को आराध्य राम के साथ विहार करने में अधिक सुख नहीं मिलता प्रतीत होता है। वे कहते हैं :—हे संतो, अब तो मैं सिंहासन पर चढ़ गया हूँ, 'सारंगपाणि' से मिलन होकर रहेगा। राम और कबीर मिलकर एक हो गए हैं, कोई महिचान नहीं दिखलाई पड़ती।'[7] किन्तु, कभी-कभी उनका मन ब्रह्म के साथ खेलने का भी करता है और वे नहीं चाहते कि उससे उनका बिछोह हो जाय। वे कहते हैं—'कबीर ने उसको अपना साथी बनाया है, जिसे दु:ख-सुख नहीं होता।' 'मैं हिल-मिल कर खेलता रहता हूँ, मेरा उससे कभी भी वियोग नहीं होता।' यहाँ स्पष्ट ही वे रामानन्द से प्रभावित हैं। फिर भी

१—क० ग्रं०, पृ० १०५।
२—वही, पृ० १०७।
३—वही, पृ० ९९।
४—वही, पृ० १४८।
५—वही, पृ० २०१।
६—वही, पृ० २९४।
७—वही, पृ० २९७।

कबीरदास पर अद्वैत का प्रभाव अधिक देखा जा सकता है। लगता है, समग्रतः वे अद्वैतवाद से अधिक प्रभावित थे, विशिष्टाद्वैत से कम।

मोक्ष के सम्बन्ध में उन्होंने अपनी धारणा को और भी स्पष्ट किया है— 'पण्डितो, मुझे अपनी मुक्ति के विषय में बतला दो। ब्रह्मा ने चारों वेद की सृष्टि तो कर ली पर मुक्ति के मर्म को उन्होंने भी नहीं समझा। दान-पुण्य की उन्होंने बहुत चर्चा की, पर अपने मार्ग की खोज तक न की। वस्तुतः चींटी जहाँ चढ़ नहीं सकती, राई ठहर नहीं पाती, आवागमन की जहाँ गम नहीं है वहीं सारा संसार जाता है?'[१] 'संध्या और गायत्री जप करते-करते बहुत लोग मर गए, पर मुक्ति किसी को भी नहीं मिल सकी। जिसने कुल मर्यादा को खो दिया, वही विदेही हो गया।'[२] अनजाने को ही स्वर्ग-नरक है, हरि को जानने वाले को नहीं।[३] ज्ञानियो, यह समझ लो कि वह देश न जाने कैसा है, जो वहाँ गया लौट कर नहीं आया।[४] हे सखी, हेरते-हेरते कबीर भी हिरा गया। बूँद समुद्र में समा गई फिर उसे कैसे खोजा जाय। हे सखी खोजते-खोजते कबीर स्वयं ही खो गया। समुद्र ही बून्द में समा गया, फिर उसे कैसे हेरा जाय।[५] कबीरदास ने जीवन्मृत हो जाने की भी साधना की थी—

अब मन उलटि सनातन हूआ। तब जान्या जब जीवत मूआ।[६]

मोक्ष के ही सम्बन्ध में कबीरदास ने शून्य आदि शब्दों का भी प्रयोग किया है। 'हद छोड़ कर मैं बेहद में चला गया और वहाँ शून्य में स्नान किया। मुनिजन जिस महल को नहीं पाते, मैंने वहाँ स्नान किया।'[७] 'पक्षी गगन को उड़ चला, पिण्ड परदेश में ही रह गया, बिना चूँच के ही पानी पिया और इस देश को भूल गया। सुरति-निरति में समा गई अजपा में जाप समा गया; लेख अलेख में समा गया जैसे आपा में आप। जब स्वामी मिल गया तो सुख मिला, साथ ही संतोष की भी प्राप्ति हुई। मेरा मन स्थिर हो गया, सतगुरु ने मेरी बड़ी सहायता की, हृदय में 'त्रिभुवनराइ' ने अनेक कथाओं का आचरण

१—बीजक, प्रेमचंद, पृ० ८-९।
२—वही, पृ० ६।
३—वही, पृ० ७६।
४—वही, पृ० १६५।
५—क० ग्रं०, पृ० १-१७।
६—वही, पृ० ३१७-१८।
७—वही, पृ० १३।

किया।[१] 'जब मैं था तब हरि नहीं थे, अब हरि हैं मैं नहीं हूँ। उस दीपक के प्रकाश से सारा अंधेरा मिट गया। वह तेज स्वरूप मेरे नेत्रों में समा गया है।'[२] 'अब तो कुछ ऐसा हो गया है कि जिस मरने से सारा संसार डरता है वह मेरे लिए आनन्द-स्वरूप है। मैं कब मरूंगा और कब मुझे परमानन्द के दर्शन प्राप्त होंगे?'[३]

इस प्रकार कबीरदास मोक्ष में विश्वास तो करते हैं, पर सायुज्यमुक्ति में नहीं। उन पर अन्य मतों का भी प्रभाव पड़ा था। रामानन्द से उन्होंने जो कुछ सीखा, उसे वे पूर्णतः भूल नहीं गए, फिर भी उनकी दृष्टि सारग्रहण की ओर ही अधिक रही।

साकेत—कबीरदास ने साकेत की स्थिति में कोई विश्वास नहीं प्रकट किया है और न किसी ऐसे लोक की ओर उन्होंने संकेत ही किया है।

ग—रामानन्द सम्प्रदाय और मैथिलीशरण गुप्त

गुप्त जी रामानन्द-सम्प्रदाय में दीक्षित हुए हैं, रामभक्ति के संस्कार भी उन्हें प्राप्त हुए थे, परन्तु कहीं भी उनमें ऐकान्तिक साम्प्रदायिकता नहीं मिलती। उनकी साधना तुलसी की भाँति ही समन्वय की साधना है। तुलसीदास से वे विशेष रूप से प्रभावित भी हैं, उन्होंने अपने एक पत्र में स्वीकार किया है कि रामचरितमानस का उन पर अधिक प्रभाव पड़ा है। अपने ८-१२-२००७ को लिखे गए एक पत्र में उन्होंने मुझे सूचित किया है:—

"जहाँ तक मैं जानता हूँ रामानन्द ने रामानुज के विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त को तो स्वीकार किया, परन्तु लक्ष्मीनारायण के स्थान पर सीताराम की उपासना का उपदेश दिया। स्वभावतः तुलसीदास ने वही सिद्धान्त स्वीकार किया परन्तु शंकराचार्य के अद्वैतवाद ने भी उन्हें प्रभावित किया होगा। महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने इस सम्बन्ध में एक लेख भी लिखा था, स्मरण नहीं मैंने उसे कहाँ पढ़ा था, मैंने भी यदि कहीं अद्वैत की भावना प्रकट की तो सायुज्यमुक्ति से उसका समन्वय करके ही।......सीताराम की उपासना मुझे

१—वही, पृ० १४।

२—कबीर ग्रन्थावली, पृ० १५।

३—वही, पृ० ६६।

अपने कुल से प्राप्त हुई, परन्तु अपने पिता की भाँति मैं अनन्य उपासना का अधिकारी न हो सका। सम्भवतः हमारे सम्प्रदाय में रामचरितमानस आदिकवि के काव्य से भी अधिक प्रिय है, भले ही लोग मुँह से यह बात न कहें, रामचरितमानस का मुझ पर जो ऋण है उसे मैं कभी नहीं चुका सकता। फिर भी आपको कुतूहल और आश्चर्य भी होगा कि जहाँ मैंने रामचरितमानस के अनेक पाठ किए वहाँ गीतावली और विनयपत्रिका का आज तक एक पाठ नहीं किया। रामचरित पर मुझे कुछ लिखना ही था, परन्तु यह यथार्थ है कि गुरुदेव के ऊर्मिला विषयक लेख से ही साकेत को इस रूप में लिखने की प्रेरणा मुझे प्राप्त हुई।'

अपने एक अन्य पत्र में गुप्त जी ने अपने पक्ष को और भी स्पष्ट करने की चेष्टा की है। १-८-२००६ को भेजे गए इस पत्र में उन्होंने लिखा है—"सायुज्य की बात जो मैंने आपको लिखी थी वह मेरा ही समाधान था......रामभक्ति के कुछ संस्कार अवश्य ही मुझे प्राप्त हुए थे......मैं सख्यभाव में दीक्षित हुआ था परन्तु अपना सम्बन्ध पत्र भी मैं खो बैठा। तब अति रहेउँ अजान।"

इन पत्रों से निम्नलिखित महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं :—

क—गुप्त जी पर तुलसीदास-रामचरितमानस-का विशेष प्रभाव पड़ा है, रामानन्द स्वामी या रामानन्द सम्प्रदाय का नहीं।

ख—गुप्त जी ने तुलसीदास की ही भाँति अद्वैत की (जहाँ-कहीं उन्होंने इसे स्वीकार किया) भावना का सायुज्यमुक्ति से समन्वय किया है।

ग—रामभक्ति का संस्कार उन्हें अपने पिता जी तथा अपने कुल से प्राप्त हुआ था।

घ—गुप्त जी सख्यभाव में दीक्षित हुए थे, परन्तु अपना सम्बन्धपत्र भी वे खो बैठे, साम्प्रदायिकता की संकीर्णता में वे नहीं फँसे।

स्पष्ट है गुप्त जी पर साम्प्रदायिकता का प्रभाव बहुत दूर तक नहीं देखा जा सकता, कुछ मूलभूत सिद्धान्तों तक ही यह प्रभाव उन पर परिलक्षित भी होता है। नीचे गुप्त जी की दार्शनिक विचारधारा पर यह प्रभाव देखने का एक प्रयास किया जा रहा है। गुप्त जी द्वारा लिखित प्रमुख रामकाव्य है 'साकेत'। 'पंचवटी' और 'प्रदक्षिणा' भी रामकाव्य ही हैं, किन्तु उनमें गुप्त जी की प्रतिभा दार्शनिकता में न उलझ कर सीधे-सादे वर्णन-कौशल में ही रमी है। अतः 'साकेत' को ही गुप्त जी की दार्शनिक विचारधारा के विवेचन का आधार बनाना उचित

है। यहाँ 'साकेत' को प्रमुख रीति से और अन्य ग्रन्थों को गौण रीति से आधार मान कर हम गुप्त जी पर रामानन्द-सम्प्रदाय के प्रभाव का अध्ययन करेंगे।

ब्रह्म-राम—रामानन्द-सम्प्रदाय में जिस प्रकार राम को ब्रह्म पद से अभिहित किया जाता है तथा उनके निर्गुण और सगुण दोनों ही रूपों में विश्वास किया गया है, उसी प्रकार गुप्त जी ने भी राम के ब्रह्मत्व को स्वीकार किया है। उनके मत से जो निर्विकार,[1] निरीह,[2] सर्वव्यापी,[3] अजन्मा,[4] अनादि-अनन्त-निर्गुण[5] ब्रह्म है, वही राम होकर इस भूतल पर पापियों का नाश करने के लिए अवतरित हुआ था। वस्तुतः निर्गुण सगुण में कोई अन्तर है ही नहीं। गुप्त जी कहते हैं—

स्वर्ग से भी आज भूतल बढ़ गया,
भाग्य भास्कर उदयगिरि पर चढ़ गया।
हो गया निर्गुण सगुण साकार है,
ले लिया अखिलेश ने अवतार है।[6]

यही साकार राम विश्व के स्रष्टा, रक्षक और लयकर्ता हैं। वे लोकेश हैं—लीलाधाम हैं। वे अनादि और अनन्त हैं। उनको ही लेकर अखिल सृष्टि की क्रीड़ा चल रही है और नित्य नवीन प्रसव की पीड़ा भी आनन्दमयी हो जाती है।

चित्रकूट में राम सीता से एक वार्तालाप-प्रसंग में गुप्त जी ने लिखा है—

'हम तुम तो होते कान्त?' न थे, कब कान्ते?
हैं और रहेंगे नित्य विविध वृत्तान्ते॥
हमको लेकर ही अखिल सृष्टि की क्रीड़ा,
आनन्दमयी नित नई प्रसव की पीड़ा॥[7]

राम असंख्य दिव्यगुणों के आकर हैं। वे सभी मंगलगुणों के धाम हैं।[8] वे भक्त-वत्सल हैं। संसार को भार से मुक्त करने के लिए, अपने जनों को लोचन-लाभ देने के लिए, शिशिरमय हेमन्त के सदृश असुरों के शासन का नाश

१—रंग मे भंग (सं० २००६), पृ० १।
२—वही, पृ० १।
३—पत्रावली, पृ० १४-शिवाजी का पत्र औरंगजेब को।
४—झंकार-सं० २००७-बालबोध, पृ० १४-१५।
५—साकेत, पृ० १२।
६—वही, पृ० १२।
७—साकेत, पृ० १६५।
८—रंग में भंग-सं० २००६, पृ० १।

करने के लिए वसंत के समान यह अनादि-अनन्त भगवान् बार-बार अवतार धारण करता है।[१] साकेत में स्वयं राम ने अपने अवतार का विस्तृत हेतु बतलाया है। सीता से चित्रकूट में वे कहते हैं : 'हे प्रिये, मैं संसार को कुछ देने के लिए अवतरित हुआ हूँ। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी-अपनी रक्षा का अधिकार रहे, किन्तु सबकी सुविधा का भार शासन को ही रहता है, यह आर्यों का आदर्श है। मैं संसार को यही आदर्श दिखाने आया हूँ। मैं यह बतलाने आया हूँ कि मनुष्य धन की अपेक्षा कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। मुझे विश्वासी के विश्वास की रक्षा करनी है। जो विवश, विकल, बलहीन, दीन, शापित एवं तापित हैं, जो कौणप कुल से मूक सदृश शासित हैं और जो भयग्रस्त हैं, मैं उनकी रक्षा के लिए अवतरित हुआ हूँ, मुझे मर्यादा की रक्षा करनी है, सादे जीवन को बचाना है। मुझे मनुष्यत्व का नाट्य खेलना है, मैं यहाँ एक सहारा छोड़ने आया हूँ। मैं यहाँ गढ़ने आया हूँ, तोड़ने नहीं ; मैं यहाँ बाँटने आया हूँ, जोड़ने नहीं। मुझे जगदुपवन के झंखाड़ छांटने हैं ; मैं राज्य भोगने नहीं, भोगाने आया हूँ। हंसों को मुझे मुक्ता-मुक्ति चुगानी है, भव में नवयौवन भरना है, नर को ईश्वरता प्रदान करनी है। मैं यहाँ स्वर्ग का संदेश नहीं लाया हूँ, इस भूतल को ही मुझे स्वर्ग बनाना है। अथवा इस पुण्यभूमि का ऐसा आकर्षण ही है कि मैं उच्चफल जैसा अवतरित हुआ हूँ। जो व्यक्ति मेरा नाममात्र स्मरण करेंगे, वे बिना प्रयास के ही भवसिन्धु पार हो जायँगे ; किन्तु जो मेरे गुण-कर्म और स्वभाव का अनुकरण करेंगे, वे तो औरों को भी तार कर पार उतरेंगे। वन में मुझे निज साधन-सुलभ-धर्म की व्यवस्था करनी है, इसमें मन की प्रधानता होगी, कर्म की नहीं। ऋक्ष-वानर की भाँति वे नर मुझसे आर्यत्व प्राप्त कर अब कृतार्थ हो जायँगे।......मेरे साथ-साथ वेद की पवित्र वाणी उच्चरित होती चलेगी, अम्बर सोम के पवित्र धूम से भर जायगा, वसुधा का हरा दुकूल लहरा उठेगा। ज्ञानियों को तत्व चिन्तन का अवकाश मिल जायगा, ध्यानियों का ध्यान निर्विघ्न हो जायगा। अग्नि आहुतियों से समृद्ध हो जायगी और उस तपस्त्याग की विजय-वृद्धि भी हो जायगी। कौणप-गणों से आक्रान्त एवं दुर्गम दक्षिण देश अब मुनियों के लिए सुगम हो जायगा। भौतिक-पद से यथेच्छाचारी इन दुष्टों की कुगति-कुमति को मैं मिटा दूँगा।'[२]

१—साकेत, पृ० १२।

२—साकेत, पृ० १६६-६८।

फिर भी राम मानव हैं, उनका हृदय हिमालय जैसा उच्च है। मानव जन्म लेकर उन्होंने धरणीतल को धन्य कर दिया। कवि को उनकी ईश्वरता में पूर्ण विश्वास है :

राम ! तुम मानव हो ईश्वर नहीं हो क्या ?
विश्व में रमे हुए नहीं सभी कहीं हो क्या ?
तब मैं निरीश्वर हूँ, ईश्वर क्षमा करे,
तुम न रमो तो मन तुममें रमा करे ॥[१]

गुप्त जी के बाल्मीकि ने ठीक ही कहा है—

राम, तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है ॥[२]

राम अपूर्वलावण्यमय हैं, मानो शस्य श्यामल भूतल ने उनमें अपनी नर झाँकी दिखलाई हो ; अथवा अवनी पर कोई कामरूपघन उतर पड़ा हो जिसमें एक अपूर्व ज्योति और साथ ही जीवन का गहरापन भी हो।[३] राम अद्भुत शक्ति संपन्न हैं—राक्षसों को मार कर उन्होंने धरा-धाम के भार को मिटाया।[४] वे निर्बलों-असहायों—के बल हैं।[५]

राम बड़े ही उदार और भक्तवत्सल हैं। वे भक्तों से न जाने क्या खेल खेलते हैं।[६] वे केवल श्रद्धा और भक्ति के ही भूखे हैं।[७] भक्तों के लिए वे स्वयं अपने ही नियमों का परित्याग कर देते हैं।[८] स्वयं राम ने अपने जीवन में अद्भुत् त्याग किया था। अतः अनुरागी जन संसार तक का परित्याग करके उन्हें पाते हैं—उनसे बढ़ कर संसार में कौन सा धन है। भक्त इसीलिए राममय होकर राम के पास जाते हैं।[९] फिर भी राम भाव के भूखे हैं, गुह

१—वही, पृष्ठ ६।
२—वही, पृ० ११३।
३—पंचवटी, पृ० ४६ सं० २००६।
४—सिद्धराज, पृ० ५।
५—सैरन्ध्री, पृ० २५२ अथवा झंकार सं० २००७, पृष्ठ ७०।
६—जयद्रथवध, सं० २००७, पृ० ८५।
७—युद्ध, सं० २००६, पृ० ४१।
८—प्रदक्षिणा, सं० २००७, पृ० ३१।
९—झंकार, सं० २००७, पृ० ३६।

निषाद और शबरों तक का मन रखते हैं।[१] माँ के मन की रक्षा के लिए उन्होंने स्वयं बहुत विशाल राज्य का तृणवत् परित्याग कर दिया, पिता के आदेश का पालन किया, स्वधर्म पर अडिग रहे और नर लोक में अद्भुत् ख्याति प्राप्त करके भी जन्मभूमि के समक्ष अपने को शिशु समझते रहे।[२] कैकेयी चित्रकूट में जाकर यह जान गई कि राम सचमुच भावज्ञ हैं,[३] सचमुच राम का ही वह विशाल एवं उच्च चरित्र था जिसने कैकेयी के दोषों को गुण करके स्वीकार कर लिया था।[४]

कवि ने जीव को अनादि, अनन्त, अजरामर एवं अविनाशी माना है।[५] साथ ही वहप्रकृति की भी सत्ता स्वीकार करता है। बिना सूत्रधार के यह सभी श्रृंखला भला रह सकती है ? सचमुच जो इस भवनाटक का स्रष्टा है, वही उसका द्रष्टा भी है। अतः सभी को चाहिए कि स्वयं इस नाटक के पात्र बन कर खेल खेलें, भय से डरें नहीं।[६] अन्यत्र भी कवि इस जगत् को प्रकृति-पुरुष की क्रीड़ा मानता है और जीव को पुरुषोत्तम का अंशज मानता है।[७] इसी प्रकार उसने ब्रह्म को भी मायामय माना है।[८] इस प्रकार एक ओर कवि प्रकृति और जीव की अनादि-अनन्त सत्ता को स्वीकार करता हुआ उन्हें किसी सूत्रधार द्वारा [illegible] बतला कर विशिष्टाद्वैत मत में विश्वास करता सा प्रतीत होता है और दूसरी ओर मायावाद को स्वीकार करता हुआ वह केवलाद्वैत का भी समर्थन करता है। वस्तुतः गुप्त जी को दोनों ही मतों में आस्था है फिर भी दोनों की ऐकान्तिकता से वे दूर हैं। न तो वे विशुद्ध ज्ञानवादी हैं और न कोरे भक्तिवादी। भक्त-भगवान् के सम्बन्ध उन्हें प्रिय हैं, वे इस रंग के अतिरिक्त और किसी रंग में रंगना भी नहीं चाहते। वे कहते हैं :

धनुर्बाण या वेणु लो श्याम रूप के संग
मुझ पर चढ़ने से रहा राम दूसरा रंग।[९]

१—पंचवटी, सं० २००६, पृ० १६।
२—साकेत, पृ० ६४।
३—वही, पृ० १८३।
४—वही, पृ० ३३१।
५—वैतालिक, सं० २००८, पृ० ७
६—वही, पृ० १८-१६।
७—वही, पृ० १६-२०।
८—साकेत, पृ० २८५।
९—द्वापर, पृ०७६ (सं २००५)।

स्पष्ट है, गुप्त जी को ब्रह्म के सगुण रूप में उतना ही विश्वास है जितना उसके पारमार्थिक रूप में। गुप्त जी ने अपने पत्र में लिखा भी है—'मैंने यदि कहीं अद्वैत की भावना प्रकट की तो सायुज्यमुक्ति से उसका समन्वय करके ही।' लक्ष्मण ने भी गुह को समझाया है—

सखे समन्वय करो भक्ति का मुक्ति से।

साकेत, पृ० १०१

गुप्त जी ने भगवान् के अर्चावतार में भी अपना विश्वास प्रकट किया है। उनका कहना है कि भक्त जन तो मूर्ति में भगवान् का ही दर्शन करते हैं। भले ही भ्रान्तजन उसको जड़ कह लें।[१] यों तो सभी काम तर्कबुद्धि से ही किए जाते हैं, किन्तु भगवान् में श्रद्धा-भक्ति ही भली होती है। नास्तिकों को जो लोष्ठमात्र है, भावुकों की भावना उसी में भगवान् का दर्शन करती है। यह तो मानने की ही बात है—'मानिये तो शंकर हैं, कंकर है अन्यथा।'[२] यद्यपि राम सर्वत्र विद्यमान हैं, तथापि चित्रकूट, पंचवटी और रामेश्वर में उनके चरित्र हमें पवित्र करते हैं। ऐसे शुभ स्थानों का जिन्हें भार मिला है, वे धन्य हैं।

इधर जब से छायावाद का प्रभाव बढ़ा, गुप्त जी के विचारों में भी परिवर्तन आ गया था। 'दासोऽहं' और 'सोऽहं' के प्रश्नों में वे भी उलझ गए थे—

अब भी एक प्रश्न था कोऽहं, कहूँ कहूँ जब तक दासोऽहं।
तन्मयता बोल उठी सोऽहं, बस हो गया सबेरा॥[३]

किन्तु, 'साकेत' में चल कर उनकी भावुकता पुनः आस्तिकता की ओर लौट आई है। जयद्रथबध में भी अर्जुन द्वारा भगवान् श्री कृष्ण के स्वरूप की जो विवेचना कवि ने कराई है, उससे भी उसकी ब्रह्म सम्बन्धी विचारधारा पर प्रकाश पड़ता है।

सीता—कवि ने सीता को ब्रह्म की मूर्तिमयी माया कहा है। सीता राम को अत्यन्त प्रिय हैं। जिस प्रकार घनश्याम में बिजली की ज्योति छिपी रहती है, उसी प्रकार सीता राम के भीतर बैठी हुई हैं।[४] सीता को कवि ने राम के

१—रंग में भंग, २००६ वि०, पृ० २२।

२—सिद्धराज, पृ० १९।

३—झंकार, पृ० १६।

४—साकेत, पृ० १५६-६३।

समान ही अनादि माना है और दोनों को अनादिकाल से ही सम्बद्ध भी कहा है। साकेत में राम ने सीता से स्पष्ट कहा है :—

हम तुम तो होते कान्त ? न थे कब कान्ते ?
हैं और रहेंगे नित्य विविध वृतान्ते ?
हमको लेकर ही अखिल सृष्टि की क्रीड़ा।
आनन्दमयी नित नई प्रसव की पीड़ा॥[१]

'वैतालिक' में कवि ने सीता को धन-धान्य प्रदान करने वाली तथा कर्मक्षेत्र को ऊर्वर करने वाली देवी के रूप में स्मरण किया है।[२] अन्यत्र भी कवि ने सीता का रह-रह कर बड़ी श्रद्धा से स्मरण किया है। 'पत्रावली' में सीता ही की वन्दना कवि ने की है और उन्हें श्रेय तथा प्रेय दोनों को प्रदान करने वाली कहा है।[३] 'काबा और कर्बला' में उन्हें मुक्तिमूर्ति तथा इस देही की गति माना है। कवि ने उन्हें अपनी अल्ला (माता) भी कहकर सीता का स्मरण किया है।[४] वैदेही के कारण उनकी जाति भी कवि को विदेहिनी ही प्रतीत होती है।[६] इस प्रकार सीता के सम्बन्ध में कवि की वही धारणा है जो सामान्यतया रामानन्द-सम्प्रदाय में मान्य रही है। हाँ, रामानन्द सम्प्रदायान्तर्गत सखी-सम्प्रदाय में सीता को विशेष स्थान प्रदान किया गया है और उनकी अनेक सखियों की भी कल्पना की गई है। सीतोपासक भक्त सीता का ही प्रमुख रूप से स्मरण करते हैं। सम्भव है, गुप्त जी को सीता-भक्ति का कुछ संस्कार इसी 'रसिक-सम्प्रदाय' से प्राप्त हुआ हो। उनकी सीता में बड़ी ही अविचल भक्ति प्रतीत होती है, पर यह नहीं कहा जा सकता कि उनकी भक्ति सखी-भावना की ही भक्ति है। वे स्वयं बतला चुके हैं कि उनका सम्बन्ध सख्यभक्ति से कराया गया था, पर उनकी उदारता उस बंधन को स्वीकार न कर सकी।

जीव—गुप्त जी ने जीव के सम्बन्ध में कोई विस्तृत विवेचन प्रस्तुत नहीं किया है, फिर भी उनकी धारणा प्रायः वही रही है, जो रामानन्द-सम्प्रदाय में मान्य है। वैतालिक में उन्होंने मानव-मात्र को संबोधित करके कहा है कि मनुष्य भी जल, थल, गगन की भाँति अनन्त है, वह स्वाधीन आत्मा है,

---

१—वही, पृ० १६५।
२—वैतालिक, पृ० ५।
३—पत्रावली, पृ० ३।
४—काबा और कर्बला, पृ० ६।
५—साकेत, पृ० १०८।

परमात्मा-लीनात्मा है ; वह मुक्तात्मा है—परमात्मा युक्त आत्मा है ; वह अजर-अमर और अविनाशी है ; वह तेज की राशि और विकासी है ; सूर्य आवागमन युक्त है, पर वह निष्काम-मुक्त है, यही जीव का भी क्रम है। संसार ब्रह्म का क्रीड़ा-क्षेत्र है, बिना उसमें घुसे उसे पाना सम्भव नहीं। पुरुषोत्तम का अंशज जीव केवल यहीं व्याप्त नहीं है—तनके साथ ही उसकी समाप्ति नहीं है, उसे तो वहाँ भी जाना है जहाँ से उसका आगमन हुआ है।[१]

जीव तो केवल हेतुमात्र है, कर्ता केवल ईश्वर ही है, वह निर्विकार होकर भी भक्तवत्सल है। उसे जो इष्ट होता है, सर्वत्र वही होता है। उसे पाकर और कुछ पाना शेष नहीं रह जाता। वस्तुतः जो लोग उसके 'पदकमल के असल मधु' को जान गए हैं, वे मुक्ति की भी कामना नहीं करते।[२]

प्रकृति—इस जगत् को गुप्त जी ने प्रकृति और पुरुष की क्रीड़ा माना है। प्रकृति नटी क्षण-क्षण अनेक नवीन दृश्य उपस्थित करती हुई नाट्य कर रही है। वह अवश्य ही किसी सूत्रधार द्वारा परिचालित एवं नियंत्रित है, नहीं तो यह शृंखला न बनी रहती।[३] इस प्रकृति को गुप्त जी ने गुण-कर्ममयी माना है, उनका कहना है कि इसे जान लेना असम्भव-सा है।[४]

इस संबन्ध में उन्होंने माया का भी नाम लिया है और उसे ईश्वर की शक्ति माना है। वस्तुतः यह माया ही जीव को उलझाए रहती है। उसी ने उसे अपने बाहुपाश में बाँध रक्खा है। भगवान् की जब कृपा हो जाती है, यह बन्धन अपने आप खुल जाता है। यह संसार है तो क्षणभंगुर, पर इसका सुख बहुत ही आकर्षक है। यह खट्टे-मीठे रस का एक मोहक घड़ा है, इसकी रचना देख कर मुग्ध हो जाना ही पड़ता है।[५] 'साकेत' में कवि ने सीता को ही मूर्तिमयी माया कहा है और उसे ब्रह्म की शक्ति स्वीकार किया है।[६] जिसे राम मिल जाता है उसे भला माया क्या मोह सकती है ? ऐसे पुरुष को पाकर फिर किसे क्या पाना शेष रह जाता है।[७] यह माया बड़ी ही दुरत्यया और

१—वैतालिक, सं० २००८, पृ० ५-२०।
२—जयद्रथवध, सं० २००७, पृष्ठ ९०-९२।
३—वैतालिक, पृ० १८-१९ (सं० २००८)।
४—अंजलि और अर्घ्य, सं० २००७, पृ० ८
५—झंकार, पृ० ६३, ९७।
६—साकेत, पृ० १५६।
७—काबा और कर्बला, पृ० ६५ (सं० २००४)।

शक्ति-शालिनी है। जीव और प्रभु के मध्य में यही खड़ी है। बिना उसको साधे भक्ति और मुक्ति का समन्वय नहीं हो सकता।[१]

मोक्ष—मोक्ष के सम्बन्ध में गुप्त जी ने अपने पूर्व उद्धृत पत्र में स्वीकार किया है कि सायुज्य मुक्ति में ही उनका विश्वास है। भगवान् को पा जाने पर जीव को और कुछ पाना शेष नहीं रह जाता। वस्तुतः जिन्हें उसके पद कमल के वास्तविक मधु का ज्ञान हो गया है, वे मोक्ष को अनिच्छा पूर्वक देखते हैं। ईश्वर-जीव का संगम बहुत ही मधुर होता है, यह सुख विचित्र है।[२]

किन्तु, ब्रह्म को पाना सहज सम्भव नहीं है। भव तक के त्यागी बन कर केवल अनुरागी जन ही इसे पाते हैं। वस्तुतः भक्तों के लिए उससे बढ़कर और कौन साधन होगा? इसीलिए जीव को उसे पाकर और कुछ पाना शेष नहीं हो रह सकता है।[३]

गुप्त जी ने अर्चिरादि मार्ग पर कोई प्रकाश नहीं डाला है।

साकेत—लौकिक साकेत का गुप्त जी ने बड़े विस्तार से 'साकेत' महाकाव्य में वर्णन किया है। देव नदी तो केवल मात्र मरों को पार उतारती है, किन्तु सरयू जीवितों को ही तार देती है; अयोध्या धरती की अमरावती है; वह धर्मादर्श निकेत है।[४] अयोध्या राम को बहुत ही प्यारी है। यह राम का धाम 'साकेत', स्वर्गोपरि है। वन जाते समय बड़ी ही भावुक वाणी में राम ने इस अयोध्या का स्मरण किया है। मातृ-भूमि के प्रति उनका यह अनुराग बड़ा ही अपूर्व है। तुलसी के राम ने भी 'यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ'। कह कर अवधपुरी को बहुत ही प्रिय बतलाया है।

वस्तुतः इसी धाम में भगवान् के नाम-रूप-गुण और लीला का लाभ होता है।[५] यद्यपि राम सब में रमे हैं, फिर भी अयोध्या, चित्रकूट, पंचवटी और रामेश्वर में उनके चरित्र हमें पवित्र करते हैं। जिनको ऐसे शुभस्थानों का भार मिल गया है, वे भी पूजनीय हैं।[६] राम की अयोध्या सर्वदा राम के साथ है अतः उसके प्रति राम-भक्तों का अनुराग होना स्वाभाविक भी है।

१—साकेत, पृ० १०१।

२—जयद्रथबध, पृ० ९२-९३।

३—झंकार, पृ० ३९।

४—साकेत, पृ० १४,१५,३२

५—यशोधरा, पृ० ११।

६—सिद्धराज, पृ० १८

स्पष्ट है, गुप्त जी ने अयोध्या का स्मरण श्री राम के धाम के रूप में ही किया है, किन्तु उन्होने विरजा, स्वर्णसिंहासन, कनक-भवन आदि का इस प्रसंग में कोई वर्णन नहीं किया है।

घ—रामानन्द सम्प्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्त

तथा उनसे प्रभावित अन्य कवि

रामानन्द सम्प्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्तों से प्रभावित होकर अनेक रामानन्दी कवियों ने रचनाएँ की हैं, किन्तु उनकी अधिकांश प्रतियाँ साम्प्रदायिक मठों में हस्तलिखित पोथियों के रूप में ही यत्रतत्र बिखरी पड़ी हैं। अभी तक उनकी पूरी सूची भी प्रकाशित नहीं हो सकी है। केवल कुछ कवियों की रचनाएँ ही प्रकाश में आ सकी हैं। ऐसे कवियो में अग्रदास, नाभा जी, बालअली, सूरकिशोर, कृपानिवास, रामसखे, प्रेमसखी, रामचरणदास, जीवाराम, युगलानन्यशरण आदि प्रमुख हैं। इनकी विचारधारा का अध्ययन एक स्वतन्त्र ग्रन्थ की अपेक्षा रखता है, क्योंकि ये कवि रामानन्द-सम्प्रदाय से मूलतः प्रभावित होने के साथ ही रसिक-सम्प्रदाय की सखी-भावना से विशेष रूप से प्रभावित हैं। जब तक सखी भावना के मूल ग्रन्थों की विचारधारा का विस्तृत ढंग से अध्ययन न कर लिया जाय तब तक इनके विचारों के समझने का प्रयास अधूरा एवं एकांगी ही होगा। फिर भी इनकी विचारधारा पर पीछे पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है। ये समस्त कवि माधुर्य-भक्ति से विशेष प्रभावित हैं, इनके संग्रहों में माधुर्य भक्ति से संबन्धित पदों की प्रधानता है। ब्रह्म, जीव, जगत्, माया, मोक्ष आदि गंभीर दार्शनिक प्रश्नों पर इनमें से एकाध को छोड़ कर प्रायः किसी ने भी विचार नहीं किया है। 'अर्थ पंचक' में युगलानन्यशरण जी ने विशिष्टाद्वैत का ही प्रतिपादन किया है। अग्रदास की रचनाएँ प्रायः उपदेश प्रधान हैं, उन्होंने अष्टयामीय उपासना-पद्धति पर ही विशेष प्रकाश डाला है। नाभादास का प्रसिद्ध ग्रन्थ है 'भक्तमाल'। 'रामाष्टयाम' में उन्होंने भी अष्टयामीयोपासना प्रणाली का ही विवेचन प्रस्तुत किया है। कृपानिवास सखी भाव में तत्सुख-विधानकर्ता के रूप में प्रसिद्ध हैं। सूरकिशोर की भक्ति वात्सल्यभाव की थी, रामसखे सख्यभाव के उपासक थे। रामचरणदास ने स्वसुखी शाखा चलाई। जीवाराम जी रामचरणदास के ही शिष्य थे, किन्तु स्वसुख में उनका विश्वास नहीं था। युगलानन्यशरण जी जीवाराम जी के ही शिष्य थे। माधुर्योपासकों ने 'अष्टयाम' पर ही बहुत कुछ कहा है। जैसा अभी कहा जा चुका है, इन्होने गंभीर दार्शनिक

प्रश्नों को उठाया तक नहीं, विवेचना करना तो दूर रहा। जहाँ तक महत्व का प्रश्न है ये सभी कवि मध्यम श्रेणी के हैं। न तो इनकी भाषा ही अलंकृत एवं प्रौढ़ है और न इनमें छंदादि नियमों का ही पालन मिलता है। केवल रसरंग-मणि जी की ही कविताएँ शुद्ध साहित्यिक रचनाएँ कहीं जा सकती हैं। 'रसिक सम्प्रदाय' के मूल ग्रन्थ हैं—'अमर रामायण, आनन्दरामायण, कोशल खंड, भुशुंडिरामायण, महारामायण, महारासोत्सव, मंत्ररामायण, रामरहस्योपनिषद्, रामनवरत्न, लोमशसंहिता, सदाशिवसंहिता, शांडिल्यसंहिता, हनुमत्संहिता, सुन्दर-मणिसंदर्भ' आदि। इनमें रामाष्टयाम का विस्तार से वर्णन मिलता है। साथ ही सीता जी की चारुशीला तथा चन्द्रकला सखियों और उनकी अनेक अनुगामिनी सखियों का वर्णन वहाँ मिलता है। उनके यूथ और यूथेश्वरियों की भी कल्पना की गई है। रामरास का वर्णन प्रमुख रूप से प्रायः इन समस्त ग्रन्थों में किया गया है। 'महारासोत्सव' और 'कोशल खंड' में रामरास के अनेक रूपों का विस्तार से वर्णन मिलता है। पीछे इन ग्रन्थों के प्रतिपाद्य पर कुछ प्रकाश डाला जा चुका है।

अतः स्पष्ट है, उपर्युक्त समस्त कवि भक्त पहले हैं, कवि या दार्शनिक गौण रूप से। इनमें दार्शनिक विवेचन का प्रायः अत्यन्त ही अभाव है। इसी कारण उनकी विचारधारा का यहाँ कोई अध्ययन प्रस्तुत नहीं किया जा रहा है। रही इनकी भक्ति-भावना, उस पर पीछे पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है। इनकी रचनाओं का महत्व केवल एक दृष्टिकोण से ही है—वह है इनके माध्यम से राम-भक्ति में माधुर्य भाव के प्रवेश एवं विस्तार को सरलता से समझा जा सकता है। यह तो पीछे कहा ही जा चुका है कि रामानन्द-सम्प्रदाय मूलतः भक्ति-सम्प्रदाय है, यहाँ भक्ति प्रधान, ज्ञान, चिंतन एवं आचार्यत्व गौण है। इसी कारण रामानंदी विचारधारा पर प्रकाश डालने वाले ग्रन्थों का इस सम्प्रदाय में प्रायः अभाव सा ही है। पिछले सौ वर्षों से ही इस संप्रदाय में कुछ विवेचन-परक ग्रंथ मिलने प्रारम्भ होते हैं, मध्ययुग या उसके लगभग २०० वर्ष पश्चात् तक दर्शन सम्बन्धी ग्रन्थों का नाम तक नहीं मिलता। भक्ति इस सम्प्रदाय का मूल मंत्र थी, उपासना परक गीतों की बहुलता का यही एक मात्र कारण है। स्वयं रामानन्द जी ने भी आचार्य शंकर या रामानुज की भाँति जमकर दार्शनिक तत्वों का विवेचन प्रस्तुत नहीं किया है। रामानन्द का महत्व एक सुधारक के रूप में अधिक है, आचार्य के रूप में कम। उन्होंने दार्शनिक सिद्धान्तों की दृष्टि से 'विशिष्टाद्वैत' का ही अनुसरण किया है और यही उनके सम्प्रदाय का मान्य दार्शनिक मत है। 'जानकी भाष्य' तथा 'आनन्दभाष्य' रामानन्दी विशिष्टाद्वैत की

सरल भाषा में बड़ी सुन्दर व्याख्या उपस्थित करते हैं। अतः उनके मत को सम्प्रदाय का मूल मत माना जाना चाहिए। रामानन्दी कवियो ने प्रायः इसी मत में अपनी आस्था व्यक्त की है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के परिशिष्ट भाग में इन समस्त कवियों की प्रकाशित एवं अप्रकाशित रचनाओं की सूची प्रस्तुत की जा रही है। यथा संभव इस सूची को पूर्ण बनाने की चेष्टा की गई है। इनमें से प्रकाशित पुस्तकें छोटे लाल लक्ष्मी-चन्द, बुक्सेलर, अयोध्या से प्राप्त हो सकती हैं। यथावकाश इन कवियों की रचनाओं का साहित्यिक एवं भक्ति सम्बन्धी मूल्यांकन उपस्थित करने का प्रयास करूँगा। रामभक्ति में माधुर्य भाव के विकास में इनका पर्याप्त योग रहा है, कृष्णभक्त कवियों की ही भाँति इन्होंने राम-रास, राम का मुरलीवादन, राम-सीता का अष्टयामीय शृंगार एवं उनकी विलास-चेष्टा का वर्णन किया है। अधिकांशतः यह साहित्य अश्लील है और तुलसी द्वारा स्थापित मर्यादा का उल्लंघन करता है। पीछे रामानन्द-सम्प्रदाय का इतिहास प्रस्तुत करते समय इन कवियों की जीवनी, उनकी रचनाओं एवं उनकी भक्ति-भावना पर प्रकाश डाला जा चुका है। यहाँ उसकी पुनरावृत्ति अनावश्यक है।

नवम अध्याय

हिन्दी कवियों पर रामानन्दी-भक्ति-पद्धति का प्रभाव

रामानन्द-सम्प्रदाय और तुलसीदास—रामानन्द-सम्प्रदाय में पंच संस्कारों को भक्ति का एक आवश्यक अंग माना गया है। मुद्रांकण, ऊर्ध्वपुण्ड्र, नामकरण, मन्त्रजाप, तुलसीमाला आदि पंच संस्कारों से विधिवत् सम्पन्न हो जाने पर व्यक्ति की प्रवृत्तियाँ बहुत कुछ अन्तर्मुखी हो जाती हैं और फिर उसके लिए अपने मन को बाह्य जगत् से खींच कर भगवच्चरणों में केन्द्रित कर देना सहज हो जाता है। कहा गया है बिना इन पंच संस्कारों से संस्कृत हुए व्यक्ति उस भक्ति का अधिकारी नहीं होता जिसे पाने के लिए ऋषि-महर्षियों को भी जीवन भर साधना करनी पड़ती है। तुलसीदास रामानन्द-सम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे, इसका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता है। उनके सम्बन्ध में केवल इतना ही ज्ञात है कि उन्होंने किसी गुरु के समीप रह कर ही अपनी बाल्यावस्था में विद्या प्राप्त की थी। गुरु ने उन्हें अपने सम्प्रदाय के कर्म-काण्ड से अवश्य ही परिचित कराया होगा, किन्तु कहीं भी गोस्वामी जी ने इस साम्प्रदायिक कर्मकाण्ड की कोई चर्चा नहीं की है। कदाचित् पंच संस्कारों को वे अनावश्यक सा समझते थे। कहीं भी उन्होंने यह नहीं लिखा है कि पंच संस्कारों से नियमित रूप से संस्कृत हो जाना भक्ति का एक आवश्यक अंग है। वे तो बाह्याचार-ढोंग की सीमा तक जाने वाले बाह्याचार-के विरोधी से जान पड़ते हैं। भगवान् राम में उनकी अटूट भक्ति थी और इस मानसिक भक्ति के ही वे उपासक प्रतीत होते हैं। 'विनयपत्रिका' में उन्होंने लिखा है—

माधव ? मोह पास क्यों टूटै ?
बाहर कोटि उपाय करिय, अभ्यंतर ग्रन्थि न छूटै ॥

घृत पूरन कराह अन्तरगत ससि प्रतिबिम्ब दिखावै।
ईंधन अनल लगाइ कलप सत औटत नास न पावै॥
तरु कोटर मंह बसै विहंग तरु काटे मरै न जैसे।
साधन करिय विचार हीन मन सुद्ध होइ नहिं तैसे॥
अन्तर मलिन, विषय मन अति, तनु पावन करिय पखारें।
मरै न उरग अनेक जतन बलमीक विविध विधि मारें॥
तुलसिदास हरि गुरु करुना बिनु विमल विवेक न होई।
बिनु विवेक संसार घोर निधि पार न पावै कोई॥ पद ११५

इस पद से स्पष्ट है कि तुलसीदास की आस्था आन्तरिक शुद्धि में अधिक थी। वाह्य उपचार मन की मलीनता को दूर नहीं कर सकते और जब तक मन की वासना नहीं मिटती, तब तक संसार-सागर से पार पाना असम्भव है।

भक्ति की प्रमुख विशेषताएँ और तुलसीदास—तुलसीदास की भक्ति बहुत ही उच्चकोटि की थी। विद्वानों ने भक्ति के जितने भी प्रमुख एवं आवश्यक अंग माने हैं, वे सभी गोस्वामी जी की भक्ति-पद्धति में पाए जाते हैं। रामानन्द जी के अनुसार भक्ति की सर्वप्रमुख विशेषता है परमात्मा के प्रति अनन्य अनुराग; तुलसीदास ने अनेक स्थलों पर अपने ऐकाधिक ग्रन्थों में परमात्मा के प्रति अनन्य अनुराग को भक्ति का प्रमुख आवश्यक अंग माना है :—

सखा परम परमारथ येहू। मन क्रम बचन राम पद नेहू॥
—लक्ष्मण, मानस, अ० का०, पृ० २१८

तुलसी के बाल्मीकि ने भी कहा है :—

स्वामि सखा पितु मातु गुर, जिन्हके सब तुम तात।
मन मन्दिर तिन्हके बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात॥
मानस, अ० का०, पृ० २३४

अथवा—

जिन्हहिं राम तुम प्रान पियारे। तिनके मन सुभ सदन तुम्हारे॥
सब करि मांगहिं एकु फलु रामचरन रति होउ।
तिन्हके मन मन्दिर बसहु, सिय रघुनन्दन दोउ॥
—मानस, अ० का०, पृ० २३३

स्वयं राम ने कहा है :—

गुरु पितु मातु बन्धु पति देवा। सब मोहि कहं जानै दृढ़ सेवा॥

बचन करम मन मोरि गति, भजनु करहिं निहकाम।
तिन्हके हृदय कमल महुँ, करौं सदा बिश्राम॥
—मानस, अ० का०, पृ० ३३१

बसिष्ठ भी कहते हैं :—

सो सुख करम धरम जरि जाऊ। जहं न राम पद पंकज भाऊ॥
जोगु कुजोगु ज्ञान अज्ञानू। जहं नहि राम प्रेम परधानू॥
—मानस, अ० का०, पृ० ३०३

राम और भक्त का यह प्रेम उसी प्रकार का है जैसा चातक और जलधर का प्रेम-

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
एक राम घनस्याम हित चातक तुलसीदास॥
—दोहावली, २७७ दोहा

भक्ति की दूसरी विशेषता है भगवान् के श्री चरणों की सेवा। वस्तुत: यह भक्ति का एक आवश्यक अंग है। तुलसीदास ने जिस प्रकार की भक्ति को स्वीकार किया है, उसमें भगवान् की सेवा को एक प्रमुख स्थान दिया गया है। वाल्मीकि ने राम से मिलने पर सत्य ही कहा :—

करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि के उर डेरा॥
—मानस, अ० का०, पृ० २३४

शंकर ने भी राम की प्रार्थना करते हुए कहा है—

भव सिन्धु अगाध परे नर ते। पद पंकज प्रेम न जे करते॥
अतिदीन मलीन दुखी नित ही। जिन्हके पद पंकज प्रीति नहीं॥
अवलम्ब भवन्त कथा जिन्हकें। प्रिय संत अनन्त सदा तिन्हकें॥
नहि राग न लोभ न मान मदा। तिनके सम वैभव वा विपदा॥
यहि तें तव सेवक होत मुदा। मुनि त्यागत जोग भरोस सदा॥
करि प्रेम निरन्तर नेमु लिए। पद पंकज सेवत सुद्ध हिए॥
—मानस, उत्तर काण्ड, पृ० ४६८।

जनक और अगस्त्य ने भी राम से अविरल चरण-प्रीति का ही वरदान माँगा था-

बार बार मागौं कर जोरे। मनु परिहरै चरन जनि भोरे॥
—जनक, मानस, बा० का०, पृ० १६६

अविरल भगति बिरति सतसंगा। चरन सरोरुह प्रीति अभंगा॥
—अगस्त्य, अ० का०, पृ० ३८६

'विनय-पत्रिका' में भी तुलसीदास ने राम के चरणों में अपने दृढ़ अनुराग को अनेक स्थलों पर व्यक्त किया है। यहाँ दो एक उदाहरण मात्र देना पर्याप्त होगा—

जाऊँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे।
काको नाम पतित पावन है? केहि अति दीन पियारे?
कौन देव बरिआईं बिरद हित हठि हठि अधम उधारे?
खग, मृग, व्याध, पषान, विटप, जड़ जमन, कवन सुर तारे?
देव, दनुज, मुनिनाग, मनुज सब माया बिवस बिचारे।
तिन्हके हाथ दास तुलसी प्रभु, कहा अपनपौ हारे?

—विनय, पद १०१

राम जैसा स्वामी कोई अन्य है ही नहीं, इसी से तो उनके चरणों में तुलसी का इतना अनुराग है। वे कहते हैं—

इहै जानि चरनन्हि चितु लायो।
नाहिन नाथ अकारण को हितु तुम्ह समान पुरान श्रुति गायो॥

—विनय, पद २४३

तैलधारावत् भगवान् का स्मरण भक्ति की एक अन्य प्रमुख विशेषता है। तुलसीदास के मत से नाम भगवान् के सभी प्रकार के भक्तों को प्रिय है, योगी आदि सभी भगवन्नाम का स्मरण निरन्तर किया करते हैं—

राम भगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा॥
चहूँ चतुर कहुँ नाम अधारा। ज्ञानी प्रभुहिं बिसेषि पिआरा॥
नाम जीह जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंचि-प्रपंच बियोगी।
ब्रह्म सुखहिं अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा।
जानी चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीहजपि जागहिं तेऊ॥

—मानस, बा० का०, पृ० १५

विनय में भी तुलसीदास जी ने लिखा है—

राम राम रमु, राम राम रटु, राम राम जपु जीहा।
राम नाम-नव-नेह-मेह को मन हठि होहि पपीहा॥
सब साधन फल कूप-सरित-सर-सागर-सलिल निरासा।
राम-नाम-रति-स्वाति-सुधा सुभ-सीकर प्रेम पियासा॥
गरजि तरजि पाषान बरसि पवि प्रीति परखि जिय जानै।
अधिक अधिक अनुराग उमँग उर, पर परिमिति पहिचानै॥

रामनाम गति, रामनाम मति, रामनाम अनुरागी।
ह्वै गये, हैं, जे होंहिगे तेइ तिभुअन गनियत बड़भागी।
एक अंग मन अगम गवन करि बिलमु न छन छन छांहैं।
तुलसी हित अपनो अपनी दिसि निरुपधि नेम निवाहैं॥

—विनय, पद ६५

भक्ति की चौथी विशेषता है विवेक। तुलसीदास का दृढ़ विश्वास है कि बिना विवेक के संसार सागर को पार करना अत्यन्त ही दुष्कर है—

तुलसिदास हरिगुरु करुना बिनु, विमल विवेक न होई।
बिनु विवेक संसार घोर निधि, पार न पावै कोई॥

—विनय, पद ११५

ज्ञान-विराग से युक्त भक्ति को ही वे सच्ची भक्ति मानते थे, क्योंकि जब तक विषयों से विराग नहीं हो जाता, जब तक विवेक द्वारा मोह एवं भ्रम को दूर नहीं कर दिया जाता, तब तक राम-चरणों में अविचल अनुराग नहीं हो सकता। इसी कारण, गोस्वामी जी का मत है, हरिभक्ति-पथ विरति और विवेक से पूर्ण होना चाहिए। वे लिखते हैं :—

जानहि तबहिं जीव जग जागा। जब सब विषय विलास विरागा।
होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा॥

—मानस, लक्ष्मण गुह से,
अ० का०, पृ० २१८

अथवा—

श्रुति सम्मत हरि-भगति-पथ, संयुत विरति विवेक।
तेहि न चलहिं नर मोह बस, कल्पहिं पंथ अनेक॥

—मानस, उ० का०, पृ० ५१४

भरद्वाज के यहाँ भी ज्ञान-विरागयुक्त भक्ति की ही चर्चा हुआ करती थी—

ब्रह्म निरूपन धर्म विधि, बरनहिं तत्व विभाग।
कहहिं भगति भगवन्त कै, संयुत ज्ञान विराग॥

—मानस, बा० का०, पृ० २७

तुलसीदास ने भी जप, तप, योग आदि को भक्ति का अंग माना है। वे इनको भक्ति के साधक मानते हैं। वस्तुतः तपस्वियों के लिए संसार में कोई वस्तु दुर्लभ नहीं रहती है। तप से ही विधाता जगत्सृष्टि करता है, तप से

ही विष्णु संसार का पालन करते हैं और तप से ही रुद्र इस चराचर जगत् का संहार करते हैं—

जनि आचरजु करहु मन माहीं। सुत तप तें दुर्लभ कछु नाहीं॥
तप बल ते जग सृजै विधाता। तप बल विष्नु महा परित्राता॥
तप बल संभु करहिं संहारा। तपतें अगम न कछु संसारा॥
—मानस, बा० का०, पृ० ८३

अत्रि का स्पष्ट मत है :—

जप जोग धर्म समूह ते नर भगति अनुपम पावई।
रघुबीर चरित पुनीत निसि दिन दास तुलसी गावई॥
—मानस, अरण्य का०, पृ० ३२४

वस्तुतः कुयोगी पुरुष से भक्ति के बाधक-तत्वों पर विजय भी नहीं पाई जा सकती :—

पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी। मोह विटप नहिं सकहिं उपारी॥
—मानस, लं० का०, पृ० ४२३

फिर भी यह सही ही है कि जप, जोग, दान, तप, मख, व्रत, नियम आदि का पालन करनेवाले भगवान् की उस कृपा को नहीं ही पा सकते जिन्हें निष्काम प्रेम करने वाले भक्त पाते हैं :—

उमा जोग जप दान तप नाना मख व्रत नेम।
राम कृपा नहिं करहिं तसि जसि निष्केवल प्रेम॥
—मानस, लं० का०, पृ० ४८२

नवधा भक्ति और तुलसीदास—रामानन्द जी के मत से भगवान् की कथा का श्रवण, उनके यश का कीर्तन, उनके नाम का संस्मरण, उनके चरणों की सेवा, उनका समर्चन, वन्दन, उनकी दासता, सख्यभाव से उनके प्रति प्रेम तथा उनके चरणों में आत्मार्पण आदि भक्ति के ९ प्रधान भेद हैं। भागवत्-कार ने भी नवधा भक्ति को ही प्रधान माना है। रामानन्द जी के उपरान्त उनके सम्प्रदाय में दशधा भक्ति का विशेष प्रचार हो गया। नाभा जी ने 'भक्ति दशधा के आगर' कह कर साम्प्रदायिक भक्तों की प्रशंसा भी की है। वस्तुतः इस नवधा भक्ति का प्रचार मध्य-युग में उत्तर-भारत के सभी भक्ति-सम्प्रदायों में सामान्य रूप से हो गया था और तुलसीदास का इससे प्रभावित

होना नितान्त ही स्वाभाविक था। यह अवश्य है कि तुलसीदास ने उपर्युक्त नवधा भक्ति की चर्चा करने के साथ ही अपने ढंग पर भी नव नये विभाग किए हैं। उनके राम ने शबरी से इस नवधा-भक्ति की चर्चा इस प्रकार की है :—

१—प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।
२—दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥
३—गुरुपद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
४—चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान॥
५—मन्त्र जाप मम दृढ़ विस्वासा। पंचम भजनु सो वेद प्रकासा॥
६—छठ दम सील बिरति बहु कर्मा। निरतनिरन्तर सज्जन धर्मा॥
७—सातव सम मोहिं मय जगदेखा। मोतें अधिक संत करि लेखा।
८—आठव जथा लाभ सन्तोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा।
९—नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हिअँ हरष न दीना॥

—: मानस, अरण्य काण्ड, पृ० ३४५-४६

इसी प्रकार बाल्मीकि जी ने भी उन स्थलों का निर्देश किया है, जहाँ भगवान् राम नित्य निवास करते हैं। दूसरे शब्दों में भगवान् राम का प्रिय होने के लिए जिन गुणों को भक्तों को समधिगत कर लेना चाहिए, उन्हीं का निर्देश वाल्मीकि जी ने किया है। ये गुण निम्नलिखित हैं :—१—भगवत् कथा का निरन्तर श्रवण २—भगवद्रूप-दर्शन की अभिलाषा ३—भगवद्गुण-कीर्तन ४—भगवत्प्रसाद से प्रेम ५—भगवान् को निवेदित करके भोजन करना ६—भगवान् के प्रसाद-स्वरूप पटभूषणादि का पहनना ७—देवता, ब्राह्मण और गुरु को देख कर नमित हो जाना ८—राम की पूजा करना ९—केवल मात्र राम का भरोसा करना, अन्य का नहीं १०—रामतीर्थ का दर्शन करना ११—मंत्र राज का जाप १२—तर्पण होमादि करना १३—विप्र भोज करा कर दान देना १४—भगवान् से भी अधिक गुरुओं को महत्व देना। १५—सभी कर्मों के फल-स्वरूप राम चरणों में प्रेम की याचना करना १६—काम, क्रोध, लोभ, मद, मान, मोह, क्षोभ, राग, द्रोह, कपट, दम्भ, माया, आदि का परित्याग करना १७—सबका प्रिय तथा सबका हितकारी होना १८—सुख-दुख, प्रशंसा-निन्दा में समान रहना १९—सत्यभाषण करना २०—जागते-सोते भगवान् राम की शरण में रहना २१—राम को छोड़ कर अन्य के पास न जाना २२—परनारी को माता तुल्य मानना २३—धन की वांछा न करना २४—दूसरे की सम्पत्ति को देख कर प्रसन्न होना और दूसरे के दुख को देख कर दुखी होना

२५—राम को प्राणों से भी अधिक प्रिय मानना। २६—राम को स्वामी, सखा, पिता, गुरु, माता सभी कुछ मानना। २७—अवगुणों को छोड़ कर गुण का ग्रहण करना २८—विप्र और गाय के लिए कष्ट सहना २९—नीति के अनुसार जीवन बिताना ३०—राम के गुणों और अपने दोषों को जानना-समझना ३१—राम-भक्तों से प्रेम करना ३२—जाति-पाँति, धन-धर्म, बड़प्पन, प्रिय परिवार, सदन आदि का परित्याग करके राम में नित्य लीन रहना ३३—स्वर्ग-नरक तथा अपवर्ग को समान समझना ३४—विश्व भर में भगवान् राम का दर्शन करना ३५—मन, वचन और कर्म से राम की सेवा करना ३६—भगवान् के स्नेह मात्र को छोड़ कर किसी अन्य वस्तु की याचना न करना।

भक्ति के उपर्युक्त आवश्यक अंगों पर बल देते हुए भी तुलसीदास नवधा भक्ति-पद्धति को बहुत अधिक महत्व देते हैं। कहना तो यह चाहिए कि नवधा भक्ति-पद्धति को ही मूलाधार मान कर यह विशाल भवन खड़ा किया गया है। केवल कुछ उदाहरण देकर ही इस कथन को पुष्ट करने का यहाँ प्रयास किया जा रहा है—

कथा-श्रवण :—कलिमल समन दमन दुख राम सुजस सुख मूल।
सादर सुन्हहिं जे तिन्ह पर राम रहहिं अनुकूल॥

—मानस, अ० का०, पृष्ठ ३२४

भव भेषज रघुनाथ जस सुनहिं जे नर अरु नारि।
तिन्ह कर सकल मनोरथ, सिद्ध करहिं त्रिसिरारि।

—मानस, कि० का०, पृ० ३७०

नीलोत्पल तन स्याम, काम कोटि सोभा अधिक।
सुनिय तासु गुन ग्राम, जासु नाम अघ खग बधिक॥

—मानस, कि० का०, पृ० ३७०

कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती। सुनि हरिचरित न जो हरषाती

—मानस, अ० का० पृ० ६१

कीर्तन—जो नहिं करै रामगुनगाना। जीह सो दादुर जीह समाना॥

—मानस, बा० का०, पृ० ६१

जसु तुम्हार मानस विमल हंसिनि जीहा जासु।
मुकताहल गुनगन चुनइ, रामबसहु मन तासु॥

—मानस, अ० का०, पृ० २३३

संस्मरण—रामनाम मनि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहरहुँ जो चाहसि उजियार॥

—मानस, बा० का०, पृ० १४-१५

नाम जीह जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंचि प्रपंच वियोगी।
ब्रह्म सुखहिं अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा॥
जानी चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीह जपि जानहिं तेऊ॥
साधक नाम जपहिं लय लाए। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाए॥
जपहिं नामु जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥

—मानस, बा० का०, पृ० १५

पदश्रिति—सब करि मांगहिं एक फलु, राम चरन रति होउ।
तिन्हके मन मन्दिर बसहु, सिय रघुनन्दन दोउ॥

—मानस, अ० का०, पृ २३४

को रघुवीर सरिस संसारा। सील सनेहु निबाहन हारा॥
जेहि जेहि जोनि करम बस भ्रमहीं। तहंतहं ईसु देउ येह हमहीं॥
सेवक हम स्वामी सिय नाहू। होउ नात येहु ओर निबाहू॥

—मानस, अ० का०, पृ० १८६

अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चहहुँ निर्वान।
जनम जनम रति रामपद यह बरदान न आन॥

—मानस, अ० का०, पृ० २६६

समर्चन :—ऐसी आरती राम रघुवीर की करहि मन।
• हरन दुख-द्वन्द गोविन्द आनन्द घन।
अचर, चर, रूपहरि सर्वगत सर्वदा बसत, इति वासनाधूपदीजै।
दीपनिजबोध, गतक्रोधमदमोहतम प्रौढ़ अभिमान चितवृत्ति छीजै।
भाव अतिसय विसद प्रवर नैवेद्य सुभ श्रीरमन परम संतोषकारी।
प्रेम ताम्बूल, गत सूलसंसय सकल, विपुल भववासना बीजहारी।
असुभ सुभ कर्म घृत, कर्न दस वर्त्तिका, त्याग पावक सतोगुन प्रकासं।
भगति वैराग्य, विज्ञान, दीपावली, अर्पि नीराजनं जगनिवासं॥
विमल हृदि भवनकृत सांति, पर्यंक सुभसयन, विश्राम श्रीराम राया।
छमा करुना प्रमुख तत्र परिचारिका, यत्र हरि तत्र नहिं भेदमाया।

येहि आरती निरत सनकादि श्रुति सेष सिव देव रिषिअखिल मुनि
तत्व दरसी।
करै सोइ तरै परिहरै कामादि खल, बदत इति अमल मति दास
तुलसी।

—विनय, पद ४७

अथवा—

हरति सब आरती आरती राम की।

—विनय पद ४८

कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदयँ नहिं दूजा॥

—मानस, अ० का०, पृ० २२३

वन्दन—पुनि मन वचन करम रघुनायक। चरन कमल बन्दौं सब लायक॥

—मानस, बा० का०, पृ० १३

गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।
बन्दौं सीताराम पद जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न॥
बन्दौं राम नाम रघुवर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥

—वही, पृ० १३

दास्य—करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहिके उर डेरा॥

—वाल्मीकि, अ० का०, पृ० २३४

सख्य—तुलसी ने सखा भाव की भक्ति में अपनी कोई आस्था नहीं प्रकट की है। उन्होंने हनुमान्, विभीषण, सुग्रीवादि रामसखाओं का वर्णन किया है, परन्तु साथ ही यह भी कह दिया है कि वे सब दास्य भाव से ही भगवान् राम की उपासना करते थे। 'विनयपत्रिका' में केवल एक स्थान पर विप्र, व्याध और गणिका प्रसंग में तुलसी ने यह लिखने का साहस किया है। 'का कछु रही सगाई ?' अन्यत्र कहीं भी उन्होंने इतना साहस नहीं दिखाया है।

आत्मनिवेदन—आत्म-निवेदन से तो सारी विनयपत्रिका भरी पड़ी है। केवल दो एक उदाहरणमात्र देना यहाँ पर्याप्त होगा—

यह विनती रघुनाथ गुसाईं।
और आस विस्वास भरोसौ हरौ जिय की जड़ताई।
चहौं न सुगति, सुमति, संतति कछु रिधिसिधि, विपुल बड़ाई।
हेतु रहित अनुराग नाथ पद बढ़ौ अनुदिन अधिकाई॥
कुटिल करम लै जाय मोहिं जहं-जहं अपनी बरिआई।
तहं तहं जनि छिन छोह छाँड़िए कमठ अण्ड की नाईं॥

है जग में जहं लगि या तनु की प्रीति प्रतीति सगाई।
ते सब तुलसिदास प्रभु सों मेरी होहि सिमिटि एकठाई॥

—विनय, पद १०३

रामराय विनु रावरे मेरे को हितु सांचो।

... ...

विनय पत्रिका दीन की बापु आपुही बांचो।
हिये हेरि तुलसीलिखी, सो सुभाय सही
करि बहुरि पूंछियहि पांचो॥

—विनय, पद २७७

प्रपत्ति और तुलसीदास—प्रायः समस्त वैष्णव सम्प्रदायों में प्रपत्ति अथवा शरणागति को बहुत अधिक महत्व दिया गया है। वस्तुतः भक्ति का मूलाधार ही प्रपत्ति है। पीछे कहा जा चुका है, रामानन्द-सम्प्रदाय में प्रपत्ति को भक्ति का एक आवश्यक अंग माना गया है। तुलसीदास भी प्रपत्तिमार्ग से बहुत ही अधिक प्रभावित जान पड़ते हैं। उनका दृढ़ विश्वास है कि बिना भगवान् की कृपा के मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मद और माया से कभी भी मुक्त नहीं हो सकता। जिस पर वह नट अनुकूल हो जाय, वह इन्द्रजाल में कभी भूल नहीं सकता है—

क्रोध मनोज लोभ मद माया। छूटहिं सकल राम की दाया॥
सो नर इन्द्र जाल नहिं भूला। जापर होइ सो नट अनुकूला॥

—मानस, अ० का०, पृ० ३४८

वस्तुतः न तो कोई ज्ञानी है, और न कोई मूढ़। भगवान् राम की जब जैसी इच्छा होती है उस क्षण वह वैसा ही हो जाता है—

बोले विहंसि महेस तब, ज्ञानी मूढ़ न कोइ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब, सो तस तेहि छन होइ॥

—मानस, बालकाण्ड, पृ० ६६

अतः जो सच्चे भक्त हैं वे न तो अर्थ की कामना करते हैं, न धर्म की, न तो उन्हें भौतिक वासनाओं की पूर्ति ही अभीष्ठ है और न तो वे मुक्ति की ही अभिलाषा करते हैं। भरत कहते हैं—

अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चहउं निर्वान।
जनम जनम रति राम पद, यह वरदान न आन॥

—मानस, अ० का०, पृ० २६६

किन्तु, भगवान् की इस निर्हेतुक कृपा को प्राप्त करना सरल नहीं है। आचार्यों ने इसी कारण शरणागति के ६ भेद किए हैं: अनुकूलता का संकल्प, प्रतिकूलता का परित्याग, रक्षण-विषयक विश्वास, गोप्तृत्व वरण, आत्मनिक्षेप और कार्पण्य। तुलसीदास की रचनाओं में इन सभी प्रकारों की शरणागति के उदाहरण पर्याप्त संख्या में मिल जाते हैं। नीचे कुछ उदाहरण मात्र दिए जा रहे हैं। पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने स्वसंपादित कवितावली की भूमिका में 'कवितावली' से इस प्रकार के जो उदाहरण दिए हैं, मैं उन्हें भी उद्धृत किए दे रहा हूँ—

अनुकूलता का संकल्प—

सुनु कान दिए, नित नेम लिए, रघुनाथहिं के गुन गाथहिं रे।
सुख-मंदिर सुन्दर रूपसदा उरआनि धरे धनु भाथहिं रे॥
रसना निसि वासर सादर सो तुलसी जपु जानकीनाथहिं रे।
करु संग सुसील सुसंतन सो तजि कूर कुपंथ कुसाथहिं रे॥

—कलितावली, उ० का०, छ० २६

चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं। करत मनोरथ बहु मन माहीं॥
देखिहौं जाइ चरन जलजाता। अरुन मृदुल सेवक सुख दाता॥
जे पद परसि तरी रिषिनारी। दण्डक कानन पावन कारी॥
जे पद ज्ञनक सुता उर लाए। कपट कुरंग संग धर धाए॥
हर उर सरसरोज पद जोई। अहौ भाग्य मैं देखिहौं तेई॥
जिन्ह पायन्हके पादुकन्हिं भरत रहे मन लाइ।
ते पद आज बिलोकिहौं इन नयनन्ह अब जाइ॥

—विभीषण, मानस, सु० का०, पृ० ३६२

सुखभवन, संसयसमन दवनि विषाद रघुपति गुन गना॥
तजि सकल आस भरोस गावहि सुनहि संतत सठमना॥

—मानस, सु० का०, पृ० ४०१

प्रतिकूलता का परित्याग

जाकें प्रिय न राम वैदेही।
तेहि छाँड़िऐ कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही॥
तजो पिता प्रहलाद, विभीषन बंधु, भरत महतारी।
हरि हित गुरु बलि पति ब्रज बनितन्हि सो भयो मुद मंगलकारी॥
नाते नेह राम को मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजनु कहा आंखि जेहि फूटै बहु तक कहौं कहाँ लौं॥

तुलसी सो सब भाँति परमहित पुँजी प्रान ते प्यारो।
जाते होय सनेह राम ते, इतनोइ मतो हमारो॥

—विनय, पद १

काम से रूप प्रताप दिनेस से सोम से सील गनेस से माने।
हरिचन्द से साँचे बड़े विधि से, मघवा से महीप, विषै सुख साने॥
सुक से मुनि, सारद से बकता, चिरजीवन लोमस से अधिकाने।
ऐसे भये यौं कहा तुलसी जु पै राजिवलोचन राम न जाने॥

—कवितावली, उ० का०, सवैया ४३

पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते। सब मानिअहिं राम के नाते॥
पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुपति भगत जासु सुत होई॥
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। रामविमुख सुत तें हितहानी॥

—मानस, अ० का०, पृ० २१०

जरउ सो सम्पति सदन सुख, सुहृदु मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो रामपद करइ न सहज सहाइ॥

—मानस, अ० का०, पृ० २१८

रक्षण विषयक विश्वास

जोग न विराग जप जाग तप त्याग व्रत
तीरथ न धर्म जानौं वेद विधि किमि है।
तुलसी सो पोच न भयो है, नहिं ह्वै है कहूँ
सोचैं सब याके अघ कैसे प्रभु छमिहै॥
मेरे तो न डरु रघुबीर सुनौ सांची कहौं
खल अनखैहैं तुम्हैं सज्जन न गमिहै।
भले सुकृती के संग मोहिं तुला तौलिये तो,
नाम के प्रसाद भार मेरी ओर नमिहै॥

—कवितावली, उत्तरकाण्ड, पद ७१

गोप्तृत्ववरण

नाहिन भजिबे जोग वियो।
श्री रघुबीर समान आन को पूरन कृपा हियो॥
कहहु कौन सुर सिलातारि पुनि केवट मीत कियो।
कौने गीध अधम को पितु ज्यों निज कर पिण्ड दियो।

कौन देव सबरी के फल करि भोजन सलिल पियो।
बालि-त्रास-बारिधि बूड़त कपि केहि गहि बांह लियो॥
भजन प्रभाउ विभीषन भाष्यौ सुनि कपि कटक जियो।
तुलसिदास को प्रभु कोसलपति सब प्रकार बरियो॥

—गीतावली।

सेवा अनुरूप फल देत भूप कूप ज्यों,
बिहूने गुन पथिक पियासे जात पथ के।
लेखे जोखे चोखे चित तुलसी स्वारथ-हित,
नीके देखे देवता देवइया घने गथ के॥
गीध मानो गुरु, कपि भालु मानो मीत कै,
पुनीत गीत साके सब साहेब समत्थ के।
और भूप परखि सुलाखि तौलि ताइ लेत
लसम के खसम तुही पै दसरत्थ के॥

—कवितावली, उत्तर का०, छंद २४

आत्म निक्षेप

जे मद मार विकार भरे ते अचार विचार समीप न जाहीं।
है अभिमान तऊ मन में जन भाखिहै दूसरे दीन न पाहीं॥
जौ कछु बात बनाइ कहौं, तुलसी तुम तें तुम हौ उरमाहीं।
जानकी जीवनजानत हौ, हम हैं तुम्हरे, तुम मैं सक नाहीं॥

—कवितावली, उ०का०, ६४

मानस में विभीषण की शरणागति भी इसी कोटि की है।

कार्पण्य

तू दयालु, दीन हौं, तु दानि, हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुन्ज-हारी॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो।
मो समान आरत नहिं, आरति हर तोसो॥
ब्रह्म तू हौं जीव, तू ठाकुर हौं चेरो।
तात, मात, गुरु, सखा तू सब विधि हित मेरो॥
तोहि मोहिं नाते अनेक मानिये जो भावै।
ज्यों ज्यों तुलसी कृपाल ? चरन सरन पावै॥

—विनय, पद ७६

इसी प्रकार विनयपत्रिका में अनेक पद तुलसीदास ने अपनी दीनता के सम्बन्ध में लिखा है। कवितावली में से एक अन्य उदाहरण—

पाइ सुदेह विमोह नदी तरनी न लही करनी न कछू की।
रामकथा बरनी न बनाइ, सुनी न कथा प्रह्लाद न ध्रू की॥
अब जोर जरा जरि गात गयो मन मानि गलानि कुबानि न मूकी।
नीके कै ठीक दई तुलसी अवलम्ब बड़ी उर आखर दू की॥
—कवितावली, उत्तर काण्ड, पद ८८

कायिकी-वाचिकी, मानसी प्रपत्ति—रामानन्द-सम्प्रदाय के विद्वानों द्वारा जयंत की शरणागति कायिकी है, विभीषण की प्रपत्ति पहले वाचिकी ही मानी गई है। गजेन्द्र, कालिय नाग आदि वैखरी वाणी के अभाव में मानसी प्रपत्ति ही कर सके। तुलसीदास ने इस प्रकार का कोई स्पष्ट भेद नहीं किया है।

सात्विकी, तामसी, राजसी प्रपत्ति—रावण की प्रपत्ति तामसी, सुग्रीव विभीषणादि की राजसी और हनुमदादि की सात्विकी प्रपत्ति मानी जाती है। रावण शंकर की आराधना केवल अपने भौतिक उपकरणों की बृद्धि के निमित्त ही करता था। सुग्रीव-विभीषण भोग की कामना से ही श्रीराम के शरणागत हुए थे और हनुमदादि समस्त कामनाविहीन होकर भगवान् की सेवा को परम परमार्थ समझते थे।

दृप्त और आर्त्त प्रपन्न—भरत को दृप्त प्रपन्न माना गया है—

अब गुसाई मोहिं देहु रजाई। सेवहुँ अवध अवधि भरि जाई॥

लक्ष्मण को आर्त्त प्रपन्न कहा गया है—

राम विलोकि बन्धु कर जोरे। देह गेह सब सन तृन तोरे॥

अथवा—

कृपा सिन्धु अवलोकि बन्धु तन प्रान कृपान वीर सी छोरे॥

प्रपत्ति में पुरुषकारत्व—सीता जी ही पुरुषकाररूपा हैं। तुलसीदास जी भी विनयपत्रिका में सीता जी से प्रार्थना करते हुए कहा है—

कबहुंक अम्ब औसर पाइ।
मेरियौ सुधि द्यायबी कछु करुन-कथा चलाइ॥
दीन सब अंग हीन खीन मलीन अघी अघाइ।
नामु लै भरै उदरु एक प्रभु-दासि-दासु कहाइ॥
बूझिहैं 'सो है कौन ?' कहिबो नाम दसा जनाइ।
सुनत राम कृपालु कें मेरी बिगरियो बनिजाइ॥

इसी प्रकार विनयपत्रिका में अनेक पद तुलसीदास ने अपनी दीनता के सम्बन्ध में लिखा है। कवितावली में से एक अन्य उदाहरण—

पाइ सुदेह विमोह नदी तरनी न लही करनी न कछू की।
रामकथा बरनी न बनाइ, सुनी न कथा प्रहलाद न धू की॥
अब जोर जरा जरि गात गयो मन मानि गलानि कुबानि न मूकी।
नीके कै ठीक दई तुलसी अवलम्ब बड़ी उर आखर दू की॥

—कवितावली, उत्तर काण्ड, पद ८८

कायिकी-वाचिकी, मानसी प्रपत्ति—रामानन्द-सम्प्रदाय के विद्वानों द्वारा जयंत की शरणागति कायिकी है, विभीषण की प्रपत्ति पहले वाचिकी ही मानी गई है। गजेन्द्र, कालिय नाग आदि वैखरी वाणी के अभाव में मानसी प्रपत्ति ही कर सके। तुलसीदास ने इस प्रकार का कोई स्पष्ट भेद नहीं किया है।

सात्विकी, तामसी, राजसी प्रपत्ति—रावण की प्रपत्ति तामसी, सुग्रीव विभीषणादि की राजसी और हनुमदादि की सात्विकी प्रपत्ति मानी जाती है। रावण शंकर की आराधना केवल अपने भौतिक उपकरणों की वृद्धि के निमित्त ही करता था। सुग्रीव-विभीषण भोग की कामना से ही श्रीराम के शरणागत हुए थे और हनुमदादि समस्त कामनाविहीन होकर भगवान् की सेवा को परम परमार्थ समझते थे।

दृप्त और आर्त्त प्रपन्न—भरत को दृप्त प्रपन्न माना गया है—

अब गुसाइं मोहिं देहु रजाई। सेवहुँ अवध अवधि भरि जाई॥

लक्ष्मण को आर्त्त प्रपन्न कहा गया है—

राम विलोकि बन्धु कर जोरे। देह गेह सब सन तृन तोरे॥

अथवा—

कृपा सिन्धु अवलोकि बन्धु तन प्रान कृपान वीर सी छोरे॥

प्रपत्ति में पुरुषकारत्व—सीता जी ही पुरुषकाररूपा हैं। तुलसीदास जी ने भी विनयपत्रिका में सीता जी से प्रार्थना करते हुए कहा है—

कबहुंक अम्ब औसर पाइ।
मेरियौ सुधि द्यायबी कछु करुन-कथा चलाइ॥
दीन सब अंग हीन खीन मलीन अघी अघाइ।
नामु लै भरै उदरु एक प्रभु-दासि-दासु कहाइ॥
बूझिहैं 'सो है कौन?' कहिबो नाम दसा जनाइ।
सुनत राम कृपालु कें मेरी बिगरियो बनिजाइ॥

जानकी जग जननि जन की कियें बचन सहाइ।
तरै तुलसीदास भव तव-नाथ गुन गन गाइ॥

—विनय, पद ४१

जनक सुता जग जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुनानिधान की।
ताके जुग पद कमलमनावौं। जासु कृपा निर्मल मति पावौं॥

—मानस, बा० का०, पृ० १३

प्रपत्ति में विषय नियुक्ति—भगवान् के पर, व्यूह, विभव और अन्तर्यामी स्वरूप का साक्षात्कार सभी लोगों को सब काल में सुलभ नहीं होता, अतः अर्चावतार की सेवा पर वैष्णवों ने अधिक बल दिया है। रामानन्द-सम्प्रदाय में अर्चावतार की षोडशोपचार से सेवा करने का नियम प्रचलित है। तुलसीदास ने भी अनेक स्थलों पर अर्चावतार के प्रति अपनी श्रद्धा को व्यक्त किया है। विनयपत्रिका में विन्दुमाधव की छवि का उन्होंने बड़े ही विस्तार से वर्णन किया है :—

इहै परम फल परम बड़ाई।
नख सिख रुचिर विन्दु माधव छवि निरखहि नयन अघाई॥

—विनय, पद ६२

अथवा—

मन इतनोइ है या तनु को परम फलु॥
नख सिख सुभग विन्दु माधव छवि तजि सुभाउ अवलोकि एक पलु॥

—: विनय, पद ६३

इसी प्रकार रामेश्वर की स्थापना करते समय स्वयं राम ने कहा है :—

जो रामेश्वर दरसनु करिहहिं। ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं॥
जो गंगा जल आनि चढ़ाइहि। सो सायुज्य मुक्ति नर पाइहि॥
होइ अकाम जो छलु तजि सेइहि। भगति मोर तेहि संकरु देइहि॥
मम कृत सेतु जो दरसन करिही। सो बिन स्रम भवसागर तरिही॥

—मानस, लं० का०, पृ० ४०४

इस कथन से स्पष्ट है तुलसीदास अर्चावतार अथवा भगवद्विग्रह की पूजा, सेवा, दर्शन आदि में पूरी आस्था रखते थे। तीर्थयात्राओं में तो उनका विश्वास ही था—'चरन राम तीरथ चलि जाहीं।' कह कर उन्होने इसी प्रेम को व्यक्त किया है।

न्यास—रामानन्द-सम्प्रदाय में न्यास को भक्ति का एक आवश्यक अंग माना गया है। विषयों में आसक्ति ही जीवन की समस्त अव्यवस्था का मूल है। भगवद्भक्ति के लिए मन का स्थिर हो जाना अत्यन्तावश्यक है। यह मन तभी स्थिर होता है, जब इन्द्रियों को उनके तत्तत् वाह्य व्यापारों से विरक्त कर दिया जाय। किन्तु, मन को वाह्य विषयों से खींचकर एकाग्र कर लेना सहज नहीं है। इसी कारण प्रत्येक युग में भक्तों ने अपने भगवान् से मन को विषयों से निवृत्त कर देने की प्रार्थना की है। तुलसीदास के पूर्व कबीर तथा सूर आदि ने भी इस संबंध में अनेक पद लिखे हैं।

तुलसीदास की विनयपत्रिका में ऐसे अनेक पद हैं जिनमें कवि ने अपने मूढ़ मन को विषयों से हट कर भगवच्चरणों में लग जाने के लिए समझाया है :—

कबहूँ मन विश्राम न मान्यो।
निसिदिन भ्रमत विसारि सहज सुख जहं तहं इन्द्रिन्ह तान्यो॥
जदपि विषय संग सह्यो दुसह दुख विषम जाल अरुझान्यो।
तदपि न तजत मूढ़ ममतावस जानत हूँ नहिं जान्यो॥
जनम अनेक किये नाना विधि करम कीच चित सान्यो।
होइ न विमलु विवेक नीर बिनु, वेद पुरान बखान्यो॥
निज हित नाथ पिता गुरु हरि सों, हरषि हृदय नहिंआन्यो।
तुलसिदास कब तृषा जाइ ? सर खनतहिं जनम सिरान्यो॥

—विनय, पद ८८

अथवा—

सुनु मन मूढ़ सिखावन मेरो।
हरिपद विमुख काहू न लह्यो सुख सठ यह समुझि सबेरो॥
... ...
मिटै न विपति भजे बिनु रघुपति स्रुति सन्देह निबेरो।
तुलसिदास सब आस छाँड़ि करि होहि राम को चेरो॥

—विनय, पद ८७

जब तक यह मन विषयों से हट नहीं जाता, तब तक भगवद्भक्ति का अधिकारी होना अत्यन्त ही कठिन है। वस्तुतः राम का निवास उन्हीं व्यक्तियों के हृदय में होता है, जो काम-क्रोध-लोभ-मोह-राग-द्रोह-कपट-दम्भ और माया आदि से विरक्त हैं, राम का निवास उन्हीं के हृदय में होता है :—

काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा।
जिन्हके कपट दम्भ नहिं माया। तिन्हके हृदय बसहु रघुराया।
—मानस, अ० का०, पृ० २३४

इस मन को वश में करने का सबसे सुन्दर साधन माना गया है, *ध्यान*। रामानन्द-सम्प्रदाय में भगवान् के निरन्तर तैलधारावत् अविच्छिन्न चिन्तन को ध्यान कहा गया है। तुलसीदास भगवान् के सगुण रूप के उपासक थे, इसीलिए वे अपने आराध्य से प्रार्थना करते हैं—

अनुज जानकी सहित प्रभु चापबान धर राम।
मम हिय गगन इन्दु इव बसहु सदा येह काम॥
—मानस, अ० का०, पृ० ३२८

अथवा—

जदपि बिरज व्यापक अविनासी। सबकें हृदय निरन्तर बासी॥
तदपि अनुज श्री सहित खरारी। बसहु मनसि मम कानन चारी॥
—मानस, अ० का०, पृ ३२७

फिर भी तुलसीदास कलियुग के लिए ध्यान को बहुत उपयुक्त नहीं समझते। सतयुग में ध्यान, त्रेता में यज्ञ और द्वापर में पूजा भगवान् को तुष्ट करने के प्रमुख साधन थे, कलियुग में तो केवल नाम स्मरण ही प्रधान है—

ध्यान प्रथम युग मख विधि दूजें। द्वापर परितोषत प्रभु पूजें॥
कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना॥
नाम काम तरु काल कराला। सुमिरत समन सकल जग जाला॥
राम नाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता॥
—मानस, बालकाण्ड, पृ० १७

ध्येय भगवान्—रामानन्द-सम्प्रदाय में भगवान् राम को ही परमोपास्य माना गया है। वे अपूर्व शक्ति, लावण्य, उदारता और वत्सलता आदि गुणों के अगार हैं, वे मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। तुलसी के राम भी शक्ति, लावण्य, उदारता आदि शुभ गुणों की राशि हैं। भगवान् के सगुण रूप में ही तुलसीदास की आस्था थी—

कोउ ब्रह्म निर्गुण ध्याव। अव्यक्त जेहि श्रुति गाव॥
मोहिं भाव कोसलभूप। श्री राम सगुन सरूप॥
—मानस, लं० का०, पृ० ४६७

यों तो तुलसीदास ने अपने आराध्य की अद्भुत शक्ति, लावण्य, उदारता आदि गुणों का सर्वत्र ही गान किया है—उनकी समस्त रचनाएँ अपने आराध्य के दिव्यकल्याणगुणों के कीर्तन से ही भरी पड़ी हैं—फिर भी यहाँ कुछ उदाहरण मात्र देकर तुलसी के मत को स्पष्ट कर देना आवश्यक है—

राम में अद्भुत शक्ति—

विधि हरिहरु ससि रवि दिसिपाला। माया जीव करम कुलि काला॥
अहिप महिप जहं लगि प्रभुताई। जोग सिद्धि निगमागम गाई॥
करि विचार जियं देखहु नीकें। रामरजाइ सीस सबही कें॥

—मानस, अ० का०, पृ० २८२

अथवा—

अतिबल मधु कैटभ जेहि मारे। महाबीर दिति सुत संघारे॥
जेहि बलिबांधि सहस भुजमारा। सोइ अवतरेउ हरन महि भारा॥

—मंदोदरी, लं० कां०, पृ० ४०६

लावण्य—

सुर नर असुर नाग मुनिमाहीं। सोभा असि कहुं सुनियत नाहीं॥
विष्नु चारि भुज, विधिमुखचारी। विकट भेष मुखपंच पुरारी॥
अपरदेउ अस कोउ न आही। येह छबि सखी पटतरिअ जाही॥

वय किशोर सुषमा सदन स्याम गौर सुख धाम।
अंग अंग पर वारिअहि कोटि कोटि सत काम॥

—मानस, बालकाण्ड, पृ० ११६

उदारता—

ऐसो को उदार जगमाहीं ?
विनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं॥
जो गति जोग विराग जतन करि नहिं पावत मुनि ज्ञानी।
गो गति दई गीध सबरी कहं प्रभु न अधिक करि जानी॥
जो सम्पति दससीस अरपि करि रावन सिव पहं लीन्हीं।
सोइ सम्पदा विभीषन कहं अति सकुच सहित हरिदीन्हीं॥
तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो।
तौ भजु राम, काम सब पूरन करहिं कृपानिधि तेरो॥

—विनय, पद १६२

वत्सलता—

संभु विरंचि विष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस ते नाना॥
ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीला तनु धरई॥

—मानस, बा० का०, पृ० ७५

देव! दूसरो कौन दीन को दयालु?
सील-निधान सुजान सिरोमनि, सरनागत प्रिय प्रनतपाल॥
को सर्वज्ञ समर्थ सकल प्रभु सिव सनेह मानस मराल।
को साहिब किय मीत प्रीति वस खग निसिचर कपिभील भाल॥

—विनय, पद १५४

राम हैं मात पिता गुरु बन्धु औ संगी सखा सुत स्वामि सनेही॥

—कवितावली, उ० का०, पृ० ३६

तुलसीदास के राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, शक्ति, शील और सौंदर्य के वे अगार हैं। डाक्टर बलदेवप्रसाद मिश्र के शब्दों में 'वे आकृति, प्रकृति और परिस्थिति तीनों दृष्टियों से आदर्श पुरुष हैं।'

—तुलसीदर्शन, पृष्ठ १५६

भगवत्कृपा-प्राप्ति के साधन

कथा-श्रवण—जिस प्रकार रामानन्द-सम्प्रदाय में भगवत्कृपा-प्राप्ति का सबसे सरल साधन भगवान् की कथा का श्रवण माना गया है, उसी प्रकार तुलसीदास ने भी इस पर बहुत अधिक बल दिया है। बिना भगवत्कथा अनुराग के हरि की भक्ति दुर्लभ ही है। भगवत्कथा सकल मंगलों की खानि है—

मंगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।

—मानस, बा० का०, पृ० ८

बुध विश्राम सकल जन रंजनि। राम कथा कलि कलुष बिभंजनि॥

—मानस, बा० का०, पृ० २३

राम चरितचिन्तामनि चारू। सन्त सुमति तिय सुभग सिंगारू॥
जग मंगल गुन ग्राम राम के। दानि मुकुत धन धरम धाम के॥

... ...

राम कथा कै मिति जग नाहीं। अस प्रतीति तिन्हके मनमाहीं॥
नाना भांति राम अवतारा। रामायन सत कोटि अपारा॥

कलप भेद हरिचरित सुहाए। नाना भांति मुनीसन गाए ॥
करिअ न संसय अस उर आनी। सुनिय कथा सादर सनमानी ॥
—मानस, बा० का०, पृ० २१

मुनि दुर्लभ हरिभगति नर, पावहिं बिनहिं प्रयास।
जे यह कथा निरन्तर सुनहिं मानि विस्वास ॥
—मानस, उ० का०, पृ० ५६६

राम चरन रति जौ चहै, अथवा पद निर्वान।
भाव सहित सो यह कथा करौ स्रवन पुट पान ॥
—मानस, उ० का०, पृ० ५६७

स्वयं राम ने शबरी को नवधा-भक्ति का उपदेश देते हुए भी कहा है—

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ॥

लक्ष्मण से भी वे कहते हैं—

मम लीलारति अति मन मांहीं।

बाल्मीकि ने भी भगवान् राम के निकेत बतलाते हुए कहा है :—

सुनहु राम अब कहहुं निकेता। जहाँ बसहु सिय लखन समेता ॥
जिन्हके श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुगम सरिनाना ॥
भरहिं निरन्तर होहिं न पूरे। तिन्हके हिय तुम कहुँ गृह रूरे ॥

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि बिना भगवत्कथानुराग के अविरल भक्ति का पाना दुर्लभ है। भगवान् की कथा का कोई अन्त नहीं है क्योंकि उनके अनेक जन्म हैं, उन्होंने अनेक अवतार धारण किया था। उनके सगुण चरित मन-वाणी और बुद्धि से अतर्क्य होते हैं, इसीलिए आगे चल कर तुलसीदास ने कहा है कि बिना सत्संग के भगवान् की कथा में प्रवेश नहीं हो सकता। और जब तक हरिकथा में प्रवेश नहीं होता, मनुष्य का मोह कभी भी दूर नहीं हो सकता है।

गुण कथन—रामानन्द-सम्प्रदाय में भगवान् के दिव्य जन्म, द्विव्यकर्म, तथा दिव्य नाम का उच्चारण करना और भगवान् के सुयश का गान करना भक्ति का प्रमुख साधन माना गया है। तुलसीदास ने भी भगवान् के यशोगान को भक्ति का एक अत्यन्त आवश्यक अंग माना है—

स्याम सुरभि पय विसद अति गुनद करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य सिय राम जस गावहिं सुनहिं सुजान ॥
—मानस, बा० का०, पृ० ८

भगति हेतु विधि भवन बिहाई। सुमिरत सारद आवत धाई ॥
रामचरित सर बिनु अन्हवाए। सो स्रम जाइ न कोटि उपाएं ॥
कवि कोविद अस हृदयं विचारी। गावहिं हरि जस कलिमल हारी ॥
कीन्हें प्राकृत जन गुण गाना। सिर धुनि गिरा लागि पछिताना ॥

—मानस, बा० का०, पृ० ८

दिव्य धाम का वर्णन—तुलसीदास ने अवध के माहात्म्य की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है—

बन्दौं अवध पुरी अति पावनि। सरजू सरि कलि कलुष नसावनि।
प्रनवौं पुर नर नारि बहोरी। ममता जिन्ह पर प्रभुहिं न थोरी ॥

—मानस, बा० का०, पृ० १२

इसी प्रसंग में कवि ने कौसल्या, दशरथ, परिजन, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, हनुमान्, सुग्रीव, अंगद आदि का भी यशोगान किया है। चित्रकूट और मिथिला से भी तुलसीदास को कम अनुराग नहीं था, यद्यपि वे भगवान् के धाम नहीं हैं, किन्तु रामतीर्थ तो हैं ही।

भगवान् के दिव्य कर्मों का गान—

चरित राम के सगुन भवानी। तर्कि न जाहिं बुद्धि मन बानी ॥
अस विचारि जे तज्ञ विरागी। रामहिं भजहिं तर्क सब त्यागी ॥

—मानस, लं० का०, पृ० ४४७

वेद पुरान जासु जस गावा। राम विमुख काहुन सुख पावा।

हिरन्याक्ष भ्राता सहित मधु-कैटभ बलवान।
जेहि मारे सोइ अवतरेउ कृपा सिन्धु भगवान ॥
काल रूप खल बल दहन गुनागार घन बोध।
जेहि सेवहिं सिव कमल भव तेहिसन कवनविरोध ॥

—लं० कां०, पृ० ४३२

जस तुम्हार मानस विमल हंसिनि जीहा जासु।
मुकुताहल गुनगन चुनइ बसहु राम हियं तासु ॥

(बाल्मीकि), मानस, अ० कांड, पृ० २३३

राम ने भी इस गुणगान की प्रशंसा की है—

मम गुन गावत पुलक सरीरा। गद्गद् गिरा नयन बह नीरा ॥

मानस, पृ० ३३१

चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान।

—मानस, अ० का०, पृ० ३४५

नामस्मरण—रामानन्द-सम्प्रदाय में भगवन्नाम स्मरण को भक्ति का एक प्रमुख साधन माना गया है : भगवन्नाम महिमा के सम्बन्ध में मानसकार ने बालकांड के प्रारम्भ में ही बड़े विस्तार से अपना मत व्यक्त किया है। उनके मत से राम-नाम के दो वर्ण वर्षाऋतु रूपी राम-भक्ति के सावन और भादों दो महीने की भाँति हैं—

बरसा रितु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास।
रामनाम बर बरन जुग सावन भादौं मास॥

मानस, बा० कां०, पृ० १४

यह नाम भगवान् के स्वरूप का ज्ञान कराने वाला भी कहा गया है। नाम तत्व निरूपण करते समय रामानन्द जी ने बड़े विस्तार से 'राममंत्रराज' के एक एक पद की व्याख्या की है। उनके मत से भगवान्, जीव और जगत् का स्वरूप; भगवान् की प्राप्ति के उपाय और प्राप्ति विरोधी आदि अर्थपंचक का भी ज्ञान मंत्रार्थ के चिन्तन से भक्तों को उपलब्ध होता है। तुलसीदास ने यद्यपि इस प्रकार का स्वतन्त्र विवेचन नहीं प्रस्तुत किया है, फिर भी उन्होंने नाम महिमा-वर्णन प्रसंग में अर्थपंचक का भी ज्ञान करा दिया है। नीचे उनके मत का संक्षेप में परिचय कराया जा रहा है—

भगवान् का स्वरूप—

नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी॥
को बड़ छोट कहत अपराधू। सुनिगुनि भेद समुझिहहिं साधू॥
देखिअहि रूप नाम आधीना। रूप ज्ञान नहिं नाम विहीना॥
सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिशेषें॥
नामरूपगति अकथ कहानी। समुझत सुखद न परति बखानी॥
अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। *उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी॥*

... ...

एक दारु गत देखिय एकू। पावक सम जुग ब्रह्म विवेकू॥
उभय अगम जुग सुगम नामतें। कहेउं नाम बड़ ब्रह्म राम तें॥
व्यापकु एकु ब्रह्म अविनासी। सत चेतन घन आनँद रासी॥
अस प्रभु हृदयँ अछत अविकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी॥

नाम निरूपन नाम जतन तें। सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें ॥

मानस, बा० कां०, पृ० १४-१५

जीव स्वरूप

बरनत बरन प्रीति बिलगाती। *ब्रह्म जीव सम सहज संघाती ॥*

—मानस, बा० का०, पृ० १५

राम भगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा ॥
चहूँ चतुर कहुँ नाम अधारा। ज्ञानी प्रभुहिं विशेष पियारा ॥

—मानस, बा० का०, पृष्ठ १६

फिर भी, उन्होंने कहीं भी स्पष्ट रूप से यह नहीं कहा है कि नाम के तात्पर्यार्थ का चिन्तन करने से जीवस्वरूप का भी ज्ञान होता है। इसी प्रकार जगत् के स्वरूप का भी कोई संकेत नाम के तात्पर्यार्थ के माध्यम से उन्होंने नहीं किया है।

ब्रह्म की प्राप्ति का उपाय—नाम ब्रह्म-प्राप्ति का एक प्रमुख साधन माना गया है। अर्थपंचक की रचना करते समय रामानन्द-सम्प्रदाय के विद्वानों ने बतलाया है कि नाम के तात्पर्यार्थ को चिन्तन करने से भगवत्प्राप्ति के उपाय का बोध स्वतः हो जाता है, तुलसीदास ने यह तो कहीं भी स्पष्ट रूप से नहीं कहा है कि नाम के माध्यम से ही अन्य उपायों का भी ज्ञान हो जाता है, हाँ, नाम को उन्होंने कलियुग में भगवत्प्राप्ति का सर्वप्रमुख साधन अवश्य माना है :—

नाम जीह् जपि जागहिं जोगी। विरति विरंचि प्रपंच वियोगी ॥
ब्रह्म सुखहिं अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा ॥
ज्ञानी चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीह् जपि जागहिं तेऊ ॥
साधक नाम जपहिं लय लाए। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाए ॥
जपहिं नाम जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी ॥

—मानस, बा० का०, पृ० १५

कलि में तो केवल नाम ही आधार स्वरूप है—भक्तों का सर्वस्व है—

ध्यान प्रथम जुग मख पुनि दूजें। द्वापर परितोषत प्रभु पूजें ॥
कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जनमन मीना ॥
नाम काम तरु कालकराला। सुमिरत समन सकल जगजाला ॥
रामनाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोकु पितु माता ॥
नहिं कलि करम न भगतिविवेकू। रामनाम अवलम्बन एकू ॥

चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान।

—मानस, अ० का०, पृ० ३४५

नामस्मरण—रामानन्द-सम्प्रदाय में भगवन्नाम स्मरण को भक्ति का एक प्रमुख साधन माना गया है : भगवन्नाम महिमा के सम्बन्ध में मानसकार ने बालकांड के प्रारम्भ में ही बड़े विस्तार से अपना मत व्यक्त किया है। उनके मत से राम-नाम के दो वर्ण वर्षाऋतु रूपी राम-भक्ति के सावन और भांदो दो महीने की भाँति हैं—

बरसा रितु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास।
रामनाम बर बरन जुग सावन भादौं मास॥

मानस, बा० कां०, पृ० १४

यह नाम भगवान् के स्वरूप का ज्ञान कराने वाला भी कहा गया है। नाम तत्त्व निरूपण करते समय रामानन्द जी ने बड़े विस्तार से 'राममंत्रराज' के एक एक पद की व्याख्या की है। उनके मत से भगवान्, जीव और जगत् का स्वरूप; भगवान् की प्राप्ति के उपाय और प्राप्ति विरोधी आदि अर्थपंचक का भी ज्ञान मंत्रार्थ के चिन्तन से भक्तों को उपलब्ध होता है। तुलसीदास ने यद्यपि इस प्रकार का स्वतन्त्र विवेचन नहीं प्रस्तुत किया है, फिर भी उन्होंने नाम महिमा-वर्णन प्रसंग में अर्थपंचक का भी ज्ञान करा दिया है। नीचे उनके मत का संक्षेप में परिचय कराया जा रहा है—

भगवान् का स्वरूप—

नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी॥
को बड़ छोट कहत अपराधू। सुनिगुनि भेद समुझिहहिं साधू॥
देखिअहि रूप नाम आधीना। रूप ज्ञान नहिं नाम बिहीना॥
सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिशेषें॥
नामरूपगति अकथ कहानी। समुझत सुखद न परति बखानी॥
अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। *उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी*॥

... ...

एक दारु गत देखिय एकू। पावक सम जुग ब्रह्म विवेकू॥
उभय अगम जुग सुगम नामतें। कहेउं नाम बड़ ब्रह्म राम तें॥
व्यापकु एकु ब्रह्म अविनासी। सत चेतन घन आनँद रासी॥
अस प्रभु हृदयँ अछत अविकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी॥

नाम निरूपन नाम जतन तें। सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें ॥
मानस, बा० कां०, पृ० १४-१५

जीव स्वरूप

बरनत बरन प्रीति बिलगाती। *ब्रह्म जीव सम सहज संघाती* ॥
—मानस, बा० का०, पृ० १५

राम भगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा ॥
चहूँ चतुर कहुँ नाम अधारा। ज्ञानी प्रभुहिं विशेष पियारा ॥
—मानस, बा० का०, पृष्ठ १६

फिर भी, उन्होंने कहीं भी स्पष्ट रूप से यह नहीं कहा है कि नाम के तात्पर्यार्थ का चिन्तन करने से जीवस्वरूप का भी ज्ञान होता है। इसी प्रकार जगत् के स्वरूप का भी कोई संकेत नाम के तात्पर्यार्थ के माध्यम से उन्होंने नहीं किया है।

ब्रह्म की प्राप्ति का उपाय—नाम ब्रह्म-प्राप्ति का एक प्रमुख साधन माना गया है। अर्थपंचक की रचना करते समय रामानन्द-सम्प्रदाय के विद्वानों ने बतलाया है कि नाम के तात्पर्यार्थ को चिन्तन करने से भगवत्प्राप्ति के उपाय का बोध स्वतः हो जाता है, तुलसीदास ने यह तो कहीं भी स्पष्ट रूप से नहीं कहा है कि नाम के माध्यम से ही अन्य उपायों का भी ज्ञान हो जाता है, हाँ, नाम को उन्होंने कलियुग में भगवत्प्राप्ति का सर्वप्रमुख साधन अवश्य माना है :—

नाम जीह् जपि जागहिं जोगी। विरति विरंचि प्रपंच वियोगी ॥
ब्रह्म सुखहिं अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा ॥
ज्ञानी चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीह जपि जागहिं तेऊ ॥
साधक नाम जपहिं लय लाए। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाए ॥
जपहिं नाम जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी ॥
—मानस, बा० का०, पृ० १५

कलि में तो केवल नाम ही आधार स्वरूप है—भक्तों का सर्वस्व है—

ध्यान प्रथम जुग मख पुनि दूजें। द्वापर परितोषत प्रभु पूजें ॥
कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जनमन मीना ॥
नाम काम तरु कालकराला। सुमिरत समन सकल जगजाला ॥
रामनाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता ॥
नहिं कलि करम न भगतिविवेकू। रामनाम अवलम्बन एकू ॥

... ...

राम नाम नरकेहरी कनक कसिपु कलिकालु।
जापक जन प्रह्लाद जिमि पालिहिं दलिसुरसालु।

भाय कुभायं अनख आलसहू। नाम जपत मंगल दिसि दसहू॥

—मानस, बा० का०, पृ० १६-१७

बारक राम कहत जग जेऊ। होत तरन तारन नर तेऊ॥

—मानस, बा० का०, पृ० १५

रामानन्द-सम्प्रदाय में राममंत्र का जाप भगवत्कृपा-प्राप्ति का एक प्रमुख साधन माना गया है। इस सम्बन्ध में राममन्त्र के तीन भेद भी किए गए हैं—१—राम षडक्षर मंत्र या राम तारक मंत्र राज २—रामद्वय मंत्र ३—रामचरम मंत्र। तुलसीदास ने इन मंत्रों के सम्बन्ध में कोई चर्चा नहीं की है, उन्होंने केवल रामनाम की महिमा का ही गुणगान किया है। हां, कभी कभी मंत्र राज की भी प्रशंसा उन्होंने की है—

मंत्र राज नित जपहिं तुम्हारा।... ... ...
राम बसहु तिन्हके मन माहीं।... ... ...

वाल्मीकि, मानस,

अयोध्या काण्ड, पृष्ठ २३२

कहीं-कहीं राम शब्द के वर्णों का भी उन्होंने तात्पर्यार्थ बतलाने की चेष्टा की है—

बरसा ऋतु रघुपति भगति, तुलसी सालि सुदास।
राम नाम वर बरन जुग, सावन भादों मास॥

... ...

एक छत्र एक मुकुट मनि सब बरनन्हि पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत दोउ॥

—मानस, बा० का०, पृ० १४

कभी उन्होंने भगवान् के अन्य नामों की अपेक्षा राम नाम की अधिक महिमा की ओर भी संकेत किया है। वे कहते हैं, यद्यपि प्रभु के अनेक नाम हैं और श्रुतियों के मत से उनका प्रभाव भी अधिक है, किन्तु, रामनाम का प्रभाव उन सबसे अधिक है—

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक तें एका॥
राम सकल नामन्ह तें अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका॥

राका रजनी भगति तव राम नाम सोइ सोम।
अपरनाम उडुगन विमल बसहु भगत उर व्योम॥

—मानस, अ० का०, पृ० ३०५

इसी प्रकार तुलसीदास ने विनयपत्रिका, गीतावली, कवितावली तथा दोहावली आदि में भी रामनाम की महिमा गाई है। इसे उन्होंने पतितों का एक मात्र उद्धारक कहा है। मानस के बालकाण्ड में तो स्वयं राम और ब्रह्म से भी अधिक महत्वपूर्ण उन्होंने रामनाम को कहा है।

भगवत्कैंकर्य—रामानन्द-सम्प्रदाय में सांग, सपार्षद भगवान् राम की सेवा विधेय मानी गई है। इसी प्रसंग में अर्चावतार की पूजा-सेवा तथा मंदिर की स्वच्छता आदि करने पर भी बल दिया गया है। 'विनयपत्रिका' के अनेक पदों में तुलसीदास ने भगवच्चरणों में अपना अटल अनुराग व्यक्त किया है। भगवान् राम ने अनेक अधम-पतितों का उद्धार किया है, उनसे बढ़ कर अधम-उद्धारक और कोई नहीं है। इसीलिए तुलसीदास अपने को उनकी सेवा में नियोजित करना चाहते हैं—

जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे ?
काको नाम पतित पावन जग ? केहि अति दीन पियारे ?
कौन देव बरिआई विरद-हित हठि-हठि अधम उधारे ?
खग, मृग, व्याध, पषान, विटप, जड़जमन कौन सुर तारे ?
देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज सब माया विवस विचारे।
तिन्हके हाथ दास तुलसी प्रभु कहा अपनपौ हारे॥

—विनय, पद १०१

और जब कभी यह मूढ़ मन उनकी सेवा में ढिलाई करना चाहता है, तो उसे समझाते भी हैं—

ऐसेहु साहब की सेवा सो होत चोर रे।
आपनी न बूझि, ना कहे को राढ़ रोर रे॥
मुनि मनअगमु-सुगमु, मायबापु सो,
कृपासिंधु, सहज सखा, सनेही आपु सो।
लोक वेद विदित बड़ो न रघुनाथ सो,
सब दिन सब देस सबही के साथ सो॥

स्वामी सर्वज्ञ सों चलै न चोरी चार की,
    प्रीति पहिचानि यह रीति दरबार की।
काय न कलेसु लेसु लेत मानिमन की,
    सुमिरे सकुचि रुचि जोगवत जन की॥
रीझें बस होत सीझें देत निज धामु रे।
    फलत सकल फल कामतरु नाम रे॥
बेचें खोटो दाम न मिलै, न राखे कामु रे।
    सोउ तुलसी निवाज्यो ऐसे राजा रामु रे॥

—विनय, पद ७१

इसीलिए तुलसीदास उन सभी लोगों की बन्दना करते हैं, जो भगवान् राम के चरण-चंचरीक हैं। भगवान् के अंगों एवं पार्षदों की भी बन्दना इसी प्रसंग में वे करते हैं—

१—प्रनवौं प्रथम *भरत* के चरना। जासु नेम व्रत जाइ न बरना॥
रामचरन पंकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजै न पासू॥
२—बन्दौं *लछिमन* पद जलजाता। सीतल सुभग भगत सुखदाता॥
रघुपति कीरति विमल पताका। ... ...
३—*रिपुसूदन* पद कमल नमामी। सूर सुसील भरत अनुगामी॥
४—*महाबीर* विनवौं हनुमाना। राम जासु जस आपु बखाना॥
५—रघुपति चरन *उपासक जेते*। खग मृग सुर नर असुर समेते॥
बन्दौं पद सरोज सब केरे। जे बिनु काम राम के चेरे॥
सुक सनकादि भगत मुनि नारद। जे मुनिवर विज्ञान विसारद॥
प्रनवौं सबहिं धरनि धरि सीसा। करहु कृपा जन जानि मुनीसा॥

मानस, बा० का०, पृ० १३

आत्म-दोष-दर्शन—भगवत्कैंकर्य का चरम आदर्श है भगवान् के गुणों का अनुसंधान और अपने दोषों का उद्‌घाटन। तुलसीदास में अभिमान तो लेशमात्र भी नहीं था, वे सदैव अपने को नीच, हीन, खोटा, अपराधी, कामी आदि कह कर पुकारते हैं। उन्होंने अपने को सदैव ही पतितों की श्रेणी में रक्खा है। मानस में वे कहते हैं—

जे जनमे कलि काल कराला। करतब वायस वेष मराला।
चलत कुपंथ वेद मग छांड़े। कपट कलेवर कलिमल भांड़े॥

वंचक भगत कहाइ राम के। किंकर कंचन कोह काम के॥
तिन्ह महं प्रथम रेख जग मोरी। धींग धरम ध्वज धंधक धोरी।
जौ अपने अवगुन सब कहऊँ। बाढ़ै कथा पार नहिं लहऊँ॥

—मानस, बा० का०, पृ० ६

अथवा—

राम सुस्वामि कुसेवक मोसो। निजदिसि देखि दयानिधि पोसो॥
... ...
गुन तुम्हार समुझइ निज दोषा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा॥
तेहि के हृदय बसहु रघुराई। ... ...

बाल्मीकि, मानस, अ० का०, पृ० २३३-३४

अथवा—

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप पुंज हारी॥
... ... आदि

—विनय, पद ७९

आत्म-दैन्य-प्रदर्शन—भगवत्कैंकर्य का दूसरा अंग माना गया है, आत्म-दैन्य-प्रदर्शन। यह दीनता जान-बूझ कर अपने ऊपर लादी गई दीनता नहीं होती, वरन् आराध्य के महत्व का अनुभव कर हृदय से उत्पन्न दीनता है। आराध्य जितना ही अधिक महत्वशील होगा, भक्त अपने को उतना ही अधिक विनम्र एवं दीन अनुभव करता है। तुलसी की दीनता इसी प्रकार की स्वाभाविक दीनता है, बनावटी या कृत्रिम नहीं। मानस में वे कहते हैं—

मो सम दीन न दीन हित तुम समान रघुवीर।
अस विचारि रघुवंसमनि, हरहु विषम भवभीर॥

मानस, उ० का०, पृ० ५६८

सठ सेवक की प्रीति रुचि रखिहहिं राम कृपालु।
उपल किये जल जान जेहिं सचिव सुमति कपि भालु॥

—मानस, बा० का०, पृ० १८

अन्यत्र भी तुलसीदास ने अपनी दीनता बड़े ही सरल शब्दों में व्यक्त की है। जो व्यक्ति 'रामचरित्त मानस' जैसी प्रौढ़ रचना के लेखक होने का गौरव प्राप्त कर

सकता है, वह यदि अपने को 'कवित विवेक हीन' कहे तो इससे बढ़ कर दीनता और क्या हो सकती है ? मानसकार की यह दीनता बड़प्पन की दीनता है। मानस की भूमिका में कवि की यह दीनता मुखर हो उठी है—

कवि न होउँ नहिं चतुर कहावौं । मति अनुरूप राम गुन गावौं ॥
कहँ रघुपति के चरित अपारा । कहँ मति मोर निरत संसारा ॥
जेहि मारुत गिरि मेरुउड़ाहीं । कहहु तूल केहि लेखे मांहीं ॥
समुझत अमित राम प्रभुताई । करत कथा, मन अति कदराई ॥

मानस, बा० कां०, पृ० १८

'विनय' के निम्न पद में भी कितनी उज्ज्वल दीनता छिपी हुई है—

हौं तो साईं द्रोही, पै सेवक हितु साईं ॥
राम सो बड़ौ है कौन ? मोसो कौन छोटो ?
राम सों खरों खसम ? मोसो खल खोटो ?
लोग कहैं राम को गुलाम हौं, कहावौं ।
एते बड़ो अपराध, मो, मन बावों ।
पाथ माथे चढ़ै तृन तुलसी जो नीचो ।
बोरत न वारि ताहि जानि आपु सींचो ॥

—विनय, पद ७२

अथवा—

माधव मो समान जग माहीं ।
सब विधि हीन, मलीन, दीन अति लीन विषय कोउ नाहीं ।

—विनय, पद ११४

कहना तो यह चाहिए कि सारी 'विनयपत्रिका' में ही कवि का आत्मदैन्य मुखर हो उठा है । तुलसीदास का यह आत्मदैन्य परम पवित्र, अतः बहुत ही प्रभावपूर्ण है । वह भक्तमात्र के हृदय का दैन्य है ।

भक्ति के अन्य आवश्यक अंग-निरभिमानिता—भक्ति का सबसे बड़ा विरोधी है अहंकार । अतः लगभग समस्त भक्ति-सम्प्रदायों में भक्त को अहंकार-रहित होने का उपदेश दिया गया है । रामानन्द स्वामी ने तो यहाँ तक कहा है कि शक्त होने पर भी भक्त को निरहंकारी होकर भाष्यादि का अध्ययन कर कालयापन करना चाहिए और यदि भक्त अशक्त हो तो उसे केवल गुरुमंत्र का जाप कर एक छोटी सी कुटिया बना कर गुरु की आज्ञा मात्र का पालन करना चाहिए । तुलसीदास ने भी बाल्मीकि के मुख से कहलवाया है—

जिनके कपट दंभ नहिं माया। तिनके हृदयँ बसहु रघुराया ॥
... ...
सबकें प्रिय सबके हितकारी। दुखसुख सरिस प्रसंसा गारी ॥
—मानस, अ० कां०, २३४

तुलसीदास ने अभिमान को भक्ति का बहुत बड़ा शत्रु माना है। वे कहते हैं—

है हरि कवन दोष तोहिं दीजै।
जेहि उपाय सपनेहुँ दुर्लभ गति सोइ निसिवासर कीजै।
... ...
भूत द्रोह कृत मोह वस्य हित आपन मैं न बिचारो।
मद मत्सर अभिमान ज्ञान रिपु इन्ह महं रहनि अपारो ॥
—विनय, पद ११७

कभी अपने ही अभिमानी चित्त पर खीझ कर वे कहते हैं—

सकुचत हौं अति राम कृपानिधि क्योंकरि विनय सुनावौं।
सकल धरम विपरीत करत केहि भांति नाथ मन भावौं ?
... ...
'करहु हृदयअति विमल बसहिं हरि' कहि कहि सबहिं सिखावौं।
हौं निज उर *अभिमान* मोह मद खल मण्डली बसावौं ॥
... ...
तुलसिदास प्रभु सो गुन नहिं जेहि सपनेहुँ तुम्हहिं रिझावौं।
नाथ कृपा भवसिन्धु धेनु पद सम सुजानि सिर नावौं ॥
—विनय, पद १४२

विश्व भर में भगवान् का रूप-दर्शन—विश्व के कण-कण में अपने आराध्य के रूप का दर्शन करना भक्त के जीवन की चरम साधना है। रामानन्द स्वामी ने भगवान् के चराचरात्मक रूप के दर्शन करने को भक्ति का एक अत्यंत आवश्यक अंग माना था। तुलसीदास एक उच्चकोटि के महात्मा थे और उनकी साधना इस सीमा तक पहुँच गई थी कि सारा जगत् उन्हें प्रभु की विभूति के रूप में ही दृष्टिगत होता था। कहा जाता है कि भगवान् कृष्ण के विग्रह ने भी उन्हें धनुर्धारी राम के रूप में ही दर्शन दिया था। बाल्मीकि ने

भक्त के लक्षणों में एक लक्षण यह भी बतलाया है कि विश्व भर में धनुर्धारी राम के दर्शन करना चाहिए—

सरग नरकु अपबरग समाना। जहं तहं देख धरें धनु बाना॥
... ... राम करहु तेहि के उर डेरा॥

—मानस, अ० का०, पृ० २३४

अन्यत्र भी तुलसीदास ने लिखा है—

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राम मय जानि।
बन्दौं सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि॥

—मानस, बा० का०, पृ० ६

अथवा—

सीय राम मय सब जग जानी। करौं प्रनाम जोरि जुग पानी।

—वही, पृ० ६

स्पष्ट है, तुलसीदास की मनस्थिति उस सीमा तक पहुँच गई थी, जहाँ उन्हें सीता-राम के ही सर्वत्र दर्शन होने लगे थे।

गुरु—रामानन्द-सम्प्रदाय में गुरु को प्रपत्ति का सहायक कहा गया है। गुरु अपने उपदेशों द्वारा शिष्यों के हृदयस्थ संशयों का उच्छेद करता है। रामानन्द का तो यहाँ तक कहना है कि राममंत्र का तात्पर्यार्थ ही गुरु की रुचि के अनुकूल व्यवहार करना, उनकी आज्ञा का अनुकरण करना आदि है। तुलसीदास ने अनेक स्थलों पर अनेक बार गुरु की महिमा का गान किया है। उनके मत से हृदय के अज्ञान को गुरु ही मिटाते हैं—

श्री गुर पद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती॥
... ...
बन्दौं गुरु पद कंज कृपा सिन्धु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज, जासु बचन रविकर निकर॥
... ...
गुरु पद रज मृदु मंजुल अन्जन। नयन अमिअँ दृग दोष विभंजन॥

—मानस, पृ० २

याज्ञवल्क्य ने भी कहा है कि बिना गुरु के विमल विवेक हो ही नहीं सकता है—

सन्त कहहिं असि नीति प्रभु, श्रुति पुरान मुनि गाव।
होइ न विमल विवेक उर, गुर सनकिये दुराव॥

—मानस, पृ० २७

सती का मत है कि गुरु के बचनों में जिसे प्रतीति नहीं, उसे स्वप्न में भी सुख नहीं प्राप्त हो सकता—

गुर के बचन प्रतीति न जेहीं। सपनेहुं सुगम न सुख सिधि तेहीं।

—मानस, बालकाण्ड, पृ० ४४

यदि विधाता रूठ जाय तो गुरु जन की रक्षा कर लेते हैं, पर गुरु के रूठ जाने पर कोई उसकी रक्षा नहीं कर सकता—

राखै गुर जौं कोप विधाता। गुर विरोध नहिं कोउ जग त्राता॥

—मानस, बा० का०, पृ० ८४

वस्तुतः गुरु को भगवान् से भी बड़ा समझना चाहिए, बाल्मीकि कहते हैं—

तुम्ह तें अधिक गुरहिं जिय जानी। सकल भाय सेवहिं मन मानी॥

—मानस, अ० का०, पृ० २३३

स्वयं राम ने वसिष्ठ से कहा है—

जे गुर पद अम्बुज अनुरागी। ते लोकहुँ वेदहु बड़भागी॥

—मानस, पृ० २६०

जो गुरु के सामने नम्र नहीं होते, वे सिर कटु तुंबर की भाँति हैं—

ते सिर कटु तुंबर सम तूला। जे न नमत हरि गुर पद मूला॥

—मानस, बा० का०, पृ० ६१

और जो गुरु से ईर्ष्या करते हैं, वे रौरव नरक में कोटि युग तक वास करते हैं—

जे सठ गुर सन इरिषा करहीं। रौरव नरक कोटि जुग परहीं।
त्रिजग जोनि पुनि धरहिं सरीरा। अयुत जन्म भरि पावहिं पीरा॥

—मानस, उ० का०, पृ० ५४८

स्पष्ट है, तुलसीदास के मत से भी गुरु ही शिष्यों के हृदयस्थ संशयों को छिन्न करके उनके अज्ञान को मिटाता है और इस प्रकार उसे भगवत्कृपा-प्राप्ति में सहायता पहुँचाता है। बिना गुरु के विमल विवेक सम्भव नहीं है और बिना विवेक के भवसागर पार करना असम्भव ही है।

सत्संग—पंचायुधों से युक्त वैष्णव भगवान् स्वरूप ही माने गए हैं। वे परमतीर्थमय देहयुक्त होते हैं, उन सज्जनों की सेवा करने से मनुष्य पापरहित हो जाता है। इनके सत्संग से मनुष्य की चित्तवृत्तियाँ उदात्त हो जाती हैं,

उसका मन विमल हो जाता है और उसमें विवेक का जागरण होता है। तुलसीदास ने सत्संग के विषय में बहुत कुछ कहा है। उन्होंने भक्ति के साधनों में इसे सर्वप्रथम स्थान दिया है—

प्रथम भगति सन्तन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥

साधुओं का समाज चलता फिरता तीर्थराज ही है। यहाँ राम-भक्ति ही देवनदी है, विधि-निषेधमय कर्मकथाएँ ही यमुना हैं, ब्रह्मविचार ही सरस्वती है, हरिहर-कथा ही त्रिवेणी है, अपने धर्म में अटल विश्वास ही अक्षयवट है। जो कोई इस तीर्थराज का सेवन करता है, उसके समस्त क्लेश, सद्यः ही नष्ट हो जाते हैं। धर्मार्थकाममोक्षादि चतुर्वर्ग की उसे प्राप्ति हो जाती है। वाल्मीकि, नारद, और अगस्त्य सत्संग के प्रभाव से ही इतने उच्च पद तक पहुँच सके थे। वस्तुतः सत्संगति पारस की भाँति है, जिसका स्पर्श करके कुधातु भी पवित्र हो उठती है। साधुओं की महिमा अनन्त है। यह जंगम तीर्थराज सभी काल में और सर्वत्र ही उपलब्ध हो जाता है :

मुद मंगलमय संत समाजू। जो जग जंगम तीरथराजू॥
रामभगति जहं सुरसरिधारा। सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा॥
विधि निषेधमय कलिमलहरनी। करमकथा रविनन्दिनि बरनी॥
हरिहर कथा विराजति बेनी। सुनत सकल मुद मंगल देनी॥
वट विस्वास अचल निज धर्मा। तीरथ साज समाजि सुकरमा॥
सबहिं सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा॥
अकथ अलौकिक तीरथराऊ। देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ॥

सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु, साधु समाज प्रयाग॥

मानस, बा० कां०, पृ० ३

बाल्मीकि, नारद और घटयोनि आदि सत्संग के प्रभाव से ही महान् हुए थे :

वालमीकि नारद घटजोनी। निज निज मुखनि कही निज होनी॥
मति कीरति गति भूतिभलाई। जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई॥
सो जानब सत्संग प्रभाऊ। लोकहुँ वेद न आन उपाऊ॥
बिनु सत्संग विवेक न होई। रामकृपा बिनु सुलभ न सोई॥

मानस, बालकाण्ड, पृ० ३

वस्तुतः सभी साधन फूल की भाँति हैं और उनका फल है, सत्संग—

सत्संगति मुदमंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला॥
—मानस, बा० का०, पृ० ३

किन्तु, यह जान लेना कि कौन संत है और कौन असंत, नितान्त ही कठिन है। मनुष्य के विवेक की यहीं परीक्षा होती है। मानसकार ने मानवमात्र के उपकारार्थ इन संतों के लक्षणों का भी सविस्तार वर्णन किया है। उनके राम नारद से कहते हैं :—

सुनि मुनि संतन्ह के गुन कहऊं। जिन्ह तें मैं उनके बस रहऊं॥
षट् विकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन सुचि सुखधामा॥
अमित बोध अनीह मित भोगी। सत्यसार कवि कोविद जोगी॥
सावधान मानद मद हीना। धीर धर्म गति परम प्रवीना॥
गुनागार संसार दुख रहित विगत सन्देह।
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहं देह न गेह॥
निज गुन स्रवन्ह सुनत सकुचाहीं। परगुन सुनत अधिक हरषाहीं॥
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती। सरल सुभाउ सबहिं सम प्रीती॥
जप तप व्रत दम संजम नेमा। गुर गोविन्द विप्र पद प्रेमा॥
स्रद्धा छमा मयत्री दाया। मुदिता मम पद प्रीति अमाया॥
विरति विवेक बिनय विज्ञाना। बोध जथारथ वेद पुराना॥
दम्भ मान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहिं कुमारग पाऊ॥
गावहिं सुनहिं सदा मम लीला। हेतु रहित परहित रत सीला॥

वस्तुतः साधुओं के इतने अधिक गुण हैं कि शारदा और श्रुतियाँ भी उनका वर्णन नहीं कर सकतीं। राम कहते हैं—

मुनि सुनु साधुन्ह के गुन जेते। कहि न सकैं सारद स्रुति तेते॥
—मानस, अ० का०, पृ० ३५१

मानस के उत्तरकाण्ड में भी राम ने पुनः सज्जनों के स्वभाव का निरूपण किया है। उन्होंने कहा है कि सज्जन मलय वृक्ष की भाँति होते हैं, जो अपने मूल को काटने वाले कुठार को भी सुगंधिमय कर देते हैं, वे विषयों से दूर रहते हैं, पर दुःख से दुःखी और पर सुख से सुखी होते हैं, मित्र-अमित्र में उनकी समान स्थिति होती है; लोभ, हर्ष, मद, ममता, भय, अमर्ष आदि सबका उनमें नितान्त अभाव होता है; उनका चित्त बड़ा कोमल होता है, दीनों के प्रति वे निरन्तर दयालु बने रहते हैं; बचन, कर्म और मन से भक्ति में उनका अनुराग होता है,

स्वयं अमानी होकर भी वे दूसरों को मान देते रहते हैं; वे विगत काम होते हैं और निरन्तर भगवन्नाम का परायण किया करते हैं; शान्ति, विराग, मुदिता, विनय, शीतलता, सरलता, मैत्री और ब्राह्मणों के प्रति अनुराग की वे साक्षात् मूर्ति होते हैं ; नीति का वे सदैव पालन करते हैं, उनका जीवन नियमित होता है, किसी से भी परुष बचन नहीं कहते, निन्दा-स्तुति में समान रहते हैं और निरन्तर ही भगवच्चरणों के चंचरीक बने रहते हैं।

—मानस, उत्तरकांड, पृ० ५११

कवियों ने संतों के हृदय को नवनीत की भाँति कहा है, किन्तु लगता है उन्हें कहना ही नहीं आया। नवनीत अपनी ही आँच से गलता है, किन्तु सज्जन दूसरों के ही परिताप से द्रवित होते हैं—

सन्त हृदय नवनीत समाना। कहा कविन्ह पै कहइ न जाना॥
निज परिताप द्रवइ नवनीता। परदुख द्रवहिं सन्त सुपुनीता॥

—मानस, उ० का०, पृ० ५६५

इसी कारण संतों के मिलन जैसा सुख, तुलसीदास के मत से, कुछ भी नहीं है। परन्तु सज्जनों का मिलना भी राम-कृपा के बिना सम्भव नहीं है—

बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं सन्ता। मानस, सुन्दर काण्ड, पृ० ३७५
बड़े भाग पाइय सत्संगा। मानस, उत्तर काण्ड, पृ० ५०६
निगमागम पुरान मत एहा। कहहिं सिद्ध मुनि नहिं सन्देहा॥
संत विसुद्ध मिलहिं परितेही। चितवहिं रामु कृपा करि जेही॥

—मानस, उ० का०, पृ० ५२६

तुलसीदास का तो यहाँ तक कथन है कि बिना सत्संग के भक्ति भी नहीं मिल सकती—

भक्ति सुतंत्र सकल गुन खानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी॥
पुन्य पुन्ज बिनु मिलहिं न संता। सतसंगति संसृति कर अन्ता॥

—मानस, उ० का०, पृ० ४१४

सब कर फल हरि भगति सुहाई। सो बिनु संत न काहू पाई॥
अस विचारि जोइ करि सत्संगा। राम भगति तेहि सुलभ विहंगा।

ब्रह्म पयोनिधि मंदर ज्ञान संत सुर आहिं।
कथा सुधामथि काढहिं भगति मधुरता जाहिं॥

—मानस, उ० का०, पृ० ५६१

इसी कारण स्वर्ग और अपवर्ग का सुख भी सत्संग सुख की समता नहीं कर सकता—

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिअ तुला इक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सत्संग॥

—मानस, सु० का०, पृ० ३७४

साधुओं की अवज्ञा भूल कर भी नहीं करनी चाहिए—

साधु अवज्ञा कर फल ऐसा। जरइ नगर अनाथ कर जैसा॥

—सु० का०, पृ० ३८५

साधु अवज्ञा तुरत भवानी। कर कल्यान अखिल कै हानी॥

—वही, पृ० ३६२

काम-क्रोधादि का परित्याग—काम-क्रोधादि भक्ति के विरोधी हैं, अतः वैष्णव सम्प्रदायों में उनके परित्याग पर बहुत अधिक बल दिया गया है। ये सभी विषयों में आसक्ति उत्पन्न करते हैं और यह आसक्ति साधनामार्ग में बहुत बड़ी बाधा उत्पन्न करती है। इसी कारण रामानन्द स्वामी ने भी रागादि के परित्याग को बहुत अधिक महत्त्व दिया है। तुलसीदास ने इन सबको माया का परिवार कहा है और भक्त को उनसे बच कर रहने का उपदेश दिया है। बाल्मीकि ने भक्तों के लक्षण बतलाते हुए राम से कहा है—

काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा॥
.... । तिन्हके हृदय बसहु रघुराया॥

—मानस, अ० का०, पृ० २३४

वयं राम ने कहा है—

काम आदि मद दम्भ न जाके। तात निरन्तर बस मैं ताके॥

—अ० का०, पृ० ३३१

वे पुनः कहते हैं—

तात तीनि अति प्रबल खल, काम, क्रोध अरु लोभ।
मुनि विज्ञान धाम मन, करहिं निमिष महुँ छोभ॥
लोभ के इच्छा दम्भ बल काम के केवल नारि।
क्रोध के परुष बचन बल मुनिवर करहिं विचारि॥

—मानस, अ० का, पृ० ३४८

इसी प्रकार अन्य अनेक स्थलों पर तुलसीदास ने भक्तों द्वारा काम-क्रोधादि के परित्याग पर बल दिया है। उनका निश्चित् मत है कि जितनी शीघ्रता से इनका परित्याग कर दिया जाय उतना ही श्रेयस्कर है।

अहिंसा—तुलसीदास ने हिंसा का विरोध जम कर उस प्रकार नहीं किया है जिस प्रकार उनसे पहले कबीरदास अथवा रामानन्द ने किया था। कबीरदास तो अहिंसा के बहुत ही बड़े समर्थक थे। उनके मत से कीरी से लेकर कुंजर तक सभी भगवान् के जीव हैं, उनकी रक्षा करना वैष्णवों का परम धर्म है। रामानंद जी ने तो अहिंसा को दान, तप, तीर्थ और जप आदि से भी अधिक शुभ कर्म माना है। उनके मत से अहिंसक व्यक्ति को सभी धर्म उसी प्रकार आश्रयण करते हैं जिस प्रकार वक्र गति वाली नदियाँ भी समुद्र को प्राप्त होती हैं। खेद है, तुलसीदास ने अपने पूर्व के महावैष्णवों की इस उत्तम विचार-परम्परा को और आगे नहीं बढ़ाया। बड़े ही स्पष्ट ढंग से उन्होंने सज्जनों के स्वभाव-गुण का निरूपण करते हुए कहा है कि सज्जन विषयों से विरक्त, शील के गुणाकर तथा दूसरों के दुख से दुखी और सुख से सुखी होते हैं—

विषय अलम्पट सील गुनाकर। परदुख दुख, सुख सुख देखें पर॥
सम अभूत रिपु विमद विरागी। लोभामरष हरष भय त्यागी॥
कोमल चित दीनन्ह पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया॥
—मानस, उ० का०, पृ० ५१०

अथवा—
संत सहहिं दुख परहित लागी। परदुख हेत असंत अभागी॥
भूर्ज तरू सम सन्त कृपाला। परहित नित सह विपति विसाला॥
निज परिताप द्रवइ नवनीता। परदुख द्रवहिं संत सुपुनीता॥
मानस, उ० का०, पृ० ५६१-६५

कहीं-कहीं उन्होंने भक्ष्याभक्ष्य का विचार न करने वालों की निन्दा भी की है—

चोर चतुर बटपार नट प्रभु प्रिय भँडुआ भंड।
सब-भच्छक परमारथी, कलि सुपंथ पाखण्ड॥
असुभ वेष भूषन धरैं भच्छ अभच्छ जे खाहिं।
ते जोगी, ते सिद्ध नर, पूजित कलियुग माहिं॥
—दोहावली, दोहा ५४९-५०

इस प्रकार स्पष्ट है कि तुलसीदास ने अस्पष्ट रूप से ही हिंसा वृत्ति को अनुचित ठहराया है और पर दुख से दुःखी तथा कोमल चित्त होने का उपदेश दिया है। साथ ही भक्ष्याभक्ष्य की भी चिन्ता करने की अनुज्ञा दी है। सज्जनों के यही गुण हैं।

भक्ति के साधक महाव्रत—एकादशी, रामनवमी, जानकी नवमी, हनुमज्जन्मोत्सव, नृसिंहजयंती, कृष्णाष्टमी, वामन द्वादशी तथा रथयात्रादि व्रतों को भक्ति का साधक कहा गया है। तुलसीदास ने भक्ति के साधन के रूप में उनका कहीं भी स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है। उनकी आस्था इन सभी पर्वों में रही होगी, इसके कुछ संकेत मात्र उन्होंने यत्रतत्र किए हैं।

तुलसी की भक्ति-पद्धति

दास्य भक्ति—तुलसीदास की भक्ति प्रधान रूप से दास्य भाव की थी। रामानन्द सम्प्रदाय मात्र की यह प्रधान भक्ति-पद्धति है। स्वामी रामानन्दजी के अनुसार दास्य-भक्ति के प्रमुख अंग हैं: भगवत्कैंकर्य, किसी अन्य देवता की कामना न करना, अर्चावतार की पूजा तथा सेवा, अपने दोषों का अनुसंधान और भगवान् से उनकी उपेक्षा करने की प्रार्थना करना। विनय, याचना, दीनता, आत्मसमर्पण आदि दास्य-भक्ति के अन्य आवश्यक अंग कहे गए हैं। तुलसीदास ने अपनी समस्त रचनाओं में भगवत्कैंकर्य में अपनी दृढ़ आस्था व्यक्त की है। मानस में वे कहते हैं—

हौंहु कहावत सब कहत, राम सहत उपहास।
साहिब सीतानाथ से, सेवक तुलसी दास॥

—मानस, बा० का०, पृ० १८

अथवा—

को रघुवीर सरिस संसारा। सीलु सनेहु निबाहनि हारा॥
जेहि जेहि जोनि करमबस भ्रमहीं। तहं तहं ईसु देइ येह हमहीं॥
सेवक हम स्वामी सिय नाहू। होउ नात येहु ओर निबाहू॥

—मानस, अ० का०, पृ० १८९

अवधपुर वासियों की उक्ति में मानों तुलसी का ही हृदय बोल रहा हो।

'विनयपत्रिका' में तो सर्वत्र ही उन्होंने अपने को राम का किंकर कहा है। केवल एक पद ही इस संबंध में उद्धृत कर देना पर्याप्त होगा—कितनी दीनता, विनम्रता, निरभिमानिता से भरा है यह पद?

कहां जाउं कासो कहौं और ठौर न मेरे।
जनम गंवायो तेरेई द्वारे, किंकर तेरे॥
मैं तो बिगारी रामसों, स्वारथ के लीन्हें।
तोहि कृपानिधि क्यों बनै, मेरी सी कीन्हें॥
दिन दुरदिन, दिन दुरदसा, दिन दुख, दिन दूषन।
जौलों तू न विलोकिहै, रघुवंस-विभूषन॥
दई पीठि बिनु डीठ हौं तू विस्व-विलोचन।
तोसों तुही न दूसरो न त सोच विमोचन॥
पराधीन देव, दीन हौं, स्वाधीन गुसाईं।
बोलिनिहारे सों करै, बलि, विनय की झाईं॥
आपु देखि मोहिं देखिए, जन जानिये सांचो।
बड़ी ओट राम नाम की जेहि लई सो बांचो॥
रहति रीति रामरावरी नित हिय हुलसी है।
ज्यों भावै त्यों करु कृपा तेरो तुलसी है॥

—विनय, पद १४६

तुलसीदास के प्रायः अधिकांश पात्र भी दास्य भाव की ही भक्ति भगवान् राम के प्रति करते थे। उनकी उक्तियों में दास्यभाव के मूल तत्त्व यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। भरत के चरित्र की कुछ झांकी यहां देखी जा सकती हैं—

राम पयादेहि पाउ सिधाए। हम कहं रथ गज बाजि बनाए॥
सिर भर जाउं उचित अस मोरा। सबतें सेवक धरमुं कठोरा॥

—मानस, अ० का०, पृ० २६६

अन्यत्र भी भरत ने कहा है कि सेवक धर्म बड़ा ही कठोर होता है—

जौं हठ करौं त निपट कुकरमू। हरगिरि तें गुरु सेवक धरमू॥

—मानस, अ० का०, पृ० २८७

उनके मत से सेवक को स्वामी से संकोच नहीं करना चाहिए—

जो सेवक साहिबहिं संकोची। निज हित चहइ तासु मति पोची॥
सेवक हित साहिब सेवकाई। करइ सबल सुख लोभ बिहाई॥

—वही, पृ० २६३

आगम, निगम एवं पुराणों का भी यही मत है कि सेवा-धर्म सबसे अधिक कठिन है। भरत कहते हैं—

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। सेवा धरमु कठिन जगु जाना॥
स्वामि धरम स्वारथहिं विरोधू। बैरुअन्धु प्रेमहिं न प्रबोधू॥

—वही, पृ० ३०४

इसीलिए भरत के जीवन का उद्देश्य ही सेवा हो गई है—

अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चहहुँ निर्वान।
जनम जनम रति राम पद, येह बरदान न आन॥

—वही, पृ० २६६

नारद का भी मत है कि जिस प्रकार सेवक को स्वामी प्रिय होना चाहिए, उसी प्रकार भगवान् राम भी अपने सेवक पर प्रीति-स्नेह रखते हैं—

कहहु कवन प्रभु कै असि रीती। सेवक पर ममता अरु प्रीती॥
जे न भजहिं अस प्रभु भ्रमत्यागी। ज्ञान रंक नर मंद अभागी॥

—मानस, अ० का०, पृ० ३५१

स्वयं राम ने भी कहा है कि यद्यपि लोग मुझे समदर्शी कहते हैं, फिर भी मुझे सेवक अधिक प्रिय हैं, क्योकि मेरे अतिरिक्त उन्हें अन्य गति नहीं है—

समदरसी मोहिं कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ॥

—मानस, कि० का०, पृ० ३५५

सो अनन्य जाकें असि, मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर, रूप स्वामि भगवन्त॥

—मानस, कि० का०, पृ० ३५५

वस्तुतः इस नरदेह का फल ही यह है कि सर्वकामविनिर्मुक्त होकर भगवान् राम की सेवा की जाय। सुग्रीव कहते हैं—

भानु पीठि सेइय उरआगी। स्वामिहिं सर्वभाव छल त्यागी॥
देह धरे कर यह फल भाई। भजिअ राम सब काम बिहाई॥
सोइ गुनज्ञ सोई बड़ भागी। जो रघुवीर चरन अनुरागी॥

—मानस, कि० का०, पृ० ३६५

राम को भी वही सेवक प्रिय है, जो उनके निदेश का पालन करता है—

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानइ जोई॥

उत्तर काण्ड में तो तुलसीदास ने यह स्पष्ट ही कर दिया है कि बिना सेवक-सेव्य भाव के संसार-सागर को पार करना अत्यन्त दुष्कर है—

सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरइ उरगारि ॥
भजहु राम पद पंकज, अस सिद्धान्त बिचारि ॥

—मानस, उ० का०, पृ० ५६१

भक्तों का तो यह भी विश्वास है कि राम से अधिक महत्त्वपूर्ण राम के दास ही होते हैं—

मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा। राम तें अधिक राम कर दासा ॥

—मानस, उ० का०, पृ० ५६०

किसी अन्य देवता की कामना न करना—दास्य-भक्ति की दूसरी विशेषता यह है कि अपने आराध्य के अतिरिक्त किसी भी अन्य देवता की कामना न करना। 'विनयपत्रिका' में तुलसीदास ने अनेक स्थलों पर यह स्पष्ट कहा है कि राम से बड़ा संसार में कोई और देवता है ही नहीं। बड़े आत्म-विश्वास के साथ वे भगवान् राम से कहते हैं—

राम राय बिनु रावरे मेरे को हितु सांचो।
स्वामी सहित सबसों कहों सुनि गुनि बिसेषि कोउ रेख दूसरी खांचो ॥
देह जीव जोग के सखा मृषा टांचुन टांचो।
कियो विचार सार कदली ज्यों मनि कनक संग लघु लसत बीच बिचकाचों ॥
विनयपत्रिका दीन की बापु आपुही बांचो।

—विनय, पद २७७

अथवा

दीन को दयालु दानि दूसरो न कोई।
जासों दीनता कहौं मैं देखौं दीन सोई ॥
सुरनरमुनि असुर नाग साहिब तो घनेरे।
तौलौं जौलों रावरे न नेकु नयन फेरे ॥
त्रिभुवन तिहुँकाल विदित, वदत वेद चारी।
आदि अन्त-मध्य राम साहिबी तिहारी ॥
पाहन, कपिपसु, विहँग अपने कर लीन्हें।
महाराज दसरथ के रंक राय कीन्हें ॥
तुम्हहिं मांगि मांगनो न मांगनो कहायो।
सुनि सुभावसील सुजस जाचन जन आयो ॥

तू गरीब को निवाज, हौं गरीब तेरो।
बारक कहिये कृपाल, तुलसिदास मेरो ॥

—विनय, पद ७८

भक्त भगवान् में इतना अधिक अनन्य प्रेम सम्बन्ध है, जितना चातक और घन में होता है। तुलसीदास के प्रेम का आदर्श है—

एक भरोसो, एक बल, एक आस, विस्वास।
एक राम घनस्याम हित चातक तुलसीदास।

—दोहावली, दोहा २७७

तुलसीदास का मत है कि चातक स्वाति में भी जल नहीं पीता, क्योंकि इससे उसकी प्रेम तृषा दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जाती है। तृषा मिट जाने पर तो उसकी मर्यादा भी संकट में पड़ जायगी—

चातक तुलसी के मतें स्वातिहुँ पिये न पानि।
प्रेम तृषा बाढ़ति भली, घटै घटैगी कानि ॥

—दोहावली, दोहा २७६

वस्तुतः चातक का यह प्रेम बादल के प्रति अडिग ही रहता है, चाहे बादल उपल की बरसात करे, गरजे-तरजे, अथवा बज्रपात ही क्यों न करे–

उपल बरसि गरजत तरजि डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक मेघ तजि, कबहुँ दूसरी ओर ॥

—दोहावली, दोहा २८३

और, क्योंकि चातक इन सब परिस्थितियों में अपने घन को छोड़ कर किसी और के सामने निवेदन नहीं करता, इसलिए तीनों लोक व तीनों काल में यश उसके ही भाग में लिखा है–

तीनि लोक तिहुँकाल जस, चातक ही के माथ।
तुलसी जासु न दीनता, सुनी दूसरे नाथ ॥

—दोहावली, दोहा २८८

और, फिर ऐसे मानी मांगने वाले को बिना घन के तृप्त ही और कौन कर सकता है–

नहिं जांचत नहिं संग्रही सीस नाइ नहिं लेइ।
ऐसे मानी मांगनेहि, को वारिद बिनु देइ ॥

निश्चय ही, तुलसीदास का भी प्रेम अपने आराध्य के प्रति इसी प्रकार का था।

अर्चावतार की पूजा तथा सेवा—तुलसीदास की श्रद्धा भगवद्विग्रह में थी, यह पहले कहा जा चुका है। बिन्दु माधव की जो सर्वांग प्रशंसा उन्होंने की है तथा उनकी छवि में जो आसक्ति उन्होंने प्रकट की है, उससे यह स्पष्ट है कि वे अर्चावतार की पूजा में विश्वास रखते हैं। विनयपत्रिका के दो पदों में उन्होंने भगवान् की आरती के सम्बन्ध में भी लिखा है। उनमें से एक आरती तो दिव्य आरती प्रतीत होती है, जिसमें वासना का धूप, ज्ञान का दीपक, विशदभावों का नैवेद्य और प्रेम का ताम्बूल, कर्मों का घृत, त्याग का पावक और सद्गुण के प्रकाश आदि की चर्चा की गई है। (पद ४७) दूसरी निश्चय ही लौकिक आरती प्रतीत होती है–

हरति सब आरती आरती राम की।
दहति दुख दोष निर्मल निकाम की॥
सुभग सौरभ धूप दीप वरमालिका।
उड़त अघ बिहग सुनि ताल कर तालिका॥
भक्त हृदिभवन अज्ञान तम हारिनी॥
विमल विज्ञान मय तेज विस्तारिनी॥
मोहमदकोह कलि–कंज हिम जामिनी।
मुकुति की दूतिका, देह दुति दामिनी॥
प्रनत जन कुमुद बन इन्दु कर जालिका।
तुलसि-अभिमान-महिषेस बहु कालिका॥

— विनय, पद ४८

डा० माताप्रसाद गुप्त ने एक तुलसी मठ की भी खोज की थी, जिसके सम्बन्ध में उन्होंने कहा है कि वह सं० १७६७ वि० तक विद्यमान था। सम्भव है, अपने मठ के आराध्य देव की वे पूजा-सेवा भी स्वयं ही करते रहे हों।

आत्मदोषानुसंधान—दास्य भाव की भक्ति का आत्मदोषानुसंधान एक आवश्यक अंग है। इस के माध्यम से भक्त अपनी दुर्बलताओं के प्रति सजग होता है और वह स्वामी की सेवा के अधिक से अधिक योग्य बनने की चेष्टा करता है। पीछे कहा जा चुका है कि तुलसीदास अपने को संसार के समस्त पापियों में सर्व-प्रथम मानते थे। विनय के अनेक पदों में इस प्रकार के भाव व्यक्त हुए हैं। अन्य ग्रन्थों में भी उनकी आत्मदोषानुसंधान की प्रवृत्ति वर्तमान मिलती है। जैसा पहले लिखा जा चुका है, मानस में कवि ने लिखा है—

जे जनमे कलिकाल कराला । करतब बायस वेष मराला ।
चलत कुपंथ वेद मग छांड़े । कपट कलेवर कलिमल भांड़े ।
बंचक भगत कहाइ रामके । किंकर कंचन कोह काम के ।।
तिन्ह महं प्रथम रेख जगमोरी । धींग धरम ध्वज धंधक धोरी ।।
जौं अपने अवगुन सब कहऊँ । बाढ़ै कथा पार नहि लहऊँ ।।

—मानस, बा० का०, पृ० ६

अथवा

राम सुस्वामि कुसेवक मोसों । निज दिसि देखि दयानिधि पोसो ।।

रामचरितमानस

कवितावली के [illegible] में भी अनेक कवित्तों में कवि का आत्मदैन्य छलक सा पड़ता है । एक छंद में वे कहते हैं—

जाप की न तप खप कियो न तमाइ जोग,
जाग न विराग त्याग तीरथ न तन को ।
भाई को भरोसो न खरोसो बैर बैरी हूसों,
बल अपनो न हितू जननी जनक को ।।
लोक को न डर, परलोक को न सोच,
देव सेवा न सहाय, गर्व धाम को न धन को ।
राम ही के नाम ते जो होइ सोई नीको लगै,
ऐसोइ सुभाय कछु तुलसी के मन को ।।७७

अथवा,

वेद न पुरान गान, जानौं न विज्ञान ज्ञान,
ध्यान, धारना, समाधि, साधन प्रवीनता ।
नाहिंन विराग, जोग, जाग, भाग तुलसी के,
दयादान दूबरो हौं, पाप ही की पीनता ।।
लोभ मोह काम कोह दोष कोष मोसों कौन ?
कलिहू जो सीखि लई मेरियै मलीनता ।
एक ही भरोसो राम रावरो कहावत हौं,
रावरे दयालु दीनबन्धु, मेरी दीनता ।।६६

छंद सं० ६६ में कवि ने अपने को सब अंग-हीन, सब साधना-विहीन, मन-वचन-मलीन, बुद्धि बल-हीन, भाव-भगति विहीन, गुणज्ञान हीन, तथा भाग्यहीन तक

कहा है। इसके पहले ६४ वें पद में वे अपने को श्वान तक कह चुके हैं, 'स्वामी के सनेह स्वान हू को सनमानु है।' ६५ वें छंद में तथा ६६ वें छंद में भी उन्होंने बड़ी ही मार्मिक पदावली में दीनता व्यक्त की है। ६६ वे छंद में तो अपने को उन्होंने—'धोबी कैसो कूकर न घर को न घाट को' तक कहा है। कहना तो यह चाहिए की तुलसीदास की समस्त रचनाएँ ही उनकी आत्मदोषाभिव्यक्ति से भरी पड़ी हैं।

भगवान् से उन दोषों की उपेक्षा की प्रार्थना—तुलसीदास को यह दृढ़ विश्वास है कि संसार में उनसे बढ़ कर दोषी-पापी और कोई नहीं है, साथ ही उन्हें यह भी विदित है कि राम से बढ़ कर क्षमाशील एवं उदार भी कोई दूसरा स्वामी नहीं है। इसी कारण वे अपने आराध्य से अपने दोषों को क्षमा करने की बड़ी ही मार्मिक याचना करते हैं :—

कबहुँ रघुवंशमनि सो कृपा करहुगे ?
जेहि कृपा व्याध गज विप्र खस तरु तरे,
तिन्हहिं सम मानि मोहिंनाथ उद्धरहुगे।
जोनि बहु जनमि किये-करम फल विविध विधि,
अधम आचरन कछु हृदय नहिं धरहुगे॥
दीन हित अजित सर्वज्ञ समरथ प्रनतपाल,
चित मृदुल निज गुननि अनुसरहुगे॥
मोह मद मान कामादि खल मण्डली,
सकुल निर्मूल करि दुसह दुख हरहुगे॥
जोग जप ज्ञान विज्ञान तें अधिक अति,
अमल दृढ़ भगति दै परम सुख भरहुगे॥
मन्द जन मौलि मनि, सकल साधन हीन,
कुटिल मन, मलिन जिय जानि जो डरहुगे॥
दास तुलसी वेद विदित बिरुदावली,
बिमल जस नाथ केहि भाँति विस्तरहुगे॥

—विनय, पद २११

इसी प्रकार विनय के अनेक पदों में कवि ने अपने आराध्य से अपने दोषों को क्षमा कर देने की प्रार्थना की है। निश्चय ही ये प्रार्थनाएं उसके हृदय की निष्कपटता, निश्छलता एवं पवित्रता के द्योतक हैं।

तुलसीदास की दास्य-भक्ति के अन्य आवश्यक तत्त्व-विरति-विवेक—तुलसीदास ने भक्ति की सामान्य परिभाषा देते हुए उसे श्रुति सम्मत एवं विरति-विवेक से युक्त कहा है—

श्रुति सम्मत हरिभक्ति पथ संयुत विरति विवेक।

वस्तुतः बिना वैराग्य के चित्त-वृत्तियों का निरोध कर लेना असम्भव है, और जब तक चित्त की चंचलता मिट नहीं जाती तब तक उस अनुराग का पाना असम्भव है, जिससे भगवान् शीघ्र ही द्रवित हो जाते हैं—

जातें बेगि द्रवहुं मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई॥

इसी प्रकार बिना विवेक के भी भक्ति पूर्ण नहीं कही जा सकती। विवेक से हमारी विचारधाराओं में उचित संतुलन आता है, और यह सन्तुलन भक्ति का प्राण ही है। अपने युग की ऐकान्तिकता से क्षुब्ध होकर ही तुलसीदास ने अपनी भक्ति-पद्धति में विरति-विवेक को स्थान दिया है। यह उनकी समन्वयकारिणी बुद्धि का ही परिचायक है।

वात्सल्य भक्ति—तुलसीदास की भक्ति-पद्धति दास्यभाव की ही है, यह अभी-अभी कहा जा चुका है, फिर भी उन्होंने वात्सल्य भक्ति का भी निरूपण किया है, क्योंकि दशरथ-कौशल्या आदि की भक्ति वत्सल भाव की ही थी, स्वयं गोस्वामी जी के आराध्य देव भी कदाचित्-'बाल राम' ही थे। मानस के बाल-काण्ड, कवितावली के प्रारम्भ तथा गीतावली के प्रारम्भिक अंशों में इस भक्ति का गोस्वामी जी ने अच्छा परिचय कराया है। हां, इस प्रसंग में वे भगवान् राम की ईश्वरता को कभी नहीं भूलते हैं। कौशल्या की गोद में बाल राम को देख कर कवि कह उठता है—

व्यापक ब्रह्म निरन्जन, निर्गुण विगत विनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या के गोद॥

—बालकाण्ड, पृ० १००

माता-पिता को सुख देने के लिए तथा अपने जनों के दृगों को शीतल करने के लिए ही तो राम ने नरलीला की थी—

सुख सन्दोह मोह पर, ज्ञान गिरा गोतीत।
दम्पति परम प्रेम वस, कर सिसु चरित पुनीत॥
येहि विधि राम जगत पितु माता। कोसलपुर बासिन्ह सुखदाता॥

—मानस, बा० का०, पृष्ठ १०१

मां के हलराने-दुलराने के चित्र भी तुलसीदास ने उपस्थित किए हैं—

लै उछंग कबहुँक हलरावै। कबहुं पालने घालि भुलावै ॥
प्रेम लगन कौसल्या निसदिन जात न जान।
सुत सनेह बस माता बाल चरित कर गान ॥

—बालकाण्ड, पृष्ठ १०१

जब राम कुछ सयाने हो गए—

कौसल्या जब बोलन जाई। ठुमुकि ठुमुकि प्रभु चले पराई।

और कभी :

भोजन करत चपल चित, इत उत अवसरु पाइ।
भागि चले किलकत मुख, दधि ओदन लपटाइ ॥

—मानस, बा० का०, पृष्ठ १०२

वस्तुतः यह सभी लीला भक्तों के हृदय का सर्वस्व है। तुलसीदास कहते हैं—

बाल चरित अति सरल सुहाए। सारद शेष संभु श्रुति गाए।
जिन्ह कर मन इन्ह सन नहिं राता। ते जन बंचित किए विधाता ॥

—मानस, बा० का०, पृष्ठ १०३

कवितावली में तुलसीदास ने बालक राम के सौन्दर्य, चपलता, क्रीड़ा आदि के बड़े ही मनोरम चित्र खींचे हैं—

पग नूपुर औ पहुंची करकंजनि, मंजु बनी मनि माल हिये।
नवनीत कलेवर पीतझगा, झलकैं पुलकैं नृप गोद लिये ॥
अरविन्द सो आनन रूप मरंद, अनंदित लोचन भृंग पिये।
मन में न बस्यौ अस बालक जौ, तुलसी जग में फल कौन जिये ॥

बालक राम के सौन्दर्य का दूसरा चित्र—

तन की दुति स्याम सरोरुह, लोचन कंज कि मंजुलताई हरैं।
अति सुंदर सोहत धूरि भरे, छवि भूरि अनंग की दूरि करैं ॥
दमकैं दतियां दुति दामिनि ज्यों, किलकैं कलबाल-विनोद करैं।
अवधेश के बालक चारि सदा, तुलसी मन मंदिर में विहरैं ॥

बालक्रीड़ा का एक अन्य चित्र—इस चित्र में बालकों की प्रवृत्ति का भी बहुत ही सुन्दर निरूपण किया गया है—

कबहूं ससि मांगत आरि करैं, कबहूं प्रतिबिम्ब निहारि डरैं।
कबहूं करताल बजाइ के नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं ॥

कबहूँ रिसिआइ कहैं हठि कै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
अवधेश के बालक चारि सदा तुलसी मन मंदिर में विहरैं॥

बाल स्वभाव—सौन्दर्य एवं क्रीड़ा के कुछ अन्य सुन्दर चित्र—

बर दन्त की पंगति कुंद कली अधराधर पल्लव खोलन की।
चपला चमकैं घन बीच जगै छवि मोतिन माल अमोलन की॥
घुंघुरारि लटैं लटकैं मुख ऊपरि, कुण्डल लोल कपोलन की।
निवछावरि प्राण करैं तुलसी, बलि जाउं लला इन बोलन की॥

× × ×

पद कंजनि मंजु बनी पनहीं, धनुहीं सर पंकज पानि लिए।
लरिका संग खेलत डोलत हैं, सरयू तट चौहट हाट हिए॥
तुलसी अस बालक सो नहिं नेह, कहा जपजोग समाधि किए।
नर ते खर सूकर स्वान समान कहौ जग में फल कौन जिए॥

× × ×

सरजू बर तीरहिं तीर फिरैं, रघुवीर सखा अरु बीर सबै।
धनुहीं कर तीर, निषंग कसे, कटि पीत दुकूल नवीन फबै॥
तुलसी तेहि औसर लावनिता, दस, चारि, नौ, तीन, इकीस सबै।
मति भारति पंगु भई जुनिहारि, विचारि फिरी उपमा न फबै॥

गीतावली में भी कवि ने राम के बाल जीवन के बड़े ही सजीव चित्र उपस्थित किए हैं, बालस्वभाव, बाल-क्रीड़ा, बालचापल्य और बालसौन्दर्य के चित्रण प्राय: उसी प्रौढ़ता के साथ किए गए हैं, जिस प्रौढ़ता के साथ सूरदास ने कृष्ण के बालजीवन का चित्रण किया है। लगता है, कवि यहाँ पर सूरदास से ही होड़ कर रहा हो। फिर भी सूरदास की गम्भीरता के सामने तुलसीदास का प्रयास बहुत ही हलका प्रतीत होता है।

तुलसीदास द्वारा निरूपित वात्सल्य रस दो स्थलों पर बहुत ही गम्भीर हो गया है—(१) राम के वन गमन के अवसर पर और (२) राम, लक्ष्मण और सीता को चित्रकूट में छोड़कर कौशल्यादि के अवध लौट आने पर। राम के वनगमन का समाचार सुनते ही कौशल्या के शोक का पारावार नहीं रहता। जिस राम को उन्होंने बड़ी तपस्या के पश्चात् पाया था, उससे सहसा वियुक्त होकर वे जी नहीं सकेंगी। राजा दशरथ भले ही स्त्री के वशीभूत होकर अपने सुखनिधान प्रिय पुत्र का परित्याग कर दें, किन्तु माता कौशल्या उन्हें वन नहीं जाने देंगी। जो राम पिता के वचन को इतनी तत्परता से मान लेते हैं, वे क्या माता के भी

वचन को नहीं मानेंगे ? भला राम के वन चले जाने पर माँ किसे अपने अंक में भर कर 'लाल' कहेगी ? अपने उस बालक की लीलाओं का स्मरण कर-करके वह कैसे प्राण धारण कर सकेगी ? जिन कानों से उसने उसकी मीठी बोली सुनी थी, वे कान आज वनगमन का भी समाचार सुन रहे हैं, यह कैसी विडम्बना है ? जिस मुखारविन्द को बिना देखे उसका एक-एक क्षण एक-एक युग के समान बीतता है, उसी मुखकमल से वियुक्त होकर यदि वह १४ वर्ष तक जीवित रह सकी तो राम के प्रति उसकी क्या प्रीति समझी जायेगी ? मां के इस प्रेम को देख कर राम भी अधीर हो उठे, उनका कण्ठ भर आया, नेत्रों से अश्रु की बरसात होने लगी। माँ को उन्होंने आश्वासन दिया कि वे शीघ्र ही वन से लौट आवेंगे।

राम वन को चले जाते हैं, व्यथा का दिन ज्यों-त्यों बीतता है, रात भी बीत ही जाती है, भोर को द्वार पर वेद-वन्दी-मागध आदि की ध्वनि सुनाई नहीं पड़ती और न सीता ही 'सास' से आशीर्वाद लेने के लिए द्वार पर आती हैं, कौशल्या बार-बार राम की बान-धनुहियाँ को देखती हैं, अपने राम की ललित पनहियाँ को हृदय से लगाती हैं, कभी पहले ही जैसे सबेरे उठ कर राम को जगाने जाती हैं, और कभी यह समझ कर कि राम वन को चले गए चित्रलिखी सी चकित होकर रह जाती हैं। उन्हें विश्वास नहीं होता कि राम सचमुच वन को चले गए ! किन्तु, राम से रहित भवन को देख कर उन्हें अपने बालक की समस्त बालक्रीड़ाएँ, चपलताएँ आदि स्मरण हो आती हैं और वे भगवान् से प्रार्थना करती हैं कि १४ वर्ष की अवधि शीघ्र ही बीत जाय, सीता सहित दोनों भैया लौट कर माँ को सम्भ्रम में डाल दें।

इसी प्रकार कौशल्या जब चित्रकूट से लौटकर आती हैं, उनकी व्यथा और भी बढ़ जाती है। वे सोचती हैं कि चित्रकूट जाकर भी वे राम के साथ वन को क्यों नहीं चली गईं ? राम के वियोग में भरत की दशा शोचनीय तो है ही, उनके (राम के) घोड़ों की भी चिन्त्य दशा हो गई है। एक बार इन घोड़ों के लिए ही राम लौट आते तो कितना भला करते ? कभी राम, लक्ष्मण और सीता के वनजन्य दुःख का भी विचार कर कौशल्या बहुत दुःखी होती हैं।

माधुर्य भाव की भक्ति और तुलसीदास—पीछे कहा जा चुका है कि रामानन्द के उपरान्त उनके सम्प्रदाय में माधुर्य भाव की भक्ति का भी क्रमशः प्रचार हो गया। धीरे-धीरे यह भक्ति-पद्धति इतनी अधिक प्रिय होती गई कि आधुनिक युग में प्रायः सभी रामानन्दी भक्त माधुर्य भाव के ही उपासक होने

लगे हैं। इस भाव की उपासना में तुलसी का अपना कोई विश्वास नहीं था, फिर भी गीतावली के उत्तरकाण्ड में उन्होंने माधुर्य भाव से सम्बन्धित पद लिखे हैं। इन पदों में रूप और यौवन के कुछ उन्मादक चित्र भी पाए जाते हैं।

राम प्रातःकाल सो कर उठते हैं, किन्तु प्रिया के प्रेम रस से पगा श्यामल शरीर आलस्य से भरा हुआ है, नेत्र उनींदे हैं :

श्यामल सलोने गात, आलसबस जँभात, प्रिया प्रेम-रस पागे।
उनींदे लोचन चारु मुख-सुखमा-सिंगार हेरि हारे मार भूरि भागे॥

परम रूप-लावण्य की राशि राम के सौंदर्य के अनेक मनोरम चित्र कवि ने इसी प्रसंग में खींचे हैं : राम मज्जन करके सरयू के तट पर खड़े हैं, सखी कहती है :-

बिथुरति सिररुह-वरूथ कुंचित, बिच सुमन-जूथ,
मनि जुत सिसु-फनि-अनीक ससि समीप आई।
जनु सभीत. दै अंकोर राखे जुग रुचिर मोर,
कुण्डल छवि निरखि चोर सकुचत अधिकाई॥
ललित भृकुटि, तिलक भाल, चिबुक अधर द्विज रसाल,
हास चारुतर कपोल नासिका सुहाई।
मधुर जुग पंकज बिच, सुक बिलोकि नीरज पर,
लरत मधुप-अवलि मानो बीच कियो जाई॥
सुन्दर पट पीत विसद, भ्राजत बनमाल उरसि,
तुलसिका प्रसून रचित, विविध विधि बनाई।
तरु तमाल अध बिच जनु त्रिबिध कीर पांति रुचिर,
हेम जाल अंतर परि तातें न उड़ाई॥

सरयू-तट स्थित राम के इसी प्रकार के अनेक रूपचित्र 'गीतावली' को मधुर बनाते हैं। किन्तु इस रूप सौंदर्य में सखियों की कोई वासनात्मक आसक्ति नहीं पाई जाती। रूपोल्लास के ये पवित्र चित्र बड़े ही सुन्दर बन पड़े हैं। शक्ति ने इस सौंदर्य को बहुत ही महत्वशील बना दिया है।

प्रेमोल्लास के इसी प्रसंग में तुलसीदास ने रामहिंडोला, दीपमालिका और बसंत का भी वर्णन किया है। हिंडोला का एक चित्र :-

आली री राघोके रुचिर हिंडोलना झूलन जैये।

मदन जय के खम्भ से रचे खम्भ सरल विसाल।
पाटीर पाटि विचित्र भंवरा वलित बेलन लाल।

... ...

उनए सघन घनघोर मृदु झरि सुखद सावन लाग।
बगपांति, सुरधनु, दमक दामिनि, हरितभूमि विभाग।

... ...

सो समौ देखि सुहावनो नव सत संवारि संवारि।
गुन रूप जोबन सींव सुंदरि चलीं झुण्डनि झारि॥
हिंडोल साल बिलोकि सब अन्चल पसारि पसारि।
लागीं असीसन राम-सीतहिं सुख-समाजु निहारि।

× × ×

मन्जीर नूपुर वलय धुनि जनु काम करतल तार।
अति मुचत स्रम कन मुखनि विथुरे चिकुर विलुलितहार॥
तम तड़ित उडुगन अरुन विधु जनु करत व्योम बिहार।
हिय हरषि बरषि प्रसून निरखति विबुध तिय तृन तूरि।
आनन्दजल लोचन मुदित मन पुलक तन भरि पूरि॥ ६॥

... ...

बसंत का एक चित्र :

खेलत बसंत राजाधिराज।

... ...

सोहैं सखा अनुज रघुनाथ साथ। झोलिन्ह अबीर, पिचकारि हाथ।
बाजहिं मृदंग डफ ताल बेनु। छिरकैं सुगंध भरे मलय रेनु॥
उत जुवति जूथ जानकी संग। पहिरे पट भूषन सरस रंग॥
लिए छरी बेंत सोधैं विभाग। चांचरि झूमक कहैं सरस राग॥
नूपुर किंकिनि धुनि अति सोहाइ। ललना गन जब जेहि धाइ धाइ॥
लोचन आंजहिं फगुआ मनाइ। छाड़हिं नचाइ हा हा कराइ॥
चढ़े खरनि विदूषक स्वांगसाजि। करैं कूटि निपट गई लाज भाजि॥
नर नारि परसपर गारि देत। सुनि हंसत राम भाइन समेत॥
बरसत प्रसून वर विबुध वृन्द। जै जै दिनकर कुल कुमुद चन्द॥
ब्रह्मादि प्रसंसत अवध वास। गावत कलकीरति तुलसिदास॥

श्रीकृष्ण गीतावली में तुलसीदास ने सूर के अनुकरण पर गोपियों तथा कृष्ण के प्रेम का बड़े विस्तार से वर्णन किया है। कृष्ण का बाल चापल्य,

उनका अद्भुत सौंदर्य, गोपियों का उनकी ओर आकृष्ट होना, क्रमशः रति-भाव का विकास, मिलन के मनोरम चित्र और अंत में गोपियों का कृष्ण से वियोग आदि सभी कुछ कृष्ण गीतावली में बड़ी ही सरस शैली में वर्णित है। फिर भी माधुर्य भक्ति में कोई आस्था न होने से तुलसीदास के वर्णन उतने सजीव नहीं हो सके, जितने सूरदास के हुए हैं।

सख्य भक्ति तथा शांताभक्ति के सम्बन्ध में तुलसीदास ने कुछ भी नहीं लिखा है।

भक्ति और ज्ञान—तुलसीदास के मत से ज्ञान और भक्ति में वस्तुतः कोई अन्तर नहीं है, दोनों का ही उद्देश्य 'भवसम्भव खेद' को दूर करना है। फिर भी ज्ञान का मार्ग अत्यन्त कठिन है। इंद्रियों एवं तज्जन्य विषयासक्ति के कारण वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति असम्भव सी हो जाती है। इस कारण तुलसीदास ने भक्ति को ज्ञान की अपेक्षा अधिक श्रेयस्कर माना है। भक्त छोटे बालक की भाँति होता है और ज्ञानी प्रौढ़ तनय की भाँति। मां अपने छोटे बच्चे को अधिक प्यार करती है, परमेश्वर भी भक्तों को अधिक प्यार करता है। भक्ति सर्व सुलभ होती है। माया से इसका कोई विरोध नहीं है, क्योंकि माया और भक्ति दोनों ही स्त्रीवर्ग हैं, और स्त्री, स्त्री पर कभी मुग्ध नहीं होती। ज्ञान, विराग, योग, विज्ञान आदि पुरुषवर्ग हैं। इनके पथच्युत हो जाने के अवसर अधिक हैं। माया के घने अंधकार को नष्ट करने के लिए ज्ञान का प्रकाश दीपक की भाँति है, जो विपरीत परिस्थितियों में बुझ भी सकता है; किन्तु भक्ति मणि की भाँति है, इसके बुझ जाने का कोई भय नहीं। फिर, बिना भक्ति के ज्ञान निरर्थक है। समग्रतः तुलसीदास भक्ति को ज्ञान से बड़ा मानते हैं। रामानन्द सम्प्रदाय में भी कर्म, भक्ति एवं ज्ञान में कोई विरोध नहीं माना गया है, किन्तु सर्व सुलभ होने के नाते भक्ति को अधिक महत्त्वपूर्ण कहा गया है।

तुलसीदास के उपर्युक्त विचार 'मानस' के उत्तरकाण्ड में बहुत ही विस्तार से व्यक्त किए गए हैं। विशेष ज्ञान के लिए वहीं देखना उपयुक्त होगा। उनके मत को तो केवल निम्न पंक्तियों में ही स्पष्ट रीति से देखा जा सकता है :

जप तप मख सम दम ब्रत नाना। बिरत बिबेक जोग बिज्ञाना।
सब कर फलु रघुपति पदप्रेमा। तेहि बिनु कोउ न पावै छेमा॥

—मानस, उ० का०, पृ० ५४१

शंकर ने भी कहा है :—

तीर्थाटन साधन समुदाई । जोग विराग ज्ञान निपुनाई ॥
नाना कर्म धर्म ब्रतदाना । संजम दम जप तप मख नाना ॥
भूत दया द्विज गुर-सेवकाई । विद्या विनय विवेक बड़ाई ॥
जहं लगि साधन वेद बखानी । सब कर फल हरि भगति भवानी ॥

—मानस, उ० का०, पृ० ५६६

भक्ति में उदारता—रामानन्द-सम्प्रदाय में भक्ति का द्वार सभी के लिए खुला हुआ है। शक्त-अशक्त, ऊँच-नीच, कुलीन-अकुलीन, ब्राह्मण-शूद्र सभी प्रपत्ति के अधिकारी माने गए हैं। तुलसीदास ने भी भक्ति में किसी प्रकार के बन्धन को स्वीकार नहीं किया है। उनके राम की तो यह घोषणा ही है—

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानौं एक भगति कर नाता।
जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई ॥
भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा ॥

—राम शबरी से-मानस, अ० का०, पृ० ३४५

तुलसीदास ने अन्यत्र भी कहा है—

स्वपच सबर खस जमन जड़ पांवर कोल किरात।
रामु कहत पावन परम होत भुवन विख्यात ॥

—मानस, अ० का०, पृ० २६२

भगवान् की शरण में जाने के पहले भक्त को भी जाति-पाँति, धन-धर्म, बड़ाई, परिवार आदि का परित्याग कर लेना चाहिए। राम से वाल्मीकि कहते हैं—

जाति पांति धनु धरम बड़ाई। प्रिय परिवार सदन सुखदाई।
सब तजि तुम्हहिं रहइ लउलाई। तेहि कें हृदय रहहु रघुराई ॥

—मानस, अ० का०, पृ० २३४

फर भी लगता है, तुलसीदास रामानन्द स्वामी की विचारधारा से पूर्णतया सहमत नहीं हो सके। उनके राम ब्राह्मणों के प्रति विशेष सदय हैं—

सुनु गन्धर्व कहौं मैं तोही । मोहिं न सुहाइ ब्रह्म कुल द्रोही ॥
मन क्रम वचन कपट तजि जो कर भूसुर सेव।
मोहिं समेत विरंचि सिव बस ताकें सब देव ॥

सापत ताड़त परुष कहन्ता । विप्र पूज्य अस गावहिं सन्ता ॥
पूजिअ विप्र सील गुन हीना । सूद्र न गुन गनज्ञान प्रवीना ॥

—मानस, अ० का०, पृ० ३४४-४५

फिर भी राम की उदारता निम्न पंक्तियों में बहुत ही स्पष्ट रीति से व्यक्त की गई है—

सबरी गीध सुसेवकन्हि, सुगति दीन्ह रघुनाथ ।

—मानस, बालकाण्ड, पृष्ठ १६

कूर कुटिल खल कुमति कलंकी । नीच निसील निरीस निसंकी ॥
तेउ सुनि सरन सामुहें आए । सकृत प्रनामु कियें अपनाए ॥

—अ० काण्ड, पृष्ठ, ३०६

गीध अधम खग आमिष भोगी । गति दीन्हीं जो जाचत जोगी ॥

—मानस, अरण्यकांड, पृष्ठ ३४४

सुनहु विभीषन प्रभु कै रीती । करहिं सदा सेवक पर प्रीती ॥
कहहु कवन मैं परम कुलीना । कपि चंचल सबही विधि हीना ॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा । तेहि दिन ताहि न मिलइ अहारा ॥
अस मैं अधम सखा सुनु, मोहूँ पर रघुवीर ।
कीन्हीं कृपा सुमिरि गुन, भरे विलोचन नीर ॥

—हनुमान, मानस, सुन्दरकाण्ड, पृष्ठ ३७५

सब भाँति अधम निषाद जो हरि भरत ज्यों उर लाइयो ॥

—मानस, लंकाकाण्ड, पृष्ठ ४८६

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि तुलसीदास की भक्ति-पद्धति पर रामानन्द-सम्प्रदाय का-विशेष कर रामानन्द स्वामी का—बहुत ही अधिक प्रभाव पड़ा है । वैसे उन्होंने अपनी भक्ति-पद्धति को युगानुरूप भी बनाने की चेष्टा की है, और इसी कारण गोरख के योग की निन्दा, शिवभक्ति की महत्ता, कृष्ण-चरित में अनुराग तथा ब्राह्मण-पूजा आदि भी उनकी भक्ति के अंग बन गए हैं, फिर भी ये सब उनके भक्तिरूपी विशाल वृक्ष की शाखाएँ मात्र हैं, उसका मूल तो रामानन्द-सम्प्रदाय में ही दूर तक चला गया है ।

ख—रामानंद और कबीर

रामानन्दी भक्ति-पद्धति का कबीरदास पर प्रभाव—'कबीरदास की वाणी वह लता है जो योग के क्षेत्र में भक्ति का बीज पड़ने से अंकुरित हुई थी।'[१] सचमुच कबीरदास ने रामानन्द से भक्ति की दीक्षा ही अधिक पाई थी, तत्ववाद की कम। यद्यपि कबीरदास के दार्शनिक मतों पर रामानन्द जी का प्रभाव स्पष्ट है, किन्तु यह प्रभाव अधिक महत्त्वपूर्ण एवं व्यापक नहीं कहा जा सकता। हाँ, उनकी भक्ति-पद्धति बहुत दूर तक रामानन्द जी से प्रभावित जान पड़ती है। नीचे इस प्रभाव की विस्तृत विवेचना करने का एक प्रयास किया जा रहा है।

रामानन्द जी ने मोक्ष के साधनों का विवेचन करते हुए पंच-संस्कारों—मुद्रा, तिलक, नाम, मन्त्र और माला—पर अधिक बल दिया है, कबीरदास ने इनका जमकर विरोध किया है। वैष्णव होने का अर्थ वे कुछ दूसरा ही समझते थे। उन्होंने कहा है: "वैष्णव हुआ तो क्या हुआ यदि उसमें विवेक नहीं है। छापा, तिलक बना कर लोग व्यर्थ ही संसार को बांधना चाहते हैं'[२] तिलक का भी वे विरोध करते थे—'यदि गोपाल के मिलन का मर्म नहीं मालूम है, तो तिलक लगाना और माला जपना व्यर्थ है।'[३]

माला तिलक पहिरि मनमानां। लोगन राम खिलौना जानां॥
थोरी भगति बहुत अहंकार। ऐसे भगता मिलैं अपार॥[४]

कबीरदास के मत से

तत तिलक तिहूँ लोक मैं, राम नावं निज सार।
जन कबीर मस्तक दिया, सोभा अधिक अपार॥[५]

वस्तुतः, माला पहिनने से कुछ होता नहीं, हृदय की गांठ खुलनी चाहिए।[६]

१—कबीर, डॉ० ह० प्र० द्विवेदी, पृ० १५२।

२—क० ग्र०, पृ० ४६।

३—वही, पृ० १३२।

४—वही, पृ० २०४।

५—वही, पृ० ५।

६—वही, पृ० ४६।

हाँ, भक्ति के अन्य आवश्यक अंगों में कबीरदास का पूरा विश्वास है। परमात्मा के प्रति अनन्य अनुराग भक्ति की सर्वप्रमुख विशेषता है। कबीरदास ने इस सम्बन्ध में अपने मधुरतम उद्गारों को अनेक स्थलों पर व्यक्त किया है :—

राम वियोगी विकल तन इन दुखवे मति कोइ।
छूवत ही मरि जाहिंगे ताला बेली होइ॥
—क० ग्र०, पृ० ३४

विरह बान जे लागिया, औषध लगै न ताहि।
सुसुकि सुसुकि मरि मरि जीवै, उठै कराहि कराहि॥
—वही, पृ० १३१

मेरा मन सुमिरै राम कूं मेरा मन रामहिं आहि।
अब मन रामहिं ह्वै रह्या सीस नवावौं काहि॥
—वही, पृ० ५

तू तूं करता तूं भया मुझ में रही न हूँ॥
वारी फेरी बलि गई, जित देखौं तित तूं॥
—वही, पृ० ५

इस प्रकार के अनेक अन्य पद कबीर साहब के ग्रन्थों से उद्धृत किए जा सकते हैं। राम के प्रति उनका अनुराग अनन्य है।

भक्ति की दूसरी विशेषता है : भगवान् की सेवा। कबीरदास ने वेद का परित्याग कर दिया था, विकारों का हनन कर दिया था और दृढ़ होकर पकड़ लिया था 'भगवच्चरणों' को। उन्हें गूंगे का गुड़ मिल गया था, वे कह ही क्या सकते थे।[1] उनके लिए तो जो सुख प्रभु गोविन्द की सेवा सो सुख राजं न लहिये'[2]; अन्यत्र भी कबीरदास ने दीन दयालु प्रभु की सेवा करने की अपनी कामना व्यक्त की है।

तैलधारावत् भगवन्नाम का स्मरण। कबीरदास का मन राम का स्मरण करता था, उनका मन ही राम हो गया था; और जब मन राम ही हो गया था, तब वे शीश भला किसको झुकाते ?[3] जब तक दीए में बत्ती है, कबीरदास का

१—क० ग्रं०, पृ० ३१८।
२—वही, पृ० २६४।
३—वही, पृ० ५।

कहना है, राम का नाम निर्भय होकर जपना चाहिए; जब तेल घट जायगा, बत्ती बुझ जायगी, तब तो दिन रात सोना है ही।[१]

भक्ति के लिए विवेक की भी अत्यन्तावश्यकता है। कबीरदास में यह अंग विशेष उभर कर आया है। वे कहते हैं—

मन सागर मनसा लहरी, बूड़े बहे अनेक।
कहे कबीर ते बाँचिहैं, जिनके हृदय विवेक॥

—बीजक-सं० प्रेमचन्द, पृ० १३६

भौंर जाल बकजाल है, बूड़े जीव अनेक।
कहे कबीर ते बाँचिहैं, जिनके हृदय विवेक॥

—वही, पृ० १३४

सन्ता को मत कोऊ निन्दौ, संत राम हैं एको।
कहु कबीर मैं सो गुरु पाया, जाकर नाम विवेको॥

—क० ग्र०, पृ० २७३

कबीरदास ने यह विवेक 'संका डाइरण' को मारण के लिए उत्पन्न किया था। उनके लिए विवेक रामचरणरति का पर्यायवाची है। वे कहते हैं—

संक्या डाइन बसे सरीरा। ता कारणि राम रमै कबीरा॥

—क० ग्र०, पृ० १४६

यमादि अष्टांग योग में कबीरदास का विशेष विश्वास नहीं था। 'सन्तो सहजि समाधि भली' उनका नारा था। उनके मन ने राम-रसायन को पी लिया था। अतः ऋद्धि सिद्धि की उन्हें आवश्यकता ही क्या थी? बन में रहने से लाभ ही क्या? यदि मन ने आशा-पाश से अपने को उन्मुक्त नहीं कर लिया?[२]

कबीरदास और नवधा-भक्ति—नवधा-भक्ति में कबीरदास का पूरा विश्वास था। हाँ, उसके मानसी पक्ष पर उनकी दृष्टि विशेष थी, वाह्याचारों में उनकी आस्था नहीं थी। इसी कारण उनमें साम्प्रदायिकता की गन्ध नहीं आ सकी। नीचे नवधा-भक्ति के कुछ उदाहरण कबीर के ग्रन्थों से उद्धृत किए जाते हैं—

१—वही, पृ० ५।

२—क० ग्रं०, पृ० १३०।

१ श्रवण—

ऐसा कोई ना मिलै राम भजन का गीत।
तन मन सौंपे मृग ज्यूँ सुनै बधिक का गीत॥

—क० ग्र०, पृ० ६६

२ कीर्तन—

केसव कहि कहि कूकिये, ना सोइए असरार।
राति दिवस कै कूंकणै, कबहूँ लगै पुकार॥

—क० ग्र०, पृ० ६

कबीर सूता क्या करै गुण गोविन्द के गाइ।
तेरे सिर परि जम खड़ा, खरच कदे का खाइ॥

—क० ग्र०, पृ० ६

कबीर राम रिझाइ लै, मुखि अमृत गुण गाइ।
फूटा नग ज्यूँ जोड़ि मन, संधे संधि मिलाइ॥

—क० ग्र०, पृ० ७

इसी प्रकार के अनेक पद इस बात की सूचना देते हैं कि कबीरदास की आस्था भगवन्नाम के कीर्तन में ही थी, किन्तु कहीं भी उन्होंने करताल, झांझ, मृदंग आदि के साथ कीर्तन करने पर बल नहीं दिया है। उनकी सारी साधना मानसी थी, बाह्य नहीं।

३ संस्मरण—

भगति भजन हरि नांव है, दूजा दुःख अपार।
मनसा बाचा क्रमनां कबीर सुमिरण सार।

—क० ग्र०, पृ० ५

मेरा मन सुमिरै राम कूं मेरा मन रामहिं आहि।
अब मन रामहिं ह्वै रह्या सीस नवावौं काहि॥

—क० ग्र०, पृ० ५

गुरदेव ग्यांनी भयो लगनियां, सुमिरन दीन्हौं हीरा।
बड़ी निसरनी नावं राम कौ चढ़ि गयौ कीर कबीरा॥

—क० ग्र०, पृ० १२२

स्पष्ट है, कबीरदास को अपने गुरुदेव से ही भगवन्नाम स्मरण की दीक्षा मिली थी। किन्तु यहाँ भी जोर जोर से 'चिल्ला' कर नाम स्मरण पर बल नहीं दिया गया है, मनःस्मरण को ही अधिक महत्व मिला है।

४ पदाश्रिति–कहै कबीर दासनि कौ दास । अब नहीं छाँड़ौं हरि के चरन निवास ॥

—क० ग्र०, पृ० २१८

भज नारदादि सुकादि बंदित चरन पंकज भामिनी ।
भजि भजिसि भूषन पिया मनोहर देवदेवसिरोमनी ॥

—क० ग्र०, पृ० २१८

५ समर्चन—मूर्ति पूजा में कबीरदास का तनिक भी विश्वास नहीं था। अतः भगवद्विग्रह की अर्चना का प्रश्न ही उनके लिए नहीं उठता। वे प्रत्येक आत्मा में शालग्राम का दर्शन करते थे। साधु उनके लिए प्रत्यक्ष देवता थे, पत्थर से फिर उनको क्या काम था? शालग्राम की सेवा करने पर भी मन की भ्रांति नहीं जाती—स्वप्न में भी शीतलता नहीं मिल पाती; प्रत्युत दिनोदिन शालग्राम की सेवा के कारण माया बढ़ती ही जाती है।[१] उनकी आरती भी अद्भुत है—

ऐसी आरती त्रिभुवन तारै। तेज पुंज तहाँ प्रान उतारै ॥
पाती पंच पुहुप करि पूजा। देव निरन्जन और न दूजा ॥
तन मन सीस समरपन कीना। प्रगट जोति तहाँ आतमलीना ॥
दीपक ग्यांन सबद धुनि घंटा। परम पुरिख तहाँ देवअनन्ता ॥
परम प्रकास सकल उजियारा। कहै कबीर मैं दास तुम्हारा ॥[२]

यह आरती मानसी ही है, वाह्य नहीं—दिखावे की आरती नहीं। कबीर की साधना सचमुच मन-प्राण की साधना थी, शरीर की नहीं।

६ वन्दन—वन्दन भी कबीरदास के लिए शुद्ध साम्प्रदायिक अर्थ नहीं रखता। इनका वन्दन अशरीरी है, कदाचित् यह रामानन्दी वन्दन है भी नहीं। वे कहते हैं—

कबीर सबद सरीर में, बिनि गुण बाजै तंति ।
बाहरि भीतरि भरि रह्या ताथैं छूटि भरंति ॥ क० ग्र०, पृ० ६३
मन रे हरि भजि हरि भजि हरि भजि भाई ।
जा दिन तेरो कोई नाहीं, ता दिन राम सहाई ॥ क० ग्र०, पृ० १२७
निरमल निरमल राम गुण गावै। सो भगता मेरे मनि भावै ॥

—क० ग्र०, पृ० १२७

१—क० ग्र०, पृ० ४१ ।
२—वही, पृ० २२२ ।

इस प्रकार के अनेक उदाहरण कबीर ग्रन्थावली में वर्तमान हैं। पर सर्वत्र ही वे मानस पक्ष पर अधिक बल देते से प्रतीत होते हैं।

७ दास्य—कबीरदास में नवधा भक्ति का यह अंग बहुत अधिक उभर आया है। वे अपने को भगवान् का दास-मात्र ही नहीं समझते, कुत्ते के भी बराबर समझते हैं। वे कहते हैं:—

कबीर कूत्ता राम का मुतिया मेरा नाउँ।
गले रांम की जेवड़ी जित खैंचै तित जाउँ।
तो तो करै तो बाहुडौं दुरिदुरि करै तो जाउं।
ज्यूँ हरि राखै त्यूँ रहौं, जो देवै सो खाउँ॥

क० ग्र०, पृ० २०

उस संम्रथ का दास हौं कदे न होइ अकाज।
पतिव्रता नांगी रहै तौ उसही पुरिस कौ लाज॥

वही, पृ० २०

आदि मधि अरु अंत लौं अविहड़ सदा अभंग।
कबीर उस करता की, सेवग तजै न संग॥

क० ग्र०, पृ० ८६

कबीर चेरा संत का दासनि का परदास।
कबीर ऐसे ह्वै रह्या, ज्यूं पांऊँ तलिघास॥
रोड़ा ह्वै रहौ बाट का तजि पाखण्ड अभिमांन।
ऐसा जे जन ह्वै रहै, ताहि मिलै भगवान॥

क० ग्र०, पृ० ६५

कबीर हरि सबकं भजै, हरि कूं भजै न कोइ।
जब लग आस शरीर की, तब लगि दास न होइ॥

क० ग्र०, पृ० ७१

इसी प्रकार कबीरदास ने भगवान् की सेवा में सिर चले जाने को भी बहुत बड़ी बात नहीं माना है। यदि सिर देने से भगवान् मिल जाय तो कोई हानि नहीं है।[1] वे तो राम के गुलाम हैं, उनका तन मन धन राम का ही है। राम यदि उन्हें बेच भी दें तो कोई परवाह नहीं है।[2] सचमुच राम के दास एकाध ही होते हैं। काम-क्रोध-लोभ का जो परित्याग कर दे, राजस्-तामस्, एवं सात्विक

१—वही, पृ० ७८।
२—वही, पृ० १२४।

गुणों से मोह न रक्खे, क्योंकि ये सब माया के परिवार हैं, चौथे पद को जो चीन्ह लेता है, स्तुति-निन्दा, मान-अभिमान से जो ऊपर उठ जाता है, लोहा कंचन दोनों को जो समान समझता है, चिन्ता केवल माधव चिन्तामणि की करता है; हरि के चरणों में संसार से उदास होकर रमता रहता है, तृष्णादि से जो रहित है, कबीरदास कहते हैं, भगवान् का वही सच्चा दास है।[१] स्पष्ट है, कबीरदास की दास्य भावना बहुत ही अधिक निर्मल एवं निस्संग है।

८ आत्मार्पण—आत्मार्पण की भावना भी कबीरदास में बहुत अधिक उभर कर आई है। वे कहते हैं—

मेरा मुझ में कुछ नहीं जो कुछ है सो तेरा।
तेरा तुझको सौंपतां क्या लागै है मेरा॥
—क० ग्र०, पृ० १६

मेर मिटी मुगता गया, पाया ब्रह्म विसास।
अब मेरे दूजा को नहीं, एक तुम्हारी आस॥
—क० ग्र०, पृ० ५६

साईं सूं सब होत है बन्दे थैं कछु नाहिं॥
राई थैं परबत करै, परबत राई मांहि॥
—क० ग्र०, ६२

मैं नाहीं कछु आहि न मोरा। तन धन सरबस गोविंद तोरा॥
—क० ग्र०, पृ० ३०५

स्पष्ट है, कबीरदास की दास्यभावना की ही भाँति आत्मार्पण की भावना भी बड़ी ही निर्मल एवं निश्छल है।

९ सखाभाव में कबीरदास का विश्वास नहीं प्रतीत होता है, क्योंकि इस सम्बन्ध में उनका एक भी पद प्राप्त नहीं है।

भक्ति के अन्य आवश्यक तत्व

प्रपत्ति—रामानन्द का मार्ग प्रपत्ति मार्ग था। अपने शिष्यों को उन्होंने इसी मार्ग में निष्णात किया था। प्रपत्ति मार्ग ही उनके मत से ऐसा मार्ग था, जहाँ कुल-बल, शक्त-अशक्त आदि का कोई भेदभाव नहीं है, यहाँ तो द्वार स्त्री-पुरुष, नीच-ऊँच सभी के लिए उन्मुक्त है। परमदयालु भगवान् श्री रामचन्द्र

१—वही, पृ० १५०।

इनकी अपेक्षा नहीं करते हैं, वे तो केवल भाव के भूखे हैं—भक्तों की अनन्य शरणागति के वे वश में है। कबीरदास का पक्का विश्वास था कि भगवान् का भक्त होने के लिए अनन्यशरणागति को छोड़ कर अन्य किसी भी विशेषण की आवश्यकता नहीं है।

शास्त्रकारों ने प्रपत्ति के ६ भेद किए हैं—अनुकूलता का संकल्प, प्रतिकूलता का परित्याग, रक्षण विषयक विश्वास, गोप्तृत्व वरण, आत्म निक्षेप और कार्पण्य; इनमें से प्रत्येक के कायिकी, वाचिकी तथा मानसी और सात्विकी, राजसी तथा तामसी आदि के आधार पर तीन-तीन भेद और किए गए हैं। कबीरदास ने ६ प्रमुख भेदों को ही स्वीकार किया है। प्रपत्ति के विशेष विस्तार में वे नहीं गए। नीचे कुछ उदाहरणों से अपने मत की व्याख्या करने की चेष्टा की जा रही है।

कः अनुकूलता का संकल्पः

कबीर देवल ढहि पड्या ईंट भई सैं बार।
करि चिजारा सौं प्रीतड़ी, ज्यों ढहै न दूजीबार॥

—वही, पृ० २२

मेर मिटी मुकता भया पाया ब्रह्म विसास।
अब मेरे दूजा को नहीं एक तुम्हारी आस॥

—वही, पृ० ५६

खः प्रतिकूलता का परित्यागः इस सम्बन्ध में कबीरदास ने नारी, दुर्जन, संसार, काम-क्रोधादि, अहंकारादि, विषय-वासना, कुटिलता आदि के परित्याग पर विशेष बल दिया है, क्योंकि ये भक्ति-विरोधी हैं—

जानि बूझि सांचहिं तजैं करैं झूठ सूँ नेह
ताकी संगति रामजी, सुपिनैं ही जिनि देहु

—वही, पृ० ५०

नारि नसावै तीनि सुख जानर पासै होई।
भगति मुकुति निज ज्ञान मैं, पैसि न सकई कोई॥

—वही, पृ० ४०

कबीर हरि की भगति करि तजि विषयारस चोज।
बार बार नहिं पाइए मनिषा जन्म की मौज॥

—वही, पृ० २४

मैंमन्ता मन मारि दे, नान्हा करिकरि पीस।
तब सुख पावै सुन्दरी, ब्रह्म झलक्कै सीस॥

—वही, पृ० २६

इस प्रकार अनेक साखियाँ एवं पद उदाहरण स्वरूप दिये जा सकते हैं।

ग: रक्षणविषयक विश्वास—भगवान् भक्तों की रक्षा करते ही हैं, कबीर का यह दृढ़ विश्वास है। वे कहते हैं :

उस संम्रथ का दास हौं कदे न होइ अकाज।
पतिव्रतानांगी रहै तौ उसही पुरिष कौ लाज॥

—क० ग्र०, पृ० २०

च्यन्ता न करि अच्यन्त रहु साईं है सम्रथ।
पसु पंषेरू जीव जंत तिनकी गाँडि किसा ग्रन्थ॥

—वही, पृ० ५८

राम नाम सूं दिल मिली जन हम पड़ी बिराइ।
मोहिं भरोसा इष्ट का बन्दा नरक न जाइ॥

—वही, पृ० ५८

कबीर तूं काहे डरै सिर परि हरि का हाथ।
हस्ती चढ़ि नहिं डोलिये, कूकर भुसैं जु लाख॥

—वहीं, पृ० ५८

इसी प्रकार अनेक पद इस बात के सूचक हैं कि कबीरदास भगवान् राम को सर्व समर्थ एवं रक्षक स्वीकार करते थे।

घ: गोप्तृत्ववरण :—

कबीर केवल राम की तू जिनि छांडै ओट।
घण अहरणि बिचि लोह ज्यूं घणी सहै सिर चोट।

—वही, पृ० २६

निगम जाकी साखि बोलैं, कहैं सन्त सुजान।
जन कबीर तेरे सरन आयौ राखि लेहु भगवान्॥

—वही, पृ० १६०

ङ: आत्मनिक्षेप—

है हरिजनथैं चूक परी, जे कछु आहि तुम्हारौ हरी।
मोर तोर जब लगि मैं कीन्हां, तब लगि त्रास बहुत दुख दीन्हां।

सिध साधिक कहैं हम सिधि पाई, रामनाम बिनु सबै गंवाई,
जे बैरागी आसपियासी तिनकी माया कदे न नासी।
कहैं कबीर मैं दास तुम्हारा माया खण्डन करहु हमारा॥

—वही, पृ० १३५

निगम जाकी साखि बोलैं कहैं सन्त सुजान।
जन कबीर तेरी सरन आयो राखि लेहु भगवान्॥

—वही, पृ० १६०

व: कार्पण्य :

कहै कबीर सुनि केसवा तूं सकल वियापी।
तुम्ह समान दाता नहीं, हमसे नहीं पापी॥

—वही, पृ० १४८

जिहि घरि राम रह्यो भरपूरि।
ताकी मैं चरनन की धूरि।

—क० ग्र०, पृ० १२८

कारनि कवनि आइ जग जन्म्या। जनमि कवन सचुपाया।
भौ जल तिरण चरण-च्यन्तामणि, ताचित घड़ी न लाया॥
पर निन्दा पर धन पर दारा, पर अपवादैं सूरा।
ताथैं आवागमन होइ फुनि फुनि तापर संग न चूरा॥
काम क्रोध माया मद मंछर ई संतति हम माहीं।
दया धरम ग्रान गुर सेवा, ये प्रभू सूपिनैं नाहीं॥
तुम्ह कृपाल दयाल दमोदर, भगत बछल भौ हारी।
कहै कबीर धीर मति राखहु, सासति करौ हमारी॥

—वही, पृ० १५३

छ: कायिकी-वाचकी प्रपत्ति में कबीर को विश्वास नहीं था। इसी प्रकार राजसी और तामसी प्रपत्ति में उनकी रंच मात्र आस्था नहीं थी। मानसी-सात्विकी प्रपत्ति सर्वत्र ही उनकी रचनाओं में देखी जा सकती है।

कबीरदास में आर्त्त प्रपन्न की सभी विशेषताएँ वर्तमान थीं। आर्त्त होकर ही वे कहते हैं :—

कहा करौं कैसे तरौं भौजल अति भारी।
तुम्ह सरणागति केसवा राखि राखि मुरारी॥

कहै कबीर सुनि केसवा तू सकल वियापी।
तुम्ह समान दाता नहीं हमसे नहीं पापी॥

—क० ग्र०, पृ०

कितनी वैष्णवी उक्ति है ?

माधौ मैं ऐसा अपराधी, तेरी भगति हेत नहीं साधी।
कारनि कवनआइ जगजन्म्या, जनमिकवन सचु पाया॥
भौ जल तिरण चरण-च्यन्तामणि ता चित घड़ी न लाया।
काम क्रोध माया मदमंछर, ये संतति हममाहीं।
दयाधरम ग्यांन गुर सेवा, ये प्रभु सुपिनैं नाहीं॥
तुम्ह कृपाल दयाल दामोदर भगत वछल भौहारी।
कहै कबीर धीर मति राखहु सासति करौ हमारी॥

—क० ग्र०, पृ० १५३

... ...

रांम राइ कासनि करौं पुकारा,
ऐसे तुम्ह साहिबजाननि हारा।

—वही, पृ० १५३

को काहू का मरम न जानै मैं सरनागति तेरी।
कहै कबीर वाप राम राया हुरमति राखहु मेरी॥

—वही, पृ० १७७

कबीरदास का यह भी विश्वास था कि भगवान् जीवों पर कृपा करते ही हैं। वे कहते हैं—

जप तप संजम सुंचि ध्यान, बन्दि परे सब सहित ग्यांन।
कहि कबीर उबरै द्वै तीनि, जापरि गोविंद कृपा कीन्हि॥

—वही, पृ० २१६

विषय-नियुक्ति के रूप में अर्चावतार में इनकी आस्था नहीं थी। वे कहते हैं—

नींव बिहूना देहुरा, देह बिहूंणा देव।
कबीर तहाँ विलम्बिया, करै अलष की सेव॥

—वही, पृ० १५

पाहण केरा पूतला, करि पूजै करतार।
इही भरोसै जे रहै, ते बूड़े कालीधार॥

—वही, पृ० ४३

हम भी पाहण पूजते होते बन के रोझ।
सतगुर की कृपा भई, डार्‌या सिरतें बोझ॥
सेवै सालिगराम कूं मन की भ्रान्ति न जाइ।
सीतलता सुपिनै नहीं दिन दिन अधकी लाइ॥

—वही, पृ० ४४

रामानन्द जी ने भक्ति का प्रमुख आवश्यक अंग माना है—न्यास। प्रवृत्ति से निवृत्ति न्यास की प्रथम विशेषता है। कबीरदास लिखते हैं—

दोजग तो हम अंगिया, यहु डर नाहीं मुझ।
भिस्त न मेरे चाहिये, बांझ पियारे तुझ॥
जब लगि भक्ति सकामतां, तब लगि निरफल सेव।
कहै कबीर वै क्यूं मिलै, निहकामी निज देव॥

—वही, पृ० १६

गुण गाए गुण नाम कटै, रटै न रांम वियोग।
अहिनिसि हरि ध्यावै नहीं, क्यूं पावै दुलभ जोग॥

—क० ग्र०, पृ० ७

यह ध्यान अविच्छिन्न होना चाहिए—

सो ध्यान धरहु जिन बहुरि न धरना। ऐसे मरहु जि बहुरि न मरना

—वही, पृ० ३०६

ध्येय भगवान् के गुण अनंत हैं—

सात समंद की मसि करौं, लेखनि सब बन राय।
धरती सब कागर करौं, हरि गुण लिखा न जाय॥

वही, पृ० ६२

गोव्यन्द के गुण बहुत हैं लिखे जु हिरदय मांहि।
डरता पाणी ना पिऊँ मति वै धोये जाहिं॥

वही, पृ० ७६

भगवान् का लावण्य भी अपूर्व है—

कबीर देख्या एक अंग, महिमा कही न जाय ।
तेज पुंज पारस धणी नैनूं रह्या समाइ ।।

—वही, पृ० १५

वे बड़े ही उदार हैं—

कबीर केसव की दया, संसा घाल्या धोइ ।
जे दिन गये भगतिबिनु ते दिन सालै मोहिं ।

—क० ग्र०, पृ० ७६

ताथैं सेविए नारायणा, प्रभु मेरौ दीनदयाल दया करणा ।।

—वही, पृ० १७२

कबीर कौ स्वामी गरीब निवाज ।

—वही, पृ० २६६

वे बड़े ही भक्त-वत्सल भी हैं—

तुम कृपाल दयाल दमोदर भगत बछल भौ हारी ।
कहै कबीर धीर मति राखहु सासति करौ हमारी ।।

—वही, पृ० १५३

भगवत्कृपा-प्राप्ति के साधन—कबीरदास ने कथा-श्रवण में विशेष आस्था नहीं दिखलाई है । इसका कारण सम्भवतः भगवान् के निर्गुण रूप में उनका विश्वास था । हां, भगवान् के गुण-कथन में उन्होंने अपना दृढ़ विश्वास अवश्य ही व्यक्त किया है । वे कहते हैं—

गाया तिनि पाया नहीं, अणगायां थैं दूरि ।
जिनि गाया विसवास सूं, तिन रांम रह्या भर पूरि ।।

—वही, पृ० ५६

जब लग विकल भई नहि बानी । भजि लेहि रे मन सारंग पानी ।।

—वही, पृ० २८३

करता केरे बहुत गुण औगुण कोई नाहिं ।
जो दिल खोजौं आपणां तौ सब औगुण मुझ मांहि ।।

—वही, पृ० ८५

भगवन्नाम स्मरण में तो कबीरदास की बहुत ही पक्की आस्था है। अपने गुरुदेव से उन्होंने एक यही मंत्र पाया था, जिसके बल पर वे इतने महान् भक्त हो गए।

कबीर साहब के ग्रन्थों में स्मरण के सम्बन्ध में अनेक साखियाँ तथा पद मिलते हैं। कुछ साखियाँ तथा पद यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं, 'सुमिरण कौ अंग' तो इनसे भरा पड़ा है—

कबीर कहै मैं कथि गया, कथि गया ब्रह्म महेश।
राम नांव ततसार है, सब काहू उपदेस॥

—वही, पृ० ५

कबीर सुमिरणसार है, और सकल जंजाल।
आदि अंत सब सोधिया, दूजा देखौं काल॥

—वही, पृ० ५

तूं तूं करता तूं भया, मुझ मैं रही न हूं।
वारी फेरी बलि गई, जित देखौं तित तूं॥

—वही, पृ० ५

केसव कहिकहि कूकियै, ना सोइये असरार।
राति दिवस कै कूकणैं, कबहूँ लगै पुकार॥

वही, पृ० ६

रामं सिमिरि राम सिमिरि राम सिमिरि भाई।
राम नाम सिमरन बिन बूड़ते अधिकाई॥

—वही, पृ० ३२०

कहत कबीर सुनहु रे लोई। रामनाम बिन मुकुति न होई॥

—वही, पृ० ३२२

नामस्मरण के सम्बन्ध में रामानन्द जी ने राम षडक्षरमंत्र, द्वयमं चरममंत्र आदि का विधान किया है। कबीरदास का इनमें विश्वास नहीं है, केवल राम नाम का ही स्मरण करना चाहते हैं।

कबीर पढ़िवा दूरि करि पुस्तक देइ बहाइ।
बावन अषिर सोधि करि ररै ममै चित लाइ॥

पृ० ३८

रामनाम सब कोइ कहै कहिबे बहुत विचार।
सोई राम सती कहै, सोई कौतिग हार॥
आगि कह्यां दाझै नहीं जे नहीं चम्पै पाइ।
जब लग भेद न जाणिए, राम कह्या तौ कांइ॥

—वही, पृ० ५५

रामानन्द की ही भाँति कबीरदास ने भी **भगवत्कैंकर्य** को बहुत अधिक महत्व दिया है। सेवा यदि करनी हो तो केवल राम और सन्तों की ही करनी चाहिए, क्योंकि उनमें से एक तो मुक्ति का दाता है और दूसरा नाम स्मरण कराता है—

कबीर सेवा को दुइ भले एक सन्तु इकु रामु।
रामजु दाता मुकुति कौ सन्तु जपावैं राम॥

—वही, पृ० २६०

षोडशोपचार पूजा में कबीरदास का कोई विश्वास नहीं था—

नींव बिहूंणा देहुरा, देह बिहूंणा देव।
कबीर तहां विलम्बिया, करै अलष की सेव॥

—वही, पृ० १५

फिर भला वे अर्चावतार की पूजा में कैसे विश्वास कर सकते थे? उन्होंने उस ब्रह्म की आरती उतारी है जो निरन्तर है, निरन्जन है और निर्विकार है।

निरभिमानिता को कबीरदास ने भी पर्याप्त महत्व दिया है। इसमें उनका बहुत ही पक्का विश्वास था। इस सम्बन्ध में कबीरदास ने अनेक सुन्दर उक्तियाँ कही हैं। उनमें से कुछ यहाँ दी जा रही हैं—

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरिहैं मैं नाहिं।
सब अंधियारा मिट गया जब दीपक देख्या मांहि॥

—वही, पृ० १५

मैं मैं बड़ी बलाइ है, सकै तौ निकसी भागि।
कब लग राखौं हे सखी रूई लपेटी आगि॥

—वही, पृ० २७

आपा मेट्यां हरि मिलैं हरि मेट्यां सब जाइ।

—वही, पृ० ६५

कबीर चेरा संत का, दासनि का परदास।
कबीर ऐसे ह्वै रह्या ज्यूं पांऊँ तलि घास॥

—वही, पृ० ६५

रोड़ा ह्वै रहौ बाट का तजि पाषंड अभिमान।
ऐसा जे जन ह्वै रहै, ताहि मिलै भगवान॥

—वही, पृ० ६५

इस प्रसंग में कबीरदास ने अपने को सबसे बुरा, सन्तों के चरणों की धूलि तक बन जाने को कहा है।

जिहि घटि राम रहे भरपूरि। ताकी मैं चरनन की धूरि॥

—वही, पृ० १२८

जाति-पांति-कुल सभी के अभिमान को मिटा कर ही 'साधुत्व' की प्राप्ति की जा सकती है।

रामानन्द की ही भाँति कबीरदास विश्व भर में अपने आराध्य के रूप का दर्शन करते थे। पर साकारता में उनका विश्वास नहीं था। उनके मत से यह समस्त जगत् ब्रह्म की ही विभूति है। उनके नेत्रों में राम ही रमे थे, दूसरा समा नहीं सकता था।[१] वेद पढ़ने का उद्देश्य ही सब घट में राम को देखना है।[२] 'खालिक खलक़ खलक में खालिक सब घट रह्यौ समाई।'[३] 'एक राम देख्या सबहिन मैं कहै कबीर मनमाना।'[४]

अरध, उरध दसहूँ दिस जित तित पूरि रह्या राम राई।

—वही, पृ० १०६

जल थल पूरि रहे प्रभु स्वामी। जित देखों तत अंतर्यामी॥

—वही, पृ० २६६

रामानन्द स्वामी ने गुरु को भी भगवत्कृपा प्राप्ति का एक प्रमुख साधन माना है। कबीरदास के मत से सतगुरु के समान न तो कोई सगा है, और न हरिजू के समान कोई हितकारी।[५] सतगुरु की महिमा अनन्त है, उन्होंने अनंत उपकार

१—क० ग्रं०, पृ० १६।
२—वही, पृ० १०१।
३—वही, पृ० १०४।
४—वही, पृ० १०५।
५—वही, पृ० १।

किया है, अनन्त नेत्रों को खोल कर उन्होंने अनन्त के दर्शन करा दिये ।[१] शूर वीर की भाँति गुरुदेव ने एक ही शब्द-तीर से कलेजे में छेद कर दिया ।[२] गूंगा वाचाल हो गया, बहरे के कान हो गए; पाँव रहते भी शिष्य पंगुल हो गया सतगुरु का बाण ही कुछ ऐसा था ।[३] सतगुरु लोक-वेद के अन्धकार में दीपक की भाँति है । वस्तुतः गुरु और गोविन्द दोनों एक हैं । जिस गुरु ने हृदय में ज्ञान की ज्योति जला दी, वह भूल न जाय, क्योंकि बिना गुरु के कोई गोविन्द को भी नहीं पा सकता । सत्य तो यह है कि जब भगवान् की कृपा होती है, तभी सतगुरु भी मिलता है ।

ग्यांन प्रकास्या गुर मिल्या, तो जिनि बीसरि जाइ ।
जब गोविन्द कृपा करी, तब गुर मिलिया आइ ॥

—क० ग्र०, पृ० २

इस प्रकार कबीरदास ने सतगुरु की प्रशंसा में अनेक साखियाँ एवं पद लिखे हैं ।

भगवत्कृपा प्राप्ति का एक अन्य साधन है, **सत्संग** । कबीरदास ने साधु को प्रत्यक्ष देवता ही कहा है । ब्राह्मण जगद्गुरु है पर वह साधु का गुरु नहीं होता । जो लोग हरिजनों से रूठ कर संसारी मनुष्यों से मित्रता करते हैं, वे कभी भी पल्लवित नहीं हो सकते । साधु की संगति कभी भी निष्फल नहीं हो सकती । साधु की संगति और हरिभजन के बिना मथुरा और काशी जाना व्यर्थ है । सन्तों का स्वभाव भी कुछ विचित्र ही होता है । वे कभी भी सज्जनता नहीं छोड़ सकते । चंदन जैसे सांपों से घिरा रहने पर भी विषैला नहीं होता, उसी प्रकार सज्जन शीतलता का परित्याग नहीं करते । सन्त निर्वैरी एवं निष्कामि होते हैं । वे विषय-वासना से न्यारे होते हैं । राम के वियोग में सन्त का शरीर विकल रहता है, उसे सहज ही पहचाना भी नहीं जा सकता । दिन प्रति दिन तम्बोली के पान के समान वह पीला पड़ता जाता है । साधु और वैष्णव दोनों ही कबीर के लिए पर्यायवाची शब्द से हैं । वे कहते हैं—

कबीर धनि ते सुन्दरी जिनि जाया वैसनौं पूत ।
राम सुमिरि निरभै हुआ, सब जग भया अऊत ॥

—क० ग्रं०, पृ० ५३

१—वही, पृ० १ ।
२—वही, पृ० १ ।
३—वही, पृ० २ ।

साषत बाभण जिनि मिलै, वैसनौ मिलै चंडाल।
अंकमाल दै भेटिये मानौ मिले गोपाल॥

—वही, पृ० ५३

वस्तुतः सन्त और राम एक ही हैं—

'संता कौ मत कोई निन्दहु संत राम है एको'

—वही, पृ० २७३

सभी सन्त होते भी नहीं। कबीरदास कहते हैं:—

तेरा जन एकआध है कोई।
काम क्रोध अरु लोभ विवर्जित हरिपद चीन्है सोई।
राजस तामस सातिग तीन्यूं ये सब तेरी माया।
चौथे पद को जे जन चीन्हैं तिन्हहिं परमपदपाया॥
अस्तुति निन्द्या आसा छाँड़ै, तजै मान अभिमाना।
लौहा कंचन समि करि देखै, ते मूरति भगवाना॥
च्यन्तै तौ माधौ च्यन्तामणि हरिपद रमै उदासा।
तृस्ना अरु अभिमान रहित है कहै कबीर सो दासा॥

—क० ग्र०, पृ० १५०

रामानन्द की ही भाँति कबीरदास भी काम क्रोधादि परित्याग को भक्ति का एक प्रधान साधन मानते थे। वे कहते हैं—

हाँसी खेलैं हरि मिलै, तो कौण सहै षरसान।
काम क्रोध त्रिष्णां तजै, ताहि मिलै भगवान॥

अहिंसा को भी स्वामी जी ने भक्ति का आवश्यक अंग माना है। कबीरदास अहिंसा के परमोपासक थे—

पापी पूजा बैसि करि भषै मांस मद दोइ।
तिनकी दष्या मुकति नहीं कोटि नरक फल होइ॥

—क० ग्र०, पृ० ४३

भांग माछुली सुरापान जो जो प्रानी खांहि।
तीरथ बरत नेम किये ते सबै रसातल जांहि॥

—वही, पृ० २५६

महाव्रतों में कबीरदास का कोई विश्वास नहीं था। वे इन्हें केवल ढोंग ही समझते थे। उनका कहना था—

जप तप दीखै थोथरा, तीरथ ब्रत वेसास।
सूवै सँबल सेविया, यौं जग चल्या निरास॥

—क० ग्रं०, पृ० ४४

भक्त-भगवान् के सम्बन्ध—कबीरदास ने भक्त-भगवान् में, पिता-पुत्र सम्बन्ध को स्वीकार किया है। वे कहते हैं—

हरि जननी मैं बालिक तेरा। काहे न औगुण बकसहु मेरा॥

—क० ग्र०, पृ १२३

औगुण मेरे बाप जी बकस गरीब नेवाज।

—कबीर-ग्रन्थावली

पति-पत्नी सम्बन्ध को लेकर उन्होंने बहुत कुछ कहा है, किन्तु उनकी सारी आस्था स्व-स्वामी भाव में ही थी। इसी कारण माधुर्य-भाव से ओतप्रोत होते हुए भी उनकी वाणी में दास्यभावना ही अधिक मुखर हो सकी है।

कबीरदास और दास्यभक्ति—रामानन्द स्वामी ने दास्यभक्ति की सर्व-प्रमुख विशेषता मानी है भगवत्कैंकर्य। कबीरदास ने स्पष्ट ही कहा है—

जाके राम सरीखा साहिब भाई, सो क्यूं अनत पुकारन जाई॥
जा सिरि तीनि लोक कौ भारा, सो क्यूं न करै जन की प्रतिपारा॥
कहै कबीर सेवौ बनवारी, सींचौ पेंड़ पीवैं सब डारी॥
अब मोहिं राम भरोसा तेरा, और कौन का करौं निहोरा।

—क० ग्र०, पृ० १२४

सिव सनकादिक नारदा, ब्रह्म लिया निज वास जी।
कहै कबीर पद पंकज्या, अब नेड़ा चरण निवास जी॥

—कबीर ग्र०, पृ० ६८

इस भक्ति में स्वामी जी के मत से अनन्यता अत्यन्तावश्यक है। कबीरदास केवल मात्र राम के ही दास थे—

मैं गुलाम मोहिं बेचि गुसाईं। तन मन धन मेरा राम जी कै ताईं॥

अर्चावतार की पूजा और सेवा में कबीरदास का कोई विश्वास नहीं था। हाँ, आत्मदोषों की ओर उनकी दृष्टि पूरी तरह रहती है। वे कहते हैं—

गोविंद हम ऐसे अपराधी!

बिनि प्रभु जीउ पिण्ड था दीया तिसकी भाव भगति नहिं साधी ॥

—क० ग्र०, पृ० २७६

पर धन पर तन परतिय निन्दा परअपवाद न छूटै।
आवागमन होत है फुनि फुनि इहु पर संग न छूटै ॥
जिहि घर कथा होत हरिसंतन इक निमष न कीनौं फेरा।
लम्पट चोर धूत मतवारे तिन संगि सदा बसेरा ॥
काम क्रोध माया मद मत्सर ए सैन्या मो माहीं।
दयाधर्म औ गुरु की सेवा ये सुपनेतरि नाहीं ॥
दीन दयालु कृपालु दमोदर भगति बछल भौ हारी।
कहत कबीर भीर जनि राखहु हरि सेवा करौं तुम्हारी ॥

—क० ग्र०, पृ० २७६

इसी प्रकार अनेक पदों में कबीरदास ने आत्मदोषों का उद्घाटन किया है। कबीरदास ने भगवान् से अपनी रक्षा की प्रार्थना भी की है—

हरि जननी मैं बालक तेरा, काहे न अवगुन बकसहु मेरा ॥
सुत अपराध करै दिन केतै, जननी कै चित रहै न तेते ॥
करगहि केस करै जौ बाता, तऊ न हेत उतारै माता ॥
कहै कबीर एक बुद्धि विचारी, बालक दुखी दुखी महतारी ॥

—क० ग्र०, पृ० १२४

इस प्रकार कबीरदास की दास्यभक्ति पर रामानन्द जी का प्रभाव स्पष्ट है।

कबीरदास और माधुर्य भाव—रामानन्द जी ने भक्त-भगवान् में भार्या-भर्तृत्व सम्बन्ध स्वीकार तो किया था, किन्तु माधुर्यभाव की उपासना पर उन्होंने तनिक भी बल नहीं दिया था। कबीरदास की भी भक्ति मूलतः दास्य भाव ही की है, किन्तु माधुर्य-भाव से सिक्त अनेक सुन्दर-सुन्दर पद उन्होंने लिखे हैं। नीचे उनकी इस उपासना-पद्धति का एक संक्षिप्त परिचय मात्र दिया जायगा।

कबीरदास राम को ही अपना पति मानते थे—

हरिमोरा पीउ माई हरि मोरा पीउ।
हरि बिन रहि न सकै मेरा जीव।

हरि मेरा पीउ मैं हरि की बहुरिया। रांम बड़े मैं छुटक लहुरिया।

किया स्यंगार मिलन कै तांई। काहै न मिलौ राजा राम गुसाईं॥
अबकी बेर मिलन जो पाऊँ। कहै कबीर भौजलि नहि आऊँ॥

—क० ग्र०, पृ० १२५

राम से अपने आध्यात्मिक विवाह के गीत भी कबीरदास ने लिखे हैं—

दुलहनीं गावहु मंगलचार। हम घरि आये हो राजा रांम भरतार॥

—क० ग्र०, पृ० ८७

सखी सुहाग राम मोहिं दीन्हा।

—क० ग्रं०, पृ० ८७

लगता है, कभी दोनों में मिलन भी हुआ था—

अब तोहि जान न दैहूँ रामपियारे, ज्यूं भावै त्यूं होह हमारे।

—क० ग्रं०, पृ० ८७

किन्तु, यह मिलन स्थायी नहीं है। विरह की अधिकता अपनी चरम सीमा पर कबीरदास में पहुँच गई है। लोकलाज विरह को और भी बढ़ाती है—

बाल्हा आव हमारे ग्रेह रे। तुम बिन दुखिया देह रे॥
सबको कहै तुम्हारी नारी। मोकौं इहै अदेह रे।
एकमेक ह्वै सेज न सोवै। तब लग कैसा नेह रे॥
आन न भावै नींद न आवै। ग्रिह बन धरै न धीर रे।
ज्यूं कांमी कौं कांम पियारा। ज्यूं प्यासे कूं नीर रे॥
है कोई ऐसा पर उपकारी। हरि सूँ कहै सुनाइ रे।
ऐसे हाल कबीर भये हैं। बिन देखे जीउ जाइ रे॥

—क० ग्र०, पृ० १६२

"मैं तुम्हारे पास आ नहीं सकता, न तो तुम्हें बुला ही सकता हूँ; तो क्या विरह से तपा तपा कर तुम मेरा प्राण ही ले लोगे? मेरे नेत्रों से रहट की भाँति दिन-रात जल गिर रहा है। पपीहा की भाँति पी-पी कर रहा हूँ, हे राम! तुम कब मिलोगे? हे सखी, बिना रोये वह प्रियतम मिलता भी तो नहीं? विरह की आग में जल रहा हूँ। सारा संसार सुखी है, केवल कबीर ही दुखी है। विरह की आग बुझाने यदि सरोवर को भी जाऊँ तो वह भी मुझे तप्त ही दिखाई पड़ता है। राम के बाणों ने शरीर को इस प्रकार बेंध दिया है कि चोट दिखलाई तक नहीं पड़ती। राम के बिना इस तन की तपन मिट ही नहीं सकती।" "हे स्वामी, तुम तो अन्तर्यामी हो, मैं दिन-रात तुम्हारा पथ देखा करती हूँ। आँखों

में झांई पड़ गई है, जीभ पर छाले पड़ गए हैं—राम-राम पुकारते, मेरा राम न जाने कब घर आवेगा ? दिन-रात मेरा मन उदास रहा करता है। जिस प्रकार चातक को केवल स्वाती की बूंद ही चाहिए उसी प्रकार हे राम! मुझे तुम्हारे रूप-दर्शन मात्र की कामना है। वसन्त ऋतु बड़ी ही दुखदायिनी हो गई है। सारा संसार आनन्दमग्न है, पर मैं विरहिणी विरह के दीप जलाए बैठी हूँ।"

माघ मास रुति कवल तुषारा। भयौ बसंत तब बाग संभारा।।
अपनै रंगि सब कोइ राता। मधुकर बास लेहि मैमंता।।
बन कोकिला नाद गहगहाना। रुति बसन्त सबकै मनमाना।।
बिरहन्य रजनी जुग प्रति भइया। बिन पिव मिले कलपटलि गइया।।
आत्मां चेति समझि जिवजाई। बाजी झूठ रांम निधि पाई।।
भया पयाल निति बाजहिं बाजा। सहजैं रांम नांम मन राजा।।

जरत जरत जल पाइया सुख सागर का मूल।
गुर प्रसादि कबीर कहि भागी संसै सूल।।

क० ग्र०, पृ० २३७

इस प्रकार माधुर्य भाव का विरह-पक्ष कबीरदास में बहुत उभरा हुआ है; यही उनकी जीवन-साधना थी।

भक्ति में उदारता—कबीरदास ने स्वामी रामानन्द की ही भाँति जाति-पाँति के बन्धन को नहीं माना था। वे कहते हैं—

कबीर गुरगरवा मिल्या रलि गया आंटै लूण।
जाति पाँति कुल सब मिटै नांव धरोगे कूण।

—क० ग्र०, पृ०, २

कुल खोयां कुल ऊबरे, कुल राख्याँ कुल जाइ।
राम निकुल कुल भेंटि लै सब कुल रह्या समाइ।।

—क० ग्र०, पृ० २५

"नहीं कोई ऊँचा है, न कोई नीचा है, यदि ब्राह्मण ब्राह्मणी का जाया है तो दूसरे मार्ग से क्यों नहीं आया ? तुर्कों ने भीतर ही 'खुतना' क्यों नहीं करवाया ? कबीरदास के मत से कोई 'मद्धिम' नहीं है। वही मद्धिम है जिसके मुख में राम का नाम नहीं है।" आगे भी वे कहते हैं—

जब लग ऊँच नीच करि जाना। ते पसुवा भूले भ्रम माना।।

—वही, पृ० १०६

ना मोहिं छानि न छापरी ना मोहि घर नहिं गाँउ ।
मति हरि पूछै कौन है मेरे जाति न नाँउ ॥

—वही, पृ० २५५

वलिहारी इहि प्रीति कौ जिहि जाति बरन कुल जाइ ।

—वही, पृ० १०२

इस प्रकार भक्ति के क्षेत्र में कबीरदास [illegible] के पक्के एवं दृढ़ विरोधी थे ।

रामानन्द की ही भाँति कबीरदास वैष्णव भक्त थे । वैष्णव और राम उनके दो ही मित्र थे, शाक्तों से उन्हें अपार घृणा थी । भक्तों को वे सर्वश्रेष्ठ मानते हैं-

ब्राह्मन गुरु है जगत का भगतन का गुरु नाहिं ।
उरझि उरझि कै पचमुआ चारहु वेदहु माहिं ॥

—क० ग्र०, पृ० २५६

इस प्रकार स्पष्ट है कि कबीरदास की भक्ति-पद्धति पर रामानन्द जी का प्रभाव पर्याप्त मात्रा में पड़ा है। वे स्वामी जी के बहुत अधिक ऋणी हैं । उन्होंने कहा भी है—

'सन्तो भक्ति सतो गुरु आनी ।'

ग—रामानन्द-सम्प्रदाय और मैथिलीशरण गुप्त

गुप्त जी की भक्ति-पद्धति

गुप्त जी को रामभक्ति का संस्कार अपने पिता जी तथा रामोपासिका माता जी से प्राप्त हुआ था । उनकी भक्ति दास्यभाव की है, वैसे उनका साम्प्रदायिक सम्बन्ध सख्यभाव से कराया गया था । अनेक स्थलों पर गुप्त जी ने दास्य-भाव के बड़े ही करुण उद्गार व्यक्त किए हैं । उन्होंने कहा भी है—

ईश चाहता है आत्मबलि ही स्वभक्तों की ।

—हिडिम्बा, सं० २००७, पृ० १६

तात श्रद्धा-भक्ति का तो भूखा भगवान भी ।

—युद्ध, सं० २००६, पृ० ४१

गुप्त जी ने भक्ति के भावपक्ष पर ही अधिक बल दिया है, कर्म पक्ष पर उतना नहीं । उन्होंने कहीं भी पंचसंस्कारों—मुद्रा, ऊर्ध्वपुण्ड्र, नामकरण, मन्त्रजाप,

तुलसीमाला-पर बल नहीं दिया है। परमात्मा राम के प्रति अपने अनन्य अनुराग को उन्होंने अनेक स्थलों पर व्यक्त किया है—

लोक शिक्षा के लिए अवतार जिसने था लिया।
निर्विकार निरीह होकर नर सदृश कौतुक किया॥
राम नाम ललाम जिसका सर्व मंगल धाम है।
प्रथम उस सर्वेश को श्रद्धा समेत प्रणाम है॥

—रंग में भंग, सं० २००६, पृ० १

धनुर्बाण या वेणुलो, श्याम रूप के संग।
मुझ पर चढ़ने से रहा राम दूसरा रंग॥

—द्वापर, सं० २००५, पृ० ६

वहाँ पंथ-भय क्या भला, मेरे अंध प्रबन्ध।
जहाँ खींचता है तुझे रामचरण-रज-गंध॥

—कुणालगीत, सं० २००६, पृ० ३

भक्ति की दूसरी विशेषता मानी गई है 'भगवान् की सेवा'। गुप्त जी ने राम-चरण-रज को बहुत ही मूल्यवान् माना है। उनके लिए भगवान् के चरणों की धूलि सोने की अपेक्षा कहीं अधिक मूल्य रखती है—गुह राम से कहता है—

क्षमा करो, इस भाँति न तुम तज दो मुझे।
स्वर्ण नहीं, हे राम, चरण रज दो मुझे॥

—साकेत, पृ० १०४

झंकार में कवि ने कहा है—

अब भी एक प्रश्न था कोऽहं, कहूँ-कहूँ जब तक दासोऽहं।
तन्मयता बोल उठी सोऽहं, बस हो गया सबेरा॥

—बाल बोध, (झंकार), पृ० १६

भक्ति की तीसरी प्रमुख विशेषता है, तैलधारावत् भगवन्नाम का स्मरण। साकेत में स्वयं राम ने कहा है—

जो नाममात्र ही स्मरण मदीय करेंगे।
वे भी भवसागर बिना प्रयास तरेंगे॥

—साकेत, पृ० १६७

गुरुकुल में भी कवि ने लिखा है—

जय कबीर नानक दादू का, बापू का वाणी विश्राम।
नव-नव रूप पुराण पुरुष उन, लीलाधाम राम का नाम॥

शुचि मानस में ही प्रतिबिम्बित होता है प्रभु का रस-रूप।
घट की डोर लगे जब हरि से पानी क्यों न भरें भव-कूप ॥
—गुरुकुल, स० २००८, पृ० ३

भक्ति की चौथी विशेषता है : विवेक। गुप्त जी ने भक्ति और ज्ञान के समन्वय पर सर्वत्र ही बल दिया है।

नवधा भक्ति और गुप्त जी—नवधाभक्ति में गुप्त जी की पूरी आस्था प्रतीत होती है। भगवान् के गुणों का श्रवण, उनके यश का कीर्तन, उनका स्मरण, उनकी सेवा, उनकी वंदना, उनकी दासता, उनमें आत्मार्पण करना, उनको अपना सखा मानना आदि ९ प्रकार की भक्ति को नवधाभक्ति के नाम से अभिहित किया गया है। गुप्त जी ने इनमें नाम स्मरण, सेवा, आत्मार्पण आदि पर विशेष बल दिया है। 'साकेत' में स्वयं राम ने नाम स्मरण को बड़ा महत्व दिया है। भगवान् की सेवा के सम्बन्ध में गुप्त जी के जो उद्‌गार हैं, उनमें से कुछ प्रमुख का उल्लेख अभी-अभी किया जा चुका है। आत्मसमर्पण के सम्बन्ध में निम्नलिखित पंक्तियां विशेष उल्लेखनीय हैं—

आया यह दीन आज चरणशरण आया।
हाय! सौ उपाय किये फल न एक पाया॥
भाल तन्तु डाल डाल था बुना विशाल जाल।
आप फंसा हा कृपाल! मकड़ जाल छाया॥
सर्व अहंकार गर्व, नाथ हुआ आज खर्व।
पाऊं अब प्रगति पर्व, मिटे मोह माया॥
—झंकार-शरणागत, पृ० ३८; अथवा पृ० ४३

भगवान् के नाम-रूप-गुण तथा लीला से गुप्त जी का अद्‌भुत प्रेम है। वे कहते हैं—

राम! तुम्हारे इसी धाम में नाम रूप गुण लीला लाभ।
इसी देश में हमें जन्म दो, लो प्रणाम हे नीरज नाभ॥
—यशोधरा, पृ० ११

वे दिन-रात भगवान् में ही रमे रहना चाहते हैं—

राम, तुम मानव हो, ईश्वर नहीं हो क्या?
विश्व में रमे हुये नहीं सभी कहीं हो क्या?

शुचि मानस में ही प्रतिबिम्बित होता है प्रभु का रस-रूप।
घट की डोर लगे जब हरि से पानी क्यों न भरें भव-कूप॥
—गुरुकुल, स० २००४, पृ० ३

भक्ति की चौथी विशेषता है: विवेक। गुप्त जी ने भक्ति और ज्ञान के समन्वय पर सर्वत्र ही बल दिया है।

नवधा भक्ति और गुप्त जी—नवधाभक्ति में गुप्त जी की पूरी आस्था प्रतीत होती है। भगवान् के गुणों का श्रवण, उनके यश का कीर्तन, उनका स्मरण, उनकी सेवा, उनकी वंदना, उनकी दासता, उनमें आत्मार्पण करना, उनको अपना सखा मानना आदि ९ प्रकार की भक्ति को नवधाभक्ति के नाम से अभिहित किया गया है। गुप्त जी ने इनमें नाम स्मरण, सेवा, आत्मार्पण आदि पर विशेष बल दिया है। 'साकेत' में स्वयं राम ने नाम स्मरण को बड़ा महत्व दिया है। भगवान् की सेवा के सम्बन्ध में गुप्त जी के जो उद्गार हैं, उनमें से कुछ प्रमुख का उल्लेख अभी-अभी किया जा चुका है। आत्मसमर्पण के सम्बन्ध में निम्नलिखित पंक्तियां विशेष उल्लेखनीय हैं—

आया यह दीन आज चरणशरण आया।
हाय! सौ उपाय किये फल न एक पाया॥
भाल तन्तु डाल डाल था बुना विशाल जाल।
आप फंसा हा कृपाल! मकड़ जाल छाया॥
सर्व अहंकार गर्व, नाथ हुआ आज खर्व।
पाऊं अब प्रगति पर्व, मिटे मोह माया॥
—झंकार-शरणागत, पृ० ३८; अथवा पृ० ४३

भगवान् के नाम-रूप-गुण तथा लीला से गुप्त जी का अद्भुत प्रेम है। वे कहते हैं—

राम! तुम्हारे इसी धाम में नाम रूप गुण लीला लाभ।
इसी देश में हमें जन्म दो, लो प्रणाम हे नीरज नाभ॥
—यशोधरा, पृ० ११

वे दिन-रात भगवान् में ही रमे रहना चाहते हैं—

राम, तुम मानव हो, ईश्वर नहीं हो क्या?
विश्व में रमे हुये नहीं सभी कहीं हो क्या?

तब मैं निरीश्वर हूँ, ईश्वर क्षमा करे।
तुम न रमो तो मन तुममें रमा करे॥

—साकेत, पृ० ६

राम का अवतार ही दोनों के दुःख को दूर करने के लिए हुआ था, भाई के लिए उन्होंने राज्य छोड़कर बनवास लिया और राक्षसों को मार कर धरती के कष्ट को दूर किया। कवि इस युद्ध वीर राम की विजय चाहता है :—

आप अवतीर्ण हुए देख दुःख जन के,
भ्रातृ हेतु राज्य छोड़ बासी बने वन के।
राक्षसों को मार भार मेटा धराधाम का,
बढ़े धर्म, दया, दान, युद्धवीर राम का॥

—सिद्धराज, पृ० ५

भक्ति के अन्य आवश्यक अंगों में निरभिमानिता, गुरुसेवा, सत्सङ्ग, काम-क्रोधादि का परित्याग, अहिंसा, महाव्रतों का पालन, प्रपत्ति और न्यास आदि प्रमुख माने गए हैं। सामान्यतया गुप्त जी की इनमें आस्था प्रतीत होती है। हाँ, कहीं स्फुट रूप से उन्होंने इन पर अधिक नहीं लिखा है, पर इनमें उनका विश्वास सर्वत्र देखा जा सकता है। कितनी निरभिमानिता से वे कहते हैं :—

त्याग न तप केवल यह तूंबी, अब रह गई हाथ में मेरे।
आ बैठा हे राम! आज मैं लेकर इसे द्वार पर तेरे॥

—झंकार, पृ० ४३

और, 'कण कण में वह सत्ता है, जिसकी नहीं इयत्ता है'

—वैतालिक, पृ० १२

कह कर वे विश्व भर में अपने परमाराध्य की सत्ता का अनुभव करते हैं। आगे उन्होंने इसे और भी स्पष्ट कर दिया है—

कहते हो कि कहाँ है वह, देखो जहाँ तहाँ है वह।
किसी ओर ग्रीवा मोड़ो, कन्धे से कन्धा जोड़ो॥

—वही, पृ० १८

प्रपत्ति-मार्ग और गुप्त जी—प्रपत्ति-मार्ग में गुप्त जी की पूरी आस्था है। वे राम-चरण-रज-गंध पाकर ही सन्तुष्ट हो जाते हैं, उन्हें स्वर्ग नहीं चाहिए। झंकार में तो उन्होंने भगवान् की निर्हेतुक कृपा का बड़ा स्मरण किया है। निरहंकार होकर उन्होंने साकेत में लिखा है—

भाग में रामानन्दी कवियों की सूची के साथ ही इनमें से कुछ प्रमुख कवियों की रचनाओं की भी सूची दे दी जा रही है।

रामानन्द-सम्प्रदाय की भक्ति-पद्धति का विवेचन उपस्थित करते समय पीछे इन समस्त कवियों की भक्ति-भावना का विवेचन विस्तार से किया जा चुका है। अतः अलग-अलग इनके मत का विस्तृत परिचय देना अनावश्यक सा प्रतीत होता है। माधुर्य भक्ति के प्रवर्त्तक थे अग्रदेव और उनके द्वारा स्थापित रसिक-सम्प्रदाय को आधुनिक युग में अयोध्या के जानकीघाट के महंथ रामचरणदास जी ने बहुत ही दृढ़ता प्रदान की। रामचरण जी ने अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया। 'रसमालिका', अष्टयाम, कवितावली, गुटका, दृष्टान्त बोधिका, पदावली, रामचरित्र, राममाहात्म्य, महारासोत्सव, बृहत्कौशल खंड आदि ग्रन्थों द्वारा उन्होंने अग्रस्वामी द्वारा प्रवर्तित अष्टयामीयोपासना को पल्लवित किया तथा रामरास का बहुत ही विस्तृत वर्णन किया। माधुर्य भक्ति में उन्होंने 'स्वसुख' का भी विधान किया। कृपानिवास जी ने 'तत्सुख' का विधान किया था। रामचरण जी के शिष्य जीवाराम जी थे। 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' आपकी ही कृति है। इस ग्रन्थ में ६४ प्रकार की भक्ति का निर्देश किया गया है। जीवाराम जी के उपरान्त माधुर्य भक्ति बहुत ही पल्लवित एवं पुष्पित हुई। पीछे रामानन्द-सम्प्रदाय का इतिहास प्रस्तुत करते समय उसमें माधुर्य भाव की उत्पत्ति एवं उसके विकास का भी इतिहास प्रस्तुत किया जा चुका है, साथ ही उसकी मानसी साधना एवं वाह्य-सेवा प्रणाली पर पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है। वर्तमान काल में सखी-भाव की भक्ति रामानन्द-सम्प्रदाय की प्रधान भक्ति-पद्धति हो गई है। इस प्रणाली के भक्त कवियों में अग्रदेव (अग्रअली), नाभादास (नाभाअली), कृपा-निवास, बालअली, रामचरणदास, युगलप्रिया (जीवाराम), युगलानन्यशरण, जनकराजकिशोरी शरण और मधुर अली के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनकी रचनाओं के प्रमुख विषय हैं : रामाष्टयाम, रासलीला, हिंडोल, वसंत, ऋतुओं एवं कालों के अनुकूल राम-सीता का शृंगार, हास-विलास, क्रीड़ा आदि का वर्णन। इस वर्णन में भोजनादि के विभिन्न प्रकारों का भी विस्तार से वर्णन मिलता है। कहीं-कहीं शृंगारादि चेष्टाओं का वर्णन करते समय अश्लीलता भी आ गई है।

सख्यभाव के प्रमुख भक्त थे राम सखे, श्यामसखे, कामदेन्द्रमणि और सीताराम शरणरसरंगमणि। रामसखे जी के ग्रन्थ हैं: पदावली तथा नृत्यराघव-मिलन। श्यामसखे का प्रमुख ग्रन्थ है 'राग प्रकाश'। राम की संक्षिप्त कथा,

मिथिला की होली, राम की वीरता, राम का प्रेम, पनघट लीला, हनुमान् की प्रशंसा आदि से सम्बन्धित पद दीपक, धनाश्री, मुलतानी, जैतश्री, भीमप्रकाश, [illegible], मालवी, गौरी, पूर्वी, इमनी, सोरठ, मेघमल्लार आदि विभिन्न रागों में इस ग्रन्थ में मिलते हैं। प्रवृत्ति राम के प्रेम के वर्णन की ओर अधिक है, जो निश्चित् रूप से माधुर्य भाव की भक्ति-पद्धति से प्रभावित होने के कारण है। 'रसरंगमणि' जी ने श्रीरामझांकी विलास, सरयूरसरंगलहरी, सरयूबारहमासी तथा अन्य अनेक ग्रन्थों के माध्यम से माधुर्योपासना युक्त सख्य भाव का निरूपण किया है। इन्होंने इस भक्ति में अष्टयामीयोपासना का भी प्रवेश किया, जिसका उल्लेख पीछे हो चुका है।

वात्सल्य भाव के प्रमुख भक्त सूरकिशोर जी थे। पीछे इनकी भक्ति-पद्धति का विस्तार से वर्णन किया जा चुका है।

वस्तुतः जैसा अनेक स्थलों पर कहा जा चुका है, रामानन्द-सम्प्रदाय में अब माधुर्यभाव की ही प्रधानता है और इसी से सम्बन्धित साहित्य की प्रमुखता से रचना की जा रही है। साहित्य की दृष्टि से ये रचनाएँ प्रायः निम्नकोटि की हैं। सत्य तो यह है कि तुलसी के उपरान्त इस संप्रदाय ने कोई उल्लेखनीय कवि उत्पन्न ही नहीं किया। अतः यहाँ उपर्युक्त संकेतों को ही पर्याप्त समझा गया। ग्रन्थ के परिशिष्ट भाग में इन कवियों की प्रकाशित एवं अप्रकाशित पुस्तकों की एक सूची दे दी गई है। समय आने पर इनका परिचय स्वतंत्र रूप से भी कराने की चेष्टा की जायगी।

दशम अध्याय

निष्कर्ष

किसी देश का दर्शन उसकी सभ्यता एवं संस्कृति का सुन्दरतम अंग है। उसका जन्म युग विशेष के वातावरण को अनुप्राणित करने वाली विचारधाराओं से ही होता है और युग की विभिन्न समस्याओं का अपने ढंग पर समाधान करना ही उसका उद्देश्य है। भारतीय दर्शन-प्रणालियों का उद्देश्य हमारी बौद्धिक-जिज्ञासा की परितृप्ति मात्र नहीं, वरन् दूरदर्शिता, अग्रचेतना एवं सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि से हमारे जीवन को प्रकाशमय कर देना रहा है। वर्तमान परिस्थितियों की विषमता से विक्षुब्ध होकर भारतीय मनीषी सत्यान्वेषण में लग जाता है और फिर जो कुछ उसके हाथ लगता है उसी से उसके जीवन-दृष्टिकोण का निर्माण होता है। रामानन्द का नाम भारतवर्ष के उन महान् चिन्तकों में बड़ी सरलता से लिया जा सकता है, जिन्होंने समय-समय पर रूढ़ियों के प्रति क्रियात्मक विद्रोह किया है और सामान्य जीवनक्रम को अपने ढंग से सुधारा भी है। मध्ययुगीन उत्तरभारत की प्रगतिशील चिन्ताधारा के रामानन्द ही एक मात्र प्रेरणा-स्रोत थे।

जिस काल में रामानन्द का आविर्भाव हुआ था, वह इस्लाम और काफ़िरों के संघर्ष का युग था—वह हिन्दू और मुसलमानों के संघर्ष का काल था, वह पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष एवं वैमनस्य का काल था। तलवार की नोक पर इस्लाम का प्रचार किया जा रहा था और काफ़िरों के मन्दिरों तथा धर्म ग्रन्थों का खुल कर विध्वंस किया जा रहा था। बलात् धर्म-परिवर्तन के इस युग में देश की त्रस्त जनता को किसी गम्भीर तत्ववाद की आवश्यकता नहीं थी। उसे तो एक ऐसा जीवन-पथ चाहिए था जिसका अनुसरण कर वह एक ओर अपने संघर्षमय जीवन को सरस बना सके और दूसरी ओर अपनेपन की भी रक्षा कर सके। इस्लाम ने हिन्दूधर्म पर वाह्य आघात तो किया ही था, उसकी निजी दुर्बलताओं

को भी उभार दिया था। वर्णव्यवस्था अब हिन्दुओं के लिए अभिशाप सिद्ध हो रही थी, हमारा आचार-विचार हमारे मार्ग का रोड़ा हो रहा था। रामानन्द का भक्तिमार्ग युग की इन्हीं समस्याओं का अपने ढंग का एक समाधान था।

रामानन्द के लिए तत्ववाद जीवनक्रम की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण नहीं था। पीछे उनकी दार्शनिक विचारधारा का अध्ययन करते समय यह देखा जा चुका है कि उन्होंने शंकर, रामानुज आदि आचार्यों की भांति ब्रह्मसूत्र, उपनिषद् एवं गीता पर विद्वत्तापूर्ण 'भाष्य' लिख कर किसी नये मतवाद की प्रतिष्ठा नहीं की; अपनी सुविधा के लिए उन्होंने विशिष्टाद्वैत मत को अपना लिया और इस दृष्टि से भारतीय दार्शनिक चिन्ताधारा में वे कोई नई कड़ी जोड़ने का प्रयास नहीं करते। हाँ, रामानुज के 'लक्ष्मी-नारायण' के स्थान पर 'सीता-राम' को अपना परमोपास्य मान कर उन्होंने अवश्य ही अपने लिए एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। उनके पूर्व अनेक रामकाव्य भक्ति और साहित्य दोनों ही दृष्टियों से लिखे गए थे। रामकथा की उत्पत्ति एवं विकास के वैज्ञानिक अध्ययन के प्रस्तुत-कर्ता डा० रेवरेण्ड फ़ादर कामिल बुल्के, एस० जे० ने सप्रमाण सिद्ध किया है कि वैदिक साहित्य में भी 'अनेक ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम रामायण के पात्रों के नामों से मिलते हैं, जिससे रामायण के पात्रों की ऐतिहासिकता के लिए भी किन्चित् आधार मिल जाता है, इतना ही स्पष्ट और असंदिग्ध प्रतीत होता है।'[1] और वाल्मीकीय रामायण[2] ने तो राम कथा को भारत तथा निकट-वर्ती देशों के साहित्य में एक अत्यन्त महत्व पूर्ण स्थान दिलाया और भारतीय संस्कृति का एक उज्ज्वलतम प्रतीक बना दिया। इसी प्रकार महाभारत तथा संस्कृत के धार्मिक एवं ललित साहित्य में भी राम-कथा का कोई-न-कोई रूप मिल जाता है। यही नहीं, बौद्धों और जैनियों तक ने रामकथा को अपना वर्ण्य-विषय बनाया है। सर भण्डारकर के मत से बहुत प्राचीन काल से ही राम को विष्णु समझा जाता रहा है, स्वयं शठकोपादि अनेक आल्वार भक्तों ने राम को अपना आराध्य मान कर भक्ति की थी; किन्तु, रामानन्द के पूर्व रामभक्ति को कभी भी साम्प्रदायिक-रूप नहीं मिला था। रामभक्ति के रामानन्द सर्वप्रथम आचार्य थे।

रामानन्द के भक्तिमार्ग में ज्ञान और कर्म को अधिक महत्व नहीं दिया गया है, भगवच्चरणों में पूर्ण आत्मसमर्पण कर देना ही भक्त के लिए पर्याप्त

१—रामकथा : उत्पत्ति और विकास, रेवरेण्ड फादरकामिल बुल्के, एस० जे०, पृ० २९।
२—वही, पृ० ३।

है। उनके भगवान् परम दयालु हैं, उन्हें ऊँच-नीच, धनी-निर्धन कुल, बल तथा जाति-पाँति आदि की रंचमात्र अपेक्षा नहीं है, वे तो केवल अनुराग के भूखे हैं। भक्त को किसी प्रकार के क्रिया-कलापादि की आवश्यकता नहीं है, शक्त होने पर वह महाभारत, रामायण, तथा भाष्यादि का अध्ययन कर काल-क्षेप कर सकता है, किन्तु अशक्त होने पर केवल मात्र गुरु मंत्र का जाप करता हुआ भी वह परमभक्ति का अधिकारी हो जाता है। रामानन्द की इस उदारता ने युग के धार्मिक संघर्ष को रोक दिया हो, इसके हमें निश्चित् प्रमाण नहीं मिलते; और न इसी बात के प्रमाण मिलते हैं कि उनकी विचारधारा से प्रभावित होकर हिन्दुओं ने शूद्रों तथा स्त्रियों को समाज में ऊँचा स्थान दे दिया हो। किन्तु, जहाँ तक विशुद्ध भक्ति का सम्बन्ध है, रामानन्द से ही प्रेरणा पाकर अनेक मुसलमानों ने रामभक्ति को अपने जीवन का अंग बना लिया था और शूद्र तथा स्त्री-भक्तों का ब्राह्मणों द्वारा भी सम्मान किया जाने लगा। कबीर को विधवा ब्राह्मणी का पुत्र और रैदास के पूर्वजन्म में ब्राह्मण-ब्रह्मचारी आदि होने की कथाओं को गढ़ कर हमारे विचारक वर्ग ने उनकी महत्ता के समक्ष नतमस्तक ही हो जाना उचित समझा। 'उत्तरी भारत की सन्त परम्परा' के विद्वान् लेखक पं० परशुराम चतुर्वेदी ने यह सप्रमाण सिद्ध किया है कि मध्ययुग की इस उदारता का स्रोत आज तक अवि-च्छिन्न गति से प्रवाहित होता आ रहा है। इस प्रकार रामानन्द की रामभक्ति विभिन्न वर्णों एवं वर्गों के पारस्परिक मिलन का केन्द्रविन्दु हो गई, जिसके फलस्वरूप लोगों में एक दूसरे को समझने की प्रवृत्ति बढ़ी और पारस्परिक सद्भावना, सहयोग एवं सहानुभूति का उदय हुआ। सुधारक रामानन्द का व्यक्तित्व कम महत्वपूर्ण नहीं है।

रामानन्द के व्यक्तित्व का एक तीसरा महत्वपूर्ण अंग यह भी था कि उनसे प्रेरणा पाकर जिन भक्तों ने अपने अनुभूत सत्य को वाणी-बद्ध किया, प्रायः उन सभों ने हिन्दी भाषा का ही उपयोग किया। फलस्वरूप मध्ययुगीन प्रगति-शील-चिन्ताधारा की श्रेष्ठतम विभूति हिन्दी भाषा को मिल सकी। पीछे आठवें-नवें अध्याय में रामानन्द स्वामी तथा उनके सम्प्रदाय की विचारधारा से प्रभावित हिन्दी के तीन सर्वश्रेष्ठ कवियों-तुलसी, कबीर और मैथिलीशरण गुप्त—की दार्शनिक एवं भक्ति सम्बन्धी विचारधाराओं का विस्तृत अध्ययन करके यह देखा जा चुका है कि उनके माध्यम से रामभक्ति के उच्चतम आदर्शों का हिन्दी में सफल अनुवाद हो सका है। यह अवश्य है कि उन्होंने जो कुछ

कहा है वह वही नहीं है जिसे रामानन्द-सम्प्रदाय की मान्यता मिली थी; बहुत कुछ उन्होंने अपने अनुभव और अपने युग की परिस्थितियों से भी पाया था। यही कारण है कि कबीर, तुलसी, मैथिलीशरण गुप्त को शतप्रतिशत रामानन्दी नहीं कहा जा सकता। और ऐसा सिद्ध करने का प्रयास करना उन कवियों की महत्ती गरिमा का अपमान करना होगा।

इस सम्बन्ध में एक और बात की ओर ध्यान जाता है: ज्यों-ज्यों समय बीतता गया रामानन्द-सम्प्रदाय पर अन्य धार्मिक मतों के भी प्रभाव पड़ते गए। पीछे इस संप्रदाय का इतिहास बतलाते समय इन प्रभावों की ओर भी संकेत किया गया है। योग के प्रभाव से इसमें निरंकार, निरंजन, शून्य आदि का प्रवेश हुआ और कृष्णभक्ति के प्रभाव से आधुनिक युग में माधुर्य-भक्ति के प्रचार के साथ ही सखी-भावना का भी प्रवेश इस सम्प्रदाय में हो गया। कहीं-कहीं तो मर्यादा पुरुषोत्तम राम के व्यक्तित्व को भूल कर रामानन्दी श्रृंगारी-शाखा के भक्तकवि अश्लीलता की सीमा का भी स्पर्श करने लगे हैं। तत्व-वाद की दृष्टि से यह सम्प्रदाय रामानुज-सम्प्रदाय के बहुत अधिक निकट सम्पर्क में आता गया। मध्ययुग में ही लोग इसे रामानुज-संप्रदाय की शाखामात्र समझने लगे थे। फलस्वरूप रामानन्दी भक्त 'श्री भाष्यादि' का ही पठनपाठन कर संतुष्ट होने लगे, स्वतन्त्र चिन्तन का विकास रुक सा गया। यही कारण है कि रामानन्द-सम्प्रदाय में दर्शन तथा साम्प्रदायिक इतिहास सम्बन्धी ग्रन्थों का नितान्त अभाव है। इसका एक दुष्परिणाम यह भी हुआ कि रामानन्द-सम्प्रदाय में रामानुज-सम्प्रदाय की छुआछूत सम्बन्धी संकीर्णताएँ भी धीरे-धीरे प्रवेश कर गईं। 'आनन्दभाष्य' में शूद्रों को वेदाध्ययन और फलतः भक्ति का अधिकार नहीं दिया गया।

अन्त में एक और समस्या की ओर संकेत कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। रामानन्द के व्यक्तित्व की महत्ता से हम परिचित तो हैं, किन्तु उनके जीवनवृत्त तथा उनकी रचनाओं के सम्बन्ध में निस्संदिग्ध एवं प्रामाणिक सामग्री का प्राय: अभाव सा है। उनके समकालीन किसी भी भक्त अथवा सन्त ने इस दिशा में कोई संकेत भी नहीं किया है। इस सम्बन्ध में जो कुछ सामग्री प्राप्त है वह निस्संदिग्ध नहीं कही जा सकती। उसकी पूरी छानबीन हमने प्रथम अध्याय में की है। इसी प्रकार रामानन्द जी की रचनाओं की प्राचीन हस्तलिखित पोथियाँ भी इस समय उपलब्ध नहीं हैं। जिसका परिणाम यह हुआ है कि स्वामी जी के ग्रन्थों का मूल रूप क्या था, यह पहचानना

बहुत कठिन हो गया है। मुद्रित प्रतियों में पर्याप्त पाठान्तर मिलता है, साथ ही अनेक आधुनिक ग्रन्थ भी स्वामी जी के नाम पर चला दिए गए हैं। प्रस्तुत प्रबन्ध में यद्यपि मार्ग को बहुत कुछ स्वच्छ कर दिया गया है, फिर भी इस दिशा में अभी पर्याप्त शेष रहता है।

स्पष्ट है, मध्ययुग मे स्वामी रामानन्द ने 'सीताराम' को अपना परमोपास्य बना कर एक ऐसी भक्तिपद्धति का प्रचार किया था, जिसका द्वार मानव-मात्र के लिए उन्मुक्त था। उनकी इस प्रगतिशील-चिन्ताधारा ने सन्तों एवं भक्तों का एक दल सा तैयार कर दिया जो सभी प्रकार के धार्मिक विभेदों को दूर कर एक सामान्य जीवन-पथ का निर्माण करने में जुट गया और उसे इस दिशा में बहुत कुछ सफलता भी मिली थी। हिन्दी भाषा को उन महापुरुषों की उच्चतम जीवन-अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनने का गौरव प्राप्त है। रामानन्द-सम्प्रदाय ने रामानन्द जी के इस महान् संदेश को अभी भी एकदम भुला नहीं दिया है, यद्यपि यह सत्य है कि अपनी इस लम्बी यात्रा में उसे अनेक प्रकार के अनुभव हुए और उनसे वह बहुत दूर तक प्रभावित भी हुआ, किन्तु यह उसके जीवित होने का ही प्रमाण है। बदलती हुई परिस्थितियों में अपने उच्चतम आदर्शों की रक्षा करते हुए भी जो आत्मपरिष्कार कर सके, उसी को वस्तुतः जीवित रहने का अधिकार है। रामानन्द-सम्प्रदाय ने आत्म-परिष्कार के साथ ही अपने आदर्शों की बहुत कुछ रक्षा की है।

परिशिष्ट १

सहायक पुस्तक-सूची

—साम्प्रदायिक ग्रन्थः संस्कृत

अगस्त्य संहिता—सं० पं० रामनारायण दास, छोटेलाल लक्ष्मीचंद, अयोध्या, १८९८ ई०

अष्टयाम—अग्रदास, सं० रामवल्लभाशरण, जानकीघाट, सं० १९९५वि०।

आनन्दभाष्य—रघुवरदास वेदान्ती, श्री रामानन्दीय वैष्णव महामण्डल, १९८६ वि०

आनन्दभाष्य—चतुर्थ अध्याय, ज्योतिष प्रकाश प्रेस, बनारस।

आनन्दभाष्य चतुर्थ अध्याय-सं० भगवदाचार्य, प्रकाशक विद्दण देवी, अहमदाबाद, सं० १९८९ वि०

उपनिषद्भाष्य—रामानन्द, अप्रकाशित एवं अप्राप्य।

गीताभाष्य—रामानन्द, अप्रकाशित एवं अप्राप्य।

जानकीभाष्य—स्वामी रामप्रसाद, प्र० चिन्तामणि दास, सं० १९८९ वि०।

जानकीस्तवराज भाष्य—स्वामी हरिदास, प्र० पुरुषोत्तमशरण, छोटेलाल लक्ष्मी चंद अयोध्या, सं० १९८५ वि०

रहस्यत्रय, अग्रदास—राम शोभादास, अयोध्या, १९९५ वि०

रहस्यत्रयभाष्य—हरिदास, रामबल्लभाशरण, जानकीघाट, अयोध्या, १९८६ वि०

रामतापिन्युपनिषद्भाष्य—हरिदास, रामबल्लभाशरण, जानकीघाट, अयोध्या।

रामस्तवराज भाष्य—हरिदास, रामबल्लभाशरण, १९८६ वि०

रामाराधनम्—रामानन्द, लक्ष्मण किला, अयोध्या।

रामार्चनपद्धति—रा० ट० दास, वासुदेवदास, नयाघाट, अवध, सरयूभवन, १६८. वि०

रामार्चनपद्धति—पं० रामनारायणदास, छोटे लाल लक्ष्मीचन्द, १६१४ई०

श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर—पं० रामटहलदास, वासुदेवदास, नयाघाट, सरयूभवन, अयोध्या।

श्री वैष्णवमताब्जभास्कर—भगवदाचार्य, प्र० रामरत्नदास, अ.नघाट, वि० १६८६।

" " प्र० महान्त श्रीकृष्णदास, अट्टा, अलवर।

हिन्दी

अष्टयाम—रामचरणदास, छोटेलाल लक्ष्मीचंद, अयोध्या, १६५७ वि०

गुरुरामानन्द कबीर का ज्ञान तिलक—लक्ष्मणकिला, अयोध्या।

योगचिन्तामणि—रामचंद्र शुक्ल द्वारा 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में उद्धृत पद तथा रामानंद की हिंदी रचनाएं, ना० प्र० सभा, काशी।

रामरक्षा स्तोत्र—रामानन्द, श्रीकृष्णमन्दिर, बेट द्वारका, राजकोट।

रामानन्द आदेश—मोहनदास आत्माराम, अहमदाबाद, १६१६ ई०

वेदान्तविचार—रामानन्द, लक्ष्मण किला, अयोध्या।

सिद्धान्तपटल—रामानन्द, भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस।

शृंगारी शाखा के ग्रंथ

अमररामायण, आनन्द रामायण, कौशलखण्ड, भुशुण्डि रामायण, महारामायण, महारासोत्सव, मंत्र रामायण, रामरहस्योपनिषद्, रामनवरत्न, लोमशसंहिता, सदाशिव संहिता, शाण्डिल्य संहिता, हनुमत्संहिता। ये ग्रन्थ महान्त मैथिलीरमणशरण, जानकीघाट तथा पं० श्रीकान्तशरण, गोलाघाट, अयोध्या, के यहाँ हस्तलिखित अथवा प्रकाशित रूप में प्राप्य हैं।

ख. साम्प्रदायिक हिन्दी कवियों की रचनाएँ

अग्रदास, स्वामी—आविर्भाव काल सं० १६३२ वि०

१—अग्रदास कृत छप्पयः लक्ष्मणकिला, अयोध्या :

२—कुण्डलिया।

३—अग्र ग्रन्थावली—राजकिशोरीवरशरण, जानकीघाट, अयोध्या १६३५ ई०

४—ध्यानमंजरी—प्रकाशक छोटेलाललक्ष्मीचंद, अयोध्या; १८६८ ई०

५—अमध्यान मंजरी—प्र० भोलानाथ, अजमेर, हमीरपुर, १६०० ई०

अवधभूषणदास :

१—श्री जनक नंदिनी श्रीरामचन्द्र जू विवाहमंगल ।

अक्षयकुमार :

रसिक विलास रामायण, ले० मुजफ्फरपुर, १६०१ ई०

कृपानिवास : अयोध्या निवासी, आविर्भाव काल सं० १८४३ वि०:

१—अनन्य चिन्तामणि, लक्ष्मण किला, अयोध्या ।

२—अष्टकाल समय यजन विधि ,, ,,

३—पदावली, छोटेलाल लक्ष्मीचन्द, अयोध्या, १६०१ ई०

४—भावना पचीसी ,, ,,

५—युगल माधुरी प्रकाश-लक्ष्मण किला, अयोध्या

६—रास पद्धति—रामनारायणदास, छोटेलाल लक्ष्मीचन्द, १६१० ई०

७—लगन पचीसी, ,, ,,

८—समय प्रबन्ध-लक्ष्मण किला, अयोध्या ।

६—सीतारामाष्टयाम ,,

१०—हिततरंगिणी ,,

कालिका प्रसाद सिंह :

१—मानस तरंगिणी, ले० छपरा, १८६६ ई०

२—रामरसिक शिरोमणि—१८६५ ई० सुधाकर प्रेस, सारन ।

३—रामायण नवरत्न चालीसा—छपरा ।

कामदेन्द्रमणि :—

सीता राम भद्रकेलिकादंबनी—डायमंड जुबली यंत्रालय, कानपुर, १६०६ ई०

गोमतीदास, बाबा—नई रामायण ।

चित्रनिधि—'नाम रूप लीलाधाम', लक्ष्मण किला, अयोध्या ।

जनकराज किशोरीशरण (रसिकअली)—राघवेन्द्र के शिष्य सं०१६०० वि०

१—अष्टयाम २—सीता राम सिद्धान्त अनन्य तरंगिणी ३—आत्म सम्बन्ध, लक्ष्मणकिला, अयोध्या । ४—अन्दोल रहस्य दीपिका तथा ५—सीताराम सिद्धान्त [illegible]—छोटेलाल लक्ष्मीचन्द, अयोध्या, १६०७ ई०

जनक लाड़िली शरण—सं० १६०० वि०—टीका नेह प्रकाश।

जानकी चरण—सं० १८७७ वि०, गुरु श्री रामचरण जी।

१—प्रेम प्रधान २—सियाराम रस मंजरी।

जानकी प्रसाद महन्थ—रसिक विहारी

१—इश्क अजायब तथा २—कवित्तवर्णावली—जगन्नाथप्रसाद खन्ना, ब्रह्मनाल, बनारस। क्रमशः १८७४ व १८६६ में प्रकाशित। ३—नामपचीसी ४—रामनिवास रामायण—नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ १८८६ ई० ५—रामरसायन—रघुनाथ प्रसाद सीता राम शुक्ल, निर्विवाद सद्धर्म प्रचारक सभा, अहमदाबाद, १६११ ई०। ६—रामस्तवराज—छोटेलाल लक्ष्मी चन्द, अयोध्या १६०१ ई०। ७—बजरंगबत्तीसी व रामपचीसी, अहमदाबाद, १८७७ ई०। ८—विरह दिवाकर—ब्रह्मनाल, बनारस १८८७ ई०। ६—सुजसकदम्ब, अहमदाबाद, १८७७ ई०।

जानकी रसिक शरण—सं० १७६०, प्रमोदवन, अयोध्या।

१—अवधीसागर २—युगलसनेहसागर दीपिका—लक्ष्मणकिला, अयोध्या।

जीवाराम—(युगलप्रिय) आ० काल, १८८७ वि०

१—अष्टयाम—लक्ष्मणकिला, अयोध्या। २—पदावली। ३—युगलप्रिया १६०२ ई० ४—रसिक प्रकाश भक्तमाल—खंगविलास प्रेस, बाँकीपुर, १८८७ ई०।

दाशरथीदास—दाशरथी दोहावली, लक्ष्मणकिला, अयोध्या।

धर्मदास—अवधविलास, लक्ष्मीविलास काशी खण्ड प्रेस, लखनऊ, १८८७ ई०।

बनादास—सं० १८६० वि०, अयोध्या, भवहरनकुन्ज

१—अर्ज पत्रिका, २—आत्मबोध, ३—उभयप्रबोध, ४—खंडन खंग समस्यावली, ५—नाम निरूपण ६—परत्तु ७—ब्रह्मायण तत्वनिरूपण। ८—ब्रह्मायणद्वार। ६—ब्रह्मायण परमभक्ति १०—ब्रह्मायण परमात्मबोध। ११—ब्रह्मायण विज्ञान छत्तीसा। १२—ब्रह्मायण शालि सुषुप्ति। १३—ब्रह्मायण ज्ञान मुक्तावली। १४—मात्रा मुक्तावली। १५—रामछटा। १६—रामायण। १७—विवेक मुक्तावली। १८—सारशब्दावली। १६—हनुमत विजय।

नाभादास—नारायणदास—डोम, सं० १६५७ वि०।

१—अष्टयाम, स्वामी राजकिशोरीवरशरण, जानकीघाट, अयोध्या, १६३५ ई०

३—भक्तमाल—रूपकला, तृतीयावृत्ति, १९५१ ई०

प्रेमसखी :

१—कवित्तादिप्रबन्ध, २—जानकी जी को नख-शिख, ३—नखशिख, लक्ष्मणकिला, अयोध्या ४—प्रेमसखी जी को ग्रन्थ, ल० किला। ५—भक्त मनरंजनी, छोटेलाल लक्ष्मीचन्द, अयोध्या १९०१ ई०। ६—सीता राम नखशिख—लक्ष्मणकिला। ७—होली।

बलदेव प्रसाद मिश्र—१—कोशलकिशोर २—साकेत सन्त।

बालअली—नेह प्रकाश, छोटेलाल लक्ष्मीचन्द, अयोध्या, १९०१ ई०।

बालकृष्ण—ध्यानमंजरी, ,, ,, १९०८ ई०।

मधुरअली युगलविनोदपदावली, जैन प्रेस, लखनऊ, १८९६ ई०।

युगलानन्यशरण—आविर्भाव काल, १८५७ ई०।

१—अनन्यप्रमोद २—अभ्यास प्रकाश ३—अर्थपंचक-प्र० रामबहादुर शरण जी, मुजफ्फरपुर, सं० २००७। ४—अवधवासी परत्व ५—अवध-बिहार, कौशलकिशोर, कानपुर, १९११ ई०। ६—अष्टयाम ७—अष्टादश रहस्य ८—उज्ज्वलउत्कण्ठा ९—उज्ज्वल उपदेस पत्रिका १०—[illegible] भ. आगरा, १८९० ई०। ११—उदारचरित्र जी श्री प्रश्नोत्तरी जी। १२—उपदेशनीति शतक। १३—गुरुमहिमा। १४—चतुष्टगुटिका—प्रभुदयाल शरण, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, १९१३ ई०। १५—चौंतीसा यंत्र। १६—जानकीसनेह हुलास शतक। १७—झूलनाछंद हिन्दीवर्णमय १८—झूलना छंद फारसी हरूफ। १९—नवलनामचिन्तामणि २०—नामकांति-सं० अन्जनीनन्दनशरण, अयोध्या, सं० १९९२ वि०। २१—नामपरत्व पंचासिका। २२—नामप्रेम प्रवर्द्धिनी २३—नाममयएकाक्षर कोष २४—नामविनोद बसावन। २५—नींदबत्तीसी २६—पंचदशीयन्त्र २७—पंचायुध स्तोत्र २८—पंद्रह तत्व उपदेशमय २९—प्रबोधदीपिका दोहावली। ३०—प्रमोद दीपिका दोहावली। ३१—प्रीतिपंचासिका ३२—प्रेमउमंग ३३—प्रेमपरत्व प्रभा दोहावली। ३४—प्रेम प्रकाश ३५—बारह राशि ७ बार ३६—भक्तनामावली ३७—भावना शतक विधि। ३८—मंजुमोदचौंतीसा ३९—मधुरमंजुमाला-लखनऊ प्रिंटिंग प्रेस, लखनऊ १९०४। ४०—मणिमाला ४१—मन नसीहत ४२—मनुबोध शतक ४३—युगलवर्ण विलास ४४—योग सिन्धु तरंग

रसरंगमणि—

रामध्यानमंजरी, रामलीलासंवाद, सरयूरसरंगलहरी, सीताराम अष्टयाम सेवा, सीताराम शोभावली, रामप्रेमपदावली, रामनाम यश विलास कवित्त, सीताराम वर्ष विलास, सीताराम झूलाविलास, रामप्रिय पंचरत्न, रामानन्द यशावली, जानकीयशावली, हनुमान यश तरंगिणी, रामरसरंग विलास, रामायण बारहखड़ी, सीताराम झूला विलास, रामझांकी विलास, रामशत वन्दना दोहा, सीताराम मानसी पूजा। ये सभी पुस्तकें छोटेलाल लक्ष्मीचन्द, अयोध्या, से प्राप्य हैं।

रसिकबल्लभशरण—१—युगलसनेह विनोद और २—रहस्यरत्नमाला, लक्ष्मणकिला।

[illegible] जी—जनक राज कुमारिका अष्टक, लक्ष्मण किला, अयोध्या।

रामकांताशरण—जानकीचरणचामर स्तोत्र-टीका, लाड़िली रहस्य, श्रृंगार रस मालिका, लक्ष्मण किला, अयोध्या।

रामगुलामशरण—प्रमोद बन विलास, ह० लि०—यह मेरे पास है।

रामचरणदास—(करुणासिन्धु) सं० १८३६वि०—महंथ जानकीघाट, अयोध्या।

१—अष्टयाम—छोटेलाल लक्ष्मीचंद, अयोध्या। २—कवितावली रामायण ३—गुटका, ४—दृष्टांतबोधिका ५—पदावली—ये सभी लक्ष्मण किला, अयोध्या में हैं। ६—रसमालिका—भरतशरण भू० पू० प्रोफेसर गवर्नमेंन्ट कालेज, अजमेर—२००७ वि०। ७—रामचरित्र ८—राममाहात्म्य चन्द्रिका, रामाधीन महतो, मुंगेर, १९०२ ई०।

रामनाथ ज्योतिसी—श्री रामचन्द्रोदय, हिन्दी मन्दिर प्रयाग, १९३६ ई०

रामनाथ प्रधान—रामकलेवा और रामकलेवा रहस्य—लक्ष्मण किला, अयोध्या।

रामहोरी रहस्य, खंगविलास प्रेस, बांकीपुर, १८९३ ई०।

रामानुजदास—भक्तमाल हरिभक्ति प्रकाशिका-बम्बई, १९०० ई०

रामप्रियाशरण—(जनकपुर के महंत, १७६० वि०) १—सीतायण।

रामरत्न—सियालाल समय रस वर्द्धिनी, लक्ष्मण किला, अयोध्या।

रामरत्न गोस्वामी—सियावर केलि पदावली, शालिग्राम प्रेस, आगरा २८९० ई०

छोटेलाल लक्ष्मीचंद, अयोध्या १८९७ ई० । ३—पदावली-खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई, सं० १९७९ वि० । ५—मंगलाष्टक और ५—रामसखे के कवित्त ६—लीला ७—सीतारामचन्द्र रहस्य पदावली—लक्ष्मण किला, अयोध्या ।

लक्ष्मणशरण—शृंगार रस के पद—लक्ष्मण किला, अयोध्या ।

लछिराम कवि—रामचन्द्रभूषण, रावणेश्वर कल्पतरु, हनुमानशतक, भारत जीवन प्रेस, बनारस ।

ललन पिया—

ललन कवितावली, ललनचंद्रिका, ललन प्रदीपिका, ललन प्रबोधिका, ललनफाग, ललन मोहिनी, ललन रत्नाकर, ललन रस मंजरी, ललन-रसिया, ललन ललिता, ललन वाद्याभरण, ललनविलास, ललन-शिरोमणि, ललनसागर, होलीशतक—नवलकिशोर प्रेस लखनऊ ।

लालदास (सं० १७००), बरेली—अवधविलास ।

लाल विजयसिंह—सियाचंद्रिका ।

वल्लभ—रसिक रंजन रामायण । १८८८ ।

विदेहजाशरण—झूलन प्रेम पदावली—रामलखनदास, अयोध्या, सं० २००० वि० ।

श्रीकांतशरण—मंजु रसाष्टयाम, पुस्तक भण्डार, लहेरिया सराय ।

श्रीनिवास—गुरुमहिमा और युगल माधुरी प्रकाश, लक्ष्मण किला, अयोध्या ।

शृंगारलता—कवित्त—लक्ष्मण किला, अयोध्या ।

सियाराम भाषा अवध माहात्म्य, षट्ऋतुविनोद—१८९२ ई०

सुधामुखी १—सर्वसारोपदेश, २—श्री सुधामुखी जी के पद—लक्ष्मण किला अयोध्या

सूरकिशोर—१ मिथिला विलास २—सूरकिशोर जी के ग्रन्थ—लक्ष्मण किला, अयोध्या ।

ग—अन्य सहायक ग्रंथ (हिन्दी)

अष्टछाप और बल्लभसम्प्रदाय—डॉ० दीनदयालु गुप्त, सम्मेलन, प्रयाग, २००४ वि०

अध्यात्म रामायण—भार्गवपुस्तकालय, गायघाट, बनारस।

अष्टयाम—रामचरणदास, जानकीघाट, अयोध्या।

आलवारचरितामृत—लक्ष्मी वें० प्रेस, बम्बई, १९८९ वि०।

आदि ग्रन्थ—गुरुग्रन्थसाहब—तरणतारण संस्करण।

उत्तरी भारत की सन्त परम्परा—पं० परशुराम चतुर्वेदी, भारती भण्डार, प्रयाग, सं० २००८ वि०।

अंजलि और अर्घ्य—मैथिलीशरण गुप्त, चिरगाँव, झाँसी २००७ वि०।

कबीर—हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, बम्बई, १९५० ई०।

कबीर ग्रन्थावली—डा० श्यामसुन्दरदास, ना० प्र० सभा, काशी, १९४७ ई०।

काबा और कर्बला—मैथिलीशरण गुप्त, चिरगाँव, झाँसी, २००४ वि०

कवितावली—टीका—लाला भगवानदीन, सं० पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, रामनारायणलाल, प्रयाग, २००६ वि०।

कुणाल गीन—मैथिलीशरण गुप्त, चिरगाँव, झाँसी, सं० २००६ वि०।

गीतावली—तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं० २००६।

गुरुकुल—मैथिलीशरणगुप्त, झाँसी, सं० २००४।

जगद्गुरुरामानन्दाचार्य—वैष्णव देवदास, धर्मप्रचारक विभाग, रघुनाथ जी का मन्दिर, आबू, २००५ वि०।

जयद्रथबध—मैथिलीशरणगुप्त, चिरगाँव, सं० २००७।

झंकार—मैथिलीशरण गुप्त, चिरगाँव, झाँसी, सं० २००७।

तुलसीदास—डा० माताप्रसादगुप्त, एम०ए०, डी० लिट्०, हिन्दी-परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, १६४२ ई० ।

तुलसीदर्शन—डा० बलदेवप्रसाद मिश्र, सम्मेलन, प्रयाग, सं० २००५ ।

तुलसी ग्रन्थावली—ना० प्र० सभा, काशी, सं० १६८० ।

तुलसी रचनावली—बजरंगबली गुप्त 'विशारद', सीताराम प्रेस, बनारस १६६६ वि० ।

दोहावली—तुलसीदास, बजरंगबलीगुप्त विशारद बनारस, १६६६ वि० ।

द्वापर—मैथिलीशरणगुप्त, चिरगाँव, झाँसी ।

ध्यानमंजरी—अग्रदास—छोटेलाल लक्ष्मीचन्द, अयोध्या, सन् १८६८ ई० ।

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, खोज रिपोर्ट—१६०६-१०-११ सं० श्याम बिहारी मिश्र ।

नारद पांच रात्र—भारद्वाज संहिता ।

नारद भक्ति सूत्र—कविराज गोपालचन्द्रदास शर्मा, कलकत्ता, सं० १६८४ ।

प्रसंगपारिजात, चेतनदास—टी० भगवद्दास मिश्र, श्रीरामनाममन्दिर, अयोध्या, १६५१ ई० ।

„ „ रामरक्षा त्रिपाठी निर्भीक, हनुमत्प्रेस, अयोध्या, २००५ वि० ।

परम्परा परित्राण—भगवदाचार्य, रामानन्द साहित्य प्रचारकमण्डल, १६८५ वि० ।

पत्रावली—मैथिलीशरणगुप्त, चिरगाँव, झाँसी, २००८ वि० ।

पंचवटी—मैथिलीशरणगुप्त, चिरगाँव, झाँसी, सं० २००६ ।

प्रदक्षिणा— „ „ „

बीजक—कबीरदास, सं० प्रेमचन्द, कलकत्ता, १८६० ई० ।

बीजक—कबीरदास, कबीर ग्रन्थ प्रकाशन समिति, बाराबंकी, २००७ वि० ।

भगवान्रामानन्दाचार्य—सं० हरिचरण लाल शास्त्री, जाग्रत कार्यालय, प्रयाग ।

भक्त नामावली—ध्रुवदास, सं० राधाकृष्णदास, ना० प्र० सभा, काशी, सन० १६२८ ।

की टीका सहित, भक्ति सुधास्वाद तिलक-सीता-रामशरण भगवानप्रसाद रूपकला, लखनऊ, तृ० आवृत्ति १६५१ ई० ।

भक्तमाल रामरसिकावली—रीवांनरेश रघुराज सिंह, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, सं० १६७१ वि०

भक्तमाल हरिभक्ति प्रकाशिका—पं ज्वालाप्रसाद मिश्र ।

भविष्यपुराण—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई ।

भारतीय संस्कृति—शिवदत्त ज्ञानी, राजकमल प्रकाशन, बम्बई, १६४४ ई०

भागवत—गीता प्रेस, गोरखपुर, सं० २००६ वि० ।

भागवत सम्प्रदाय—पं० बलदेव उपाध्याय, काशी ।

भगवत् पूजन पद्धति—भगवदाचार्य, रामानन्द साहित्य प्रचारक मन्दिर, १६६० वि० ।

महाकवि सूरदास—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, आत्माराम ऐण्ड संस, १६५२ ई० ।

मध्यकालीन भारतीय संस्कृति—म० म० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, १६४५ ई० ।

मानस-पीयूष—अंजनीनन्दनशरण, ऋणमोचनघाट, अयोध्या, १६५२-५५ ई० ।

मिश्रबन्धुविनोद—मिश्रबन्धु-गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, १६६५ वि० ।

मंजु रसाष्टयाम—श्रीकांतशरण, पुस्तक भण्डार लहरिया सराय ।

युगलानन्यशरण महाराज जी के चरित्र—लक्ष्मणकिला, अयोध्या ।

युद्ध—मैथिलीशरण गुप्त, झाँसी ।

यशोधरा— „ „ सं० २००१ वि० ।

रंग में भंग— „ „ सं० २००६ वि० ।

रसिकप्रकाश भक्तमाल—महान्त जीवाराम, टी० वासुदेव दास, खंग विलास प्रेस, बांकीपुर, १८८७ ई० ।

रामकथा (उत्पत्ति और विकास),—रेवरेण्डफ़ादर कामिल बुल्के, एस० जे०, हिन्दी परिषद्, प्रयाग, १६५० ई० ।

रामध्यान-मन्जरी—अग्रदास, छोटेलाल लक्ष्मीचंद, अयोध्या ।

रामाष्टयाम—नाभादास, जनकराजकिशोरीशरण, अयोध्या, १६२५ ।

रामानन्द दिग्विजय—भगवदाचार्य, अलवर, रामानन्द साहित्यमन्दिर, ४७ ई० ।

रामानन्दायन—स्वामी जयराम देव, जयपुर, २००१ वि० ।

रामपटल—सं० रामबल्लभाशरण, जानकीघाट, अयोध्या, १६५० ई० ।

रामानन्द जन्मोत्सव—रणहर पुस्तकालय, डाकोर, १६६३ वि० ।

रामानन्द सम्प्रदाय की द्वारा गादियों का विवरण—रामटहलदास ।

वैश्वानर संहिता—रामानन्द जन्मोत्सवान्तर्गत ।

बालमीकि संहिता—सं० भगवदाचार्य, पुरातत्वानुसंधायिनी समिति, अयोध्या, १६७८ वि० ।

विनयपत्रिका—गो० तुलसीदास, बजरंगबली विशारद, बनारस, १६६६, वि०

वैष्णवधर्मरत्नाकर—गोपालदास, वें० प्रे० बम्बई ।

वैतालिक—मैथिलीशरण गुप्त, सं० २००८ वि० ।

बृहत्कौशलखण्ड—प्रकाशक रामकिशोर शरण, हनुमतनिवास, अयोध्या ।

शिवसिंहसरोज—शिवसिंह सेंगर, सं० रूपनारायण पाण्डे, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, सन् १६२६ ई०

श्री पंच रामानन्दीय निर्मोही अखाड़ा का रजिस्टर्ड विधान—महान्त रघुनाथदास, अयोध्या, १६४६ ई० ।

श्री सीताराम मानसी पूजा भावना अष्टयाम सेवा—सीतारामशरण रसरंगमणि, सं० रामटहलदास, छोटेलाल लक्ष्मीचन्द, अयोध्या ।

ी रामचरित मानस—गोस्वामी तुलसीदास, सं० डा० माताप्रसाद गुप्त, शालिग्राम गुप्त, साहित्य कुटीर, एलनगंज, प्रयाग, १६४६ ई० ।

ंक्षिप्त संत कबीर—डा० रामकुमार वर्मा, साहित्य भवन, प्रयाग, १६४४ ई० ।

र्वेश्वरी मीमांसा—श्री मैथिलीरमणशरण, जानकीघाट, अयोध्या, २००४ वि० ।

सरबंगी—रज्जबदास, पौड़ी हस्तलेख, डा० बर्थ्वाल द्वारा 'हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय' में उद्धृत ।

सिद्धान्त पंच मात्रा—राघवानन्द स्वामी।
साकेत—मैथिलीशरण गुप्त, झांसी, सं० २००१ वि०।
सिद्धराज— " "
सिद्धान्त मुक्तावली—रसिकअली, छोटेलाल लक्ष्मीचन्द, अयोध्या।
सिद्धान्त तिलक—मानस, श्रीकान्त शरण, लहेरियासराय।
सैरन्ध्री—मैथिलीशरणगुप्त, चिरगाँव, झांसी।
हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय—डॉ० पीतांबरदत्त बर्थ्वाल, अनु० परशुराम चतुर्वेदी, अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ, २००७ वि०।
हिन्दी काव्य में योग प्रवाह—डॉ० पीताम्बरदत्त बर्थ्वाल।
हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास—अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', १९३४ ई०।
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा, रामनारायण लाल, इलाहाबाद, १९४८ ई०।
हिन्दी साहित्य की भूमिका—डॉ० हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, १९५० ई०।
हिन्दी साहित्य का इतिहास—पं० रामचन्द्र शुक्ल, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी, २००५ वि०।
हिन्दीभाषा और साहित्य—श्यामसुन्दरदास, इं० प्रे० लिमिटेड, प्रयाग, १९३७ ई०।
हिन्दी साहित्य का इतिहास—डॉ० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी।
हिन्दी विश्व कोष—नगेन्द्रनाथ वसु, १९१५ ई०
हिडिम्बा—मैथिलीशरण गुप्त, चिरगाँव, झांसी, वि० २००७।
त्रिरत्नी—भगवदाचार्य, रामानन्द साहित्य प्रचारक मण्डल, अयोध्या

अंगरेजी तथा अन्य विदेशी भाषाओं में लिखे ग्रन्थ

आर्कियालॉजिकल सर्वे अव् इण्डिया रिपोर्ट।
इंडियन फिलासफ़ी—डॉ० राधाकृष्णन्, वाल्यूम २।
इन्साइक्लोपीडिया अव् रिलीजन ऐण्ड एथिक्स—वा० ९। सं० हेस्टिंग्स, टी० ऐण्ड टी० क्लार्क, एडिनबरा, १९२१ ई०।

इस्त्वार द ला लितरात्यूर ऐन्दुई एें ऐन्दुस्तानी—द्वितीय संस्करण, अदोल्फ लावीत, पेरिस, गार्सां द तासी, सन् १८७०-७१ई० अनु० डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, १९५३ ई० ।

इन्फ्लूयंस अव् इस्लाम ऑन इण्डियन कल्चर—डॉ० ताराचन्द ।

एसेज़ आन दि रिलीजस सेक्ट्स अव् हिन्दूज़—एच०एच० विल्सन ।

ए स्केच अव् हिन्दी लिटरेचर—एडविन ग्रीव्ज़, क्रिश्चियन लिटरेचर सोसायटी फ़ार इण्डिया । सन् १९१८ ई० ।

ए हिस्ट्री अव् हिन्दी लिटरेचर—एफ़० ई० के । हेरिटेज अव् इंडिया सिरीज़, १९२० ई० ।

ऐन आउट लाइन अव् रिलीजस लिटरेचर अव् इण्डिया—जे० एन० फ़र्कुहर, लन्दन, १९२० ई० ।

ऐन इण्ट्रोडक्शन टु इण्डियन फ़िलासफ़ी—एस० चटर्जी, धीरेन्द्रमोहन दत्त, कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९४४ ई० ।

कैटलागोरस कैटलागोरम—टी० आफ्रेक्ट, लिपज़िग, १८९१ ई० ।

डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर, फैज़ाबाद, एच० आर० नेविल, गवर्नमेण्ट प्रेस, इलाहाबाद, १९०५ ई० ।

दि आथरशिप अव् अध्यात्मरामायण—प्रो० रघुवर मिट्ठूलाल शास्त्री, एम० ए०, एम० ओ० एल०, सर गंगानाथ झा रिसर्चइंस्टी-ट्यूटजर्नल, इलाहाबाद, १९४४ ।

दि सिख रिलीज़न—मैकालिफ़, वाल्यूम ६, आक्सफ़र्ड, १९०९ ई० ।

दि नाइन्थ इण्टरनैशनिलिस्टस कांग्रेस अव् औरियण्टलिस्ट्स, वा १ ।

फ़्राम रामानन्द टु रामतीर्थ—जी० ए० नटेसन, मद्रास ।

ब्राह्मनिज़्म ऐण्ड हिन्दुइज़्म, मॉनियर विलियम्स—लन्दन, १८९१ ई०

मेडिवल इण्डिया, डॉ० ईश्वरी प्रसाद, इण्डियन प्रेस, इलाहा-बाद—माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर अव् हिन्दुस्तान, ए० जा० ग्रियर्सन, कलकत्ता, १८८९ ई० ।

मिस्टिक्स, एसेटिक्स ऐण्ड सेन्ट्स अव् इण्डिया—जे० सी० कैम्बेल ओमन ।

वैष्णविज्म, शैविज्म ऐण्ड माइनर रिलीजस सिस्टम्स अव् इण्डिया—सर आर० जी० भण्डारकर, स्ट्रासवर्ग, १९१३ ई० ।

पत्र-पत्रिकाएँ

इण्डियन ऐन्टीक्वेरी—वा० ३२ ।

कल्याण—वेदान्त अंक—वर्ष ११, सं० १, सं० १९९३, अगस्त १९३६ ई० ।

गंगानाथ झा रिसर्च इंस्टीट्यूट जर्नल, वा० १ पार्ट २ फ़रवरी १९४४ ई० ।

जर्नल अव् रायल एशियाटिक सोसायटी अव् बेंगाल, सन् १९०७, १९२०, १९२२ ।

तत्त्वदर्शी, सं० भगवदाचार्य—वर्ष ४, अंक १२, १९३२ ई०, तथा वर्ष ७ अंक ७, सन् १९३८ ई० ।

नागरी प्रचारिणी पत्रिका—भाग २—सं० ४, सं० १९८४ तथा सन् १९२० ई० ।

लीडर, मैगज़ीन सेक्शन,—दिसम्बर-जनवरी, १९५२-५३ ई० ।

साहित्य—१९८९ वि० ।

संत—श्री रामानन्दांक, सं० वैष्णवदास जी शास्त्री—वर्ष ४, अंक ७-८-९ ।

हिन्दुस्तानी—१९३२ ई०, अक्टूबर ।

परिशिष्ट २

रामानन्द सम्प्रदाय के केन्द्र—

अयोध्या, अलवर, अहमदाबाद, आबू, इटावा, इलाहाबाद, उज्जैन, करनाल, करौली, काशी, गांगरौन, ग्वालियर, चित्रकूट, छपरा, जयपुर, जैसलमेर, जोधपुर, पटियाला, बाराबंकी, मथुरा, मिथिला, मिर्ज़ापुर, मेवाड़, सागर, हरिद्वार ।

परिशिष्ट ३

नामानुक्रमणी

ह

क्ष

त्र

ज्ञ

परिशिष्ट ४

स्वामी भगवदाचार्य का पत्र

'आनन्दभाष्य' के संबंध में भगवदाचार्य जी की स्वीकारोक्ति ! मुझे हर्ष है भगवदाचार्य जी ने 'भाष्य' को जाली रचना के रूप में स्वीकार कर लिया है आशा है 'भाष्य' संबंधी सारे विवाद अब शान्त हो जायँगे ।



राजनगर सोसाइटी
अहमदाबाद ७
१८–६–५७

भाई श्रीवास्तव जी,

आशीर्वाद

आपका १०–६ का कार्ड मिला । आप सोपाधिक हुए, प्रसन्नता हुई ।

मैंने आपको लिखा था कि जिसका नाम लोगों ने आनन्दभाष्य लिखा है वह श्री रामानंद स्वामी जी का नहीं है । वह तो स्वामी रामप्रसाद जी के जानकी भाष्य की कतरन है । जालसाजी से लोगों ने उसको आनन्दभाष्य यह नाम दे दिया है । आनन्दभाष्य की जगत् में कोई भी हस्तलिखित प्रति नहीं है । जानकीभाष्य की दो या तीन प्रतियाँ ५०, ६० वर्ष की हस्तलिखित प्राचीन उपस्थित हैं । वह अयोध्या में जाने से मिल सकेंगी । आप निश्चय रखें कि आनन्दभाष्य न तो रामानन्द स्वामी का है और न उसकी कोई प्राचीन प्रतिलिपि है । इसके लिए आप श्री रामानन्द साहित्य मन्दिर, अट्टा, अलवर (राजस्थान) से मेरा 'रामपटल' मँगा कर उसमें ... पढ़ जावें ।

शुभचिन्तक
ह० स्वामी भगवदाचार्य